अध्यात्म रामायण

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.

अथाध्यात्मरामायणं भाषाटीकासहितं

प्रारभ्यते

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

संस्करण : सितंबर २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : ६०० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,™

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

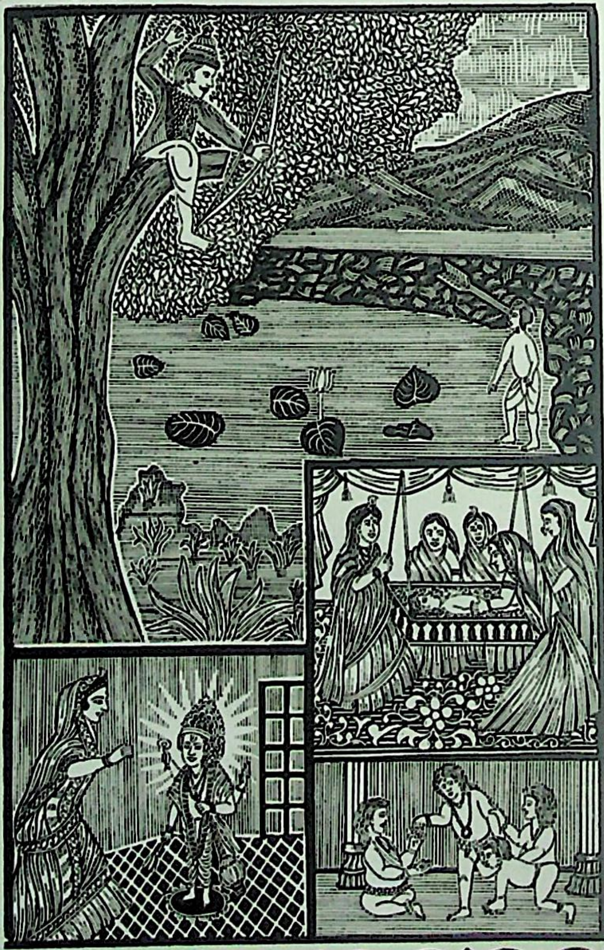
अथाध्यात्मरामायणान्तर्गतविषयानुक्रमणिका

सुन्दरकाण्ड

युद्धकाण्ड ६

उत्तरकाण्ड ७

इति अध्यात्मरामायणान्तर्गतविषयानुक्रमणिका



अथाध्यात्मरामायणे

भाषाटीकासहिते

बालकाण्ड

प्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ।। अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्त्तये ।। मनोगिरांविदूरायदक्षिणा मूर्त्तयेनमः ।।१।। सूत उवाच ।। कदाचिन्नारदोयोगी परानुग्रहवाञ्छया ।। पर्य्यटन्सकलाँल्लोकान्सत्यलोकमुपागमत् ।।२।। तत्रदृष्ट्वामूर्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम् ।। बालार्कप्रभयासम्यग्भासयन्तंसभागृहम् ।।३।। मार्कण्डेयादिमुनिभिः स्तूयमानंमुहुर्मुहुः ।। सर्वार्थगोचरज्ञानंसरस्वत्यासमन्वितम् ।।४।। चतुर्मुखंजगन्नाथ भक्ताभीष्टफलप्रदम् ।। प्रणम्यदण्डवद्भक्त्यातुष्टावमुनिपुङ्गवः ।।५।। सन्तुष्टस्तंमुनिंप्राहस्वयंभूर्वैष्णवोत्तमम् ।। किंप्रष्टुकामस्त्वमसि तद्वदिष्टामितेमुने ।।६।। इत्याकर्ण्यवचस्तस्यमुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।। त्वत्तः श्रुतंमयासर्वपूर्वमेवशुभाशुभम् ।।७।। इदानीमेकसेवास्तिश्रोतव्यंसुरसत्तम् ।। तद्रहस्यमपिब्रूहियदितेनुग्रहोमयि ।।८।। प्राप्तेकलियुगेघोरेनराः पुण्यविवर्ज्जिताः ।। दुराचाररताः सर्वेसत्यवार्त्तापराङ्मुखाः ।।९।। परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः ।। परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ।।१०।।

श्रीगणेशायः नमः । अथ अध्यात्मरामायण सटीक बालकांड प्रारंभः । प्रमाणरहित, तीनों गुणों से परे, शुद्धज्ञानस्वरूप, मन और वाणी से परे ऐसे सदाशिवजी को नमस्कार है।।१।। सूतजी बोले–एक समय योगाभ्यासी नारदजी दूसरे जीवों के कल्याण की इच्छा से सब लोकों में विचरते हुए सत्यलोक में आये।।२।। वहां मूर्तिमान् वेद जिनके चारों ओर (सेवा में) खड़े हैं और जो बाल सूर्य के समान अपनी प्रभा से सब सभा को पूर्ण प्रकाशित कर रहे हैं।।३।। और मार्कंडेय आदि मुनि जिनकी बारंबार स्तुति कर रहे हैं और जो सर्व शास्त्र और लौकिक पदार्थों के ज्ञाता हैं और सरस्वतीजी से शोभायमान् हैं।।४।। ऐसे सब जगत् के स्वामी, भक्तों के मनोरथों को देनेवाले ब्रह्माजी का दर्शन करके और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके नारदजी स्तुति करने लगे।।५।। ब्रह्माजी प्रसन्न होकर भगवान् के उन परम भक्त (नारद) मुनि से बोले कि तुम क्या प्रश्न किया चाहते हो सो हे मुने! उसका उत्तर मैं तुम्हें दूंगा।।६।। उनकी यह वाणी सुनकर (नारद) मुनि ब्रह्माजी से बोले कि अच्छे बुरे कर्मों का फल तो मैंने आपसे पहिले ही बात सुन रखा है।।७।। हे देवताओं के शिरोमणि! अब तो केवल एक बात सुनने के योग्य है, सो जो आपका अनुग्रह मेरे ऊपर हो तो उस गुप्त बात को भी मुझसे कहिये।।८।। जब घोर कलियुग आवेगा तब सब मनुष्य पुण्यरहित, दुराचारी और सत्य भाषण से

विमुख हो जायंगे॥९॥ पराई निन्दा में प्रीति करेंगे, पराया द्रव्य ग्रहण करेंगे, पराई स्त्री में मन लगावेंगे और पराई हिंसा करते फिरेंगे॥१०॥

देहात्मदृष्टयोमूढानास्तिकाः पशुबुद्धयः ॥ मातापितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः ॥११॥ विप्रालोभग्रह ग्रस्तावेदविक्रियजीविनः धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्यामदविमोहिताः ॥१२॥ त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवंचकाः ॥ क्षत्रियश्चतथावैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥१३॥ तद्वच्छूद्राश्चयेकेचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः ॥ स्त्रियश्चप्रायशोभ्रष्टाभर्त्रवज्ञाननिर्भयाः ॥१४॥ श्वशुरद्रोहकारिण्योभविष्यन्तिनसंशयः ॥ एतेषांनष्टबुद्धीनांपरलोकः कथंभवेत् ॥१५॥ इतिचिन्ताकुलंचित्तंजायते मम सन्ततम् ॥ लघूपायेनयेनेषांपरलोकगतिर्भवेत् ॥१६॥ तमुपायमुपाख्याहिसर्ववेत्तियतोभवान् ॥ इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्यप्रत्युवाचाम्बुजासनः ॥१७॥ साधुपृष्टं त्वयासाधोवक्ष्येतच्छृणुसादरम् ॥ पुरात्रिपुरहंतारंपार्वतीभक्तवत्सला ॥१८॥ श्रीरामतत्त्वंजिज्ञासुः पप्रच्छविनयान्विता ॥ प्रियायैगिरिशस्तस्यै गूढंव्याख्यातवान् स्वयम्॥१९॥ पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमितिस्मृतम् ॥ तत्पार्व्वजीजगद्धात्री पूजयित्वादिवानिशम् ॥२०॥

देह में आत्मदृष्टि करेंगे; मूर्ख और नास्तिक होंगे, उनकी पशुओं की सी बुद्धि होगी, माता पितासे द्वेष करेंगे, स्त्रीको देवता समान मानेंगे और काम के दास अर्थात् बड़े कामी होंगे॥११॥ ब्राह्मण लोभरूपी ग्राह से ग्रसित होंगे, वेद बेचने की आजीविका करेंगे, और जिस बात में धनोपार्जन होगा उसीका अभ्यास करेंगे और विद्यारूपी मद में मतवाले हो जायँगे॥१२॥ अपने जातिकर्म त्याग देंगे और बहुधा दूसरों को ठगेंगे और क्षत्री वैश्य अपने २ धर्म को त्याग देंगे॥१३॥ उसी प्रकार जो शूद्र हैं वे ब्राह्मणों का आचार करने लगेंगे और स्त्रियां बहुधा भ्रष्ट हो जायंगी और निर्भय पति की अवज्ञा करेंगी॥१४॥ सास ससुरसे द्रोह करेंगी इसमें सन्देह नहीं है सो इस नष्ट बुद्धिवालों का परलोक कैसे होगा॥१५॥ इस चिन्ता से मेरा चित्त सदा व्याकुल रहता है सो जिस छोटे से उपाय से इनका परलोक गमन हो॥१६॥ उस उपाय को कहिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। मुनि का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले॥१७॥ हे साधो! तुमने अच्छी बात पूछी उसे मैं कहूंगा, तुम आदर पूर्वक सुनो। पूर्व काल में, भक्तों को प्यार करनेवाली पार्वतीजी से भी श्रीरामजी के

यथार्थ स्वरूप को जानने की इच्छा करके त्रिपुरनाशक शिवजी से यही प्रश्न विनयपूर्वक किया था और शिवजी ने स्वयं उन अपनी प्रिया पार्वतीजी से इस गुप्त कथा का वर्णन किया था।।१८।।१९।। पुराणों में यह अध्यात्मरामायण उत्तम कही गई है। जगत् की रक्षा करनेवाली पार्वतीजी उसका पूजन कर रात्रि दिन ।।२०।।

आलोचयन्तीस्वानन्दमग्नातिष्ठतिसांप्रतम् । प्रचरिष्यतितल्लोकेप्राण्यदृष्टवशाद्यदा ।।२१।। तस्याध्ययनमात्रेण जनायास्यन्तिसद्गतिम् ।। तावद्विजृम्भतेपापंब्रह्महत्यापुरस्सरम् ।।२२।। यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।। तावत्कलिमहोत्साहोनिश्शंकंसंप्रवर्त्तते ।।२३।। यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।। तावद्यमभटाः शूराः संचरिष्यन्तिनिर्भयाः ।।२४।। यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।। तावत्सर्वाणि-शास्त्राणिविवदन्तेपरस्परम् ।।२५।। यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।। तावत्स्वरूपंरामस्यदुर्बोधं महतामपि ।।२६।। अध्यात्मरामायणसंकीर्त्तनश्रवणादिजम् ।।फलंवक्तुंनशक्नोमिकार्त्स्न्येनमुनिसत्तम ।।२७।। ।। तथापितस्यमाहात्म्यंवक्ष्येकिंचित्तवानघ ।। शृणुचित्तंसमाधाय शिवेनोक्तं पुरामम ।।२८।। अध्यात्मरामायणतः श्लोकंश्लोकार्द्धमेववा ।। यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यतेक्षणात् ।।२९।। यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः ।। यथाशक्तिवदेद्भक्त्यासजीवन्मुक्तउच्यते ।।३०।। योभक्त्यार्चयतेध्यात्मरामायणमतन्द्रितः ।। दिनेदिनेऽश्वमेधस्यफलंतस्यभवेन्मुने ।।३१।।

उसे विचारती है और अपने आनन्द में मग्न रहती हैं। इसलिये जो अब प्राणियों की प्रारब्ध से लोक में उसका प्रचार होगा तो ।।२१।। उसके पाठमात्र से मनुष्य मोक्ष पावेंगे क्योंकि तब ही तक ब्रह्महत्यादि पाप गर्जते हैं कि ।।२२।। जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार नहीं होता। और तब ही तक कलियुग बड़े उत्साह से निडर होकर प्रवृत्त होता रहेगा कि ।।२३।। जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार नहीं होता और तब ही तक यम के शूर योधा निर्भय होकर विचरेंगे कि ।।२४।। जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार नहीं होगा और तब ही तक संपूर्ण शास्त्र आपस में विवाद करते रहेंगे कि।।२४।। जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार नहीं होगा और न तब ही तक संपूर्ण शास्त्र आपस में विवाद करते रहेंगे कि।।२५।। जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार नहीं होता और न तब

तक महात्माओं को रामजी के रूप का ज्ञान हो सकता है।।२६।। हे मुनिश्रेष्ठो! अध्यात्मरामायण के पाठ का और सुनने का संपूर्ण फल कहने के लिये मैं यद्यपि समर्थ नहीं हूं।।२७।। तो भी हे निष्पाप! मैं उसका थोड़ा सा माहात्म्य सुनाऊँगा कि जो पहिले शिवजी ने मुझसे कहा था। तुम उसे सावधान चित्त होकर सुनो।।२८।। जो मनुष्य अध्यात्म रामायण में से एक श्लोक वा आधा श्लोक भी भक्तिपूर्वक पढ़ता है वह उसी समय पाप से छूट जाता है।।२९।। जो कोई अध्यात्म रामायण को नित्यप्रति एकाग्र चित्त होकर भक्तिपूर्वक यथाशक्ति पढ़ता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।।३०।। और हे मुने! जो कोई आलस्य छोड़कर भक्तिपूर्वक अध्यात्म रामायण का पूजन करता है तो उसे नित्य अश्वमेघ का फल होता है।।३१।।

यदृच्छयापियोऽध्यात्मरामायणमनादरात् ।। अन्यतः श्रृणुयान्मर्त्यःसोपिमुच्येतपातकात् ।।३२।। नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः ।। सर्वदेवार्चनफलंसंप्राप्नोतिनसंशयः ।।३३।। लिखित्वापुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः।।योदद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्यपुण्यफलंश्रृणु ।।३४।। अधीतेषुचवेदेषुशास्त्रेषुव्याकृतेषुच ।। यत्फलंदुर्लभं लोकेतत्फलंतस्यसंभवेत् ।।३५।। एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषितः।। योरामभक्तः सदसिव्याकरोतिनरोत्तमः ।।३६।। तस्यपुण्यफलंवक्ष्येश्रृणुवैष्णवसत्तम् ।। प्रत्यक्षरंतुगायत्रीपुरश्चर्य्याफलंभवेत् ।।३७।। उपवासव्रतंकृत्वाश्रीरामनवमीदिने ।। रात्रौजागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः ।।३८।। यः पठेच्छृणुयाद्वापितस्यपुण्यंवदाम्यहम् ।। कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ।।३९।। आत्मतुल्यंधनंसूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ।। विप्रेभ्योव्यासतुल्येभ्योदत्त्वायत्फलमश्नुते ।।४०।। तत्फलं संभवेत्तस्यसत्यंसत्यनसंशयः ।। योगायतेमुदाध्यात्मरामायणमहर्निशम् ।।४१।। आज्ञांतस्यप्रतीक्षन्तेदेवाइन्द्रपुरोगमाः ।। पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायण मनुव्रतः ।।४२।।

जो पुरुष दूसरे से अध्यात्म रामायण को नियमरहित अनादर से भी सुनता है वह भी पातक से छूट जाता है।।३२।। जो पास जाकर अध्यात्म रामायण को नमस्कार करता है वह सब देवताओं के पूजन का फल पाता है इसमें संदेह नहीं है।।३३।। जो कोई संपूर्ण रामायण की पुस्तक लिखकर रामभक्तों को दान करता है उसका फल सुनो।।३४।। सब वेदों के

रामभक्त एकादशी के दिन व्रत करके सभा में अध्यात्म रामायण सुनता है उसके पुण्य का फल कहूंगा हे वैष्णश्रेष्ठ! तुम सुनो कि॥३६॥ एक एक अक्षर के पढ़ने में गायत्री के पुरश्चरण का फल मिलता है और रामनवमी के दिन निराहार व्रत करके॥३७॥ और रात्रि में जागरण कर जो कोई एकाग्रचित्त होकर अध्यामरामायण पढ़ता वा सुनता है उसका पुण्य भी कहता हूं॥३८॥ मनुष्य कुरुक्षेत्र आदि सब तीर्थों में अनेक वार सर्वग्रस्त सूर्यग्रहण के समय व्यास तुल्य ब्राह्मण को सोने चांदी का तुलादान करने से जो फल पाता है वह फल उसे होता है यह सत्य २ है इसमें संदेह नहीं है॥३९॥४०॥ जो पुरुष अध्यामरामायण को रातदिन आनन्दपूर्वक स्वर से पढ़ता है इन्द्र आदि देवता उसकी आज्ञा की राह देखते है॥४१॥ जो कोई नित्य अध्यात्मरामायण मन लगाकर पढ़ता है वह जो जो कर्म करता है उसका वही वही कर्म करोड़गुना हो जाता है॥४२॥

यद्यत्करोतितत्कर्मततः कोटिगुणंभवेत् ॥ तत्रश्रीरामहृदयंयः पठेत्सुसमाहितः ॥४३॥ सब्रह्मघ्नोपिपूतात्मात्रिभिरेवदिनैर्भवेत् ॥ श्रीरामहृदयंयस्तुहनुमत्प्रतिमान्तिके ॥४४॥ त्रिः पठेत्प्रत्यंहमौनीससर्वेप्सितभाग्भवेत् ॥ पठन् श्रीरामहृदयंतुलस्यश्वत्थयोर्यदि ॥४५॥ प्रत्यक्षरंप्रकुर्वीतब्रह्महत्यानिवर्त्तनम् ॥ श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नंजानातिशंकरः ॥४६॥ तदर्द्धं गिरिजावेत्तितदर्द्धंवेद्म्यहंमुने ॥ नतेकिंचित्प्रवक्ष्यामिकृत्स्नंवक्तुं न शक्यते ॥४७॥ यज्ज्ञात्वातत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ श्रीरामगीतायत्पापंननाशयति नारद ॥४८॥ तन्ननश्यतितीर्थादौलोकेक्वापि कदाचन ॥ तन्नपश्याम्यहंलोकेमार्गमाणापिसर्वदा ॥४९॥ रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादितांमुदा ॥ लक्ष्मणायार्पितागीतांसुधांपीत्वामरो ॥५०॥जमदग्निसुतः पूर्वंकार्त्तवीर्यवधेच्छया ॥ धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिकेवसन् ॥५१॥ अधीयमानांपार्वत्यारामगीतांप्रयत्नतः ॥ श्रुत्वागृहीत्वाशुपठन्नारायणकलामगात् ॥५२॥

तिसमें भी जो कोई रामहृदय का पाठ एकाग्र चित्त से करता है तो वह कैसा भी ब्रह्मघाती क्यों न हो तीन दिन में पवित्रात्मा हो जाता है॥४३॥ और जो कोई हनुमानजी की मूर्ति के पास रामहृदय का पाठ नित्य तीन वार मौन होकर

अ०रा०
६

करता है वह सब मनोरथ पाता है।।४४।। और जो कोई तुलसी और पीपल वृक्ष के पास रामहृदय का पाठ करता है उसका एक एक अक्षर ब्रह्महत्या को दूर करता है।।४५।। हे मुने! रामगीता का पूरा २ माहात्म्य जो शिवजी जानते हैं उसका आधा पार्वतीजी जानती हैं और उसका आधा मैं जानता हूं।।४६।। इसलिये तुमसे थोड़ा सा कहता हूं क्योंकि मैं संपूर्ण कहने में असमर्थ हूं।।४७।। उस थोड़े से को भी जानकर मनुष्य तत्काल शुद्धचित्त हो जाता है और हे नारद! श्रीरामगीता जिस पाप को नाश नहीं कर सकती उसे लोक में कोई तीर्थादिक कदापि नाश नहीं कर सकता और मैं उस पाप को संसार में सदा ढूंढता हूं और नहीं देखता हूं।।४८।।४९।। श्रीरामजी ने उपनिषद्रूपी समुद्र को मथकर गीतारूपी वह अमृत निकाला और प्रसन्न होकर उसे लक्ष्मणजी को दिया कि जिसे पान कर मनुष्य अमर हो जाता है।।५०।। पहिले जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी कार्तवीर्य के वध की इच्छा से धनुर्विद्या सीखने के लिये महादेवजी के पास रहे थे।।५१।। उस समय पार्वतीजी नियम से रामगीता का पाठ किया करती थी उनके मुख से उसे सुनकर और ग्रहण कर पढ़ते २ शीघ्र ही नारायणी कला को पहुँच गये।।५२।।

ब्रह्महत्यादिपापानांनिष्कृतिंयादवाञ्छति ।। रामगीतांमासमात्रंपठित्वा मुच्यतेनरः ।।५३।। दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् ।। पापंयत्तत्कीर्त्तनेनरामगीताविनाशयेत् ।।५४।। शालग्रामशिलाग्रेचतुलस्यश्वत्थसन्निधा ।। यतीनांपुरतस्तद्वद्रामगीतांपठेत्तुयः ।।५५।। तत्तत्फलमवाप्नोतियद्वाचोपिनगोचरम् ।। रामगीतांपठेद्भक्त्या यः श्राद्धभोजयेद्द्विजान् ।।५६।। तस्यतेपितरः सर्वेयान्तिविष्णोः परंपदम् ।। एकादश्यांनिराहारोनियतोद्वादशीदिने ।।५७।। स्थित्वागस्त्यतरोर्मूलेरामगीतांपठेत्तुयः ।। सएवराघवः साक्षात्सर्वदेवैश्चपूज्यते ।।५८।। विनादानंविनाध्यानंविनातीर्थावगाहनम् ।। रामगीतांनरोधीत्यतदनन्तंफलंलभेत् ।।५९।। बहुनाकिमिहोक्तेन श्रृणुनारदतत्त्वतः ।। श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानिच ।।६०।। अर्हंतिनाल्पामध्यात्मरामायणकलामपि ।। अध्यात्मरामचरितस्यमुनीश्वरायमाहात्म्यमेतदुदितंकमलासनेन ।। यः श्रद्धयापठतिवाश्रृणुयात्समर्त्यः प्राप्नोतिविष्णुपदवींसुरपूज्यमानः ।।६१।। इतिब्रह्माण्डपुराणेउत्तरखण्डे एकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

बा०का०
सर्ग
१

जो मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटना चाहे वह उनसे केवल एक मास रामगीता का पाठ कर छूट जाता है।।५३।। बुरा दान निषिद्ध भोजन असत्यभाषण आदि से उत्पन्न हुआ पाप रामगीता के पाठ से नाश हो जाता है।।५४।। जो पुरुष शालग्राम की शिला के आगे तुलसी और पीपल के पास और संन्यासियों के सामने रामगीता का पाठ करता है।।५५।। वह उस फल को पाता है कि जो वाणी से नहीं कहा जा सकता और जो मनुष्य रामगीता पढ़ता हुआ भक्तिपूर्वक श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराता है।।५६।। उसके वे सब पितर विष्णुके परपमद को जाते हैं जो कोई एकादशीके दिन निराहार और जितेन्द्री रहे और द्वादशी के दिन।।५७।। अगस्त्यवृक्ष के नीचे बैठकर रामगीता का पाठ करे वह साक्षात् रामरूप हो सब देवताओं से पूजित होता है।।५८।। बिना दान ध्यान और बिना तीर्थ स्नान के भी मनुष्य रामगीता को पढ़े तो उसे अनंत फल होता है।।५९।। हे नारद! बहुत कहने से क्या है तुम तत्त्व की तब सुनो कि श्रुति स्मृति पुराण इतिहास आदि शास्त्र सैकड़ों हैं परन्तु अध्यात्मरामायणकी थोड़ी सी कलाके समान नहीं है।।६०।। यह अध्यात्मरामायणका माहात्म्य ब्रह्माजीने मुनिराज नारदजीसे कहा है जो मनुष्य इसे श्रद्धासे पढ़ता वा सुनता है वह देवताओंसे पूजित हो विष्णुपदको पाता है।।६१।। इति पण्डितरामेश्वरभट्ट का बनाया हुआ ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरखंड के इकसठ अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।।६१।।

यः पृथ्वीभरवारणायदिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः संजातः पृथिवीतलेरविकुलेमायामनुष्योऽव्ययः ।। निश्चक्रंहतराक्षसः पुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यंस्थिरांकीर्तिपापहरांविधायजगतांतंजानकीशंभते ।।१।। विश्वोद्भव-स्थितिलयादिषुहेतुमेकमायाश्रयंविगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।। आनंदसांद्रममलंनिजबोधरूपंसीतापतिंविदितत त्त्वमहंनमामि ।।२।। पठन्तियेनित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्तिचाध्यात्मिकसंज्ञितंशुभम्।। रामायणंसर्वपुराणसंमतं निर्धूतपापाहरिमेवयांतिते ।।३।। अध्यात्मरामायणमेवनित्यंपठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम् ।। गवांसहस्रायुतको टिदानात्फलं लभेद्यः शृणुयात्सनित्यम् ।।४।। पुरारिगिरिसम्भूताश्रीरामार्णवसंगता ।। अध्यात्मरामगंगेयंपुना तिभुवनत्रयम् ।।५।। कैलासाग्रेकदाचिद्रविशतविमलेमन्दिरेरत्नपीठेसंविष्टंध्याननिष्ठंत्रिनयनमभयंसेवितंसि द्धसंघैः । देवीवामांकसंस्थागिरिवरतनयापार्वतीभक्तिनम्राप्राहेदंदेवमीशं सकलमलहरंवाक्यमानंदकन्दम्

॥६॥ पार्वत्युवाच ॥ नमोस्तुतेदेवजगन्निवाससर्वात्मदृकत्वंपरमेश्वरोसि ॥ पृच्छामितत्त्वंपुरुषोत्तमस्यसनातनंत्वंचसनातनोसि ॥७॥

॥अथ रामहृदयगीता॥ जिन चिद्रूप अविनाशी ने देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी का भार उतारने के लिये पृथ्वीतल पर माया से मनुष्यरूप धारण किया और संपूर्ण राक्षसों को मार सब लोकों के पाप हरनेवाली स्थिर कीर्ति को स्थापन करके फिर आदि ब्रह्म में लय हो गये ऐसे जानकीपति रामजी को भजता हूं॥१॥ जो संसार के उत्पन्न पालन और नाश करने में अद्वितीय कारण हैं जो माया के आश्रय, माया से रहित अचिन्य स्वरूप आनन्द घन निर्मल ज्ञान स्वरूप हैं और जिनका स्वरूप विदित है ऐसे सीतापति रामचंद्रजी को नमस्कार है॥२॥ जो कोई संपूर्ण पुराणों में माननीय ऐसी अध्यात्म नामक सुन्दर रामायण को एकाग्र चित्त होकर पढ़ते और सुनते हैं वे पाप से छूटकर विष्णु भगवान् को प्राप्त होते हैं॥३। जो कोई संसार बन्धन से मुक्ति चाहे तो अध्यात्म रामायण का ही नित्य पाठ करे, क्योंकि जो उसे नित्य पढ़ता है वह हजार गुणित दस हजार गुणित करोड़ इतने दानों का फल पाता है॥४॥ श्रीमहादेवजीरूपी पर्वत से प्रकट होकर श्रीरामरूपी समुद्र से मिली ऐसे अध्यात्म रामायणरूपी यह गंगा तीनों भुवनों को पवित्र करती है॥५॥ एक समय कैलास पर्वत के शिखर पर सैंकड़ों सूर्यो के समान प्रकाशमान मन्दिर में रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए ध्यान में मग्न त्रिनेत्र भयरहित सिद्धों के समूहों से सेवित ऐसे महादेवजी से वाम अंग में बैठी हुई सुन्दर पार्वती देवी बड़ी भक्ति से नम्र होकर सब पापों का नाशक और आनन्द का देनेवाला ऐसा यह वचन बोली॥६॥ पार्वती बोली-हे देव; हे जगदाधार! तुम सर्वात्मा ब्रह्म को आत्मरूप से देखनेवाले परमेश्वर हो इसलिये मैं उस पुरुषोत्तम (ब्रह्म) का सनातन कहिये उपाधिरहित स्वरूप पूछना चाहती हूं क्योंकि तुम भी सनातन हो (अतएव कहने को समर्थ हो)॥७॥

गोप्यंयदत्यन्तमनन्यवाच्यंदन्तिभक्तेषुमहानुभावाः ॥ तदप्यहोहं तवदेवभक्ताप्रियोसिमेत्वंवदयत्तुपृष्टम् ॥८॥ ज्ञानं सविज्ञानमथानुभभक्तिवैराग्ययुक्तंचमितंविभास्वत् ॥ जानाम्यंयोषिदपित्वदुक्तंयथातथाब्रूहितरन्तियेन ॥९॥ पृच्छामिचान्यच्चपरंरहस्यंतदेव चाग्रेवदवारिजाक्ष॥ श्रीरामचन्द्रेखिलतत्त्वसारेभक्तिर्दृढानौर्भवति-प्रसिद्धा ॥१०॥ भक्तिः प्रसिद्धाभवमोक्षणायनान्यत्ततः साधनमस्थिकिञ्चित् ॥तथापिहृत्संशयबन्धनंमेविभेत्तु

मर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥११॥ वदान्तिरामंपरमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ॥ भजंतिचाहर्निशम-प्रमत्ताः परंपदंयान्तितथैवसिद्धाः ॥१२॥ वदंतिकेचित्परमोपिरामः स्वाविद्ययांसवृतमात्मसंज्ञम् ॥ जानातिनात्मात्मानमतः परेणसंबोधितोवेदपरात्मत्त्वम् ॥१३॥ यदिस्मजानातिकुतोविलापः सीताकृते-तेनकृतः परेण ॥ जानातिनैवंयदिकेनसेव्यः समोहिसर्वैरपिजीवजातैः ॥१४॥

जो अत्यन्त गुप्त हैं और किसीसे कहने योग्य नहीं उसे भी महात्माजन भक्तों से कहते हैं। हे देव! मैं भी तुम्हारी भक्त हूं और तुम मेरे प्रिय हो इसलिये जो पूछती हूं सो कहिये॥८॥ ऐसा ब्रह्मज्ञान सहित ज्ञान कहिये कि जिससे मनुष्य (पुनर्जन्मादि संसार से) तर जाते हैं (परंतु वह ज्ञान वैराग्य बिना होता नहीं है और वैराग्य भक्ति बिना नहीं होता इसलिये) भक्तिपूर्वक वैराग्य सहित उस ज्ञान को थोड़े से शब्दों में इस प्रकार कहिये कि (सुनते ही) आपका कहा हुआ मैं स्त्री भी समझ जाऊं और हे कमलनेत्र! हे देव! और भी एक दूसरा रहस्य पूछती हूं सो मेरे सामने कहिये सपूर्ण लोकों के सारभूत श्रीरामजी में दृढ भक्तिरूपी नौका (संसारसागर से तरने के लिये) प्रसिद्ध ही है॥९॥१०॥ और संसार से मोक्ष पाने के लिये भक्ति ही प्रसिद्ध है उससे बढकर कोई दूसरा पदार्थ नहीं है तो भी मेरे हृदय के संशयरूपी बन्धन को तुम निर्मल वचनों से तोड़ने के लिये समर्थ हो॥११॥ (आगे पार्वतीजी तीन बातों से अपना संशय प्रकट करती है) रामजी को (ऋषिजन) प्रकृति से परे अद्वितीय सबके आदि कारण मायाकृत (राग द्वेषादि) गुण समूह से रहित कहते हैं और सिद्धजन रात्रिदिन सावधान होकर उनका भजन करते हैं और उसी से परम पद पाते हैं॥१२॥ और कोई कहते हैं कि रामजी माया से रहित तो है परन्तु अपनी माया से ढके हुये अपने ब्रह्मसंज्ञक स्वरूप को नहीं जानते हैं दूसरे बोधित कराने से अपने स्वरूप को जानते हैं॥१३॥ क्योंकि जो स्वयं जानते होते तो ये ब्रह्मरूप होकर सीता के लिये क्यों विलाप करते। और जो यह अपने स्वरूप को स्वयं नहीं जानते हैं तो सब जीवों के समान ही हैं फिर इनकी सेवा कौन करे? (क्योंकि जब सेव्य सेवक एक से हो गये तो रामजी में विशेषता क्या रही? तुल्यता में सेव्य सेवकभाव नहीं हो सकता जो रामजी का पूजन भजन करेगा सो अपने कष्ट दूर करने को करेगा परन्तु जब रामजी स्वयं दुःखी हुए तो औरों का क्या दुःख दूर करेंगे॥१४॥

अत्रोत्तरंकिंविदितंभवद्भिस्तद्ब्रूतमेसंशयभेदिवाक्यम् ।। श्रीमहादेवउवाच ।। धन्यासिभक्तासिपरात्मनस्त्वंय ज्ज्ञातुमिच्छातवरामतत्त्वम् ।।१५।। पुरानकेनाप्यभिचोदितोऽहंवक्तुंरहस्यंपरमंनिगूढम् ।। त्वयाद्यभक्त्यापा रेणीदितोऽहंवक्ष्येनमस्कृत्यघूत्तमंते ।।१६।। रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्दएकः पुरुषोत्तमोहि ।। स्वमाययाकृत्स्नमिदंहिसृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिराश्रितोयः ।।१७।। सर्वान्तरस्थोपिनिगूढआत्मा स्वमाययासृष्ट मिदंविचष्टे ।। जगन्तिनित्यंपरितोभ्रमंतियत्संनिधौचुम्बकलोहवृद्धि ।।१८।। एतन्नजानन्तिविमूढचित्ताः स्वाविद्ययासंवृत्तमानसाये ।। स्वाज्ञानमप्यात्मनिशुद्धबुद्धेस्वारोपयन्तीहनिरस्तमाये ।।१९।। संसारमेवा-नुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुषकर्मयुक्ताः ।। जानन्तिनैवंहृदयेस्थितंवैचामीकरंकण्ठगतं यथाज्ञाः ।।२०।।

आपके पास इसका क्या उत्तर है सो मुझसे कहिये कि जिससे मेरा संशय दूर हो।।१५।। श्रीमहादेवजी बोले-(हे पार्वतीजी!) तुम धन्य हो और परमात्मा की भक्ति हो क्योंकि तुम्हारी इच्छा रामजी का स्वरूप जानने की हुई है। पूर्वकाल में किसीने भी मुझसे इस परम गुप्त रहस्य वर्णन करने के लिये इच्छा नहीं की थी।।१६।। आज तुमने भक्तिपूर्वक प्रेरणा करी इसलिये मैं रामजी को नमस्कार करके तुमसे कहता हूं कि रामजी परमात्मा प्रकृति से परे अनादि आनन्दस्वरूप अद्वितीय और सब जीवोंसे उत्तम है इसमें सन्देह नहीं।।१७।। (यदि यह शंका करो कि जो रामजी) ऐसे हैं तो नररूप क्यों धारण किया तहां कहते हैं कि) अपनी माया से सब जगत् को रचकर आकाश के समान सबके बाहर और भीतर व्याप्त हो रहे हैं और सबके भीतर व्याप्त होने पर भी अत्यन्त गुप्तात्मा हैं अर्थात् दीखते नहीं हैं और अपनी माया से रचित इस संसार को देख रहे हैं।।१८।। और जिनके पास अनेक ब्रह्माण्ड नित्य ऐसे फिरते हैं कि जैसे चुम्बक पत्थर के समीप लोहा अपने आप भ्रमण करता है (भाव जिसके पास होने से महत्तत्व अहंकार बुद्धि और जड़वर्ग भी अपने २ कार्य में लग जाते हैं) परन्तु जिनका अंत: करण शुद्ध नहीं है और अपनी अविद्या से जिनके मन ढक रहे हैं वे इस रामतत्त्व को नहीं जानते हैं।।१९।। इसलिये शुद्ध ज्ञानस्वरूप मायारहित परमात्मा श्रीरामजी में अपना आरोपण करते हैं, और जैसे आप अज्ञ हैं वैसा ही रामजी को जानते हैं सो ऐसे पुरुष पुत्र आदि में सक्त होकर बहुत से (यज्ञादि) कर्म करते हुए भी संसार से ही लगे फिरते हैं अर्थात् बारंबार जन्म मरण पाते हैं।।२०।।

यथाप्रकाशोनतुविद्यतेरवौज्योतिस्स्वभावेपरमेश्वरेतथा ।। विशुद्धविज्ञानघनेरघूत्तमेविद्याकथंस्यात्परतः परात्मनि ।।२१।। यथाहिचाक्ष्णाभ्रमतागृहादिकंविनष्टदृष्टेर्भ्रमतीवदृश्यते ।। तथैवदेहेन्द्रियकर्त्तुरात्माकृतंपरेध्यस्यजनोविमुह्यति ।।२२।। नाहोनरात्रिः सवितुर्यभवेत्प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित् ।। ज्ञानंतथाज्ञानमिदंद्वयेहरौरामेकथंस्थास्यतिशुद्धचिद्घने ।।२३।। तस्मात्परानन्दमयेरघूतमेविज्ञानरूपेहिनविद्यतेतमः ।। अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचनेमायाश्रयत्वान्नहिमोहकारणम् ।।२४।। अथतेकथयिष्यामिरहस्यमपिदुर्लभम् ।। सीतारामरुत्सूनुसंवादंमोक्षसाधनम् ।।२५।। पुरारामायणेरामोरावणंदेवकण्टकम् ।। हत्वारणेरणश्लाघीस-पुत्रबलवाहनम् ।।२६।। सीतयासहसुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांसमन्वितः ।। अयोध्यामगमद्रामोहनुमत्प्रमुखैर्युतः ।।२७।। अभिषिक्तः परिवृतोवशिष्ठद्यैर्महात्मभिः ।। सिंहासनेसमासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः ।।२८।।

और वे अपने हृदय में स्थित श्रीरामजी) को ऐसे नहीं जानते कि जैसे अज्ञजन कंठ में पहिरे हुए सुवर्ण के कंठे को नहीं जानते और जैसे प्रकाशस्वरूप सूर्य में अंधकार नहीं होता वैसे ही विशुद्ध विज्ञानघन अविद्या से परे परमेश्वर परमात्मा में अविद्या कैसे हो सकती है?।।२१।। जिसकी दृष्टि में फर्क है उसको आंख के घुमाने से जैसे घर आदि घूमते हुए दिखाई देते हैं (परन्तु वास्तव में नहीं घूमते) ऐसे ही अज्ञ पुरुष देह इंद्रिय के किये हुए कर्म को शुद्ध आत्मा का किया हुआ मानकर मोह को प्राप्त होता है अर्थात् मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं इत्यादि वृथा मानता है।।२२।। जैसे प्रकाशरूप से कभी अलग न होने के कारण सूर्य की दृष्टि में न दिन है न रात्रि है वैसा ही शुद्ध चिद्घनानंद भगवान् रामजी में ज्ञान और अज्ञान ये दोनों कैसे ठहर सकते हैं।।२३।। इसलिये परम आनन्दमय विज्ञानमय अज्ञान के साक्षी कमलनेत्र रामजी में अज्ञान नहीं हो सकता वे तो स्वयं मायाके आश्रययह वहां मोह का क्या काम है जैसे लोक में माया का आश्रय बाजीगर है उसको उसकी माया नहीं मोह सकती वैसे ही भगवान् को नहीं मोह सकती।।२४।। अब मैं तुमसे सीताराम और हनुमान का संवाद कहूंगा कि जो अत्यंत गुप्त दुर्लभ और मोक्ष का देनेवाला है।।२५।। पहिले रामावतार में देवताओं के शत्रु रणवीर रावण को उसके पुत्र और सेना सहित रण में मारकर।।२६।। सीता सुग्रीव लक्ष्मण और हनुमान् आदि सहित रामजी अयोध्या को लौट आये।।२७।। और वहां करोड़ो सूर्य के समान कांतिमान् रामचंद्रजी सिंहासन पर विराजमान हुए और वसिष्ठ आदि महात्माओं ने जुड़कर उनका राज्याभिषेक किया।।२८।।

दृष्ट्वातदाहनूमन्तंप्राञ्जलिंपुरतः स्थितम् ।। कृतकार्य्यंनिराकांक्षंज्ञानापेक्षंमहामतिः ।।२९।। रामः सीतामुवाचेदंब्रूहितत्त्वंहनूमते ।। निष्कल्मषोयंज्ञानस्यपात्रंनौनित्यभक्तिमान् ।।३०।। तथेतिजानकीप्राहतत्त्वं रामस्यनिश्चितम्। हनूमतेप्रपन्नायसीतालोकविमोहनी ।।३१।। सीतोवाच ।। रामंविद्धिपरंब्रह्मसच्चिदानन्द मद्वयम् ।। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तंसत्तामात्रमगोचरम् ।।३२।। आनन्दंनिर्मलंशांतंनिर्विकारन्निरंजनम् ।। सर्वव्यापिनमात्मानंस्वप्रकाशमकल्मषम् ।।३३।। मांविद्धिमूलप्रकृतिंसर्गस्थित्यंतकारिणीम् ।। तस्यसंनिधिमा त्रेणसुजामीदमतन्द्रिता।।३४।। तत्सान्निध्यान्मयासृष्टंतस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः।। अयोध्यानगरेजन्मरघुवंशेति-निर्मले ।।३५।। विश्वामित्रसहायत्वंमखसंरक्षणंततः ।। अहल्याशापशमनंचापभंगोमहेशितुः ।।३६।। मत्पाणिग्रहणंपश्चाद्भार्गवस्यमदक्षयः ।। अयोध्यानगरेवासोमया द्वादशवार्षिकः ।।३७।।

उस समय मुख्य २ कार्य करनेवाले इच्छारहित ज्ञान की जिनको चाहना है ऐसे बड़े बुद्धिमान् हनुमानजी को हाथ जोड़े सामने देखकर।।२९।। रामजी सीताजी से बोले कि हे जानकी! तुम हनुमान् को तत्त्वज्ञान का उपदेश करो क्योंकि यह पापरहित ज्ञान के पात्र और हमारी तुम्हारी भक्ति में सदा तत्पर हैं।।३०।। श्रीजानकीजी ने कहा "बहुत अच्छा" और संसार को विशेष कर मोहनेवाली सीताजी ने, भक्त हनुमान से रामजी के निश्चित स्वरूप का वर्णन करना आरंभ किया।।३१।। सीताजी बोलें (हे हनुमन्!) तुम रामजी को परब्रह्म सच्चिदानंद द्वैतरहित संपूर्ण (स्थूल सूक्ष्म) उपाधियों से रहित, सत्तामात्र कहिये वस्तुमात्र के व्यवहार चलाने वाले और मन वाणी के विषय के परे।।३२।। आनन्दस्वरूप निर्मल निर्विकार अर्थात् मायाकृत अज्ञानरहित, सर्वव्यापी, स्वयंप्रकाश, पापरहित, परमात्मा जानो।।३३।। और (हे हनुमन्) मुझे उत्पन्न पालन और नाश करनेवाली मूल प्रकृति जानो उन रामजी ने समीप होने से मैं आलस्यरहित होकर इस संसार को रचती हूं।३४।। और उस परमात्मा के समीपमात्र होने से मेरे रचे हुए जगत् को अज्ञानी लोग उसे परमात्मामें आरोपण करते हैं। उसी परमात्माका जन्म अयोध्यानगरी में अत्यंत निर्मल रघुके वंशमें होना।।३५।।विश्वामित्रकी सहायता करना, उनके यज्ञ की रक्षा करना, अहल्या का शाप दूर करना, शिवजी का धनुष भंग करना।।३६।। फिर मेरे साथ विवाह करना, परशुरामजी का गर्व तोड़ना, फिर अयोध्या नगरी में मेरे साथ बारह वर्ष रहना।।३७।।

दण्डकारण्यगमनं विराधवधएवच ॥ मायामारीचमरणंमायासीताहृतिस्तथा ॥३८॥ जटायुषोमोक्षलाभः कबन्धस्य तथैवच ॥ शबर्याः पूजनंपश्चात् सुग्रीवेणसमागमः ॥३९॥ बालिनश्चवधः पश्चात् सीतान्वेषणमेवच ॥ सेतुबन्धश्चजलधौ लंकायाश्च निरोधनम् ॥४०॥ रावणस्यवधोयुद्धे सपुत्रस्यदुरात्मनः ॥ विभीषणेराज्यदानंपुष्पकेणमयासह॥४१॥अयोध्यागमनंपश्चाद्राज्येरामाभिषेचनम् ॥एवमादीनिकर्म्माणिमयैवाचरितान्यपि ॥४२॥ आरोपयंतिरामेस्मिन्निर्विकारे निरात्मनि ॥४३॥ रामोनगच्छतिनतिष्ठतिनानुशोचत्याकाङ्क्षतेत्यजति नोनकरोतिकिञ्चित् ॥ आनन्दमूर्त्तिरचलः परिणामहीनोमायागुणाननुगतोहितथाविभाति ॥४४॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ततोरामः स्वयंप्राहहनुमन्तमुपस्थितम् ॥ शृणुतत्त्वंप्रवक्ष्यामिह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥४५॥ आकाशस्ययथाभेदस्त्रिविधोदृश्यतेमहान् ॥ जलाशयमहाकाशस्तदवच्छिन्नएवहि ॥४६॥ प्रतिबिम्बाख्यमपरंदृश्यतेत्रिविधंनभः ॥ बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यमेकंपूर्णमथापरम् ॥४७॥ आभासस्त्वपरंबिम्बभूतमेवं त्रिधाचितिः ॥ साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेविकारिणि ॥४८॥ साक्षिण्यारोप्यतेभ्रान्त्याजीवत्वञ्चतथाबुधैः ॥ आभासस्तुमृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ॥४९॥ अविच्छिन्नंतुतद्ब्रह्मविच्छेदस्तुविकल्पितः ॥ अविच्छिन्नस्यपूर्णेनएकत्वंप्रतिपाद्यते ॥५०॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्चसाभासस्याहमस्तथा॥ऐक्यज्ञानंयदोत्पन्नं महावाक्येनचात्मनः ॥५१॥ तदाविद्यास्वकार्यैश्चनश्यत्येवनसंशयः ॥ एतद्विज्ञायमद्भक्तोमद्भावायोपपद्यते

फिर दण्डकारण्य में जाना विराध का मारना मायारूपी मारीच का वध करना और माया की सीता का हरण होना।।३८।। जटायु का मोक्षलाभ होना कंबध का शाप से छुटाना शबरी का पूजन ग्रहण करना और फिर सुग्रीव से समागम होना।।३९।। फिर बाली का वध करना सीता को ढुंढवाना समुद्र पर पुल बंधवाना फिर लंका पर चढ़ाई करना।।४०।। फिर युद्ध में दुष्ट रावण को पुत्र सहित मारना विभीषण को राज्य देना फिर पुष्पकविमान में बैठकर मेरे साथ ।।४१।। अयोध्या को आना फिर रामजी का राजगद्दी पर बैठना इत्यादि सब कर्म मेरे किये हैं।।४२।। उनको अज्ञानी जन इन निर्विकार परमात्मा रामजी में आरोपण करते हैं।।४३।। वास्तव में रामजी न चलते हैं न बैठते हैं न शोक करते हैं, न कुछ चाहते हैं न कुछ त्यागते हैं और न कुछ करते हैं वे तो आनन्द की मूर्ति अचल और परिणामरहित

अर्थात् एक रस हैं केवल माया के गुणों के कारण कर्म में प्रवृत्त दीखते हैं।।४४।। श्रीमहादेवजी बोले फिर रामजी सामने खड़े हुए हनुमानजी से स्वयं कहने लगे कि (हे हनुमन्) मैं तुमसे आत्मा अनात्मा और परमात्मा का वर्णन करूंगा तुम सुनो।।४५।। जैसे आकाश के तीन भेद हैं महाकाश घटाकाश और जलाकाश उसी प्रकार चैतन्य तीन प्रकार का है यथा बुद्धिपरिमित चैतन्य प्रतिबिम्बित चैतन्य और शुद्ध चैतन्य। अज्ञानी मनुष्य कर्तृत्व बुद्धि का शुद्ध अपरिमित विकाररहित और सर्व साक्षीचैतन्य पर अध्यारोप करते हैं अर्थात् शुद्ध चैतन्य को कर्तारूप समझते हैं और है वह बुद्धि परिमित चैतन्य का विषय। चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है ऐसा विश्वास मिथ्या है क्योंकि यह विश्वास अज्ञान से उत्पन्न होता है। ब्रह्म परिमाण से रहित है। ब्रह्म की परिमितता कल्पनामात्र है। परिमाणरहित ब्रह्म की और अहंभाव के अंतर्गत प्रतिबिम्वित चैतन्य की एकता का प्रतिपादन तत्त्वमसि आदि वाक्यों से होता है। जिस समय इन दोनों आत्माओं की ऐक्यता का ज्ञान "तत्त्वमसि" वाक्य से उत्पन्न होता है उस समय अविद्या अपनी सब शाखाओं समेत नष्ट हो जाती है इसमें संदेह का लेश भी नहीं है इस तत्त्व को जानकर मेरा भक्त मुझे प्राप्त कर लेता है।।४६ से ५२ तक।।

मद्भक्तिविमुखानां हिशास्त्रगर्तेषुमुह्यताम् ।। नज्ञानंनचमोक्षः स्यात्तेषांजन्मशतैरपि ।।५३।। इदंरहस्यंहृदयंमात्मनोमयैवसाक्षात्कथितं तवानघ ।। मद्भक्तिहीनायशठायनत्वयादातव्यमैन्द्रादपिराज्यतोधिकम् ।।५४।। श्रीमहादेव उवाच ।। एतत्तेभिहितंदेविश्रीरामहृदयंमया ।। अति गुह्यतमंहृद्यंपवित्रंपापशोधनम् ।।५५।। साक्षाद्रामेणकथितंसर्ववेदान्तसंग्रहम् ।। यः पठेत्सततंभक्त्यासमुक्तोनात्रसंशयः ।।५६।। ब्रह्महत्यादिपापानिबहुजन्मार्जितान्यपि ।। नश्यत्येवनसंदेहोरामस्यवचनंयथा ।।५७।। जाति भ्रष्टोतिपापीपरधननिरतोब्रह्महामित्रहन्तास्वर्णस्तेयीकुलघ्नः कलुषशतयुतोयोगिवृन्दापकारी ।। यः संपूज्याभिरामंपठतिचहृदयंरामचन्द्रस्य भक्त्या योगीन्द्रैरप्यलभ्यंपदमिहलभतेसर्वदेवैः सुपूज्यः ।।५८।। इत्युमामहेश्वरसंवादेऽध्यात्मरामायणेश्रीरामहृदयंनामप्रथमः सर्गः ।।१।।

हे हनुमन्! जो पुरुष मेरी भक्ति से विमुख है वे शास्त्ररूपी गढे में भले ही मोह को प्राप्त हों अर्थात् भले ही जन्म भर शास्त्र रटते रहें उनको सौ जन्म में भी न तो ज्ञान होगा और न मोक्ष होगा।।५३।। हे निष्पाप! यह अत्यन्त गुप्त अपना

हृदय अर्थात् रामहृदय मैंने स्वयं तुमसे कहा है। जो पुरुष मेरी भक्तिरहित और शठ हैं उनको इसे नहीं देखना चाहिये क्योंकि यह इन्द्र के राज्य से भी बढकर हैं।।५४।। श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! मैंने यह गुप्त से गुप्त हृदय को प्यारा पवित्र और पापनाशक रामहृदय तुमसे कहा है।।५५।। यह साक्षात् रामजीका कहा हुआ है और सम्पूर्ण वेदान्त का संग्रह है जो कोई इसे सदा भक्ति से पढ़ेगा वह अवश्य मुक्त होगा।।५६।। और इससे अनेक जन्मों के एकत्र हुए जो ब्रह्महत्यादिक पाप हैं सो भी नाश हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं है जैसा कि रामजी का वचन है।।५७।। जो पुरुष जातिभ्रष्ट पापी पराये धन में प्रीतिवाला ब्राह्मण और मित्रों को मारनेवाला सुवर्ण चोर कुलनाशक सैंकड़ों पाप युक्त और योगियों की मंडली के साथ अपकार करनेवाला भी हो परन्तु जो भक्ति से रामजी का पूजन कर रामहृदय का पाठ करता है वह योगियों को भी अलभ्य ऐसे पद को पाता है और सब देवताओं का पूज्य होता है।।५८।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत रामहृदयगीता का भाषानुवाद समाप्त हुआ।।१।।

।। पार्वत्युवाच ।। धन्यास्म्यनुगृहीतास्मिकृतार्थास्मिजगत्प्रभो ।। विच्छिन्नोमेतिसंदेहग्रंथिर्भवदनुग्रहात् ।।१।। त्वन्मुखाद्गलितंरामतत्त्वामृतरसायनम् ।। पिबन्त्यामेमनोदेवनतृप्यतिभवापहम् ।।२।। श्रीरामस्य कथात्वत्तः श्रुतासंक्षेपतो मया ।। इदानींश्रोतुमिच्छामिविस्तरेणस्फुटाक्षरम् ।।३।। श्रीमहादेवउवाच ।। शृणुदेविप्रवक्ष्यामिगुह्याद्गुह्यतरंमहत् ।। अध्यात्मरामचरितंरामेणोक्तंपुरामम् ।।४।। तदद्यकथयिष्यामिशृणुतापत्रयापहम् ।। यच्छ्रुत्वामुच्यतेजन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात् ।। प्राप्नोतिपरमामृद्धिंदीर्घायु पुत्रसन्ततिम्

पार्वतीजी बोली हे जगत् के नाथ! मैं धन्य हूं, मेरे ऊपर आपने बड़ा अनुग्रह किया। मैं कृतार्थ हुई क्योंकि आपकी कृपा से मेरी संदेहरूपी गांठ खुल गई।।१।। हे देव! आपके मुख से चुये हुए संसार के नाशक इस रामतत्त्वामृत रसायन को पीते २ मेरा मन तृप्त नहीं होता।।२।। रामजी की कथा मैंने संक्षेप से सुनी, परन्तु अब विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूं कि जिसमें सब अक्षरार्थ मेरी समझ में आ जाय।।३।। श्रीमहादेवजी बोले हे देवी! सुनो गुप्त से भी अधिक गुप्त और परम श्रेष्ठ अध्यात्म रामचरित्र जो मैंने पहिले रामजी से सुना था।।४।। उसे आज वर्णन करूँगा वह तीनों पापों का नाशक है और जिसके सुनने से जीव अज्ञान से उत्पन्न हुए महाभय से छूट जाता है और बड़ी भारी समृद्धि दीर्घायु और पुत्रादि संपत्ति पाता है।।५।।

।।५।।भूमिर्भारेणमग्नादशवदनमुखाशेषरक्षोगणंतं धृत्वागोरूपमादौदिविजमुनिजनैः साकमब्जासनस्य।।गत्वालोकंरुदन्तीव्यसनमुपगतंब्रह्मणेप्राहसर्वंब्रह्माध्यात्वामुहूर्तंसकलमपिहृदावेदशेषात्मकत्वात् ।।६।। तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्ब्रह्माथदेवैर्वृतोदेव्याचाखिललोकहृत्स्थमजरंसर्वज्ञमीशंहरिम् ।। अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवैर्भक्त्यागद्गदयागिरातिविमलैरानन्दबाष्पैर्वृतः ।।७।। ततः स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः ।। आविरासीद्धरिः प्राच्यांदिशांव्यपनयंस्तमः।।८।। कथंचिद्दृष्टवान्ब्रह्मादुर्दर्शमकृतात्मनाम् ।। इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यंपद्मलोचनम् ।।९।। किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः ।। विभ्राजमानंश्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ।।१०।। स्तुवद्भिः सनकाद्यैश्चपार्षदैः परिवेष्टितम् ।। शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ।।११।। स्वर्णयज्ञोपवीतेनस्वर्णवर्णाम्बरेणच ।। श्रियाभूम्याचसहितंगरुडोपरिसंस्थितम् ।।१२।।हर्षगद्गदयावाचा-स्तोतुंसमुपचक्रमे ।। ब्रह्मोवाच ।। नतोस्मितेपदंदेवप्राणबुद्धीन्द्रियात्मभिः ।।१३।। यच्चन्त्यतेकर्मपाशा-

एक समय पृथ्वी रावण आदि राक्षसगण के भार से पीड़ित होकर गौ का रूप धरे सब देवता और मुनीश्वरों को साथ लेकर रोती हुई ब्रह्म लोक को गई और वहां ब्रह्माजी से अपना सब दुःख कहा तो ब्रह्माजी ने मुहूर्तभर ध्यान धरकर अपने हृदय में सब जान लिया क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं।।६।। फिर ब्रह्माजी, देवताओं सहित पृथ्वी को साथ लेकर क्षीरसमुद्र में गये वहां सब लोकों के हृदय में स्थित अजर और सर्वज्ञ ऐसे विष्णु भगवान् की वेद के सुन्दर मंत्रों से और पुराणों के स्तोत्रों से भक्तिपूर्वक गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे। उस समय उनके नेत्रों में आनंद के निर्मल आंसू भर आये फिर हजार सूर्य के समान प्रकाशमान सब दिशाओं के अंधकार को दूर करते हुए ऐसे भगवान् पूर्व दिशा में उदय हुए।।७–८।। जिन्हों के चित्त वश में नहीं है उनको नहीं दीखने वाले, इंद्रनील मणि के समान प्रकाशमान, मंद मंद मुस्कराते हुए और कमल के समान नेत्रवाले भगवान् को ब्रह्माजी बड़ी कठिनता से देख सके (क्योंकि तेज के कारण भगवान् के ऊपर दृष्टि नहीं ठहरती थी) ।।९।। शिर पर मुकुट धारण किये, कंठ में हार, बाहुओं में बाजूबंद, कानों में कुंडल और हाथों में कड़े आदि आभूषणोंसे प्रकाशमान और छाती पर श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभमणिसे देदीप्यमान हो रहे हैं।।१०।। सनक आदि मुनि और पार्षदगण चारों ओर खड़े हुए स्तुति कर रहे हैं। हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म और कंठ में वनमाला विराजमान है।।११।।

अ०रा०
१७

द्धृदिनित्यंमुमुक्षुभिः ।। माययागुणमय्यात्वंसृजस्यवसिलुम्पसि ।।१४।। जगत्तेननतेलेपआनन्दानुभवात्मनः ।। तथाशुद्धिर्नदुष्टानांदानाध्ययनकर्मभिः ।।१५।। शुद्धात्मतातेयशसि सदाभक्तिमतांयथा ।। अतस्तवांघ्रिर्मे-दृष्टिश्चित्तदोषापनुत्तये ।।१६।। सो योन्तर्हृदयेदृष्टोमुनिभिः सात्वतैर्वृतः ।। ब्रह्माद्यैःस्वार्थसिद्धयर्थमस्माभिः पूर्वसेवितः ।।१७।। अपरोक्षनुभूत्यर्थंज्ञानिभिर्हृदिभावितः ।। तवांघ्रिधूतनिर्माल्यतुलसीमालयाविभो ।।१८।। स्पर्द्धतेवक्षसिपदंलब्ध्वापिश्रीः सपत्निवत् ।। अतस्त्वत्पादभक्तेषुतवभक्तिःश्रियोधिका ।।१९।। भक्तिमेवाभि-वाञ्छंति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ।। अतस्त्वत्पादकमलेभक्तिरेवसदास्तुमे ।।२०।।

सुवर्ण के यज्ञोपवीत और सुवर्ण के ही रंग का पीतांबर धारण किये लक्ष्मी और पृथ्वी सहित गरुड पर स्थित हैं।।१२।। ऐसे भगवान् की ब्रह्माजी ने हर्ष के कारण गद्गद वाणी से स्तुति करना आरंभ किया। ब्रह्माजी बोले–हे देव! मैं तुम्हारे चरणमकमलों को प्रणाम करता हूं कि जिनका स्मरण मुमुक्षुजन प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और आत्मा से उत्पन्न कर्मरूपी पाश के दूर करने के लिये नित्य अपने हृदय में करते हैं। तुम अपनी गुणमयी माया से संसार को उत्पन्न पालन और नाश करते हो परंतु अपने आनन्द स्वरूप की महिमा के कारण उसमें लिप्त नहीं होते। दुष्टों की दान, अध्ययन आदि कर्मों से ऐसी शुद्धि नहीं होती कि जैसी भक्तिमान् पुरुषों के अंतःकरण की शुद्धि सदा तुम्हारे यश गान करने से होती है।।१६।। इसलिये मैंने अपने चित के दोष दूर करने के लिये तुम्हारे उन चरणारविन्दों का दर्शन किया कि ।।१३–१६।। विष्णुभक्त जिनकी प्रार्थना में लगे रहते हैं और जिनका दर्शन मुनिजन अपने हृदय में करते हैं। हम ब्रह्मा आदि ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिय पहिले भी आपके चरणों का सेवन किया था।।१७।। और ज्ञानियों के जिन चरणों का ध्यान आत्म साक्षात् करने के लिये अपने हृदय में किया है। और हे विभो! लक्ष्मीजी आपके हृदय में स्थान पाकर भी आपके चरणारविन्दो में चढ़ी हुई अत्यंत पवित्र तुलसी की माला से सपत्नी के समान स्पर्धा किया करती हैं अर्थात् वे भी चरणों में रहना चाहती हैं इसलिये जो तुम्हारे चरणों के भक्त हैं उन पर आपकी प्रीति लक्ष्मीजी से भी अधिक है।।१८।।१९।। और सार वस्तु के जाननेवाले तुम्हारे भक्त तुम्हारी भक्ति ही चाहा करते हैं इसलिये तुम्हारे चरणकमलों में मेरी भी भक्ति सदा होय।।२०।।

संसारामयतप्तानांभेषजंभक्तिरेवते ।। इतिब्रुवन्तंब्रह्माणंबभाषे भगवान् हरिः ।।२१।। किंकरोमीतितंवेधाः प्रत्युवाचातिहर्षितः ।। भगवन्रावणोनामपौलस्त्यतनयोमहान् ।।२२।। राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्प्पितः ।। त्रिलोकींलोकपालांश्चबाधतेलोकबाधकः ।।२३।। मानुषेणमृतिस्तस्यमयाकल्याणकल्पिता ।। अतस्त्वंमानुषोभूत्वा जहिदेवरिपुंविभो ।।२४।। श्रीभगवानुवाच ।। कश्यपस्यवरोदत्तस्तपसातोषितेनमे ।। याचितःपुत्रभावायतथेगीकृतंमया ।।२५।। सइदानींदशरथोभूत्वातिष्ठतिभूतले ।। तस्याहंपुत्रतामेत्यकौशल्यायांशुभे दिने ।।२६।। चतुर्द्धात्मानमेवाहंसृजामीतरयोः पृथक् ।। योगमायापिसीतेतिजनकस्यगृहेतदा ।।२७।। उत्पत्स्यतेतया सार्द्धंसर्वंसंपादयाम्यहम् ।। इत्युक्त्वान्तर्दधेविष्णुर्ब्रह्मादेवानथाऽब्रवीत् ।।२८।। ब्रह्मोवाच ।। विष्णुर्मानुषरूपेणभविष्यतिरघोः कुले ।। यूयंहसृजध्वं सर्वेपिवानरेष्वंशसंभवान् ।।२९।। विष्णोः सहायंकुरुतयावत्स्थास्यति भूतले ।। इतिदेवान्समादिश्यसमाश्वस्यचमेदिनीम् ।।३०।।

क्योंकि संसार रूपी रोग से तप्त मनुष्यों की औषधि तुम्हारी भक्ति ही है जब ब्रह्माजी ने यह स्तुति करी तब विष्णु भगवान् बोले कि।।२१।। हे ब्रह्माजी! मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं (सो कहिये)। ब्रह्माजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् से कहा कि हे भगवन्! विश्रवा का बड़ा पुत्र रावण नाम।।२२।। राक्षसों का स्वामी मेरे दिये हुए वर पाकर बड़ा अभिमानी हो गया है वह संसार का बाधक तीनों लोकों के और इन्द्र आदि लोकपालों को दुःख देता है।।२३।। हे प्रभो! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्य के द्वारा रची है इसलिये हे भगवन्! तुम मनुष्यावतार लेकर उस देवताओं के शत्रु रावण का नाश करो।।२४।। भगवान् बोले–हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में कश्यपजी ने तप करके मुझे प्रसन्न किया था और जब मैंने उनसे वर मांगने को कहा तब उन्होंने यह वर मांगा "आप ही मेरे पुत्र हो" सो यह मैंने भी अंगीकार कर लिया था।।२५।। सो वे ही कश्यप अब पृथ्वी तल पर दशरथ नाम से प्रसिद्ध हैं, मैं उनकी रानी कौशल्या में और अन्य दो रानियों में किसी शुभ दिन चार प्रकार से अलग अलग पुत्र भाव से अवतार लूंगा और उस समय मेरी योगमाया भी सीता नाम से राजा जनक के घर अवतार लेगी और मैं उसकी सहायता से (पृथ्वी पर) सर्व कार्य सिद्ध करूंगा। यह कहकर विष्णु भगवान् अतंर्धान हो गये। फिर ब्रह्माजी देवताओं से बोले।।२६–२८।। ब्रह्माजी बोले–विष्णु भगवान् मनुष्य रूप से रघुकुल में

जन्म लेंगे सो तुम भी सब वानरों में अपने अपने अंश से पुत्र उत्पन्न करो।।२९।। और जब तक भगवान् पृथ्वी तल पर रहें तब तक उनकी सहायता करो। देवताओं को ऐसा उपदेश देकर और पृथ्वी पर समाधान करके।।३०।।

यूयंसृजध्वं सर्वेपिवानरेष्वंशसंभवान् ।।२९।। विष्णोःसहायंकुरुतयावत्स्थास्यति भूतले ।। इतिदेवन्समादिश्यसमाश्वस्यचमेदिनीम् ।।३०।। ययौब्रह्मा स्वभवनंविज्वरः सुखमास्थितः ।।३१।।देवाश्चसर्वेहरिरूपधारिणः स्थितास्सहायर्थमितस्ततोहरेः ।। महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम् ।।३२।। इत्यध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकाण्डेद्वितीयः सर्गः ।।२।। महादेव उवाच ।। अथराजादशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः ।। अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषुविश्रुतः ।।१।। सोऽनपत्यत्वदुःखेनपीडितो गुरुमेकदा ।। वशिष्ठंस्वकुलाचार्यमाहूयेदमथाब्रवीत् ।।२।। स्वामिन्पुत्राः कथंमेस्युः सर्वलक्षणलक्षिताः ।। पुत्रहीनस्यमेराज्यंसर्वंदुःखायकल्पते ।।३।। ततोऽब्रवीद्वशिष्ठस्तंभविष्यन्तिसुतास्तव ।। चत्वारः सत्त्वसंपन्ना लोकपालाइवापराः ।।४।। शान्ताभर्तारमानीयऋष्यशृंगंतपोधनम् ।। अस्माभिस्सहितः पुत्रकामेष्टिंशीघ्रमाचर ।।५।। तथेतिमुनिमानीयमन्त्रिभिस्सहितः शुचिः ।। यज्ञकर्म समारेभेमुनिभिर्वीतकल्मषैः ।।६।। श्रद्धया हूयमानेग्नौतप्तांगकनकप्रभः ।। पायसंस्वर्णपात्रस्थंगृहीत्वोवाचहव्यवाट् ।।७।।

ब्रह्माजी निश्चिंत हो सुखपूर्वक अपने लोक को गये।।३१।। और सब देवता वानरों का रूप धारण करके भगवान् की सहायता के लिये इधर उधर उत्पन्न हो गये और बड़े बली तथा पर्वत और वृक्षों को ले ले कर युद्ध करनेवाले वे वानर भगवान् ईश्वर के अवतार की राह देखने लगे (कि कब जन्म हो और हम सहायता करें) ।।३२।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत अध्यात्मरामायण के द्वितीयसर्ग का भाषानुवाद समाप्त हुआ।।५।। श्रीमहादेवजी बोले–राजा दशरथ अयोध्यानगरी का राजा लक्ष्मीवान् सत्यभाषी वीर और सब लोकों में विख्यात हुआ।।१।। उनसे संतान के दुःख से दुःखी होकर एक दिन अपने कुल के आचार्य गुरु वसिष्ठजी को बुलाकर कहा कि ।।२।। हे स्वामी! मेरे सर्व लक्षणयुक्त पुत्र कैसे हों पुत्रहीन होने से मेरा सब राज्य दुःखरूप हो रहा है।।३।। यह सुन वसिष्ठजी ने कहा कि तुम्हारे चार पुत्र दूसरे लोकपालों के समान पराक्रमी होंगे।।४।। परंतु तुम अपनी शांतानाम कन्या के पति बड़े तपस्वी ऋष्यश्रृंग को बुलाकर

हम सब ऋषियों समेत पुत्र कामना के लिये 'पुत्र कामेष्टि' यज्ञ करो।।५।। यह सुन राजा ने मंत्रियों के द्वारा शृंग ऋषि को बुलाकर और पवित्र होकर निष्पाप वसिष्ठ आदि मुनियों सहित यज्ञकर्म आरंभ किया।।६।। और जब ऋषियों ने श्रद्धापूर्वक अग्नि में हवन किया तब तपाये हुए सुवर्ण के समान कांतिमान् अग्निदेव सुवर्ण के पात्र में खीर लिये (उस अग्निकुंड में से) निकलकर बोले कि।।७।।

गृहाण पायसंदिव्यंपुत्रीयंदेवनिर्मितम् ।। लप्स्यसेपरमात्मानं पुत्रत्वे न च संशयः ।।८।। इत्युक्त्वापायसंदत्त्वाराज्ञेसोन्तर्दधेनलः ।। ववन्देमुनिशार्दूलोराजालब्धमनोरथः ।।९।। वशिष्ठऋष्यश्रृंगाभ्यामनुज्ञातोददौहविः ।। कौशल्यायै सकैकेय्यअर्द्धमर्द्धंप्रयत्नतः ।।१०।। ततः सुमित्रासंप्राप्तासंगृध्नु पौत्रिकंचरुम् ।। कौशल्यातुस्वभागार्द्धददौतस्यैमुदान्विता ।।११।। कैकेयीचस्वभागार्द्धंददौप्रीतिसमन्विता ।। उपभुज्यचरुंसर्वाःस्त्रियोगर्भसमन्वितः ।।१२।। देवताइवरेजुस्ताः स्वभासाराजमन्दिरे दशमे मासिकौशल्यासुषुवेपुत्रमद्‌भुतम् ।।१३।। मधुमासेसितेपक्षेनवम्यांकर्कटे शुभे ।। पुनर्वस्वर्क्षसहितेउच्चस्थेग्रहपंचके ।।१४।। मेषपूषाणिसंप्राप्तेपुष्पवृष्टिसमाकुले ।। आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मासनातनः ।।१५।। नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः ।। जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः ।।१६।। सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटीकुञ्चितालकः ।। शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ।।१७।।

हे राजन्! यह देवनिर्मित पुत्रों का देनेवाला दिव्य पायस लो। इसके प्रभाव से परमात्मा के समान पुत्र पाओगे, इसमें सन्देह नहीं है।।८।। यह कहकर और राजाओं को पायस देकर वह अग्निदेव अंतर्धान हो गये और राजा ने मनोरथ पाकर मुनिश्रेष्ठ (ऋष्यश्रृंग और वसिष्ठजी) को प्रणाम किया।।९।। फिर राजा ने वसिष्ठ श्रृंगी ऋषि की आज्ञा से वह हवि आधा कौशल्या को और आधा कैकेयी को यत्पूर्वक बाँट दिया।।१०।। फिर सुमित्रा पुत्रकामना से आई सौ कौसल्या ने प्रसन्न होकर अपने में से पुत्र का देनेवाला आधा पायस उसे दिया।।११।। फिर कैकई ने भी प्रसन्न होकर अपने भाग में से उसे आधा दिया। और उस पायस को खाकर सब रानियां गर्भवती हुईं।।१२।। और वे राजमहल में अपनी कांति से देवताओं के समान शोभायमान हुईं।।१३।। फिर दशवें महीने कौसल्या ने बड़े अनोखे पुत्र को जना।।१४।। (आगे श्रीरामजी के जन्म का समय कहते हैं) चैत्रमास शुक्लपक्ष

नवमी के दिन, पुनर्वसु नक्षत्र, कर्कलग्न, शुभ मुहूर्त में कि जिस समय पांचग्रह उच्च के थे और मेष राशि पर उच्च के सूर्य थे, देवताओं ने फूलों की वर्षा आरंभ की उस समय जगत् के स्वामी परमात्मा सनातन रामजी ने जन्म लिया।।१५।। आगे कौसल्या के अनोखे पुत्र का वर्णन करते हैं। नीले कमलदल के समान श्यामवर्ण पीतांबर धारण किये चतुर्भुज रक्तकमल समान विशाल नेत्रवाले कानों में झलकते कुंडलों से शोभायमान।।१६।। हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान मुकुट धारण किये घूंघरवाले बालों से शोभित शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला धारण किये।।१७।।

अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचितस्मितचन्द्रिकः ।। करुणारससंपूर्णविशालेलात्पललोचनः ।।१८।। श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः।।दृष्ट्वातंपरमात्मानंकौसल्याविस्मयाकुला ।।१९।। हर्षाश्रुपूर्णनयनानत्वाप्रांजलिरब्रवीत् ।। कौशल्योवाच ।। देवदेवनमस्तेस्तुशंखचक्रगदाधर ।।२०।। परमात्माच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ।। वदन्त्यगोचरंवाचांबुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ।।२१।। त्वांवेदवादिनः सत्तामात्रंज्ञानैकविग्रहम् ।। त्वमेवमायया-विश्वंसृजस्यवसिहंसिच ।।२२।। सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्यएवामलः सदा।।करोषीवनकर्त्तात्वंगच्छसीवनगच्छसि ।।२३।। नश्रृणोषिश्रृणोषीवपश्यसीवनपश्यसि ।। अप्राणो ह्यमनाः शुद्धइत्यादिश्रुतिरब्रवीत् ।।२४।। समः सर्वेषुभूतेषुतिष्ठन्नपिनलक्ष्यसे ।। अज्ञानध्वान्तचित्तानांव्यक्तएवसुमेधसाम् ।।२५।। जठरेतवदृश्यंतेब्रह्माण्डाः परमाणवः ।। त्वंममदोरसंभूतइतिलोकान्विडम्बसे ।।२६।। भक्तेस्तुपारवश्यंतेदृष्टंमेद्यरघूत्तम ।।संसारसागरे-मग्नापतिपुत्रधनादिषु ।।२७।।

और हृदय में स्थित अनुग्रहरूपी चंद्रमा का ज्ञान करनेवाली चांदनी के समान जिनकी मंद मुस्कान है, करुणारस से पूर्ण और कमलसमान जिनके विशाल नेत्र हैं।।१८।। छाती में श्रीवत्स का चिह्न है और गले में हार बाहों में बाजूबंद और चरणों में झांझन आदि आभूषण पहिरे ऐसे उन परमात्मा के दर्शन कर कौशल्या बड़े आश्चर्य में हुई।।१९।। और हर्ष के कारण आंसुओं से पूर्णनेत्र हो हाथ जोड़ स्तुति करने लगी। कौसल्या बोली–हे देवों के देव! हे शंक चक्र गदा के धारण करनेवाले।।२०।। तुम परमात्मा हो, नाशरहित और अनंत हो तुम सब में पूर्ण और पुरुषोत्तम हो। तुम वाणी

बुद्धि आदि इन्द्रियों से परे हो। इसलिये वेदांती लोग तुम्हें सत्तामान और सत्यज्ञान स्वरूप कहते हैं। तुम ही माया से विश्व का पालन रक्षा और संहार करनेवाले हो॥२१॥२२॥ तुम सत्त्वादिगुणयुक्त, गुणों से परे और सदा निर्मल अर्थात् मायागुणरहित हो। तुम कर्ता के समान समझ पड़ते हो परंतु कर्ता नहीं हो, तुम चलते हुए प्रतीत होते हो परंतु चलते नहीं हो॥२३॥ तुम सुनते हुए प्रतीत होते हो परंतु देखते नहीं हो। तुम प्राण और मन आदि उपाधिरहित शुद्ध ब्रह्म हो ऐसे वेद कहते हैं॥२४॥ तुम सब प्राणियों में समानरूप से स्थित हो परंतु जिनका अज्ञानरूपी अंधकारयुक्त चित्त हैं उनको लक्षित नहीं होते और निर्मल बुद्धिवालों को प्रतीत होते हो॥२५॥ हे भगवन्! तुम्हारे उदर में अनेक ब्रह्माण्ड परिमाणु के सदृश दिखाई पड़ते हैं और तुम मेरे उदर से उत्पन्न हुए इसलिये लोक हँसते हैं अर्थात् उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है॥२६॥ और हे रघूत्तम! मैंने आज देख लिया कि तुम भक्ति के वश हो। मैं संसार सागर में डूबी हुई, तुम्हारी माया से पति पुत्र धनादिकों में॥२७॥

भ्रमामिमाययातेद्यपादंमूलमुपागता ॥ देवत्वद्रूपमेतन्मे सदातिष्ठतुमानसे ॥२८॥ आवृणोतुनमां मायातवविश्वविमोहिनी ॥ उपसंहरविश्वात्मन्नेतद्रूपमलौकिकम् ॥२९॥ दर्शयस्वमहानंदबालभावंसु-कोमलम् ॥ ललितालिङ्गनालपैस्तरिष्यन्त्युत्कटंतमः ॥३०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यद्यदिष्टंतवास्त्यम्बतत्त द्भवतुनान्यथा ॥ अहंतुब्रह्मणापूर्वंभूमेर्भारापनुत्तये ॥३१॥ प्रार्थितोरावणहन्तुंमानुषत्वमुपागतः ॥ त्वयादशरथेनाहंतपसाराधितः पुरा ॥३२॥ मत्पुत्रत्वाभिकांक्षिण्यातथाकृतमनिन्दिते ॥ रूपमेतत्त्वयादृष्टंप्रा-क्तनतपसःफलम् ॥३३॥ मद्दर्शनंविमोक्षायकल्पतेह्यन्यदुर्लभम् ॥ संवादमावयोर्यस्तुपठेद्वाशृणुयादपि ॥३४॥ सयातिममसारूप्यं मरणेमत्स्मृतिंलभेत् ॥ इत्युक्त्वामातरंरामोबालोभूत्वारुरोदह ॥३५॥

भ्रमती हुई भी आज तुम्हारे चरणारविंदों में प्राप्त हुई। हे देव! तुम्हारा यह रूप सदा मेरे हृदय में निवास करे॥२८॥ संसार को मोहनेवाली तुम्हारी माया मुझे कभी न व्यापे और हे विश्वात्मन्! तुम अब अपने इस अलौकिक रूप को छिपा लो॥२९॥ और बड़ा आनंद देनेवाला अत्यंत कोमल अपने बाल स्वरूप का दर्शन दो कि जिस स्वरूप का सुंदर आलिंगन और जिससे मीठी मीठी बातें करके भक्तजन भयंकर (संसाररूपी) अंधकार से पार हो जायँगे॥३०। श्रीभगवान

अ०रा०
२३

बोले–हे मात! जिस जिस बात की तुमने इच्छा की है वह सब वैसे ही होगी कोई बात और तरह न होगी। पहिले ब्रह्माजी ने भूमि का भार उतारने के लिये मुझसे प्रार्थना की थी सो मैंने रावण के मारने के लिय मनुष्य का अवतार लिया है और पूर्व जन्म में तुमने और राजा दशरथ ने भी अपने यहां मेरे समान पुत्र होने के लिये बड़ा भारी तप किया था (और मैंने वरदान दिया था) इसीलिये हे धर्मपत्नी! मैंने ऐसा किया है और तुमने जो इस रूप के दर्शन किये हैं सो तुम्हारे पहिले जन्म का फल है।।३१–३३।। और मेरे दर्शन मोक्ष के लिये ही हैं। इसीलिये औरों को दुर्लभ हैं, जो कोई मेरे तुम्हारे संवाद को पढ़ेगा वा सुनेगा।।३४।। वह मेरा सारूप्य पद पावेगा और मरण समय उसे मेरा स्मरण होगा। रामजी माता से यह वचन कहकर बालक की भांति रोने लगे।।३५।।

बालत्वेपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोतिसुन्दरः ।। बालारूणप्रतीकाशोलालिताखिललोकपः ।।३६।। अथराजा दशरथः श्रुत्वापुत्रोद्भवोत्सवम् ।। आनन्दार्णवमग्नोसावाययौगुणासह ।।३७।।रामराजीवपत्राक्षंदृष्ट्वाहर्षाश्रु-संप्लुतः ।। गुरुणाजातकर्माणिकर्तव्यानिचकारसः ।।३८।। कैकेयीचाथभरतमसूतकमलेक्षणा ।। सुमित्रायां-यमौजातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ ।।३९।। तदाग्रामसहस्राणिब्राह्मणेभ्योमुदाददौ ।। सुवर्णानिचरत्ननिवासांसि-सुरभीः शुभाः ।।४०।। यस्मिन्रमन्तेमुनयोविद्ययाज्ञानविप्लवे ।। तंगुरुः प्राहरामेतिरमणाद्रामइत्यपि ।।४१।। भरणाद्भरतोनाम लक्ष्मणंलक्षणान्वितम् ।। शत्रुघ्नंशत्रुहन्तारमेवंगुरभाषत ।।४२।। लक्ष्मणोराम-चन्द्रेण शत्रुघ्नोभरतेनच ।। द्वन्द्वीभूयचरंतौतौपायसांशानुसारतः ।।४३।। रामस्तुलक्ष्मणेसाथविचरन्बाल-लीलया ।। रमयामासपितरौचेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ।।४४।।

बालकपन में राजजी की शोभा इन्द्रनील मणि के समान थी। उनके बड़े बड़े नेत्र थे। वे बाल सूर्य के समान प्रकाशमान और संपूर्ण लोकपालों को संतुष्ट करनेवाले बड़े सुन्दर हुए।।३६।। इसके अनंतर राजा दशरथ पुत्र जन्मोत्सव को सुनकर आनंद के समुद्र में मग्न हो गये और गुरु वसिष्ठजी के साथ वहां आये।।३७।। कमल पत्र के समान नेत्रवाले रामजी को देखकर आनंद के कारण उनके नेत्रों में अश्रुपात होने लगा और तुरंत गुरु की आज्ञानुसार (नांदीमुख श्राद्ध) जातकर्म आदि करने योग्य कर्म किये।।३८।। उसके पीछे कमल नयनी कैकई ने भरतजीको जना और पूर्ण चंद्रमा के

समान मुखवाले दो पुत्र सुमित्राजी के हुए।।३९।। उस समय राजा ने हजार गांव बहुत सा सुवर्ण, अनेक रत्न वस्त्र और बहुत सी सुन्दर गौ आदि का दान ब्राह्मणों को दिया।।४०।। और तत्त्व ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश करने के लिये, जिसमें योगी रमण करें और जो भक्तों में रमण करे उसे राम कहते हैं इसलिये उस कौशल्या के पुत्र का नाम गुरुजी ने 'राम' रखा ।।४१।। और जो सबका पालन पोषण करे उसे भरत कहते हैं इसलिये कैकई के पुत्र का नाम 'भरत' रखा और सुन्दर लक्ष्मण होने से सुमित्रा के एक पुत्र का नाम 'लक्ष्मण' रखा और शत्रु नाशक होने से सुमित्रा के दूसरे पुत्र का नाम गुरु ने 'शत्रुघ्न' रखा।।४२।। और रामजी के साथ लक्ष्मण और भरजी के साथ शत्रुघ्न (अर्थात् कौशल्या ने जो सुमित्रा को अपने में आधा भाग दिया था इसलिये रामजी सेवक लक्ष्मण हुए और कैकई ने जो भाग सुमित्रा को दिया था सो शत्रुघ्न भरतजी के सेवक हुए) यों दो दो पुत्र आपस में मिलकर फिरने डोलने लगे।।४३।। रामजी, लक्ष्णमजी को साथ लिये बाललीला करते विचरने लगे और सुंदर तोतली बोली और बाललीलाओं से अपने माता पिता का जी बहलाने लगे।।४४।।

भालेस्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् ।। कण्ठेरत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखाञ्चितम् ।।४५।। कर्णयोस्स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसटालुकम् ।। सिञ्जानमणिमञ्जीरकटिसूत्रांगदैर्वृतम् ।।४६।स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम् ।। अंगणेरिंगमाणंततर्णकाननुसर्वतः ।।४७।। दृष्ट्वादशरथोराजाकौसल्यामुमुदेतदा ।। भोक्ष्यमाणोदशरथोराममेहीतिचासकृत् ।।४८।। आह्वयत्यतिहार्द्देनप्रेम्णानायातिलीलया ।। आनयेतिचकौशल्यामहासासास्मितासुतम् ।।४९।। धावत्यपि नशक्नोतिस्प्रष्टुंयोगिमनोगतिम् ।। प्रहसन्स्वयमायातिकर्द्दमांकितपाणिना ।।५०।। किंचिद्गृहीत्वाकवलंपुनरेवपलायते ।। कौशल्याजननीतस्यमासिमासिप्रकुर्वती ।।५१।। वायनानिविचित्राणिसमलंकृत्यराघवम् ।। अपूपान्मोदकान्कृत्वाकर्णशष्कुलिकास्तथा ।।५२।। कर्णपूराश्चविविधावर्षवृद्धौचवायनम् ।। गृहकृत्यंतयात्यक्तंतस्य चापल्यकारणात् ।।५३।। एकदारघुनाथोसौगतोमातरमन्तिके ।। भोजनंदेहिमेमातर्नश्रुतंकार्यसक्तया ।।५४।।

माथे पर मोती गुथे हुए सुवर्ण के पीपल के पत्ते लटकाये और जिसमें रत्नमणियों के बीच शेर के नख गुथ रहे हैं, ऐसे

अ०रा० २५

कंठले को कंठ में धारण किये हैं।।४५।। और कानों में अर्जुनवृक्ष के फल के समान रत्नजटित सुवर्ण के झुमके, पैरों में मणिजटित बजने झांझन कमर में मणिजटित वजनी करधनी और बाहुओं में मणिजटिंत बाजूबंद पहिरे हैं।।४६।। मंद मंद मुस्कुराते हुए जिनके मुख में छोटे छोटे दांत चमक रहे हैं ऐसे इन्द्रनीलमणि के समान प्रभावाले रामजी आंगन में चारों ओर बछड़ों के पीछ पीचे बाललीला करते फिरते हैं।।४७।। रामजी को देखकर उस समय राजा दशरथ और कौशल्या बड़े प्रसन्न होते और जब दशरथी भोजन करने बैठते तो रामजी को हार्दिक प्रेम से बुलाते कि 'यहां आओ' परंतु जब वे खेल छोड़कर नहीं आते तौ कौशल्या से लाने के लिए कहते तो वह मुस्कुराती हुई रामजी के पीछे दौड़ती जिनको योगियों के मन की गति भी स्पर्श नहीं कर सकती ऐसे रामजी जब पकड़ाई नहीं देते तब (तब माता को अधिक कष्ट न हो इसलिये) वे स्वयं आ जाते हैं और कीच लगे हाथों से।।४८।।४९।।५०।(दशरथजीके थाल में से) थोड़ा सा ग्रास लेकर फिर भाग जाते हैं। रामजी की माता कौशल्या महीने के महीने तरह तरह के पकवान बनाती और रामजी को उबटना लगाकर स्नान कराकर वस्त्र भूषण से उनका श्रृंगार करती। और जन्मतिथि के दिन पुआ लड्डू पूरी कचौरी खुरमे इत्यादि अनेक प्रकार के पकवान करके ब्राह्मणों को भोजन कराती और स्त्रियों में बायना बांट गीत नृत्य आदि कराती। बहुधा कौशल्या को रामजी की चपलता के कारण घर के काम की भी सुध नहीं रहती। एक बार रामजी माता के पास गये और कहने लगे कि हे मय्या! मुझे कलेवा दे परंतु कौशल्या घर के काम में जुटी हुई थी इस कारण सुन न सकी।।५१–५४।।

बा०का० सर्ग ३

ततःक्रोधेनभाण्डानिलगुड़े नाहनत्तदा ।। शिक्यस्थंपातयामासगव्यंचनवनीतकम् ।।५५।। लक्ष्मणायददौरामो भरतायययथाक्रमम् ।। शत्रुघ्नायददौ पश्चाद्दधिदुग्धंतथैवच ।।५६।। सूदेनकथितंमात्रेहास्यंकृत्वाप्रधावता ।। आगतांतांविलोक्याथततः सर्वैः पलायितम् ।।५७।। कौशल्याधावमानापिप्रस्खलनतीपदेपदे ।। रघुनाथंकरेधृत्वाकिंचिन्नोवाचभामिनी ।।५८।। बालभावंसमाश्रित्यमन्दंमन्दंरुरोदह ।। तेसर्वेलालितामात्रागाढमालिंग्यय त्नतः ।।५९।। एवमानन्दसंदोहजगदानन्दकारकः ।। मायाबालपुर्धृत्वारमयामासदम्पती ।।६०।। अथकालेनतेसर्वेकौमारंप्रतिपेदिरे ।। उपनीतावशिष्ठेनसर्वविद्याविशारदाः ।।६१।। धनुर्वेदे चरिताः

सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ।। बभूवुर्जगतांनाथालीलयानररूपिणः ।।६२।। लक्ष्मणस्तुसदाराममनुगच्छतिसादरम्।। सेव्यसेवकभावेनशत्रुघ्नोभरतंतथा ।।६३।। रामश्चापधरोनित्यंतूणीबाणान्वितः प्रभुः ।। अश्वारूढोवनं यातिमृगयायैसलक्ष्मणः ।।६४।।

तब तो रामजी ने क्रोध में आकर लकड़ी से सब वासन फोड़ छींके पर धरा दधि माखन गिरा दिया और लक्ष्मणजी को दिया फिर थोड़ा भरतजी को दिया।।५५।।५६।। और सबसे पीछे दूध और दही शत्रुघ्नजी को दिया। जब यह हाल रसोइये ने माता से कहा तो वह हँसकर रामजी के पकड़ने को दौड़ी। उसे आती देख सबके सब भाग गये।।५७।। दौड़ती हुई और पग पग पर गिरती पड़ती कौशल्या ने रामजी को हाथ से पकड़ लिया परन्तु (प्रेम के कारण) रानी ने कुछ नहीं कहा।।५८।। उधर रामजी भी बालक की तरह धीरे धीरे रोने लगे तो माता ने उन सबको बड़े प्रेमपूर्वक छाती से लगाकर प्यार किया।।५९।। इस प्रकार आनन्द की राशि जगत् को आनंद देनेवाले रामजी माया से बालशरीर धारण कर माता पिता को अपनी बाललीला से सुख देने लगे।।६०।। इसके अनंतर थोड़े दिन में वे सब सयाने हो गये फिर वसिष्ठजी ने उनका यज्ञोपवीत कराया और वे सब विद्याओं में धुरंधर हो गये।।६१।। बड़ी प्रीति से धनुर्वेद पढ़ने लगे और सब शास्त्रों के अर्थ जानने लगे (सो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं) क्योंकि वे जगत् के स्वामी हैं। नररूप तो केवल लीला दिखाने के लिए धरा है।।६२।। लक्ष्मणजी सदा रामजी की आज्ञा में चलते हैं, वैसे ही स्वामी सेवकभाव शत्रुघ्नजी और भरतजी आपस में वर्तते हैं।।६३।। प्रभु रामजी धनुषबाण धारण किये तरकस लेकर नित्य घोड़े पर सवार हो लक्ष्मणजी को साथ लिये शिकार खेलने वन में जाते हैं।।६४।।

हत्वादुष्टमृगान्सर्वान्पित्रेसवन्यवेदयत् ।। प्रातरुत्थायसुस्नातः पितरावभिवाद्यच।।६५।। पौरकार्याणिसर्वाणिकरोतिविनयान्वितः ।। बन्धुभिस्सहितोनित्यंभुक्त्वामुनिरन्वहम् ।। धर्मशास्त्ररहस्यानिशृणोतिव्याकरोति च ।।६६।। एवं परात्मामनुजावतारोमनुष्यलोकाननसत्यसर्वम् ।। चक्रेविकारीपरिणामहीनोविचार्यमाणेनकरोतिकिंचित् ।।६७।। इत्यध्यात्मरामायणेबालकाण्डेतृतीयस्सर्गः ।।३।। शिव उवाच ।। कदाचित्कौशिकोभ्यागादयोध्यांज्वलनप्रभः।। द्रष्टुंरामंपरात्मानंजातंज्ञात्वास्वमायया।।१।। दृष्ट्वादशरथोराजाप्रत्युत्था-

याचिरेणतु ॥ वशिष्ठेनसमागम्यपूजयित्वायथाविधि ॥२॥ अभिवाद्यमुनिंराजा प्रांजलिर्भक्तिनम्रधीः ॥ कृतार्थोस्मिमुनीन्द्राहंत्वदागमनकारणात् ॥३॥ त्वद्विधायद्गृहंयांतितत्रैवायांतिसंपदः ॥ यदर्थमागतोसित्वं-ब्रूहिसत्यंकरोमि तत् ॥४॥ विश्वामित्रोपितंप्रीतः प्रत्युवाचमहामतिः ॥ अहंपर्वणिसंप्राप्तेदृष्ट्वायष्टुंसुरा-न्पितॄन् ॥५॥ यदारभेतदादैत्याविघ्नंकुर्वंतिनित्यशः ॥ मारीचश्चसुबाहुश्चपरेचानुचरास्तयोः ॥६॥

और सब दुष्ट मृगों को मारक उन सबको पिता के अर्पण कर देते हैं। और प्रातःकाल उठ स्नान ध्यान कर और माता पिता को प्रणाम करके॥६५॥ विनयपूर्वक पुरवासियों के सब कार्य फिरते हैं फिर नित्य मुनियों को भोजन कराकर आप सब भाइयों समेत भोजन करते हैं फिर धर्मशास्त्रके कठिन भावों को (मुनियों से) सुनते और स्वयं व्याख्या करते हैं॥६६॥ इस प्रकार परमात्मा रामजी ने नर रूप धारण कर संसारी मनुष्य के समान सब कार्य करे परंतु वे विकाररहित और अविनाशी हैं और विचार किया जाय तो वे कुछ भी नहीं करते हैं॥६७॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत अध्यात्म रामायण के बालकांडीय तृतीय सर्ग का भाषानुवाद समाप्त हुआ॥॥३॥ श्रीमहादेवजी बोले—एक समय अग्नि के समान तेजस्वी विश्वामित्रजी मुनि अपनी माया से यह जानकर कि परमात्मा रामजी ने अवतार लिया है उनके दर्शन के लिये अयोध्या में गये॥१॥ उनको देखते ही राजा दशरथ तुरंत उठे और वसिष्ठजी सहित विधिपूर्वक उनका अर्घ्यादि से पूजन किया॥२॥ फिर हाथ जोड़कर मुनि को प्रणाम किया और भक्ति से नम्र होकर बोले कि हे मुनिनाथ! आपके आने से मैं कृतार्थ हुआ॥३॥ क्योंकि आपके समान पुरुष जिस घर में आते हैं वहां ही सब संपदा आ जुड़ती हैं। जिस कार्य के लिये आप आये हैं उसे कहिये मैं सच्चों ही उसे पूर्ण करूंगा॥४॥ यह सुन महाबुद्धिमान् विश्वामित्रजी प्रसन्न होकर राजा से बोले कि पूर्णमासी वा अमावस्या का पर्व आता देखकर जब मैं देवता और पितृओं को यज्ञ करना आरंभ करता हूं तब मारीच सुबाहु और उनके अन्य अनुचर दैत्य सदा विघ्न करते हैं॥५॥६॥

अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठरामंप्रयच्छमे ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रातवश्रेयोभविष्यति ॥७॥ वशिष्ठेनसहामंत्र्यदी-यतांयदिरोचते ॥ पप्रच्छगुरुमेकान्तेराजा चिन्तापरायणः ॥८॥ किंकरोमिगुरोरामंत्यक्तुंनोत्सहतेमनः ॥ बहुवर्षसहस्रान्तेकष्टेनोत्पादिताः सुताः ॥९॥ चत्वारोमरतुल्यास्तेतेषांरामोतिवल्लभः ॥ रामस्त्वितोगच्छ-

तिचेन्नजीवामिकथंचन ॥१०॥ प्रत्याख्यातोयदि मुनिःशापं दास्यत्यसंशयः ॥ कथंश्रेयोभवेन्मह्यमसत्यंचापिन स्पृशेत् ॥११॥ वशिष्ठ उवाच ॥ श्रृणुराजन्देवगुह्यंगोपनीयंप्रयत्नतः ॥ रामोनमानुषोजातः परमात्मासनातनः ॥१२॥ भूमेर्भारावतारायब्रह्मणाप्रार्थितः पुरा ॥ सएवजातोभवनेकौशल्यायांतवानघ ॥१३॥ त्वंतुप्रजापतिःपूर्वकश्यपोब्राह्मणः सुतः ॥ कौशल्याचादितिर्देवमातापूर्वंयशस्विनी ॥१४॥ भवन्तौतपउग्रंवैतेपाथेबहुवत्सरम् ॥ अग्राम्यविषयौविष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ ॥१५॥ तदाप्रसन्नोभगवान्वर दोभक्तवत्सलः ॥ वृणीष्व वरमित्युक्तेत्वंमेपुत्रोभवामल ॥१६॥

इसलिये उनके वध के लिये लक्ष्मण भाई के सहित अपने ज्येष्ठ पुत्र रामजी को मुझे दीजिये, तुम्हारा कल्याण होगा॥७॥ (यदि कुछ संदेह हो तो) वसिष्ठजी से संमति कर लीजिये फिर यदि समझ में आवे तो दीजिये। यह सुन राजा चिंता में मग्न हो गये और एकांत में जाकर गुरु से पूछा कि॥८॥ हे गुरुजी! मैं क्या करूं, मेरा मन राम को छोड़ने को नहीं करता। क्योंकि कई हजार वर्ष पीछे बड़े कष्ट से तो पुत्र पाये हैं॥९॥ यों तो चारों देव तुल्य हैं परंतु उनमें से रामजी मुझे बड़े प्यारे हैं, जो रामजी यहां से जायँगे तो मैं किसी भांति नहीं जिऊँगा॥१०॥ और जो विश्वामित्र से मने करता हूं तो वह शाप देंगे इसमें संशय नहीं है इसलिये किस प्रकार मेरा कल्याण हो और मेरा वचन भी झूठा न हो सो कहिये॥११॥ वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! जो देवताओं को भी अत्यंत गोपनीय बात है उसे कहता हूं कि रामजी मनुष्य उत्पन्न नहीं हुए हैं, यह तो सनातन परमात्मा हैं॥१२॥ पहिले जो ब्रह्माजी ने भूमि का भार दूर करने के लिये (भगवान् से) प्रार्थना की थी सो हे धर्मात्मन्! वही तुम्हारे यहां कौशल्या में उत्पन्न हुए॥१३॥ और तुम पहिले जन्म में ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति कश्यप थे और कौशल्या पूर्वजन्म में यशस्विनी देवमाता अदिति थी ॥१४॥ तुम दोनों ने बहुत वर्ष तक तप किया और इंद्रियों के भोग न भोगकर विष्णु भगवान् के ध्यान पूजन में मग्न रहते थे॥१५॥ फिर वरदायक भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हुए और तुमसे बोले कि वर मांगो। तुमने कहा कि हे निरंजन! तुम ही हमारे पुत्र होओ॥१६॥

इतित्वयायाचितोऽसौभगवानूभूतभावनः ॥ तथेत्युक्त्वाद्यपुत्रस्तेजातोरामस्सएवहि ॥१७॥ शेषस्तुलक्ष्मणो-

राजन्राममेवान्वपद्यत ॥ जातौभरतशत्रुघ्नौशंखचक्रेगदाभृतः ॥१८॥ योगमायापिसीतेतिजाताजनकनन्दिनी ॥ विश्वामित्रोपिरामायतां योजयितुमागतः ॥१९॥ एतद्गुह्यतमंराजन्नवक्तव्यंकदाचन ॥ अतः प्रीतेन मनसापूजयित्वाथकौशिकम् ॥२०॥ प्रेषयस्वरमानाथंराघवंसहलक्ष्मणम् ॥ वशिष्ठेनैवमुक्तस्तुराजादशरथस्तदा ॥२१॥ कृतकृत्यमिवात्मानंमेनेप्रमुदितान्तरः ॥ आहूयरामरामेतिलक्ष्मणेतिचसादरम ॥२२॥ आलिंग्यमूर्ध्न्यवघ्रायकौशिकायसमर्पयत् ॥ ततोदिहृष्टो भगवान् विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥२३॥ आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौरामलक्ष्मणौ ॥ गृहीत्वाचापतूणीरबाणखड्गधरौ ययौ ॥२४॥ किञ्चिद्देशमतिक्रम्यराममाहूयभक्तितः ददौबलांचातिबलांविद्ये द्वेदेवनिर्मिते ॥२५॥

जब तुमने प्राणियों से प्रेम करनेवाले भगवान् से यह याचना करी तो उन्होंने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही हो यह कहा। सो वही भगवान् राम के नाम से तुम्हारे पुत्र हुए हैं॥१७॥ और हे राजन्! लक्ष्मण शेषजी के अवतार हैं वह आकर रामजी के सेवक हुए हैं और भरत शत्रु दोनों भाई भगवान् के शंख चक्र के अवतार हैं॥१८॥ और भगवान् की योगमाया जनकनन्दिनी सीता उत्पन्न हुई है सो उनसे सम्बन्ध कराने के लिये विश्वामित्रजी आये हैं॥१९॥ हे राजन्! यह बड़ा गुप्त रहस्य है किसी के आगे कहने योग्य नहीं है। इसलिये प्रसन्न मन से विश्वामित्र की पूजा करके॥२०॥ लक्ष्मणसहित लक्ष्मीपति रामचन्द्र को विश्वामित्र के साथ भेज दीजिये। जब वसिष्ठजी ने यों कहा तब राजा दशरथ ॥२१॥ मन में प्रसन्न होकर अपने को कृतकृत्य मानने लगे और फिर राम लक्ष्मण को बड़े आदर से बुलाकर॥२२॥ उनको हृदय से लगाया और उनका शिर सूंघकर उनको विश्वामित्र को सौंप दिया। फिर तो प्रतापी विश्वामित्र भगवान् बड़े प्रसन्न हुए॥२३॥ फिर जब राम लक्ष्मण धनुष बाण तरकस और खड्ग धारण कर आये तब विश्वामित्र ने उनको आशीर्वाद देकर उनकी सराहना करी और उनको साथ लेकर विदा हुए॥२४॥ और जब कुछ दूर निकल गये तब भक्तिपूर्वक रामजी को बुलाकर उन्हें देवनिर्मित बला और अतिबला दो विद्या दीं॥२५॥

ययोर्ग्रहणमात्रेणक्षुत्क्षामादिनजायते ॥ तत उत्तीर्णगंगान्ते ताटकावनमागमत् ॥२६॥ विश्वामित्रस्तदाप्राह रामंसत्यपराक्रमम् ॥ अत्रास्ति ताटकानामराक्षसीकामरूपिणी ॥२७॥ बाधतेलोकमखिलंजहि

तामविचारयन् ॥ तथेतिधनुरादायसगुणंरघुनंदनः ॥२८॥ टङ्कारमकरोत्तेनशब्देनापूरयद्वनम् ॥ तच्छ्रुत्वासहमानासाटका घोररूपिणी ॥२९॥ क्रोधसंमूर्च्छितारामममभिदुद्रावमेघवत् ॥ तामेकेन शरेणाशुताडयामासवक्षसि ॥३०॥ पपातविपिनेघोरावमन्तीरुधिरंबहु ॥ ततोति सुन्दरीयक्षीसर्वाभरणाभूपितां ॥३१॥ शापात्पिशाचतां प्राप्तामुक्तारामप्रसादतः ॥ नत्वारामंपरिक्रम्यगतारामाजयादिवम् ॥३२॥ ततोतिहृष्टः परिरभ्यरामं मूर्द्धन्यवघ्रायविचिन्त्यकिञ्चित् ॥ सर्वास्त्रजालंसरहस्यमन्त्रंप्रीत्याभिरामायददौ मुनींद्रः ॥३३॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकाण्डेचतुर्थस्सर्गः ॥४॥ शिव उवाच ॥ तत्रकामाश्रमेरम्येकाननेमुनिसंकुले ॥ उषित्वारजनीमेकांप्रभातेप्रस्थिताः शनैः ॥१॥ सिद्धाश्रमंगताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् ॥ विश्वामित्रेणसंदिष्टामुनयस्तन्निवासिनः ॥२॥

जिन दोनों के ग्रहणमात्र से क्षुधा दुर्बलता आदि नहीं होती। फिर गंगाजी उतरकर ताडका वन में आये॥२६॥ वहां विश्वामित्र ने, सत्य पराक्रमी रामजी से कहा कि यहां अनेक रूप धारण करनेवाली ताड़का नाम राक्षसी रहती है॥२७॥ और वह सब लोकों को पीड़ा देती है, इसलिये उसे बिना विचारे मारो। यह सुन रामजी ने कहा कि "बहुत अच्छा" और धनुष की प्रत्यचा चढ़ाकर ऐसा टंकारशब्द किया कि उससे सब वन गूंज उठा। उसे सुनकर, शब्द को न सहनेवाली भयंकर रूपिणी वह ताड़का॥२८॥२९॥ बड़े क्रोध में भरकर मेघ के समान गर्जती हुई, ज्यों ही रामजी की ओर दौड़ी त्योंही उन्होंने तुरन्त एक बाण उसकी छाती में ऐसा मारा कि॥३०॥ जिससे वह भयंकरी वन में मुख से बहुत सा रुधिर वमन करती हुई गिर पड़ी। और गिरते ही संपूर्ण आभूषणों से भूषित परम सुन्दरी यक्षिणी हो गई॥३१॥ और शाप से जो पिशाचयोनि हो गई थी सो रामजी के प्रसाद से उस शाप से मुक्त हो गई और रामजी को नमस्कार और उनकी परिक्रमा कर रामजी की आज्ञा से स्वर्ग को चली गई॥३२॥ इसके पीछे मुनीश्वरने प्रसन्न होकर रामजी को छाती से लगा लिया और उनका शिर सूंघकर और (इनको आगे बहुत सा काम करना है ऐसा) कुछ विचार कर रामजी को मंत्रो सहित सब अस्त्रों का समूह प्रीतिपूर्वक दिया॥३३॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत अध्यात्मरामायणीय बाल० के चतुर्थ सर्ग का भाषाऽनुवाद समाप्त हुआ॥४॥ शिवजी (पार्वतीजी से) बोले फिर

(विश्वामित्र रामलक्ष्मणसहित) बड़े रमणीक कामवन में कि जिसमें बहुंत से मुनि रहते थे एक रात्रि निवास कर प्रातःकाल धीरे धीरे आगे को चले।।१।। और सब सिद्ध चारणों से सेवित सिद्धाश्रम में पहुँचे और विश्वामित्र ने (राम लक्ष्मण को उन आश्रम के निवासी मुनियों के दर्शन कराये।।२।।

पूजांचमहतींक्रूररामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ।। श्रीरामः कौशिकंप्राहमुनेदीक्षांप्रविश्यताम् ।।३।। दर्शयस्वमहाभागकुतस्तौराक्षसाधमौ ।। तथेत्युक्त्वामुनिर्यष्टुमारेभेमुनिभिस्सह ।।४।। मध्याह्नेददृशातेतौराक्षसौकामरूपिणौ ।। मारचिश्च सुबाहुश्चवर्षन्तौरुधिरास्थिनी ।।५।। रामोपिधनुरादायद्वौबाणौसंदधेसुधीः आकर्णान्तंसमाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक् ।।६।। तयोरेकंतुमारीचंभ्रामयञ्छतयोजनम् ।। पातयामासजलधौतदुद्भुतमिवाभवत् ।।७।। द्वितीयोग्निमयोबाणः सुबाहुमजयत्क्षणात् ।। अपरेलक्ष्मणेनाशुहतास्तदनुयायिनः ।।८।। पुष्पौघैराकिरन्देवाराघवंसहलक्ष्मणम् ।। देवदुन्दुभयोनेदुस्तुष्टुवुस्सिद्धचारणा ।।९।। विश्वामित्रस्तुसंपूज्यपूजार्हंरघुनन्दनम् ।। अंकेनिवेश्यचालिंग्य भक्त्याबाष्पाकुलेक्षणः ।।१०।। भोजयित्वासहभ्रात्रारामंपक्वफलादिभिः ।। पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनायदिवसत्रयम् ।।११।।

सब मुनियों ने तुरंत राम लक्ष्मण का बड़ा पूजन सत्कार किया। श्रीरामजी विश्वामित्रजी से बोले कि हे मुने! आप अपना यज्ञ आरंभ करो।।३।। और हे महाराज! मुझे दिखाइये कि वे दोनों नीच राक्षस कहां है? "अच्छा दिखा देंगे" ऐसा कहकर मुनि विश्वामित्र ने मुनियों के सहित यज्ञ करना आरंभ किया।।४।। फिर मध्याह्न के समय अनेक रूप धारण करनेवाले मारीच और सुबाहु दोनों राक्षस रुधिर और हड्डियां बरसाते हुए दिखाई दिये।।५।। उधर बुद्धिमान रामजी ने भी धनुष उठाकर उस पर दो बाण चढ़ाये और कान तक खैंचकर उन दोनों बाणों को अलग २ छोड़ा।।६।। उनमें में एक ने तो मारीच को घुमाकर सो योजन दूर समुद्र में फेंक दिया (परन्तु तो भी उसके प्राण न निकलने से) यह बड़ा आश्चर्य हुआ।।७।। दूसरे अग्निबाण से क्षण भर में सुबाहु का काम तमाम किया और जो रहे सहे उनके साथी थे उनका नाश लक्ष्मणजी ने शीघ्र कर डाला।।८।। उस समय देवताओं ने राम लक्ष्मण पर पुष्पों की वर्षा करी। देवताओं के नगाड़े बजने लगे और सिद्ध चरण रामजी की स्तुति करने लगे।।९।। विश्वामित्र ने पूज्य रघुनाथजी का पूजन सत्कार किया

और गोद में बैठाकर तथा आलिंगन कर भक्ति से आनंद के आंसू बहाने लगे॥१०॥ पके २ फलादि से भाई सहित रामजी को भोजन कराकर पुराणों की मधुर २ कथा कहते हुए तीन दिन बिताये॥११॥

चतुर्थेहनिसंप्राप्तेकौशिकोराममब्रवीत् ॥ रामराममहायज्ञं द्रष्टुंगच्छामहेवयम् ॥१२॥ विदेहराजनगरेजनकस्यसहात्मनः ॥ तत्र माहेश्वरंचापमस्तिन्यस्तंपिनाकिना ॥१३॥ द्रक्ष्यसित्वंमहासत्त्वंपूज्यसेजनकेन च ॥ इत्युक्त्वामुनिभिस्ताभ्यांययौगंगासमीपगम् ॥१४॥ गौतमस्याश्रमंपुण्यंयत्राहल्यास्थितातपः ॥ दिव्यपुष्पफलोपेतंपादपैः परिवेष्टितम् ॥१५॥ मृगपक्षिगणैर्हीनंनानाजंतुविवर्जितम् ॥ दृष्ट्वोवाचमुनिं श्रीमान्रामोराजीवलोचनः ॥१६॥ कस्यैतदाश्रमपदंभातिभास्वच्छुभंमहत् ॥ पत्रपुष्पफलैर्युक्तंजन्तुभिः परिवर्जितम् ॥१७॥ आह्लादयत्तिमे चेतोभगवन्ब्रूहितत्त्वतः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ शृणुरामपुरावृत्तंगौतमो लोकविश्रुतः ॥१८॥ सर्वधर्मभृतांश्रेष्ठस्तपसाराधयन्हरिम् ॥ तस्मैब्रह्माददौकन्यामहल्यांलोकसुन्दरीम् ॥१९॥ ब्रह्मचर्येणसन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणाम् ॥ तयासार्द्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपतांवरः ॥२०॥ शक्रस्तुतांधर्षयितुमंतरंप्रेत्सुरन्वहम् ॥ कदाचिन्मुनिवेषेणनिर्गतेगौतमेगृहात् ॥२१॥

जब चौथा दिन आया तब विश्वामित्रजी बोले कि हे राम! विदेहराज की नगरी में महात्मा जनक के यहां भारी धनुषयज्ञ है उसके देखने को हम तुम चलेंगे॥१२॥ वहां महादेवजी का धनुष धरा है कि जिसको शिवजी ने स्वयं धरोहर की भांति धरा था उस बड़े भारी धनुष को तुम देखोगे और जनक राजा तुम्हारा पूजन सत्कार करेंगे। यह कहकर वे अन्य मुनि और राम लक्ष्मण के साथ गंगा किनारे गये॥१३॥१४॥ वहां गौतम मुनि का पवित्र आश्रम था कि जहां अहल्या खड़ी तप कर रही थी वह वन दिव्य फल पुष्पयुक्त वृक्षों से घिरा हुआ था॥१५॥ उस वन में न तो मृग पक्षी थे और न उसमें कोई प्राणी रहने पाता था। इसे देखकर श्रीमान् कमलनेत्रवाले रामजी ने मुनि विश्वामित्रजी से पूछा कि॥१६॥ यह बड़ा सुन्दर दीप्तमान् किसका आश्रम है कि जिसमें पत्र फल पुष्प लगे हुए हैं और प्राणी कोई नहीं॥१७॥ इसको देख मेरा मन बड़ा प्रसन्न हो रहा है सो हे भगवन्! आप ठीक ठीक बतलाइये। विश्वामित्र बोले—हे राम! पहिले जो वृत्तांत हो गया है उसे सुनो कि संसार में विख्यात एक गौतम ऋषि थे॥१८॥ वे सब धर्म धारियों में श्रेष्ठ थे और

तप करके भगवान् की आराधना करते थे। ब्रह्माजी ने उनको संसारभर में सुन्दरी एक अहल्या नाम कन्या दी।।१९।। क्योंकि ब्रह्माजी उनके ब्रह्मचर्य से बड़े प्रसन्न हुए थे। वह कन्या मुनि की शुश्रूषा करती थी और तपस्वियों में श्रेष्ठ गौतम उसके साथ यहां रहा करते थे।।२०।। इन्द्र (उसकी सुन्दरता से मोहित हो) उसके साथ संभोग करने के लिये नित्य अवसर देखने लगा। एक दिन जब गौतम घर से बाहर गये उस समय वह गौतम मुनि का वेष धरकर आया।।२१।।

धर्षयित्वाथनिरगात्त्वरितंमुनिरप्यगात् ।। दृष्ट्वायान्तंस्वरूपेणमुनिः परमकोपनः ।।२२।। पप्रच्छकस्त्वंदुष्टात्मन्ममरूपधरोऽधमः ।। सत्यं ब्रूहिनचेद्भस्मकरिष्टामिनसंशयः ।।२३।। सोऽब्रवीद्देवराजोहंपाहिमांकामकिंकरम् ।। कृतंजुगुप्सितंकर्ममयाकुत्सितचेतसा ।।२४।। गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशापदिविजाधिपम् ।। योनिलंपटदुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव ।।२५।। शप्त्वातंदेवराजानंप्रविश्य स्वाश्रमंद्रुतम् ।। दृष्ट्वाहल्यांवेपमानां प्राञ्जलिंगौतमोब्रवीत् ।।२६।। दुष्टेत्वंतिष्ठदुर्वृत्तेशिलायामाश्रमेमम ।। निराहारदिवारात्रांतपः परमास्थिता ।।२७।। आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ।। ध्यायंतीराममेकाग्रमनसाहृदिसंस्थितम् ।।२८।। नानाजन्तुविहीनोयमाश्रमोमेभविष्यति ।। एवंवर्षसहस्रेषुह्यनेकेषुगतेषुच ।।२९।। रामोदाशरथिः श्रीमानागमिष्यतिसानुजः ।। यदातवाश्रमशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति ।।३०।। तदैवधूतपापात्वंरामंसंपूज्य भक्तितः ।। परिक्रम्यनमस्कृत्यस्तुत्वाशापाद्विमोक्ष्यसे ।।३१।।

और ज्योंही इन्द्र खोटा कर्म करके उनके आश्रम से बाहर निकला त्योंही गौतमजी भी आ गये और अपने स्वरूप से उसे जाता हुआ देख मुनि बड़े क्रोधित हुए।।२२।। और पूछने लगे कि हे दुष्ट! तू महानीच कौन है? जो मेरा स्वरूप धरकर आया है सो सत्य कह, नहीं तो मैं इसी समय तुझे भस्म कर दूंगा, इसमें संदेह नहीं है।।२३।। वह बोला कि मैं देवराज इन्द्र हूं। काम के वशीभूत होने से मेरे चित्त में बुरी वासना हुई, इसी से मैंने अहल्या के साथ खोटा कर्म किया है सो हे भगवन्! मेरी रक्षा करो।।२४।। गौतमजी ने क्रोध के मारे रक्त नेत्र कर शाप दिया कि हे दुष्टात्मा! हे योनिलंपट! जा तेरे शरीर पर हजार भग हो जायँगे।।२५।। देवराज इन्द्र को शाप देकर शीघ्र अपने आश्रम को गये

अ०रा० ३४

और हाथ जोड़े कांपती हुई अहल्या को देख गौतमजी ने कहा।।२६।। हे दुष्टा! हे दुराचारिणी! तू मेरे आश्रम में रात्रि दिन निराहार घोर तप करती हुई शिला पर खड़ी रहे।।२७।। और धूप पवन वर्षा आदि को सहती हुई एकाग्र चित्त से हृदय में स्थित परमेश्वर रामजी का ध्यान करती रह।।२८।। और यह मेरा आश्रम नाना प्रकार के जीवों से रहित हो जायगा और यों जब कितने ही हजार वर्ष व्यतीत हो जायँगे।।२९।। और दशरथपुत्र श्रीमान् रामचंद्रजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित यहां आवेंगे और वे तेरी आश्रम शिला को अपने चरणों से स्पर्श करेंगे।।३०।। तब ही तू सब पाप से छूट जायगी और भक्तिपूर्वक रामजी की पूजा परिक्रमा और नमस्कार करके शाप से मुक्त हो जायगी।।३१।।

पूर्ववन्ममशुश्रूषांकरिष्यसियथासुखम् ।। इत्युक्त्वागौतमः प्रगाद्धिमवंतंनगोत्तमम् ।।३२।। तदाद्यहल्याभूताना मदृश्यास्वाश्रमेशुभे ।। तवपादरजः स्पर्शकांक्षंतीपापनाशनम् ।।३३।। आस्तेद्यापिरघुश्रेष्ठतपोदुष्करमास्थिता ।। पावयस्वमुनेर्भार्यामहल्यांब्रह्मणस्सुताम् ।।३४।। इत्युक्त्वाराघवंहस्तेगृहीत्वामुनिपुंगवः ।। दर्शयामासचाह ल्यामुग्रेणतपसास्थिताम् ।।३५।। रामः पदाशिलांस्पृष्ट्वातांचापश्यत्तपोधनाम् ।। ननामराघवोऽल्यां रामोहमितिचाब्रवीत् ।।३६।। ततोदृष्ट्वारघुश्रेष्ठंपीतकौशेयवाससम् ।। धनुर्बाणधरंरामंलक्ष्मणेनसमन्वितम् ।।३७।। स्मितवक्त्रंपद्मनेत्रंश्रीवत्सांकितवक्षसम् ।। नीलमाणिक्यसंकाशद्योतयन्तंदिशोदश ।।३८।। दृष्ट्वारा मंरमानाथंहर्षविस्फुरितेक्षणा ।। गौतमस्यवचः श्रुत्वाज्ञात्वानारायणं परम् ।।३९।। संपूज्यविधिवद्राममर्चादि भिरनिन्दिता ।। हर्षाश्रुजलनेत्रान्तादण्डवत्प्रणिपत्यसा ।।४०।। उत्थायचपुनर्दृष्ट्वारामंराजीवलोचनम् ।। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गीगिरागद्गदयैलत ।।४१।। अहल्योवाच ।। अहो कृतार्थास्मिजगन्निवासतेपादाम्बुजेलग्न- रजः कणादहम् ।। स्पृशामि यत्पद्मजशंकरादिभिर्विमृग्यतेरोधितमानसैस्सदा ।।४२।।

बा०का० सर्ग ५

और पूर्व के समान सुखपूर्वक मेरी शूश्रूषा करेगी। यह कहकर गौतमऋषि पर्वतराज हिमालय पर चले गये।।३२।। तब से लेकर अहल्या अपने सुन्दर आश्रम में किसी प्राणी को नहीं दीखने लगी और तुम्हारे चरणों की पापनाशक रज के स्पर्श की आकांक्षा कर रही है।।३३।। और हे राम! अभी तक अहल्या खड़ी खड़ी घोर तप कर रही है। इसलिये ब्रह्मा की पुत्री मुनि की भार्या अहल्या को (अपने चरण स्पर्श से) पवित्र करिये।।३४।। यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने रामजी का

हाथ पकड़कर उग्र तप करती हुई अहल्या को दिखाया।।३५।। रामजी ने अपने चरण से स्पर्श करके उस तपस्विनी को देखा और मेरा नाम राम है, ऐसा हकर रामजी ने अहल्या को प्रणाम किया।।३६।। फिर अहल्या ने रघुश्रेष्ठ रामजी के दर्शन किये। (कैसे हैं रामजी कि) पीताबंर धारण किये, धनुष बाण लिये, लक्ष्मणजी सहित है।।३७।। मंद मुस्कान युक्त जिनका मुखारविंद है, कमल से नेत्र हैं, वक्षस्थल में श्रीवत्सचिह्न है, इन्द्रनीलमणि के समान कांतिमान् दसों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले।।३८।। लक्ष्मीनाथ रामजी के दर्शन कर अहल्या के नेत्र प्रफुल्लित हो गये और गौतमजी का वचन स्मरण कर और भगवान् को प्रकृति से परे जानकर।।३९।। और अर्घ आदि सामग्री से विधिपूर्वक रामजी का पूजन करके प्रसन्न हुई। आनंदाश्रुजल से उसके नेत्र भर गये। ऐसी अहल्या रामजी को दंडवत् प्रणाम करके।।४०।। और फिर उठकर और कमलनयन रामजी के दर्शन करके उसके सब अंग पुलकायमान हो गये और गद्‌गद वाणी से स्तुति करने लगी।।४१।। अहल्या बोली–हे जगदाधार! आपके चरणकमल में लगी हुई रजकण से मैं कृतार्थ हुई जिन चरणकमलों को नित्य समाधि लगानेवाले शिव आदि ढूंढते हैं और नहीं पाते, उन्हें मैं स्पर्श कर रही हूं (मेरे अहोभाग्य हैं)।।४२।।

अहोविचत्रंततवराम चेष्टितंमनुष्यभावेनविमोहयञ्जगत् ।। चलस्यजस्रंचरणादिवर्जितंसम्पूर्णआनन्दभयोति मायिकः ।।४३।। यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्राभागीरथीभवविरञ्चिमुखान्पुनाति ।। साक्षात्सएवममदृग्विष योयदास्तेकिंवर्ण्यतेममपुराकृतभागधेयम् ।।४४।। मर्त्यावतांरेमनुजाकृतिंहरिंरामाभिधेयंरमणीयदेहिनम् ।। धनुर्धरं पद्मविशाललोचनंभजामिनित्यंपरमंपरायणम् ।।४५।। यत्पादपङ्कजरजश्रुतिभिर्विमृग्यंयन्नाभि-पङ्कजभवः कमलासनश्च ।। यन्नामसाररसिकोभगवान्पुरारिस्तंरामचन्द्रमनिशंहृदिभावयामि ।।४६।। यस्यावतारचरितानिविरंचिलोकेगायन्तिनारदमुखाभवपद्मजाद्याः ।। आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमा-वागीश्वरीचतमहंशरणंप्रपद्ये ।।४७।।

हे राम! तुम्हारा कर्म बड़ा आश्चर्य युक्त है, तुम मनुष्य भाव करके जगत् को मोह रहे हो, तुम चरण आदि से रहित हो और सदा चलते फिरते हो और माया करके युक्त हो तो भी संपूर्ण आनन्द मय हो।।४३।। जिन आपके चरणकमलों

की रज से जिनका शरीर पवित्र हुआ है, ऐसी गंगाजी, शिव ब्रह्मा आदि को पवित्र करती हैं सो वे ही आप जब साक्षात् मेरे दृष्टिगोचर हुए तो मेरे पूर्वजन्म के भाग्य का क्या कहना है।।४४।। मनुष्यावतार में नररूप धारण किये जिनका नाम राम हैं, जिनकी सुंदर देह है, धनुष धारण किये हैं जिनके कमल समान विशाल नेत्र हैं, ऐसे अनित्य परम परायण विष्णुरूप आपका मैं भजन करती हूं।।४५।। जिनके चरणारविन्द की रज को वेद ढूंढते हैं और जिनके नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और जिनके नाम के सार के रसिक भगवान् शिवजी हैं, उन रामजी का स्मरण मैं सदा अपने हृदय में करती हूं।।४६।। शिव, ब्रह्मा आदि देवता और नारद आदि ऋषि जिनके अवतारों के चरित्रों को ब्रह्मलोक में गाते हैं और आनंद के आंसुओं से अपने स्तनों के अग्रभाग को सींचती हुई सरस्वती जिनका गान करती हैं, मैं ऐसे रामजी की शरण हूं।।४७।।

सोयंपरात्मापुरुषः पुराण एकः स्वयंज्योतिरनन्तआद्यः ।। मायातनुंलोकविमोहिनीयांधत्तेपरानुग्रहएषरामः ।।४८।। अयंहिविश्वोद्भवसंयमानामेकः स्वमायागुणबिम्बितो यः ।। विरञ्चिविष्णवीश्वरनामभेदान्धत्ते-स्वतन्त्रः परिपूर्णआत्मा ।।४९।। नमोस्तुहेरामतवाङ्घ्रिपंकजत्रियाधृतंवक्षसिललितंप्रियात् ।। आक्रान्तमेकेनजगत्त्रयंपुराध्येयंमुनीन्द्रैरभिमानवर्ज्जितैः ।।५०।। जग तामादिभूतस्त्वंजगत्त्वंजगदाश्रयः ।। सर्वभूतेष्वसंसक्तएकोभाविभवान्परः ।।५१।। ॐकारवाच्यस्त्वंराम वाचामविषयः पुमान् ।। वाच्यवाचकभेदेनभवानेवजगन्मयः ।।५२।। कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः ।। एको विभासिरामत्वंमाययाबहुरूपया ।।५३।। त्वन्मायामोहितधियस्त्वांनजानन्तितत्त्वतः ।। मानुषंत्वाभिमन्यते मायिनंपरमेश्वरम् ।।५४।। आकाशवत्त्वं-सर्वत्रबहिरन्तर्गतोमलः ।। असङ्गोस्यचलोनित्यः शुद्धोः बुद्धः सदाद्वयः ।।५५।।

यही राम परमात्मा अर्थात् माया से परे शुद्ध आत्मा परब्रह्म हैं, यही पुराण पुरुष हैं। और ये ही अद्वितीय स्वयंप्रकाश हैं। इनका अंत नहीं है, सबके आदि कारण हैं। इन रामजी ने संसार को मोहने के लिये और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये माया का शरीर धारण किया है (क्योंकि विना सगुण रूप किसी पर अनुग्रह नहीं हो सकता)।।४८।। यही अद्वितीय स्वतंत्र परिपूर्ण आत्मा, माया के गुणों में प्रतिबिंबित होकर विश्व के उत्पत्ति पालन और नाश करने के लिये

ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन नामों के भेदों को धारण करते हैं।।४९।। हे राम! तुम्हारे चरणकमलों को नमस्कार है कि जिनको लक्ष्मीजी ने प्रेम से अपने हृदय पर धारण कर प्यार किया है और जिस एक ही चरण ने (वामन अवतार में) तीनों लोकों को नापा है और जो चरण अभिमान रहित मुनियों के ध्यान योग्य हैं।।५०।। हे राम! तुम सब जगत् के कारण हो और तुम ही जगद्रूप और जगत् के आधार हो, सब भूतों से अलग और प्रकृति से परे तुम एक ही प्रकाशमान हो।।५१।। हे राम! ओंकाशब्द से जो कहा जाता है और जो पुरुष वाणी से अगोचर है अर्थात् वाणी से जिसका गुण गान नहीं हो सकता, ऐसे आप हो और वाच्य वाचकभेद से अर्थात् लोक और वेद में जो घट पट आदि वाचक शब्द हैं और उनसे जो कहे जानेवाले अर्थ हैं वे सब जगद्रूप तुम ही हो।।५२।। क्योंकि हे राम! कार्य कारण कर्ता और फल साधन इनके भेद से अनेक रूप जो माया है उसके द्वारा तुम अद्वितीय होकर भी बहुत रूप से प्रकाशमान हो।।५३।। जिनकी बुद्धि तुम्हारी माया से मोहित हो रही है वे तुम्हें यथार्थ नहीं जानते हैं। इसी कारण माया के प्रेरणा करनेवाले ऐसे आप परमेश्वर को मनुष्य मानते हैं।।५४।। तुम आकाश के समान सबके बाहर और भीतर व्याप्त हो रहे हो और निर्मल हो और जैसे आकाश कहीं लिप्त नहीं होता, ऐसे ही तुम भी असंग अचल नित्य सदा एकरस शुद्ध ज्ञानस्वरूप और सदा द्वैतभावरहित हो।।५५।।

योषिन्मूढाहमज्ञातेतत्त्वंजानेकथंविभो ।। तस्मात्ते शतशोरामनमस्कुर्य्यामिनन्यधीः ।।५६।। देवमेयत्रकुत्रापि-स्थिताया अपिसर्वदा ।। त्वत्पादाकमलेसक्ताभक्तिरेवसदास्तुमे ।।५७।। नमस्तेपुरुषाध्यक्षनमस्तेभक्तवत्सल ।। नमस्तेस्तु हृषीकेशनारायणनमोस्तुते ।।५८।। भवभयहरमेकंभानुकोटिप्रकाशंकरधृतशरचापंकालमेघाव-भासम् ।। कनकरचिरवस्त्रंरत्नवत्कुण्डलाड्यंकमलविशदनेत्रंसानुजंराममीडे ।।५९।। स्तुत्वैवंपुरुषंसाक्षाद्रा-घवं पुरतःस्थितम् ।। परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाताययौपतिम् ।।६०।। अहल्ययाकृतंस्तोत्रंयः पठेद्भक्तिसंयुतः ।। समुच्यतेखिलैः पापैः परंब्रह्माधिगच्छति ।।६१।। पुत्राद्यर्थपठेद्भक्त्यारामंहृदिनिधायच ।। संवत्सरेणलभतेवंध्याअपिसुपुत्रकम् ।।६२।।सर्वान्कामानवाप्नोतिरामचन्द्रप्रसादतः।।६३।। ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगो पिपुरुषः स्तेयीसुरापोपिवामातृविहिंसकोपिसततंभौकेबद्धातुरः ।। नित्यंस्तोत्रमिदंजपन्रघुपतिं भक्त्या

अ०रा० ३८

हृदिस्थंस्मरन्ध्यायन्मुक्तिमुपैतिकिंपुनरसौस्वाचारयुक्तोनरः ॥६४॥ इत्यध्यात्मरामायणे बालकांडेपञ्चमः सर्गः ॥५॥

हे राम! मूढ़ स्त्रीजाति होने से अज्ञ ऐसी मैं तुम्हें यथार्थ कैसे जान सकी हूं। इसलिये हे राम! एकचित्त होकर आपको सैंकड़ों बार प्रणाम करती हूं॥५६॥ हे देव! सदा जिस जिस योनि मैं जन्म लूं उस उस योनि में ही सदा तुम्हारे चरण कमलों में मेरी भक्ति रहे॥५७॥ हें पुरुषशिरोमणे (ईश्वर)! तुमको प्रणाम है, हे भक्तवत्सल! तुमको प्रणाम है। हे हृषीकेश! हे नारायण! आपको नमस्कार है॥५८॥ संसार के भय को हरनेवाले अद्वितीय, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश हाथ में धनुषबाण लिये, नीलमेघ के समान कांतिमान्, सुवर्ण सदृश (पीतवर्ण) वस्त्र धारण किये रत्नजटित (मकराकृत) कुंडल पहिरे, कमल समान विशाल नेत्रवाले ऐसे लक्ष्मणजी सहित रामजी की स्तुति करती हूं॥५९॥ इस प्रकार अहल्या सामने खड़े हुए पुरुषरूप साक्षात् रामजी की स्तुति परिक्रमा और प्रणाम करते उनकी आज्ञा से तुरंत पति के समीप गई॥६०॥ जो कोई मनुष्य अहल्याकृत स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह सब पापों से छूटकर परब्रह्म को प्राप्त होता है॥६१॥ जो पुत्र की कामना से भक्तिपूर्वक हृदय में रामजी को स्मरण करके पाठ करे तो वर्ष भर में वन्ध्या के भी सुन्दर पुत्र होता है॥६२॥ रामजी की कृपा से और भी सब मनोकामना मिलती हैं॥६३॥ जो पुरुष ब्रह्मघ्नी गुरुस्त्रीगामी चोर शराबी माता भ्राता का हिंसक और सदा विषभोग में तत्पर हो वह भी इस स्तोत्र का नित्य पाठ करे और भक्तिपूर्वक घट घट निवासी रामजी का ध्यान करे तो वह मनुष्य धर्मात्मा होकर मुक्ति पाता है॥६४॥ इति पण्डित रामेश्वर भट्टकृत आध्यात्मरामायणीय बालकांड के पंचम सर्ग का भाषाऽनुवाद समाप्त हुआ॥५॥

बा०का० सर्ग ६

सूत उवाच । विश्वामित्रोथतंप्राह राघवंसहलक्ष्मणम् ॥ वयंगच्छाममिथिलांजनकेनभिपालिताम् ॥१॥ दृष्ट्वाक्रतुवरंपश्चादयोध्यांगन्तुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वाप्रययौगंगामुत्तर्तुंसहराघवः ॥ तस्मिन्कालेनाविकेन-निषिद्धौरघुनन्दनः ॥२॥ नाविक उवाच ॥ क्षालयामितव पादपंकजंनाथदारुदृषदोःकिमन्तरम् ॥ मानुषीकरणचूर्णमस्तिते पादयोरितिकथाप्रथीयसी ॥३॥ पादाम्बुजंतेविमलंहिकृत्वापश्चात् परंतीरमहं-

नयामि ।। नोचेत्तरीसद्युवतीमलनेस्याद्यद्विभोविद्धिकुटुम्बहानिम् ।।४।। इत्युक्त्वाक्षालितौपादौपरंततोगताः ।। कौशिकोरघुनाथेनसहितोमिथिलांययौ ।।५।। विदेहस्यपुरप्राप्तऋषिवाटंसमाविशत् ।। प्राप्तं कौशिकमाकर्ण्यजनकोतिमुदान्वितः ।।६।। पूजाद्रव्याणिसंगृह्यसोपाध्यायः समाययौ ।। दण्डवत्प्रणिपत्याथ पूजयामासकौशिकम् ।।७।। पप्रच्छ राघवौदृष्ट्वा सर्वलक्षणलक्षितौ ।। द्योतयन्तौदिशः सर्वाश्चन्द्रसूर्य्याविवा परौ ।।८।।

सूतजी बोले–इसके अनंतर विश्वामित्रजी रामलक्ष्मणजी से बोले कि हम सब जनक की राजधानी मिथिलापुरी को चलते हैं।।१।। वहां सुंदर धनुषयज्ञ देखकर फिर अयोध्या को लौट चलेंगे। यह कह रामजी को साथ लेकर गंगा उतरने के लिये गये।।२।। उस समय केवट ने रामजी को पार उतारने के लिये मना किया। केवट बोला–हे नाथ! मैं तुम्हारे चरण कमल धो लूं (तब पार उतारूंगा)। लकड़ी और पत्थर में क्या अंतर है (जैसे पाषाण की अहल्या आपके चरण रज से मनुष्य की देह धरके स्वर्ग को चली गई, कहीं मेरी नाव भी स्त्री होकर न चली जाय? तो मैं व्यापार काहे से करूंगा) यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणों में मनुष्य बना देनेवाला चूर्ण है।।३।। इसलिये तुम्हारे चरण कमलों को धोकर फिर परली पार ले चलूंगा नहीं तो तुम्हारे चरणों की रज से मेरी नाव सुंदर स्त्री हो जायगी।।४।। यह कहकर उसने (भगवान्) दोनों चरणकमल धोये और सब लोग परली पार गये फिर विश्वामित्रजी रामजी को साथ लेकर मिथिलापुरी को गये।।५।। और विदेहपुरी के पास जहां ऋषिजन ठहरे थे ये भी ठहर गये। जब जनकजी ने सुना कि विश्वामित्रजी आये हैं तो बड़े प्रसन्न हुए।।६।। और (अर्घ आदि) पूजाकी सामग्री एकत्र कर अपने पुरोहित शतानंदजी को साथ लेकर आये और दंडवत् प्रणाम कर विश्वामित्र का पूजन किया।।७।। फिर संपूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए दूसरे सूर्य चंद्रमा के समान ऐसे रामलक्ष्मणजी को देखकर राजा पूछने लगे कि।।८।।

कस्यैतौनरशार्दूलौपुत्रोदेवसुतोपमौ ।। मनःप्रीतिकरौमेद्यनरनारायणाविव ।।९।। प्रत्युवाचमुनिः प्रीतोहर्षय ञ्जनकंतदा ।। पुत्रौदशरथस्यैतौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ।।१०।।। मखसंरक्षणार्थायमयानीतौपितुःपुरात्।।

आगच्छन्राघवोमार्गेताटकांविश्वघातिनीम् ।।११।। शरेणैकेन हतवान्नोदितोऽमितविक्रमः ।। ततोममाश्रम गत्वाममयज्ञविहिंसकान् ।।१२।। सुवाहुप्रमुखान्हत्वामारीचंसागरेऽक्षिपत् ।। ततोगंगातटेपुण्येगौतमस्याश्रमे शुभम् ।।१३।। गत्वातत्रशिलारूपागौतमस्यवधूःस्थिता ।। पादपङ्कजसंस्पर्शाज्जातामानुषरूपिणी ।।१४।। दृष्ट्वाऽहल्यांनमस्कृत्यतयासम्यकप्रपूजितः ।। पादाम्बुजरजः स्पर्शात्सापिशापद्विमोचिता ।।१५।। इदानींद्रष्टुकामस्तेगृहेमाहेश्वरंधनुः ।। पूजितंराजभिस्सर्वैर्दृष्टिमित्यनुशुश्रुम ।।१६।। अतोदर्शयराजेन्द्रशैवंचापमनुत्तमम् ।। दृष्ट्वायोध्यां जिगमिषुः पितरंद्रष्टुमिच्छति ।।१७।। इत्युक्ते मुनिनाराजापूजार्हाविति पूजया ।। पूजयामासधर्मज्ञोविधिदृष्टेनकर्मणा ।।१८।।

हे मुनिराज! नरों में सिंह तुल्य पराक्रमी देवपुत्रों के समान ये दोनों पुत्र किसके हैं। आज ये मेरे मन में नरनारायण के समान प्रीति उत्पन्न कर रहे हैं।।९।। मुनि ने प्रसन्न होकर जनकजी को प्रसन्न करते हुए कहा कि हे राजन्! ये रामलक्ष्मण आपस में दोनों भाई हैं और राजा दशरथजी के पुत्र हैं।।१०।। मैं अपने यज्ञ की रक्षा के लिये इनके पिता से इन्हें मांग लाया था। रामजी ने आते हुए मार्ग में विश्व को दुःख देनेवाली ताड़का को।।११।। एक ही बाण से मार दिया। फिर मेरे आश्रम में आकर मेरे यज्ञ में परम विघ्न करनेवाले बड़े पराक्रमी।।१२।। सुबाहु आदि राक्षसों को मारकर मारीच को (एक ही बाण से १०० योजन पर्यंत) समुद्र में फेंक दिया। फिर गंगा के किनारे गौतमजी के सुन्दर पवित्र आश्रम में जाकर वहां गौतमजी की स्त्री (अहल्या) जो शिलारूप में खड़ी थी, इनके चरणकमल से स्पर्श होते ही वह सुंदर स्त्री हो गई।।१३।।१४।। फिर राम ने अहल्या को देखकर उसे नमस्कार किया और उसने भी इनका अच्छी भांति पूजन किया और राम ने अपने चरणकमल की रज के स्पर्श से उसे पति के शाप से छुड़ा दिया।।१५।। अब तुम्हारे घर जो शिवजी का धनुष धरा है उसे देखा चाहते हैं क्योंकि हमने सुना है कि उसे सब राजाओं ने देखा और उसका पूजन किया है।।१६।। इसलिये हे राजेन्द्र! इनको भी शिवजी के परमोत्तम धनुष को दिखाइये क्योंकि उसे देखकर ये अयोध्या को जाना और अपने पिता के दर्शन करना चाहते हैं।।१७।। जब मुनि के यह कहा तब धर्मज्ञ राजा ने पूजा के योग्य इने दोनों राम लक्ष्मणजी का शास्त्रविधि से पूजन किया।।१८।।

ततः संप्रेषयामास मन्त्रिणंबुद्धिमत्तरम् ।। जनक उवाच ।। शीघ्रमानयविश्वेशचापं रामायदर्शय ।।१९।। ततोगतेमन्त्रिवरेराजाकौशिकमब्रवीत् ।। यदिरामोधनुर्धृत्वाकोटयामारोपदयेद्गुणम् ।।२०।।तदामयात्मजा सीतादीयतेराघवाय हि ।। तथोतिकौशिकः प्राहरामंसंवीक्ष्यसस्मितः ।।२१।। शीघ्रंदशर्यचापाग्र्यंरामायामि ततेजसे ।। एवंब्रुवतिमौनीशआगताश्चापवाहकाः ।।२२।। चापंगृहीत्वाबलिनः पंचसाहस्रसंख्यकाः घंटाशतसमायुक्तंमणिवस्त्रैर्विभूषितम् ।।२३।। दर्शयामासरामायमन्त्रीमन्त्रवतांवरः ।। दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टात्माबद्धापरिकरंदृढम् ।।२४।। गृहीत्वावामहस्तेनलीलया तोलयन्धनुः ।। आरोपयामासगुणंपश्यत्स्व-खिलराजसु ।।२५।। ईषदाकर्षयामास पाणिनादक्षिणेनसः ।। बभंजाखिलहृत्सारोदिशः शब्देनपूरयन् ।।२६।। दिशश्चविदिशश्चैवस्वर्गंमर्त्यंरसातलम् ।।२५।। तदद्भुतमभूत्तत्रदेवानांदिविपश्यताम् ।।२७।। आच्छादयंतः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे ।। देवदुंदुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।।२८।।

फिर बड़े बुद्धिमान् मंत्री को बुलाया और जनकजी बोले–तुम शिवजी के धनुष को शीघ्र लिया लाओ और रामजी को दिखाओ।।१९।। जब श्रेष्ठ मन्त्री चला गया तब राजा ने विश्वामित्रजी से कहा कि यदि रामजी धनुष उठाकर प्रत्यंचा को कोटि तक चढ़ावें।।२०।। तो अपनी पुत्री सीता को रामचन्द्र को दे सकता हूं। विश्वामित्र ने मुस्कराकर और राम की ओर देखकर कहा–'अच्छा ऐसा ही होगा'।।२१।। हे राजन्! महातेजस्वी रामचन्द्र को वह धनुष दिखाओ। मुनीश्वर के ऐसा कहते ही गिनती में ५००० बलवान् मनुष्य धनुष को लेकर आन पहुँचे। उसमें सैंकड़ों घंटे लगे हुए थे और मणिवस्त्रों से शोभायमान हो रहा था।।२२।।२३।। मंत्रियों के प्रधान मंत्री ने उसे रामजी को दिखाया। रामजी उसे देखकर मन में बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने दृढ़ता से अपनी कमर कसकर।।२४।। फिर उसे बांये हाथ से उठाकर और खेल की भांति उस धनुष का अंदाजा करके सब राजाओं के देखते देखते उसकी प्रत्यंचा को चढ़ा लिया।।२५।। और सबके हृदय के सारभूत राम ने उसे दाहिने हाथ से थोड़ा खैंचकर तोड़ डाला और सब दिशाओं को शब्द से पूरित कर दिया।।२६।। स्वर्ग में देवताओं के देखते देखते दिशा विदिशा स्वर्ग मर्त्य और पाताल लोक में यह बड़ा अद्भुत कार्य हुआ।।२७।। देवताओं ने पुष्पों की वर्षा से पृथ्वी को छा दिया और रामजी की स्तुति करने लगे। उस समय नगाड़े बजने और अप्सराओं के समूह नाचने लगे।।२८।।

द्विधाभग्नंधनुर्दृष्ट्वाराजालिग्यं रघूद्वहम् ।। विस्मयंलेभिरेसीतामातरोन्तः पुराजिरे ।।२९।। सीतास्वर्णमयीं मालांगृहीत्वादक्षिणेकरे ।। स्मितवक्त्रास्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ।।३०।। मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चलितनूपुरा ।। दुकूलपरिसंवीतावस्त्रान्तर्व्यंजितस्तनी ।।३१।। रामस्योरसिनिक्षिप्यस्मयमानामुदं-ययौ ।। ततो मुमुदिरेसर्वेराजदाराः स्वलंकृताः ।। गवाक्षजालरन्ध्रेभ्योदृष्ट्वालोकविमोहनम् ।।३२।। ततोब्रवीन्मुनिंराजसर्वशास्त्रविशारदः ।। भोकौशिकमुनिश्रेष्ठपत्रंप्रेषयससत्वरम् ।।३३।। राजादशरथः शीघ्रमागच्छतुसपुत्रकः ।। विवाहार्थंकुमाराणांसदारः सहमंत्रिभः । तथेतिप्रेषयामासदूतांस्त्वरितविक्रमान् ।।३४।। तेगत्वाराजशार्दूलंरामश्रेयोन्यवेदयन् ।। श्रुत्वारामकृतं राजाहर्षेणमहताप्लुतः ।।३५।। मिथिला-गमनार्थायत्वरयामाससमंत्रिणः ।। गच्छन्तुमिथिलांसर्वेगजाश्वरथपत्तयः ।।३६।। रथमानयमेशीघ्रंगच्छाम्यद्यैव माचिरम् ।। वशिष्ठस्त्वग्रतोयातु सदारःसहितोग्निभिः ।।३७।।

धनुष के दो खंड देखकर राजा ने रामजी को छाती से लगा लिया। उधर धनुषभंग सुनकर रनवास में सीता की माता को बड़ा आश्चर्य हुआ।।२९।। फिर सुवर्ण के समान वर्णवाले संपूर्ण आभूषण पहिरे मुस्कुराती हुई गले में मोतियों की माला धारण किये कानों में जड़ाऊ कर्णफूल झुमके पहिरे पैरों में बजते और हिलते हुए बोरों की पायजेबें पहिरे नवीन नवीन वस्त्रों को धारे और वस्त्रों के भीतर से जिनके स्तन दीख रहे हैं, ऐसा सीताजो के दाहिने हाथ में सुवर्ण की बनी जयमाला लेकर।।३०।।३१। आईं और रामजी के गले में डाकलर हँसी और बड़ी प्रसन्न हुईं। फिर राजा की सब रानियां आभूषणों से सजी सजाई झरोखों के छेदों में से लोकविमोहन श्रीरामजी को देखकर बड़ी हर्षित हुईं।।३२।। फिर सब शास्त्रों के ज्ञाता राजा जनक मुनिराज से बोले कि हे विश्वामित्रजी! सुंदर कंकोत्री चिट्ठी शीघ्र भेजिये।।३३।। जिससे राजा दशरथ अपने पुत्र रानियां और मंत्रियों को साथ लेकर पुत्र के विवाह के लिये शीघ्र आवें। मुनिराज ने कहा 'बहुत अच्छा' और शीघ्रगामी राजदूतों को भेजा।।३४।। उन्होंने जाकर राजशिरोमणि दशरथजी से रामजी की कुशल क्षेम और धनुषभंग की कथा कही। रामजी के किये कार्य को सुनकर राजा बड़े भारी हर्ष के कारण अंग में फूले नहीं समाये।।३५।। जनकपुरी जाने के लिये मंत्रियों को शीघ्र चलने की आज्ञा दी कि हाथी, घोड़े, रथ और फौज सब

मिथिलापुरी को चलो॥३६॥ और मेरा रथ शीघ्र लाओ, मैं तुरंत आज ही जाऊंगा और मेरे गुरु वसिष्ठजी अग्निसहित अरुंधतीजी रामजी की माताओं का साथ लेकर आगे चलें। इस प्रकार सबको भेजकर राजा दशरथ ने सुन्दर रथ पर सवार हो बहुत सी सेना साथ लेकर शीघ्र प्रस्थान किया। उधर राजा दशरथ को आया हुआ सुनकर राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए॥३७॥३८॥३९॥

राममातृःसमादायमुनिर्मेभगवान्गुरुः ॥ एवंप्रस्थाप्यसकलंराजर्षिर्विपुलंरथम् ॥३८॥ महत्यासेनयासार्द्धमारुह्यात्वरितोययौ ॥ आगतंराघवंश्रुत्वाराजाहर्षसमाकुलः ॥३९॥ प्रत्युज्जगामजनकः शतानन्दपुरोधसा ॥ यथोक्तपूजयापूज्यंपूजयामाससत्कृतम ॥४०॥ रास्तुलक्ष्मणेनाशुववन्देचरणौपितुः ॥ ततोहृष्टोदशरथोरामं वचनमब्रवीत् ॥४१॥ दिष्टचापश्यामितेराममुखंफुल्लाम्बुजोपमम् ॥ मुनेरनुग्रहात्सर्वसम्पन्नंमम शोभनम् ॥४२॥ इत्युक्त्वाघ्रायमूर्द्धानमालिंग्यचपुनः पुनः ॥ हर्षेणमहताविष्टोब्रह्मानंदगतोयथा ॥४३॥ ततोजनकराजेनमंदिरेसन्निवेशितः ॥ शोभनेसर्वभोगाढचेसदारः ससुतः सुखी ॥४४॥ ततःशुभेदिनेलग्नेसुमुहूर्त्तेरघूत्तमम् ॥ आनयामासधर्मज्ञोरामंसभ्रातृकंतदा ॥४५॥ रत्नस्तंभसुविस्तारेसुवितानेसुतोरणे ॥ मण्डपेसर्वशोभाढचेमुक्तापुष्पफलान्विते ॥४६॥ वेदविद्भिः सुसम्बाधेब्राह्मणैः स्वर्णभूषितैः । सुवासिनीभिः परितोनिष्ककंठीभिरावृते ॥४७॥

राजा जनक शतानंद पुरोहित को साथ लेकर राजा दशरथ को आगे से लिवाने आये और शास्त्रोक्त विधि से सत्कारपूर्वक राजा दशरथ का पूजन किया॥४०॥ राम लक्ष्मण ने आकर तुरंत अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया फिर राजा दशरथ प्रसन्न होकर रामजी से यह वचन बोले॥४१॥ हे राम! अहो भाग्य है कि मैं तुम्हारे मुख को खिले कमल के समान देखता हूं। मुनि की कृपा से मेरे सब मंगल कार्य सिद्ध हुए॥४२॥ यह कहकर और रामजी का शिर सूंघकर और बारंबार आलिंगन करके हर्ष के कारण ऐसे भारी प्रसन्न हुए कि जैसे कोई ब्रह्मानंद में मग्न होता है॥४३॥ फिर राजा जनक ने स्त्री पुत्रों सहित राजा दशरथ को संपूर्ण सामग्री से पूर्ण सुन्दर महल में ठहराया और सुखी

अ०रा०
४४

हुए।।४४।। फिर शुभवार लग्न और सुन्दर मुहूर्त में धर्मात्मा जनकजी, रघुश्रेष्ठ रामजी को भाइयों सहित अपने घर लिवा लाये।।४५।। जिसका बड़ा विस्तार और जिसमें रत्नों के खंभे लग रहे हैं, सुंदर चंदोये टंग रहे हैं और जहां मोती पुष्प और फलों की सुंदर बंदनवारें लटक रही हैं।।४६।। जहां सुवर्ण के आभूषणों से भूषित बहुत से वेदपाठी ब्राह्मण बैठे हैं और जो मंडप सुवर्ण की चंपाकली माला आदि पहिरे सुन्दर सुन्दर सौभाग्यवती स्त्रियों से चारों ओर भर रहा है जहां मृदंग और नगाड़ों के मांगलीक शब्द और नृत्यगान हो रहे, ऐसे संपूर्ण शोभायुक्त मंडप में अनमोल रत्नों से जटित सुवर्ण के आसन पर राजा जनकजी ने रामंचद्रजी को बैठाया।।४७।।४८।।

भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यैःसमाकुले ।। दिव्यरत्नाञ्चितेस्वर्णपीठेरामंन्यवेशयत् ।।४८।। वशिष्ठंकौशिकंचैव शतानन्दः पुरोहितः ।। यथाक्रमंपूजयित्वारामस्योभयपार्श्वयोः।।४९।। स्थापयित्वासतत्राग्निंज्वालयित्वा-यथाविधि ।। सीतामानीयशोभाढ्यांनानारत्नविभूषिताम् ।।५०।। सभार्योजनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् ।। पादौप्रक्षाल्यविधिवत्तदपोमूर्ध्न्यधारयत् ।।५१।। याधृतामूर्ध्निशर्वेणब्रह्मणामुनिभिः सदा ।। ततः सीतांकरेधृत्वासाक्षतोदकपूर्वकम् ।।५२।। रामायप्रददौप्रीत्यापाणिग्रहविधानतः ।। सीताकमलपत्राक्षीस्वर्णमुक्तादिभूषिता ।।५३।। दीयतेमेसुतातुभ्यंप्रीतोभवरघूत्तम ।। इतिप्रीतेनमनसासीतांरामकरेऽर्पयन् ।।५४।। मुमोदजनकोलक्ष्मींक्षीराब्धिरिवविष्णवे । ऊर्मिलांचौरसींकन्यांलक्ष्मणायददौ मुदा ।।५५।। तथैव श्रुतिकीर्त्तिचमांडवींभ्रातृकन्यके ।। भरतायददावेकांशत्रुघ्नायापरांददौ ।।५६।। चत्वारोदारसंपन्नाभ्रातरः शुभलक्षणाः ।। विरेजुः प्रभयासर्वेलोकपालाइवापरे ।।५७।।

फिर शतानंद पुरोहित ने वसिष्ठ और विश्वामित्र का क्रमपूर्वक पूजन करके उन्हें रामजी के दोनों ओर बैठाया।।४९।। फिर वहां उसने अग्नि स्थापन कर और शास्त्रविधि से प्रज्वलित करके अनेक रत्नों से भूषित परम सुन्दरी सीताजी को लाकर (रामजी के सन्मुख) बैठाया।।५०।। फिर राजा जनक अपनी रानीसहित कमलनेत्र रामजी के पास आये और विधिपूर्वक उनके चरणकमल धोकर उस चरणोदक को अपने सिर पर इस प्रकार धारण किया कि।।५१।। जैसे रामजी के चरणोदक को शिव ब्रह्मा और मुनियों ने सदा अपने सिर पर धारण किया था फिर जल अक्षतसहित सीताजी के हाथ

बा०कां०
सर्ग
६

को अपने हाथ पर धरकर।।५२।। विवाह की रीति से प्रीतिपूर्वक रामजी को अर्पण कर दी (और यह कहने लगे) सुवर्ण और मोती आदि से भूषित यह कमलनयनी सीता अपनी पुत्री को आपको समर्पण करता हूं। हे रामचंद्र! प्रसन्न होइये। इस प्रकार प्रसन्न मन से सीता को रामजी के हाथ में समर्पण करते हुए।।५३।।५४।। जनकराज ऐसे प्रसन्न हुए कि जैसे क्षीरसागर भगवान् को लक्ष्मी देकर प्रसन्न हुए थे। और ऊर्मिला नाम जो अपनी औरसकन्या थी उसे लक्ष्मणजी को प्रसन्न होकर दिया।।५५।। और इसी प्रकार श्रुतिकीर्ति और मांडवी जो दो कन्या अपने भाई कुशध्वज की थी उनमें से एक मांडवी भरतजी को और दूसरी श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नजी को दे दी।।५६।। सुन्दर लक्षणों से युक्त चारों भाई स्त्रियों को पाकर ऐसे शोभायमान हुए कि जैसे दूसरे इन्द्र आदि लोकपाल प्रभा से शोभित हों।।५७।।

ततोब्रवीद्वशिष्ठायविश्वामित्रायमैथिलः ।। जनकः स्वसुतोदन्तंनारदेनाभिभाषितम् ।।५८।। यज्ञभूमिविशुद्ध चर्थंकर्षतोलांगलेनमे ।। सीतामुखात्समुत्पन्नाकन्यकाशुभलक्षणा ।।५९।। तामद्राक्षमहंप्रीत्यापुत्रिकाभावभावि ताम् ।। अर्पिताप्रियभार्यायैशरच्चन्द्रनिभानना ।।६०।। एकदानारदोभ्यागाद्विविक्तेमयिसंस्थिते ।। रणयन्यमहतींवीणांगायन्नारायणंविभुम् ।।६१।। पूजितः सुखमासीनोमामुवाचसुखान्वितः ।। शृणुष्ववचनंगु ह्यंतवाभ्युदयकारणम्।।६२।। परमात्मा हृषीकेशोभक्तानुग्रहकाम्यया।। देवकार्यार्थंसिद्धयर्थंरावणस्यवधायच ।।६३।। जातोरामइतिख्यातोमायामानुषवेषधृक् ।। आस्तेदाशरथिर्भूत्वाचतुर्धापरमेश्वरः।।६४।। योगमाया-पिसीतेतिजातावैतववेश्मनि ।। अतस्त्वं राघवायैवदेहिसीतांप्रयत्नतः ।।६५।। नान्यस्यपूर्वभार्यैषारामस्यपरमा त्मनः ।। इत्युक्त्वा प्रययौदेवगतिं देमुनिस्तदा ।।६६।। तदारभ्यमयासीताविष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ।। कथं मयाराघवायदीयतेजानकीशुभा ।।६७।।

इसके उपरांत राजा जनक गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्रजी से नारद कथित अपनी पुत्री सीता का वृत्तांत सुनाने लगे।।५८।। हे मुनीश्वरो! (एक समय) मैं यज्ञभूमि शुद्धि के लिये पृथ्वी जोत रहा था उस समय हलके अग्र भाग से एक सुलक्षणी कन्या उत्पन्न हुई।।५९।। मैंने उसे प्रीतिपूर्वक पुत्री के भाव से देखा और उस शरच्चंद्रमुखी कन्या को अपनी प्यारी रानी को सोंप दिया।।६०।। एक समय मैं एकांत में बैठा था कि अपनी वीणा को बजाते हुए भगवान् नारायण का

गुण गाते नारदजी आ पहुँचे।।६१।। मैंने उनका पूजन किया और वे भलीभांति आसन पर बैठ प्रसन्न हो कहने लगे कि हे राजन्! तुम्हारा कल्याण करनेवाला एक गुप्त वचन है उसे सुनिये।।६२।। इन्द्रियों के प्रवृत्त करनेवाले परमात्मा भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से देवताओं के कार्यसिद्धि के लिये और रावण के वध के लिये।।६३।। राम के नाम से प्रसिद्ध माया से मनुष्यरूप धारण कर उत्पन्न हुए हैं और वह परमेश्वर चार रूप से राजा दशरथ को पुत्र होकर (अयोध्या में) वर्तमान हैं।।६४।। और उनकी योगमाया सीतानाम से तुम्हारे घर उत्पन्न हुई है। इसलिये तुम सीता को यत्नपूर्वक उन रामचन्द्र को ही देना।।६५।। क्योंकि परमात्मा राम के सिवाय यह पहिले कभी किसी की भार्या नहीं हुई। यह कहकर नारदजी आकाशमार्ग से चले गये।।६६।। उस दिन से मैंने सीता को विष्णु की लक्ष्मी करके ही माना। और मैं इस सुन्दर जानकी को किस प्रकार रामजी को दूं।।६७।।

इतिचिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् ।। मत्पितामहगेहेषुन्यासभूतमिदंधनुः ।।६८।। ईश्वरेणपुराक्षिप्तंपुरदाहादनन्तरम् ।।धनुरेतत्पणंकार्यमितिचिंत्यकृतंतथा।।६९।। सीतापाणिग्रहार्थायसर्वेषांमाननाशनम् ।। त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठरामोराजीवलोचनः ।।७०।। आगतोत्रधनुर्द्रष्टुंफलितोमेमनोरथः।। अद्यमेसफलंजन्म रामत्वांसहसीतया।।७१।। एकासनस्थंपश्यामिभ्राजमानंरविंयथा।। त्वत्पादाम्बु धरोब्रह्मासृष्टिचक्रप्रवर्तकः ।।७२।। बलिस्त्वत्पादसलिलंधृत्वाभूद्दिविजाधिपः ।। त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्याभर्तृशापतः ।।७३।। सद्य एवविनिर्मुक्ताकोन्यस्त्वतोधिरक्षिता ।।७४।। यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगिवृंदैर्जितभवभयंजितकालचक्रैः ।। यन्नामकीर्त्तिनपराजितदुःखशोकादेवास्तमेवशरणंसततंप्रपद्ये ।।७५।। इतिस्तुत्वानृपः प्रादाद्राघवायमहात्मने ।। दीनाराणांकोटिशतंरथानामयुतंतथा ।।७६।। अश्वानांनियुतंप्रादाद्गजानांषट्शतंतथा ।। पत्तीनांलक्षणमेकंतु दासीनांत्रिशतंददौ ।।७७।। दिव्याम्बराणिहारांश्चमुक्तारत्नमयोज्ज्वलान् ।। सीतायैजनकः प्रादात्प्रीत्यादुहितृवत्सलः ।।७८।।

इसी चिंता में पड़ गया। फिर मैंने एक काम विचारा कि मेरे पितामह के घर में शिवजी ने पुरदैत्य को मारकर जो अपना यह धनुष धरोहर रखा है, उस धनुष को जो तोड़ेगा उसीको मैं सीता दूंगा। मैंने यह प्रण सीता के पाणिग्रहण के

लिये और सब राजाओं का मान खंडन करने के लिये किया। सो हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारी कृपा से कमलनयन रामचन्द्र॥६८॥६९॥७०॥ यहां धनुष देखने के लिये आये और मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। (यह कहकररामजीसेबोले कि) हे राम! सीता के साथ सूर्य के समान प्रकाशमान तुम्हें एक सिंहासन पर बैठा देखता हूं सो आज मेरा जन्म सफल हुआ। तुम्हारे चरणोदक को कमंडलु में भरकर ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं॥७१॥७२॥ राजा बलि तुम्हारे चरणोदक को शिर पर धारण कर सब देवताओं का स्वामी हो गया तुम्हारे चरणों की धूलि के स्पर्श से अहल्या पति के शाप से॥७३॥ तत्काल ही मुक्त हो गई सो आपसे अधिक दूसरा रक्षक कौन है॥७४॥ आपके चरणारविन्दोकी रज में प्रीति करनेवाले और कालचक्रों के जीतनेवाले अनेक योगियों ने संसार के भय को जीत लिया है। और जिन आपके नामकीर्तन में लगकर देवताओं ने दुःख और शोक को जीत लिया है ऐसे आपकी शरण में मैं सदा प्रसन्न हूं॥७५॥ राजा जनक ने इस प्रकार स्तुति करके महात्मा रामचंद्रजी को सौ करोड़ अशर्फियां और दश हजार रथ भेंट करे॥७६॥ और दश हजार घोड़े, छः सौ और हाथी एक लाख प्यादे इनको दिये और ३०० दासियां दी॥७७॥ कन्या को दुलार करनेवाले राजा जनक ने जानकी को प्रीतिपूर्वक बड़े २ सुंदर वस्त्र और झकझकाते रत्नजड़ित मोतियों के हार दिये॥७८॥

वशिष्ठादीन्सुसंपूज्यभरतंलक्ष्मणंतथा ॥ पूजयित्वायथान्यायंतथादशरथंनृपम् ॥७९॥ प्रस्थापयामासनृपोराजानंरघुसत्तमम् ॥ सीतामालिंग्यरुदतींमातरः साश्रुलोचनाः ॥८०॥ श्वश्रुशुश्रूषणपरानित्यंराममनुव्रता ॥ पातिव्रत्यमुमालम्ब्यतिष्ठवत्सेयथासुखम् ॥८१॥ प्रयाणकालेरघुनंदनस्यभेरीमृदंगानकतूर्यघोषः ॥ स्वर्ल्लोकभेरीघनतूर्यशब्दैः संमूर्च्छितोभूतभयंकरोभूत् ॥८२॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकाण्डेषष्ठः सर्गः॥६॥श्रीमहादेवउवाच ॥ अगगच्छतिश्रीरामेमैथिलाद्योजनत्रयम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणिददर्शनृपसत्तमः ॥१॥ नत्वावशिष्ठंपप्रच्छकिमिदं मुनिपुंगव ॥ निमित्तानीहदृश्यन्तेविषमाणिसमंततः ॥२॥ वसिष्ठस्तमथ प्राहभयमागामिसूच्यते ॥ पुनरप्यभयंतेद्यशीघ्रमेवभविष्यति ॥३॥ मृगाःप्रदक्षिणंयान्तिपश्यत्वांशुभसूचकाः ॥ इत्येवंवदतस्तस्यववौघोरतरोनिलः ॥४॥ मुष्णंश्चक्षूंषिसर्वेषांपांसुवृष्टिभिरार्दयन् ॥ ततोव्रजन्ददर्शाग्रेतेजोराशिमुपस्थितम् ॥५॥ कोटिसूर्यप्रतीकांशविद्युत्पुञ्जसमप्रभम्॥ तेजोराशिददर्शाथजामदग्न्यंप्रतापवान् ॥६॥

और वशिष्ठआदि ऋषियों का विधिपूर्वक पूजन करके भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न और राजा दशरथ का यथोचित तिलक से सत्कार किया।।७९।। इस प्रकार राजा जनक ने राजा दशरथ को विदा किया। उस समय सब माताओं ने नेत्रों मे आंसू भर आये और वे रोती हुई सीताजी से कहने लगी।।८०।। हे सीता अपने सास ससुर की सेवा करिये और पतिव्रतधारण कर और रामजी की आज्ञाकारिणी होकर हे बेटी! सुखपूर्वक रहिये।।८१।। जिस समय राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी को प्रस्थान किया उस समय मृदंग नगाड़े और तुरई इनका शब्द स्वर्ग में देवताओं के बजाये भेरी मेघ और तुरई के शब्द से मिलकर ऐसा भयंकर हुआ कि सब लोग डर गये।।२।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत अध्यात्मरामायण बालकांडके छठे सर्ग का भाषानुवाद समाप्त हुआ।। शुभम् ।। श्रीमहादेवजी (पार्वतीजी) से बोले जब रामजी जनकपुरी से तीन योजन आगे निकल गये तब राजा दशरथ ने बड़े भयंकर अपशकुन देखे ।।१।। और वसिष्ठजी को प्रणाम करके पूछने लगे कि हे मुनिश्रेष्ठ! यह क्या बात है ये बुरे २ अपशकुन चारों ओर दिखाई देते हैं ।।२।। वसिष्ठजी ने राजा से कहा कि इनसे आगे आनेवाला भय दिखाई देता है परंतु वह भय आज ही शीघ्र दूर भी हो जायगा।।३।। क्योंकि देखलो हरिण जो तुम्हारे दाहिनी ओर जा रहे हैं यह शुभ शकुन है। मुनि ऐसा कह ही रहे थे कि इतने में बड़ी भयंकर आंधी आई।।४।। उस आंधी ने सबकी आंखों में धूल की वर्षा कर सबको बड़ा दुःखी कर दिया। और आगे जाने पर क्या देखा कि एक तेज का पुंज सामने आ खड़ा हुआ है फिर जिसका करोड़ों सूर्यों का सा प्रकाश और जिसकी बिजली के पुंज के समान कांति हो रही है ऐसे तेज की राशि जमदग्नि के पुत्र प्रतापी परशुरामजी देख पड़े।।६।।

नीलमेघनिभंप्रांशुं जटामण्डलमण्डितम् ।। धनुः परशुपाणिंचसाक्षात्कालमिवान्तकम्।।७।। कार्तवीर्यान्तकंरा-मंदृप्तक्षेत्रियमर्दनम् ।। प्राप्तंदशरथस्याग्रेकालमृत्युमिवापरम् ।।८।। तंदृष्ट्वाभयसंस्तिोराजादशरथस्तदा । अर्घ्यादिपूजांविस्तमृत्यत्राहित्राहीतिचाब्रवीत् ।।९।। दण्डवत्प्रणिपत्याहपुत्रप्राणान्प्रयच्छमे।। इतिब्रुवन्तंरा-जानमनादृत्य रघूत्तमम्।।१०।। उवाचनिष्ठुरंवाक्यंक्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः।। त्वंरामइतिनाम्नामेचरसि-क्षत्रियाधम ।।११।। द्वंद्वयुद्धंप्रयच्छाशुयदि त्वंक्षत्रियोसिवै ।। पुराणंजर्जरंचापंभंक्त्वा त्वंकत्थसेमुधा ।।१२।। अस्मिंस्तुवैष्णवेचापेअरोपसिचेद्गुणम् ।। तदा युद्धंत्वयासार्द्धंकरोमिरघुनन्दन ।।१३।। नोचेसत्सर्वान्हनि-ष्यामिक्षत्रियान्तकरोह्यहम् ।। इतिब्रुवीतैवतस्मिन्चचालवसुधाभृशम् ।।१४।।

नील मेघ के समान जिनकी छवि हैं लंबी देह है शिर पर सुंदर जटाजूट बांधे धनुष और फरसा हाथों में लिये ऐसे लगे मानो नाश करनेवाला साक्षात् काल ही हो॥७॥ कार्तवीर्य के नाशक अभिमानी क्षत्रियों के सर्दन करनेवाले दूसरे कालमृत्यु के समान ऐसे परशुरामजी राजा दशरथ के सामने आन खड़े हुए॥८॥ उस समय उनको देख राजा दशरथ भय के मारे ऐसे डरे कि अर्घ आदि पूजा तो भूल गये और त्राहि २ पुकारने लगे॥९॥ फिर दंडवत् प्रणाम करके कहने लगे कि मुझे पुत्र के प्राण मांगे दीजिये परशुरामजी ने ऐसा कहते हुए राजा दशरथ का अनादर करके अर्थात् उनकी बात सुनी अनसुनी करके और क्रोध से इन्द्रियों को फड़काकर यह कठोर वचन कहा कि हे क्षत्रियों में नीच तू 'राम' इस मेरे नाम से विचर रहा है॥१०॥११॥ जो तू सच्चा क्षत्रिय है तो शीघ्र ही आ जा और अपना हमारा द्वंद्व युद्ध होने दे। पुराने धनुष को तोड़कर तू वृथा ही डोंगे मारता है॥१२॥ यह मेरे पास विष्णु का धनुष है। उसमें जो तू रोदा चढ़ा दे तो हे रघुनंदन! मैं तेरे साथ युद्ध करूँगा॥१३॥ और जो तू न चढ़ा सका तो तुम सबों को मारकर क्षत्रियों का अंत करे डालता हूं। जब परशुरामजी ने ऐसा कहा तब तो पृथ्वी बड़े वेग से डिगमिगाने लगी॥१४॥

अन्धकारोबभूवाथसर्वेषामपिचक्षुषाम् ॥ रामोदाशरथिर्वीरोवीक्ष्य तंभार्गवंरुषा ॥१५॥ धनुराच्छिद्यतद्ध-स्तादारोप्यगुणमञ्जसा॥ तूणीराद्वाणमादायसन्धायाकृष्यवीर्य्यवान्॥१६॥ उवाचभार्गवंरामंभृणुब्रह्मन्व-चोमम् ॥ लक्ष्यंदर्शयबाणस्यह्यमोघोममसायकः ॥१७॥ लोकात्पादयुगंवापिवदशीघ्रंममाज्ञया ॥ अयंलोकः परोवाथत्वयागन्तुंनशक्यते॥१८॥ एवंहित्वंप्रकर्त्तव्यंवदशीघ्रंममाज्ञया॥ एवंवदतिश्रीरामेभार्गवोविकृताननः ॥१९॥ संस्मरन्पूर्ववृत्तान्तमिदंवचनमब्रवीत ॥ रामराम महाबाहोजानेत्वांपरमेश्वरम् ॥२०॥ पुराणपुरुषंविष्णुंजगत्सर्गलयोद्भवम् ॥ बाल्येहंतपसाविष्णुमाराधयितुमञ्जसा ॥२१॥ चक्रतीर्थंशुभंगत्वात पसाविष्णुमन्वहम् ॥ अतोषयंमहात्मानंनारायणमनन्यधीः ॥२२॥ ततः प्रसन्नोदेवेशः शंखचक्रगदाधरः ॥ उवाच मांरघुश्रेष्ठप्रसन्नमुखपङ्कजः ॥२३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ उत्तिष्ठतपसो ब्रह्मन्फलितंतेतपोमहत् ॥ मच्चिदंशेनयुक्तस्त्वंजहिहैहयपुङ्गवम् ॥२४॥ कार्त्तवीर्यं पितृहणंयदर्थंतपसः श्रमः ॥ ततस्त्रिः सप्तकृत्वस्त्वं-हत्वाक्षत्रियमण्डलम् ॥२५॥

अ०रा० ५०

सबकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया उस समय दशरथपुत्र वीर रामजी ने क्रोध से परशुरामजी को देखकर।।१५।। और उनके हाथ से धनुष छीनकर तुरंत चढा लिया और तरकस में से बाण निकाल उसमें लगाया फिर उसे खैंच वीर रामचन्द्रजी।।१६।। परशुरामजी से बोले हे ब्रह्मन्! मेरा वचन सुनो। अब मुझे बाण का निशाना बताओं क्योंकि मेरा बाण अमोघ है।।१७।। इसके दो ही निशाने हैं या तो तुम्हारे पुण्य से जीते हुए लोक (उनका मैं नाश करूँगा) अथवा तुम्हारे दोनों चरण अर्थात् तुम्हारी गति का नाश करूँगा कि जिससे कहीं जा न सको। अव तुम्हारा यह लोक और परलोक दोनों मेरे बाण के अधीन है इसलिये शीघ्र बताइये कौन से लोक का नाश करूं इस लोक का वा परलोक का जिससे कहीं जा न सको।।१८।। मेरी आज्ञा से शीघ्र कहो कि क्या करना चाहिये। जब रामजी ने ऐसा कहा तो परशुरामजी का चेहरा फक्क हो गया अर्थात् उनका सब तेज जाता रहा।।१९।। फिर परशुराम पहिले वृत्तांत को स्मरण करके यह वचन बोले कि हे राम! हे राम! हे महाबाहो! मैं जानता हूं कि तुम परमेश्वर हो।।२०।। तुम पुराणपुरुष, विष्णु भगवान् और सब जगत् के उत्पत्ति पालन और नाशकर्त्ता हो। बाल्यावस्था में मैंने विष्णु का बड़ा तप किया था।।२१।। जब पवित्र चक्रतीर्थ में जाकर एकाग्र चित्त से बहुत दिन तप करके महात्मा नारायण विष्णु भगवान् को प्रसन्न किया तब।।२२।। हे रघुश्रेष्ठ! शंखचक्र गदा पद्म धारण किये देवों के देव भगवान् अपने मुख कमल को खिलाते हुए मेरे ऊपर प्रसन्न होकर बोले।।२३।। भगवान् ने कहा-हे ब्रह्मन्! अब तुम तप से उठो। तुम्हारा बड़ा भारी तप सिद्ध हुआ तुम मेरे चैतन्य अंश से युक्त होकर हैहयदेश के राजा अपने पिता के मारनेवाले कार्तवीर्य का नाश करो कि जिसलिये तुमने तप का श्रम उठाया है फिर इक्कीस बार सब भूमंडल के क्षत्रियों को मारकर।।२४।।२५।।

बा०का० सर्ग ७

कृत्स्नांभूमिंकश्यपायदत्त्वाशान्तिमुपावह ।। त्रेतामुखेदाशरथिर्भूत्वारामोहमव्ययः ।।२६।। उत्पत्स्येपरया-शक्त्यातदाद्रक्ष्यसिमांततः ।। मत्तेजः पुनरादास्येत्वयिदत्तंमयापुरा ।।२७।। तदातपश्चरल्लोकेतिष्ठत्वंब्रह्मणो-दिनम् ।। इत्युक्त्वांतर्दधेदेवस्तत्थासर्वंकृतंमया ।।२८।। सएवविष्णुस्त्वंरामजातोऽसिब्रह्मणार्थितः ।। मयिस्थितंतुत्वत्तेजस्त्वयैवपुनराहृतम् ।।२९।। अद्यमेसफलंजन्मप्रतीतोसिमयाप्रभो।। ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्वं-प्रकृतेः पारगोमतः ।।३०।। त्वयिजन्मादिषड्भावनासन्त्यज्ञानसंभवाः ।। निर्विकारोसिपूर्णस्त्वंगमनादिविव-

जितः ॥३१॥ यथा जलेफेनजालंधूमोवह्नौतथात्वयि ॥ त्वदाधारात्वद्विषयामायाकार्यं सृजत्यहो ॥३२॥ यावन्मायावृतालोकास्तावत्त्वांनविजानते ॥ अविचारितासिद्धैषाऽविद्याविद्याविरोधिनी ॥३३॥ अविद्याकृतदेहादिसंघातेप्रतिबिम्बिता ॥ चिच्छक्तिर्जीवलोकेस्मिञ्जीवइत्यभिधीयते ॥३४॥

और सब पृथ्वी कश्यपजी को दान कर फिर शांत होकर रहना। जब त्रेता के आरंभ में मैं अविनाशी दशरथ का पुत्र होकर राम के नाम से॥२६॥ अपनी परम शक्ति सीता के साथ अवतार लूंगा तब तुम्हें फिर मेरा दर्शन होगा॥ और तब मैं पहिले दिये हुए अपने तेज को तुममें से हर लूंगा॥२७॥ फिर तुम इस लोक में ब्रह्मा के एक दिन तक अर्थात् कल्प भर तप करते रहना। ऐसा कहकर भगवान् अंतर्धान हो गये। फिर नारायण ने मुझे जैसी आज्ञा दी थी वैसा ही मैंने किया॥२८॥ सो हे राम! तुम वही विष्णुरूप हो। तुमने ब्रह्माजी की प्रार्थना से अवतार लिया है। मुझमें जो कुछ आपका तेज था सो सब तुमने फिर ले लिया॥२९॥ हे प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हुआ कि मैंने आपको पहिचाना। तुम तो ब्रह्मादिकों को भी अलभ्य हो और प्रकृति से परे हो॥३०॥ और आपमें अज्ञान से उत्पन्न जन्म आदि छः विकार नहीं हैं। तुम निर्विकार हो सर्वत्र व्यापक और गमन आदि से रहित हो॥३१॥ जैसे जल में फेन का जाल औपाधिक है और अग्नि में धूम औपाधिक है इसी प्रकार तुम ही जिस माया के आधार हो और तुम ही जिसका विजय हो ऐसी माया तो जगत् को रचती है और आपमें उसका रचना प्रतीत होता है सो यह औपाधिक है॥३२॥ जब तक लोग माया से लिप्त रहते हैं तब तक आपको नहीं जानते इसलिये विद्या से विरोध करनेवाली यह अविद्या विचार से ही सिद्ध है अर्थात् विचार करने से जब विद्या का उदय होता है तो उसका प्रकाश में अविद्या अंधकार की तरह आपही नाश हो जाती है॥३३॥ अविद्या से कल्पित देह आदि के समूह में जो चैतन्य का प्रतिबिंब पड़ता है वह जीवलोक में जीव कहाता है॥३४॥

यावद्देहमनः प्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान् ॥ तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत् ॥३५॥ आत्मनः संसृतिर्नास्तिबुद्धेर्ज्ञानंनजात्वति । अविवेकाद्द्वयंयुंक्त्वासंसारीतिप्रवर्त्तते॥३६॥ जडस्यचित्समायोगाच्चित्त्वंभूयाच्चितेस्तथा ॥ जडसंगाज्जडत्वंहिजलाग्न्योर्मेलनंयथा ॥३७॥ यावत्त्वत्पादभक्तानांसंगसौख्यं

नविन्दति ।। तावत्संसारदुःखौघान्नबिवर्त्तेन्नरः सदा ।।३८।। सत्संगलब्ध्या भक्त्या यदात्वांसमुपासते ।। तदामायाशनैर्यातितानवंप्रतिपद्यते ।।३९।। ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नस्सद्गुरुस्तेनलभ्यते ।। वाक्यज्ञानंगुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ।।४०।। तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानांकल्पकोटिशतैरपि ।। नमुक्तिशङ्काविज्ञानशङ्कानैवसुखं-तथा ।।४१।। अतस्त्वत्पादयुगलेभक्तिर्मेजन्मजन्मनि ।। स्यात्त्वद्भक्तिमतांसंगोऽविद्यायाभ्यांविनश्यति ।।४२।। लोकेत्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिणः ।। पुनंतिलोकमखिलंकिंपुनः स्वकुलोद्भवान् ।।४३।।

इसलिये जीव जब तक देह मन और बुद्ध्यादिक में अभिमान करता है अर्थात् अज्ञान से इनके धर्म को अपना धर्म मानता है तब तक कर्तृत्व और भोक्तृत्व सुख दुःख का भोगी होता है।।३५।। क्योंकि वास्तव में असंग आत्मा में जन्ममरणरूप संसार और जड़ बुद्धि में ज्ञान कभी संभव नहीं होता अज्ञान से दोनोंका मिलाकर मैं कर्त्ता हूं मैं भोक्ता हूं ऐसा संसारी व्यवहार संभव होता है।।३६।। जब बुद्धि को चैतन्य के संबंध से ज्ञान की प्रतीति होती है और चेतन आत्मा को जड़ बुद्धि के संबन्ध के अज्ञ होना प्रतीत होता है। जैसे जल अग्नि के मिलाप से आपस में प्रतीति होती है अर्थात् जैसे बिजली का स्वरूप प्रकाशरूप है परन्तु मेघ के जल के संबन्ध से चमककर छिप जाना प्रतीत होता है ऐसे ही जल अप्रकाशरूप है बिजली के संबन्ध से चमकतासा हुआ मालूम होता है ऐसे ही आत्म संबन्ध में भी जानना।।३७।। इसलिये जब तक मनुष्य आपके चरणकमलानुरागी भक्तों के संत्सगों के सुख को नहीं पाता तब तक संसार के दुःखों से भी कभी नहीं छूटता।।३८।। और जब सत्संग से प्राप्त हुई भक्ति से आपकी उपासना करता है तब माया स्वयं धीरे २ क्षीण हो जाती है।।३९।। फिर भक्ति के प्रभाव से मनुष्य को तुम्हारे अभेद ज्ञान से युक्त गुरु मिल जाता है और गुरु से "तत्त्वमसि" महा वाक्य के ज्ञान को पाकर तुम्हारे प्रसाद से वह संसार बंधन से छूट जाता है।।४०।। इसलिये जो पुरुष तुम्हारी भक्ति से रहित हैं उनको सौ करोड़ कल्पों में भी मुक्ति ज्ञान और सुख की आशा नहीं हो सकती है।।४१।। अतएव हे भगवन्! जन्म २ में आपके चरणकमल में मेरी भक्ति होय और तुम्हारे भक्तों का संग हो कि जिससे मेरी अविद्या नाश हो जाय।।४२।। संसार में जो लोग तुम्हारी भक्ति में लौलीन हैं और धर्म की वर्षा करते हैं अर्थात् तुम्हारे तत्वज्ञान का उपदेश करनेवाले हैं वे सब लोकको पवित्र करते हैं फिर अपने कुलवालोंका क्या कहना है उन्हें तो पवित्र करेंगे ही।।४३।।

नमोस्तुजगतांनाथनमस्तेभक्तिभावन ।। नमः कारुणिकानन्तरामचन्द्रनमोस्तुते ।।४४।। देवयद्यत्कृतं पुण्यंयमालोकजिगीषया ।। तत्सर्वंतवबाणायभूयाद्रामनमोस्तुते ।।४५।। ततः प्रसन्नो भगवाञ्च्छ्रीरामः करुणामयः ।।प्रसन्नोस्मितव ब्रह्मन्यत्तेमनसिवर्त्तते ।।४६।। दास्येतदखिलंकामंमाकुरुष्वात्रसंशयम् ।। ततः प्रीतेनमनसा भार्गवोराममब्रवीत् ।।४७।। यदिमेनुग्रहोरामतवास्तिमधुसूदन ।। त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढभक्तिःसदास्तुमे।।४८।। स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तुभक्तिहीनोपिसर्वदा।। त्वद्भक्तिस्तस्यविज्ञानंभूयादन्तेस्मृतिस्तव ।। तथेतिराघवेणोक्तः परिक्रम्यप्रणम्यतम् ।।४९।। पूजितस्तदनुज्ञातोमहेन्द्राचलमन्वगात् ।।५०।। राजादशरथोहृष्टोरामंमृतमिवागतम् ।। आलिंग्यालिंग्यहर्षेणनेत्राभ्यांजलमुत्सृजन्।।५१।। ततः प्रीतेनमनसा स्वस्थचित्तः पुरंययौ ।। रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतादेवसंमिताः।।५२।। स्वांस्वां भार्यामुपादायरेमिरेस्वस्वमंदिरे ।। मातापितृभ्यांसंतुष्टोरामः सीतासमन्वितः ।।५३।।

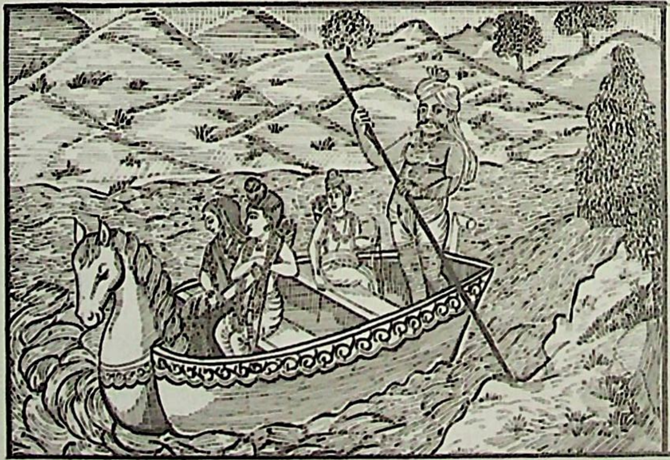
हे जगन्नाथ! हे भक्तिभावन! आपको नमस्कार है। हे करुणाशील! हे अनंत! हे रामचंद्र! आपको नमस्कार है।।४४।। हे राम! मैंने जो २ पुण्य स्वर्गादि लोकों के जीतने की इच्छा से किया है सो सब तुम्हारे बाण के अर्पण है अर्थात् मेरे पुण्यलोकों का नाशकर मेरी पादगति बनी रहने दीजिये। हे राम! तुमको नमस्कार है।।४५।। फिर करुणाशील भगवान् रामजी प्रसन्न हुए और बोले हे ब्रह्मन! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मन में हो सो मांगो।।४६।। मैं तुम्हारे सब मनोरथ पूरे करूँगा इसमें कुछ संशय मत करो। यह सुन परशुरामजी मन में प्रसन्न हो रामजी से बोले कि।।४७।। हे राम, हे मधुसूदन! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है तो तो तुम्हारे भक्तों का तो संग होय और तुम्हारे चरण कमलों में मेरी सदा दृढ भक्ति हो।।४८।। और जो कोई भक्तिहीन भी इस स्तोत्र को सदा पढे तो उसे भी तुम्हारी भक्ति और ज्ञान होय और अंत समय तुम्हारा स्मरण होय।।४९।। रामजी ने कहा "तथास्तु" अर्थात् ऐसा ही होय। फिर परशुराम ने रामजी की परिक्रमा कर उनको प्रणाम किया और आदर पाकर उनकी आज्ञा से महेन्द्राचल पर चले गये।।५०।। यह देख राजा दशरथ ऐसे प्रसन्न हुए मानो मरकर जिये हों और रामजी को बार २ आलिंगन करके नेत्रों से आंसू बहाने लगे।।५१।। और स्वस्थ चित्त हो प्रसन्न मन से अयोध्यापुरी को गये।।५२।। फिर देवताओं के तुल्य

राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न अपनी २ स्त्रियों को लेकर अपने २ मंदिर में आनंद भोगने लगे। माता पिता से प्रसन्न होकर रामजी सहित इस प्रकार आनंद भोगने लगे कि।।५३।।

रेमेवैकुण्ठभवने श्रियासहयथाहरिः ।। युधाजिन्नामकैकेयीभ्राताभरतमातुलः ।।५४।। भरतंनेतुमागच्छत्स्व-राज्यंप्रीतिसंयुतः ।। प्रेषयामासभरतं राजास्नेहसमन्वितः ।।५५।। शत्रुघ्नंचापिसंपूज्ययुधाजितमरिन्दमः ।। कौशल्याशुशुभेदेवीरामेणसहसीतया ।। देवमातेव पौलोम्याशच्याशक्रेणशोभना ।।५६।। साकेतेलोकनाथ-प्रथितगुणगणोलोकसंगीतकीर्तिः श्रीरामः सीतयास्तेऽखिलजननिकरानन्दसन्दोहमूर्तिः ।। नित्यश्रीर्निर्विका-रोनिरवधिविभवोनित्यमायानिरासोमायाकार्य्यानुसारीमनुजइव सदा भाति देवोऽखिलेशः ।।५७।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकाण्डेसप्तमः सर्गः ।।७।।छ।।छ।।छ।।

जैसे वैकुंठ में विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी सहित भोगते हैं। कुछ काल पर्यन्त युधाजित् नाम कैकई का भाई और भरतजी का मामा।।५४।। प्रीतिपूर्वक भरतजी को अपने घर ले जाने के लिये आया और राजा दशरथ ने प्रेमपूर्वक युधाजित् का बड़ा आदर कर भरत और शत्रुघ्नजी को उसके साथ बिदा किया। कौसल्या रानी रामजी और सीताजी से कैसी शोभायमान हुई कि जैसी देवमाता, अदिति, इन्द्राणी और इन्द्र से शोभायमान लगती है।।५५।।५६।। ब्रह्मा आदि देवताओं में जिनके गुणगुण विख्यात हैं और सब लोकों में जिनकी कीर्ति गाई जाती है और जिनका स्वरूप सब जनों को आनंददायक है लक्ष्मी जिनकी सदा सेवा करती है जो विकासरहित हैं और जिनका असीम ऐश्वर्य है और जो माया का निरादर करनेवाले हैं और जिन्होंने माया से मनुष्यरूप धारण किया है ऐसे सब के स्वामी देवता श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ अयोध्यापुरी में शोभायमान हैं।।५७।। इति आगरानिवासी पंडित रामेश्वरभट्टकृत बालकांड के सप्तम सर्ग का भाषानुवाद समाप्त हुआ।।७।। भजन-निरखि किन लेरी राजकुमार । अद्भुत रूप कहत नहिं आवै घूंघरवारे बार ।। विश्वामित्र को यज्ञ सुफल कियो गौतमनारि उधारन हार ।। अब आये ये भाग हमारे धनुष उठावनहार ।। मेरे जान जानकी कारन इनही लिये भूपर अवतार ।। रामसिया की जोरी कान्हर जीवन प्रान अधार ।।१।। शुभम् ।। समाप्तोऽयं बालकाण्डः ।।१।।





अथाध्यात्मरामायणे

भाषाटीकासहिते

अयोध्याकाण्ड

प्रारम्भः

श्रीमहादेव उवाच ।। एकदासुखमासीनं रामं स्वान्तः पुराजिरे ।। सर्वाभरणसंपन्नं रत्नसिंहासने स्थितम्।।१।। नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।। सीतया रत्तदण्डेन चामरेणाथ वीजितम् ।।२।। विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात् ।। नारदोऽवतरद्द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः ।।३।। शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरच्चन्द्र इवामलः ।। अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः ।।४।। तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान् ।।५।। उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः ।। संसारिणां मुनिश्रेष्ठं दुर्लभं तव दर्शनम् ।। अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने ।।६।। अवाप्तं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः ।। संसारिणापि हि मुने लभ्यते सत्समागमः ।।७।। अतस्त्वद्दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर ।। किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहितत्करवाणि भो ।।८।। अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम् ।। किं मोहयसि मां राम वाक्यैर्लोकानुसारिभिः ।।९।।

अथ अयोध्याकाण्डम् । श्रीमहादेवजी पार्वती से बोले-एक समय श्रीरामचन्द्रजी अपने रनवास के आंगन में रत्नजड़ित सिंहासन पर सम्पूर्ण वस्त्राभरण पहिरे सुखपूर्वक बैठे हैं।।१।। नील कमल के समान जिनका श्याम शरीर है कंठ में कौस्तुभमणि को धारण किये हैं और सीताजी रत्नजड़ित डंडीवाले चमर को उनके ऊपर ढुला रही है।।२।। और रामजी तांबूल इलायची आदि खाते हुए सीताजी के साथ मन बहला रहे हैं कि इतने में ही जहां रघुनाथजी विराजमान थे उनके दर्शन करने के लिये नारदजी आकाश से उतरे।।३।। कैसे नारदजी हैं कि शुद्ध स्फटिक के समान कांतिमान् और शरद् के चन्द्र के समान निर्मल ऐसे दिव्य दर्शन नारदजी अकस्मात् ही वहां आये।।४।। नारदजी को आया देखकर सीताजी सहित रामचन्द्रजी एक साथ उठे और भक्तिपूर्वक माथा नवाय हाथ जोड़कर प्रणाम किया।।५।। और बड़ी प्रीति से रामजी नारदजी से बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! संसारी पुरुषों को आपका दर्शन दुर्लभ है और हे मुने! जिनका चित्त निरंतर विषयों में लग रहा है ऐसे हम सरीखे पुरुषों को तो और भी कठिन है।।६।। मैंने पूर्वजन्म में किये हुए पुण्यों से आपका दर्शन पाया है हे मुने! संसारी मनुष्यों को महात्माओं का समागम बड़े पुण्यों से ही होता है।।७।। इसलिये हे मुनिराज! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ हो गया। अब मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं? सो आज्ञा कीजिये।।८।। यह सुन नारदजी ने भक्तवत्सल रघुनाथजी से कहा कि हे राम! इन संसारी बातों से मुझे क्यों मोह में घसीटते हो।।९।।

संसार्यहमितिप्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो ॥ जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव॥१०॥ त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्या ब्रह्मादयः प्रजाः ॥ त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥११॥ सूतेऽजस्रं शुक्लकृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः ॥ लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥१२॥ त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ॥ ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥१३॥ भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ॥ शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहाऽनलो भवान् ॥१४॥ यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो ॥ निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥१५॥ राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा ॥ वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥१६॥ कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत्प्रकीर्तिता ॥ रुद्राणीं जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥१७॥ लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकीशुभा ॥ पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥१८॥ तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किंचन ॥१९॥ त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृतमितीर्यते ॥ तस्मान्महांस्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः ॥२०॥

अथवा हे विभो! अपने को संसारी कहा सो भी सत्य ही है क्योंकि जगत् की आदि कारण माया है सो तुम्हारी घरवाली है॥१०॥ आपके पास रहने के कारण उस माया से ब्रह्मा आदि सब प्रजा उत्पन्न होती है और वह (सत्वरजतम) युक्त त्रिगुरात्मिका माया तुम्हारे पास निरंतर रहने से भिन्न २ प्रतीत होती है और वह सदा शुक्ल* कृष्ण और रक्तवर्ण प्रजा को उत्पन्न करती है। यह सब लोक तुम्हारा गृह है और तुम उसमें गृहस्थी हो ऐसा कहा गया है॥११॥१२॥ हे राम! तुम विष्णु हो सीता लक्ष्मी हैं तुम शिव तो सीता पार्वती हैं तुम ब्रह्मा हो जानकी सरस्वती हैं तुम सूर्य हो तो सीता प्रभा हैं॥१३॥ तुम चन्द्र हो सीता (सौभाग्यादि) सुंदर लक्षणी रोहिणी हैं। तुम इन्द्र हो सीता इंद्राणी हैं तुम अनल हो सीता स्वाहा हैं॥१४॥ हे प्रभो! तुम कालरूप यम हो सीता (काल की स्त्री) संयमिनी हैं। और हे जगन्नाथ! तुम निर्ऋति हो और सुन्दर सीता तामसी हैं॥१५॥ और हे राम! तुम वरुण हो और सुन्दर सीता भार्गवी हैं। हे राम! तुम वायु हो और सीता सदागति हैं ऐसा कहा है॥१६॥ हे राम! तुम कुबेर हो जानकी सर्व संपत्तिरूप कही गई हैं। तुम लोक का संहार

* सतोगुण का शुक्ल वर्ण है रजोगुण का रक्त वर्ण है और तमोगुण का कृष्ण वर्ण हैं।

करनेवाले रुद्र हो और सीता रुद्राणी हैं।।१७।। और हे राघव! कहां तक वर्णन करूं संसार में जितने स्त्रीवाचक शब्द हैं उनका अर्थ सुन्दर सीता है और पुरुषवाची शब्द हैं वे सब आपका रूप हैं।।१८।। हे राम! तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हारे बिना हो।।१९।। तुम्हारे संबन्ध से सृष्टि की रचना करने में प्रवृत्त हुए अज्ञान को अव्याकृत कहते हैं उससे महत्तत्त्व होता है। महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार से लिंग शरीर बनता है जो स्थूल शरीरों में व्यापक होता है।।२०।।

अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च ।। लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्ममृत्युसुखादिमत् ।।२१।। स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः ।। अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ।।२२।। स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः ।। एतैर्विशिष्टोजीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वर ।।२३।। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते ।। तस्या विचक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम ।।२४।। त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।। त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम् ।।२५।। रज्जावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् ।। परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते ।।२६।। चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः ।। त्वया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ।।२७।। अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जो भुजङ्गवत् ।। त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ।।२८।।

अहंकार बुद्धि पंचप्राण और १० इन्द्रिय इनके समुदाय को विद्वान् लोग लिंग शरीर कहते हैं। और यह जन्म मृत्यु सुख आदि को भोगता है।।२१।। इसीको लोक में जीव कहते हैं और यह सबमें रहनेवाला है-भाव यह है कि लिंग शरीर में अभिमान करनेवाला जो चैतन्य है वही जीव है और जब चैतन्य अभिमानरहित होता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं। जो कहो कि जीव तो प्रकृति से परे शुद्ध स्वरूप है उसे लिंगशरीर में अभिमान क्यों हुआ तहां नारदजी कहते हैं कि तो कहने में न आवे ऐसी अनादि अविद्या इस जीव की कारण उपाधि कहती है अर्थात् लिंग शरीर में जीव को जो अभिमान होता है सो अविद्या से होता है।।२२।। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर ये तीन चैतन्य की उपाधियां हैं। जब चैतन्य इससे युक्त होता है तो जीव कहाता है और जब इनसे रहित होता है तब परमेश्वर कहाता है।।२३।। यह संसार जाग्रत्

स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन प्रकार की अवस्थाओं में वर्तमान हो रहा है परन्तु हे रामचन्द्र! तुम उससे अलग हो और चैतन्य रूप से देखनेवाले हो।।२४।। यह सब संसार तुमसे ही उत्पन्न हुआ है तुममे ही स्थित है और तुम में ही लय हो जाता है इसलिये तुमही सबके कारण हो।।२५।। जैसे पुरुष को रस्सी को सर्प मानने से भय की प्रतीति होती है वैसे ही आत्मा को जीव मानने से संसार का भय होता है परन्तु जब प्राणी को यह ज्ञान होता है कि मैं परमात्मा हूं तब वह संसार के भय और दुःख से छूट जाता है।।२६।। तुमही अपने चिन्मात्र के प्रकाश से सब प्राणियों की बुद्धि को प्रकाशित करते हो इसलिये तुमही सबकी आत्मा हो।।२७।। अज्ञान से जैसे रस्सी में सर्प प्रतीत होने लगता है वैसे ही सब संसार का आरोपण किया जाता है परन्तु तुम्हारा ज्ञान होते ही यह सब संसार नाश हो जाता है इसलिये सदा ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये।।२८।।

त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ।। तस्मात्त्वद्भक्तियुता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ।।२९।। अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः ।। अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ।।३०।। त्वन्नाभिकमलोत्पनो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो ।। अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ।।३१।। इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।। उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ।।३२।। रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम ।। इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति ।।३३।। यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि ।। प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ।।३४।। तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसन्धस्त्वमेव हि ।। श्रुत्वैतद्गदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ।।३५।। शृणु नारद मे किंचिद्विद्यतेऽविदितं क्वचित् ।। प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः ।।३६।। किंतु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसंक्षयात् ।। हरिष्ये सर्वभूमारं क्रमेणासुरमण्डलम् ।।३७।।

तुम्हारे चरणों की भक्ति करनेवालों को क्रम २ से ज्ञान होता है इसलिये तुम्हारे भक्त ही मुक्ति के भागी होते हैं।।२९।। हे प्रभो! मैं तुम्हारे भक्तों के जो भक्त हैं उनका दास हूं इसलिये मेरे ऊपर कृपा करो और मोह में मत गेरो ।।३०।। हे प्रभो! मेरे पिता ब्रह्माजी तुम्हारी नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं इसलिये मैं तुम्हारा पौत्र हूं हे राम! मुझ भक्त

अ०रा० ६१

की रक्षा करो।।३१।। नारदजी यह कहकर और बारंबार प्रणाम करके आनंद के आँसुओं से भीग गये और यह कहने लगे कि हे राम! मुझे यह संदेसा लेकर तुम्हारे पास भेजा है कि ।।३२।। हे रघुश्रेष्ठ! रावण के वध के लिये तुमने अवतार लिया है और अब राज्य की रक्षा के लिये पिता तुम्हारा राज्याभिषेक करनेवाले हैं।।३३।। जो तुम राज्य में फँस जाओगे तो रावण को नहीं मार सकोगे और जो प्रतिज्ञा तुमने पृथ्वी का भार उतारने की निश्चय करी थी उसे भी पूरी न कर सकोगे।।३४।। इसलिये हे राजेन्द्र! अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करो क्योंकि तुम निश्चय करके सत्यप्रतिज्ञ हो, यह वाक्य सुनकर रामजी मुसकुराकर नारदजी से बोले।।३५।। हे नारदजी! सुनो कहीं कोई ऐसी बात नहीं है जो मुझसे छिपी हो। जिस बात की मैं पहिले प्रतिज्ञा कर चुका हूं उसको करूंगा इसमें संदेह नहीं है।।३६।। किन्तु समय पाकर जब असुरों की प्रारब्ध क्षीण होगी तब क्रम क्रम से उनका नाश करके पृथ्वी का भार उतारूंगा।।३७।।

रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम् ।। चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ।।३८।। सीतामिषेण तंदुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम् ।। एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ।।३९।। प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् ।। अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनिः ।।४०।। संवादं पठति शृणोति संस्मरेद्वा यो नित्यं मुनिवररामयोः स भक्त्या ।। संप्राप्नोत्यमरसुदुर्लभं विमोक्षं कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ।।४१।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे प्रथमः सर्गः ।।१।। श्रीमहादेव उवाच ।। अथ राजा दशरथः कदाचिद्रहसि स्थितः ।। वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ।।१।। भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ।। पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः ।।२।। ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम् ।। ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव ।।३।। भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः ।। अभिषेक्ष्ये श्व एवाशु भवांस्तच्चानुमोदताम् ।।४।। संभाराः संभ्रियन्तां च गच्छ संमन्त्रय राघवम् ।। उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समन्ततः ।।५।। तोरणानि विचित्राणि स्वर्गमुक्तामयानि वै ।। आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ।।६।। आज्ञापयति यद्यत्वां मुनिस्तत्तत्स मानय ।। यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम्।७।।

अ०का० सर्ग २

और रावण वध के लिये मैं कल मुनि का वेश धरकर दंडकवन में जाऊँगा और वहां चोदह वर्ष निवास करके।।३८।।

सीताजी के बहाने से उस दुष्ट रावण को कुलसहित मारूंगा। जब रामचंद्रजी ने ऐसी प्रतिज्ञा करी तब नारदजी बड़े प्रसन्न हुए।।३९।। और रामजी की तीन वार प्रदक्षिणा और उनको दंडवत् प्रणाम करके रामजी की आज्ञा से नारदजी स्वर्ग को विदा हुए।।४०।। जो पुरुष नारद और रामजी के संवाद को भक्तिपूर्वक नित्य पढ़ता सुनता वा स्मरण करता है उसे पहिले वैराग्य होता है फिर क्रम क्रम से उसे कैवल्य नाम मोक्ष मिलता है कि जो देवताओं को भी दुर्लभ है।।४१।।

इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकांड का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।।१।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! एक समय राजा दशरथ एकान्त में बैठे हुए अपने कुलगुरु वसिष्ठजी को बुलाकर यह निवेदन करने लगे कि।।१।। हे भगवन्! पुरके निवासी व्यापारी जन और विशेष करके बूढ़े मन्त्री सब रामचन्द्र की बार बार प्रशंसा करते हैं।।२।। इसलिये सब गुण निधान, कमल नयन अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राजगद्दी दूंगा क्योकि हे मुनिराज! मैं अब वृद्ध हुआ।।३।। इस समय भरत और शत्रुघ्न भी मामा के देखने के लिये गये हैं जो आप भी हामी भरें तो कल शीघ्र ही राम को राजगद्दी दे दूं। राजगद्दी की सब सामग्री इकट्ठी कराओ और जाकर रामचन्द्रजी से भी सलाह करनी चाहिये और भांति भांति के रंग की झंडिया टंकवाओ। नगर मेंसोनेके तारमें मोती गुंथवाकर भांति भांतिकी वंदनवारें द्वारों पर बंधवा दो। फिर राजा दशरथ ने मुख्य मंत्री सुमंत्र नाम मंत्री को बुलाकर।।६।। आज्ञा दी कि मुनिराज जिस जिस वस्तु की तुम्हें आज्ञा दें उनको भली भांति लाकर इकट्ठी करो। कल सवेरा होते ही मैं रामचंद्रजी को राजगद्दी दूंगा।।७।।

तथेति हर्षात्स मुनि किं करोमीत्यभाषत ।। तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ।।८।। श्वःप्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः ।। तिष्ठन्तु षोडश गजो स्वर्णरत्नादिभूषितः ।।९।। चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः ।। नानातीर्थोदकैःपूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ।।१०।। स्थाप्यन्तां नव वैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय ।। श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ।।११।। दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।। मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशप्राणयः ।।१२।। नर्तक्यो बारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा ।। नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ।।१३।।

'जो श्रीमहाराज की आज्ञा' यह कहकर मंत्री ने प्रसन्न हो मुनिराज से कहा कि मैं क्या करूं, सो आज्ञा करिये। ज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठजी ने सुमंत्र से कहा कि।।८।। कल प्रातःकाल होते ही बीच की डचोढ़ी पर सुवर्ण के आभूषणों से सजी हुई सोलह कन्यायें उपस्थित रहें और इन्द्र के ऐरावत नाम हाथी के खान का एक चौदन्ता हाथी वहां आवे और सुवर्ण के हजारों घड़े अनेक तीर्थों के जल से भरे हुए तैयार रहें।।९।।१०।। और तीन नये व्याघ्र चर्म लाना और मणि मोती जिसमें लटक रहे हों, ऐसे रत्न के दंडवाला श्वेत छत्र लाना और बड़े दिव्य हार वस्त्र और आभूषण तैयार रखना। और मुनियों को सत्कार पूर्वक बुला भेजना। वे हाथों में कुशा लिये वहां ठहरे रहे।।११।।१२।। और रनवास के आंगन में वेश्या नृत्य करें, गवैय्ये गावें, बांसली बजानेवाले बांसली बजावे और भांति भांति के बड़े चतुर बाजेवाले बाजे बजावें।।१३।।

हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ।।१४।। तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरावृता ।। राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ।।१५।। इत्यादिश्य मुनिःश्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम्।। स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम्।।१६।। रथमारुह्य भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः।।त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात्क्षितिमवातरम्।।१७।।अन्तःप्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः ।। गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृताञ्जलिः ।।१८।। प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद्भक्तिसंयुतः ।। स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ।।१९।। रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ।। तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ।।२०।। धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात् ।। श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ।।२१।। त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद्गिरिजापतिः ।। ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ।।२२।।

हाथी घोड़े रथ और पैदल की चतुरंगिनी सेना अपने २ शस्त्रों को लेकर बाहर खड़ी हो। और नगर में जो जो देवताओं के मंदिर हैं उनमें पूजन कराओ और देवताओं को नाना प्रकार के फल भेंट करो, और राजा लोग अनेक भांति की भेंटें हाथों में लेकर शीघ्र आवें।।१४।।१५।। इस प्रकार श्रीमान् वसिष्ठजी सुमंत्र नाम मंत्री को आज्ञा देकर आप रथ

में बैठ रामचन्द्रजी के अतिरमणीय मंदिर को पधारे और तीन ड्योढी उलांघकर मुनिराज भगवान् वसिष्ठजी रथ से पृथ्वी पर उतर गये॥१६॥१७॥ अपने कुलगुरु होने के कारण रामजी ने उनके भीतर आने की रोक टोक बंद कर दी थी इसलिये वे भीतर के महल में बेरोक टोक के चले गये। गुरु को आया देखकर रामजी तुरंत हाथ जोड़ आगे लेने आये और भक्तिपूर्वक दंडवत् प्रणाम् किया। इधर सीताजी सोनेकी झारी में जल्दी से जल ले आई॥१८॥१९॥ फिर रघुनाथजी ने भक्ति से उनके चरण धोकर और सीतासहित चरणोदक को शिर पर धरके वसिष्ठजी को रत्नजटित सिंहासन पर बैठाया॥२०॥ और रामचन्द्रजी बोले कि आपके चरणोदक को धारण करके मैं आज धन्य हुआ। जब रामजी ने ऐसा कहा तो मुनि वसिष्ठ हँसकर बोले कि॥२१॥ हे राम! तुम्हारे चरणोदक को धारण करके पार्वतीपति महादेवजी धन्य हुए और मेरे पिता ब्रह्माजी भी तुम्हारे चरणोदक से पापरहित हो गये॥२२॥

इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत् ॥ जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ॥२३॥ देवकार्यार्थिसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये ॥ रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥२४॥ तथाऽपि देवकार्यार्थं गुह्यंनोद्घाटयाम्यहम् ॥ यथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन ॥२५॥ तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् ॥ गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितॄणां त्वं पितामहः ॥२६॥ अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः ॥ शुद्धसत्त्वमयं देह धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥२७॥ मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमा यया ॥ पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥२८॥ इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते ॥ इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥२९॥ ततोऽहमाशया राम तव संबन्धकांक्षया ॥ अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥३०॥ ततो मनोरथ मेऽद्य फलितो रघुनन्दन ॥ त्वदधीन महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥३१॥

सो ही आप मुझसे ऐसा कह रहे हो कि आपके चरणोदक से मैं धन्य हुआ। सो यह तो केवल लोकों के उपदेश देने के लिये हैं। और मैं तुम्हें लक्ष्मीजी सहित जानता हूं कि तुम प्रकृति परे परमात्मा ईश्वर हो॥२३॥ और हे राघव! मैं यह भी जानता हूं कि तुमने देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये, भक्तों के भक्ति का फल देने के लिये और रावण के बध के

अ०रा० ६५

लिये अवतार लिया है॥२४॥ परन्तु मुख्य करके देवताओं के कार्य के लिये मैं इस गुप्त बात की किसी के सामने नहीं खोलता और हे राम! जैसे तुम माया से सब काम कर रहे हो॥२५॥ वैसे ही मैं भी तुम्हारे अनुकूल ही जो कुछ करना होगा करूँगा और यों भले ही तुम मेरे शिष्य और मैं तुम्हारा गुरु हूं। परन्तु हे देव! सच पूछो तो तुम गुरुओं के भी गुरु और पितरों के भी पितामह हो॥२६॥ तुम अंतर्यामी रूप से संसारमार्ग को चलाते हो और इन्द्रियों से देखने आदि में नहीं आते और अपने आधीन शुद्ध सत्वमय देह धारण कर॥२७॥ अपनी योगमाया के द्वारा मनुष्य की भांति इस लोक में प्रकाशमान हो रहे हो। और यह मैं जानता हूं कि पुरोहिताई का कर्म बड़ा निन्दित है और इसकी जीविका दूषित है॥२८॥ परन्तु जब मैंने पहिले ब्रह्माजी के कथन से यह जाना कि इक्ष्वाकुवंश में साक्षात् परमात्मा राम रूप से प्रकट होंगे॥२९॥ तब हे राम! मैंने तुम्हारे संबन्धी की इच्छा से और तुम्हारे आचार्य बनने की आशंका से इस निंदित कर्म को भी स्वीकार कर लिया था॥३०॥ सो रघुनन्दन! आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हे राम! सब लोक को मोह करानेवाली यह माया बड़ी प्रबल है और वह तुम्हारे आधीन है॥३१॥

मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह ॥ गुरुनिष्कृति कामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ॥३२॥ प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया ॥ राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघूद्वह ॥३३॥ त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽऽभिषेक्ष्यति राघव ॥ अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि ॥३४॥ कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः ॥ गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि ॥३५॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम् ॥ रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥३६॥ सौमित्रे यौवराज्ये यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति॥निमित्तमात्रमेवाहं कर्त्ता भोक्ता त्वमेवहि॥३७॥ मम त्वं हि बहिःप्राणो नात्र कार्या विचारणा॥ ततो वसिष्ठेन यथाभाषितंतत्तथाकरोत् ॥३८॥ वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत् ॥ वसिष्ठस्य पुरो राज्ञां ह्युक्तं रामाभिषेचनम् ॥३९॥ यदा तदेव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ ॥ कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥४०॥ श्रुत्वा तं हर्षसंपूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम् ॥ तस्मै ततः प्रीतमना: कौसल्या पुत्रवत्सला ॥४१॥

अ०का० सर्ग २

इसलिये हे रघुवर! जिसमें यह माया मुझे मोहित न करे, ऐसा उपाय करो और जो गुरुदक्षिणा आपको देनी हो तो यही गुरुदक्षिणा दीजिये।।३२।। और बात चलने पर मैंने यह सब तुमसे कहा है परंतु कहीं कहना नहीं चाहिये (अब जिस कारण मैं यहां आया हूं सो सुनिये) हे राम! राजा दशरथ ने मुझे तुम्हारे पास कहने के लिये भेजा है वह कल तुम्हें राजगद्दी देंगे। इसलिये हे राघव! आज तुम सीतासहित विधिपूर्वक उपवास करो।।३३।।३४।। और हे राम तुम पवित्र होकर भूमि पर शयन करना और जितेन्द्रिय होकर रहना, मैं अब राजा के पास लोट कर जाता हूं। सवेरे तो तुम आवोगे ही।।३५।। यह कहकर राजगुरु वसिष्ठजी रथ पर चढ़ शीघ्र विदा हुए। और रामजी ने लक्ष्मण की ओर देख हँसकर यह कहा कि।।३६।। हे लक्ष्मणजी! कल मुझे राजगद्दी मिलेगी सो मैं तो नाम का राजा होऊंगा, कर्ता और भोगनेवाले तो तुम ही हो।।३७।। क्योंकि निसंदेह तुम मेरे बाहर के प्राण हो, इसमें कुछ विचार का काम नहीं है। फिर वसिष्ठजी ने जो आज्ञा दी थी उसे उसी भांति किया।।३८।। उधर वसिष्ठजी भी सब काम करके राजा के पास गये और जो कुछ था सब निवेदन किया। जिस समय राजा ने वसिष्ठजी के सामने रामजी के राज्याभिषेक की बात चलाई थी।।३९।। उस समय यह बात कोई नगर का आदमी सुन गया और उसने उसे राम की माता कौसल्या और सुमित्रा को सुना दी।।४०।। इस बात को सुनकर उन दोनों रानियों को बड़ा आनन्द हुआ और पुत्र पर स्नेह करनेवाली कौशल्या के प्रसन्न होकर उस मनुष्य को अपने गले का हार उतारकर दे दिया।।४१।।

लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ।। सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ।।४२।। कैकेयीवशगः किंतु कामुकः किं करिष्यति ।। इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत् ।।४३।। एतस्मिन्नन्तरे देवा दैवीं वाणीमचोदयन् ।। गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ।।४४।। रामाभिषेकाविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः ।। मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ।।४५।। ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ।। तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ।।४६।। सापि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत् ।। नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलंकृतम् ।।४७।। नानातोरणसंबाधं पताकाभिरलंकृतम् ।। सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागतम् ।।४८।। धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलंकृतम् ।। नानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या

चातिहर्षिता ॥४९॥ ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च ॥ तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम् ॥५०॥ श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलंकृतं पुरम् ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥५१॥ पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम् ॥ किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम् ॥५२॥ न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी ॥५३॥

फिर कौसल्या ने रामजी की कार्यसिद्धि के निमित्त लक्ष्मी देवी का पूजन किया और विचारने लगीं कि राजा दशरथ हैं तो सत्यवादी जो कुछ कहते हैं सो करते तो हैं॥४२॥ परंतु कामी होने से कैकई के वश में हो रहे हैं सो न जाने क्या करेंगे यो मन में व्याकुल हो उसने दुर्गा देवी की आराधना की॥४३॥ इसी अवसर में देवतालोगों ने सरस्वती देवी से प्रेरणा की कि हे देवी! तुम बड़े यत्न से भूलोक में अयोध्यानगरी को जाओ॥४४॥ और वहां जो रामचन्द्रजी को राजगद्दी होनेवाली है उसमें ब्रह्माजी के वचन से विघ्न करने का उपाय करो। पहिले मंथरा में प्रवेश कर फिर कैकई की बुद्धि में प्रवेश करना॥४५॥ और जब राम के अभिषेक में विघ्न हो जाय तो हे भद्रे! तुम फिर स्वर्ग को लौट आना। यह सुनकर सरस्वती ने कहा कि ऐसा ही होगा और उसने जाकर मन्थरा में प्रवेश किया॥४६॥ इतने में वह कुबड़ी कि जो कंठ, छाती और कमर में टेढ़ी थी, महल पर चढ़ी और चारों ओर से उसने नगर को सजा सजाया देखा॥४७॥ उसमें नाना भांति के तोरण बंधे हैं, झंडियां टंक रही हैं और भांति भांति के उत्सव धूमधाम से हो रहे हैं, यह देख अचंभित सी हीकर महल के नीचे उतर आई॥४८॥ और रामजी की धाय से पूछने लगी कि हे माता! यह नगर क्यों सजाया गया है और कौसल्या बड़ी प्रसन्नता से अनेक भांति के उत्सव क्यों कर रही है॥४९॥ और बड़े बड़े वेदपाठी ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के वस्त्र दान क्यों दे रही है, यह सुन धात्री ने कहा कि रामचन्द्रजी को कल राजगद्दी होनेवाली है। इसलिये आज चारों ओर से नगर सजाया गया है। बड़े बड़े नेत्रवाली यह सुनकर वह तुरंत कैकई के पास गई। कैकई उस समय एकान्त में निचंताई से पलंग पर लेटी हुई थी, उससे जाकर मंथरा ने कहा कि हे दुर्भगे! हे मूर्ख! तू पड़ी अभी सोई रही है, बड़ा भारी भय शिर पर है उसे नहीं जानती। अपनी सुन्दरता के घमंड में मतवाली सी हो रही है॥५०–५३॥

रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेकोभविष्यति ॥ तत्श्रुत्वासहसोत्थाय कैकेयीप्रियवादिनी ॥५४॥ तस्यै दिव्यं

ददौ स्वर्णनूपुरंरत्नभूषितम् ।। हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम् ।।५५।। भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियं वदः ।। कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम् ।।५६।। रामाद्भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे ।। तत्श्रुत्वा विषसादाथ कुब्जाऽकारणवैरिणी ।।५७।। शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्भयम् ।। त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते ।।५८।। कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन् ।। कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम् ।।५९।। मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम् ।। भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम् ।।६०।। सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः ।। लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यंसोऽनुभविष्यति ।।६१।।

देख राजा की कृपा से कल रामजी को राजगद्दी होगी यह सुनकर मिठबोला कैकई ने एक साथ उठकर।।५४।। उस मन्थरा को अपना बड़ा सुन्दर रत्नजटित सोने की पायजेबों का जोड़ा दिया और कहा कि हर्ष के समय भय आया, यह तुमने क्या बात कही।।५५।। मेरे लेखे राम मुझे भरत से अधिक हैं और वह भी मुझसे बड़ा भारी स्नेह रखते हैं और सदा प्यार से बोलते हैं। और कौसल्या को और मुझे मानते हैं और सदा मेरी अधिक आवभाव करते रहते हैं, हे मूर्ख! सो मुझे यह बतला कि राम से भय होने के क्या कारण है? यह सुनकर सरस्वती द्वारा बुद्धि पलटने के कारण द्रोह करनेवाली मंथरा बड़ी दुःखी हुई और बोली कि।।५६।।५७।।। हे रानी! मेरी बात सुन कि जिससे तेरे लिये पक्का डर है राजा तेरा मन रखने के लिये तुझसे सदा मीठी मीठी बातें किया करते हैं।।५८।। पर राजा कामी और झूंठे हैं। तुमको तो बातों से बहलाते हैं और रामजी की माता के ऐसे बड़े बड़े काम करते हैं।।५९।। यही बात मन में विचार कर तुम्हारे बेटे भरत को शत्रुघ्न के साथ मामा के घर भेज दिया है।।६०।। और सुमित्राजी का भी इसमे भला है क्योंकि लक्ष्मणजी रामजी के साथ रहते हैं वह भी राज्य भोगेंगे।।६१।।

भरतो राघवस्याग्रे किंकरो वा भविष्यति ।। विवास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हन्यतेऽचिरात् ।।६२।। त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि ।। ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ।।६३।। अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने ।। रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पञ्च च ।।६४।। ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव

अ०रा० ६९

राज्ञि भविष्यति ।। उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम् ।।६५।। पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम् ।। इन्द्रेणयाचितोधन्वी सहायार्थं महारथः ।।६६।। जगाम सेनया सार्धं त्वया सह शुभानने ।। युद्धं प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः ।।६७।। तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद सः ।। त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः ।।६८।। स्थितवत्यसितापाङ्गी पतिप्राणपरीप्सया ।। ततो हत्वाऽसुरान्सर्वान् ददर्श त्वामरिंदम् ।।६९।। आश्चर्यं परमं लेभे त्वामालिङ्ग्य मुदान्वितः वृणीष्व यत्तेमनसि वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ।।७०।।

केवल भरतजी के लिये आपत्ति है। या तो भरतजी को रामजी के आगे दास होकर रहना पड़ेगा वा नगर से निकाले जायंगे वा वे शीघ्र ही अपने प्राणों से हाथ धो बैठेंगे।।६२।। और तुम्हें दासी के समान नित्य कौसल्याजी की टहल करनो पड़ेगी, सो सौत के ताहिनो से तो मरना भला है।।६३।। इसलिये आज ही भरत को राजगद्दी मिलने का और रामजी को १४ वर्ष वन में रहने का शीघ्र उपाय करो।।६४।। यों करने से भरतजी की राज्य में जड़ जम जायगी। इसका उपाय मैं तुमको बतलाती हूं जो मैंने पहिले से ही सोच रखा है।।६५।। एक समय जब देवताओं और असुरों का संग्राम हो रहा था तब इन्द्र ने स्वयं दशरथ से सहायता मांगी थी क्योंकि ये बड़े धनुर्धर और महारथी थे।।६६।। हे सुन्दरमुखी! वे सेना के साथ तुम्हें भी संग ले गये थे फिर जब धनुष को हाथ में लेकर राक्षसों के साथ युद्ध करने में।।६७।। उनके रथ के पहिये की कील टूटकर गिर पड़ी और राजा को यह नहीं जान पड़ा तब कीलक छेद में हाथ देकर बड़ी धीरता से।।६८।। वैसे ही पति के प्राण बचाने के लिये बैठी रहीं। उस समय तुम्हारी आंखों के कोए काले पड़ गये थे फिर जब राजा सब शत्रुओं को मार चुके और शत्रुदमन दशरथजी ने तुम्हें देखा।।६९।। तब तो वे बड़ा आश्चर्य करने लगे और तुम्हें छाती से लगाकर प्रसन्न हो बोले कि जो तुम्हारे मन में अच्छा लगता हो, मांगो, मैं उसे देने को तैयार हूं।।७०।।

अ०का० सर्ग २

वरद्वयं वृणीष्वत्वमेवं राजाऽवदत् स्वयम् ।। त्वयोक्तो वरदो राजन्यदि दत्तं वरद्वयम् ।।७१।। त्वय्येवतिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममानघ ।। यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम् ।।७२।। तथेत्युक्त्वा स्वयं राजा मन्दिरं व्रज सुव्रते ।। त्वत्तः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ।।७३।। अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता ।।

विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च ।। भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ।।७४।। यावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते ।। श्रुत्वाचिवक्रयोक्तंतत्तदा केकयनन्दिनी ।।७५।। तथ्यमेवाखिलं मेने दुःसङ्गाहितविभ्रमा ।। तामाह कैकयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धरीदृशी ।।७६।। एवं त्वां बुद्धिसंपन्नां न जाने वक्त्रसुन्दरीम् ।। भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः ।।७७।। ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा ।। इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा ।।७८।। विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः ।। भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ।।७९।। प्रोवाच शृणु मे कुब्जे यावद्रामो वनं व्रजेत् ।। प्राणांस्त्यक्ष्येऽथ वा वक्रे शयिष्ये तावदेव हि ।।८०।। निश्चयं कुरु कल्याणि कल्याणं ते भविष्यति ।। इत्युक्त्वा प्रययौ कुब्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत् ।।८१।।

जब राजा तुमसे दो वरदान मांगने के लिये अपने आप कहे तब तुमनें कहा कि हे राजन्! जो तुम मुझे दो वरदान दिया चाहते हो तो हे निष्पाप! मेरे दोनों वरदान धरोहर की तरह अपने पास रहने दीजिये, जब मुझे काम पड़ेगा तब दोनों वर दे देना।।७१।।७२।। राजा दशरथ 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होय, यह कहकर हे सुव्रते! अपने घर लौट आये। यह बात मैंने तुमसे ही सुनी थी सो इस समय मुझे याद आ गई।।७३।। इसलिये आज गुस्से होकर शीघ्र कोपभवन में चली जाओ और सब आभूषणों को उतारकर फेंक दो और हे भामिनी! तुम चुप साधकर धरती में लेट रहो कि।।७४।। जब तक राजा तुम्हारा मनोरथ पूरा करने की सत्य प्रतिज्ञा न करें। मन्थरा की इस बात को सुनकर उस समय कैकई ने।।७५।। सबको सत्य मान लिया और बुरे संग के कारण उसे अपने भला बुरा न सूझा। और वह दुष्ट कैकई उस मन्थरा से बोली कि अरी मन्थरा! तुझमें ऐसी बुद्धि कहां से आई।।७६।। मैं तुझे ऐसी बुद्धिमती नहीं जानती थी। तू कुबड़ी होने पर सुन्दर है, जो मेरा प्यारा पुत्र भरत राजा हो जायगा तो।।७७।। मैं तुझे सौ गांव माफी दूंगी क्योंकि तू मुझे प्राण समान प्यारी लगती है। यह कहकर एक साथ क्रोधित हो कोपभवन में चली गई।।७८।। और सब आभरण उतारकर चारों और फैला दिया और मैले कपड़े पहनकर वह नीचे धरती पर लोट रही।।७९।। और कहने लगी–हे कुबड़ी! हे टेढ़ी! मेरी (प्रतिज्ञा) सुन ले। जब तक राम वन को नहीं जायंगे तब तक तो ऐसी ही पड़ी रहूंगी और जो वे न जायंगे

तो प्राणों को त्याग दूगी।।८०।। यह बात पक्की जानियो। तू मेरा भला चाहनेवाली है। तेरा भला हो। जब इतना कह चुकी तब कुबड़ी तो अपने घर चली गई और कैकई अपने बुरे काम करने में लगी।।८१।।

धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सुगुणाचारान्वितो वाऽथवा नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ।। दुष्टानामतिपापभावितधियां सङ्गं सदा चेद्व्रजेत्तद् बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्साम्यं क्रमेण स्फुटम् ।।८२।। अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि ।। दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका ।।८३।। इति श्रीमदध्या० उमामहे० अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः ।।२।। श्रीमहादेव उवाच ।। ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् ।। आदिश्य मन्त्रिप्रकृतिः सानन्दो गृहमाविशत् ।।१।। तत्राहष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदिति विह्वलः ।। या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना ।।२।। हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते ।। इत्यात्मन्येव संचिन्त्य मनसाऽतिविदूयता ।।३।।

महादेवजी ने कहा–हे पार्वती! मनुष्य चाहे जैसा धीर, अत्यंत दयालु, सुन्दर गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ, गुरुभक्त और ब्रह्मविद्या का विचार करनेवाला हो परंतु पाप बुद्धिवाले दुष्टो की सदा संगति* से उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है और क्रम क्रम से वह उनके समान ही हो जाता है।।८२।। इसलिये दुष्टों का संग निश्चय करके सदा त्यागना चाहिये क्योंकि खोटी संगति करनेवाला पुरुष रानी कैकई की तरह अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट हो जाता है।।८३।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकाण्ड का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।।२।। श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वति! इसके अनंतर राजा दशरथ रामचन्द्रजी की राजगद्दी के उत्सव के लिये मंत्री और प्रजा को (तैयारी करने की) आज्ञा देकर प्रसन्न होते रनवास में गये।।११।। वहां प्यारी रानी कैकई को न देखकर विकल हो

---

* दृष्टांत–बुरे संग से आदमी की बुद्धि बिगड़ जाती है। देखो एक दिन एक बाबाजी आधी रात को कहीं जा रहे थे। उन्हें मार्ग में चोर मिले। चोर बोले–कौन? बाबाजी ने कहा जो तुम सो हम। चोर बोले–कहां जाते हो? बाबा ने कहा–जहां तुम जाते हो तहां ही हम जाते हैं। बस चोरों ने जान लिया कि यह भी चोर है, उनको साथ ले लिया। फिर चोरों ने सेंध दिया और चोरी करने लगे। इधर बाबाजी भी घुसे सो इन्होंने जो एक बरतन उघाड़ा तो उसमें लड्डू रखे थे और बाबा सारे दिन के भूखे थे इन्होंने झट ठाकुरजी का बटुआ निकाल ठाकुरजी के सामने भोग रख शंख बजाया। शंख बजते ही घर के सब लोग जाग पड़े और चौरों के संग बाबा भी पकड़े गये और इनकी बड़ी दुर्दशा हुई। इसलिये बुरे संग से अवश्य बचना चाहिये।

विचारने लगे कि यह क्या बात है। जब मैं उसके महल में जाता था तो मेरे घुसने से पहले ही वह सुंदरी॥२॥ हँसती हुई मुझे लेने को पास आती थी सो आज क्या कारण है कि यहां नहीं दीखती है। यह मन में विचार कर बड़े उदास मन से॥३॥

प्रपच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा ॥ नायाति मां यथापूर्वं मत्प्रिया प्रियदर्शना ॥४॥ ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे ॥ कारणंतत्र देव त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि ॥५॥ इत्युक्तो भयसंत्रस्तो राजा तस्याः समीपगः ॥ उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन्वै पाणिनाब्रवीत् ॥६॥ किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च ॥ मांत्वंखेदयसेभीरु यतोमांनावभाषसे ॥७॥ अलङ्कारं परित्यज्यभूमौमलिनवाससा ॥ किमर्थं ब्रूहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम् ॥८॥ को वातवाहितंकर्तानारीवापुरुषोऽपिवा ॥ समेदण्डयश्चवध्यश्च भविष्यतिनसंशयः ॥९॥ ब्रूहिदेवियथाप्रीतिस्तदवश्यं ममाग्रतः ॥ तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात् ॥१०॥ जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मां स्ववशे स्थितम् ॥ तथापिमांखेदयसे वृथा तव परिश्रमः ॥११॥ ब्रूहि कं धनिनः कुर्यां दरिद्रं तेऽप्रियंकरम् ॥ धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥१२॥

दासियों से पूछने लगे कि सौभाग्यवती स्वामिनी कहां है? मेरी परम सुन्दरी प्यारी रानी आज नित्य की भांति मुझे लेने नहीं आई है॥४४॥ उन्होंने विनय की कि वे तो कोपभवन में चली गईं हैं हे राजन्! आप वहां जाकर कारण निश्चय कर लीजिये, हम कुछ नहीं जानती हैं॥५॥ जब दासियों ने यह कहा तब राजा भय के मारे डरते डरते उसके पास गये और पास बैठकर और हाथ से उसके शरीर को धीरे धीरे छूकर कहने लगे॥६॥ यह क्या बात है कि पलँग तोशक तकियों को छोड़कर धरती पर लेट रही है और मुझसे अनबोला हो मुझे दुःखी कर रही है॥७॥ आभूषणों को उतार डालने का और मैले वस्त्र पहिरकर पृथ्वी पर लेटने का कारण क्या है? सो मुझसे सब कहना चाहिये जो तेरी इच्छा होगी सो ही करूंगा॥८॥ किसने तेरा बुरा चीता है। यह अहित करनेवाला स्त्री हो वा पुरुष हो उसे दंड दिये या वध किये बिना नहीं छोडूंगा, इसमे सन्देह नहीं है॥९॥ हे रानी! तू प्रसन्न होकर यह बात अवश्य मेरे सामने कह दे, चाहे कैसे कठिन बात हो, मैं उसको अभी पूरा करूंगा॥१०॥ तू मेरे हृदय के भाव को जानती है कि मैं तेरा प्यारा तेरे वश में

हूं तो भी तू मुझे खेद करा रही है सो यह तेरा परिश्रम वृथा का है।।११।। और कह तो सही कौन से तेरे हितू रंक को धनी कर दूं और कौन से तेरे अहित करनेवाले धनी को क्षण भर में दरिद्र कर दूं।।१२।।

ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यते ।। किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ।।१३।। मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः । तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम् ।।१४।। इति ब्रूवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि ।। शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानंप्रत्यभाषत ।।१५।। यदिसत्यप्रतिज्ञोऽसिशपंथकुरुषेयदि ।। याच्ञां मे सफलांकर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हसि ।।१६।। पूर्व देवसुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः ।। तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्ट चेतसा ।।१७।। तद्द्वयं न्यासभूतंमेस्थापितंत्वयिसुव्रत ।। तत्रैकेन वरेणाशुभरतं मे प्रियंसुतम् ।।१८।। एभिःसंभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय अपरेणवरेणाशुरामोगच्छतुदण्डकान् ।।१९।। मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः ।। चतुर्दशसमास्तत्रकन्दमूलफलाशनः ।।२०।। पुरायातुतस्यान्तेवनेवातिष्ठतुस्वयं ।। प्रभातेगच्छतुवनंरामोराजीवलोचनः ।।२१।।

तू कहे जिसे मार डालूं, तू कहे जिसे वधयोग्य छोड़ दूं और यहां बहुत कहने सुनने में क्या धरा है हे प्यारी! तेरे लिये मैं प्राण भी दे सकता हूं।।१३।। कमलनयन रामचन्द्र मुझे अपने प्राणों से भी प्यारे हैं उनकी सौगन्ध खाता हूं कि जिसमें तेरा भला होगा उसे मैं करूंगा, तेरे कहने की देर है।।१४।। जब राजा ने यह कहा और रामजी की सौगन्ध खाई तब तो कैकई दोनों आंख पोंछाकर राजा से बोली।।१५।। तो तुम सत्यप्रतिज्ञ हो और रामजी की सौगन्ध खाते हो तो तुम शीघ्र मेरी याचना को सफल करो।।१६।। पहिले जब देवता और असुरों से संग्राम हुआ था तब मैंने तुम्हारी रक्षा की थी और उस समय तुमने चित्त में प्रसन्न होकर मुझे दो वरदान दिये थे।।१७।। और हे सुव्रत! मैंने वे दोनों वरदान आपके ही पास धरोहर की तरह रख छोड़े हैं सो उस एक वर से तो मेरे प्यारे पुत्र भरत को इस तैयार सामग्री से शीघ्र राजतिलक करो और दूसरे वर से रामचन्द्रजी शीघ्र दंडकारण्य में चले जायं।।१८।।१९।। और श्रीमान् रामचन्द्र मुनियों का सा वेश धरकर, जटाजूट बांध, छाल के वस्त्र धारणकरं और कंद मूल फल खाकर वहां चौदह वर्ष बितावे।।२०।। और इसके पीछे लौटकर आवें अथवा वनमें ही रहें जो चाहें सो करें। परन्तु प्रातःकाल होतेही कमलनयन रामचन्द्र वनको जायं।।२१।।

यदि किंचिद्विलम्बेतप्राणांस्त्यक्ष्ये तवाग्रतः ।भवसत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेवमम प्रियम् ॥२२॥ श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं कैकेय्यारोमहर्षणम् ॥ निपपातमहीपालोवज्राहतइवाचल ॥२३॥ शनैरुन्मील्यनयने विमृज्यपरयाभिया ॥ दुःस्वप्नोवामयादृष्टोह्यथवा चित्तविभ्रमः ॥२४॥ इत्यालोक्य पुरः पत्नींव्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् ॥ किमिदं भाषसे भद्रे ममप्राणहरं वचः ॥२५॥ रामः कमपराधं ते कृतवान्कमलेक्षणः ॥ ममाग्रे राघवगुणान्वर्णयस्यनिशं शुभान् ॥२६॥ कौशल्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषां कुरुतेसदा ॥ इति ब्रुवन्ती त्वं पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा ॥२७॥ राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे ॥ अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव ॥२८॥ इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पादयोर्निपपात ह ॥ कैकेयी प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना ॥२९॥ राजेन्द्र किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद्भाषसेऽन्यथा ॥ मिथ्या करोषिचेत्स्वीयं भाषितं नरको भवेत् ॥३०॥

यदि इसमें कुछ देर हुई तो आपके देखते २ प्राण दे दूंगी। जो तुमने प्रतिज्ञा करी है उसे सत्य करो यही मुझे प्रिय है॥२२॥ कैकेई इस कठोर वचन को सुनकर राजा के रोंगटे खड़े हो गये और वह बिजली के मारे पर्वत के समान पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़े॥२३॥ फिर धीरे धीरे अपने नेत्रों को खोलकर और उन्हें पोंछकर बड़े भय से यों सोचने लगे कि मैंने बुरा सुपना देखा है वा मेरे चित्त में भ्रम हो गया है॥२४॥ और वाघनी के समान रानी को सामने खड़ी देखकर कहने लगे कि हे कल्याणी! तू जो यह वचन कह रही है सो क्या मेरे प्राण लेना चाहती है॥२५॥ कमल के समान नेत्रवाले रामचन्द्रजी ने तेरा क्या अपराध किया है तू तो मेरे सामने रामजी के सुन्दर गुणों की सदा बड़ाई किया करती है॥२६॥ पहिले भी तू यह कहा करती थी कि राम कौसल्या को और मुझे समान भाव से देखते हैं और सदा शुश्रूषा करते रहते हैं और अब तू उससे उलटी बातें कहती है॥२७॥ तू अपने पुत्र के लिये राज्य ले ले और रामजी को महल में रहने दे हे रानी! मेरे ऊपर इतनी दया कर रामचन्द्र से तुझे कुछ भय नहीं है॥२८॥ यह कहकर राजा रोते रोते उसके चरणों में पड़ गये। उस समय कैकेई लाल लाल नेत्र काढ़कर यह बोली कि॥२९॥ हे महाराज! क्या तुम्हें भ्रम हो गया है अर्थात् तुम्हारी बुद्धि मारी गई है कि वचन देकर भी अपने कहे को मुकरते हो और जो तुम अपने वचन को मिथ्या करोगे तो तुम्हें नरक होगा॥३०॥

वनं न गच्छेद्यदि रामचन्द्रः प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः ।। उद्बन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाहम् ।।३१।। सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु ।। रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि ।।३२।। इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्णवे नृपः ।। मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा।।३३।।एवं रात्रिर्गता तस्य दुःखात्संवत्सरोपमा ।। अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः ।।३४।। निवारयित्वा तान् सर्वान्कैकेयीरोषमास्थिता ।। ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः ।।३५।। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा ।। छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वाजी तथैव च ।।३६।। अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा ।। वसिष्ठेन यथाऽऽज्ञप्तं तत्सर्वं तत्र संस्थितम् ।।३७।।

जो प्रातःकाल होते ही रामचन्द्र मृग चर्म और लंगोटी लगाकर वन को नहीं जायेंगे तो अपने गले में फांसी लगाकर वा विष खाकर तुम्हारे सामने ही प्राण खो दूंगी।।३१।। तुम सब सभाओं के बीच में बैठकर डींगे मारा करते हो कि मैं ही इस जगत् में सत्यप्रतिज्ञ हूं और अब राम की सौगंध खाकर भी मिथ्याप्रतिज्ञ बनते हो तुम नरक में जाओगे।।३२।। जब कैकेई ने यह कहा तो राजा दुःखी होकर दुःखसागर में डूब गये और पछाड़ खाकर धरती में गिर पड़े और मुरदे के समान अचेत हो गये।।३३।। इस प्रकार राजा को दुःख के कारण यह रात वरस दिन के समान बीती। जब सवेरा हुआ

दृष्टांत-देखो सत्य की बड़ी महिमा है एक समय एक सत्यप्रतिज्ञ राजा ने एक बाजार बनवाया और यह ढंढोरा पीट दिया कि जो वस्तु यहां बेचने को लावेगा और संध्या तक न बिके तो मैं उसे खुद मोल ले लूंगा इस प्रकार उस बाजार का बड़ा नाम फैल गया। एक दिन एक लुहार शनैश्चरजी की मूर्त्ति बनाकर वहां बेचने लाया और उसका मोल एक लाख रुपया मांगा और कहा कि जिसके यहां यह मूर्त्ति रहेगी उसके यहां दरिद्र आवेगा धन धर्म सब जाते रहेंगे यह सुन उस मूर्त्ति को किसी ने नहीं लिया। संध्या समय राजा ने देखा कि बड़ी भीड़ लग रही है राजा के कारण पूछा और अंत में उस मूर्त्ति को एक लाख में ले लिया। जब राजा ने घर में मूर्ति रखी तो पहिले राजा से लक्ष्मी बोली हे राजा! मैं तो जाती हूं राजा बोला क्यों जाती है? लक्ष्मी ने कहा जहां शनि देवता है वहां मेरा क्या काम राजा ने कहा जाओ। इसी प्रकार धर्म नीति साम दान दंड भेद सब रूप धर धर के आये और कहा कि हम भी जाते हैं राजा ने कहा क्यों जाते हो? उन्होंने कहा शनीश्चर के मारे राजा ने कहा जाओ सो वे भी चल दिये। फिर सत्यदेव आये कि राजा सब धर्म कर्म चले गये अब मैं क्या यहां रहकर मक्खियां मारूं सो मैं भी जाता हूं यह कहकर ज्यों ही चले त्यों ही राजा ने हाथ पकड़कर कहा कि आपके रखने को तो हमने शनीश्चरजी को मोल लिया है तुम्हें कैसे जाने देंगे यह सुन सत्य से कुछ उत्तर न आया और वे नहीं गये उनके ठहरने से लक्ष्मी आदि सब धर्म कर्म लौट आये और शनैश्चर राजा का कुछ न कर सके।

और बंदीजन यश बखानने लगे गवय्यों ने गाना आरंभ किया।।३४।। यह सुन कैकेई ने क्रोध में आकर उन सबको मना कर दिया फिर प्रातः काल बीच की ड्योढ़ी पर गुरु की आज्ञानुसार ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, ऋषि और कन्यायें ये सब उपस्थित हो गये। और छत्र, दिंव्य चमर, हाथी, घोड़ा, वेश्यायें, पुरवासी, देशवासी, और जो २ वसिष्ठजी ने राजगद्दी की सामग्री की आज्ञा करी थी सो सब (सुवर्ण के जलपूरित घड़े आदि) वहां उपस्थित हुए।।३५।।३६।।३७।।

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे ।। कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ।।३८।। सर्वाभरणसंपन्नं किरीटकटकोज्ज्वलम् ।। कौस्तुभाभरणं श्यामं कन्दर्पशतसुन्दरम् ।।३९।। अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मितााननम् ।। श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ।।४०।। रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् ।। इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः ।।४१।। नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन् ।। सुमन्त्रः शनकैः प्रायाद्यत्र राजाऽवतिष्ठते ।।४२।। वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन्शिरसा नृपम् ।। अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत ।।४३।। देवि कैकेयि वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा ।। तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ।।४४।।

अयोध्यावासी बूढ़े बड़े नर नारी और बालक इनको रात्रिभर निद्रा न आई। उनको यह आशा लगी रही कि कब सवेरा हो और कब हम पीतांबरधारी रामचन्द्रजी के दर्शन करें।।३८।। संपूर्ण आभूषण पहिरे सुन्दर झकझकाता हुआ किरीट मुकुट धारण किये, कंठ में कौस्तुभमणि लटकाये श्यामवर्ण, सैंकड़ों कामदेवों के समान सुन्दर राजतिलक के अनंतर मंद हँसते हुए, हाथी पर बैठकर आते हुए, पीछे २ सुन्दर लक्षणोंसहित लक्ष्मणजी श्वेत छत्र धारण किये ऐसे रामचन्द्रजी का दर्शन कब सबेरा हो और कब हम करें। इस प्रकार सब पुरवासी अपने अपने मन में चाहना कर रहे थे।।३९।।४०।।४१।। (जब प्रातः काल हो गया और राजा नहीं उठे) तो सुमंत्र नाम मंत्री को बड़ी चिन्ता हुई कि क्या कारण है कि राजा अभी तक नहीं उठे और धीरे २ जहां राजा थे वहां गये।।४२।। महाराज का जय २ कार हो ऐसा

कहकर शिर नवाकर उनको प्रणाम किया और राजा को बड़ा उदास देखकर कैकेई से बोले कि।।४२।। हे रानी कैकेई! तुम्हारा प्रताप बढे। कहिये राजा की यह क्या दुर्दशा हो रही है। कैकेई ने उन्हें उत्तर दिया कि राजा को रात भर नींद नहीं आई है।।४४।।

राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।। प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते ।। राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ।।४५।। सुमन्त्र उवाच ।। अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि ।। तत् श्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ।।४६।। सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् ।। इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम् ।।४७।। अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत् ।। शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ।।४८।। पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।। इत्युक्तो रथ मारुह्य संभ्रमत्त्वरितो ययौ ।।४९।। रामः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः ।। मध्यकक्षेवसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वितः ।।५०।। पितुः समीपंसंगम्यननामचरणौपितुः ।। राममालिङ्गितुंराजासमुत्थायससंभ्रमः ।।५१।। बाहूप्रसार्यरामेतिदुःखान्मध्येपपातह ।। हाहेति रामस्तच्छीघ्रमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ।।५२।। राजानं मूर्छितंदृष्ट्वाचक्रुशुःसर्वयोषितः ।। किमर्थंरोदनमितिवसिष्ठोऽपि समाविशत् ।।५३।। रामः पप्रच्छकिमिदंराज्ञोदुःखस्यकारणम् ।। एवंपृच्छतिरामेसाकैकेयीराममब्रवीत् ।।५४।।

हे राम! हे राम! हे राम! यों राम की ही चिंता करते करते २ रात भर जगने के कारण वे चित्त में उदास हो रहे हैं। तुम जाकर रामचन्द्र को शीघ्र बुला लाओ राजा उनको देखना चाहते हैं।।४५।। सुमंत्र ने कहा-हे महारानी! महाराज की बिना आज्ञा मैं रामजी को बुलाने कैसे जा सकता हूं मंत्री का यह वचन सुनकर राजा ने मंत्री से कहा कि ।।४६।। हे सुमंत्र! मैं सुन्दर रामचन्द्र को देखना चाहता हूं तुम जाकर शीघ्र लिवा लाओ। राजा की आज्ञा से सुमंत्र तुरंत रामजी के महल को विदा हुए।।४७।। उनको जाते में किसी ने नहीं रोका और सुमंत्र तुरन्त भीतर चले गये और रामजी से बोले कि हे राम! हे कमलनयन! तुम्हारा कल्याण हो मेरे साथ पिता के महल को शीघ्र चलिये पिता तुम्हें देखना चाहते हैं। जब सुमंत्र ने उनसे यह कहा तब रामचंद्र लक्ष्मण को साथ लिये सारथी के साथ रथ में बैठकर शीघ्रता

से चले। बीच की डचोढी पर जो वसिष्ठ आदि ऋषि खड़े थे उन्हें केवल देखते हुए जल्दी के मारे चले गये।।४८।।४९।।५०।। और पिता के पास जाकर पिता के चरणों को प्रणाम किया। राजा रामचन्द्र को हृदय से लगाने के लिये जल्दी से उठे और बाहु पसारकर "राम" इतना ही कहने पाये थे कि दुःख के मारे बीच में ही गिर पड़े। रामजी ने "हाय हाय" ऐसा शब्द कहकर और राजा को छाती से लगाकर अपनी गोदी में लेटा लिया।।५१।।५२।। राजा को मूर्च्छित देखकर सब रानियां रोने लगीं। "यह रोदन कैसे" यह विचार कर वसिष्ठजी भी भीतर आ गये।।५३।। रामचन्द्र ने कैकेई से राजा के दुःख का कारण पूछा। जब राम ने कारण पूछा तब कैकेई राम से बोली।।५४।।

त्वमेवकारणंह्यत्रराज्ञो दुःखोपशान्तये ।। किंचित्कार्यंत्वयारामकर्तव्यंनृपतेर्हितम् ।।५५।। कुरुसत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानंसत्यवादिनम् ।। राज्ञावरद्वयंदत्तंममसंतुष्टचेतसा ।।५६।। त्वदधीनंतुतत्सर्वंवक्तुंत्वांलज्जतेनृपः सत्यपाशेनसंबद्धंपितरंत्रातुमर्हसि ।।५७।। पुत्रशब्देनचैतद्धिनरकात्त्रायते पिता ।। रामस्तयोदितंश्रुत्वाशूलेना भिहतो यथा ।।५८।। व्यथितः कैकयींप्राहकिंमामेवंप्रभाषसे ।। पित्रर्थेजीवितंदास्येपिबेयंविषमुल्बणम् ।।५९।। सीतांत्यक्ष्येऽथ कौशल्यांराज्यंचापित्यजाम्यहम् ।। अनाज्ञप्तोऽपि कुरुतेपितुः कार्यंसउत्तमः ।।६०।। उक्तः करोति यः पुत्रः समध्यमउदाहृतः ।। उक्तोऽपिकुरुतेनैवसपुत्रोमलउच्यते ।।६१।। अतःकरोमितत्सर्वं-यन्मामाहपितामम ।। सत्यंसत्यंकरोम्येवरामोद्विर्नाभिभाषते ।।६२।। इतिरामप्रतिज्ञांसाश्रुत्वावक्तुंप्रचक्रमे ।। रामत्वदभिषेकार्थंसंभाराः संभृताश्चये ।।६३।।

हे राम! राजा के दुःख का तुम ही कारण हो और राजा के दुःख को दूर करने के लिये तुम्हें कुछ ऐसा करना चाहिये जिसमें राजा का भला हो।।५५।। तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर राजा को सत्यवादी बनाओ। हे राम! राजा ने प्रसन्न चित्त से मुझे दो वरदान दिये थे।।५६।। वे सब तुम्हारे आधीन है परंतु राजा तुमसे कहने में लजाते हैं। राजा सत्यरूपी फंदे में फँसे हुये हैं सो पिता की रक्षा तुम्हारे हाथ है।।५७।। क्योंकि पुत्र शब्द का केवल इतना ही अर्थ है कि पुत्र नाम नरक से जो पिता की रक्षा करे सो पुत्र कहाता है। रामचंद्र कैकेई का वचन सुनकर ऐसे हो गये मानों छाती में कोई वज्र लगा

ह्रे।।५८।। और दुःखी होकर कैकेई से बोले कि मुझसे ऐसी बाते क्यों कहती हो, मैं पिता के लिये प्राण भी दे सकूंगा और विषम विष का पान भी कर लूंगा।।५९।। सीता को भी त्याग दूंगा और कौसल्या तथा राज्य को भी मैंने छोड़ा। क्योंकि जो बिना आज्ञा पाये पिता का कार्य करता है वह उत्तम पुत्र है।।६०।। और जो कहे से करता है वह मध्यम पुत्र कहलाता है और जो कहे से भी नहीं करता वह पुत्र पिता का मल कहलाता है।।६१।। इसलिये मेरे पिता जो कुछ करने के लिये मुझसे कहेंगे वह मैं सब करने को तैयार हूं और अवश्य करूंगा। यह मेरा वचन बारंबार सत्य समझना। राम दो बातें कहना नहीं जानता अर्थात् मेरा कहना पत्थर की लकीर है।।६२।। रामजी की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर उस कैकेई ने यों कहना आरंभ किया कि हे राम! (एक बरसे से) तुम्हारी राजगद्दी के लिये जो ये सामग्री इकट्ठी की गई हैं।।६३।।

तैरेवभरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियोमम ।। अपरेणवरेणाशुचीरवासाजटाधरः ।।६४।। वनंप्रयाहिशीघ्रंत्वमद्यैव पितुराज्ञया ।। चतुर्दशसमास्तत्रवसमुन्यन्नभोजन ।।६५।। एतदेवपितुस्तेऽद्यकार्यंत्वंकर्तुमर्हसि ।। राजातुलज्जेवक्तुंत्वामेवंरघुनन्दन ।।६६।। श्रीराम उवाच ।। भरतस्यैवराज्यंस्यादहंगच्छामिदण्डकान् ।। किंतुराजानवक्तीहमांनजानेऽत्रकारणम् ।।६७।। श्रुत्वैतद्रामवचनंदृष्ट्वारामंपुरः स्थितम् ।। प्राहराजादशरथोदुःखितोदुखितंवचः ।।६८।। स्त्रीजितंभ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ।। निगृह्यमांगृहाणेदंराज्यंपापंनतद्भवेत् ।।६९।। एवंचेदनृतंनैवमांस्पृशेद्रघुनन्दन ।। इत्युक्त्वादुःखसंतप्तो विललापनृपस्तदा ।।७०।। हारामहाजगन्नाथ हाममप्राणवल्लभ ।। मांविसृज्यकथंघोरंविपिनंगन्तुमर्हसि ।।७१।। इतिरामंसमालिङ्ग्यमुक्तकण्ठोरुरोदह ।। विमृज्यनयनेरामः पितुः सजलपाणिना।।७२।।

उनसे मेरे प्यारे भरतजी को राजतिलक अवश्य होना चाहिये और दूसरे वर से तुम तुरंत चीर वस्त्र पहन जटाजुट बांध तुम पिता की आज्ञा से शीघ्र वन को चले जाओ और वहां मुनियों के अन्न भोजन कर चौदह वर्ष तक निवास करो।।६४-६५।। तुम्हारे पिता का यही कार्य है सो तुम्हें आज करना चाहिये और हे रघुनन्दन! राजा तो तुमसे कहने में लजाते हैं।।६६।। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि भरतजी को भले ही राज्य हो, मैं दंडकवन जाने को तैयार हूं परंतु राजा मुझसे नहीं बोलते इसका कारण मुझे नहीं जान पड़ता।।६७।। राम का यह वचन सुनकर और उन्हें आगे खड़ा देखकर

अ०रा०
८०

राजा दशरथ ने दुःखदायी यह वचन कहा कि स्त्री के वशीभूत होने से मेरा चित्त ठिकाने नहीं है और मैं अधर्म माग में चल रहा हूं इसलिये मुझे तो बांधकर कारगार* में रखो और इस राज्य को ग्रहण करो, ऐसा करने से तुम्हें पाप न होगा।।६८–६९।। (अब कदाचित् राम कहें कि मिथ्यावाद को तुमको तो दोष होगा तहां दशरथजी कहते हैं कि) जो तुम करोगे तो मुझे भी झूंठ का दोष नहीं लगेगा (क्योंकि आप जानकर न देता तो दोष होता और जब मैं ही पराधीन हूं तो दोष कहां रहा) यह कहकर राजा उस समय दुःख से दुःखी होकर विलाप करने लगे।।७०।। हा राम! हा जगन्नाथ! ** हा मेरे प्राणवल्लभ! मुझे छोड़कर तुम भयंकर वन में कैसे जा सकोगे।।७१।। यह कहकर और रामचन्द्र को छाती से लगाकर चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे। राम ने गीले हाथों से पिता की आंखें पोंछी।।७२।।

आश्वासयामासनृपंशनैःसनयकोविदः ।। किमत्रदुःखेनविभोराज्यंशासतुमेऽनुजः ।।७३।। अंहप्रतिज्ञानिस्तीर्यपुनर्यास्यामितेपुरम् ।। राज्यात्कोटिगुणंसौख्यंममराजन्वनेसतः ।।७४।। त्वत्सत्यपालनंदेवकार्यंचापिभविष्यति ।। कैकेय्याश्चप्रियोराजन्वनवासोमहागुणः ।।७५।। इदानींगन्तुमिच्छामिव्येतुमातुश्चहृज्ज्वरः ।। संभाराश्चोपह्लीयन्तामभिषेकार्थमागताः ।।७६।। मातरेचसमाश्वास्यअनुनीयचजानकीम् ।। आगत्यपादौवन्दित्वातवयास्येसुखंवनम् ।।७७।। इत्युक्त्वातुपरिक्रम्यमातरंद्रष्टुमाययौ ।। कौसल्याऽपिहरेः पूजांकुर्वतेरामकारणात् ।।७८।। होमंचकारयामासब्राह्मणेभ्योददौधनम् ।। ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसामौनमास्थिता ।।७९।। अन्तःस्थमेकंघनचित्प्रकाशंनिरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ।। विष्णुंसदानन्दमयंहृदब्जे साभावयन्तीनददर्शरामम् ।।८०।। इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहे० अयोध्याकाण्डेतृतीयः सर्गः ।।३।।

अ०का०
सर्ग
४

और नीतिज्ञ रामचन्द्रजी ने धीरे धीरे राजा से यह कहकर उनको धीरज बँधाई कि आप तो ज्ञानवान् हैं। मेरा छोटा भाई भरत राज्य का शासन करेगा, इसमें दुःख करने का क्या काम है।।७३।। और मैं प्रतिज्ञा को पूरी कर फिर अयोध्या

---

* गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्य्यमजानतः उत्पथ प्रतिपन्नस्य दंड एव विधीयते ।। अर्थात् जो गर्वयुक्त होकर कार्य और अकार्य को न जानता हो और कुमार्ग में चले तो ऐसे गुरु को भी दंड देना चाहिये। ** यहां जगन्नाथ और प्राणवल्लभ! पदों का यह भाव है कि तुम तो जगत् के स्वामी हो, तुम्हें तो वन और राज्य समान है परंतु तुम मेरा प्राणवल्लभ हो सो मेरे प्राण तुम्हारे ही तक हैं तुम गये और ये छूटे।

को लौट आऊँगा। और हे राजन्! वन में वसने से मुझे राज्य से करोड़ गुना सुख है।।७४।। और हे देव! तुम्हारा तो सत्यपालन होगा और उधर देवताओं का कार्य भी हो जायगा। और मेरा वन में रहना कैकेई माता को भी अच्छा लगता है सो हे पृथ्वीपते! वनवास में बड़ा भारी गुण है।।७५।। मैं अभी वन को जाता हूं कि जिससे कैकेई माता की छाती ठंडी होय और मेरे राजतिलक के लिये जो सामग्रियां आई हैं उन्हें जहां की तहां करवा दीजिये।।७६।। मैं माता को धीरज बँधाकर और जानकी को समझा आऊँ फिर आकर और तुम्हारे चरणों को प्रणाम करके सुखपूर्वक वन को जाऊँगा।।७७।। रामजी यह कहकर और राजा की परिक्रमा करके माता के दर्शन करने आये। यहां कौसल्या भी रामजी के हित के लिये भगवान् की पूजा कर रही थी।।७८।। ब्राह्मणों से हवन कराकर और उन्हें धन देकर मौन हो एकाग्र मन से विष्णुभगवान् के ध्यान में लगी थी।।७९।। और कौसल्या अपने हृदयकमल में सबके अंतर्यामी, अद्वितीय, सघन, चैतन्य, प्रकाशरूप और सब देवताओं के बड़े बड़े स्वरूपों से बढ़कर और सदा आनन्द स्वरूप विष्णु के ध्यान में ऐसी मगन थी कि उसने अपने आगे खड़े हुए रामचन्द्र को नहीं देखा।।८०।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकांड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।।३।।

श्रीमहादेव उवाच ।। ततः सुमित्रादृष्टैनंरामंराज्ञीससंभ्रमा ।। कौसल्यांबोधयामासरामोऽयंसमुपस्थितः ।।१।। श्रुत्वैवरामनामैपाबहिर्दृष्टिप्रवाहिता ।। रामंदृष्ट्वाविशालाक्षमालिंग्याङ्केन्यवेशयत् ।।२।। मूर्ध्न्यवघ्रायपस्पर्शगात्रंनीलोत्पलच्छवि ।। भुंक्ष्वपुत्रेतिचप्राहमिष्टमन्नंक्षुधार्दितः ।।३।। रामःप्राहनमेमात-र्भोजनावसरः कुतः ।। दण्डकागमनेशीघ्रंममकालोऽद्यनिश्चितः ।।४।। कैकेयीवरदानेनसत्यसन्धःपितामम ।। भरताय ददौराज्यंममाप्यारण्यमुत्तमम् ।।५।। चतुर्दशसमास्तत्रह्युषित्वामुनिवेषधृक् ।। आगमिष्येपुनः शीघ्रंनचिन्तांकर्तुमर्हसि ।।६।। तत्श्रुत्वासहसोद्विग्नामूर्च्छितापुनरुत्थिता ।। आहरामंसुदुःखार्तादुःखसागर संप्लुता: ।।७।। यदिरामवनंसत्यंयासिचेन्नयमामपि ।। त्वद्विहीना क्षणार्धवाजीवितंधारयेकथम् ।।८।। यथा गौर्बालकं वत्संत्यक्त्वातिष्ठेन्नकुत्रचित् ।। तथैवत्वांनशक्नोमित्यक्तुंप्राणात्प्रियंसुतम् ।।९।। भरतायप्रसन्नश्चे-द्राज्यंराजाप्रयच्छतु ।। किमर्थंवनवासायत्वामाज्ञापयतिप्रियम् ।।१०।। कैकेय्यावरदोराजासर्वस्वंवाप्रयच्छतु

।। त्वया किमपराद्धंहिकैकेय्यावानृपस्यवा ।।११।।

महादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके अनंतर रानी सुमित्रा ने रामचन्द्र को देखकर जल्दी से कौसल्या को जताया कि रामचन्द्र तुम्हारे पास खड़े हैं।।१।। उसने राम का नाम सुनते ही ध्यान को त्याग नेत्र खोले और विशाल नेत्रवाले रामचन्द्र को देखकर और छाती से लगाकर उन्हें गोदी में बैठा लिया।।२।। फिर उनका सिर सूंघकर उनके नीलकमल के समान कान्तिमान् शरीर पर हाथ फेरा और कहा हे पुत्र! भूखे होगे, कुछ मिठाई खा लो।।३।। रामचन्द्र ने कहा–हे माता! मुझे भोजन करने के लिये समय नहीं है। आज ही शीघ्र दंडकारण्य जाने के लिये मेरा समंय निश्चित् हो चुका है।।४।। कैकेई के वरदान के कारण सत्यप्रतिज्ञ मेरे पिता ने भरतजी को राज्य और मुझे वन का उत्तम राज्य दिया है।।५।। मुनि का वेश धारण किये मैं वहां चौदह वर्ष रहकर फिर शीघ्र लौट आऊँगा, कुछ चिंता मत करो।।६।। यह सुनकर वह एक साथ घबराकर मूर्च्छित हो गई और दुःख से ऐसी दुःखी हुई, मानो दुःखसागर में डूब गई परंतु फिर उठकर रामजी से बोली।।७।। हे राम! जो तुम सच्च ही वन को जाते हो तो मुझे भी साथ ले चलो क्योंकि तुम्हारे बिना आधे पल भी मैं कैसे प्राण रख सकूंगी।।८।। जैसे गौ, बालक बछड़े को छोड़कर कहीं नहीं ठहर सकती वैसे ही मैं भी तुम सरीखे प्राणों से भी प्यारे पुत्र को कैसे छोड़ सकती हूं।।९।। और जो राजा भरत पर प्रसन्न हैं तो भले ही उन्हें राज्य दें परंतु तुम क्या उनके प्यारे नहीं हो, तुम्हें वन जाने की आज्ञा क्यों देते हैं। यदि कैकेई को वर ही देना है तो राजा उसे सर्वस्व दे दें परंतु तुमने कैकेई वा राजा का क्या अपराध किया है।।११।।

पिता रुर्यथारामतवाहमधिकाततः ।। पित्राज्ञप्तोवनंगन्तुंवारयेयमहं सुतम् ।।१२।। यदि गच्छसिमद्वाक्यमुल्लंघ्यनृपवाक्यतः ।। तदाप्राणान्परित्यज्यगच्छामियमसादनम् ।।१३।। लक्ष्मणोऽपि ततः श्रुत्वा कौसल्यावचनंरुषा ।। उवाच राघवंवीक्ष्यदहन्निव जगत्त्रयम् ।।१४।। उन्मत्तंभ्रान्तमनसंकैकेयीवशवर्तिनम् ।। बद्ध्वानिहन्मिभरतंतद्बन्धून्मातुलानपि ।।१५।। अद्यपश्यन्तुमेशौर्यंलोकान्प्रदहतः पुरा ।। रामत्वमभिषेकायकुरुयत्नमरिंदम ।।१६।। धनुष्पाणिरहंतत्रनिहन्यांविघ्नकारिणः ।। इति ।।

जैसे पिता तुम्हारे बड़े हैं वैसे ही तुम्हारी उनसे बड़ी मैं हूं। पिता ने पुत्र को वन जाने की आज्ञा दी है और मैं मना करती

हूं।।१२।। जो मेरी बात का उल्लंघन कर पिता का कहने से वन को जाते हो तो मैं* भी प्राणों को छोड़कर यम के घर जाती हूं।।१३।। फिर लक्ष्मणजी कौसल्या के वचन सुनकर बड़े क्रोधित हुए और त्रिलोकी को मानों भस्म करते हुए रामजी की ओर देखकर बोले कि।।१४।। प्रभो! पागल अस्थिर चित्त और कैकेई के वशीभूत राजा को बांधकर सहायकों समेत भरत को और उसके मामा को मार डालूं।१५।। प्रलयकाल में जैसे कालाग्नि रुद्ररूप से लोकों को भस्म करता है, ऐसे ही आज मेरी शूरता आप देखें और हे राम! तुम तो शत्रुओं के दमन करनेवाले हो। अपने राजतिलक के लिये उपाय करो।।१६।।

ब्रुवन्तंसौमित्रिमालिङ्ग्यचरघुनन्दनः ।।१७।। शूरोऽसि रघुशार्दूल ममात्यन्तहिते रतः ।। जानामिसर्वंतेसत्यं किंतुतत्समयोनहि ।।१८।। यदिदंदृश्यते सर्वंराज्यंदेहादिकंचयत् ।। यदि सत्यंभवेत्तत्रआयासः सफलश्चते ।।१९।। भोगामेघवितानस्थानविद्युल्लेखेवचञ्चलाः ।। आयुरप्यग्निसंतप्तलोहस्थजलविन्दुवत् ।।२०।। यथाव्यालगलस्थोऽपिकोदंशानपेक्षते ।। तथाकालाहिनाग्रस्तोलोको भोगानशाश्वताम् ।।२१।। करोतिदुःखेन-हिकर्मतन्त्रंशरीरभोगार्थमहर्निशं नरः ।। देहस्तुभिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यतेकोवात्रभोगः पुरुषेणभुज्यते ।।२२।। पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्ध्वादिसङ्गमः ।। प्रपायामिवजन्तूनांनन्द्यांकाष्ठौघवच्चलः ।।२३।। छायेवलक्ष्मीश्च पला प्रतीतातारुण्यमम्बूर्मिवदध्रुवंच ।। स्वप्नोपमंस्त्रीसुखमायुरल्पंतथापिजन्तोरभिमानएषः ।।२४।।

मैं धनुष को हाथ में लेकर वहां जितने विघ्नकर्ता होंगे सबको मार डालूंगा। इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणजी को रामचन्द्रजी ने छाती से लगा लिया। और बोले हे लक्ष्मण! तुम रघुवंशियों में सिंह के समान शूर हो और मेरे अत्यन्त

---

* माता का पुत्र पर ऐसा ही प्रेम होता है–यहां एक दृष्टांत कहते हैं। जैसे एक साहूकार था और उसके स्त्री और एक बेटा था। फिर थोड़े दिन में साहूकार मर गया। साहूकार की स्त्री ने बेटा खिलाने के लिये एक टहलनी रखली–कितने ही दिनों में लड़का बडा हो गया तब साहूकार ने टहलनी से कहा कि मैं तुझे अब नहीं रखूंगी। तू और जगह जाकर रुजगार ढूंढ ले। यह सुन वह टहलनी बेटे को लेकर चली कि यह मेरा है अब तो दोनों में झगड़ा हुआ और वे अपना फैसला कराने राजा के यहां पहुंची; टहलनी ने राजा से कहा कि मैं और मेरा बेटा इसके यहां रहते थे। अब मैं चलने लगी तो यह मेरा बेटा छीन रही है। इधर साहूकारनी ने कहा कि बेटा मेरा है, इसे पालने के लिये मैंने ही इसे रखा था। अब यह मेरा बेटा बडा हो गया और मैंने इसे छुड़ाई तो यह बेटे को अपना बताने लगी। राजा ने कहा–अच्छा हम एक तलवार से इस काटकर आधा आधा कर देते हैं, सो एक एक हिस्सा ले लेना। राजी होना, टहलनी ने कहा–जैसी आपकी इच्छा हो कर दो। फिर सेठानी से पूछा–तू क्या कहती है, उसने रोकर कहा कि हाय इसे काटो मत, मुझे आधा नहीं चाहिये, इसी राण्ड का मुंह झुलसौ क्योंकि ज़ीता रहेगा तो कभी कभी देख तो लूंगी। यह सुन राजा ने वह लड़का सेठानी को दिला दिया और उस नौकरानी को पिटवाकर निकाल दिया। सो माता का पुत्र पर बड़ा प्रेम होय है, ऐसा किसी का नहीं होता है।

हित में तुम्हारी प्रीति है। तुम्हारी इन सब बातों को सत्य जानता हूं परंतु पराक्रम करने का समय यह तो नहीं है॥१८॥ यह जो संपूर्ण राज्य और देहादिक दीखता है यदि सत्य होय तो तुम्हारा परिश्रम सफल हो सकता है॥१९॥ हे लक्ष्मण! इन्द्रियों के जितने भोग हैं वे सब मेघों से समूहों में बिजली की चमक के समान चंचल हैं और वायु अग्नि से तपाये लोह के ऊपर जल की बूंद के समान हैं॥२०॥ जैसे मेंढक सर्प के गले में पहुँचकर भी वनमक्खी मच्छर आदि के पकड़ने की इच्छा करता है वैसे ही सब लोग कालरूपी सर्प से ग्रसित होकर भी नाशवान् भोगों की इच्छा करते हैं॥२१॥ मनुष्य अपने शरीर के भोग के लिये रात्रि दिन बड़े कष्ट से धनोपार्जनरूप लौकिक कर्म और स्वर्गादि कर्म और स्वर्गादि कामना से वेदोक्त कर्म भी करता है परन्तु जिस देह के लिये करता है वह आत्मा से अलग दिखाई पड़ता है अर्थात् जड़ है तो वह कौनसा भोग है जिसे पुरुष भोगे॥२२॥ (यदि लक्ष्मणजी कहें कि आपको विवेक से राज्य और वन एक से हैं तो भी मानो पिता आदि के संगम में वियोग तो होगा तहां रामजी कहते हैं कि) पिता माता पुत्र भाई स्त्री और बन्धुओं का साथ मनुष्यों को प्याऊ के समान है अर्थात् जैसे मनुष्य प्याऊ पर क्षणमात्र के लिये पानी को इकट्ठे होते हैं और चले जाते हैं और जैसे नदी में काष्ठ के खंड जल में बहते बहते कभी मिल जाते हैं। कभी अलग हो जाते हैं इसी भांति कर्माधीन पिता पुत्रादिकों का समागम भी स्थिर नहीं है॥२३॥ और लक्ष्मी छाया के समान चंचल प्रतीत होती हैं और तरुण अवस्था जल की तरंग के समान चंचल है। स्त्री का सुख स्वप्न के समान है और आयु भी थोड़ी है जिस पर भी प्राणी का ऐसा अभिमान है॥२४॥

संसृतिः स्वप्नसदृशीसदारोगादिसंकुला ॥ गन्धर्वनगरप्रख्यामूढस्तामनुर्तते ॥२५॥ आयुष्यंक्षीयतेयस्मादादित्यस्यगतामतैः ॥ दृष्ट्वाऽन्येषांजरामृत्यूकथंचिन्नैव बुद्ध्यते ॥२६॥ सएवदिवसः सैवरात्रिरित्येवमूढधीः ॥ भोगाननुपतत्येवकालेवेगंनपश्यति ॥२७॥ प्रतिक्षणंक्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् ॥ सपत्नाइवरोगौघाः शरीरंप्रहरन्त्यहो ॥२८॥ जराव्याघ्रीवपुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते ॥ मृत्युः सहैवयात्येषसमयंसंप्रतीक्षते ॥२९॥ देहेऽहंभावमापन्नोराजाऽहंलोकविश्रुतः ॥ इत्यस्मिन्मनुतेजन्तुः कृमिविड्भस्मसंज्ञिते ॥३०॥ त्वगस्थिमांसविण्मूत्ररेतोरक्तादिसंयुतः ॥ विकारीपरिणामी च देहआत्माकथंवद ॥३१॥ यमास्थायभवाँ-

ल्लोकंदग्धुमिच्छतिलक्ष्मण ।। देहाभिमानिनः सर्वेदोषाः प्रादुर्भवन्तिहि ।।३२।। देहोऽहमितियाबुद्धिरविद्या-साप्रकीर्तिता ।। नाहंदेहश्चिदात्मेतिबुद्धिर्विद्येतिभण्यते ।।३३।।

यह संसार स्वप्न के समान है और सदा रोगों से भरा हुआ है। और यह गन्धर्वनगर कहिये भूतों की बरात के तुल्य झूठा और नाशवान् प्रसिद्ध है तो भी मूढ़ पुरुष उसे सत्य मानते हैं।।२५।। सूर्य के उदय और अस्त से मनुष्यों की आयु घटती जाती है सो औरों की वृद्धावस्था और मृत्यु को देखकर भी मनुष्य नहीं समझता कि मैं भी बूढ़ा होऊंगा और मरूंगा।।२६।। वही दिन है वही रात्रि है परंतु मूढ़ पुरुष भोगों में ऐसा लगा है कि काल के वेग को नहीं देखता कि दिन पर दिन मेरी आयु घटती जाती है।।२७।। और हे लक्ष्मण! कच्चे घड़े में भरे हुए (धीरे धीरे टपकते हुए) जल के समान यह आयु क्षण क्षण में घटती जाती है और शत्रुओं के समान रोगों के समूह इस पर प्रहार करते हैं।।२८।। और वृद्धावस्था वाघनी के समान आगे खड़ी खड़ी डराया करती है और मृत्यु उसके साथ ही समय की राह देखा करती है कि कब समय पूरा हो और इसे लूं।।२९।। हे लक्ष्मण! जिस देह का अंत कृमि विष्ठा और भस्म है (अर्थात् या तो सड़कर उसमें कीड़े पड़ जाते हैं वा कुत्ते बिलाव आदिकों के खा लेने से विष्ठा हो जाती है अथवा कोई जला दे तो भस्म हो जाती है) ऐसी इसके ऊपर भी मनुष्य समझता है कि मैं लोक में विख्यात राजा हूं।।३०।। हे लक्ष्मण! (तुम जो देह में आत्मबुद्धि कर क्रोध करते हो, यह नहीं हो सकता कारण) यह देह तो त्वचा, हाड़, मास, विष्ठा, मल, मूत्र, वीर्य और रुधिर से भरी है इसलिये विकारयुक्त है और इसकी बाल युवा आदि अवस्था होने से यह परिणामी है और आत्मा विकारयुक्त और परिणामी है नहीं फिर देह आत्मा कैसे हो सकती है सो तो कहो।।३१।। और हे लक्ष्मण! जिस रागादि के समूह के सहारे क्रोध करके तुम लोक को भस्म करना चाहते हो, ये सब दोष तो देहाभिमानी को ही हुआ करते हैं।।३२।। क्योंकि 'मैं देह हूं' इस बुद्धि का नाम अविद्या (अज्ञान) है और मैं देह नही हूं किंतु चित्रूप आत्मा हूं, ऐसी बुद्धि को विद्या (ज्ञान) कहते हैं।।३३।।

आविद्यासंसृतेर्हेतुर्विद्यातस्या निवर्तिका ।। तस्माद्यत्नः सदाकार्योविद्याभ्यासेमुमुक्षुभिः ।। कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदन ।।३४।। तत्रापिक्रोधएवालंमोक्षविघ्नायसर्वदा ।। येनाविष्टः पुमान्हन्तिपितृभ्रातृसुहृत्सखीन्

।।३५।। क्रोधमूलोमनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम् ।। धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधंपरित्यज ।।३६।। क्रोध एषमहान् शत्रुस्तृणावैतरणीनदी ।। संतोषोनन्दनवनंशान्तिरेवहिकामधुक् ।।३७।। तस्मात्क्षान्तिंभजस्वाद्यश त्रुरेवंभवेन्नते देहेन्द्रियमनः प्राणबुद्ध्यादिभ्योविलक्षणः ।।३८।। आत्माशुद्धः स्वयंज्योतिरविकारीनिराकृतिः ।। यावद्देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वंनात्मनोविदुः ।।३९।। तावत्संसारदुःखोघैःपीड्यन्तेमृत्युसंयुताः ।। तस्मात्त्वंसर्वदा भिन्नमात्मानंहृदिभावय ।।४०।। बुद्ध्यादिभ्योबहिः सर्वमनुवर्तस्वमाखिदः ।। भुञ्जान्प्रारब्धमखिलंसुखंवादुः खमेववा ।।४१।।प्रवाहपतितः कार्यंकुर्वन्नपिनलिप्यसे ।। बाह्येसर्वत्रकर्तृत्वमावहन्नपि राघव ।।४२।।

इन दोनों में से अविद्या तो मरणादि संसार का हेतु है और विद्या संसार की निवृत्ति करनेवाली है इसलिये मोक्ष की इच्छा करनेवालों को विद्या के अभ्यास में सदा यत्न करना चाहिये। परंतु हे शत्रुनाशक लक्ष्मण! उसमें काम क्रोधादिक शत्रु कहते हैं।।३४।। तिसमें भी मोक्ष के विघ्न करने में सदा क्रोध ही प्रबल शत्रु है कि जिसमें आकर पुरुष पिता भाई मित्र और साथियों को मार डालता है।।३५।। मन में ताप होने की जड़ क्रोध ही है और क्रोध से ही संसारबंधन होता है, क्रोध ही धर्मनाशक है इसलिये क्रोध को त्यागो।।३६।। क्रोध ही बड़ा भारी शत्रु है, तृष्णा वैतरणी नदी है, संतोष नन्दनवन है और शांति सो ही कामधेनु है।।३७।। इसलिए आज शांति को सेवन करो तो तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है (क्योंकि आत्मा में कोई विकार नहीं कि उसका कोई शत्रु हो) आत्मा तो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि इनसे विलक्षण ही है।।३८।। और आत्मा शुद्ध स्वयंप्रकाश, विकारशून्य और आकाररहित है। और जब तक पुरुष आत्मा को देह इन्द्रिय और प्राण इनसे भिन्न नहीं जानते हैं।।३९।। तब तक संसार के जन्म मरण आदि दुःखसमूहों से पीड़ित होते हैं इसलिये हे लक्ष्मण! तुम सदा अपने हृदय में आत्मा को शरीर से भिन्न जानो।।४०।। बुद्धि आदि से अपने को भिन्न समझकर बुद्धि आदिसे जो कुछ करना हो वह बाहरी ठाटसे करो और दुःख वा सुख सबको प्रारब्धानुसार भोगो। खेद मत करो।।४१।। हे लक्ष्मण! संसाररूपी प्रवाह में पड़कर और सर्वत्र 'जो कुछ करती हैं इन्द्रियां करती हैं मैं कुछ नहीं करता' इस प्रकार इन्द्रियों में कर्तृत्व धर्म को मानकर जो कुछ कार्य करोगे तो तुम उसके पाप पुण्य भागी नहीं होगे।।४२।।

अन्तःशुद्धस्वभावस्त्वं लिप्यसेनचकर्मभिः ।। एतन्मयोदितंकृत्स्नंहृदिभावयसर्वदा ।।४३।। संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसेनकदाचन ।। त्वमप्यम्बमयादिष्टंहृदिभावयनित्यदा।।४४।। समागमंप्रतीक्षस्वनदुःखैपीडचसेचिरम् ।। नसदैकत्रसंवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ।।४५।। यथाप्रवाहपतितप्लवानांसरितांतथा ।। चतुर्दशसमासंख्याक्षणार्धमिवजायते ।।४६।। अनुमन्यस्वमामम्बदुःखंसंत्यज्यदूरतः ।। एवं चेत्सुखसंवासोभविष्यतिवनेमम ।।४७।। इत्युक्त्वादण्डवन्मातुःपादयोरपतच्चिरम् ।। उत्थाप्याङ्कसमावेश्यआशीर्भिरभिनन्दयत् ।।४८।। सर्वेदेवाःसगन्धर्वाब्रह्मविष्णुशिवादयः।। रक्षन्तुत्वासदायान्तुतिष्ठन्तंनिद्रयायुतम्।।४९।। इति प्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुनः पुनः ।। लक्ष्मणोऽपितदारामंनत्वाहर्षाश्रुगद्गदः ।।५०।।

और भीतर से शुद्ध स्वभाव रहोगे तो तुम कर्मों से लिप्त नहीं होगे। यह जो कुछ ज्ञान मैंने तुमसे कहा है उस सबको सदा अपने हृदयं में रखना।।४३।। ऐसा करने से संसार के सब दुःख तुम्हें बाधा न करेंगे और हे माता! जो कुछ मैंने लक्ष्मणजी को उपदेश किया है इसे तुम भी अपने हृदय में सदा धारण करना।।४४।। जो मेरे आने की राह देखती रहोगी तो बहुत काल तक दुःख से पीड़ित नहीं होगी क्योंकि कर्ममार्ग में चलनेवाले प्राणियों का बहुत काल तक एक जगह वास नहीं रहता।।४५।। जैसे नदियोके प्रवाह से चलती हुई नावोंकी एक जगह स्थिति नहीं रहती। ऐसे ही चौदह वर्षकी संख्या एक आधे पल में बीत जायगी।।४६।। हे माता! तुम दुःख को दूर त्यागकर मुझे जाने की आज्ञा दो। जो ऐसा करोगी तो मेरा वास वन में सुख से होगा।।४७।। यह कहकर दंड के समान माता के चरणों में बहुत देर तक पड़े रहे फिर माता ने उठाकर और अपनी गोद में बैठाकर और उनका वनगमन स्वीकार किया और आशीर्वाद दिया कि ।।४८।। सब देवता गन्धर्व ब्रह्मा विष्णु शिव आदि सदा तुम्हारी चलते फिरते उठते बैठते सोते जागते रक्षा करें।।४९।। यह कहकर और बार बार उनको छाती से लगाकर विदा किया। उस समय लक्ष्मणजी भी रामचन्द्र को प्रणाम करके हर्ष के आंसुओं से गद्गद हो गये।।५०।।

आहराममभान्तस्थः संशयोऽयंत्वाहृतः ।। यास्यामिपृष्ठतोरामसेवांकर्तुं तदादिश।।५१।।अनुगृह्णीष्वमांरामनोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।। तथेतिराघवोऽप्याहलक्ष्मणंयाहिमाचिरम् ।।५२।। प्रतस्थतेतांसमा धातुंगतः

सीतापतिर्विभुः ।। आगतंपतिमालोक्यसीतासुस्मितभाषिणी ।।५३।। स्वर्णपात्रस्थसलिलैः पादौप्रक्षाल्य-भक्तितः ।। पप्रच्छ पतिमालोक्यदेवकिंसेनयाविना ।।५४।। आगतोऽसिगतः कुत्रश्वेतच्छत्रंचतेकुतः ।। वादित्राणिनवाद्यन्तेकिरीटादिविवर्जितः ।।५५।। सामन्तराजसहितः संभ्रमान्नागतोऽसिकिम् ।। इतिस्मसीतयापृष्टोरामः सस्मितमब्रवीत् ।।५६।। राज्ञामेदण्डकारण्येराज्यंदत्तंशुभेऽखिलम् । अतस्तत्पालनार्थायशीघ्रंयास्यामिभामिनि ।।५७।। अद्यैवयास्यामिवनंत्वंतुश्वश्रूसमीपगा ।। शुश्रूषांकुरुमेमातुर्नमिथ्यावादिनोवयम् ।।५८।। इतिब्रुवन्तंश्रीरामंसीताभीताऽब्रवीद्वचः ।। किमर्थंवनराज्यंतेपित्रादत्तंमहात्मना ।।५९।। तामाहरामः कैकेय्यै राजाप्रीतोवरंददौ ।। भरतायददौराज्यंवनवासं ममानघे ।।६०।।

और रामजी से बोले कि आपने मेरे अन्तःकरण का संशय तो दूर किया परन्तु हे राम! आपके पीछे २ सेवा करने के लिये संग चला चाहता हूं सो आज्ञा दीजिये।।५१।। हे राम! मेरे ऊपर कृपा करो नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूंगा। रामजी ने लक्ष्मण से कहा अच्छा चलो देर मत करो।।५२।। फिर भगवान् रामचन्द्रजी सीताजी का समाधान करने के लिये गये। हँसकर बोलनेवाली सीताजी अपने पति रामचन्द्रजी को आया देखकर।।५३।। सुवर्ण के पात्र में जल भर लाई और उससे भक्तिपूर्वक भगवान् के दोनों चरण धोकर और पति की ओर देखकर पूछने लगी कि हे महाराज! (आज तो आपका राजतिलक था) आज सेना के बिना कैसे आये और तुम्हारा श्वेत छत्र कहां गया? बाजे नहीं बजते मुकुट आदि राजचिह्न भी शिर पर नहीं है।।५४।।५५।। सामन्त कहिये छोटे छोटे राजाओं को साथ लेकर आप धूमधाम से क्यों नहीं आये जब सीताजी ने उनसे यह पूछा तब रामचंद्रजी हँसकर बोले।।५६।। हे सुन्दरी! आज महाराज ने मुझे दंडकवन का संपूर्ण राज्य दिया है इसलिये हे भामिनि! रक्षा के लिये मैं शीघ्र जानेवाला हूं।।५७।। मैं आज ही वन को जाऊंगा, तुम अपनी सासुओं के पास रहना और मेरी माता की सेवा करना। हम लोग झूठ नहीं बोलते हैं।।५८।। जब रामजी ने जानकी से यह कहा तब वह डरती डरती रामचन्द्रजी से बोली कि महात्मा पिताजी ने तुम्हें वन का राज्य क्यों दिया है।।५९।। रामचन्द्रजी ने उनसे कहा कि राजा ने प्रसन्न होकर कैकेई को वर दिया था उसे सत्य करने के लिये भरत को राज्य और हे पापरहिते! मुझे वनवास दिया है।।६०।।

चतुर्दशसमास्तत्रवासोमेकिलयाचितः ।। तयादेव्याददौराजासत्यवादी दयापरः ।।६१।। अतःशीघ्रंगमिष्या-मिमाविघ्नंकुरुभामिनि।। श्रुत्वातद्रामवचनंजानकीप्रीतिसंयुता।।६२।। अहमग्रेगमिष्यामिवनं पश्चात्त्वमेष्यसि ।। इत्याहमांविनागन्तुंतवराघवनोचितम् ।।६३।। तामाहराघवः प्रीतः स्वप्रियांप्रियवादिनीम् ।। कथंवनंत्वांनेष्येऽहंबहु व्याघ्रमृगाकुलम् ।।६४।। राक्षसाघोररूपाश्चसन्तिमानुषभोजिनः । सिंहव्याघ्रवराहाश्च संचरन्तिसमन्ततः ।।६५।। कष्ट्वम्लफलमूलानि भोजनार्थंसुमध्यमे ।। अपूपानिव्यञ्जनानिविद्यन्तेनकदाचन ।।६६।। कालेकालेफलंवापिविद्यतेकुत्रसुन्दरि ।। मार्गोनदृश्यतेक्वापि शर्कराकण्टकान्वितः ।।६७।। गुहागह्वरसंबाधंझिलीदंशादिभिर्युतम् ।। एवंबहुविधंदोषंवनंदण्डकसंज्ञितम्।।६८।। पादचारेणगन्तव्यंशीतवा-तातपादिमत् ।। राक्षसादीन्वने दृष्ट्वाजीवितंहास्यसेऽचिरात्।।६९।। तस्माद्भद्रेगृहेतिष्ठशीघ्रंद्रक्ष्यसिमांपुनः ।। रामस्यवचनं श्रुत्वासीतादुःखसमन्विता ।।७०।। प्रत्युवाचस्फुरद्वक्त्राकिंचित्कोपसमन्विता ।। कथंमामिच्छसेत्यक्तुंधर्मपत्नींपतिव्रताम्।।७१।। त्वदनन्यामदोषांमांधर्मज्ञोऽसिदयापरः ।। त्वत्सपीपेस्थितांरा-मकोवामांधर्षयेद्वने ।।७२।।

उस रानी ने मेरे लिये १४ वर्ष का वनवास मांगा था सो राजा ने मुझे दिया है इसमें झूठ नहीं है क्योंकि राजा सत्यवादी और दयाशील हैं।।६१।। इसलिये हे प्यारी! मैं शीघ्र जाऊंगा तुम कुछ विघ्न मत करना। रामजी के इस वचन को सुनकर जानकीजी प्रीति से बोली कि, हे राघव! मैं तुमसे पहिले वन को जाऊंगी और तुम पीछे आते रहना मेरे बिना तुमको जाना उचित नहीं है।।६२।।६३।। रामजी प्रसन्न होकर अपनी प्रियवादिनी प्रिया सीताजी से बोले कि मैं तुम्हें अपने साथ वन को कैसे ले चल सकता हूं। वन में बहुत से बाघ आदि हिंसक पशु विचरते हैं।।६४।। वहां बड़े बड़े भयंकर राक्षस रहते हैं कि जो मनुष्य को खा जाते हैं और सिंह, व्याघ्र, और शूकर चारों ओर फिरा करते हैं।।६५।। और हे सुंदरि कड़ुए और खट्टे फल मूल भोजन के लिये मिलते हैं और पुआ आदि व्यंजन वहां कभी देखने को भी नहीं मिलते।।६६।। और हे सुन्दरि वे फल भी समय २ पर कहीं २ मिलते हैं सब काल सब जगह नहीं मिलते। वन में अधिक दलदल और कांटे होने से कहीं २ तो मार्ग ढूंढा नहीं मिलता।।६७।। वहां बहुत सी बड़ी बड़ी गुफा हैं उनमें झींगर डांस

आदि शब्द किया करते हैं। सो दंडक वन में ऐसे २ बहुत भीति के दोष हैं।।६८।। शीत, वात और धूप में पैरो चलना पड़ेगा और तो क्या तुम वन में राक्षस आदिकों को देखकर अपने जीवन को भी हाथ से खो बैठोगी।।६०।। इसलिये हे कल्याणि! तुम घर में रहो और तुम मुझे फिर शीघ्र देखोगी। रामचन्द्रजी का वचन सुनकर सीताजी को बड़ा दुःख हुआ।।७०।। कुछ क्रोध से होठ फडकाकर बोलीं कि तुम तो धर्मज्ञ और दयाशील होकर मुझे अन्य से प्रीति न करनेवाली निर्दोष पतिव्रता*धर्मपत्नी को क्यों त्यागना चाहते हो जब मैं तुम्हारे पास रहूंगी तो वन में मेरी ओर कौन आंख उठाकर देख सकता है।।७१।।७२।।

फलमूलादिकंयद्यत्तवभुक्तावशेषितम्।। तदेवामृततुल्यंमेतेनतुष्टारमाम्यहम् ।।७३।। त्वयासहचरन्त्यामेकुशाः काशाश्चकण्टकाः ।। पुष्पास्तरणतुल्यामेभविष्यन्तिनसंशयः ।।७४।। अहंत्वांक्लेशयेनैवभवेयंकार्यसाधिनी ।। बाल्येमांवीक्ष्यकश्चिद्वैज्योतिः शास्त्रविशारदः ।।७५।। प्राहतेविपिनेव । सः पत्यासह भविष्यति सत्यवादीद्विजोभूयाद्गमिष्यामित्वयासह।।७६।। अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामिश्रुत्वामांनयकाननम्।। रामायणानि बहुशः श्रुतांनिबहुभिर्द्विजैः ।।७७।। सीतांविनावनंरामोगतः किंकुत्रचिद्वद ।।अतस्त्वयागमिष्यामिसर्वथा-त्वत्सहायिनी ।।७८।।

और हे राम! तुम्हारे भोजन से जो कुछ फल मूलादिक बचेगा वही मुझे अमृत तुल्य होगा और मैं उससे संतुष्ट होकर सुखपूर्वक रहूंगी।।७३।। तुम्हारे संग २ चलते में कुश, कास और कांटे पुष्पों की सेज के समान कोमल लगेंगे इसमें संदेह नहीं है।।७४।। मैं तुम्हें क्लेश नहीं होने दूंगी वरन् तुम्हारे कार्य में सहायता दूंगी। मेरी वाल्यावस्था में किसी बड़े

१-दृष्टांत-एक बूढ़े तपस्वी एक वृक्षके नीचे अस्सी हजार वर्षसे तप कर रहे थे एक बार पेड़ पर से एक चिडिया ने इनके ऊपर वीट कर दी। इन्होंने जो ऊपर को दृष्टि करी तो दृष्टि करते ही चिड़िया भस्म होकर नीचे गिर पड़ी यह देख तपस्वी ने जान लिया कि हमारा तप अब सिद्ध हुआ। एक दिन तपस्वी भिक्षा मांगने के लिये शहर में गये और अलख अलख पुकारने लगे परन्तु कोई भी भिक्षा नहीं लाया। एक पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी सेवासे निश्चिंत होकर जो भिक्षा लाई उसे देख तपस्वी कहने लगे कि तू इतनी देर में भिक्षा लाई है जा हम नहीं लेते और उसको भस्म करने को दृष्टि उठाई। उसने कहा कि चिड़िया तो हूं नही जो भस्म होकर गिर पडूगी। यह सुन तपस्वी का होश उड़ गया कि यह मुझसे भी बढकर है और उससे विनती करने लगे कि मुझे कुछ उपदेश दे उसने कहा मैं पतिव्रता हूं जाओ फिर कभी अपने तप के धोखे में किसी पतिव्रता से मत अटकना।

निपुण ज्योतिषी ने मुझसे कहा था कि तेरा पति के साथ वन में वास होगा और जो मैं तुम्हारे साथ जाऊंगी तो वह ब्राह्मण सत्यवादी ठहरेगा।।७५।।७६।। मैं और भी कुछ प्रार्थना करती हूं उसे सुनकर आप मुझे वन को ले चलिये। मैंने ब्राह्मणों के मुख से बहुत सी रामायणें सुनी हैं तिनमें सीता के बिना राम कभी वन में गये हों तो कुछ कहिये इसलिये मैं तुम्हारी सहायिनी होकर अवश्य तुम्हारे साथ जाऊंगी।।७७।।७८।।

यदिगच्छतिमांत्यक्त्वाप्राणांस्त्यक्ष्यामितेऽग्रतः ।। इतितंनिश्चयंज्ञात्वासीतायारघुनन्दनः ।।७९।। अब्रवीद्देविग-च्छत्वंवनंशीघ्रंमयासह ।। अरुन्धत्यैप्रयच्छाशुहारानाभरणानिच ।।८०।। ब्राह्मणेभ्योधनंसर्वंदत्त्वागच्छामहेव-नम् ।। इत्युक्त्वालक्ष्मणेनाशुद्विजानाहूयभक्तितः ।।८१।। ददौगवांवृन्दशतंधनानिवस्त्राणिदिव्यानि विभूषणानि ।। कुटुम्बवद्भ्यः श्रुतशीलवद्भ्योमुदाद्विजेभ्योरघुवंशकेतुः ।।८२।। अरुन्धत्यैददौसीतामुख्यान्या भरणानिच ।। रामोमातुः सेवकेभ्योददौधनमनेकधा ।।८३।। स्वकान्तः पुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैवच ।। पौरजानपदेभ्यश्चब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ।।८४।। लक्ष्मणोऽपिसुमित्रांतुकौसल्यायैसमर्पयत् ।। धनुष्पाणिः समागत्यरामस्याग्रेव्यवस्थितः ।।८५।। रामः सीतालक्ष्मणश्चजग्मुः सर्वेनृपालयम् ।।८६।। श्रीरामः सहसीतयानृपपथेगच्छन्शनैः सानुजः पौरान्जानपदान्कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन् ।। श्यामः कामसहस्रसु-न्दरवपुः कांत्यादिशोभासयन्पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत्प्रापालयंतत्पितुः ।।८७।। इति श्रीमदध्यात्म-रामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकाण्डेचतुर्थः सर्ग। ।।४।।

और जो तुम मुझे छोड़कर जाओगे तो मैं तुम्हारे सामने ही प्राण छोड़ दूंगी। रघुनंदनजी ने सीता का यह निश्चय भाव जानकर।।७९।। उनसे कहा कि हे रानी! तुम मेरे साथ शीघ्र वन को चलो और तुरन्त अपने हार और आभूषण अरुन्धतीजी को दे दो।।८०।। और मैं भी ब्राह्मणों को सब धन देकर वन को चलता हूं। यह कहकर लक्ष्मणजी के द्वारा ब्राह्मणों को तुरंत बुलवाकर भक्तिपूर्वक ।।८१।। रामचन्द्रजी ने कुटुम्बी और विद्या पढे लिखे ब्राह्मणों को प्रसन्नता से सैकडों झुंड, वस्त्र और बड़े २ दिव्य आभूषण दान दिये।।८२।। और सीताजी ने अपने मुख्य २ आभूषर अरुंधतीजी को दे दिये और रामजी ने अपनी माता के सेवकों को और अपने रनवास के सेवकों को और पुरवासी और देशवासी जो

हजारों ब्राह्मण आये थे उन्हें भांति २ के वस्त्राभूषण और धन दिया॥८३॥८४॥ लक्ष्मणजी ने सुमित्रा माता को कौशल्या को सौंप दिया और आप हाथ में धनुष लेकर और पास आकर रामचन्द्रजी के सामने खड़े हो गये॥८५॥ इसके अनंतर राम सीता और लक्ष्मण ये सब राजमहल को चले॥८६॥ जिस समय रामजी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लिये राजमार्ग से धीरे धीरे आनन्द से जा रहे थे उस समय नगर के पुरवासी और देशवासी जो राजतिलक देखने को आये थे वे आश्चर्य से उनको कैसे देखने लगे कि भगवान् का सहस्रों कामदेवों के समान सुन्दर श्याम शरीर है और अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए और अपने चरणों के धरने से संपूर्ण जगत् को पवित्र करते हुए अपने पिता के महल को जा रहे हैं॥८७॥ इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकांड का चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ॥४॥

श्रीमहादेवउवाच ॥ आयान्तंनागरादृष्ट्वामार्गेरामंसजानकिम् ॥ लक्ष्मणेनसमंवक्ष्यिऊचुः सर्वेपरस्परम् ॥१॥ कैकेय्यावरदानादिश्रुत्वादुःखसमावृताः ॥ बतराजादशरथः सत्यसन्धंप्रियंसुतम् ॥२॥ स्त्रीहेतोरत्यजत्कामीतस्यसत्यवताकुता ॥ कैकेयीवाकथंदुष्टा रामंसत्यंप्रियंकरम् ॥३॥ विवासयामासकथंक्रूरकर्माऽतिमूढधीः ॥ हेजनानात्रवस्तव्यंगच्छामोऽद्यैवकाननम् ॥४॥ यत्ररामः सभार्यश्चसानुजोगन्तुमिच्छति ॥ पश्यन्तुजानकींसर्वेपादचारेणगच्छतीम् ॥५॥ पुंभिःकदाचिद्दृष्टावाजानकीलोकसुन्दरी ॥ साऽपिपादेन गच्छन्तीजनसंघेष्वनावृता ॥६॥ रामोपिपादचारेणगजाश्वादिविवर्जितः॥ गच्छतिद्रक्ष्यथविभुंसर्वलोकैकसुन्दरम् ॥७॥ राक्षसी कैकयीनाम्नीजातासर्वविनाशिनी ॥ रामस्यापिभवेद्दुःखंसीतायाः पादयानतः ॥८॥ बलवान्विधिरेवात्रपुंप्रयत्नोहिदुर्बलः ॥ इतिदुःखाकुलेवृन्देसाधूनांमुनिपुङ्गवः ॥९॥ अब्रवीद्वामदेवोऽथ साधूनांसङ्घमध्यगः ॥मानुशोचथरामंवासीतांवावच्मितत्त्वतः ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! सीता लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजी को राजमार्ग में आता देखकर सब मनुष्य आपस में चर्चा करने लगे॥१॥ और कैकेई के वरदान आदि सुनकर बड़े भारी दुःखी हुए कि राजा दशरथ ने स्त्री के कारण सत्यसंध प्यारे पुत्र रामचन्द्र को त्याग दिया। वह कामी हैं उनकी सत्यता कहां गई? और कैकेई भी कैसी दुष्ट हो गई

और उसने सत्यप्रतिज्ञ और प्रीति करनेवाले पुत्र को वनवास कैसे दे दिया वह बड़ी क्रूर कर्म करनेवाली और मूढमति है। हे लोगो! अब यहां नहीं ठहरना चाहिये चलो आज हमभी उसी वन को चलें।।२-३-४।। कि जहां सीता लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी जाना चाहते हैं। सब लोग देखो कि राजा जनक की कन्या पैरों २ चल रही हैं।।५।। जिस लोकसुन्दरी जानकी को कदाचित् ही पुरुषों ने देखी हो वह न देखी हो वह आज सब लोगोंके सामने खुली जा रही है।।६।। और देखो कि भगवान् रामचन्द्रजी जो त्रिलोकी में अद्वितीय सुन्दर हैं वे भी बिना हाथी घोड़े के पैदल जा रहे हैं।।७।। कैकेई नाम से यह कोई सबको नाश करनेवाली राक्षसी पैदा हुई है सीताजी के पैदल चलने से रामचन्द्रजी को भी दुःख होगा।।८।। प्रारब्ध* बड़ी बलवान् है पुरुष के उपाय से कुछ नहीं हो सकता यह बात निश्चय है। जब सज्जनों का समुदाय इस प्रकार व्याकुल हुआ तब सब सज्जनों के बीच में बैठे हुए मुनियों में श्रेष्ठ वामदेवजी कहने लगे कि तुम राम वा सीता का सोच मत करो मैं यथार्थ सत्य कहता हूं सो सुनो।।९।।१०।।

एषरामः परोविष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।। एषासाजानकीलक्ष्मीर्योगमायेतिविश्रुता ।।११।। असौशेषस्तम्न्वेतिलक्ष्मणाख्यश्चसाम्प्रतम् ।। एषमायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ।।१२।। एषएवरजोयुक्तोब्रह्माऽभूद्विश्व-

---

१-दृष्टान्त-एक राजा था उसके यहां किसी देश से दो पण्डित आये एक तो राजा की रात दिन खुशामद में लगा रहे और दूसरा कहा करे कि जो प्रारब्ध में होगा सो मिलेगा। सो राजा खुशामदी पण्डित से बड़ा खुश रहता था और उसे भोजन आदि सब दे और दूसरे पंडित से बात नहीं करे। फिर खुशामदी पण्डित ने अपने घर जाने की इच्छा प्रकट करी तो राजा ने एक दो आने का तरबूज मंगाकर और उसमें बड़े कींमती रत्न गहने भरकर खुशामदी को विदाई में दिया। खुशामदी विचारकर झींकने लगा इतनी तो सेवा करी और विदाई में यह तरबूज दिया खैर प्रारब्ध आगे जाकर विचार किया इस बोझ को कहां लादे फिरूं इसलिये उसने बाजार में बेचना चाहा और जिस कुंजडन के यहां से वह पहिले दो आने में बिका था उसीकी दुकान पर दैववश वह पहुँचा और बोला बीबी पेठा मोल लेगी-उसने कहा लूंगी क्या लेगा-उसने कहा तू क्या देगी-कहा मैंने दो आने को बेचा था अब एक आना दूंगी, उसने कहा. ला एक आना ही दे दे और लेकर चल दिया। इतने में दूसरा पण्डित वहां आया और कहने लगा मैं भूखा हूं कुछ खाने को लूंगा बुढिया ने कहा यह तरबूज है उसने कहा क्या लेगी? -बुढिया ने कहा दो आने। पण्डित ने कहा डेढ आना ले तो दे दे। सो ही बुढिया ने बेच दिया। पण्डित उसे लेकर जमुना किनारे गया वहां जो बनारा तो उसमें से बड़ा माल निकला तब तो वह प्रसन्न होता हुआ घर को चल दिया। फिर ६ महीने पीछे वही खुशामदी पण्डित फिर राजा के यहां बुरे वेष से आये। राजा ने कहा कि अभी तुम्हारा दरिद्र नहीं गया। पण्डित ने कहा महाराज अपराध क्षमा हो आपने तरबूज विदा में दिया था सो मैं झुंझलाकर उसे भी एक आने में एक कुंजडिन को बेच गया था। राजा दुःखी होकर कहने लगा कि उसमें हजारों का माल मैंने रखा था। तुम्हारी प्रारब्ध ही न थी जिसके प्रारब्ध में होगा उसे मिला होगा सो प्रारब्ध बड़ा बलवान् है।

भावनः ।। सत्वाविष्टस्तथाविष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः ।।१३।। एषरुद्रस्तामसोऽन्तेजगत्प्रलयकारणम् ।। एषमत्स्यः पुराभूत्वाभक्तंवैवस्वतंमनुम् ।।१४।। नाव्यारोप्यलयस्यान्तंपालयामासराघवः ।। समुद्रमथनेपूर्वंमन्दरेसुतलंगते ।।१५।। अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिंकूर्मरूपोरघूत्तमः ।। महीरसातलंयातांप्रलयेसूकरोऽभवत् ।।१६।। तोलयामासदंष्ट्राग्रेतांक्षोणींरघुनन्दनः ।। नारसिंहंवपुः कृत्वाप्रह्लादवरदःपुरा ।।१७।। त्रिलोककण्टकंरक्षःपाटयामासतन्नखैः।। पुत्रराज्यंहृतंदृष्ट्वाह्यदित्यायाचितः पुरा।।१८।। वामनत्वमुपागम्ययाञ्चयाचाहरत्पुनः ।। दुष्टक्षत्रियभूभारनिवृत्त्यभार्गवोऽभवत् ।।१९।।

यह रामचन्द्र प्रकृति से परे सबके कारण नारायण हैं और यह सीताजी लक्ष्मी और योगमाया नाम से विख्यात है।।११।। और जो इस समय इनके पीछे पीछे जा रहे हैं वह लक्ष्मण शेषजी के अवतार हैं इन रामचन्द्र के स्वरूप माया के गुणों से भांति भांति के दीखते हैं।।१२।। जब यह रजोगुण युक्त होते हैं तब ब्रह्मारूप होकर विश्व को उत्पन्न करते जब सत्वगुणयुक्त होते हैं तो विष्णुरूप से त्रिलोकी का पालन करते हैं।।१३।। और जब तमोगुण युक्त होते हैं तब रुद्ररूप होकर अंत में सबका संहार करते हैं। इन्हीं राम ने पहिले मत्स्य रूप धारण कर अपने भक्त वैवस्वत मनु को।।१४।। नाव पर बैठाकर प्रलयकाल पर्यन्त उसकी रक्षा करी थी और पहिले समुद्र मथते समय जब मन्दराचल पाताल को चला गया था।।१५।। तब इन्हीं रंघुनन्दन ने कूर्म रूप धारण किया था। और जब पृथ्वी रसातल को चली गई थी तब इन्हीं रामचन्द्र ने प्रलयकाल में सूकररूप धारण कर धरती को अपने दांत के ऊपर धारण किया था और इन्हीं राम ने पहिले नृसिंह रूप धारण कर तीनों लोकों के कंटक हिरण्यकशिपु दैत्य को अपने नखों से विदारण कर प्रह्लाद को वर दिया था। और पहिले जब राजा बलि ने इन्द्र का राज्य ले लिया था और अदिति ने पुत्र का राज्य भ्रष्ट देखकर भगवान् से राज्य दिला देने की याचना की थी तब इन्हीं राम ने वामनरूप धारण कर और छल से तीनों लोक लेकर इन्द्र को दे दिये थे।। फिर इन्हीं रामने पृथ्वी का भार दूर करने के लिये परशुराम अवतार लेकर क्षत्रियों का नाश किये।।१६।।१७।।१८।।१९।।

सएव जगतांनाथइदानींरामतांगतः ।। रावणादीनिरक्षांसिकोटिशोनिहनिष्यति ।।२०।। मानुषेणैवमरणंतस्य

अ०रा०
९५

दृष्टंदुरात्मनः ।। राज्ञादशरथेनापि तपसाराधितोहरिः ।।२१।। पुत्रत्वाकांक्षयाविष्णोस्तदापुत्रोऽभवद्धारः ।। सएवविष्णुः श्रीरामो रावणादिवधायहि ।।२२।। गन्ताऽद्यैववनंरामोलक्ष्मणेनसहायवान् ।। एषासीताहरेर्मायासृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।।२३।। राजावाकैकयीवाऽपिनात्रकारणमण्वपि ।। पूर्वद्युर्नारदः प्राहभूभारहरणायच ।।२४।। रामोऽप्याहस्वयंसाक्षाच्छ्वोगमिष्यास्यहंवनम् ।। अतोरामंसमुद्दिश्याचिन्तांत्यजतबालिशाः ।।२५।।

अब उन्हीं जगत् के नाथ ने रामावतार धारण किया है और यह करोड़ो रावण आदि राक्षसों का नाश करेंगे।।२०।। क्योंकि उस दुष्टात्मा को मनुष्य के ही हाथ से मृत्यु लिखी है और राजा दशरथ ने भी तप करके विष्णुभगवान् का आराधन किया था।।२१।। और यह मांगा था कि विष्णु ही मेरे पुत्र हों सो भगवान् आकर उनके पुत्र हुए हैं। और यह विष्णुभगवान् रामचन्द्र रावण का नाश करने के लिये।।२२।। लक्ष्मणजी के साथ आज ही वन को जायेंगे। और यह सीता सृष्टि स्थिति और प्रलय करनेवाली भगवान् की योगमाया है।।२३।। राजा वा कैकेई इसमें कोई कारण नहीं है। क्योंकि पहिले दिन नारदजी आकर रामजी से पृथ्वी का भार दूर करने के लिये प्रार्थना कर गये थे।।२४।। और राम ने भी स्वयं पक्की कर दी थी कि कल मैं वन को जाऊंगा इससे हे मूर्खों! राम की ओर की चिन्ता को छोड़ दो।।२५।।

रामरामेतियेनित्यंजपन्तिमनुजाभुवि ।। तेषांमृत्युभयादीनिनभवन्तिकदाचन ।।२६।। कापुनस्तस्यरामस्यदुःखशंकामहात्मनः ।। रामनाम्नैवमुक्तिः स्यात्कलौनान्येनकेनचित् ।।२७।। मायामानुषरूपेणविडम्बयतिलोकृत् ।। भक्तानांभजनार्थायरावणस्य वधायच ।।२८।। राज्ञश्चाभीष्टसिद्धयर्थंमानुषंवपुराश्रितः ।। इत्युक्त्वाविररामाथवामदेवोमहामुनिः ।।२९।। श्रुत्वातेऽपिद्विजाः सर्वे रामंज्ञात्वाहरिंविभुम्।। जहुर्हृत्संशयग्रंथिरामसेवानुचिन्तयन्।।३०।। यइदंचिन्तयेन्नित्यंरहस्यंरामसीतयोः।। तस्यरामेदृढाभक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ।।३१।।

अ०का०
सर्ग
५

जो पुरुष पृथ्वी पर राम राम नित्य जपते हैं उनको मृत्यु भय आदि आदि कभी नहीं होते।।२६।। फिर उन महात्मा

राम के दुःख की शंका क्या करना कलि में राम के नाम* से ही मुक्ति होती हैं और किसी उपाय से नहीं होती।।२७।। लोक के कर्ता धर्ता रामचन्द्र अपनी माया से मनुष्यरूप धारण कर संसार को अपनी नरलीला दिखा रहे हैं और उन्होंने भक्तों के भजन के लिये रावण के वध के लिये और राजा के मनोरथ सिद्ध होने के लिये मनुष्यरूप धारण किया है। यह कहकर महामुनि वामदेव चुपके हो गये।।२८।।२९।। उनका वचन सुनकर जितने ब्राह्मण क्षत्री वैश्य थे उन सबने रामचन्द्रजी को साक्षात् विष्णुभगवान् जानकर अपने हृदय की संशयरूपी गांठ खोल डाली और राम का ही स्मरण करने लगे।।३०।। जो पुरुष इस रामसीता के रहस्य को नित्य स्मरण करेगा उसकी राम में ज्ञानसहित दृढ़ भक्ति होगी।।३१।।

रहस्यंगोपनीयंवोयूयंवैराघवप्रियाः।।इत्युक्त्वाप्रययौविप्रस्तेऽपिरामंपरंविदुः।।३२।। ततोरामःसमाविश्यपितृगेहमवारितः ।। सानुजः सीतयागत्वाकैकयीमिदमब्रवीत् ।।३३।। आगताः स्मोवयंमातस्त्रयस्तेसंमतंवनम् ।। गन्तुंकृतधियः शीघ्रमाज्ञापयतुनः पिता।।३४।। इत्युक्तासहसोत्थायचीराणिप्रददौस्वयम्।। रामायलक्ष्मणायाथसीतायैचपृथक्पृथक्।।३५।। रामस्तुवस्त्राण्युत्सृज्यवन्यचीराणिपर्यधात्।। लक्ष्मणोऽपितथाचक्रेसीतातन्नविजानती ।।३६।। हस्तेगृहीत्वारामस्यलज्जयामुखमैक्षत रामोगृहीत्वातच्चीरमंशुकेपर्यवेष्टयत् ।।३७।।

---

*दृष्टांत—भगवान् के नाम की बड़ी महिमा है देखो एक दिन एक गूजरी पण्डितजी की कथा सुनने को गई। पंडितजी उस समय कह रहे थे कि भगवान् का नाम लेने से प्राणी संसार समुद्र से पार हो जाता है। गूजरी यह सुन बड़ी प्रसन्न हुई कि मैं रोज नाववाले को उतराई का पैसा देती हूं सो तो बचा क्योंकि जब भगवान् के नाम से समुद्र पार हो जाते हैं तो जमुना पार होना क्या कठिन है। यह सोच वह जमुना में धसी और राम राम कृष्ण कृष्ण कहती जमुना पार हो गई और इसी प्रकार नित आने जाने लगी। एक दिन गूजरी ने विचारा पण्डितजी ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है सो पण्डितजी को न्यौता दे उन्हें भोजन कराने के लिये अपने साथ ले चली। पण्डितजी उसे जमुना में घुसती देख आप भी पीछे हो लिये यह समझकर कि पानी थोड़ा होगा पर जब पानी कंठ तक आ गया और पण्डितजी हुडुप २ करने लगे तब बोले कि अरी तू मुझे मारने को कहां ले आई। मैं डूबा मुझे जल्दी किनारे लगा गूजरी बोली कि क्या तुमने कृष्ण का नाम नहीं लिया? और तुम उस दिन की कथा की बात भूल गये कि भगवान् के नाम से भवसागर पार हो जाते हैं। पण्डितजी ने कहा क्या भगवान् के नाम से नदी के पार भी हो जाते हैं? गूजरी ने कहा क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि जब समुद्र पार हो गये तो नदी कहां रही गूजरी ने पण्डितजी का हाथ पकड़ा और कहा भगवान् का नाम लेते हुए मेरे पीछे २ चले आओ और इस प्रकार गूजरी राम कृष्ण कहती कहाती पण्डितजी को पार ले गई और अपने घर भोजन कराकर फिर पण्डितजी को विदा किया और वे रामनाम के बल से फिर जमुना में से निकल अपने घर आये सो नाम का ऐसा माहात्म्य है।

अ०रा०
१७

तद्दृष्ट्वारुरुदुःसर्वेराजदाराः समंततः ॥ वसिष्ठस्तुतदाकर्ण्यरुदितंभर्त्सयन्रुषा ॥३८॥ कैकयींप्राहदुर्वृत्तेरामएवत्वयावृतः ॥ वनवासायदुष्टेत्वंसीतायैकिंप्रयच्छसि ॥३९॥ यदिरामंसमन्वेतिसीताभक्त्यापतिव्रता ॥ दिव्याम्बरधरानित्यंसर्वाभरणभूषिता ॥४०॥ रमयत्वनिशंरामंवनदुःखनिवारिणी ॥ राजादशरथोऽप्याहसुमन्त्रंरथमानय ॥४१॥

हे पुरुषों! तुम राम के प्यारे भक्त हो इस रहस्य को निश्चय करके गुप्त रखना यह कहकर वामदेवमुनि चले गये और उन सबको भी राम के परमेश्वर होने का ज्ञान हो गया॥३२॥ इसके अनंतर लक्ष्मण और सीतासहित रामचन्द्र बेरोक टोक पिता के महल में गये और जाकर यह बोले कि ॥३३॥ हे माता! तुम्हारी इच्छानुसार हम तीनों एकमत हो वन को जाने के लिये आ गये हैं अब ऐसा करो जिसमें हमारे पिता शीघ्र आज्ञा दें॥३४॥ इतना कहते ही कैकई ने एक साथ उठकर स्वयं राम लक्ष्मण और सीताजी को अलग अलग पहिरने के लिये वस्त्र दिये॥३५॥ रामचन्द्र लक्ष्मण ने तो अपने अपने वस्त्र उतारकर वन के वस्त्र पहिर लिये परन्तु सीताजी उनका पहिरना नहीं जानती थीं॥३६॥ सो हाथ में लेकर लाज से रामजी के मुख की ओर देखने लगीं रामजी ने उस चीर को लेकर सीताजी के वस्त्रों के ऊपर ही लपेट दिया॥३७॥ यह देखकर रनवास की स्त्रियां चारों ओर से रोने लगीं। इस रोदन को सुनकर वसिष्ठजी आये और क्रोध से कैकेई को धमकाते हुए बोले कि अरी खोटे आचरणवाली! तू बड़ी दुष्टा है तैने तो केवल रामचन्द्र के ही वनवास के लिये वर मांगा था फिर सीताजी को वन के वस्त्र पहिरने को क्यों देती है॥३८॥३९॥ अब जो यह पतिव्रता सीता यदि भक्ति के कारण राम के संग जाती है तो भले ही सुन्दर वस्त्र पहिने और सब आभूषणों से श्रृंगार किये रामजी की नित्य सेवा करे और उनके वन दुःख को दूर करती रहे। इधर राजा दशरथजी सुमंत्र से बोले कि रथ ले आओ॥४०॥४१॥

अ०का०
सर्ग
५

रथमारुह्यगच्छन्तुवनंवनचरप्रियाः इत्युक्त्वाराममालोक्यसीतांचैवसलक्ष्णम् ॥४२॥ दुःखान्निपतितो भूमौरुरोदाश्रुपरिप्लुतः ॥ आरुरोहरथंसीताशीघ्रंरामस्यपश्यतः ॥४३॥ रामः प्रदक्षिणंकृत्वापितरं रथमारुहत् ॥ लक्ष्मणः खड्गयुगलंधनुस्तूणीयुगंतथा ॥४४॥ गृहीत्वारथमारुह्यनोदयामाससारथिम् ॥

तिष्ठतिष्ठ सुमन्त्रेतिराजादशरथोऽब्रवीत् ।।४५।। गच्छगच्छेतिरामेणनोदितोऽचोदयद्रथम्।।रामेदूरंगतेराजा-मूर्च्छितः प्रापतद्भुवि ।।४६।। पौरास्तुबालवृद्धाश्चवृद्धाब्राह्मणसत्तमाः।।तिष्ठतिष्ठेतिरामेक्रोशंतोरथमन्वयुः ।।४७।। राजारुदित्वासुचिरंमांनयन्तुगृहंप्रति ।। कौसल्यायारामस्य मातुरित्याहपरिचारकान् ।।४८।। किंचित्कालंभवेत्तत्रजीवनंदुःखितस्यमे ।। अतऊर्ध्वंनजीवामिचिरंरामंविनाकृतः ।।४९।। ततो गृहंप्रविश्यैव कौसल्यायाः पपातह ।। मूर्छितश्चिचराद्बुध्वातूष्णीमेवावतस्थिवान् ।।५०।। रामस्तुतमसातीरंगत्वा तत्रावसत्सुखी ।। जलंप्राश्यनिराहारोवृक्षमूलेऽस्वपद्विभुः ।।५१।। सीतयासहधर्मात्माधनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः पालयामासधर्मज्ञः सुमंत्रेणसमन्वितः ।।५२।।

जिससे ये मुनियों को प्यार करनेवाले रामचन्द्र रथ में बैठकर वन के लिए विदा हो। राजा यह कहकर और लक्ष्मण सहित सीता रामचन्द्र की ओर देखकर।।४२।। दुःख के कारण पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े और ऐसे रोये कि आसुओं से भी गये। रामचन्द्र के देखते देखते सीताजी शीघ्र रथ पर चढ़ गई।।४३।। और रामचन्द्रजी पिता की प्रदक्षिणा कर रथ पर चढे और लक्ष्मणजी ने दो खड्ग दो धनुष और दो तरकस साथ में लिये और रथ पर बैठकर सारथी को रथ हांकने की आज्ञा दी। यह देख राजा दशरथ कहने लगे कि हे सुमंत्र! ठहरो ठहरो।।४४।।४५।। परन्तु जब रामचन्द्र के कहा कि चलो चलो (मत ठहरो) तब सुमंत्र ने रथ को हांक दिया। इधर रामचन्द्र के दूर निकल जाने पर राजा फिर मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े।।४६।। फिर पुरवाले बालक वृद्ध और वृद्धश्रेष्ठ ब्राह्मण यह चिल्लाते हुये कि "हे राम! ठहरो ठहरो" रथ की पीछे चले।।४७।। यहां बहुत काल तक राजा रोकर अपने नौकर चाकरों से बोले कि तुम मुझे राम की माता कौसल्या के महल में ले चलो।।४८।। वहां मैं दुखिया थोड़े काल तक जीता रहूंगा फिर मैं राम के वियोग में बहुत देर तक नहीं जीऊँगा।।४९।। फिर राजा कौसल्या के महल में पहुँचे ही थे कि मूर्च्छित होकर गिर पड़े और बहुत देर में जब चेत में आये तो चुपके होकर बैठ गये।।५०।। उधर रामचन्द्रजी तमसा नदी पर जाकर वहां कोरा जल पीकर निराहार रहे और एक वृक्ष के नीचे सीतासहित सो रहे उस समय सुमंत्र सहित धर्मात्मा और धर्मज्ञ लक्ष्मणजी धनुष हाथ में लेकर उनकी रक्षा करने लगे।।५१।।५२।।

अ०रा० ९९

पौराः सर्वेसमागत्यस्थितास्तस्याविदूरतः ।। शक्तारामंपुरंनेतुंनोचेद्गच्छामहे वनम् ।।५३।। इतिनिश्चय-माज्ञायतेषांरामोऽतिविस्मितः ।। नाहंगच्छामिनगरमेतेवैक्लेशभागिनः ।।५४।। भविष्यन्तीतिनिश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ।। इदानीमेवगच्छामः सुमन्त्ररथमानय ।।५५।। इत्याज्ञप्तः सुमन्त्रोऽपिरथंवाहैरयोजयत् ।। आरुह्यरामः सीताचलक्ष्मणोऽपिययुर्द्रुतम् ।।५६।। अयोध्याभिमुखंगत्वाकंचिद्दुरंततोययुः ।। तेऽपिरामंनदृष्ट्वैवप्रातरुत्थायुदुःखिताः ।।५७।। रथनेमिगतंमार्गंपश्यन्तस्तेपुरंययुः।। हृदिरामंससीतंतेध्याय-न्तस्तस्थुरन्वहम् ।।५८।। सुमन्त्रोऽपिरथंशीघ्रंनोदयामाससादरम् ।। स्फीतान्जनपदान्पश्यन्रामः सीतासमन्वितः ।।५९।। गङ्गातीरंसमागच्छच्छृङ्गबेराविद्रतः ।। गङ्गांदृष्ट्वानमस्कृत्यस्नात्वासानन्दमानसः ।।६०।। शिंशपावृक्षमूलेसनिषसादरघूत्तमः ।। ततोगुहोजनैः श्रुत्वारामागममहोत्सवम्।।६१।। सखायंस्वामि-नंद्रष्टुंहर्षात्तूर्णंसमापतत् ।। फलानिमधुपुष्पादिगृहीत्वाभक्तिसंयुतः ।।६२।।

इतने में सब पुरवासी आकर उनके पास खड़े हो गये और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि यदि राम अयोध्या को न लौटेंगे तो हम भी इनके साथ साथ वन को चलेंगे।।५३।। उनका यह निश्चय जानकर रामचंद्रजी बड़े संकट में पड़े और विचारने लगे कि मैं तो अयोध्या को जाऊँगा नहीं और ये विचारे मेरे पीछे क्लेश भोगेंगे, यह निश्चय करके उन्होने सुमंत्र से कहा कि हे सुमंत्र! तुम रथ ले आओ, हम अभी चलेंगे।।५४।।५५।। यह आज्ञा पाकर सुमंत्र ने रथ में घोड़े जोते और राम लक्ष्मण और सीताजी उस पर बैठकर तुरंत विदा हुए।।५६।। और थोड़ी दूर तक वे लोगों के बहकाने के लिये अयोध्या की ओर गये परंतु फिर पता न चला कि कहां गये। इधर सवेरे जब वे सब उठे और रामचन्द्रजी को न देखा तो बड़े दुःखी हुए।।५७।। वे रथ के लीख के मार्ग को देखते हुए पुर की और लौट आये और वहां नित्य अपने हृदय में सीता रामचन्द्रजी का ध्यान कर रहने लगे।।५८।। सुमंत्र ने भी बड़े आदर से रथ को शीघ्र चलाया और सीता सहित रामचन्द्र बड़े समृद्ध देशों को देखते हुए श्रृंगवेरपुर के पास गंगाजी के किनारे पहुँचे और श्रीगंगाजी के दर्शन कर आनन्द चित्त से उसमें स्नान कर।।५९।।६०।। रामचन्द्रजी ने शिंशपा वृक्ष के नीचे डेरा जमा दिया फिर गुह ने अपने आदमियों से यह सुनकर कि रामजी आये हैं। बड़ा भारी आनन्द मनाया और मीठे मीठे फल पुष्प भेंट लेकर भक्ति से प्रसन्न होता हुआ शीघ्र अपने सखा और.स्वामी रामचन्द्रजी से मिलने आया।।६१।।६२।।

अ०का० सर्ग ५

रामस्याग्रेविनिक्षिप्यदण्डवत्प्रापतद्भुवि ।। गुहमुत्थाप्यतंतूर्णंराघवः परिषस्वजे ।।६३।। संपृष्टकुशलोरामं-गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।। धन्योऽहमद्यमेजन्मनैषादंलोकपावन ।।६४।। बभूवपरमानंदः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गंरघूत्तम ।। नैषादराज्यमेतत्तेकिङ्करस्यरघूत्तम ।।६५।। त्वदधीनंवसन्नत्रपालयास्मान्रघूद्वह ।। आगच्छयामोनगरंपावनंकुरुमे गृहम् ।।६६।। गृहाणफलमूलानित्वदर्थसञ्चितानिमे ।। अनुगृह्णीष्वभगवन्दासस्तेऽहंसुरोत्तम ।।६७।। रामस्तमाहसुप्रीतोवचनंभृणुमेसखे ।। नवेक्ष्यामिगृहंग्रामंनववर्षाणिपञ्चच ।।६८।। दत्तमन्येनननो-भुञ्जेफलमूलादिकिञ्चन ।। राज्यंममैतत्तेसर्वंत्वंसखामेऽतिवल्लभः ।।६९।। वटक्षीरंसमानाय्यजटामुकुटमाद-रात् ।। बबन्धलक्ष्मणेनाथसहितोरघुनंदनः ।।७०।। जलमात्रंतुसंप्राश्यसीतयासहराघवः।।आस्तृतंकुशपर्णाद्यैः शयनंलक्ष्मणेनहि ।।७१।। उवासतत्रनगरप्रासादाग्रेयथापुरा ।। सुष्वापतत्रवैदेह्यापर्यंकइवसंस्कृते ।।७२।। ततोऽविदूरेपरिगृह्यचापंसबाणतूणीरधनुःसलक्ष्मणः ।।ररक्षरामंपरितोविपश्यन्गुहेनसार्धंसशरासनेन।।७३।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडेपंचमः सर्गः ।।५।।

और रामजी के आगे भेंट धरकर और पृथ्वी पर लेटकर उन्हें दंडवत् प्रणाम किया। रामजी ने तुरंत उस गुह को उठाकर छाती से लगा लिया।।६३।। और उससे कुशल पूछी। गुह ने हाथ जोड़कर रामजी से कहा कि आप सब जगत् को पवित्र करनेवाले हो और मेरा जन्म निषादकुल में है। आपने जो मुझे छाती से लगाया, इससे मुझे बड़ा भारी आनन्द हुआ और आज मैंने अपने को धन्य माना और हे रामचन्द्रजी! मैं आपका सेवक हूं और यह सब निषादराज्य आपका है।।६४।।६५।। इसे अपने आधीन कर और यहां रहकर हम लोगों की रक्षा कीजिये और नगर में चलकर मुझ दास का घर पवित्र कीजिये।।६६।। और हे भगवन्! ये कंद मूल फल जो आपकी भेंट के लिये इकट्ठे करके लाया हूं इनको ग्रहण करके अपने दास पर कृपा करिये।।६७।। रामचन्द्रजी उससे प्रसन्न होकर बोले कि हे मित्र! मेरी बात सुनो कि मैं चौदह वर्ष तक किसी ग्राम वा घर में नहीं जाऊँगा।।६८।। और दूसरे के दिये हुए कोई फल मूल आदि भी मैं नहीं खाऊँगा और यह तेरा सब राज्य मेरा ही है क्योंकि तू मेरा प्यारा सखा है।।६९।। इसके अनंतर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी ने निषाद से बड़ का दूध मंगवाकर बड़े प्रेम से जटामुकुट बांधा।।७०।। और सीतासहित रामजी उस दिन जलमात्र ही पान करके

लक्ष्मणजी ने जो कुश पत्र आदि की सुन्दर शय्या तैयार की थी उस पर ऐसे सोये कि जैसे अयोध्यापुरी के महल की अटारी पर सीताजी के साथ कोमल बिछौने बिछे हुए पलंग पर सोते थे।।७१।।७२।। फिर पास ही लक्ष्मणजी तरकस कस, धनुष बाण हाथ में लेकर रामजी की रक्षा करने लगे और चारों ओर देखते रहे कि कोई हिंसक जीव न आने पावे और उनके साथ गुह भी धनुष हाथ में लिये रामजी का पहिरा देने लगा।।७३।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृतरसालाटीकासहितअयोध्याकांड का पंचम सर्ग समाप्त हुआ।।५।।

श्रीमहादेव उवाच ।। सुप्तंरामंसमालोक्य गुहःसोऽश्रुपरिप्लुतः।।लक्ष्मणं प्राह विनयाद्भ्रातः पश्यसिराघवम् ।।१।। शयानंकुशपत्रौघसंस्तरेसीतयासह ।। यःशेतेस्वर्णपर्यङ्केस्वास्तीर्णेभवनोत्तमे ।।२।। कैकेयी रामदुःखस्य कारणंविधिनाकृता ।। मन्थराबुद्धिमास्थायकैकेयीपापमाचरत्।।३।।तच्छ्रुत्वालक्ष्मण प्राहसखेश्रृणुवचोमम् ।। कः कस्य हेतुर्दुःखस्यकश्चहेतुः सुखस्यवा ।।४।। स्वपूर्वार्जितकर्मैवकारणंसुखदुःखयोः ।।५।। सुखस्य दुःखस्य नकोऽपिदातापरोददातीति कुबुद्धिरेषा ।। अहंकरोमीतिवृथाऽभिमानःस्वकर्मसूत्रग्रथितोहिलोकः ।।६।। सुहृन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थबान्धवाः।। स्वयमेवाचरन्कर्म तथातत्रविभाव्यते ।।७।। सुखंवायदिवादुःखं-स्वकर्मवशगो नरः ।। यद्यद्यथागतंतत्तद्भुक्त्वास्वस्थमनाभवेत् ।।८।।

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी को सोता हुआ देख गुह आंखों में आंसू भरकर लक्ष्मणजी से विनयपूर्वक कहने लगा कि हे भाई! रामचन्द्रजी को तो देखो।।१।। जो रामचन्द्रजी सुन्दर कोमल गद्दी तकिये लगे हुए सुवर्ण के पलंग पर सोते थे वे आज सीतासहित कुशपात की शय्या पर सो रहे हैं।।२।। विधाता ने कैकेई को रामचन्द्रजी को दुःख देने के लिये ही रचा है। कैकेई ने मंथरा की बुद्धि से अर्थात् उसके कहे में आकर यह पाप किया है।।३।। यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा—हे सखा! मेरी बात सुनो कि कौन किसी को दुःख वा सुख देता है।।४।। अपने पूर्व जन्म के कर्म से ही सुख दुःख मिलता है।।५।। कोई सुख दुःख देनेवाला नहीं है। दूसरा सुख दुःख देता है, ऐसा समझना बुद्धि का फेर है। यह संसार अपने कर्म की डोरी से बँधा है और यह कहे कि 'मैं करता हूं' सो झूठा अभिमान है इसमें संदेह नहीं।।६।।

सुहृद*, मित्र**, शत्रु, उदासीन***, मध्यस्थ**** और बांधव ये स्वयं जैसा कर्म करते हैं वैसे माने जाते हैं।।७।। सुख हो वा दुःख हो मनुष्य को अपने कर्म के वश से मिलता है सो जो मिले उसे भोगकर चित्त में सावधान रहे।।८।।

नमेभोगागमेवाञ्छानमेभोगविवर्जने ।। आगच्छत्वथमागच्छत्वभोवशगोभवे ।।९।। यस्मिन्देशेचकालेच यस्माद्वायेनकेनवा ।। कृतंशुभाशुभंकर्मयोज्येतत्तत्रनान्यथा ।।१०।। अलंहर्षविषादाभ्यांशुभाशुभफलोदये ।। विधात्राविहितंयद्यत्तदलङ्घ्यंसुरासुरैः ।।११।। सर्वदासुखदुःखाभ्यांनरः प्रत्यवरुध्यते ।। शरीरंपुण्यपापाभ्या मुत्पन्नंसुखदुःखवत् ।।१२।। सुखस्यानन्तरंदुःखंदुःखस्यानन्तरंसुखम्।।द्वयमेतद्धिजन्तूनामलङ्घ्यंदिनरात्रिवत् ।।१३।। सुखमध्येस्थितंदुःखं दुःखमध्येस्थितंसुखम् ।। द्वयमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत् ।।१४।। तस्माद्धैर्येण विद्वांसइष्टानिष्टोपपत्तिषुः ।। नहृष्यन्तिनमुह्यन्तिसर्वंमायेति भावनात् ।।१५।। गुहलक्ष्मणयो-रेवंभाषतोर्विमलंनभः बभूवरामः सलिलं स्पृष्ट्वाप्रातः समाहितः ।।१६।उवाचशीघ्रंसुदृढांनावमानयमेसखे ।। श्रुत्वारामास्यवचनं निषादाधिपतिर्गुहः ।।१७।।

न मुझे भोग मिलने की इच्छा है और न दुःख भोग त्यागने की इच्छा है। दैववश से जो कुछ सुख वा दुःख मिलना हो सो मिले मैं भोग के वश में नहीं हूं।।९।। जिस देश और काल में जिस कारण से वा जिस किसी के द्वारा, शुभ अशुभ कर्म किया है, वह पुरुष को अवश्य भोगना पड़ता है, न भोगे यह नहीं हो सकता।।१०।। इसलिये शुभ अशुभ फल होने में अर्थात् सुख दुःख के मिलने में हर्ष शोक न करना चाहिये क्योंकि विधाता ने जो रचा है उसे देवता वा दैत्य कोई उल्लघन करने को समर्थ नहीं है।।११।। इसलिये मनुष्य सदा सुख दुःख से युक्त बना ही रहता है क्योंकि यह मनुष्य शरीर पुण्य और पाप दोनों से उत्पन्न हुआ है इसको सुख दुःख लगे ही रहते हैं।।१२।। सुख के पीछे दुःख होता है दुःख के पीछे सुख होता है इन दोनों का जोड़ा है सो जैसे दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन होता है इसी प्रकार सुख दुःख प्राणियों को हुआ ही करते हैं।।१३।। और जैसे पानी और कीचड़ आपस में मिले रहते हैं वैसे ही सुख में दुःख और दुःख

---

* जैसे माता पिता ** न वैर करै न मित्रता करे *** किसी प्रयोजन मे वैर करे **** व्यवहार में जो बने विगड़े में साथ दे।

में सुख आपस में मिले हुए रहते हैं।।१४।। इसलिये ज्ञानी पुरुष धैर्यपूर्वक सुख में प्रसन्न और दुःख में घबराते नहीं हैं यह जानकर कि यह सब मायाकृत है।।१५।। इस प्रकार गुह और लक्ष्मणजी की बातचीत होते होते आकाश निर्मल हो गया और जब रामचन्द्रजी सन्ध्योपासनादि कर सुचित्त हुए।।१६।। तब उन्होंने गुह से कहा कि हे सखा! हमारे लिये एक मजबूत सी नाव ले आओ। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा सुनकर निषादराज गुह ।।१७।।

स्वयमेवदृढांनावमानिनाय सुलक्षणाम् ।। स्वामिन्नारुह्यतांनौकां सीतयालक्ष्मणेनच ।।१८।। वाहयेज्ज्ञातिभिः सार्धमहमेव समाहितः ।। तथेतिराघवः सीतामारोप्यशुभलक्षणाम् ।।१९।। गुहस्यहस्तावालम्ब्यस्वयंचारुरुहदच्युतः ।। आयुधादीन्समारोप्यलक्ष्मणोऽप्यारुरोहच ।।२०।। गुहस्तान्वाहयामासज्ञातिभिःसहितः स्वयम् ।। गङ्गामध्येगतागङ्गांप्रार्थयामासजानकी ।।२१।। देविगङ्गेनमस्तुभ्यंनिवृत्तावनवासतः ।। रामेणसहिताहं त्वांलक्ष्मणेनचपूजये ।।२२।। सुरामांसोपहारैश्चनानाबलिभिरादृता देविगङ्गेनमशनैरुत्तीर्यजग्मतुः ।।२३।। गुहोऽपिराघवं प्राहगमिष्यामि त्वयासह ।। अनुज्ञांदेहिराजेन्द्रनोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।२४।।

आप ही एक सुन्दर बनी हुई दृढ नौका ले आया और विनय करने लगा कि हे स्वामी! सीता और लक्ष्मणजी के साथ आप इस पर चढ़ें।।१८।। मैं अपने कुटुम्बियों सहित अपने आप इस नाव को सावधानी से खेऊंगा। फिर रामचन्द्रजी ने बहुत अच्छा, ऐसा कहकर सौभाग्यवती सीताजी को उस नाव पर चढ़ाया।।१९।। फिर गुह के दोनों हाथ पकड़कर भगवान् आप चढ़े। और पीछे से लक्ष्मणजी उस पर आयुध आदि रखकर चढ़े।।२०।। और सबके बैठ जाने पर गुह ने अपने कुटुंबियों समेत आप उस नाव को चलाया और जब नाव गंगाजी के बीचोंबीच पहुँची तब जानकीजी ने उनकी स्तुति कर प्रार्थना की कि।।२१।। हे देवी! हे गंगे! तुमको नमस्कार है। जब मैं रामलक्ष्मणसहित वन से कुशलपूर्वक

राम भैरों तिताला—जै गंगा जै जै जगजननी जै संतन सुखदाई। भक्त भूप भागीरथ के हित प्रथम अवनिपर आई ।।१।। चरनकमल अनुराग भागकरि लै ब्रह्मा उर लाई। प्रबल प्रताप कहां लगि वरनों शंकर सीस चढ़ाई ।। जै गंगे ।।२।। चार खानि जग जीव उधारन वेद विमल जस गाई ।। तरल तरंग पाप खल खंडन महिमा वरनि न जाई। जयगंगा० ।।३।। गन गंधर्व अमर किन्नर मुनि रहत सदा लौलाई। घोरघार गंभीर निर्मल जल छुवत अधम तर जाई ।। जै गंगा ।।४।। कनक सिखर धर ललित मनोहर उर जै माल सुहाई ।। ताकी कांति देखि जमकिंकर करुनाकर फिर जाई ।। जै गंगा० ।।५।। रामनाम गंगा कलि केवल और न कछू उपाई ।। कान्हरतास धन्य जो जग में वसत सदा सिरनाई ।। जै गंगा० ।।६।।

लौटूंगी तब मदिरा मांस और फलपुष्पों से तथा अनेक भांति भेंटों से तुम्हारी आदरपूर्वक पूजा करूंगी और यह कहकर सीता रामजी दोनोंधीरे २ गंगा उतरकर परली पार पहुँचे।।२२।२३।। फिर गुह ने भगवान् से कहा कि मैं भी आपकी सेवा में चलूंगा हे राजाधिराज! मुझे आज्ञा दीजिये नहीं तो मैं प्राण त्याग दूंगा।।२४।।

श्रुत्वानैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत् ।। चतुर्दशसमाः स्थित्वादण्डकेपुनरप्यहम् ।।२५।। आयास्याम्युदितंसत्यंनासत्यंरामभाषितम्।। इत्युक्त्वा लिङ्गचतंभक्तंसमाश्वास्यपुनः पुनः।।२६।।निवर्तयामासगुहसोऽपिकृच्छ्राद्ययौगृहम् ।। तत्रमेध्यमृगंहत्वा पक्त्वाहुत्वाचतेत्रयः ।।२७।। भुक्त्वावृक्षतलेसुप्त्वा सुखमासततांनिशाम् ।। ततोरामस्तुवैदेह्यालक्ष्मणेन समन्वितः ।।२८।। भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः।।तत्रैकंवटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे वटो ।।२९।। रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ।। आस्तेबहिर्वनस्येति ह्युच्यतांमुनिसन्निधौ ।।३०।। तच्छ्रुत्वासहसागत्वापादयोः पतितोमुनेः ।। स्वामिन्रामः समागत्यवनाद्बहिरवस्थित ।।३१।। सभार्यः सानुजः श्रीमानाहमांदेवसन्निभः ।। भरद्वाजायमुनयेज्ञापयस्वयथोचितम् ।।३२।। तच्छ्रुत्वासहसोत्थायभरद्वाजोमुनिश्वरः ।। गृहीत्वार्घ्यंचपाद्यंच रामसामीप्यमाययौ ।।३३।।

निषाद के वचन सुनकर श्रीरामजी ने उससे कहा कि चौदह वर्ष दंडकवन में रहकर मैं फिर लौटकर तुम्हारे पास आऊँगा। इस बात को सच मानना राम का वचन कभी मिथ्या नहीं होता यह कहकर गुह को छाती से लगाया और बारंबार उसको समझा बुझाकर विदा किया और वह भी बड़ा दुःख पाता हुआ घर को लौट गया फिर वहां वन में रामचन्द्रजी ने एक पवित्र हिरन को मारा और उसे पकाकर हवन किया और शेष को तीनों जने भोजन कर वृक्ष के नीचे रहे और यों वह रात्रि वहां सुख से बिताई। फिर रामचन्द्रजी जानकी और लक्ष्मणजी को साथ लेकर।।२५-२८।। प्रयागराज में भरद्वाजजी के आश्रम पर जा पहुँचे। बाहर खड़े हो वहां राम ने उनके एक चेले को देखकर हे बटो! ।।२९।। तुम जाकर मुनिजी से कह आओ कि दशरथ का पुत्र रामचन्द्र सीता लक्ष्मणसहित वन के बाहर खड़ा है।।३०।। यह सुनकर वह तुरंत गया और मुनि के चरणों में गिरकर निवेदन किया कि हे स्वामी! देवताओं के समान कांतिमान् श्रीयुत् रामचन्द्रजी अपनी भार्या और भाई सहित आकर वन के बाहर खड़े हैं और उन्होंने मुझसे कहा है कि भरद्वाज

मुनि से मेरा आगमन यथोचित रीति से जतला आओ।।३१।।३२।। यह सुनते ही भारद्वाज मुनि जल्दी से उठकर अर्घ्य पाद्य लेकर रामजी के पास आये।।३३।।

दृष्ट्वारामंयथान्यायं पूजयित्वासलक्ष्णम्।।आहमेपर्णशालांभो रामराजीवलोचन।।३४।। आगच्छपादरजसापुनीहिरघुनन्दन ।। इत्युक्त्वोटजमानीयसीतयासहराघवौ ।।३५।। भक्त्यापुनः पूजयित्वाचकारातिथ्यमुत्तमम् ।। अद्याहंतपसःपारंगतोऽस्मितवसङ्गमात् ।।३६।। ज्ञातंरामतवोदन्तंभूतंचागामिकंचयत् ।। जानामित्वांपरात्मानंमाययाकार्यमानुषम् ।।३७।। यदर्थमवतीर्णोऽसिप्रार्थितो ब्रह्मणापुरा ।। यदर्थंवनवासस्तेयत्करिष्यसिवैपुरः ।।३८।। जानामिज्ञानदृष्टयाहंजातयात्वदुपासनात् ।। इतः परंत्वांकिंवक्ष्येकृतार्थोऽहं रघूत्तम ।।३९।। यस्त्वांपश्यामिकाकुत्स्थंपुरुषंप्रकृतेः परम् ।। रामस्तमभिवाद्याहसीतालक्ष्मणसंयुतः ।।४०।। अनुग्राह्यास्त्वयाब्रह्मन्वयंक्षत्रियबान्धवाः ।। इतिसंभाष्यतेऽन्योन्यमुषित्वामुनिसन्निधौ ।।४१।। प्रातरुत्थाययमुनामुत्तीर्यमुनिदारकैः ।। कृतप्लवेन मुनिनादृष्टमार्गेणराघवः ।।४२।।

रामजी के दर्शन करके और लक्ष्मणसहित उनका शास्त्र विधि से पूजन करके बोले–हे कमलनयन रामचन्द्र! हमारी पर्णकुटी में पधारिये और हे रघुनन्दन! उस अपने चरणों की रज से पवित्र कीजिये। यह कहकर सीता सहित लक्ष्मणजी को अपनी पर्णकुटी में लिवा लाये।।३४।।३५।। और फिर भक्ति से उनका पूजन आदर करके उत्तम रीति से अतिथिसत्कार किया और बोले कि हे राम! तुम्हारे दर्शन से आज मेरा तप सफल हुआ।।३६।। आपका वृत्तान्त जो हो चुका है और होनेवाला है वह मुझसे छिपा नहीं है, मैं सब जानता हूं। तुम साक्षात् परमेश्वर हो। तुमने माया से मनुष्यरूप धारण किया है।।३७।। पहिले ब्रह्माजी ने आपसे प्रार्थना की थी सो जिस लिये आपने अवतार लिया है और जिस लिये तुम्हें वनवास हुआ है और जो तुम आगे करोगे।।३८।। सो सब मैं तुम्हारी उपासना से उत्पन्न हुई ज्ञान दृष्टि

भजन राग भैरों तिताला-जै जै तीरथराज प्रयाग जाको जनम सुफल या जगमें या जो न्हावहै भरि माघ।।१।। दरसन किये पाप यों भागे ज्यों खगपतिसों नाग। मज्जनको फल निगम बखाने चैत्र भुजा हो काग ।।२।। दशाश्वमेध घाट अति पावन चहुं दिसि उपवन बाग। संगम सुर सरिता तिरवेनी माधव परम सुहाग ।।३।। महा अखैवट पावनकारी दरस परस अनुराग। लाहाराम दास कहा कान्हर भज भारद्वाज बड़ भाग ।।४।।

से जानता हूं और हे रघुनाथजी! इससे अधिक मैं आपसे क्या कहूं कि मैं आज कृतार्थ हो गया।।३९।। क्योंकि मुझे तुम्हारा दर्शन हुआ तुम ककुत्स्थवंश में उत्पन्न हुए हो परंतु प्रकृति के नियंता साक्षात् परमेश्वर हो। फिर सीता लक्ष्मण सहित रामजी मुनि को प्रणाम करके बोले।।४०।। हे ब्रह्मन्! हम तो क्षत्री लोग हैं आपके अनुग्रह करने के योग्य ही हैं इस प्रकार आपस में संभाषण करके भगवान् ने मुनि के पास रात्रि भर निवास किया।।४१।। और प्रातःकाल उठकर जब मुनि स्नान कर चुके तब उन्हीं के बताये हुए मार्ग से रामजी मुनि बालकों को साथ लेकर यमुना उतरकर चित्रकूट पर्वत पर गये जहां वाल्मीकिजी का आश्रम था। फिर वहां से चलकर रामचन्द्रजी वाल्मीकिजी के आश्रम में पहुँचे। वहां क्या देखा कि अनेक ऋषि तपस्या कर रहे हैं।।४२।।४३।।

प्रययौचित्रकूटाद्रिंवाल्मीकेर्यत्रचाश्रमः ।। गत्वारामोऽथवाल्मीकेराश्रमंऋषिसंकुलम् ।।४३।। नानामृगद्विजाकीर्णंनित्यपुष्पफलाकुलम् ।। तत्रदृष्ट्वासमासीनंवाल्मीकिंमुनिसत्तमम् ।।४४।। ननामशिरसारामोलक्ष्मणेनचसीतया ।। दृष्ट्वारामंरमानाथंवाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ।।४५।। जानकीलक्ष्मणोपेतंजटामुकुटपण्डितम् ।। कन्दर्पसदृशाकारंकमनीयाम्बुजेक्षणाम् ।।४६।। दृष्ट्वैवसहसोत्तस्थौविस्मयानिमिषेक्षणः ।। आलिङ्ग्यपरमानन्दं रामंहर्षाश्रुलोचनः ।।४७।। पूजयित्वाजगत्पूज्यं भक्त्यार्घ्यादिभिरादृतः ।। फलमूलैःसमधुरैर्भोजयित्वाचलालितः ।।४८।। राघवः प्राञ्जलिः प्राहवाल्मीकिंविनयान्वितः ।। पितुराज्ञांपुरस्कृत्यदण्डकानागतावयम् ।।४९।।

नानाप्रकार के मृग और पक्षी कलोलें कर रहे हैं तथा सब ऋतुओं में जहां वृक्षों पर फल लटके और फूल खिले रहते हैं फिर वहां बैठे हुए मुनिराज वाल्मीकिजी के दर्शन किये।।४४।। और लक्ष्मणजी सीतासहित रामजी ने उनको शिर

---

१ राग जै जैवंती इकताला–चित्रकूट अद्भुत छवि वरनी वहि जाई । तहां जाइ निवास कियो जानकी रघुराई।।१।। चारि शिखर सुन्दर वर कंदर मंदर अनूप झरना झर झरत नीर मणिगण समुदाई ।।२।। जहँ जहँ प्रभु धरता पाय पाहन तन पिघलिजाय रामचरण अंकित गिरि देखत अब जाई।।३।। पैसरणी जल गंभीर फटिक शिला सुभट तीर ललित लता द्रुम वेली फल फूलन छाई ।।४।। बोलत कोकिला कीर भौंरनकी महाभीर घूमत मकरंद मत्त गहबर अमराई।।५।। अंब निंबकदंब चंपा केतकी चमेली जुई केवड़ा सुगंध गंध पाडल महकाई।।६।। मौलसरी मलयागिरि माधुरी तरंग रंग नंदनवन प्रगट्यौ मानों अवनीपर आई।।७।। मुनिजन जहँ धरत ध्यान गंधर्वगन करत गान त्रिविध विधि समीर बहै शीतल सुखदाई।।८।। अति उदार गुन अपार मंजन भूमिगत कान्हेर दशरथ कुंमार राजन दोउ भाई।।९।।

नवाकर प्रणाम किया। वाल्मीकिमुनि जानकी लक्ष्मणजी सहित जटाओं का मुकुट धारे, कामदेव के समान, सुन्दर कमल के समान नेत्रवाले, त्रिलोकी में सुन्दर ऐसे लक्ष्मीपति रामचन्द्रजी के दर्शन करते ही एक साथ उठ बैठे और आश्चर्य से टकोरी बांधे उन्हें देखने लगे और परमानन्दस्वरूप रामजी को छाती से लगाया। उस समय हर्ष के कारण मुनि के नेत्रों से आंसू टकपने लगे।।४५–४७।। उन्होंने जगत् के पूज्य रामचन्द्र का भक्ति और आदरपूर्वक अर्घ्य आदि से पूजन किया और बड़े मधुर कंद मूल फलों से उनको भोजन कराकर उन्हें प्रसन्न किया।।४८।। फिर रामचन्द्रजी ने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर वाल्मीकिजी से कहा कि पिता की आज्ञा से हम दंडकवन में आये हैं।।४९।।

भवन्तोयदिजानन्तिकिंवक्ष्यामोऽत्रकारणम् ।। यत्रमेसुखवासायभवेत्स्थानंवदस्व तत् ।।५०।। सीतयासहितः कालंकिंचित्तत्रनयाम्यहम् ।। इत्युक्तोराघवेणासौमुनिः सस्मितमब्रवीत्।।५१।।त्वमेव सर्वलोकानांनिवासस्थानमुत्तमम् ।। तवापिसर्वभूतानि निवाससदनानिहि ।।५२।। एवं साधारणं स्थानमुक्तंतेरघुनन्दन ।। सीतयासहितस्येति विशेषंपृच्छतस्तव ।।५३। तद्वक्ष्यामिरघुश्रेष्ठयत्तेनियतमन्दिरम् ।। शान्तानांसमदृष्टीनामद्वेष्टॄणांचजन्तुषु ।। त्वामेवभजतांनित्यंहृदयंतेऽधिमन्दिरम् ।।५४।। धर्माधर्मान्परित्यज्यत्वामेवभजतोऽनिशम् ।। सीतयासहतेरामतस्यहृत्सुखमन्दिरम् ।।५५।। त्वन्मन्त्रजापकोयस्तुत्वामेवशरणं गतः ।। निर्द्वन्द्वोनिः स्पृहस्तस्यहृदयंतेसुमन्दिरम् ।।५६।। निहरङ्कारिणः शान्तायेरागद्वेषवर्जिताः ।। समलोष्ठाश्मकनकास्तेषांतेहृदयं गृहम् ।।५७।। त्वयिदत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदाभवेत् ।। त्वयिसंत्यक्तकर्मायस्तन्मनस्तेशुभंगृहम् ।।५८।।

और आप इस कारण को जानते ही होंगे, हम क्या कहें सो जहां हम सुख से वास कर सकें उस स्थान को बता दीजिये।।५०।। सीताजी के साथ वहां रहकर कुछ काल बिताऊंगा। जब रामजी ने यह कहा तब यह मुनि वाल्मीकिजी हँसकर कहने लगे।।५१।। तुम ही सब लोकों के उत्तम निवासस्थान हो और सब प्राणी तुम्हारे रहने के स्थान हैं इसमें संदेह ही क्या है।।५२।। और हे रघुनन्दन! यह तो मैंने तुम्हारा साधारण स्थान कहा है और जो तुम सीतासहित रहने के लिये विशेष कोई स्थान पूछते हो तो।।५३।। हे रघुश्रेष्ठ! जो तुम्हारा निरंतर रहने का स्थान है उसे कहता हूं जो

शांत समान दृष्टिवाले और जो किसी से द्वेष नहीं करते और नित्य तुम्हारा ही भजन करते हैं ऐसे पुरुषों के हृदय में तुम्हारे रहने का मंदिर है।।५४।। और हे राम! जो सब धर्मों को छोड़कर सीतासहित तुम्हारा ही भजन रात्रि दिन करता है उसके हृदय में तुम्हारा उत्तम स्थान है।।५५।। जो तुम्हारे "राम" इस मंत्रराज का जप करता है और तुम्हारी ही शरण हैं तथा निर्द्वन्द कहिये शीत उष्ण सुख दुःख आदि रहित और जिसे सिवाय तुम्हारे और किसी बात की इच्छा नहीं है। उसके हृदय में तुम्हारा सुन्दर मन्दिर है।।५६।। जिनको अहंकार नहीं है जो शांत और रागद्वेषरहित हैं और जिन्हें मही का डेला पत्थर और सुवर्ण समान है उनके हृदय में तुम्हारे रहने का स्थान है।।५७।। जिसने बुद्धि और मन को तुममें ही लगा रखा है और जो सदा संतोषी है और जो सब कर्मों को आप ही समर्पण करता है ऐसे पुरुष का मन

योनद्वेष्टचाप्रियंप्राप्य प्रियंप्राप्यनहृष्यति।। सर्वंमायेतिनिश्चित्यत्वांभजेत्तन्मनो गृहम् ।।५९।।षड्भावादिविकारान्योदेहेपश्यतिनात्मनि ।। क्षुतृट्सुखंभयंदुःखंप्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते।।६०।। संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्यतेमानसंगृहम् ।।६१।। पश्यन्तियेसर्वगुहाशयस्थंत्वाचिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ।। अलेपकंसर्वगतंवरेण्यंतेषाहृदब्जेसहसीतयावस ।।६२।। निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनांत्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम्।। त्वन्नामकीर्त्याहतकल्मषाणांसीतासमेतस्यगृहयृदब्जे ।।६३।। रामत्वन्नाममहिमावर्ण्यतेकेनवाकथम्।। यत्प्रभावादहंरामब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ।।६४।। अहंपुराकिरातेषुकिरातैः सहवर्धितः ।। जन्ममात्रद्विजत्वंमेशूद्राचाररतः सदा ।।६५।। शूद्रायांबहवः पुत्राउत्पन्नामेऽजितात्मनः ।। ततश्चारैश्चसंगम्यचौरोऽहमभवंपुरा ।।६६।। धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामन्तकोपमः ।। एकदामुनयः सप्तदृष्टामहतिकानने ।।६७।।

जो पुरुष अप्रियवस्तु पाकर द्वेष नहीं करता और प्रिय वस्तु को पाकर हर्ष नहीं करता और सबको मायाकृत समझकर तुम्हारा भजन करता है उसका मन तुम्हारे रहने का मन्दिर है।।५९।। और जो पुरुष छः* विकारों को देह में देखता है और आत्मा में नहीं देखता और भूख प्यास को प्राण का धर्म समझता है और भय दुःख को बुद्धि का धर्म

(१) जन्म (२) उत्पत्ति (३) बुद्धि (४) परिणाम (५) क्षीणता (६) नाश।

जानता है और संसार के धर्म (पुण्य पाप) से छूट गया है उस ज्ञानी का हृदय तुम्हारा स्थान है॥६०॥६१॥ और जो पुरुष, अन्नमयादि कोशों में रहनेवाले, चैतन्य स्वरूप तीनों कालों में वर्तमान, अनन्त अद्वितीय सबसे भिन्न सर्वव्यापक और परम श्रेष्ठ ऐसे आपके दर्शन करता है उसके हृदय कमल में तुम सीतासहित निवास करो॥६२॥ और जिन्होंने रात्रि दिन ध्यान कर कर के अपने मन को तुम्हारे स्वरूप में निश्चय कर रखा है जो तुम्हारे चरणों की सेवा में लगे रहते हैं और जिन्होंने तुम्हारे नाम कीर्तन से अपने पाप नाश कर दिये हैं, ऐसे भक्तों के हृदयकमल में तुम सीतासहित निवास करो॥६३॥ हे राम! तुम्हारी महिमा और नाम को कैसे कोई वर्णन कर सकता है। हे राम! जिस तुम्हारे नाम के प्रभाव से मैं ब्रह्मर्षि की पदवी को पहुँच गया॥६४॥ पूर्वकाल में मुझे किरातों ने ही तो पाला पोसा और उन्हीं के साथ मैं रहा। एक जन्ममात्र से तो मैं ब्राह्मण था परंतु सदा करता रहा शूद्रों के ही आचरण॥६५॥ फिर इन्द्रियों के वशीभूत होने के कारण मुझसे एक शूद्रा के बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए। फिर चौरों के साथ रहने से मैं भी चौर हो गया॥६६॥ मैं नित्य धनुषबाण धारण कर प्राणियों को यमराज के समान दुःख देने लगा। एक समय एक बड़े भारी वन में मैंने सात ऋषियों को देखा।

साक्षान्मयाप्रकान्तोज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ तानन्वधावंलोभेनतेषांसर्वपरिच्छदान् ॥६८॥ ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रुवम् ॥ दृष्ट्वामांमुनयोपृच्छन्किमायासिद्विजाधम ॥६९॥ अहंतानब्रुवंकिञ्चिदादातुं मुनिसत्तमाः ॥ पुत्रदारादयः सन्तिबहवोमेबुभुक्षिताः ॥७०॥ तेषांसंरक्षणार्थायचरामिगिरिकानने ॥ ततोमामूचुरव्यग्रापृच्छगत्वाकुटुम्बकम् ॥७१॥ योयोमयाप्रतिदिनंक्रियतेपापसंचयः ॥ यूयं तद्भागिनः किंवानेतिवेतिपृथक्पृथक् ॥७२॥ वयंस्थास्यामहेतावदागमिष्यसिनिश्चयः ॥ तथेत्युक्त्वागृहंगत्वामुनिभिर्यदुदीरितम् ॥७३॥ अपृच्छंपुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहंरघूत्तम ॥ पापंतवैवतत्सर्वंवयंतुफलभागिनः ॥७४॥ तच्छ्रुत्वाजातनिर्वेदोविचार्यपुनरागमम् ॥ मुनयोयत्रतिष्ठन्तिकरुणापूर्णमानसाः ॥७५॥ मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तः करणोऽभवम् ॥ धनुरादीन्परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥७६॥ रक्षध्वंमांमुनिश्रेष्ठागच्छन्तं

निरयार्णवम् ॥ इत्यग्रेपतितंदृष्ट्वामामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥७७॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः ॥ उपदेक्ष्यामहेतुभ्यंकिञ्चित्तेनैवमोक्ष्यसे ॥७८॥

उनकी छटा साक्षात् अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान थी। लोभ के कारण मैं उनके पीछे दौड़ा और उनका सब माल मत्ता छीन लेने की इच्छा से मैं उन्हें ठहरो ठहरो यूं पुकारनें लगा। मुझे देखकर मुनि पूछने लगे कि हे नीच ब्राह्मण! तू हमारे पीछे क्यों आता है॥६७–६९॥ मैंने उनसे कहा कि हे मुनिराज! मैं कुछ लेने के लिये आता हूं क्योंकि मेरे स्त्री पुत्रादि बहुत से हैं और भूखे हैं॥७०॥ उनके ही पालन पोषण के लिये मैं वन पर्वतों में घूमा करता हूं। यह मुन वे बेधड़क होकर मुझसे बोले कि जाकर अपने कुटुंब से अलग अलग यह तो पूछ कि मैं जो नित्य पाप कमाता हूं। तुम उनके भी भागी हो कि नहीं॥७१॥७२॥ और निश्चय रख कि जब तक तू पूछकर आवेगा तब तक हम यहां ही खड़े हैं। और मैं 'बहुत अच्छा' यह कहकर घर गया और मुनियों ने जो कुछ कहा था उसे अपनी स्त्री पुत्रादिकों से पूछा कि 'तुम खाने ही के साथी हो या पाप के साथी भी हो' यह सुनकर हे राम! उन्होंने कहा कि तेरा पाप तो सब तेरे ही बट में है हम तो फल के भोगी हैं अर्थात् खाने के साथी हैं॥७३॥७४॥ यह सुनकर मैं बड़ा दुःखी हुआ और फिर लौटकर वहां आया कि जहां दयाशील मुनिराज बैठे थे॥७५॥ और मुनियों के दर्शन करते ही मेरा अंतःकरण शुद्ध हो गया और धनुपवाण को छोड़छाड़ मैं दंड के समान उनके चरणों में पड गया॥७६॥ और बोला कि हे मुनिराजो! मैं नरक के समुद्र में वहा जाता हूं रक्षा करो। इस प्रकार मुझे अपने आगे पड़ा देखकर मुनिराज मुझसे बोले कि॥७७॥ उठ उठ तेरा कल्याण हो। यह हमारा सत्संग तुझे सफल हुआ और हम तुझे कुछ उपदेश करेंगे उससे तेरा मोक्ष हो जायगा॥७८॥

परस्परंसमालोच्यदुर्वृत्तोऽयंद्विजाधमः ॥ उपेक्ष्यएवसद्वृत्तैस्तथापि शरणंगतः ॥ रक्षणीयः प्रयत्नेनमोक्षमार्गोपदेशतः ॥७९॥ इत्युक्त्वारामतेनामव्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥ एकाग्रमनसाऽत्रैवमरेतिजपसर्वदा ॥८०॥ आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तंसदाजप ॥ इत्युक्त्वाप्रययुः सर्वेमुनयो दिव्यदर्शनाः ॥८१॥ अहंयथोपदिष्टंतैस्तथाऽकरवमञ्जसा ॥ जपन्नेकाग्रमनसाबाह्यंविस्मृतवानहम् ॥८२॥ एवंबहुतिथेकालेगतेनिश्चलरूपिणः ॥ सर्वसङ्गविहीनस्यवल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥८३॥ ततोयुगसहस्रान्तेऋषयः पुनरागमन् ॥ मामूचुर्निष्क्रमस्वेति

तच्छ्रुत्वातूर्णमुत्थितः ॥८४॥ वल्मीकान्निर्गतश्चाहंनीहारादिवभास्करः ॥ मामप्याहुर्मुनिगणावाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥८५॥ वल्मीकात्संभवोयस्माद्द्वितीयंजन्मतेऽभवत् ॥ इत्युक्त्वातेययुर्दिव्यगतिंरघुकुलोत्तम ॥८६॥ अहंतेरामनाम्नश्चप्रभावादीदृशोऽभवम् ॥ अद्यसाक्षात्प्रपश्यामिससीतंलक्ष्मणेनच ॥८७॥ रामंराजीवपत्राक्षंत्वांमुक्तोनात्रसंशयः ॥ आगच्छरामभद्रंतेस्थलंवैदर्शयाम्यहम् ॥ मासवासभूः॥प्राक्पश्चिमंदक्षिणोदक् शोभनंमन्दिरद्वयम् ॥९०॥ जानक्यासहितोरामोलक्ष्मणेसमन्वितः ॥ तत्रतेदेवसदृशा ह्यवसन्भवनोत्तमे ॥९१॥ वाल्मीकिनातत्रसुपूजितोऽयंरामः ससीतः सहलक्ष्मणेन ॥ देवैर्मुनीन्द्रैः सहितोमुदाऽऽस्तेस्वर्गे यथादेवपतिः सशच्या ॥९२॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

फिर मुनि आपस में विचारने लगे कि यह ब्राह्मण है तो बड़ा दुराचारी और सत्पुरुषों को ऐसे से किनारा करना ही भला है पर क्या करें, शरण आया है। मोक्षमार्ग के उपदेश से जहां तक हो सके उसकी रक्षा करनी चाहिये॥७९॥ यह कहकर हे राम! उन्होंने मुझे आपका उलटा नाम 'मरा' बता दिया और कहा कि तू सदा उसे एकाग्र मन से यहां ही बैठा बैठा जप कर॥८०॥ और जब तक हम फिर लौटकर न आवें तब तक बराबर जपा ही करियो। यह कहकर वे सब तेजस्वी मुनिजन चले गये॥८१॥ और जैसे उन मुनियों ने कहा था, मैं शीघ्र वैसा ही करने लगा और एकाग्र मन से जप करते करते मैं बाहर की इन्द्रियों के विषय को भूल गया॥८२॥ इस प्रकार जब बहुत काल बीत गया तब मेरा शरीर निश्चल हो गया, सबका संग जाता रहा और मेरे ऊपर बमई चढ़ गई॥८३॥ हजार युग के अंत में वे ऋषि फिर आये और मुझसे बोले कि इस बामी में निकल आओ, इसको सुनकर मैं शीघ्र उठ बैठा॥८४॥ और बामी से निकलकर बाहर ऐसे आ गया कि जैसे कोहरे में सूर्य निकलता है। फिर मुनियों ने मुझसे कहा कि बामई से तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है इसलिये हे मुनिराज! तुम्हारा नाम आज से वाल्मीकि हुआ। हे राम! यह कहकर वे देवलोक को विदा हुए॥८५॥८६॥ सो मैं आपके नाम के प्रभाव से ऐसा हो गया कि सीतालक्ष्मणसहित कमलनयन आपके साक्षात् दर्शन कर मुक्त हो गया इसमें संदेह नहीं। और हे राम! तुम्हारा कल्याण हो चलिये आपको अब रहने के लिये मैं स्थान दिखाऊँ॥८७॥८८॥ यह

कहकर उन तेजस्वी मुनि ने लक्ष्मण और अपने शिष्यों सहित जाकर पर्वत और गंगा के मध्य में।।८९।। रहने के लिये एक सुन्दर लंबी चौड़ी शाला बनवाई और दो सुन्दर मन्दिर बनवाये एक तो पूर्व पश्चिम् की ओर और दूसरा दक्षिण उत्तर की ओर।।९०।। और वहां उस उत्तम भवन में देवसमान राम लक्ष्मण और सीताजी रहने लगे।।९१।। यहां वाल्मीकि मुनि ने इनका बड़ा सत्कार किया और सीता लक्ष्मण तथा मुनीश्वरों सहित रामचन्द्रजी ऐसी प्रसन्नता से रहने लगे कि जैसे स्वर्ग में देवगण और इन्द्राणी सहित इन्द्र आनन्द में रहते हैं।।९२।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकाण्ड का छठा सर्ग समाप्त हुआ।।६।।

श्रीमहादेव उवाच ।। ।। सुमन्त्रोऽपितदायोध्यांदिनान्तेप्रविवेशह ।। वस्त्रेणमुखमाच्छाद्यबाष्पाकुलितलोचनः ।।१।। बहिरेवरथंस्थाप्यराजानंद्रष्टुमाययौ ।। जयशब्देनराजानंस्तुत्वातंप्रणनामह ।।२।। ततोराजानमन्तंतं सुमन्त्रंविह्वलोऽब्रवीत् ।। सुमन्त्ररामः कुत्रास्तेसीतयालक्ष्मणेनच ।।३।। कुत्रत्यक्तस्त्वया रामः किंमांपापिनमब्रवीत् ।। सीतावालक्ष्मणोवाऽपिनिर्दयंमांकिमब्रवीत् ।।४।। हारामहागुणनिधेहासीते-प्रियवादिनि ।। दुःखार्णवेनिमग्नं मांम्रियमाणंनपश्यसि ।।५।। विलप्यैवंचिरंराजानिमग्नोदुःखसागरे ।। एवंमन्त्रीरुदन्तंतंप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।।६।। रामः सीता च सौमित्रिर्मयानीतारथेनते ।। शृङ्गबेर-पुराभ्याशे गङ्गाकूलेव्यवस्थिताः ।।७।। गुहेनकिंचिदानीतंफलमूलादिकंचयत् ।। स्पृष्ट्वाहस्तेन संप्रीत्यानाग्र-हीद्विससर्जतत् ।।८।। वटक्षीरंसमानाय्यगुहेनरघुनन्दनः जटामुकुटमाबद्धचमामाहनृपतेस्वयम् ।।९।। सुमन्त्र ब्रूहि राजानंशोकस्तेऽस्तुनमत्कृते ।। साकेतादधिकंसौख्यंविपिनेनोभविष्यति ।।१०।। मातुर्मेवन्दनंब्रूहिशोकं त्यजतुमत्कृते ।। आश्वासयतुराजानंवृद्धंशोकपरिप्लुतम्।।११।। सीताचाश्रुपरीताक्षीमा-माहनृपसत्तम् । दुःखगद्गदयावाचारामंकिंचिदवेक्षती ।।१२।। साष्टाङ्गप्रणिपातंमेब्रूहिश्वश्वोःपदाम्बुजे ।। इति प्ररुदतीसी-तागताकिंचिदवाङ्मुखी ।।१३।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके अनंतर श्रीराम जानकी को गंगातट पर छोड़कर सुमंत्र लौटा और सायंकाल के समय वस्त्र से मुहँ ढँककर नेत्रों में आंसू बहाता हुआ अयोध्या में आया।।१।। और रथ को बाहर छोड़कर राजा

दशरथ से मिलने आया और 'महाराज! जुग जुग जीओ' ऐसी स्तुति करके उनको प्रणाम किया।।२।। फिर राजा ने प्रणाम करते हुए सुमंत्र से घबराकर पूछा कि हे सुमंत्र! सीता लक्ष्मणसहित राम कहां है।।३।। तुम राम को कहां छोड़ आये। राम ने मुझ पापी से क्या कहा और सीता वा लक्ष्मण ने भी मुझ निर्दयी से क्या कहा।।४।। हा राम! हा गुणनिधे! हा प्रियवादिनी सीता! मैं दुःख के समुद्र में डूबा हुआ प्राण त्याग रहा हूं और तुम मुझे नहीं देखते।।५।। इस प्रकार राजा बहुत काल तक दुःखसागर में डूब गये और जब मंत्री ने राजा को रोता हुआ देखा तो हाथ जोड़कर यह वचन बोला कि।।६।। मैं राम सीता और लक्ष्मण को आपके रथ में बैठाकर ले गया तो और वे श्रृंगवेरपुर के पास गंगाजी के किनारे ठहर गये।।७।। इतने में गुह ने थोड़े से कंद मूल फल लाकर भेंट किये परंतु रामचन्द्रजी ने प्रीतिपूर्वक उन्हें अपने हाथ से छूकर लौटा दिये, लिये नहीं।।८।। फिर राम ने गुह से बड़ का दूध मँगवाकर अपना जटामुकुट बनाया और हे राजन्! मुझसे स्वयं कहा कि।।९।। हे सुमंत्र! मेरी ओर से तुम राजा से कहना कि मेरा कुछ शोक न करें। वन में हमको अयोध्या से भी अधिक सुख होगा।।१०।। और मेरी माता से भी हाथ जोड़कर कहना कि मेरे लिये शोक न करें और राजा वृद्ध हैं शोक से व्याकुल हो रहे होंगे उन्हें सब भांति से तुम धीरज धराना।।११।। और हे पृथ्वीपते! सीताजी ने रामजी की ओर थोड़ा देखकर और आँखो में आँसू भरकर मुझसे कहा कि ।।१२।। "सास ससुरजी के चरण कमलों में मेरी और से साष्टांग प्रणाम करने कहना" बस इतना ही कहने पाई थी कि उसको आँखो से आसुओं की झड़ी लग गई और सीता थोड़ा नीचा मुख करके रह गई और कुछ कहने न पाई। दुःख के कारण उसका कंठ गद्गद हो गया।।१३।।

ततस्तेऽश्रुपरीताक्षानावमारुरुहुस्तदा ।। यावद्गङ्गासमुत्तीर्यगतास्तावदहंस्थितः ।।१४।। ततोदुःखेनमहता-पुनरेवाहमागतः ।। ततोरुदन्तीकौसल्याराजानमिदमब्रवीत् ।।१५।। कैकेय्यैप्रियभार्यायैप्रसन्नोदत्तवान्वरम् ।। त्वंराज्यंदेहितस्यैवमत्पुत्रः किंविवासितः ।।१६।। कृत्वात्वमेवतत्सर्वमिदानींकिंनुरोदिषि ।। कौसल्यावचनं श्रुत्वाक्षतेस्पृष्टइवाग्निना ।।१७।। पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमब्रवीत् ।। दुःखेनम्रियमाणंमांकिंपुन-र्दुखयस्यलम् ।।१८।। इदानीमेवमेप्राणाउत्क्रमिष्टन्तिनिश्चयः ।। शप्तोऽहंबाल्याभावेनकेनचिन्मुनिनापुरा ।।१९।। पुराहंयौवनेदृप्तश्चापबाणधरोनिशि ।। अचरंमृगयासक्तोनद्यास्तीरेमहावने ।।२०।। तत्रार्धरात्रसमये

मुनिः कश्चित्तृषार्दितः ॥ पिपासार्दितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः ॥ अपूरयज्जलेकुम्भंतदाशब्दोऽभवन्महान् ॥२१॥ गजः पिबतिपानीयमितिमत्वामहानिशि ॥ बाणंधनुषिसन्धायशब्दवेधिनमक्षिपम् ॥२२॥ हाहतोऽस्मीतितत्राभूच्छब्दोमानुषसूचकः ॥ कस्यापिनकृतोदोषोमयाकेनहतोविधे ॥२३॥

उस समय वह नेत्रों से आंसू टपकाती हुई नाव पर चढ़ गई। हे प्रभो! जब तक वे सब गंगा उतरकर गये तब तक तो मैं वहां बैठा रहा।।१४।। फिर बड़े दुःख से मैं ज्यों त्यों कर लौटकर यहां आया हूं।। यह सुन कौसल्ये ने रो रोकर राजा से यह कहा कि।।१५।। महाराज! कैकेई तुम्हारी प्यारी रानी है तुमने प्रसन्न होकर उसे वर दिया सो अच्छा किया। उसके पुत्र को भले ही राज्य दीजिये। इस बात का मुझे परेखा नहीं परंतु मेरे पुत्र को वनवास क्यों दिया।।१६।। तुमने आप ही तो यह सब किया है और अब रोते क्यों हो? कौसल्या का इतना कहना था कि सुनकर राजा के ऐसा कष्ट हुआ मानो अग्नि से घाव छू गया है।।१७।। शोक के कारण उनके नेत्र फिर आंसुओं से भर गये और राजा कौशल्या से बोले कि मैं तो दुःख के मारे आप ही मर रहा हूं फिर तू मुझे और इतना भारी दुःख क्यों देती है।।१८।। मेरे प्राण अभी निकलेंगे यह बात निश्चय है क्योंकि पहिले मेरी मूर्खता के कारण मुझे एक मुनि शाप दे चुका है।।१९।। पहिले एक समय मैं जवानी में बड़े गर्व से धनुष बाण लिये नदी के किनारे एक बड़े वन में रात को शिकार के लिये फिर रहा था।।२०।। वहां आधी रात के समय किसी मुनि को पियास लगी। वह अपने प्यासे माता पिता के लिये जल लेने आया और ज्योंही उसने जल मे घड़ा भरा त्योंही 'गुड गुड गुड' ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ।।२१।। आधी रात थी इसलिये मैंने समझा कि हाथी पानी पी रहा है सो मैंने धनुष पर शब्दवेधी बाण चढ़ाकर छोड़ा।।२२।। छोड़ने की देर थी कि 'हाय मरा हाय मरा' ऐसा मनुष्य का सा शब्द हुआ और वह चिल्लाया कि हे विधाता! मैंने तो किसी का अपराध किया नहीं है।।२३।।

प्रतीक्षतेमांमाताच पिताचजलकाङ्क्षया ॥ तच्छुत्वाभयसंत्रस्तस्ततोऽहंपौरुषंवचः ॥२४॥ शनैर्गत्वाथतत्पार्श्वंस्वामिन्दशरथोऽस्म्यहम् ॥ अजानतामयाविद्धस्त्रातुमर्हसिमांमुने॥२५॥ इत्युक्त्वापादयोस्तस्यपतिततोगद्गदाक्षरः ॥ तदामामाहसमुनिर्माभैषीर्नृपसत्तम ॥२६॥ ब्रह्महत्यास्पृशेन्नत्वांवैश्योऽहंतपसिस्थितः ॥

पितरौमांप्रतीक्षेतेतुड्भ्यांपरिपीडितौ ।।२७।। तयोस्त्वमुदकंदेहिशीघ्रमेवाविचारयन् ।। नचेत्त्वांभस्मसात्कुर्यात्पितामेयदिकुप्यति ।।२८।। जलंदत्त्वातुतौनत्वाकृतंसर्वंनिवेदय ।। शल्यमुद्धरमेदेहात्प्राणांस्त्यामिपीडितः ।।२९।। इत्युक्तोमुनिनाशीघ्रंबाणमुत्पाटचदेहतः ।। सजलंकलशंधृत्वागतोऽहंयत्रदम्पती ।।३०।। अतिवृद्धावन्धदृशौक्षुत्पिपासार्दितौनिशि ।। नायातिसलिलंगृह्यपुत्रः किंवाऽत्रकारणम् ।।३१।। अनन्यगतिकौवृद्धौशोच्यौतृट्परिपीडितौ ।। आवामुपेक्षतेकिंवाभक्तिमानावयोः सुतः ।।३२।। इतिचिन्ताव्याकुलौतौमत्पादन्यासजंध्वनिम् ।। श्रुत्वाप्राहपितापुत्रकिंविलम्बः कृतस्त्वया ।।३३।।

मेरे माता पिता मेरी राह देखते होंगे कि कब जल आवे और कब हम पीवें। यह पुरुष का वचन सुनकर मैं भय से घबराता हुआ।।२४।। धीरे धीरे उसके पास गया और मैंने कहा कि हे मुने! मैं राजा दशरथ हूं बिना जाने मुझसे तुम्हारे यह बाण लग गया है सो मेरी रक्षा करो।।२५।। यह कहकर मैं उनको चरणों में गिर पड़ा और मेरा कंठ गद्गद होने से रुक गया यह देख कर वह मुनि मुझसे बोले कि हे महाराज! भय मत करो।।२६।। तुम्हें ब्रह्महत्या नहीं लगेगी क्योंकि मैं तपस्वी होने पर भी जाति का वैश्य हूं। भूख प्यास से पीडित मेरे माता पिता मेरी राह देख रहे होंगे।।२७।। तुम किसी बात का विचार मत करो जल्दी जाकर उन दोनों को पानी दो नहीं तो जो मेरे पिता क्रोध करेंगे तो तुम्हें भस्म कर देंगे।।२८।। उन्हें जल देकर और दोनों को प्रणाम करके जो तुमसे हो गया है उसे उनसे कह देना और मेरी देह से बाण निकाल लो मैं इससे ऐसा पीड़ित हूं कि मेरे प्राण निकले जाते हैं।।२९।। जब मुनि ने मुझसे यह कहा तब शीघ्र ही मैंने उसके देह से बाण निकाल लिया और जल का भरा घड़ा लेकर मैं वहां गया कि जहां वे दोनों स्त्रीपुरुष थे।।३०।। वे दोनों बड़े वृद्ध और अंधे थे और उस रात को भूख प्यास से महादुःखी हो यह कह रहे थे कि पुत्र अभी तक जल लेकर नही आया इसका क्या कारण है।।३१।। हम वृद्ध हैं पुत्र को छोड़ हमें दूसरे का सहारा नहीं एक तो शोचनीय दशा में भूख प्यास से महादुःखी हो रहे हैं दूसरे हमारा भक्तिमान् पुत्र हम दोनों को छोड़ कहीं चला तो नहीं गया।।३२।। इस चिन्ता में घबरा रहे थे कि मेरे पैरों की पैचर सुनकर पिता बोले हे पुत्र! तैंने कहां देर लगाई।।३३।।

देह्यावयोः सुपानीयंपिबत्वमपिपुत्रक ।। इत्येवंलपतोर्भीत्यासकाशमगमंशनैः ।।३४।। पादयोः प्रणिपत्याहमब्रु-

वंविनयान्वितः ।। नाहंपुत्रस्त्वयोध्यायाराजादशरथोऽस्म्यहम् ।।३५।। पापोऽहंमृगयासक्तोरात्रौमृगविहिंसकः ।। जलावतारदद्दूरेऽहंस्थित्वाजलगतंध्वनिम् ।।३६।। श्रुत्वाहंशब्दवेधित्वादेकंबाणमथात्यजम् ।। हतोऽस्मीति ध्वनिंश्रुत्वाभयात्तत्राहमागतः ।।३७।। जटाविकीर्यपतितंदृष्ट्वाहंमुनिदारकम् ।। भीतोगृहीत्वातत्पादौरक्षरक्षेतिचाब्रुवम् ।।३८।। माभैषीरितिमांप्राहब्रह्महत्याभयंनते ।। मत्पित्रोः सलिलंदत्त्वानत्वाप्रार्थयजीवितम् ।।३९।। इत्युक्तोमुनिनातेनह्यागतोमुनिहिंसकः ।। रक्षेतांमांदययायुक्तौयुवांहिशरणागतम् ।।४०।। इतिश्रुत्वातु दुःखार्तौविलप्यबहुशोच्यतम् ।। पतितोनोसुतोयत्रनयतत्राविलम्बयन् ।।४१।। ततोनीतौसुतोयत्रमयातौवृद्धदम्पती ।। स्पृष्ट्वासुतंतौहस्ताभ्यांबहुशोऽथविलेपतुः ।।४२।। हाहेतिक्रंदमानौतौपुत्रपुत्रेत्यवोचताम् ।। जलंदेहीतिपुत्रेतिकिमर्थंनददास्यलम् ।।४३।।

हे पुत्र! हम दोनों को सुन्दर जल दो और तुम भी पीओ। ऐसा कह रहे थे कि मैं डरता डरता धीरे धीरे उनके पास गया।।३४।। और उनके चरणों में विनयपूर्वक प्रणाम करके बोला कि मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूं किन्तु अयोध्या का राजा दशरथ हूं।।३५।। मुझ पापी को शिकार खेलने का बड़ा व्यसन है। रात्रि में पशुओं का शिकार करने के लिये मैं नदी से दूर खड़ा था इतने में मैंने जल भरने का शब्द सुना।।३६।। सुनते ही मैंने एक शब्दभेदी बाण छोड़ा क्योंकि मैं शब्दभेदी बाण छोड़ना जानता हूं। फिर "हाय मरा रे" इस शब्द को सुनकर मैं डरता डरता वहां आया।।३७।। आकर क्या देखता हूं कि एक मुनि बालक जटा बखेरे पड़ा हुआ है सो मैं डरकर उसके चरणों में गिरा और उससे कहा कि मेरी रक्षा करो।।३८।। उसने मुझसे कहा कि डरो मत तुम्हें ब्रह्महत्या का भय नहीं है। मेरे माता पिता को जल देकर और प्रणाम करके अपने जीवन की प्रार्थना करना।।३९।। जब उस मुनि ने यह कहा तब मैं मुनिहिंसक तुम्हारे पास आया हूं दोनों जने दया करके मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारी शरण आया हूं।।४०।। यह सुनकर वे बड़े दुःखी हुए और उस पुत्र के लिये विलाप और बहुत सा शोक करके पृथ्वी पर गिर पड़े और कहने लगे कि हमको शीघ्र वहां ले चलो कि जहां हमारा पुत्र पड़ा है।।४१।। फिर मैं उन दोनों वृद्ध स्त्री पुरुष को वहां उनके पुत्र के पास ले गया दोनों ने अपने हाथ से पुत्र को टटोलकर बहुत भांति से विलाप किया।।४२।। और हाय हाय कर पुत्र पुत्र कहते हुए चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे कि हे बेटा! हमें जल दो बेटे। हमें जल क्यों नहीं देते।।४३।।

ततोमामूचतुःशीघ्रंचितिंरचयभूपते ।। मयातदैवरचिताचितिस्तत्रनिवेशिता: ।। त्रयस्तत्राग्निरुत्सृष्टोदग्धास्ते त्रिदिवंययुः ।।४४।। तत्रवृद्धः पिताआहत्वमप्येवंभविष्यसि ।। पुत्रशोकेनमरणंप्राप्यस्यसेवचनान्मम् ।।४५।। सइदानींममप्राप्तःशापकालोऽनिवारितः ।। इत्युक्त्वाविलालापाथराजाशोकसमाकुलः ।।४६।। हारामपुत्रहा सीतेहालक्ष्मणगुणाकर ।। त्वद्वियोगादहंप्राप्तोमृत्युंकैकेयिसम्भवम् ।।४७।। वदन्नेवंदशरथः प्राणांस्त्यक्त्वादिवं गतः कौसल्याचसुमित्राचतथान्याराजयोषितः ।।४८।। चुक्रुशुश्चविलेपुश्चउरस्ताडनपूर्वकम् ।। वसिष्ठः प्रययौतत्रप्रातर्मन्त्रिभिरावृतः ।।४९।। तैलद्रोण्यांदशरथंक्षिप्त्वादूतानथाब्रवीत् ।। गच्छतत्वरितंसाश्वायुधाजिन्नगरंप्रति ।।५०।। तत्रास्तेभरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः ।। उच्यतांभरतः शीघ्रमागच्छेतिममाज्ञया ।।५१।। अयोध्यांप्रति राजानकैकेयींचापिपश्यतु ।। इत्युक्तास्त्वरितं दूतागत्वाभरतमातुलम् ।।५२।। युधाजितंप्रणम्योचुर्भरतंसानुजंप्रति ।। वसिष्ठस्त्वाब्रवीद्राजन्भरतः सानुजः प्रभुः ।।५३।। शीघ्रमागच्छतुपुरीमयोध्यामविचारयन् ।। इत्याज्ञप्तोऽथभरतस्त्वरितंभयविह्वलः ।।५४।।

फिर मुझसे बोले कि हे राजा! तुम शीघ्र हमारे लिये चिता तैयार कर दो फिर मैंने उसी समय उनके लिये चिता बना दी और उन तीनों को उसमें बैठाकर अग्नि लगा दी वे तीनों भस्म होकर स्वर्ग को चले गये।।४४।। वृद्ध पिता जलते समय मुझसे कहने लगे कि तुम्हारी भी यही दशा होगी और तू भी मेरे शाप से पुत्रशोक में मरेगा।।४५।। सो इस समय वह शापकाल आकर उपस्थित हुआ है यह किसी का टाला नहीं टल सकता यह कहकर राजा शोक से व्याकुल हो भारी विलाप करने लगे।।४६।। हे राम! हा मेरे गुणशील बेटे! हा लक्ष्मण! तुम्हारे वियोग के कारण मैं अब प्राण छोड़ता हूं। यह मृत्यु कैकेई की बुलाई है।।४७।। राजा दशरथ ऐसा कहते कहते प्राण छोड़कर स्वर्ग को चले गये कौसल्या सुमित्रा और अन्य रानियां छाती पीट पीट कर रोने और विलाप करने लगी फिर प्रातः काल मंत्रियों को साथ लेकर वसिष्ठजी आये।।४८।।४९।। और तेल की नाव में दशरथजी को रखकर फिर दूतों से कहा कि तुम घोड़ों पर सवार होकर शीघ्र भरत के मामा युधाजित् के नगर को जाओ।।५०।। वहां शत्रुघ्नजी सहित श्रीमान् प्रतापी भरत गये हुए हैं सो मेरी आज्ञा से भरतजी से कहना कि अयोध्या को शीघ्र लौट आवें और रानी कैकेई के दर्शन करें। जब वसिष्ठजी ने दूतों से यह कहा

तब दूतों ने शीघ्र जाकर भरत के मामा युधाजित् को प्रणाम करके कहा कि हे राजन्! वसिष्ठजी ने भरत और शत्रुघ्न के लिये यह संदेसा कहला भेजा है कि शत्रुघ्न को साथ लेकर, भरतजी बिना किसी सोच विचार के तुरन्त अयोध्यापुरी को लौट आवें। यह आज्ञा पातें ही भरतजी तुरंत भय के मारे घबरा गये।।५१।।५२।।५३।।५४।।

आययौगुरुणादिष्टः सहदूतैस्तसानुजः राज्ञोवाराघवस्यापिदुःखं किञ्चिदुपस्थितम् ।।५५।। इतिचिन्तापरोमार्गेचिन्तयन्नगरंययौ ।। नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकंजनसम्बावववर्जितम् ।।५६।। उत्सवैश्चपरित्यक्तदृष्ट्वाचिन्तापरोऽभवत् ।। प्रविश्यराजभवनंराजलक्ष्मीविवर्जितम् ।।५७।।अपश्यत्कैकयींतत्रएकामेवासनेस्थिताम् ।। ननामशिरसापादौमातुर्भक्तिसमन्वितः ।।५८।। आगतंभरतंदृष्ट्वाकैकेयीप्रेमसम्भ्रमत् ।। उत्थायालिङ्ग्यचरभसास्वाङ्कमारोप्यसंस्थिता ।।५९।। मून्ध्र्यवघ्रायपप्रच्छकुशलंस्वकुलस्यसा ।। पितामेकुशलीभ्राता माताचशुभलक्षणा ।।६०।। दिष्टयात्वमद्यकुशलीमयादृष्टोऽसिपुत्रक ।। इतिपृष्टःसभरतोमात्राचिन्ताकुलेन्द्रियः ।।६१।। दूयमानेनमनसामातरंसमपृच्छत ।। मातः पितामेकुत्रास्तेएकात्वमिहसंस्थिता ।।६२।। त्वयाविनानमेतातः कदाचिद्रहसिस्थितः ।। इदानीं दृश्यतेनैवकुत्रतिष्ठतिमेवद ।।६३।। अदृष्ट्वापितरंमेऽद्य भयंदुःखंचजायते ।। अथाहकैकयीपुत्रंकिंदुःखेनतवानघ ।।६४।।

और गुरु की आज्ञानुसार छोटे भाईसहित दूतों के संग बिदा हुए मार्ग में यह विचारते चले आ रहे हैं कि राजा को वा रामचन्द्रजी को कुछ न कुछ दुःख उपस्थित हुआ है। यों ही विचारते विचारते नगर में आ गये। चारों ओर उदासी छा रही है न कहीं मनुष्य आपस में बातचीत कर रहे हैं न कहीं उत्सव हो रहे हैं ऐसे नगर को देख और भी अधिक चिंता बढ़ने लगी। फिर राजमहल में जाकर देखा तो उसे भी राजलक्ष्मी से रहित पाया।।५५।।५६।।५७।। परन्तु वहां यह देखा कि कैकेई अकेली आसन पर बैठी हुई है सो माता के चरणों में भक्तिपूर्वक शिर से प्रणाम किया।।५८।। भरतजी को आया हुआ देखकर कैकेई प्रेम के वेग से खड़ी हो गई और जल्दी से उन्हें छाती से लगाकर और अपनी गोदी में बैठाकर बैठ गई।।५९।। और शिर सूंघकर अपने पिहर की कुशल पूछने लगी कि मेरे पिता भ्राता और सौभाग्यवती माता कुशल से तो है।।६०।। हे बेटा! बड़े भाग से आज मैंने तुम्हें कुशलपूर्वक देखा है। जब माता ने इस प्रकार पूछा तब तो चिन्ता के

मारे घबराये हुए भरतजी मन में उदास हो माता से पूछने लगे कि हे माता! पिता कहां हैं। तू यहां अकेली कैसे बैठी है?।।६१।।६२।। हमारे पिता तेरे बिना कभी एकान्त में नहीं बैठते थे परन्तु इस समय यहां नहीं दीखते सो मुझे बता कि वे कहां बैठे हैं।।६३।। आज पिताजी को यहां न देखकर मुझे बड़ा दुःख और भय लग रहा है फिर कैकेई ने पुत्र से कहा कि हे पुण्यशील! तुम दुःख क्यों करते हो?।।६४।।

यागतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम् ।। तांगतिंगतवानद्यपितातेपितृवत्सलः ।।६५।। तच्छ्रुत्वानिपपातोर्व्यांभरतः शोकविह्वलः ।। हातातक्व गतोऽसित्वंत्यक्त्वामांवृजिनार्णवे ।।६६।। असमर्प्यैवरामायराज्ञेमां क्वगतोऽसिभो ।। इतिविलपितंपुत्रंपतितंमुक्तमूर्धजम् ।।६७।। उत्थाप्यामृज्यनयनेकैकेयीपुत्रमब्रवीत् ।। समाश्वसिहिभद्रंतेसर्वंसम्पादितंमया ।।६८।। तामाहभरतस्तातोम्रियमाणः किमब्रवीत् ।। तमाहकैकयीदेवी भरतभयवर्जिता ।।६९।। हारामरामसीतेतिलक्ष्मणेतिपुनः पुनः ।। विलपन्नेवसुचिरंदेहंत्यक्त्वादिवंययौ ।।७०।। तामाहभरतोहेऽम्बरामः सन्निहितोनकिम् ।। तदानींलक्ष्मणोवापिसीतावाकुत्रतंगताः ।।७१।। कैकेय्युवाच ।। रामस्ययौवराज्यार्थंपित्रा तेसम्भ्रमः कृतः ।। तवराज्यप्रदानायतदाऽहंविघ्नमाचरम् ।।७२।। राज्ञादत्तंहिमेपूर्वंवरदेनवरद्वयम् ।। याचितंतदिदानींमेतयोरेकेनतेऽखिलम् ।।७३।। राज्यंरामस्यचैकेनवनवासोमुनिव्रतम् ।। ततः सत्यपरोराजाराज्यंदत्वातवैवहि ।।७४।। रामंसंप्रेषयामासवनमेवपिता तव ।। सीताप्यनुगतारामंपातिव्रतमुपाश्रिता ।।७५।। सौभ्रात्रंदर्शयन्यराममनुयातोऽपिलक्ष्मणः ।। वनंगतेषुसर्वेषुराजातानेवचिन्तयन् ।।७६।। प्रलपन्रामरामेतिममारनृपसत्तमः ।। इतिमातुर्वचः श्रुत्वावज्राहतवद्द्रुमः ।।७७।। पपातभूमौनिःसंज्ञस्तंदृष्ट्वादुःखितातदा ।। कैकेयीपुनरप्याहवत्सशोकेनकिंतव ।।७८।।

हे पिता के प्यारे! धर्मशील और अश्वमेध यज्ञ करनेवाले जिस गति को पाते हैं उस गति को आज तुम्हारे पिता ने पाया है।।६५।। यह सुनते ही भरत शोक से व्याकुल हो धरती पर पछाड़ खाकर गिर पड़े और बोले कि हाय पिताजी! तुम मुझे दुःख के समुद्र में छोड़कर कहां चले गये।।६६।। हे पिता मुझे रामचन्द्र के बिना सौंपे ही कहां चले गये? कैकेई ने बाल खोले पृथ्वी पर पड़े हुए और विलाप करते हुए पुत्र को उठाया और उनके नेत्रों को पोंछकर पुत्र से बोली कि हे

बेटा! धीरज धरो मैंने तुम्हारा सब काम बना रखा है।।६७।।६८।। भरतजी ने उनसे पूछा कि मरते समय पिताजी क्या कह गये हैं। रानी कैकेई निडर हो भरतजी से बोली कि।।६९।। वे राजा तो हा राम! हा राम! हा सीता! हा लक्ष्मण! इस प्रकार बहुत देर तक बारंबार विलाप करते हुए देह छोड़ स्वर्ग को पधारे।।७०।। भरतजी ने कहा हे माता! क्या रामजी वा लक्ष्मण वा सीता इनमें से उस समय कोई पास नहीं था? और नहीं था तो वे सब कहां चले गये थे?।।७१।। कैकेई बोली-तुम्हारे पिताने रामचन्द्र के राजतिलक के लिये बड़ी धूमधाम से तैयारी की थी परन्तु तुम्हें राज्य देने के लिये मैंने उनमें विघ्न डाल दिया था।।७२।। वरदानी राजा ने पहिले से मुझे दो वचन दे रखे थे उनमें से मैंने एक से तो तुम्हारे लिये संपूर्ण राज्य मांगा और एक से यह मांगा कि रामचन्द्र मुनियों का सा व्रत धारण कर (१४ वर्ष) वन में रहें। सो सत्यभाषी राजा ने तुम्हें ही राज्य दिया।।७३।।७४।। और तुम्हारे पिता ने राम को वन में भेज दिया। और पतिव्रत धारण करनेवाली जानकी भी राम के साथ पीछे पीछे चली गई।।७५।। और भाई का सच्चा प्रेम दिखाते हुए लक्ष्मण भी राम के पीछे पीछे विदा हुए। जब वे वन को विदा हो गये तब राजशिरोमणि राजा उन्हीं की चिन्ता करते हुए और मुख से हे राम हे राम कहते हुए स्वर्ग को सिधारे। माता का यह वचन सुनते ही भरतजी बेसुद हो पृथ्वी पर पछाड़ खाकर ऐसे गिरे कि जैसे बिजली का मारा वृक्ष गिरता हो उस समय उन्हें देखकर कैकई बड़ी दुःखी हुई और फिर भरत से बोली कि हे बेटा! तुम शोक क्यों करते हो? तुम्हें बड़ा भारी राज्य मिला है इस समय दुःख का क्या मौका है?।।७६।।७७।।७८।।

राज्येमहतिसंप्राप्तेदुःखस्यावसरः कुतः ।। इतिब्रुवन्तीमालोक्यमातरंप्रदहन्निव ।।७९।। असंभाष्यासिपापेमे घोरेत्वंभर्तृघातिनी ।। पापेत्वद्गर्भजातोऽहंपापवानस्मिसाम्प्रतम् ।।अहमग्निंप्रवेक्ष्यामिविषंवाभक्षयाम्यहम् ।।८०।। खड्गेनवाथचात्मानं हत्वायामियमक्षम् ।। भर्तृघातिनिदुष्टेत्वंकुम्भीपाकंगमिष्यसि ।।८१।। इतिनिर्भर्त्स्यकैकेयींकौसल्याभवनंययौ।। साऽपितंभरतंदृष्ट्वामुक्तकण्ठारुरोदह ।।८२।।पादयोः पतितस्तस्या-भरतोऽपितदारुदत् ।। आलिंग्यभरतंसाध्वीराममातायशस्विनी ।।८३।। कृशाऽतिदीनवदनासाश्रुनेत्रेदम-ब्रवीत् ।। पुत्रत्वयिगतेदूरमेवंसर्वमभूदिदम् ।। उक्तंमात्राश्रुतंसर्वंत्वयातेमातृचेष्टितम् ।।८४।।

जब यह कहा तब भरतजी माता को ऐसी क्रोध दृष्टि से देखकर बोले मानो उसे भस्म कर देंगे।।७९।। कहने लगे हे पापिनी! हे चांडाली! तू मुझसे बात करने योग्य नहीं हैं। और हे पापिनी! मैं तेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ हूं इसलिये अब मैं भी पापी हुआ मैं या तो अग्नि में गिर मरूंगा या विष खा लूगां।।८०।। अथवा तलवार से अपना शिर काटकर यमलोक को जाऊंगा और हे पतिघातिनी! तू बड़ी दुष्टा है तू भी कुंभीपाक नरक में जायगी।।८१।। इस प्रकार कैकेई को धिक्कारते हुए कौसल्या के महल में गये। कौलल्या भरत को देखते ही गला फाड़कर रोने लगी।।८२।। उस समय भरतजी भी उसके चरणों में गिरकर वैसे ही रोने लगे फिर बड़ी कृश अति दीन मुख मलिन यशस्विनी पतिव्रता राम की माता रोकर यह कहने लगी कि हे बेटा तुम तो दूर (ननसार) गये थे और यहां सब चरित्र हो गया। माता ने जो कुछ किया सब तुमने माता से सुना ही होगा।।८३।।८४।।

पुत्रः सभार्योवनमेवयातः सलक्ष्मणोमेरघुरामचन्द्रः ।। चीराम्बरोबद्धजटाकलापः सन्त्यज्यमांदुःखसमुद्रमग्नाम् ।।८५।। हारामहामेरघुवंशनाथजाताऽसिमेत्वंपरतः परात्मा ।। तथापिदुःखंनजहातिमांवैविधिर्बलीयानितिमे मनीषा ।।८६।। सएवंभरतोवीक्ष्यविलपन्तींभृशंशुचा ।। पादौगृहीत्वाप्राहेदंशृणुमातर्वचोमम् ।।८७।। कैकेय्यायत्कृतंकर्मरामराज्याभिषेचने ।। अन्यद्वायदिजानामिसामयानोदितायदि ।।८८।। पापंमेऽस्तुतदामात-ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।। हत्वावसिष्ठंखड्गेनअरुन्धत्यासमन्वितम् ।।८९।। भूयात्तत्पापमखिलंममजानामियद्यहम् ।। इत्येवंशपथंकृत्वारुरोदभरतस्तदा ।।९०।। कौशल्यातमथालिङ्ग्यपुत्रजानामिमाशुचः ।। एतस्मिन्नन्तरेश्रुत्वाभरतस्यसमागमम् ।।९१।। वसिष्ठोमन्त्रिभिः सार्धंप्रययौराजमन्दिरम् ।। रुदन्तंभरतंदृष्ट्वावसिष्ठःप्राहसादरम् ।।९२।। वृद्धोराजादशरथोज्ञानीसत्यपराक्रमः ।। भुक्त्वामर्त्यसुखंसर्वमिष्ट्वाविपुलद-क्षिणैः।।९३।। अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वारामंसुतंहरिम् ।। अन्तेजगामत्रिदिवंदेवेन्द्रार्धासनंप्रभुः ।।९४।।

हे भरत! मेरा पुत्र रघुवंशी रामचन्द्र चीरवस्त्र धारण कर और जटाजूट बांधकर दुःखरूपी समुद्र में डूबती हुई को छोड़कर सीता लक्ष्मण सहित वन को चला गया।।८५।। हाय मेरे राम! हाय रघुकुल के नाथ! तुम सबसे परे और साक्षात् परमात्मा मेरी कोख से उत्पन्न हुए तो भी दुःख मेरा पीछे नहीं छोड़ता है इसलिये मेरी बुद्धि में तो ऐसा आता है

कि प्रारब्ध बड़ी बलवान् है।।८६।। इस प्रकार बड़े भारी शोक से विलाप करती हुई कौसल्या को देखकर भरत उसके पैरों में पड़कर बोले कि हे माता! मेरी बात सुनो।।८७।। कैकेई ने रामजी के राजतिलक के समय जो कर्म किया है अथवा और कोई तुम्हारे साथ बुराई की हो यदि मैं उसे जानता होऊं अथवा मैंने उसे प्रेरणा कि हो।।८८।। तो हे माता! सौ ब्रह्महत्याओं के समान मुझे पातक हो और जो मैं कुछ भी जानता होऊं तो जो पातक अरुंधती सहित वसिष्ठजी खड्ग से मारने में लगता है वह सब पाप मुझे लगे। यह सौगंध खाकर उस समय भरतजी रो उठे।।८९।।९०।। कौसल्या ने भरत को छाती से लगा लिये और कहा बेटा! मैं सब जानती हूं तुम शोक मत करो। इस अवसर में भरतजी का आगमन सुनकर।।९१।। वसिष्ठजी मंत्रियों को साथ लेकर राजमहल में आये और भरतजी को रोता हुआ देखकर बड़े प्यार से बोले।।९२।। हे भरत! राजा दशरथ बड़े ज्ञानी और सच्चे पराक्रमी थे और उनकी अवस्था भी वृद्ध हो गई थी उन्होंने संसार का सब सुख भोग लिया अश्वमेध आदि यज्ञ किये उसमें बड़ी बड़ी दक्षिणायें बाँटी विष्णुरूप रामचन्द्र सरीखे पुत्र पाये अंत में स्वर्ग को पधारे और वहां इन्द्र का आधा आसन बैठने को मिला वे सब ही बातों में समर्थ थे।।९३।।९४।।

तंशोचसिवृथैवत्वमशोच्यंमोक्षभाजनम् ।। आत्मानित्योऽव्ययः शुद्धोजन्मनाशादिवर्जितः ।।९५।। शरीरंजडमत्यर्थमपवित्रंविनश्वरम् ।। विचार्यमाणेशोकस्यनावकाशः कथञ्चन ।।९६।। पितावातनयोवाऽपियदिमृत्युवशंगतः ।। मूढास्तमनुशोचन्तिस्वात्मताडनपूर्वकम् ।।९७।। निःसारेखलुसंसारेवियोगोज्ञानिनांयदा ।। भवेद्वैराग्यहेतुः सशान्तिसौख्यंतनोतिच ।।९८।। जन्मवान्यदिलोकेऽस्मिंस्तर्हितंमृत्युरन्वगात् ।। तस्मादपरिहार्योऽयंमृत्युर्जन्मवतां सदा ।।९९।। स्वकर्मवशतः सर्वजन्तूनांप्रभवाप्ययौ ।। विजानन्नप्यविद्वान्यः कथंशोचतिबान्धवान् ।।१००।। ब्रह्माण्डकोटयोनष्टाः सृष्टयोबहुशोगताः ।। शुष्यन्तिसागराः सर्वेकैवास्थाक्षणजीविते ।।१०१।। चलपत्रान्तलग्नाम्बुबिन्दुवत्क्षणभंगुरम् ।। आयुस्त्यजत्यवेलायांकस्तत्रप्रत्ययस्तव ।।१०२।। देहीप्राक्तनदेहोत्थकर्मणादेहवान्पुनः तद्देहोत्थेनचपुनरेवंदेहः सदात्मनः ।।१०३।।

सो तुम वृथा उनका शोक करने के योग्य नहीं है। देखो आत्मा नित्य अविनाशी शुद्ध और जन्म मरणरहित है।।९५।।

और यह शरीर तो जड़ अत्यंत अपवित्र और नाशवान् है सो यदि विचार करो तो किसी प्रकार भी शोक करने का अवसर नहीं है।।९६।। और हे भरत! जो पुरुष मरे हुए अपने पिता वा पुत्र के लिये अपनी छाती कूटते और शोक करते हैं वे महामूर्ख हैं।।९७।। जब इस असार संसार में किसी का वियोग हो जाता है तो उससे ज्ञानियों को वैराग्य होता है और वैराग्य से चित्त शांत होता है और फिर शांत चित्त से सुख बढ़ता है इसमें संदेह नहीं है।।९८।। जिसने संसार में जन्म लिया है मृत्यु सदा उसके पीछे लगी फिरती है इसलिये जन्मधारी प्राणियों की मृत्यु का कोई उपाय नहीं है।।९९।। अज्ञानी भी यदि यह जान जाय कि जन्म मृत्यु अपने कर्म के वश से होते हैं तो बान्धवों का शोक क्यों करें।।१००।। आज तक करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये बहुत सी सृष्टियों का प्रलय हो चुका सब समुद्र सूख जाते हैं फिर इस क्षणमात्र के जीवन में कैसे कोई भरोसा करे।।१०१।। हिलते हुए पत्र के किनारे पर बैठी हुई जल की बूंद के समान आयु क्षण भंगुर है और असमय में भी छोड़ जाती है उसमें तुम्हें क्या विश्वास है।।१०२।। इस जीव को पूर्वजन्म के देह से उत्पन्न हुए कर्मों से फिर देह मिलता है और फिर अब जो इस देह से कर्म करता है उससे आगे का देह मिलेगा यही सदा की परंपरा है।।१०३।।

यथात्यजतिवै जीर्णवासोगृह्णातिनूतनम् ।। तथाजीर्णपरित्यज्यदेहीदेहंपुनर्नवम् ।।१०४।। भजत्येवसदा तत्रशोकस्यावसरः कुतः ।। आत्मानम्रियतेजातु जायतेनचवर्धते ।।१०५।। षड्भावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः ।। आनन्दरूपोबुद्ध्यादिसाक्षीलयविवर्जितः ।।१०६।। एकाएवपरो ह्यात्माह्यद्वितीयः समः स्थितः ।। इत्यात्मानंदृढंज्ञात्वात्यक्त्वाशोकंकुरुक्रियाम् ।।१०७।। तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्यसचिवैः सह ।। कृत्यंकुरुयथान्यायमस्माभिः कुलनन्दनः ।।१०८।। इतिसंबोधितः साक्षाद्गुरुणाभरतस्तदा ।। विसृज्याज्ञानजं शोकंच क्रेसविधिवत्क्रियाम् ।।१०९।। गुरुणोक्तप्रकारेणआहिताग्नेर्यथाविधि ।।संस्कृत्यसपितुर्देहंविधिदृष्टेन-कर्मणा ।।११०।। एकादशेऽहनि प्राप्तेब्राह्मणान्वेदपारगान् ।। भोजयामासविधिवच्छतशोऽथसहस्रशः ।।१११।। उद्दिश्यपितरंतत्रब्राह्मणेभ्योधनंबहु ।। ददौगवांसहस्राणिग्रामान्रत्नाम्बराणिच।।११२।।अवस-त्स्व गृहेतत्ररामसेवानुचिन्तयन् ।। वसिष्ठेसहभ्रात्रामन्त्रिभिः परिवारितः ।।११३।। रामेऽरण्यंप्रयातेसह

जनकसुतालक्ष्मणाभ्यांसुघोरंमातामेराक्षसीवप्रदहतिहृदयंदर्शनादेवसद्यः।। गच्छाम्यारण्यमद्यस्थिरमतिरखिलंदूरतोऽपास्यराज्यंरामंसीतासमेतंस्स्तितरुचिरमुखंनित्यगेवानुसेवे ।।११४।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है तैसे ही जीव सदा पुराने देह को त्यागकर फिर नवीन देह पाता है इसमें शोक का औसर कहां है और आत्मा न कभी मरता है न उत्पन्न होता है और न बढ़ता है।।१०४।।१०५।। वह जन्म मरण आदि छः प्रकार के विकारों से रहित अनन्त सदा रहनेवाला प्रज्ञान की मूर्ति आनन्दस्वरूप बुद्धि आदि का साक्षी और नाशरहित है।।१०६।। वह आत्मा अद्वितीय प्रकृति से परे द्वैतभावरहित और सब जगह समानरूप से स्थित है। सो इस प्रकार आत्मा को दृढ़ जान शोक को छोड़ मृतक क्रिया करो।।१०७।। और हे कुलनन्दन! मंत्रियों को साथ लो और तेल की नौका में पिता के शव को निकालकर जैसा हम कहें तैसा शास्त्रविधि से क्रियाकर्म करो।।१०८।। इस प्रकार जब साक्षात् गुरु ने भरतजी को समझाया तब भरत ने अज्ञान से उत्पन्न हुए शोक को त्यागकर विधिपूर्वक पिता की प्रेत क्रिया करी।।१०९।। और गुरु की बताई हुई अग्निहोत्र की विधि से पिता की देह का संस्कार किया।।११०।। फिर एकादशी के दिन विधि पूर्वक सैंकड़ों हजारों वेदपाठी ब्राह्मणों को भोजन कराया।।१११।। और उस समय पिता के अर्थ बहुत सा धन, हजारों गौएँ, ग्राम, रत्न और वस्त्र ब्राह्मणों को दान दिया।।११२।। फिर भरतजी अपने गुरु वसिष्ठजी, भाई, मंत्री और कुटुंब इनके सहित रामचंद्रजी का स्मरण करते हुए अपने घर पर रहे।।११३।। तदनंतर भरतजी मन में विचार करने लगे कि सीता लक्ष्मणजी को साथ लेकर रामचन्द्रजी तो बड़े भयंकर वन में चले गये और माता मेरी राक्षसी है उसे देखते ही मेरी छाती अग्नि के समान भभकने लगती है इसलिये मैंने बुद्धि से स्थिर कर लिया है कि इस सम्पूर्ण राज्य को दूर से ही त्यागकर आज ही वन को जाऊं और वहां सुन्दर मधुर मधुर मुसकराते हुए सीतासहित रामचन्द्रजी की नित्य सेवा करूं।।११४।।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेसप्तमः सर्गः ।।७।। श्रीमहादेव उवाच ।। वसिष्ठोमुनिभिः सार्धमन्त्रिभिः परिवारितः ।। राज्ञः सभांदेवसभासन्निभामविशद्विभुः ।।१।। तत्रासनेसमासीनश्चतुर्मुखइवा परः ।। आनीयभरतंतत्रउपवेश्यसहानुजम् ।।२।। अब्रवीद्वचनंदेशकालोचितम

रिन्दमम् ॥ वत्साराज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्यपितृशासनात् ॥३॥ कैकेय्यायाचितंराज्यंत्वदर्थेपुरुषर्षभ ॥ सत्यसन्धोदशरथः प्रतिज्ञायददौकिल ॥४॥ अभिषेकोभवत्वद्यमुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम् ॥ तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याहममराज्येनकिंमुने ॥५॥ रामोराजाधिराजश्चवयंतस्यैवकिङ्कराः ॥ श्वः प्रभातेगमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥६॥

इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकांड का सातवां सर्ग समाप्त हुआ॥७॥
श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! बड़े समर्थ गुरु वसिष्ठ मुनियों को और मंत्रिमंडल को साथ लेकर देवसभा के समान शोभायमान ऐसी राजसभा में गये॥१॥ और दूसरे ब्रह्माजी के तुल्य वहां आसन पर विराजमान हो गये। तदनंतर शत्रुघ्नसहित भरतजी को बुलाकर और अपने पास बैठाकर॥२॥ भरतजी से देश काल के उचित यह वचन बोले कि बेटा! तुम्हारे पिता की आज्ञानुसार आज हम तुम्हारा राजतिलक का उत्सव करेंगे॥३॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! कैकई ने तुम्हारे लिये राज्य मांग लिया है और राजा दशरथ ने भी तुम्हें देने का निश्चय कर दिया था क्योंकि वे सत्यप्रतिज्ञ थे॥४॥ सो मुनियों के द्वारा वेदमंत्रपूर्वक आज तुम्हारा राजतिलक हो। यह सुन भरतजी बोले कि हे मुनिराज! मुझे राज्य से क्या प्रयोजन है?॥५॥ हमारे राजाधिराज तो रामचन्द्रजी हैं और हम तो उनके सेवक हैं। मैं कल सबेरे तुरन्त रामचन्द्रजी* को लिवा लाने के लिये जाऊंगा॥६॥

अहं यूयंमातरश्चकैकेयींराक्षसींविना ॥ हनिष्याम्यधुनैवाहंकैकेयीमातृगन्धिनीम् ॥७॥ किन्तुमांनोरघुश्रेष्ठः स्त्रीहन्तारंसहिष्यते ॥ तच्छ्वो भूतेगमिष्यामिपादचारेणदण्डकान् ॥८॥ शत्रुघ्नसहितस्तूर्णंयूयमायान्तुवान वा ॥ रामोयथावनेयातस्तथाऽहंवल्कलाम्बरः ॥९॥ फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितोमुने ॥ भूमिशायी

१ गजल–रघुनाथ के देखें नहीं दिल को करारी है। हमारी मातु की करनी सकल दुनियाँ से न्यारी है॥१॥ सुना जब तात का मरना भनो बरछीसी मारी है। पड़ा व्याकुल हुआ बेसुध दृगन से नीर जारी है॥२॥ सुना जब राम गे वन को सिया प्राणों से प्यारी है। विमुख जिन राम से कीन्हा यही जननी हमारी है॥३॥ लगी रघुवंश में आगी अवध सारी उजारी है। भरत सिर लोट धरनी पर यही करता पुकारी है॥४॥ बजा दो कूंच का डंका करो चलने की त्यारी है। पड़ौं रघुनाथ के चरणों यही 'तुलसी' पुकारा है॥५॥

जटाधारीयावद्रामोनिवर्तते ॥१०॥ इतिनिश्चित्यभरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥ साधुसाध्वितितंसर्वेप्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥११॥ ततः प्रभातेभरतंगच्छन्तंसर्वसैनिकाः अनुजग्मुः सुमन्त्रेणनोदिताः साश्वकुञ्जराः ॥१२॥ कौसल्याद्याराजदारावसिष्ठप्रमुखाद्विजाः छादयन्तोभुवंसर्वेपृष्ठतःपार्श्वतोऽग्रतः ॥१३॥ शृङ्गवेरपुरं गत्वागङ्गाकूलेसमन्ततः ॥ उवासमहतीसेनाशत्रुघ्नपरिचोदिता ॥१४॥ आगतंभरतंश्रुत्वागुहः शङ्कितमानसः ॥ महत्यासेनयासार्धमागतोभरतः किल ॥१५॥ पापंकर्तुंनवायातिरामस्याविदितात्मनः ॥ गत्वातद्धृदयंज्ञेयं यदिशुद्धस्तरिष्यति ॥१६॥ गङ्गानोचेत्समाकृष्यनावस्तिष्ठन्तु सायुधाः ॥ ज्ञातयोमेसमायत्ताः पश्यन्तः सर्वतोदिशम् ॥१७॥

कैकेई के सिवाय हम तुम और मातायें सब चलेंगे। हे प्रभो! यह कैकेई सम्बन्ध में है तो मेरी माता परंतु मन में ऐसा आता है कि इस राक्षसीको अभी हाल मार डालूं पर करूं क्या।।७।।यह डर लगा है कि रामचन्द्रजी फिर मुझ स्त्रीघातक को नहीं सह सकेंगे अर्थात् मुझसे दुःखी होंगे इसलिये सवेरा होते ही शत्रुघ्न सहित शीघ्र ही पैरों पैरों दंडकवन को जाऊंगा। आप लोग चलें वा न चलें और हे मुनिराज! जैसे रामचन्द्रजी गये हैं वैसे ही मैं भी शत्रुघ्न को साथ लेकर जाऊंगा और जब तक रामचन्द्र न लौटेंगे तब तक छाल वस्त्र धारण कर जटाजूट बांध कंद मूल फल का आहार कर भूमि पर सोऊंगा।।८।।९।।१०।। यह बात निश्चय करके भरतजी चुप होकर बैठ गये। उस समय जितने लोग वहां बैठे थे वे सब प्रसन्न होकर भरतजी की प्रशंसा करने लगे कि आपने बहुत अच्छा विचार किया है।।११।। फिर प्रातःकाल जब भरतजी ने प्रस्थान किया उस समय सुमन्त्र की आज्ञासे हाथी घोड़ों समेत सब सेना उनके पीछे पीछे चली।।१२।। और कौशल्या आदि रानियां और वसिष्ठजी को आदि लेकर ऋषि और जितने ब्राह्मण क्षत्रीय वैश्य थे वे सब भरतजी के कोई आगे, कोई पीछे, कोई दायें, कोई बायें चले कि जिससे पृथ्वी ढक गई।।१३।। फिर श्रृंगवेर पुर पहुंचकर शत्रुघ्नजी की आज्ञा से उस बड़ी भारी सेना ने गंगाजी के किनारे इधर उधर डेरे डाल दिये।।१४।। भरतजी को आया हुआ सुनकर गुह के मन में बड़ा संदेह हुआ कि भरतजी तो बड़ी भारी सेना लेकर आये हैं।।१५।। सो कहीं पाप करने तो नहीं आये हैं कि रामजी को मार अकंटक राज करूं और रामचंद्रजी को इस बात की खबर भी नहीं है। इनके पास जाकर इनके मन

की थाह लेनी चाहिये जो कपटरहित होंगे तो गंगा पार जाने पावेंगे, नहीं तो हे मेरे भाइयों! गंगाजी में से अपनी नावों को निकालकर बाहर डाल देना और हथियार ले लेकर सावधानी से चारों ओर देखते रहना। भरतजी जाने न पावें।।१७।।

इति सर्वान्समादिश्यगुहोभरतमागतः ।। उपायनानिसंगृह्यविविधानिबहून्यपि ।।१८।। प्रययौज्ञातिभिः सार्धंबहुभिर्विविधायुधैः ।। निवेद्योपायनान्यग्रेभरतस्यसमन्ततः ।।१९।। दृष्ट्वाभरतमासीनंसानुजंसहमन्त्रिभिः चीराम्बरंघनश्यामंजटामुकुटधारिणम् ।।२०।। राममेवानुशोचन्तं रामरामेतिवादिनम् ।। नमामशिरसा भूमौगुहोऽहमिति चाब्रवीत् ।।२१।। शीघ्रमुत्थाप्यभरतोगाढमालिंग्यसादरम् ।। पृष्ट्वानामयमव्यग्रः सखायमिदमब्रवीत् ।।२२।। भ्रातस्त्वंराघवेणात्रसमेतः समवस्थितः ।। रामेणालिङ्गितः सार्द्रनयनेनामलात्मना ।।२३।। धन्योऽसिकृतकृत्योऽसियत्त्वयापरिभाषितः ।। रामोराजीवपत्राक्षोलक्ष्मणेनचसीतया ।।२४।। यत्ररामस्त्वयादृष्टस्तत्रमांनयसुव्रत ।। सीतयासहितोयत्रसुप्तस्तद्दर्शयस्वमे ।।२५।। त्वंरामस्यप्रियतमोभक्तिमानसिभाग्यवान् ।। इतिसंस्मृत्यसंस्मृत्यरामंसाश्रुविलोचनः ।।२६।। गुहेनसहितस्तत्रयत्रप्ररामः स्थितोनीशि ।। ययौददर्शशयनस्थलंकुशसमास्तृतम् ।।२७।।

सबको यह आज्ञा देकर गुह भरतजी के लिये भांति भांति की बहुत सी भेंटे लेकर हथियार बंद बहुत से अपने जाति भाइयों के साथ भरतजी के पास आया और भेंट उनके सामने धरी।।१८।।१९।। और गुह ने देखा कि मेघ के समान श्याम वरण भरतजी तो चीर वस्त्र धारण किये जटाजूट बांधे आसन पर बैठे हैं और रामजी के ही शोक में राम राम रट रहे हैं और छोटे भाई पास और मंत्री चारों ओर बैठे हैं। गुह ने पृथ्वी पर शिर नवाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि मैं गुह हूं।२०।।२१।। यह सुनकर भरतजी शीघ्र उठे और उससे बड़े आदरसे छाती से छाती मिला मिले और उसकी क्षेम कुशल पूछकर सावधान हो रामजी के सखा से बोले।।२२।। हे भाई! रामजी के साथ तुम यहाँ ही बैठे होगे और उन्होंने निष्कपट भाव से आखों में आंसू भरकर तुम्हें छाती से लगाया होगा।।२३।। और सीता लक्ष्मणसहित कमलनयन रामचंद्रजी से जो तुम्हारा संभाषण हुआ इसलिये तुम धन्य हो और तुम्हारा जन्म सफल हुआ।।२४।। और हे सुव्रत!

तुम जहां रामजी से पहिले मिले थे वहां मुझे ले चलो और जहां सीताजी सहित रामजी ने शयन किया था उस जगह को मुझे दिखाओ॥२५॥ तुम रामजी के बड़े प्यारे भक्त और भाग्यवान् हो। इस प्रकार रघुनाथजी का बार बार स्मरण करते करते भरतजी के नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी॥२६॥ फिर भरतजी गुह के साथ वहां गये कि जहां रामजी ने रात्रि में शीशम के वृक्ष के नीचे विश्राम किया था और वहां कुश की बनी हुई सेज का दर्शन किया॥२७॥

सीताभरणसँल्लग्नस्वर्णबिन्दुभिरञ्चितम् ॥ दुःखसन्तप्तहृदयोभरतः पर्यदेवयत् ॥२८॥ अहोऽतिसुकुमारीया सीताजनकनन्दिनी ॥ प्रासादेरत्नपर्यङ्केकोमलास्तरणेशुभे ॥२९॥ रामेणसहिताशेतेसाकथंकुशविष्टरे ॥ सीतारामेणसहिता दुःखेनममदोषतः ॥३०॥ धिङ्मांजातोऽस्मिकैकेय्यांपापराशिसमानतः ॥ मन्निमित्तमिदं क्लेशंरामस्यपरमात्मनः ॥३१॥ अहोऽतिसफलंजन्मलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ राममेवसदाऽन्वेतिवनस्थमपि हृष्टधीः ॥३२॥ अहंरामस्यदासायेतेषांदासस्यकिङ्करः ॥ यदिस्यांसफलंजन्म ममभूयान्नसंशयः ॥३३॥ भ्रातर्जानासियदितत्कथयस्वममाखिलम् ॥ यत्रातिष्ठतितत्राहंगच्छाम्यानेतुमञ्जसा ॥३४॥ गुहस्तंशुद्धहृदयं ज्ञात्वासस्नेहमब्रवीत् ॥ देवत्वमेवधन्योऽसियस्यतेभक्तिरीदृशी ॥३५॥ रामेराजीवपत्राक्षेसीतायांलक्ष्मणे तथा ॥ चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्याविदूरतः ॥३६॥ मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठतिसानुजः ॥ जानक्यासहितोऽनन्दात्सुखमास्ते किलप्रभुः ॥३७॥

सीताजी के वस्त्र आभूषणों में से २।४। सुनहरी सितारे सोते में सेज पर गिर पड़े थे, उन्हें देख भरतजी का हृदय भर आया और वे बड़ा शोक करने लगे कि॥२८॥ हाय बड़े दुःख की बात है कि अत्यन्त सुकुमारी जनकनंदिनी सीताजी महलों में रत्नजटित सुवर्ण के पलंग के ऊपर सुन्दर कोमल तोशक तकियों पर रामजी के साथ सोती थी सो मेरे दिये दुःख के कारण वह सीताजी कैसे इस कुशसाथरी पर रामजी के साथ सोई होंगी॥२९॥३०॥ मुझे धिक्कार है कि पापी की पुंज कैकेई के उदर से मेरा जन्म हुआ क्योंकि मेरे ही लिये परमात्मा रामचन्द्रजी को यह दुःख सहना पड़ा॥३१॥ अहाहा! लक्ष्मणजी बड़े बड़भागी हैं और उनका जन्म बड़ा सफल हुआ कि प्रसन्न चित्त से वनवासी श्रीरामचन्द्रजी की

सेवा में सदा पीछे पीछे रहते हैं।।३२।। जो मैं रामजी के दासों के दास का दास होऊँ तो मेरा जन्म सफल हो इसमें सन्देह नहीं है।।३३।। हे भाई! जो तुम यह जानते हो हो कि रामजी ने कहां जाकर निवास किया है तो मुझसे सब वृत्तान्त कहो कि जिससे मैं उन्हें शीघ्र लिवाने जाऊं।।३४।। भरतजी को शुद्ध हृदय जानकर गुह उनसे बड़े स्नेह से बोला कि हे देव! तुम्हें धन्य है कि जो तुम्हारी कमलनयन रामचन्द्रजी में तथा सीता लक्ष्मणजी में ऐसी दृढ भक्ति है। मन्दाकिनी नदी के पास ही चित्रकूट पर्वत है वहां मुनियों के आश्रम में प्रभु रामजी लक्ष्मण और जानकीजी सहित आनन्दपूर्वक सुख से रहते हैं। चलो वहां गंगा उतरकर शीघ्र चलें। यह कहकर और जाकर वह महानदी गंगाजी से सेना पार होने के लिये पांच सौ नाव शीघ्र लिवा लाया और राजाओं के बैठने योग्य एक नाव को गुह स्वयं खे लाया।।३५–३९।।

तत्रगच्छामहेशीघ्रं गङ्गातर्तुमिहार्हसि ।। इत्युक्त्वात्वरितंगत्वानावः पञ्चशतानिह ।।३८।। समानयत्ससैन्यस्ततर्तुंगङ्गामहानदीम् ।। स्वयमेवानिनायैकांराजनावंगुहस्तदा ।।३९।। आरोप्यभरतंतत्रशत्रुघ्नंराममातरम् ।। वसिष्ठचतथान्यत्रकैकेयींचान्ययोषितः ।।४०।। तीर्त्वागङ्गांययौशीघ्रंभरद्वाजाश्रमंप्रति ।। दूरेस्थाप्यमहासैन्यंभरतः सानुजोययौ ।।४१।। आश्रमेमुनिमासीनं ज्वलन्तमिवपावकम् ।। दृष्टाननामभरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः ।।४२।। ज्ञात्वादाशरथिंप्रीत्यापूजयामासमौनिराट् ।। पप्रच्छकुशलंदृष्ट्वाजटावल्कल धारिणम् ।।४३।। राज्यंप्रशासतस्तेऽद्यकिमेतद्वल्कलादिकम् ।। आगतोऽसिकिमर्थंत्वंविपिनंमुनिसेवितम् ।।४४।। भरद्वाजवचः श्रुत्वाभरतः साश्रुलोचनः ।। सर्वंजानासिभगवन् सर्वभूताशयस्थितः ।।४५।। तथापिपृच्छसेकिंचित्तदनुग्रहएवमे ।। कैकेय्या यत्कृतंकर्मरामराज्य विघातनम् ।।४६।। वनवासादिकंवापिनहिजानामिकिञ्चन ।। भवत्पादयुगंमेऽद्यप्रमाणंमुनिसत्तम ।।४७।।

और उस पर भरत, शत्रुघ्न राम की माता और वसिष्ठजी को चढ़ाकर और एक दूसरी सुन्दर नाव पर कैकेई और सुमित्रा आदि अन्य रानियों को बैठाकर शीघ्र ही गंगाजी के पार ले गया फिर भरतजी अपनी बड़ी भारी सेना को दूर रखकर और छोटेभाईको साथ लेकर भरद्वाजजीके आश्रमको गये। वहां आश्रम में अग्नि के समान तेजस्वी भरद्वाज मुनि बैठे थे। भरतजी ने उनके दर्शन कर भक्तिपूर्वक उनको साष्टांग प्रणाम किया।।४०–४२।। मुनिराज ने भरतजी को

दशरथजी का पुत्र जानकर उनका पूजन सत्कार किया और प्रीति पूर्वक उनसे कुशल पूछी और उनको जटावल्कल धारण किये देख कहने लगे कि।।४३।। हे भरत! राज्य करते करते आज यह वल्कल आदि धारण कर तुम इस मुनियों के रहने के वन में किसलिये आये हो?।।४४।। भरद्वाजजी का वचन सुनकर नेत्रों में आंसू भरकर कहने लगे कि भगवन्! तुमं सर्वज्ञ हो। प्राणीमात्र के हृदय की सब जानते हो तिसपर भी पूछते हो सो यह आपका मेरे ऊपर अनुग्रह ही है। कैकेई ने रामचन्द्रजी के राजतिलक में भंग डालने के लिये जो काम किया है वा वनवास आदि जो कुछ उन्हें हुआ है हे मुनिराज! आज मैं आपके चरणों की सौगन्ध खाता हूं कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता ।।४५–४७।।

इत्युक्त्वापादयुगलंमुनेः स्पृष्ट्वार्तमानसः ।। ज्ञातुमर्हसिमांदेवशुद्धोवाशुद्धएववा।।४८।। ममराज्येकिंस्वामिन् रामेतिष्ठतिराजनि ।। किङ्करोऽहमुनिश्रेष्ठरामचन्द्रस्यशाश्वतः ।।४९।। अतोगत्वामुनिश्रेष्ठरामस्य चरणान्तिके ।। पतित्वाराज्यसम्भारान्सर्प्यात्रैवराघवम् ।।५०।। अभिषेक्ष्येवसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह ।। नेष्येऽयोध्या रमानाथंदासः सेवेऽतिनीचवत् ।।५१।। इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचोमुनिः ।। आलिंग्यमूर्ध्न्यव घ्रायप्रशशंससविस्मयः ।।५२।।वत्सज्ञातंपुरैवैतद्भविष्यंज्ञानचक्षुषा ।। माशुचस्त्वंपुरोभक्तः श्रीरामेलक्ष्मणादपि ।।५३।। आतिथ्यंकर्तुमिच्छामिससैन्यतवानघ ।। अद्यभुक्त्वाससैन्यस्त्वंश्वोगन्ता रामसन्निधिम् ।।५४।। यथाज्ञापयतिभवांस्तथेति भरतोऽब्रवीत् ।। भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वामौनीहोम गृहेस्थितः ।।५५।। दध्यौकामदुघांकामवर्षिणीं कामदोमुनिः।।असृजत्कामधुक्सर्वंयथाकाममलौकिकम् ।।५६।।

यह कहकर और मुनि के दोनों चरणों पर हाथ धरकर दुःखित मन से कहने लगे कि हे देव! मैं कपटी हूं वा निष्कपट हूं, यह आप जान ही सकते हैं।।४८।। हे स्वामी! रामचन्द्र के राजा होते मुझे राज्य से क्या काम है, हे मुनिराज! मैं तो सदा से रामचन्द्रजी का सेवक हूं।।४९।। इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ! मैं रामजी के पास जाकर और उनके चरणों में गिरकर और राज्य की सब सामग्री रघुनाथजी को भेंट करूंगा और यहां चित्रकूट पर ही वसिष्ठ आदि मुनि तथा नगरवासी और देशवासियों के सहित रामजी का राजतिलक कर रामजी को अयोध्या लौटा ले जाऊंगा और वहां मैं अतिनीच सेवक की भांति उनकी सेवा करूंगा।।५०।।५१।। भरतजी के कहे हुए वचन को सुनकर मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने भरतजी को छाती से लगाकर और उनका माथा सूंघकर उनकी बड़ी बड़ाई की।।५२।। बेटा! इस होनहार को मैंने ज्ञान दृष्टि से पहिले ही जान लिया था, तुम कुछ शोक मत करो। लक्ष्मण से भी बढ़कर तुम रामचंद्र के भक्त हो।।५३।। हे पुण्यात्मा! मैं सेनासहित तुम्हारी मिहमानी किया चाहता हूं सो तुम आज सेना सहित मेरे यहां भोजन करके कल रामचन्द्रजी के पास चले जाना।।५४।। भरतजी ने कहा कि बहुत अच्छा जो आपकी आज्ञा। आज रह जाऊंगा। इतने में भरद्वाज मुनि अग्निहोत्र शाला में आचमन करके मौनी हो बैठ गये और मनोरथ पूर्ण करनेवाले मुनि मनमानी वस्तु की वर्षा करनेवाली कामधेनु का ध्यान करने लगे। उस समय कामधेनु ने जिस जिस पदार्थ की इच्छा थी, उन सब अलौकिक पदार्थों को रच दिया।।५५।।५६।।

भरतस्यससैन्यस्ययथेष्टंचमनोरथम् ।। यथाववर्षसकलंतृप्तास्तेसर्वसैनिकाः ।।५७।। वसिष्ठंपूजयित्वाग्रे शास्त्रदृष्टेनकर्मणा ।। पश्चात्ससैन्यंभरतंतर्पयामासयोगिराट् ।।५८।। उषित्वादिनमेकंतुआश्रमेस्वर्गसन्निभे ।। अभिवाद्यपुनः प्रातर्भरद्वाजंसहानुजः ।। भरतस्तुकृतानुज्ञः प्रययौरामसन्निधिम् ।।५९।। चित्रकूटमनुप्राप्यदूरेसंस्थाप्यसैनिकान् ।। रामसंदर्शनाकांक्षीप्रययौभरतः स्वयम् ।।६०।। शत्रुघ्नेनसुमन्त्रेणगुहेनचपरन्तपः ।। तपस्विमण्डलंसर्वंविचिन्वानोन्यवर्तत ।।६१।। अदृष्ट्वारामभवनम पृच्छदृषिमण्डलम् ।। कुत्रास्तेसीतयासार्धंलक्ष्मणेनरघूत्तमः ६२।। ऊचुरग्रेगिरेः पश्चाद्गङ्गायाउत्तरेतटे ।। विविक्तंरामसदनंरम्यंकाननमण्डितम् ।।६३।। सफलैराम्रपनसैः कदलीखण्डसंवृतम् ।। चम्पकैः कोविदारैश्चपुन्नागैर्विपुलैस्तथा ।।६४।। एवंदर्शितमालोक्यमुनिभिर्भरतोऽग्रतः ।। हर्षाद्ययौरघुश्रेष्ठभवनंमन्त्रिणासह ।।६५।। ददर्शदूरादतिभासुरंशुभंरामस्यगेहंमुनिवृन्दसेवितम् ।। वृक्षाग्रसँल्लग्नसुवल्कलाजिनंरामाभिरामंभरतः सहानुजः ।।६६।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डेऽष्टमः सर्गः ।।८।।

भरतजी की और उनकी सेना की जैसी जैसी इच्छा होती गई, कामधेनु ने वैसे ही संपूर्ण पदार्थ ऐसे बरसाये कि सब सेनावाले तृप्त हो गये।।५७।। भरद्वाजजी ने पहले शास्त्र विधि से वसिष्ठजी का पूजन किया फिर सेनासहित भरतजी

को संतुष्ट किया।।५८।। इस प्रकार भाई सहित भरतजी स्वर्ग समान आश्रम में एक दिन रहकर दूसरे दिन प्रातःकाल भरद्वाज मुनि को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से रामजी के पास विदा हुए।।५९।। जब भरतजी चित्रकूट पहुँच गये तो सब सेनावालों को दूर ठहराकर रामदर्शन की इच्छा से स्वयं आगे चले।।६०।। और तपस्वी भरतजी ने शत्रुघ्न सुमंत्र और गुह को साथ लेकर सब तपस्वियों के आश्रम ढूंढे और जब रामजी के आश्रम का पता न लगा और निराश हो गये तब उन्होंने ऋषियों से पूछा कि सीता और लक्ष्मणसहित रघुनाथजी कहां विराजमान हैं।।६१।।६२।। ऋषियों ने कहा–देखो आगे पर्वत के पीछे मंदाकिनी के उत्तर तट पर वन के एकान्त स्थान में जहां चारों ओर फलों से लदे हुए आम कटहर केले और चंपा कचनार केसर आदि के घने वृक्ष लग रहे हैं। उनके बीचों बीच भगवान् रामचन्द्रजी की सुन्दर परम रमणीक पर्णकुटी शोभायमान है।।६३।।६४।। इस प्रकार मुनियों से दिखाई हुई रघुनाथ की पर्ण कुटी को आगे देखते हुए और बड़े प्रसन्न होते हुए भरतजी मन्त्री के साथ आगे बढ़े।।६५।। और शत्रुघ्नसहित भरतजी ने दूर ही से प्रकाशमान कल्याण के देनेवाले मुनि मंडलियों से सेवित और जहां वृक्षों की डालियों पर सुन्दर वल्कल और मृगचर्म लटक रहे हैं ऐसे रामजी के रहने के बड़े रमणीक आश्रम को देखा।।६६।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकांडका आठवां सर्ग समाप्त हुआ।।८।।

श्रीमहादेव उवाच।। अथगत्वाश्रमपदसमीपं भरतोमुदा ।। सीतारामपदैर्युक्तंपवित्रमतिशोभनम् ।।१।। सतत्रवज्राङ्कुशवारिजाञ्चितध्वजादिचिह्नानिपदानिसर्वतः ।। ददर्शरामस्यभुवोऽतिमङ्गलान्यचेष्टयत्पादरजः सुसानुजः ।।२।। अहो सुधन्योऽहममूनिरामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि ।। पश्यामियत्पादरजोविमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्चनित्यम् ।।३।। इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयोविगाढचेतारघुनाथभावने ।। आनन्दजाश्रुस्नापितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिंहरेः ।।४।। सतत्रदृष्ट्वारघुनाथमास्थितंदूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम् ।। जटाकिरीटंनववल्कलाम्बरंप्रसन्नवक्त्रंतरुणारुणद्युतिम् ।।५।। विलोकयंतंजनकात्मजांशुभांसौमित्रिणासेवितपादपङ्कजम् ।। तदाभिदुद्रावरघूत्तमंशुचाहर्षाच्चतत्पादयुगंत्वराग्रहीत् ।।६।। रामस्तमाकृष्यसुदीर्घबाहुर्दोर्भ्यांपरिष्वज्यसिषिञ्चनेत्रजैः ।। जलैरथाङ्कोपरिसंन्यवेशयत्पुनः पुनः संपरिषस्वजेविभुः ।।७।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके उपरान्त भरतजी आनन्द से उस आश्रम के पास गये उसमें सीता रामजी के चरणों के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे इस कारण वह आश्रम बड़ा पवित्र और बड़ा रमणीक लगता था।।१।। वहां भरतजी ने चारों ओर पृथ्वी पर मंगल करनेवाले और वज्र अंकुश, कमल और ध्वजा आदि से चिह्नित ऐसे रामजी के चरणों के दर्शन किये और उनके चरणों की रज में भरतजी शत्रुघ्नसहित लोटने लगे।।२।। अहाहा! मैं बड़ा भारी धन्य हूं कि जिनके चरणों की धूलि को ब्रह्मा आदि देवता और वेद नित्य खोजते हैं और उन्हें नहीं मिलती उन रामचन्द्रजी के चरणारविन्दों से चिह्नित इस भूमितलका मैं दर्शन कर रहा हूँ।।३।। ऐसा विचार करते ही एक अद्भुत प्रेम रस उत्पन्न हुआ कि जिससे उनका अंतः करण भर आया और रामजी के ध्यान में मन लग गया तथा आनन्द के आंसुओं से छाती तर हो गई ऐसी दशा में भरतजी धीरे धीरे भगवान् के आश्रम के पास पहुँचे।।४।। वहां उन्होंने रामचन्द्रजी को बैठा हुआ कैसा देखा कि उनका दूबके समान श्यामवर्ण है विशाल नैत्र हैं, जटामुकुट धारण किये नवीन छाल के वस्त्र पहिरे प्रसन्न मुख और बाल सूर्य के समान प्रकाशमान है। सुन्दर सीताजी की ओर देख रहे हैं लक्ष्मणजी जिनके चरण दाब रहे हैं ऐसे रामचन्द्रजी को देखकर उनके पास दौड़े और जाकर शीघ्र उनके दोनों पैर पकड़ लिये उस समय भरतजी को हर्ष और शोक दोनों हुए।।५।।६।। सुन्दर दीर्घ बाहु रामचंद्रजी ने अपनी भुजा पसारकर उन्हें छाती से लगाया और नेत्रों के जल से तर कर दिया और गोदी में बैठाकर भगवान् ने उन्हें बारम्बार हृदय से लगाया।।७।।

अथतामातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः ।। राघवंद्रष्टुकामास्तास्तृषार्तागौर्यथाजलम् ।।८।। रामः स्वमातरंवीक्ष्यद्रुतमुत्थायपादयोः ।। ववन्देसाश्रुसापुत्रमालिङ्ग्यातीवदुःखिता ।।९।। इतराश्चतथानत्वाजन नीररघुनन्दनः ।। ततः समागतंदृष्ट्वावसिष्ठंमुनिपुङ्गवम् ।।१०।। साष्टाङ्गंप्रणिपत्याहधन्योऽस्मीतिपुनः पुनः ।। यथार्हमुपवेश्याहसर्वानिव रघूद्वहः ।।११।। पितामेकुशलीकिंवामांकिमाहातिदुःखितः ।। वसिष्ठस्तमुवाचेदंपितातेरघुनन्दन।।१२।। त्वद्वियोगाभितप्तात्मात्वामेवपरिचिन्तयन्।। रामरामेतिसीतेति लक्ष्मणेतिममारह ।।१३।। श्रुत्वातत्कर्णशूलाभंगुरोर्वचनमञ्जसा ।। हाहतोऽस्मीतिपतितो रुदन्रामः सलक्ष्मणः ।।१४।। ततोऽनुरुरुदुःसर्वामातरश्चतथापरे ।। हाताततमांपरित्यज्यक्वगतोऽसिघृणाकर ।।१५।।

अ०रा०
१३४

अनाथोऽस्मि महाबाहोमांकोवालालयेदितः ।। सीताचलक्ष्मणश्चैवविलेपतुरतोभृशम् ।।१६।। वसिष्ठः शान्तवचनैः शमयामासतांशुचम् ।। ततोमन्दाकिनींगत्वास्नात्वातेवीतकल्मषाः ।।१७।।

इसके उपरान्त वे सब मातायें रामचन्द्र के देखने की लालसा से ऐसी जल्दी वहां आईं कि जैसी प्यासी गोएँ जल को देख दौड़कर आती हों।।८।। रामजी ने अपनी माता को देखते ही तुरन्त उठकर उनके दोनों चरणों में प्रणाम किया और माता ने आखों में आँसू भरकर पुत्र को हिरदे से लगाया और बड़ी दुःखी हुई।।९।। फिर रामचन्द्रजी ने जैसे कौसल्या को प्रणाम किया था वैसे ही सब माताओं को प्रणाम किया। फिर रघुनाथजी ने मुनिराज वसिष्ठजी के पास आया देख बारम्बार उनको साष्टांग प्रणाम किया और बोले कि मैं धन्य हूं फिर रामजी सबको यथायोग्य आसन पर बैठाकर वसिष्ठजी से पूछने लगे।।१०।।११।। हमारे पिता तो कुशल से हैं? मेरे बिना उन्हें बड़ा दुःख हुआ होगा। उन्होंने मुझसे क्या कहा भेजा है। वसिष्ठजी ने कहा हे रघुनन्दन! तुम्हारे पिता को तुम्हारे वियोग से बड़ा दुःख हुआ और तुम्हारे ही स्मरण में उन्होंने हे राम! हे राम! हे सीता! हे लक्ष्मण! कहते कहते प्राण छोड़ दिये।।१२।।१३।। गुरु के वचन को कर्णशूल के समान सुनकर लक्ष्मण सहित रामचंद्र तुरंत ही "हाय मैं मारा गया" यों रोते हुए पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़े।।१४।। उनको रोता हुआ देखकर सब माता और अन्य साथी भी विलाप करने लगे। रामजी कहने लगे कि हा पिता! हे दयासागर! मुझे छोड़कर कहां चले गये।।१५।। हे महाबाहो! मैं अनाथ हो गया तुम्हारे बिना मेरा अब कौन लाड प्यार करेगा। फिर लक्ष्मण और सीताजी भी अत्यन्त विलाप करने लगे।।१६।। इतने में वसिष्ठजी ने प्राणी को शांति देनेवाला ऐसे वेदांत के वचन कहकर उनके शोक को दूर किया तदनन्तर सब लोग मंदाकिनी पर गये और वहां स्नान करके शुद्ध हुए।।१७।।

अ०का०
सर्ग
९

राज्ञेददुर्जलंतत्रसर्वेतेजलकांक्षिणे ।। पिण्डान्निर्वापयामासरामोलक्ष्मणसंयुतः ।।१८।। इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान्मधुसंप्लुतान् ।। वयंयदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ।।१९।। इतिदुःखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहंययौ ।। सर्वेरुदित्वासुचिरंस्नात्वाजग्मुस्तथाश्रमम् ।।२०।। तस्मिंस्तुदिवसेसर्वेउपवासंप्रचक्रिरे ।। ततः परेद्युर्विमलेस्नात्वा मन्दाकिनीजले ।।२१।। उपविष्टंसमागम्यभरतोराममब्रवीत् ।। रामराममहाभागस्वा-

अ०रा० १३५

त्मानमभिषेचय ॥२२॥ राज्यंपालयपित्र्यंतेज्येष्ठस्त्वंमेपितातथा ॥ क्षत्रियाणामयंधर्मोयत्प्रजापरिपालम् ॥२३॥ इष्ट्वायज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्यतन्तवे ॥ राज्येपुत्रंसमारोप्यगमिष्यसिततोवनम् ॥२४॥ इदानींवनवासस्यकालोनैवप्रसीदमे ॥ मातुर्मेदुष्कृतंकिञ्चित्स्मर्तुंनार्हसिपाहिनः॥२५॥ इत्युक्त्वाचरणौभ्रातुः शिरस्याधार्यभक्तितः ॥ रामस्यपुरतः साक्षाद्दण्डवत्पतितोभुवि ॥२६॥

फिर जल्दी इच्छा करनेवाले राजा दशरथजी को सबने जलदान दिया पुनि लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजी ने गोंदी फलों को पिसवाकर उसमें शहद मिलाया और पिंड बनाकर पिता के अर्थ पिंडदान किया। और रामजी ने कहा कि जो अन्न हम भोजन करते हैं वहीं अन्न पितरों को देना चाहिये ऐसा स्मृति में कहा है इसलिये इसे ग्रहण करिये॥१८॥१९॥ दुःख के कारण भगवान् की आंखों में आँसू भर आये और स्नान कर अपने स्थान को गये और सब लोग भी बहुत देर तक रो झींककर अपने अपने डेरे को लौट आये॥२०॥ उस दिन तो सबने उपवास किया और दूसरे दिन मन्दाकिनी के निर्मल जल में स्नान करके॥२१॥ जब रामजी सुचित्त हो बैठे तब भरतजी ने पास जाकर रघुनाथजी से कहा कि हे राम! हे महाभाग! अपना राजतिलक कराइये॥२२॥ तुम सबों में बड़े हो और मेरे पिता के समान हो इसलिये पिता के राज्य का पालन करो। प्रजा का पालन करना यही क्षत्रियों का धर्म हैं॥२३॥ पहिले अनेक प्रकार यज्ञ करके वंशवृद्धि के लिये पुत्रों को उत्पन्न करके और राज्य पर पुत्र को बैठाकर आप वन को जाइयेगा॥२४॥ यह समय वनवास का नहीं है। मेरे ऊपर कृपा करिये और मेरी माता से जो बुरा कर्म बन गया है उसका स्मरण न कर मेरी रक्षा कीजिये॥२५॥ यह कहकर भरतजी भाई रामचन्द्रजी के चरणों में भक्तिपूर्वक अपना शिर धरकर उनके आगे धरती पर दंड के समानं गिर पड़े॥२६॥

अ०का० सर्ग ९

उत्थाप्यराघवः शीघ्रमारोप्याङ्केऽतिभक्तितः ॥ उवाचभरतंरामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः ॥२७॥ शृणुवत्सप्रवक्ष्यामित्वयोक्तंयत्तथैवतत् ॥ किन्तुमामब्रवीत्तातोनवर्षाणिपञ्च च ॥२८॥ उषित्वादण्डकारण्ये-पुरंपश्चात्समाविश ॥ इदानींभरतायेदंराज्यंदत्तंमयाखिलम् ॥२९॥ ततः पित्रैवसुव्यक्तंराज्यंदत्तंतवै वहि ॥ दण्डकारण्यराज्यंमेदत्तंपित्रातथैवच ॥३०॥ अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः ॥ पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य

स्वतंत्रोयस्तुवर्तते ।।३१।। सजीवन्नेवमृतको देहान्ते निरयंव्रजेत् ।। तस्माद्राज्यंप्रशाधित्वंवयंदण्डकपालकाः ।।३२।। भरतस्त्वब्रवीद्रामंकामुकोमूढधीः पिता ।। स्त्रीजितोभ्रान्तहृदयउन्मतोयदिवक्ष्यति ।। तत्सत्यमितिन ग्राह्यंभ्रान्तवाक्यंयथासुधीः ।।३३।। रामउवाच ।। न स्त्रीजितः पिताब्रूयान्नकामीनैवमूढधीः ।। पूर्वंप्रतिश्रुतंतस्यैसत्यवादीदौभयात् ।।३४।। असत्याद्भीतिरधिकामहतांनरकादपि ।। करोमीत्यहमप्येतत्सत्यंतस्यैप्रतिश्रुतम् ।।३५।। कथंवाक्यमहं कुर्यामसत्यंराघवोहिसन् ।। इत्युदीरितमाकर्ण्य रामस्यभरतोऽब्रवीत् ।।३६।।

यह देख रामचन्द्रजी ने उन्हें उठाकर शिर सूंघा और प्रीति से अपनी गोद में बैठाकर और स्नेह के कारण आँखों में आंसू भरकर भरतजी से धीरे से बोले।।२७।। हे प्यारे! मैं कहता हूं उसे सुनो यों तो जो तुमने कहा है सो ठीक ही है परन्तु पिताजी ने मुझे आज्ञा दी कि चौदह वर्ष दण्डकारण्य में वसकर फिर पुर में प्रवेश करना और इस समय संपूर्ण राज्य मैंने भरत को दिया।।२८।।२९।। सो जिन पिता ने सबके सामने तुम्हें अयोध्या का राज्य दिया है उन्हीं पिता ने मुझे दंडकवन का राज्य दिया है।।३०।। इसलिये हम तुम दोनों को बड़े यत्न से पिता के वचन का पालन करना चाहिये। और जो पिता का वचन न मानकर स्वतंत्र होता है।।३१।। वह जीता हुआ भी मरे के समान है और मरने पर नरक को जाता है इसलिये राज्य की तो तुम रक्षा करो और हम दंडकवन की रक्षा करें।।३२।। भरतजी ने रामचन्द्रजी से कहा कि प्रभो हमारे पिता तो कामी होने से स्त्री के वश में थे, चित्त उनका स्थिर नहीं था, और उनकी बुद्धि मारी गई थी ऐसे पागल पिता जो कहें उसे सत्य नहीं मानना चाहिये जैसे कि पागल की बात बुद्धिमान् नहीं मानता है।।३३।। फिर रामचन्द्रजी बोले हे भरत! यह बात मुझसे नहीं कहनी चाहिये हमारे पिताजी न तो स्त्री के वशीभूत थे न कामी थे और न मूर्खबुद्धि थे वरन् वे सत्यवादी थे और इसी भय से पहिले जो उन्होंने कैकेई को वर देने की प्रतिज्ञा की थी सो पूर्ण करी।।३४।। जो बड़े होते हैं उनको असत्य बोलने में नरक से भी अधिक भय लगता है इसलिये पिता ने जो कैकेई को वचन दिया है उसे भी सत्य करूंगा।।३५।। और मैं रघुवंशी होकर उनके वचन को असत्य कैसे कर सकता हूं?।। रामचन्द्रजी के यह वचन सुनकर भरतजी बोले।।३६।।

तथैवचीरवसनोवनेवत्स्यामिसुव्रत ॥ चतुर्दशसमास्त्वंराज्यंकुरुयथासुखम् ॥३७॥ राम उवाच ॥ पित्रादत्तंतवैतद्राज्यंमह्यंवनंददौ ॥ व्यत्ययंयद्यहंकुर्यामसत्यंपूर्ववत्स्थितम् ॥३८॥ भरत उवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामिसेवे त्वां लक्ष्मणोयथा ॥ नोचेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥३९॥ इत्येवंनिश्चयंकृत्वादर्भानास्तीर्यचातपे ॥ मनसापिविनिश्चित्यप्राङ्मुखोपविवेशसः ॥४०॥ भरतस्यापि निर्बन्धंदृष्ट्वारामोऽतिविस्मितः ॥४१॥ नेत्रान्तसंज्ञांगुरवेचकाररघुनन्दनः ॥४१॥ एकान्तेभरतं प्राह-वसिष्ठोज्ञानिनांवरः ॥ वत्सगुह्यंशृणुष्वेदंममवाक्यात्सुनिश्चितम् ॥४२॥ रामोनारायणः साक्षाद्ब्रह्मणाया-चितः पुरा ॥ रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥४३॥ योगमायापिसीतेतिजाताजनकनन्दिनी ॥ शेषोऽपिलक्ष्मणोजातोराममन्वेतिसर्वदा ॥४४॥ रावणंहन्तुकामास्तेगमिष्यन्ति न संशयः ॥ कैकेय्यावर-दानादियद्यन्निष्ठुरभाषणम् ॥४५॥

यदि यह बात है और तुम्हारा पक्का व्रत है तो आपकी तरह छाल वस्त्र धारण कर मैं तो चौदह वर्ष वन में रहूँगा और तुम सुखपूर्वक राज्य करो॥३७॥ रामजी बोले–राज्य तो पिताजी ने तुम्हें ही दिया है और मुझे तो वन दिया है यदि इससे विपरीत करेंगे तो पहिले के समान असत्य ही ठहरेगा॥३८॥ भरतजी ने कहा कि जो ऐसा है तो मैं भी तुम्हारे साथ वन चलूँगा और लक्ष्मण के समान तुम्हारी सेवा करूँगा और जो यह बात स्वीकार न करोगे तो मैं भूखा प्यासा मरकर अपने शरीर को छोड़ दूंगा॥३९॥ ऐसा निश्चय करके और मन से दृढ़ संकल्प करके धूप में कुशासन जमा दिया और वह पूर्व की ओर मुख करके उस पर बैठ गये॥४०॥ भरतजी का यह दृढ़ देखकर रामचंद्रजी को बड़ा दुःख हुआ और रघुनाथजी ने गुरु की ओर आँख का इशारा किया कि इनको समझाओ यह क्या करते हैं॥४२॥ ज्ञानियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने भरतजी को एकांत में ले जाकर उनसे कहा कि बेटा! मैं तुमसे निश्चय की हुई एक गुप्त बात कहता हूँ सो सुनो॥४१॥४२॥ यह रामचंद्र साक्षात् नारायण स्वरूप हैं। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने इनके रावण के वध के लिये प्रार्थना की थी इसलिये यह दशरथ के यहां पुत्ररूप से उत्पन्न हुए हैं॥४३॥ और सीताजी योगमाया हैं सो आकर जनक की पुत्री हुई हैं। लक्ष्मणजी शेषजी का अवतार हैं और यह सदा रामजी के पीछे पीछे उनकी सेवा में रहते हैं॥४४॥ और

रामचन्द्र रावण के मारने की कामना से अवश्य वन को जायंगे, इसमें सन्देह नहीं है और कैकेई के वरदान और जो जो कठोर वचन कहे थे॥४५॥

सर्वंदेवकृतंनोचेदेवंसाभाषयेत्कथम् तस्मात्त्यजाग्रहंतातरामस्यविनिवर्तने ॥४६॥ निवर्तस्वमहासैन्यैर्भ्रातृभिः सहितः पुरम् ॥ रावणंसकुलंहत्वाशीघ्रमेवागमिष्यति ॥४७॥ इति श्रुत्वागुरोर्वाक्यंभरतोविस्मयान्वितः ॥ गत्वासमीपंरामस्यविस्मयोत्फुल्लविलोचनः ॥४८॥ पादुकेदेहिराजेन्द्रराज्यायतवपूजिते ॥ तयोः सेवांकरोम्येवयावदागमनंतव ॥४९॥ इत्युक्त्वापादुकेदिव्येयोजयामासपादयोः ॥ रामस्यतेददौरामोभरतायातिभक्तितः ॥५०॥ गृहीत्वापादुकेदिव्येभरतोरत्नभूषिते ॥ रामंपुनः परिक्रम्यप्रणनाम पुनः पुनः ॥५१॥ भरतः पुनराहेदंभक्त्यागद्गदया गिरा ॥ नवपञ्च समान्तेतुप्रथमेदिवसेयदि ॥५२॥ नागमिष्यसि चेद्रामप्रविशामि महानलम् ॥ बाढमित्येवतंरामोभरतंसन्यवर्तयत् ॥५३॥ ससैन्यः सवसिष्ठश्चशत्रुघ्नसहितः सुधीः ॥ मातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धंगमनायोपचक्रमे ॥५४॥ कैकेयीराममेकान्तेस्रवन्नेत्रजलाकुला ॥ प्राञ्जलिः प्राहहेरामतवराज्यविघातनम् ॥५५॥ कृतंमयादुष्टधियामायामोहितचेतसा ॥ क्षमस्वममदौरात्म्यं क्षमासाराहि साधवः ॥५६॥

यह सब देवताओं का किया काम था, नहीं तो कैकेई ऐसा क्यों कहती। इसलिये हे प्यारे! राम के लौटा ले जाने का आग्रह छोड़ दो॥४६॥ और अपनी बड़ी भारी सेना और भाइयों को साथ लेकर अयोध्या को लौट चलो और रामचन्द्र रावण को कुलसहित मारकर शीघ्र लौट आवेंगे॥४७॥ वसिष्ठजी का यह वचन सुनकर भरतजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह आश्चर्य से अपने नेत्रों को प्रफुल्लित करते हुए रामजी के पास जाकर बोले कि॥४९॥ हे महाराज! अपनी पूजनीय दोनों पादुकाएं मुझे राज्य के लिये दीजिये। जब तक आप लौटकर आवेंगे, मैं उन दोनों की सेवा करता रहूंगा॥४९॥ ऐसा कहकर भरतजी ने एक बड़ा अनोखा पादुकाओं का जोड़ा रघुनाथजी के चरणों में पहनाया। फिर रामजी ने बड़ी प्रीति से उस पादुकाओं के जोड़े को भरतजी को दे दिया॥५०॥ उस रत्नजटित अलौकिक खडाऊं के जोड़े को लेकर भरतजी ने रामचन्द्रजी की फिर परिक्रमा की और बारंबार उनको प्रणाम किया॥५१॥ तदनंतर

भरतजी ने भक्तिपूर्वक गद्गद वाणी से कहा कि हे रामचन्द्रजी! जो तुम चौदह वर्ष बीत जाने पर पहिले ही दिन लौटकर नहीं आओगे तो मैं भकभकाती हुई अग्नि में प्रवेश कर भस्म हो जाऊंगा। यह सुन रामजी ने भरत से कहा कि अच्छा तब भस्म हो जाना, यह कह उन्हें लौटा दिया।।५२।।५३।। फिर बुद्धिमान् भरतजी वसिष्ठजी शत्रुघ्न माता मंत्री और सेना इन सबको साथ लेकर चलने की तैयारी करने लगे।।५४।। इतने में कैकेई राम के पास एकान्त में गई और आखों से आंसूओं की धारा बहाती हुई व्याकुल होकर उनसे हाथ जोड़ कहने लगी कि हे राम! तुम्हारे राजतिलक में जो मैंने विघ्न डाला था, उस समय देवताओं ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी और मेरे चित्त को माया से मोहित कर दिया था सो मेरी इस दुष्टता को क्षमा करो क्योंकि सत्पुरुष क्षमाशील हुआ करते हैं।।५५।।५६।।

त्वंसाक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मासनातनः ।। मायामानुषरूपेणमोहयस्यखिलंजगत् ।। त्वयैवप्रेरितोलोकः कुरतेसाध्वसाधु वा ।।५७।। त्वदधीनमिदंविश्वमस्वतंत्रंकरोतिकिम् ।।यथाकृत्रिमनर्तक्योनृत्यन्तिकुहकेच्छया ।।५८।। त्वदधीनातथामयानर्तकीबहुरुपिणी ।। त्वयैप्रेरिताऽहंचदेवकार्यंकरिष्यता ।।५९।।पापिष्ठंपापमनसा कर्माचरमरिन्दम ।। अद्यप्रतीतोऽसिममदेवानामप्यगोचरः ।।६०।। पाहि विश्वेश्वरानन्तजगन्नाथनमोऽस्तुते ।। छिन्धिस्नेहमयंपाशंपुत्रवित्तादिगोचरम् ।।६१।त्वज्ज्ञानामलखड्गेनत्वामहं शरणंगता ।।कैकेय्यावचनंश्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत् ।।६२।। यदाहमांमहाभागेनानृतंसत्यमेवतत् ।। मयैवप्रेरितावाणीतववक्त्राद्विनिर्गता ।।६३।। देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्रदोषः कुतस्तव ।। गच्छत्वंहृदिमांनित्यं भावयन्तीदिवानिशम् ।।६४।। सर्वत्रविगतस्नेहामद्भक्त्यामोक्ष्यसेऽचिरात् ।। अहंसर्वत्रसमदृक्द्वेष्योवाप्रियएववा ।।६५।।

तुम साक्षात् विष्णुभगवान् हो, तुम्हारा रूप अव्यक्त और नित्य है। तुम माया से मनुष्य रूप धारण कर सब जगत् को मोहित करते हो और तुम्हारी ही प्रेरणा से संसार बुरा भला कर्म करता है।।५७।। यह विश्व तुम्हारे आधीन है, यह स्वयं कुछ नहीं कर सकता। जैसे कठपुतलियां नचानेवाली की इच्छानुसार नाचती हैं।।५८।। वैसे ही या माया तुम्हारे आधीन है और तुम्हारी प्रेरणा से अनेक रूप धारण कर नृत्य करती हैं। तुम्हें देवताओं का कार्य करना था सो तुमने ही मुझे प्रेरणा की थी, हे शत्रुनाशक! उसी से मेरे चित्त में पाप आया और मैंने पाप कर्म किया। और आज मुझे प्रतीति हुई

कि तुम्हारा दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ है।।५९।।६०।। हे विश्वेवर! हे अनन्त! हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हें नमस्कार करती हूं। तुम अपने ज्ञानरूपी निर्मल खड्ग से मेरे पुत्रधन आदि के स्नेहरूपी फंद को काट दो, मैं तुम्हारी शरण आई हूं। कैकेई का वचन सुनकर रामजी हँसकर बोले कि।।६१।।६२।। हे भाग्यशालिनी! जो तुम कहती हो सत्य ही है, झूंठ नहीं है। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये ही प्रेरणा से वह वाणी तुम्हारे मुख से निकली थी। इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है। तुम अब जाओ और रात्रि दिन नित्य अपने हृदय में मेरा ध्यान करती रहो।।६३।।६४।। तुम्हारा सब में स्नेह छूट जायगा और तुम मेरी भक्ति से थोड़े ही काल में मोक्ष पाओगी। मैं सबमें समदर्शी हूं अर्थात् मेरे लेखे सब एक से हैं, न कोई प्यारा है और न कोई शत्रु हैं कि जैसे मायावी पुरुष की अपने रचे हुए पदार्थ में न प्रीति होती है और न द्वेष होता है क्योंकि वह सबको मिथ्या लगता है तो भी जो कोई मेरा भजन करता है मैं उसके वश में रहता हूं और हे माता! जिनकी बुद्धि मेरी माया से मोहित हो रही वे मुझे सुख दुःख आदि का भोगी मनुष्य रूप जानते हैं और मेरा यथार्थ रूप नहीं जानते। यह बड़े प्रारब्ध की बात है कि संसार का नाशक मेरा ज्ञान तुमको हुआ।।६५–६७।।

नास्तिमेकल्पकस्येवभजतोऽनुभजाम्यहम् ।। मन्मायामोहितधियोमासम्बसमनुजाकृतिम् ।।६६।। सुखदुःखाद्य-नुगतंजानन्तिनतुतत्त्वतः ।। दिष्टयामद्गोचरंज्ञानमुत्पन्नंतेभवापहम् ।।६७।। स्मरन्तीतिष्ठभवनेलिप्यसे नचकर्मभिः ।। इत्युक्तासापरिक्रम्यरामंसानन्दविस्मया ।।६८।। प्रणम्यशतशोभूमौययौगेहंमुदान्विता ।। भरतस्तुसहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणासह ।।६९।। अयोध्यामगमच्छीघ्रंराममेवानुचिन्तयन्।।पौरजानपदान्सर्वान-योध्यायामुदारधीः ।।७०।। स्थापयित्वा यथान्यायंनन्दिग्रामंययौस्वयम् ।। तत्र सिंहासनेनित्यंपादुकेस्थाप्य भक्तितः ।।७१।। पूजयित्वाययथारामंगन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।। राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहंनियतव्रतः ।।७२।। फलमूलाशनोदान्तोजटावल्कलधारकः ।। अधः शायीब्रह्मचारीशत्रुघ्नसहितस्तदा ।।७३।।

तुम अपने घर में मेरा स्मरण करती रहो। कभी कर्मों से लिप्त नहीं होगी। जब रामजी ने यह कहा तब कैकेई ने आनन्दित और दुःखित अथवा आश्चर्ययुक्त होकर रामचन्द्र की प्रदक्षिणा की।।६८।। और पृथ्वी पर गिरकर सैंकड़ों बार

प्रणाम करके आनन्दपूर्वक घर जाने की तैयारी करने लगी। और भरतजी राम का ही स्मरण करते हुए मंत्री माता और वसिष्ठजी को साथ लेकर शीघ्र ही अयोध्या को विदा हुए और बुद्धिमान् भरतजी अयोध्या में पहुँचकर और पुरवासी और देशवासियों को जहां जिसका स्थान था उसे वहां रखकर आप नंदिग्राम को चले गये और वहां उन्होंने सिंहासन पर दोनों पादुकाओं को स्थापन कर दिया और रामचन्द्र के समान भक्तिपूर्वक गंधाक्षत पुष्पादि से और राजा के योग्य छत्र चमर आदि सब सामग्रियों से नित्य नियमपूर्वक उनका पूजन करना आरंभ कर दिया॥६९–७२॥ भरतजी शत्रुघ्नसहित कंद मूल फल का भोजन करने लगे और जटाजूट बांधे छाल के वस्त्र पहने, इंद्रियों को वश में किये और ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण कर भूमि में शयन करने लगे॥७३॥

राजकार्य्याणिसर्वाणियावन्तिपृथिवीतले ॥ तानिपादुकयोः सम्यङ्निवेदयतिराघवः ॥७४॥ गणयन्दिवसान्ये-वरामागमनकांक्षया ॥ स्थितोरामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥७५॥ रामस्तुचित्रकूटाद्रौवसन्मुनि भिरावृत्तः ॥ सीतयालक्ष्मणेनापिकिञ्चित्कालमुपावसत् ॥७६॥ नागराश्चसदायान्तिरामदर्शनलालसाः ॥ चित्रकूटस्थितंज्ञात्वासीतयालक्ष्मणेनच ॥७७॥ दृष्ट्वातज्जनसम्बाधंरामस्तत्याजतंगिरिम् ॥ दण्डकारण्य गमनेकार्यमप्यनुचिन्तयन् ॥७८॥ अन्वगात्सीतयाभ्रात्राह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ॥ सर्वत्रसुखसंवासंजनसम्बाध वर्जितम् ॥७९॥ गत्वामुनिमुपासीनंभासयन्तंतपोवनम् ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याहरामोऽहमभिवादये ॥८०॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः ॥ वनवासमिषेणापिधन्योऽहंदर्शनात्तव ॥८१॥ श्रुत्वारामस्यवचनं रामंज्ञात्वाहरिंपरम् ॥ पितुराज्ञां पुरविधिद्भक्त्यापरमयामुनिः ॥८२॥ वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टंरघूत्तमम् ॥ सीतांचलक्ष्मणं चैवसन्तुष्टोवाक्यमब्रवीत् ॥८३॥

पृथ्वीतल पर जितने राजकार्य होते थे उन सबको भरतजी अच्छी तरह से दोनों पादुकाओं से निवेदन कर आज्ञा लेते थे॥७४॥ और रामजी के आने की इच्छा से नित्य दिनों को गिनते हुए और रामजी में मन लगाये साक्षात् ब्रह्मर्षि की तरह तप करने लगे॥७५॥ उधर रामचन्द्रजी मुनिजन और सीता लक्ष्मणसहित थोड़े दिन तक तो चित्रकूट पर्वत पर रहे॥७६॥ परंतु जब नगरवालों ने यह जाना कि रामचन्द्रजी तो सीता लक्ष्मणसहित चित्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए हैं

और सदा रामदर्शन की लालसा से वहा आने लगे।।७७।। तब रामचन्द्रजी ने मनुष्यों की भीड़भाड़ देखकर और दडकारण्य में जाकर जो राक्षस वध आदि करना है उसको विचार कर उस पर्वत का रहना त्याग दिया।।७८।। और सीता लक्ष्मण को साथ लेकर वे अत्रिमुनि के सुन्दर आश्रम में चले गये कि जो सब काल में सुखदायक कथा और वहां मनुष्यों की भीड़भाड़ नहीं होती थी।।७९।। वहां जाकर उन्होंने आश्रम में विराजमान और तपोवन को प्रकाशमान करते हुए अत्रिमुनि को दंडवत् प्रणाम किया और बोले कि मैं रामचन्द्र आपको प्रणाम करता हूं।।८०।। मैं पिता की आज्ञा शिर धर कर दंडकवन में आया हूं। वनवास के बहाने से ही आपका दर्शन हुआ, इससे मैं धन्य हुआ।।८१।। रामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर और राम को परमात्मा स्वरूप विष्णु भगवान् जानकर अत्रिमुनि ने बड़ी भक्ति से विधिपूर्वक उनका पूजन किया।।८२।। फिर वन के फलों से उनका अतिथिसत्कार कर जब देखा कि रामचन्द्र लक्ष्मण और सीताजी ये सब निचंताई से बैठे हैं तब अत्रि मुनि ने प्रसन्न होकर यह बात कही कि।।८३।।

भायमिऽतीवसंवृद्धाह्यनसूयेतिविश्रुता ।। तपश्चरन्तीसुचिरंधर्मज्ञाधर्मवत्सला ।।८४।। अन्तस्तिष्ठतितांसीता पश्यत्वरिनिषूदन ।। तथेतिजानकींप्राहरामोराजीवलोचनः ।।८५।। गच्छदेवींनमस्कृत्यशीघ्रमेहिपुनः शुभे ।। तथेतिरामवचनंसीताचापितथाऽकरोत् ।।८६।। दण्डवत्पतितामग्र सीतांदृष्ट्वाऽतिहृष्टधीः ।। अनसूयासमालिंग्यवत्सेसीतेतिसादरम् ।।८७।। दिव्येददौकुण्डलेद्वेनिर्मितेविश्वकर्मणा।। दुकूलेद्वेददौतस्यैनिर्मलेभक्तिसंयुता ।।८८।। अङ्गरागंचसीतायैददौदिव्यंशुभानना ।। नत्यक्ष्यतेऽङ्गरागेणशोभात्वांकमलानने ।।८९।। पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहिजानकि ।। कुशलीराघवो यातुत्वयासहपुनर्गृहम् ।।९०।।भोजयित्वायथान्यायंरामंसीता समन्वितम् ।। लक्ष्मणंचतदारामंपुनः प्राहकृताञ्जलिः ।।९१।। रामत्वमेवभुवनानिधिविधायतेषांसंरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन् ।। देहान्बिभर्षिनचदेहगुणैर्विलिप्तस्त्वत्तोबिभेत्यखिलमोहकरीचमाया ।।९२।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः ।।९।। अयोध्याकाण्डेनवानांसर्गाणां सप्तशतानिश्लोकाः ।।७००।।

हे राम! मेरी स्त्री अनसूया के नाम से विख्यात है और बड़ी वृद्ध है वह बहुत काल से कुटी के भीतर बैठी तप कर

रही है और बड़ी धर्मज्ञ और धर्मशील है। सो सीता जाकर उनके दर्शन कर आवें तो अच्छा है। यह सुन रामजी ने कहा–बहुत अच्छी बात है और कमलसमान नेत्रवाले रामचन्द्रजी जानकीजी से बोले।।८४।।८५।। हे सुन्दरी! जाओ। अनसूयादेवी के दर्शन करके शीघ्र लौट आओ। राम का वचन सुनकर सीताजी ने कहा जो आज्ञा और अनसूयाजी के दर्शन करने गई।।८६।। अनसूयाजी अपने आगे दंडवत् करती हुई सीताजी को देख बड़ी प्रसन्न हुईं और आओ बेटी सीता, ऐसा कहकर बड़े प्यार से उन्होंने सीताजी को छाती से लगाया।।८७।। फिर प्रीति से उन्हें विश्वकर्मा के बनाये दो दिव्य कुंडल दिये और पहनने के लिये निर्मल वस्त्रों का एक जोड़ा दिया।।८८।। और सुन्दरमुखी अनसूया ने सीताजी को एक दिव्य अंगराग अर्थात् देह में लगाने का उबटन दिया और कहा कि हे कमलसमान मुखवाली सीता!इस अंगराग के लगाने से तुम्हारे शरीर की शोभा दिन दूनी होगी और कभी कम नहीं होगी।।८९।। हे जानकी! तुम पातिव्रत धारण करके रामचन्द्रजी के पीछे पीछे गमन करती रहो कि जिससे रामचन्द्र तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर लौटकर आवे।।९०।। फिर मुनि ने सीतासहित रामलक्ष्मणजी को विधिपूर्वक भोजन कराया और हाथ जोड़कर रामजी से बोले।।९१।। हे राम! तुम ही सब भुवनों को रचकर उसकी रक्षा के लिये देवता मनुष्य और तिर्यक् योनि में देह धारण करते हो परंतु देह के गुणों से लिप्त नहीं होते और सब लोक को मोहनेवाली माया तुमसे डरती है अधिक क्या कहें।।९२।। इति आगरानिवासी पण्डित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अयोध्याकांड का नवम् सर्ग समाप्त हुआ।।९।। शुभम् ।। छ ।। छ ।। छ ।। छ ।। छ।।

रागझंझौटी तिताला–हो मन मेरे कहौ क्यों न रामा । मानुजनम वृथा करि बौरे कछु न सुधारो कामा। कहा जानिये कौन बिरियां में विनसि जायगौ जामा।।१।। या जग में जीवन सपनो है काकौ सुत वित भामा । दिना चारका मिलि बिछुरन पर काहे भर्म भुलाना।।२।। रामप्रताप तरे खल कोटिक ध्रुव अविचल निज धामा। लाहाराम दास कान्हर भज जो चाहत विश्रामा।।३।। भजन–रे मन मूरख जनम गँवायो । करि अभिमान विषयसों राच्यौ श्याम शरण नहिं आयो। यह संसार फूल सैमर को सुन्दर देख लुभायो। चाखन लाग्यौ रुई उड़ गई हाथ कछू नहीं आयो।।२।। कहा भयो मन के अब सोचे पहिले नाहिं कमायो। कहत सूर भगवन्त जन विनु शिर धुनि धुनि पछतायो।।३।।

इति अध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते

अयोध्याकाण्डः समाप्तः



अथाध्यात्मरामायणे

भाषाटीकासहिते

आरण्यकाण्ड

प्रारम्भः

श्रीमहादेव उवाच ।। अथतत्रदिनंस्थित्वाप्रभातेरघुनन्दनः ।। स्नात्वामुनिंसमामन्त्र्यप्रयाणायोपचक्रमे ।।१।। मुनेगच्छामहेसर्वेमुनिमण्डलमण्डितम् ।। विपिनंदण्डकंयत्रत्वमाज्ञातुमिहार्हसि ।।२।। मार्गप्रदर्शनार्थायशिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि ।। श्रुत्वारामस्यवचनंप्रहस्यात्रिर्महायशाः ।। प्राहतत्ररघुश्रेष्ठं रामरामसुराश्रय ।।३।। सर्वस्यमार्गद्रष्टात्वंतवकोमार्गदर्शकः ।। तथापिदर्शयिष्यन्तितवलोकानुसारिणः ।।४।। इतिशिष्यान्समादिश्य स्वयंकिञ्चित्तमन्वगात् ।। रामेणवारितः प्रीत्याअत्रिः स्वभवनंययौ ।।५।। क्रोशमात्रंततोगत्वाददर्शमहतींनदीम् अत्रेः शिष्यानुवाचेदंरामोराजीवलोचनः ।।६।। नद्याः संतरणेकश्चिदुपायोविद्यतेनवा ।। ऊचुस्तेविद्यतेनौकासुदृढारघुनन्दन ।।७।। तारयिष्यमहेयुष्मान्वयमेवक्षणादिह ।। ततोनाविसमारोप्यसीतांराघवलक्ष्मणौ ।।८।। क्षणात्सन्तारयामासुर्नदींमुनिकुमारकाः ।। रामाभिनन्दिताः सर्वेजग्मुरत्रेरथाश्रमम् ।।९।।

अरण्यकाण्ड ।। श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! श्रीरामचंद्रजी अत्रिमुनि के आश्रम में एक दिन तो रहे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके और मुनि की आज्ञा लेकर आगे जाने के लिये तैयार हुए।।१।। और अत्रि मुनि से बोले कि हे मुने! दण्डकारण्य में अनेक मुनि रहकर उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं सो हम सब वहां जाते हैं, आप आज्ञा दीजिये।।२।। और अपने शिष्यों को हमें मार्ग दिखाने के लिये आज्ञा कीजिये। रघुनाथजी के वचन सुनकर महायशस्वी अत्रिमुनि रामचन्द्रजी से हँसकर यों कहने लगे कि 'राम राम' तुम तो स्वयं देवताओं को आश्रय देनेवाले हो।।३।। और सबको मार्ग दिखानेवाले तो आप हैं, आपको कौन मार्ग दिखा सकता है परंतु आप मनुष्यों के से चरित्र कर रहे हो इस लिये मेरे शिष्य तुम्हें मार्ग दिखा देंगे।।४।। अत्रि मुनि शिष्यों को मार्ग दिखाने की आज्ञा देकर आप भी थोड़ी दूर तक रामजी को पहुँचाने के लिये गये परंतु जब रघुनाथजी ने प्रीतिपूर्वक आगे संग चलने के लिये मना किया तब अत्रि मुनि अपने आश्रम को लौट आये।।५।। फिर कमलनयन रामचन्द्रजी एक कोस पहुँचने पाये थे कि एक बड़ी भारी नदी दिखाई पड़ी, उसे देख वे शिष्यों से पूछने लगे कि।।६।। हे मुनिकुमारो! इस नदी के पार जाने के लिये कोई उपाय भी है वा नहीं? उन्होंने उत्तर दिया कि हे रघुनन्दन! एक बड़ी पक्की नाव तैयार है।।७।। सो हम एक पलमात्र में तुम्हें दूसरी पार उतार देंगे

और मुनिकुमारों ने सीता और राम लक्ष्मणजी को नाव पर बैठाकर क्षणमात्र में सुख पूर्वक नदी से उतार दिया। फिर रामजी ने उनकी बड़ी बड़ाई की और वे सब अत्रिमुनि के आश्रम को लौट गये॥८-९॥

तावेत्यविपिनंघोरंझिल्लीझङ्कारनादितम् ॥ नानामृगगणाकीर्णसिंहव्याघ्रादिभीषणम् ॥१०॥ राक्षसैर्घोररूपैश्चसेवितंरोमहर्षणम् ॥ प्रविश्यविपिनंघोरंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥११॥ इतः परंप्रयत्नेनगन्तव्यंसहितेनमे ॥ धनुर्गुणेनसंयोज्यशरानपिकरेदधत् ॥१२॥ अग्रेयास्याम्यहंपश्चात्त्वमन्वेहिधनुर्धरः ॥ आवयोर्मध्यगासीता मायेवात्मपरात्मनोः ॥१३॥ चक्षुश्चारयसर्वत्रदृष्टंरक्षोभयंमहत् ॥ विद्यतेदण्डकारण्येश्रुतपूर्वमरिन्दम् ॥१४॥ इत्येवंभाषमाणौतौजग्मतुः सार्धयोजनम् ॥ तत्रैकापुष्करिण्यास्तेकल्हारकुमुदोत्पलैः ॥१५॥ अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमानाव्यदृश्यत ॥ तत्समीपमथोगत्वापीत्वातत्सलिलंशुभम् ॥१६॥ ऊषुस्तेसलिलाभ्याशेक्षणंछायामुपाश्रिताः ॥ ततोददृशुरायान्तंमहासत्वंभयानकम् ॥१७॥ करालदंष्ट्रवदनंभीषयन्तंस्वगर्जितैः ॥ वा मांसेन्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥१८॥

यहां राम लक्ष्मणजी दोनों जो आगे बढ़े तो एक बड़े भयंकर वन में पहुँचे कि जहां झींगरों की झंकार का शब्द हो रहा है। नाना प्रकार के जंगली पशुओं के झुंड इधर उधर फिर रहे हैं और सिंह व्याघ्रादि जन्तुओं से वह वन महाभयंकर हो रहा है॥१०॥ बड़े कराल रूप के राक्षस उसमें रहते हैं कि जहां जाते ही शरीर के रोंगटे खड़े हो जायं। ऐसे भयंकर वन में घुसते ही रामजी लक्ष्मणजी से बोले कि॥११॥ हे लक्ष्मण! अब तुम यहां से बड़ी सावधानी से मेरे साथ साथ चलो। ऐसा कहकर रामजी ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली और हाथ में बाण ले लिये॥१२॥ और लक्ष्मणजी से कहा कि मैं आगे चलता हूं, तुम हाथ में धनुष धारण करके मेरे पीछे पीछे चलो और जैसे जीव और ईश्वर के मध्य में माया रहती है वैसे ही हमारे तुम्हारे बीच में जानकीजी चलें॥१३॥ हे लक्ष्मण! यों तो तुम शत्रुनाशक हो तो भी चारों ओर निगाह करते चलो क्योंकि हमने पहले सुन रखा है कि दंडकारण्य में राक्षसों का बड़ा भय देखा गया है॥१४॥ इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों डेढ़ योजन अर्थात् छः कोस आगे निकल गये वहां उनको एक झील दिखाई पड़ी उसमें कल्हार कुमोदिनी और अनेक प्रकार के श्वेत रक्त आदि रंग रंग के कमल खिल रहे हैं और बड़ा सुन्दर शीतल जल भर रहा है।

इसलिये बड़ी शोभायमान दीख रही है। उसके पास जाकर सुन्दर जलपान किया।।१५।।१६।। और जल के किनारे वृक्ष की छाया के नीचे क्षणमात्र विश्राम किया। इतने ही में एक भयंकर बड़े भारी प्राणी को आया हुआ देखा।।१७।। उसका डरावना मुख और लंबे लंबे दांत थे और उसकी गर्जना से लोगों को डर लगता था। उसके बायें कंधे पर त्रिशूल धरा हुआ था और उसकी नोंक पर अनेक मनुष्य लटक रहे थे।।१८।।

भक्षयन्तंगजव्याघ्रमहिषंवनगोचरम् ।। ज्यारोपितंधनुर्धत्वारामोलक्ष्मणमब्रवीत् ।।१९।। पश्यभ्रातर्महाकायोराक्षसोऽयमुपागतः ।। आयात्याभिमुखंनोऽग्रेभीरूणांभयमावहन्।।२०।।सज्जीकृतधनुस्तिष्ठमाभैर्जनकनन्दिनि ।। इत्युक्त्वाबाणमादायस्थितोरामइवाचलः ।।२१।। सतुदृष्ट्वारमानाथंलक्ष्मणंजानकींतदा ।। अट्टहासंततः कृत्वाभीषयन्निदमब्रवीत् ।।२२।। कौयुवांबाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ ।। मुनिवेषधरौबालौ स्त्रीसहायौसुदुर्मदौ ।।२३।। सुन्दरौबतमेवक्त्रप्रविष्टकवलोपमौ ।। किमर्थमागतौघोरंवनंव्यालनिषेवितम् ।।२४।। श्रुत्वारक्षोवचोरामः स्मयमानउवाचतम् ।। अहंरामस्त्वयंभ्रातालक्ष्मणोममसम्मतः ।।२५।। एषासीताममप्राणवल्लभावयमागताः ।। पितृवाक्यंपुरस्कृत्यशिक्षणार्थंभवादृशम् ।।२६।। श्रुत्वातद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत् ।। व्यादायवक्त्रंबाहुभ्यांशूलमादायसत्वरः।।२७।।मांनजानासिरामत्वंविराधंलोकविश्रुतम् ।। मद्भयान्मुनयः सर्वेत्यक्त्वावनमितोगताः ।।२८।।

और वह वन में फिरनेवाले हाथी सिंह और भैंसों को भक्षण करता था। प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुष को धारण करके रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले कि।।१९।। हे भैया! यह बड़े भारी शरीरवाला राक्षस हमारे पास आ पहुँचा और भयभीत लोगों को डराता हुआ हमारे ही सामने चला आ रहा है।।२०।। तुम अपने धनुष को तैयार करे खड़े रहो और हे जानकी! तुम डरना मत, यों कहकर और बाण को लेकर रामजी पर्वत के समान अचल खड़े हो गये।।२१।। उस समय वह राम लक्ष्मण और जानकी को देखकर बड़ा खिलखिलाकर हँसा और उनको डराता हुआ यह बोला कि।।२२।। अरे तुम दोनों बाण तरकस जटा और छाल वस्त्र धारण किये बारी उमरवाले मुनि का वेष बनाये सुन्दर स्त्री को साथ लिये बड़े मद में चूर, बड़े सुन्दर और मेरे मुख में गये हुए ग्रास के समान ऐसे कौन हो और सर्प आदि हिंसक जीवों से भरे इस

भयंकर वन में किसलिये आये हो?॥२३॥२४॥ राक्षस का वचन सुनकर रामचन्द्रजी हँसकर उससे बोले कि मैं राम हूं, यह मेरा प्यारा भैया लक्ष्मण है॥२५॥ और यह मेरी प्राणप्यारी जानकी है। हम पिता के वचन से तुम सरीखों को शिक्षा देने के लिये ही यहां आये हैं॥२६॥ रामजी का यह वचन सुनते ही वह बड़े वेग से खिलखिलाकर हँसने लगा और अपना मुख फाड़कर और तुरंत दोनों हाथों से भाला लेकर बोला कि॥२७॥ हे राम! तू मुझे नहीं जानता कि मैं संसार में विराध नाम से विख्यात हूं। मेरे डर के मारे सब मुनिजन वन को छोड़ यहां से चले गये॥२८॥

यदिजीवितुमिच्छास्तित्यक्त्वासीतांनिरायुधौ ॥ पलायंतनचेच्छीघ्रंभक्षयामियुवामहम् ॥२९॥ इत्युक्त्वाराक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे ॥ रामश्चिच्छेदतद्बाहूशरेणप्रहसन्निव ॥३०॥ ततः क्रोधपरीतात्माव्यादायविकटंमुखम् ॥ राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेदपरिधावतः ॥३१॥ पदद्वयंविराधस्यतद्भुदतमिवाभवत् ॥३२॥ ततः सर्पइवास्येनग्रसितुंराममापतत् ॥ ततोऽर्धचन्द्राकारेणबाणेनास्यमहच्छिरः ॥३३॥ चिच्छेदरुधिरौघेणपपात धरणीतले ॥ ततः सीतासमालिङ्गयप्रशशंसरघूत्तमम् ॥३४॥ ततोदुन्दुभयोनेदुर्दिविदेवगणेरिताः ॥ ननृतुश्चाप्सराहृष्टाजगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥३५॥ विराधकायादतिसुन्दराकृतिर्विभ्राजमानोविमलाम्बरावृतः ॥ प्रतप्तचामीकरचारुभूषणोव्यदृश्यताग्रेगगनेरविर्यथा ॥३६॥ प्रणम्यंरामंप्रणतार्तिहारिणंभवप्रवाहोपरमं-घृणाकरम ॥ प्रणम्यभूयः प्रणनामदण्डवत्प्रपन्नसर्वार्तिहरंप्रसन्नधीः ॥३७॥ विराध उवाच ॥ श्रीरामराजीवदलायताक्षविद्याधरोऽहंविमलप्रकाशः ॥ दुर्वाससाऽकारणकोपमूर्तिनाशप्तः पुरासोऽद्यविमोचितस्त्वया ॥३८॥

जो तुम भी अपने जीवन की खैर चाहो तो शस्त्रों को डाल सीता को छोड़ भाग जाओ नहीं तो मैं तुम दोनों को तुरंत डकार जाऊंगा॥२९॥ यह कहकर वह राक्षस ज्यों ही सीताजी को लपकने के लिये दौड़ा, त्योंही राम ने हँसी हँसी में एक ही बाण से उसकी दोनों भुजा काट अलग करी॥३०॥ फिर तो वह राक्षस क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और अपना भयंकर मुख फाड़कर रामचन्द्रजी के ऊपर दौड़ा, इतने ही में रामजी ने दौड़ते हुए उस विराध के दोनों पैर भी काट अलग फेंके और भगवान् का यह काम एक अचरज सा हो गया॥३१-३२॥ फिर वह सर्प के समान सरकता

सरकता ज्योंही रामजी को मुख से पकड़ने को आया त्योंही उन्होंने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसके शिरको भुट्टासा उड़ा दिया। मस्तक से लोहू की धारा बहने लगी और वह पछाड खा धरती पर गिर पड़ा। यह देख सीताजी ने रामचन्द्रजी को छाती से लगाया और उनका बड़ा यश गाया।।३३।।३४।। उस समय देवताओं ने मिलकर स्वर्ग में नगाड़े बजाये, अप्सरायें नाचने लगीं और गन्धर्व किन्नर प्रसन्न हो होकर गाने लगे।।३५।। तदनंतर विराध के शरीर से निकलकर दिव्य वस्त्रों को और दिव्य सुवर्ण के आभूषणों को धारण करे सूर्य के तुल्य प्रकाशमान एक बड़ा सुन्दर पुरुष दिखाई दिया।।३६।। फिर वह पुरुष भक्तों के दुःख को हरनेवाले जन्ममरणरूप संसार के छुटानेवाले परम दया के समुद्र और शरणागतों का संकट दूर करनेवाले रामचन्द्रजी को बारंबार दंडवत् प्रणाम कर प्रसन्न हो बोला।।३७।। विराध ने कहा–हे कमलपत्रसमान नेत्रवाले रामचन्द्र! मैं पूर्व जन्म में निर्मल प्रकाशवान् विद्याधर था, परंतु अकारण क्रोध की मूर्ति दुर्वासा के शाप से राक्षसयोनि में उत्पन्न हुआ था सो आज आपने मुझे मुक्त कर दिया।।३८।।

इतः परंत्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिः सदामेऽस्तुभवापशान्तये ।। त्वन्नामसङ्कीर्तनमेववाणीकरोतुमेकर्णपुटं-त्वदीयम् ।।३९।। कथामृतंपातुकरद्वयंतेपादारविन्दार्चनमेवकुर्यात् ।। शिरश्चतेपादयुगप्रणामं करोतुनित्यं-भवदीयमेवम् ।।४०।। नमस्तुभ्यं भगवतेविशुद्धज्ञानमूर्तये । आत्मारामायरामाय सीतारामायवेधसे।।४१।। प्रपन्नंपाहिमांरामयास्यामित्वदनुज्ञय ।। देवलोकंरघुश्रेष्ठमायामांमावृणोतुते ।।४२।। इतिविज्ञापितस्तेन-प्रसन्नोरघुनन्दनः ।। ददौवरतदाप्रीतोविराधायमहामतिः ।।४३।। गच्छविद्याधराशेषमायादोषगुणाजिताः ।। त्वयामद्दर्शनात्सद्योमुक्तोज्ञानवतांवरः।।४४।। मद्भक्तिर्दुर्लभालोकेजाताचेन्मुक्तिदायतः।।अतस्त्वंभक्तिसम्पन्नः परंयाहिममाज्ञया ।।४५।। रामेण रक्षोनिधनंसुघोरंशापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् ।। विद्याधरत्वंपुनरेवलब्ध-रामंगृणन्नेतिनरोऽखिलार्थान् ।।४६।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ।।१।।

हे भगवन्! अब ऐसी कृपा करो कि मुझे आपके चरणकमलों का स्मरण सदा बना रहे कि जिससे संसार का दुःख न मिले, मेरी वाणी सदा तुम्हारे नाम का कीर्तन किया करे और मेरे दोनों कान सदा तुम्हारी कथारूपी अमृत का पान

करे और मेरे दोनों हाथ सदा तुम्हारा पूजन करें और मेरा मस्तक सदा आपके चरणों को प्रणाम करता रहे॥३९॥४०॥ तुम षड्ऐश्वर्ययुक्त विशुद्ध ज्ञान की मूर्ति और अपनी आत्मामें रमण करनेवाले और सबके रचनेवाले हो, ऐसे सीतासहित आप रामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूं॥४१॥ जब उसने इस प्रकार अपना वृत्तान्त जताया तब महाबुद्धिमान् रघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए और प्रीति से विराध को वरदान दिया कि॥४२–४३॥ हे विद्याधर! तुम अपने लोक को जाओ, तुमने मेरे दर्शन से दोषरूपी माया के गुणों को जीत लिया और तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर शीघ्र मुक्त हो जाओगे॥४४॥ मुक्ति की देनेवाली मेरी भक्ति संसार में मिलना दुर्लभ है सो तुम्हें मिल गई, इसलिये तुम भक्ति पाकर मेरी आज्ञा से मोक्ष पाओ। इस प्रकार श्रीरघुनाथजी ने बड़े भयंकर विराध राक्षस को मार उसे शाप से छुड़ाया और वरदान दिया कि जिससे फिर उसने विद्याधर की पदवी पाई। इसलिये जो मनुष्य राम का यश गान करेगा वह सब पदार्थों को पावेगा॥४५–४६॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का पहिला सर्ग समाप्त हुआ॥१॥ शुभम्।

श्रीमहादेव उवाच ॥ विराधे स्वर्गतेरामोलक्ष्मणेनसीतया ॥ जगामशरभङ्गस्यवनंसर्वसुखावहम् ॥१॥ शरभङ्गस्ततोदृष्ट्वारामंसौमित्रिणासह ॥ आयान्तंसीतयासार्धंसंभ्रमादुत्थितः सुधीः ॥२॥ अभिगम्यसुसंपूज्यविष्टरेषूपवेशयत् ॥ आतिथ्यमकरोत्तेषांकन्दमूलफलादिभिः ॥३॥ प्रीत्याहशरभङ्गोऽपिरामंभक्तपरायणम् ॥ बहुकालमिहैवासंतपसेकृतनिश्चयः ॥४॥ तवसन्दर्शनाकांक्षीरामत्वंपरमेश्वरः॥अद्यमत्तपसासिद्धं यत्पुण्यंबहुविद्यते ॥ तत्सर्वंतवदास्यामि ततोमुक्तिंव्रजाम्यहम् ॥५॥ समर्प्यरामस्यमहत्सुपुण्यफलंविरक्तः शरभङ्गयोगी ॥ चितिंसमारोहयदप्रमेयंरामंससीतंसहसाप्रणम्य ॥६॥ ध्यायंश्चिरंराममशेहृत्स्थंदूर्वादलश्यामलमम्बुजाक्षम् ॥ चीराम्बरंस्निग्धजटाकालापंसीतासहायंसहलक्ष्मणंतम् ॥७॥ कोवादयालुः स्मृतकामधेनुरन्योजगत्यांरघुनायकादहो ॥ स्मृतोमयानित्यमनन्यभाजाज्ञात्वास्मृतिंमेस्वयमेवयातः ॥८॥ पश्यत्विदानींदेवेशोरामोदाशरथिः प्रभुः ॥ दग्ध्वास्वदेहंगच्छामिब्रह्मलोकमकल्मषः ॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जब रामजी की कृपा से विराध स्वर्ग को चला गया तब सीता लक्ष्मण को साथ

अ०रा०
१५२

लेकर रामचन्द्रजी शरभंगऋषि के वन को चले जो सब प्राणियों को सुखदायक था।।१।। फिर जब वेदांतनिष्ठ शरभंगऋषि ने सीता लक्ष्मणसहित रामजी को आया देखा तब शीघ्र उठे ।।२।। और आगे जाकर लिवा लाये और भली भांति उनका पूजन करके सबको आसनों पर बैठाया और कन्द मूल फलों आदि से उन सबका अतिथि सत्कार किया।।३।। फिर शरभंग ऋषि प्रीतिपूर्वक भक्तों पर कृपा करनेवाले रामचन्द्र से बोले कि हे राम! मैं बहुत काल से इस आश्रम में तप करता हुआ और आपके दर्शन की इच्छा से निश्चय किये हुए रहता हूं।।४।। हे राम! तुम साक्षात्परमेश्वर हो। आज तक तप करने से जो कुछ मेरा बहुतसा पुण्य संचित हुआ है सो सब आपकी भेंट कर मैं मोक्ष को प्राप्त होता हूं।।५।। इस प्रकार परमयोगी शरभंगमुनि ने श्रीरामचन्द्रजी को अपना बड़ा पुण्य समर्पण कर दिया और सबसे विरक्त होकर और सीता लक्ष्मणसहित प्रमाणरहित श्रीरामजी को प्रणाम कर तथा चिता कर उस पर तत्काल बैठ गये।।६।। और उस समय दूर्वादल के समान श्यामवर्ण कमल के समान नेत्रवाले मुनियों के वस्त्र धारण किये, कोमल जटाजूट बांधे, सबके अंतःकरण में रहनेवाले और सीतालक्ष्मणसहित ऐसे रामचन्द्र का बहुत काल तक ध्यान करते रहे।।७।। और कहते रहे कि स्मरण मात्र से ही सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाला एक राम को छोड़ दूसरा दयालु पृथ्वी पर कौन है? मैं दूसरे का भजन न करके केवल उनका ही नित्य स्मरण करता रहा सो मेरे स्मरण को जानकर उन्होंने घर बैठे मुझे दर्शन दे कृतार्थ किया और मैं देवताओं को ईश और सबके स्वामी दशरथनन्दन रामचन्द्रजी को देखते देखते पापरहित होकर और अपनी देह को भस्म करके ब्रह्मलोक को जाता हूं।।९।।

आ०का०
सर्ग
२

अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदयेराघवः सदा ।। यद्वामाङ्केस्थितासीतामेघस्येवतडिल्लता ।।१०।। इतिरामंचिरं-ध्यात्वादृष्ट्वाचपुरतः स्थितम् ।। प्रज्वाल्यसहसावह्निंदग्ध्वापश्चात्मकंवपुः ।।११।। दिव्यदेहधरः साक्षाद्ययौलोकपतेः पदम् ।। ततोमुनिगणाः सर्वेदण्डकारण्यवासिनः ।। आजग्मूराघवंद्रष्टुंशरभङ्गनिवेशनम् ।।१२।। दृष्ट्वामुनिसमूहंतंजानकीरामलक्ष्मणाः ।। प्रणेमुः सहसाभूमौमायामानुषरूपिणः ।।१३।। आशीर्भिराभिनन्द्याथरामंसर्वहृदिस्थितम् ।। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वेधनुर्बाणधरंहरिम् ।।१४।। भूमेर्भारावतारायजातोऽसिब्रह्मणाऽर्थितः ।। जानीमस्त्वांहरिं लक्ष्मीजानकींलक्ष्मणंतथा ।।१५।। शेषांशंशङ्खचक्रेद्वेभरतं-

सानुजंतथा ॥ अतश्चादौऋषीणांत्वंदुःखमोक्तुमिहार्हसि ॥१६॥ आगच्छयामोमुनिसेवितानिवनानिसर्वाणि-रघूत्तमक्रमात् ॥ द्रष्टुंसुमित्रासुतजानकीभ्यांतदादयास्मासुदृढाभविष्यति ॥१७॥ इति विज्ञापितोरामः कृताञ्जलिपुटैर्विभुः ॥ जगाममुनिभिः सार्धंद्रष्टुंमुनिवनानिसः ॥१८॥ ददर्शतत्रपतितान्यनेकानिशिरांसिसः ॥ अस्थिभूतानिसर्वत्ररामोवचनमब्रवीत् ॥१९॥ अस्थीनिकेषामेतानिकिमर्थंपतितानिवै ॥तमूचुर्मुनयोराम-ऋषीणांमस्तकानिहि ॥२०॥ राक्षसैर्भक्षितानीशप्रमत्तानांसमाधितः ॥ अन्तरायंमुनीनांतेपश्यन्तोऽनु-चरन्तिहि ॥२१॥

जैसे मेघ के पास बिजली शोभायमान होती है वैसे ही जिसके वामभाग में सीताजी विराजमान हैं, ऐसे अयोध्या के राजा रामचन्द्रजी मेरे हृदय में निवास करें॥१०॥ इस प्रकार रामजी को अपने सामने खड़ा देखकर वे बहुत काल तक तो उनका ध्यान करते रहे फिर चिता में अग्नि को एक साथ प्रज्वलित करके उन्होंने अपने पंचमहाभूत शरीर को भस्म कर दिया॥११॥ और वह दिव्य देह धारण कर साक्षात् ब्रह्मलोक को गये। इसके उपरांत दंडकारण्य के निवासी सब मुनिजन रामजी का दर्शन करने के लिये शरभंगमुनि के आश्रम में आये ॥१२॥ फिर उस मुनिसमुदाय को देखकर माया से मनुष्यरूप धारण करनेवाले राम और लक्ष्मण जानकी ने एक साथ भूमि पर लेटकर उन मुनियों को प्रणाम किया॥१३॥ फिर सब मुनियों ने सबके हृदय में स्थित धनुषबाण लिये ऐसे विष्णुस्वरूप रामचन्द्रजी को आशीर्वाद दिया और हाथ जोड़कर बोले कि॥१४॥ हे राम! तुमने ब्रह्माजी की प्रार्थना से भूमि का भार उतारने के लिये अवतार लिया है परंतु हम जानते हैं कि तुम साक्षात् नारायण हो, जानकीजी लक्ष्मी हैं और लक्ष्मण शेषावतार हैं और भरत शत्रुघ्न दोनों तुम्हारे शंख चक्र का अवतार हैं। इसलिये आप पहिले ऋषियों के दुःख को दूर करिये॥१५॥१६॥ और हे राम! अब तुम सीता लक्ष्मणसहित मुनियों के रहने के सब वनों को क्रम क्रम से देखने के लिये हमारे साथ चलो, इससे तुम्हारी दया हमारें ऊपर अधिक बढ़ेगी॥१७॥ इस प्रकार जब सबने हाथ जोड़कर भगवान् रामचन्द्रजी से प्रार्थना की तब वह मुनियों के साथ वन देखने के लिये गये॥१८॥ फिर रामजी ने वहां चारों ओर मनुष्यों की अनेक सूखी खोपड़ियां पड़ी हुई देखी और मुनियों से पूछा कि॥१९॥ हे मुनियो! ये किसके हाडों की ढेरिया हैं और क्यों पड़ी है? मुनियों ने

उनसे कहा कि हे राम! ये मुनियों की खोपड़ियां है और इनके पड़ने का यह कारण है कि॥२०॥ जो ऋषिलोग अपनी समाधि को त्यागकर विषयों में मतवाले हुए उनको राक्षसों ने खा लिया, उन्हीं के हाड़ों की ये ढेरिया हैं क्योंकि राक्षस मुनियों के दोषों को देखते हुए फिरा करते हैं॥२१॥

श्रुत्वावाक्यंमुनीनांसभयदैन्यसमन्वितम् ॥ प्रतिज्ञामकरोद्रामोवधायाशेषरक्षसाम् ॥२२॥ पूज्यमानः सदातत्रमुनिभिर्वनवासिभिः ॥ जानक्यासहितोरामोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥२३॥ उवासकतिचित्तत्रवर्षाणि-रघुनन्दनः ॥ एवंक्रमेणसंपश्यनृषीणामाश्रमान्विभु ॥२४॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमंप्रागात्प्रख्यातमृषिसंकुलम् ॥ सर्वर्तुगुणसंपन्नंसर्वकालसुखावहम् ॥२५॥ राममागतमाकर्ण्यसुतीक्ष्णः स्वयमागतः ॥ अगस्त्यशिष्योरामस्य-मन्त्रोपासनतत्परः ॥ विधिवत्पूजयामासभक्त्युत्कण्ठितलोचनः ॥२६॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेयसीतापतेशिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे ॥ संसारसिन्धुतरणामलपोतपादरामा-भिरामसततंतवदासदासः ॥२७॥

इस प्रकार मुनियों के भय और दीनता भरे वचनों को सुनकर रामजी ने सब राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा की॥२२॥ वन के निवासी सब मुनिजन भगवान् का सदा आदर सत्कार करने लगे और जानकी लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजी वहां कुछ वर्ष रहे और इस प्रकार क्रम से भगवान् ऋषियों के आश्रमों को देखते हुए॥२३॥२४॥ सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचे कि जो अनेक ऋषियों के वहां रहने से विख्यात है। वहां सब ऋतुओं में फल फूल फूलते फलते हैं और सब काल में सुख मिलता है॥२५॥ अगस्त्य के शिष्य और राममंत्र के उपासक सुतीक्ष्ण ने रामजी का आगमन सुना तो स्वयं उनको आगे से लिवाने आये और विधिपूर्वक उनकी पूजा करी और भक्ति के कारण यही उत्कंठा रही कि अपने नेत्रों से भगवान् के दर्शन ही करता रहूं॥२६॥ सुतीक्ष्ण बोले कि हे राम! हे सीतापते! मैं तुम्हारे मंत्र का जप किया करता हूं, तुम्हारे अनंत गुण हैं, तुम्हारे स्वरूप का पार नहीं। शिव और ब्रह्मा भी तुम्हारे चरणों के आश्रय हैं। संसाररूपी समुद्र के तरने के लिये तुम्हारे चरण सुन्दर नौका हैं, तुम भक्तों को आनन्द देनेवाले हो, ऐसे आपके दासों का मैं सदा दास हूं॥२७॥

समाद्यसर्वजगतामविगोचरस्त्वंत्वन्माययासुतकलत्रगृहान्धकूपे ॥ मग्नंनिरीक्ष्यमलपुद्गलपिण्डमोहपाशानु-
बद्धहृदयंस्वयमागतोऽसि ॥२८॥ त्वंसर्वभूतहृदयेषुकृतालयोऽपित्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषुतनोषिमायाम् ॥
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयातिमायासेवानुरूपफलदोऽसियथामहीपः ॥२९॥ विश्वस्यसृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेक
स्त्वंमायया त्रिगुणयाविधिरीशविष्णू ॥भासीशमोहितधियांविविधाकृतिस्त्वंयद्वद्रविः सलिलपात्रगतोह्यनेकः
॥३०॥ प्रत्यक्षतोऽद्यभवतश्चरणारविन्दंपश्यामिरामतमसः परतः स्थितस्य।।दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि
त्वन्मंत्रपूतहृदयेषुसदाप्रसन्नः ॥३१॥ पश्यामिरामतवरूपमरूपिणोऽपिमायाविडम्बनकृतंसुमनुष्यवेषम् ॥
कंदर्पकोटिसुभगंकमीनयचापबाणंदयार्द्रहृदयंस्मितचारुवक्त्रम् ॥३२॥

तुम सब जगत् के अगोचर हो अर्थात् किसी को प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते तो भी तुम्हारी माया से शरीर में मोहरूपी डोरी से जिसका हृदय बंध रहा है और जो पुत्र कलत्र गृहरूपी अंधे कुएं में डूब रहा है ऐसे मुझे देखकर मेरे उद्धार के लिये आज तुम स्वयं दर्शन देने आये हो।।२८।। तुम सब जीवों के हृदय में निवास करते हो परंतु जो तुम्हारे रागमंत्र का जप नहीं करते हैं उन पर तुम अपनी माया का जाल फैलाते हो और जो तुम्हारे मंत्र के साधन में लगे रहते हैं उनसे तुम्हारी माया दूर भागती है सो जैसे राजा अपने सेवकों को काम के अनुसार वेतन देता है ऐसे ही तुम अपने भक्तों को उनकी सेवा के अनुसार फल देते हो।।२९।। हे राम! एक तुम ही इस विश्व के उत्पन्न पालन और नाश के कारण हो परंतु हे राम! जिनकी बुद्धि तुम्हारी माया से मोहित हो रही है उनकी तुम अपनी त्रिगुणमयी माया से ब्रह्मा विष्णु महेश के अनेक रूप से अलग अलग भासते हो कि जैसे सूर्य जल के भरे पात्रों में अनेक रूप से चमकता है।।३०।। हे राम! आज मैं अविद्या से परे स्थित आपके चरणकमलों का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूं। तुम अभक्त पुरुषों की दृष्टि से अगोचर भी हो अर्थात् उनको नहीं दीख पड़ते हो तो भी तुम्हारे मंत्र से जिनका हृदय शुद्ध हो रहा है उन पर तुम सदा प्रसन्न रहते हो अर्थात् उनको दर्शन देते हो।।३१।। हे राम! तुम्हारा रूप नहीं है तो भी करोड़ों कामदेवों से सुन्दर सुन्दर धनुष बाण धारण किये हृदय से दया करनेवाले और मुख से मधुर मधुर मन्द मन्द मुसकुराते हुए ऐसे तुम्हारे मायाकृत मनोहर मनुष्य रूप के दर्शन कर रहा हू।।३२।।

सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्यंसौमित्रिणानियतसेवितपादपद्मम्।। नीलोत्पलद्युतिमनन्तगुणंप्रशान्तंतद्भागधेयम-निशंप्रणमामिरामम्।।३३।।जानन्तुरामतवरूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितंघनचित्प्रकाशम् ।। यक्षतोऽद्यममगो-चरमेतदेवरूपं विभातुहृदयेनपरंविकाङ्क्षे ।।३४।। इत्येवंस्तुवतस्तस्यरामः सस्मितमब्रवीत् ।। मुनेजानामिते चित्तंनिर्मलंमदुपासनात् ।।३५।। अतोऽहमागतोद्रष्टुंमद्दतेनान्यसाधनम् ।। मन्मन्त्रोपासकालोकेमामेवशरणंग-ताः ।।३६।। निरपेक्षानान्यगतास्तेषांदृश्योऽहमन्वहम् ।। स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तुत्वत्कृतंमत्प्रियंसदा ।।३७।। सद्भक्तिर्मेभवेत्तस्यज्ञानंचविमलंभवेत् ।। त्वंममोपासनादेवविमुक्तोऽसीहसर्वतः ।।३८।। देहान्तेममसायुज्यं लप्स्यसेनात्रसंशयः ।। गुरुंतेद्रष्टुमिच्छामिह्यगस्त्यंमुनिनायकम् ।। किंचित्कालंतत्रवस्तुंमनोमेत्वरय-त्यलम् ।।३९।।

हे राम! तुम सीता को साथ लिये मृगछाला धारण किये कोई जिनका तिरस्कार न कर सके, लक्ष्मणजी जिनके नित्य चरणकमल दबाते हैं, नीलकमल समान शरीर की कांतिवाले जिनके अनेक गुण हैं और जो बड़े शांत और साक्षात् मेरे भायस्वरूप ऐसे आप रामचन्द्रजी को मैं सदा प्रणाम करता हूं।।३३।। हे राम! जो कोई तुम्हारे सम्पूर्ण देश काल आदि उपाधियों से रहित और चैतन्यघन ज्योतिस्वरूप को जानते हैं वे उसे भले ही जाने परंतु मुझे तो आज यह प्रत्यक्ष 'श्याम सुन्दर' रूप दिखाई दे रहा है उसी रूप के दर्शन मेरे हृदय में हुआ करे, बस इससे बढ़कर मेरी कोई लालसा नहीं है।।३४।। जब सुतीक्ष्णऋषि ने इस प्रकार स्तुति की तब रामचन्द्रजी ने हँसकर उनसे कहा कि हे मुनिराज! मैं जानता हूं कि मेरी उपासना से तुम्हारा चित्त निर्मल हो गया है।।३५।। और इसीलिये तुम्हें देखने के लिये मैं आया हूं। मेरी भक्ति के सिवाय मुझसे मिलने का और कोई उपाय नहीं है। संसार में जो लोग मेरे मंत्र के उपासक हैं वे ही मेरे शरणागत हैं।।३६।। जिनको किसी बात की चाहना नहीं है और जिनको मुझे छोड़ किसी दूसरे का सहारा नहीं है उनको सदा मेरे दर्शन होते हैं और ज़ो कोई तुम्हारे किये हुए और मेरे प्रिय इस स्तोत्र का सदा पाठ करेगा।।३७।। उसको मेरी सुन्दर भक्ति और निर्मल ज्ञान होगा। और तुम मेरी उपासना से ही संसारी सब बन्धनों से मुक्त हो गये।।३८।। और देहान्त के समय तुम मेरे सायुज्यपद को पाओगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है। अब मैं मुनियों में श्रेष्ठ तुम्हारे गुरु अगस्त्यजी के दर्शन किया चाहता हूं क्योंकि वहां कुछ काल वास करने के लिये मेरा मन हो रहा है।।३९।।

सुतीक्ष्णोऽपितथेत्याहश्वोगमिष्यसिराघव ॥ अहमप्यागमिष्यामिचिराद्दृष्टोमहामुनिः॥४०॥ अथप्रभातेमुनिनासमेतोरामः ससीतः सहलक्ष्मणेन ॥ अगस्त्यसंभाषणलोलमानसः शनैरगस्त्यानुजमन्दिरंययौ ॥४१॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकाण्डे द्वितीय सर्गः ॥२॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अथरामः सुतीक्ष्णेनजानक्यालक्ष्मणेनच ॥ आगस्त्यस्यानुजस्थानंमध्याह्नेसमपद्यत ॥१॥ तेनसंपूजितः सम्यग्भुक्त्वामूलफलादिकम् ॥ परेद्युः प्रातरुत्थायजग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम्॥२॥सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यंनानामृगगणैर्युतम् ॥ पक्षिसङ्घैश्चविविधैर्नादितंनन्दनोपमम् ॥३॥ ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभिः सेवितंमुनिमन्दिरैः ॥ सर्वतोलङ्कृतंसाक्षाद्ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥४॥ बहिरेवाश्रमस्याथस्थित्वारामोऽब्रवीन्मुनिम् ॥ सुतीक्ष्णगच्छ त्वंशीघ्रमागतंमांनिवेदय ॥५॥ अगस्त्यमुनिवर्यायसीतयालक्ष्मणेन ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वासुतीक्ष्णः प्रययौगुरोः ॥६॥ आश्रमंत्वरयातत्रऋषिसङ्घसमावृतम् ॥ उपविष्टंरामभक्तैर्विशेषेणसमायुतम् ॥७॥ व्याख्यातराममन्त्रार्थंशिष्येभ्यश्चातिभक्तितः। दृष्ट्वागस्त्यंमुनिश्रेष्ठंसुतीक्ष्णः प्रययौमुनेः॥८॥दण्डवत्प्रणिपत्याहविनयावनतः सुधीः ॥ रामोदाशरथिर्ब्रह्मन्सीतयालक्ष्मणेनच ॥ आगतोदर्शनार्थंतेबहिस्तिष्ठति साञ्जलिः ॥९॥

सुतीक्ष्ण ने कहा—हे राघव! बहुत अच्छी बात है कल वहां चलना और मैं भी आपके साथ चलूंगा क्योंकि महानुभाव के दर्शन किये मुझे भी बहुत दिन हो गये हैं॥४०॥ भगवान् के मन में अगस्त्यजी से वार्तालाप करने की बड़ी जल्दी पड़ी थी इसलिये वे प्रातःकाल होते ही सीता लक्ष्मण और सुतीक्ष्ण मुनि को साथ लेकर धीरे धीरे पहिले अगस्त्यमुनि के भाई अग्निजिह्व ऋषि के आश्रम को पधारे॥४१॥ इति पण्डितरामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ॥२॥ श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! इसके अनंतर सुतीक्ष्ण जानकी और लक्ष्मणजी के साथ लेकर रामचन्द्रजी दो पहर दिन चढ़े अगस्त्यमुनि के भाई अग्निजिह्व के आश्रम में पहुँचे ॥१॥ वहां अगस्त्यजी के भाई ने उनका बड़ा पूजन सत्कार किया और सबने कंद मूल फल का भोजन किया। फिर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर अगस्त्यजी के आश्रम को बिदा हुए॥२॥ कैसा आश्रम है कि जहां सब ऋतुओं के फल फूल लग रहे हैं, नाना प्रकार के

अनेक जन्तु विचर रहे हैं। भांति भांति के पक्षियों के झुंड चुहचुहा रहे हैं इस प्रकार वह आश्रम दूसरा नन्दनवन हो रहा है।।३।। देवर्षि और ब्रह्मर्षि अपने अपने नित्य कृत्य में लगे हुए हैं और चारों ओर मुनियों के मन्दिरों से वह शोभायमान लग रहा मानो दूसरा साक्षात् ब्रह्मलोक हो।।४।। रामचन्द्र ने आश्रम के बाहर ही खड़े होकर मुनि से कहा–हे सुतीक्ष्ण! तुम शीघ्र जाओ और सीता लक्ष्मणसहित मेरे आने का समाचार मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से निवेदन कर आओ। ''आप की आज्ञा शिर माथे पर'' ऐसा कहकर सुतीक्ष्ण दौड़ते हुए गुरु के आश्रम को गये तो क्या देखते हैं कि वहां बीच में अगस्त्यजी विराजमान हैं और चारों ओर बहुत से रामभक्त ऋषि बैठे हुए हैं।।५—७।। और अगस्त्यजी बड़ी भक्ति से शिष्यों को राममंत्र की व्याख्या सुना रहे हैं। ऐसे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी को देखकर वह ज्ञानी सुतीक्ष्ण उन मुनि के पास गये और साष्टांग प्रणाम करके विनयपूर्वक निवेदन करने लगे कि हे ब्रह्मन्! दशरथपुत्र रामचन्द्र सीता लक्ष्मण को साथ लिये आपके दर्शन के लिये आये हैं और हाथ जोड़ बाहर खड़े हैं।।८।।९।।

अगस्त्य उवाच ।। शीघ्रमानयभद्रंतेराममंममहृदिस्थितम् ।। तमेवध्यायमानोऽहंकाङ्क्षमाणोऽत्रसंस्थितः ।।१० इत्युक्त्वास्वयमुत्थायमुनिभिः सहितोद्रुतम् ।। अभ्ययात्परयाभक्त्यागत्वाराममथाब्रवीत्।।११।।आगच्छराम-भद्रंतेदिष्टचातेऽद्यसमागमः ।। प्रियातिथिर्ममप्राप्तोऽस्यद्यमेसफलंदिनम् ।।१२।। रामोऽपिमुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः ।। सीतयालक्ष्मणेनापिदण्डवत्पतितोभुवि ।।१३।। द्रुतमुत्थाप्यमुनिराड्राममालिङ्ग्य भक्तितः ।। तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः ।।१४।। गृहीत्वाकरमेकेनकरेणरघुनन्दनम् ।। जगामस्वाश्रमंहृष्टोमनसामुनिपुङ्गवः ।।१५।।सुखोपविष्टंसंपूज्यपूजयाबहुविस्तरम्।। भोजयित्वायथान्यायं भोज्यैर्वन्यैरनेकधा ।।१६।। सुखोपविष्टमेकान्तेरामंशशिनिभाननम्।।कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्योभगवानृषिः ।।१७।। त्वदागमनमेवाहंप्रतीक्षन्समवस्थितः ।। यदाक्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणाप्रार्थितः पुरा ।।१८।। भूमेर्भारापनुत्त्यर्थंरावणस्यवधायच ।। तदादिदर्शनकाङ्क्षीतवरामतपश्चरन् ।। वसामिमुनिभिः सार्धंत्वामेव परिचिन्तयन् ।।१९।।

अगस्त्यजी बोले–तेरा भला हो तू उन्हें शीघ्र लिवा ला। रामजी तो मेरे हृदय में स्थित हैं उन्हीं के दर्शन की इच्छा से

उन्हीं का ध्यान करता हुआ मैं यहां रहता हूं।।१०।। यह कहकर स्वयं उठे और मुनियों को साथ लेकर परम भक्ति से शीघ्र गये और जाकर रामचन्द्रजी से बोले।।११।। हे राम! आओ तुम्हारा भला हो। आज प्रारब्ध से तुम्हारा अच्छा समागम हुआ और मेरा आज का दिन सफल हुआ कि आप सरीखे प्रिय अतिथि मेरे यहां पधारे।।१२।। मुनि को आया देखकर रामजी भी बड़े प्रसन्न हुए और सीता लक्ष्मण सहित दंड के समान भूमि पर गिर गये।।१३।। मुनिराज ने शीघ्र उठाकर भक्तिपूर्वक उन्हें छाती से लगा लिया और उनके शरीर के स्पर्श करने से ऐसा आनन्द हुआ कि मुनि के नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लग गई।।१४।। फिर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी अपने एक हाथ से रामजी का हाथ पकड़ कर मन में प्रसन्न होते हुए उन्हें अपने आश्रम पर लिवा लाये।।१५।। फिर जब रामजी सुख से आसन पर बैठे तब अगस्त्यजी ने विधिपूर्वक षोडशोपचार से उनका पूजन सत्कार किया और अनेक प्रकार के भोजन योग्य वन के कंद मूल फलों से उनको भोजन कराके।।१६।। जब चन्द्र की आभा के समान मुखवाले रामचन्द्रजी एकान्त में निचंताई से बैठे तब भगवान् अगस्त्य ऋषि हाथ जोड़कर यह बोले कि।।१७।। हे राम! मैं तुम्हारे आने की राह देखता हुआ इस आश्रम में रहा हूं। (जो आप कहें कि कब से बैठे हो तो) हे राम! पूर्वकाल में जब ब्रह्माजी ने क्षीरसागर में जाकर तुमसे पृथ्वी का भार दूर करने के लिये और रावण के वध के लिये प्रार्थना की थी तब से यहां तुम्हारे दर्शन की इच्छा से और मुनियोंसहित तुम्हारा ही स्मरण करता हुआ तप करता हुआ निवास कर रहा हूं।।१८।।१९।।

सृष्टेः प्रागेकएवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः ।। त्वदाश्रयात्वद्विषयामायातेशक्तिरुच्यते ।।२०।। त्वामेवनिर्गुणं शक्तिरावृणोतियदातदा ।। अव्याकृतमितिप्राहुर्वेदान्तपरिनिष्ठिताः ।।२१।। मूलप्रकृतिरित्येकेप्राहुर्मायेति केचन ।। अविद्यासंसृतिर्बन्धइत्यादिबहुधोच्यते ।।२२।। त्वयासंक्षोभ्यमाणासामहत्तत्त्वंप्रसूयते ।। महत्तत्वादहंकारस्त्वयासंचोदितादभूत् ।।२३।। अहंकारो महत्तत्वंसंवृत्तस्त्रिविधोऽभवत् ।। सात्त्विकोराजस श्चैवतामश्चेतिभण्यते ।।२४।। तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन्भूतान्यतः परम् ।। स्थूला निक्रमशोरामक्रमोत्तर गुणानिह ।।२५।। राजसानीन्द्रियाण्येवसात्विकादेवतामनः ।। तेभ्योऽभवत्सूत्ररूपंलिङ्गंसर्वगतंमहत् ।।२६।। ततोविराट्समुत्पन्नः स्थूलाद्भूतकदम्बकात् ।। विराजःपुरुषात्सर्वंजगतस्थावरजङ्गमम् ।।२७।। देवतिर्यङ्

मनुष्याश्रकालकर्मक्रमेण तु ।। त्वंरजोगुणतोब्रह्माजगतः सर्वकारणम् ।।२८।। सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्यपालकः सद्भिरुच्यते ।। लयेरुद्रस्त्वमेवास्यत्वन्मायागुणभेदतः ।।२९।। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यावृत्तयोबुद्धिजैर्गुणैः ।। तासांविलक्षणोरामस्त्वंसाक्षीचिन्मयोऽव्ययः ।।३०।।

(अब आगे अगस्त्यजी अपने शिष्यों के सामने राममें मनुष्यत्वकी शंका दूर करने के लिये राम के आगे ही राम के स्वरूप का वर्णन करते हैं) हे राम! सृष्टि के पहले निर्विकल्प कहिये प्रपंचरहित और उपाधिरहित एक तुम ही हुए थे और तुम ही जिसका आश्रय हो और तुम ही जिसका विषय अर्थात् रचा हुआ पदार्थ हो, ऐसी माया तुम्हारी शक्ति कही जाती है।।२०।। और तुम्हारे निर्गुण स्वरूप को जब तुम्हारी मायारूप शक्ति ढक लेती है तब निपुण वेदांती उसे अव्याकृत कहते हैं।।२१।। और हे राम! सांख्यमतवाले उसे शक्ति की मूल प्रकृति कहते हैं और कोई आचार्य माया को अविद्या संसृति और बन्ध इत्यादि भिन्न भिन्न नामों से वर्णन करते हैं।।२२।। और वह तुम्हारे द्वारा सत्वादि गुणों के न्यूनाधिक्य भाव को प्राप्त होकर प्रथम महत्तत्व को रचती है फिर तुम्हारी प्रेरणा से ही महत्तत्व से अहंकार होता है।।२३।। और महत्तत्वयुक्त अहंकार तीन प्रकार का कहा गया है, सात्त्विक, राजस और तासम।।२४।। तामस अहंकार से सूक्ष्म भूत उत्पन्न होते हैं इन्हीं को सूक्ष्मतन्मात्रा कहते हैं और हे राम! भूतों से क्रमपूर्वक स्थूल पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं और आगे क्रम क्रम से उनमें एक एक बढ़ता जाता है अर्थात् शब्दतन्मात्रा से उत्पन्न हुआ शब्दसहित स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न हुआ और शब्दस्पर्श सहित रूपतन्मात्रा से तेज उत्पन्न हुआ और शब्द स्पर्श रूप सहित रसतन्मात्रा से जल उत्पन्न हुआ और शब्द, स्पर्श, रूप, रस सहित गन्धतन्मात्रा से पृथ्वी उत्पन्न हुई। और इसी से आकाश का तो एक शब्द ही गुण हुआ और वायु में एक अपना स्पर्शगुण और एक आकाश का शब्द गुण मिलाकर शब्द स्पर्श दो गुण हुए और अग्नि के शब्द, स्पर्श, रूप ये तीन गुण हुए और जल के शब्द, स्पर्श, रूप, रस ये चार गुण हुए और पृथ्वी के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच गुण हुए।।२५।। और हे राम! राज से अहंकार से सब इंद्रिया उत्पन्न हुईं और सात्विक अहंकार से इंद्रियों के देवता और मन ये उत्पन्न हुए और इन सब सूक्ष्म तत्त्वों के समष्टिरूप होने से सब जगत् का आत्मारूप सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ हुआ जो सबमें व्यापक है और महतत्त्व का अभिमानी महान् कहा जाता

है॥२६॥ फिर उस स्थल महाभूतों के समूह से विराट् उत्पंन्न हुआ और विराट् पुरुष से सब स्थावर जङ्गम उत्पन्न हुआ॥२७॥ काल और कर्मों के अनुसार, देव, तिर्यक् और मनुष्य हुए तथा तुम ही रजोगुण से सब जगत् के कारण ब्रह्म हुए॥२८॥ सत्त्वगुण से जब तुम विश्व का पालन करते हो तब महात्मा लोग तुम्हें विष्णु कहते हैं और तमोगुणरूप से प्रलयकाल में रुद्र भी तुम ही हो। तुम्हारी माया के सत्त्व, रज, तम, तीन गुणों के भेद से बुद्धि की जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन प्रकार की अलग अलग वृत्तियां हैं और हे राम! तुम इन तीनों से भिन्न अविनाशी और चिन्मय, साक्षीमात्र हो॥२९॥३०॥

सृष्टिलीलांयदाकर्तुमीहसेरघुनन्दन ॥ अङ्गीकरोषिमायांत्वंतदावैगुणबानिव ॥३१॥ राममायाद्विधाभाति विद्याऽविद्येतितेसदा ॥ प्रवृत्तिमार्गनिरताअविद्यावश वर्तिनः ॥ निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारकाः ॥३२॥ त्वद्भक्तिनिरतायेचतेवैविद्यामयाः स्मृताः ॥ अविद्यावशगायेतुनित्यंसंसारिणश्चते ॥ विद्याभ्यासरता येतुनित्यमुक्तास्तएवहि ॥३३॥ लोकेत्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्चये ॥ विद्याप्रादुर्भवेत्तेषांनेतरेषां कदाचन ॥३४॥ अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्नामुक्ताएवनसंशयः ॥ त्वद्भक्त्यमृतहीनांमोक्षः स्वप्नेऽपिनोभवेत् ॥३५॥ किंरामबहुनोक्तेसारं किंचिद्ब्रह्मवीमिते ॥ साधुसङ्गतिरेवात्रमोक्षहेतुरुदाहृता ॥३६॥ साधवः समचित्तायेनिःस्पृहाविगतैषिणः ॥ दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामनाः ॥३७॥ इष्टप्राप्ति विपत्त्योश्चसमाः सङ्गविवर्जिताः ॥ संन्यस्ताखिलकर्माणः सर्वदाब्रह्मतत्पराः ॥३८॥

और हे रघुनन्दन! जब तुम सृष्टि रचने की इच्छा करते हो तब तुम (गुणरहित होकर भी) गुणवान् की भांति माया को अंगीकार करते हो॥३१॥ और हे राम! तुम्हारी माया सदा दो प्रकार की है, एक विद्या और दूसरी अविद्या। जो प्राणी प्रवृत्तिमार्ग में प्रीति करते हैं वे अविद्या के वश हैं और जो पुरुष निवृत्तिमार्ग में प्रीति करते हैं और वेदान्त शास्त्र के विचार में रहकर॥३२॥ तुम्हारी भक्ति में लगे रहते हैं वे विद्यामय अर्थात् ज्ञानी होते हैं। और जो अविद्या के वश हैं वे सदा संसारी रहते हैं और जो पुरुष विद्या अर्थात् तत्त्वज्ञान के अभ्यास में लगे रहते हैं वे नित्यमुक्त कहाते हैं॥३३॥ और संसार में जो लोग तुम्हारी भक्ति में तत्पर है और तुम्हारे मंत्र के उपासक हैं उनको विद्या आप ही प्रकट होती है।

और दूसरों को कभी नहीं होती।।३४।। इसलिये जो तुम्हारी भक्ति करते हैं वे मुक्त ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है और जो तुम्हारी भक्तरूपी अमृत का पान नहीं करते वे स्वप्न में भी मोक्ष को नहीं पाते हैं।।३५।। और हे राम! बहुत कहने से क्या है, मैं तुमसे थोड़ा सा सार कहे देता हूं कि ऐसे कहा गया है कि साधुओंके सत्संग से ही मोक्ष होता है।।३६।। और साधु वे हैं कि जो समामचित्त हैं अर्थात् शत्रु से वैर और मित्र से प्रीति नहीं करते और जिनको किसी बात की इच्छा नहीं और जिनकी विषयवासना दूर हो गई है और जो जितेन्द्री और विशेष करके शांत है अर्थात् जिन्होंने अपने मन को अत्यंत वश में कर लिया है और जो तुम्हारे भक्त हैं और जिन्होंने सब कामनाएं त्याग दी है।।३७।। जो प्रिय वस्तु के मिलने में और आपत्ति में समान रहते हैं अर्थात् जिनको हर्ष विषाद नहीं होता और जो संग अर्थात् विषयादि से रहित है और सब कर्मों को त्यागकर सदा ब्रह्मविचार में रहते हैं।।३८।।

यमादिगुणसम्पन्नाः संतुष्टायेनकेचित् ।। सत्सङ्गमोभवेद्यर्हित्वत्कथाश्रवणेरतिः ।।३९।। समुदेतिततोभक्ति स्त्वयिरामसनातने ।। त्वद्भक्तावुपन्नायां विज्ञानंविपुलंस्फुटम् ।।४०।। उदेतिमुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः ।। तस्माद्राघवसद्भक्तित्वयिमेप्रेमलक्षण ।।४१।। सदाभूयाद्धरेसङ्गस्त्वद्भक्तेषुविशेषतः ।। अद्यमेसफलंजन्मभ वत्संदर्शनादभूत् ।।४२।। अद्यमेक्रतवः सर्वेबभूवुः सफला प्रभो ।। दीर्घकालंमयातप्तमनन्यमतिनातपः ।।

---

* दृष्टांत—एक धनी ब्राह्मण भगवान् के बड़े भक्त थे और भोले भी बड़े थे। लोगों ने धोखा देकर और कुछ धन लेकर उनका ब्याह एक भंगन की लड़की से करा दिया। एक दिन वह लड़की खिडकी में बैठी बैठी बाहर को झांक रही थी अचानक उसके देश के कुछ लोग वहां से होकर निकले और बोले—क्यों री नत्थन की बेटी! तू यहां कहां से आई? फिर लोगों ने पूछा कि तुम इसे क्या जानो वे बोले यह तो हमारे गाँव की जाई जनमी हमारे सामने छोटी से बड़ी हुई और हमारे नत्थनभगी की बेटी है। यह सुन वह भक्त धनी ब्राह्मण बड़े घबराये। पण्डितों से इसका प्रायश्चित् पूछा तो उन्होंने कहा कि सूखे पीपल की खखोल में बैठकर जलो तो प्रायश्चित् दूर हो। ब्राह्मणदेवता ने वैसा ही किया और माला जपते रहे, लोगों ने पीपल में आग लगा दी। जब सब पीपल की लकड़ी जलकर भस्म हो गई और ब्राह्मण ज्यों के त्यों बैठे माला फेरते रहे तब सबने उनको प्रणाम किया और कहा उठो प्रायश्चित् हो चुका। ब्राह्मण ने कहा—इस भंगन का क्या करें? लोगो ने कहा कि भंगियों को दे दो। फिर भंगियो से कहा कि इसको ले लो। उन्होंने कहा यह ब्राह्मण के घर में रही। हमारे किस काम की है फिर लोगों ने कहा तुम ही रहने दो, अलग बाहर कोठरी में पड़ी रहेगी, दूर से रोटी दे दिया करना। ब्राह्मण ने कहा जो आज्ञा। थोड़े दिन में वह चांडाली मर गई। उस ब्राह्मण ने चांडालों से कहा इसे उठाओ। चांडालों ने कहा कि जो हम इस उठावेंगे तो हमें बिरादरी में रोटी देनी पड़ेगी। सो हम इसे नहीं उठावेंगे, तुम ही उठाओ। इसी सोच विचार में संध्या हो गई फिर अंत में ब्राह्मण ही उसे उठाने गये और वहां उसका वस्त्र उघाड़कर देखा तो उसके पास बहुत से फूल पड़े हैं और भगवान् के पार्षदों के चिह्न हो रहे हैं और न वहां कोई चांडाली का मृतक शरीर है। वह तो सदेह परम धाम को चली गई। सत्संग का ऐसा प्रभाव होता है।

तस्येहतपसोरामफलंतवयदर्चनम् ।।४३।। सदामेसीतयासार्धंहृदमेवसराघव ।। गच्छतस्तिष्ठतोवापिस्मृतिः स्यान्मेसदात्वयि ।।४४।। इतिस्तु त्वारमानाथमगस्त्योमुनिसत्तमः ।। ददौचापंमहेन्द्रेणरामार्थेस्थापितंपुरा ।।४५।। अक्षय्यौबाणतूणीरौखड्गोरत्नविभूषितः ।। जहिराघवभूभारभूतंराक्षसमण्डलम्।।४६।। यदर्थमवतीर्णोऽसिमाययामनुजाकृतिः ।। इतोयोजनयुग्मेतुपुण्यकाननमंडितः ।।४७।। अस्ति पञ्चवटीनाम्नाआश्रमो गौतमीतटे ।। नेतव्यस्तत्रतेकालः शेषोरघुकुलोद्वह ।।४८।। तत्रैवबहुकार्याणिदेवानांकुरुसत्पते ।।४९।। श्रुत्वातदागस्त्यसुभाषितंवचःस्तोत्रंचतत्त्वार्थसमन्वितंविभुः।। मुनिंसमाभाष्यमुदान्वितोययौप्रदर्शितंमार्गमशेषविद्धरिः ।।५०।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेशसंवादे आरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ।।३।।

जो यम, नियम आदि गुणों से युक्त हैं और जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष* करते हैं हे राम! ऐसे साधुओं का जब कभी सत्संग हो जाता है तब तुम्हारी कथा सुनने में प्राणियों की प्रीति होती है।।३९।। हे राम! फिर उससे सनातनस्वरूप आप में भक्ति उत्पन्न होती है और तुम्हारी भक्ति उत्पन्न होते ही फिर प्राणी को निर्मल तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। बड़े बड़े महात्माओं ने मुक्ति के इसी मार्ग को माना है इसलिये हे राघव! तुममें मेरी सदा प्रेमलक्षणा भक्ति होय।।४०।।४१।। और हे राम! सदा तुम्हारे भक्तों में ही विशेष कर मेरा सत्संग हो। आज तुम्हारे दर्शन से मेरा जन्म सफल हुआ।।४२।। और हे प्रभो! आज मेरे सब यज्ञ भी सफल हुए और एकाग्रमन से जो मैंने तुम्हारा प्रत्यक्ष पूजन

---

* दृष्टांत–एक बार राजा युधिष्ठिर ने बड़ा भारी यज्ञ किया और उसमें अपनी सब प्रजो को खूब भोजन कराया। फिर अपने कामदार से पूछा कि सब जीम गये, कोई बाकी तो नहीं रहा? यह सुन दीवान ने कहा पृथ्वीनाथ, सब जीम गये केवल एक लकड़हारा नहीं आया। बहुतेरा बुलाते हैं, पर वह नहीं आता। राजा ने फिर चोबदार को भेजा। उसने जाकर कहा कि भगतजी जीमने चलो। राजा ने बुलाया है। उसने कहा कि भैया मैं गरीब आदमी अपनी झोंपड़ी में पड़ा हूं। अपनी सूखी सड़ी जो भगवान् देता है उसमें मस्त रहता हूं। मुझे राजा के यहां जाने से और पकवान् खाने से क्या मतलब। चोबदार जब नहीं माना और बहुत कहा तब उसने कहा कि अच्छा, राजा से पूछ आ कि पाप का बाप कौन है? वह गया तो राजा ने कहा पाप का बाप लोभ है, उसने आकर लकड़हारे को बताया कि लोभ है तो उसने कहा कि यह पूछ आ कि लोभ का बाप कौन है फिर चोबदार या और राजा से पूछ आकर कहा कि लोभ का बाप त्याग है। उसने कहा ठीक है पर अबकी बार यह पूछकर आ कि त्याग का बाप कौन है? वह फिर गया और पूछ आकर कहा कि त्याग का बाप संतोष है। उसने कहा ठीक है। अब तू राजा से कह दे मेरे पास यह संतोष मौजूद है, मुझे अब कहीं जाने से या कुछ किसी से काम नहीं है, ऐसा कहा कि 'चाह गई चिंता गई' मनुआँ बेपरवाह' जिनको कछू न चाहिये, वे साहतपति साह'।। राजा से कह दे कि आप प्रसन्न रहें। आपने मुझे बुलाया, मैं इससे परम तृप्त हो गया और वहां नहीं आ सकता, क्षमा करिये।

किया।।४३।। हे राघव! तुम सीतासहित सदा मेरे हृदय में वास करो और ऐसा करो कि चलते बैठते सदा मुझे तुम्हारा ही ध्यान रहे।।४४।। इस प्रकार रामजी की स्तुति करके मुनिराज अगस्त्यजी ने उन्हें उस धनुष को अर्पण किया कि जो पूर्वकाल में इन्द्र ने रामजी के लिये ऋषि के पास धर दिया था।।४५।। और बाणों से भरे हुए और जिनमें बाण कभी न घटें ऐसे दो तरकस दिये और एक रत्नजटित खड्ग दिया और कहा कि हे राघव! इनसे तुम पृथ्वी के भाररूपी राक्षसमंडल का नाश करो।।४६।। जिसके लिये तुम माया से मनुष्यरूप अवतार लिया है। यहां से दो योजन अर्थात् आठ कोस पर गौतमीके किनारे पवित्रवन से शोभायमान एक पंचवटी आश्रम है सो हे रामचन्द्र! तुम अपने वनवास का शेष काल वहां व्यतीत करो।।४७।।४८।। और हे महात्माओं वहां ही रहकर तुम देवताओं के बहुत से कार्य सिद्ध करना।।४९।। तदनन्तर सर्वत्र भगवान् अगस्त्यजी के कहे हुए यथार्थ तत्त्व से भरे हुए स्तोत्र को और सुन्दर वचन को सुनकर और मुनिराज से बातचीत करके प्रसन्न होते हुए मार्ग से पंचवटी आश्रम को बिदा हुए।।५०।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांडका तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ।।३।।

श्रीमहादेव उवाच ।। मार्गेव्रजन्ददर्शाथशैलशृङ्गमिवस्थितम्। ।। वृद्धंजटायुषंरामः किमेतदितिविस्मितः ।।१।। धनुरानयसौमित्रेराक्षसोऽयंपुरः स्थितः ।। इत्याहलक्ष्मणंरामोहनिष्याम्यृषिभक्षकम् ।।२।। तत्श्रुत्वारामवचनंगृध्रराड्भयपीडितः।। वधार्होऽहंनतेरामपितुस्तेऽहंप्रियः सखा।।३।। जटायुनार्मभद्रंतेगृध्रोऽहंप्रियकृत्तव ।।४।। पञ्चवट्यामहंवत्स्येतवैवप्रियकाम्यया ।। मृगयायांकदाचित्तुप्रयातेलक्ष्मणेऽपिच।।५।। सीताजनककन्यामेरक्षितव्याप्रयत्नतः ।। श्रुत्वा तद्गृध्रवचनंरामः सस्नेहमब्रवीत् ।।६।। साधुगृध्रमहाराज तथैवकुरुमेप्रियम् ।। अत्रैवमेसमीपस्थोनातिदूरेवनेवसन् ।।७।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके उपरांत रामजी ने पंचवटी को जाते हुए मार्ग में पर्वत के शिखर के समान वृद्ध जटायु को बैठे हुए देखा, उसे देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या है?।।१।। फिर रामजी ने लक्ष्मण से कहा कि हे सुमित्रानन्दन! मेरा धनुष तो लाओ। यह कोई ऋषिभक्षक राक्षस सामने बैठा है, मैं इसे मारे बिना नहीं छोड़ूंगा।।२।। रामजी का यह वचन सुनकर गृध्रराज भय के मारे कांपने लगा और गिड़गिड़ाकर कहनेलगा कि हे राम! मैं तुम्हारे

मारने के योग्य नहीं है क्योंकि मैं तुम्हारे पिता का प्यारा मित्र हूं।।३।। जटायु मेरा नाम है, हे राम! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो तुम्हारा भला करनेवाला हूं।।४।। और तुम्हारे ही प्रिय करने की इच्छा से मैं यहां पंचवटी में पड़ा हुआ हूं। तुम और लक्ष्मणजी जब कभी शिकार खेलने जाया करोगे तो।।५।। जहां तक मुझसे होगा, मैं जनकनन्दिनी सीताजी की रखवाली किया करूंगा। गृध्र के वचन सुनकर राम ने स्नेहपूर्वक गृध्र से कहा कि।।६।। हे गृध्रमहाराज! तुमने अच्छा कहा, इसी पंचवटी में मेरे निवासस्थान से थोड़ी दूर पर बसकर जो कुछ तुमसे मेरा भला किया जाय सो करते रहना।।७।।

इत्यामन्त्रित मालिंग्ययर्यौपञ्चवटींप्रभुः ।। लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयारघुनन्दनः ।।८।। गत्वातेगौतमीतीरं पञ्चवटयांसुविस्तरम् ।। मन्दिरकारयामासलक्ष्मणेन सुबुद्धिना ।।९।। तत्रतेन्यवसन्सर्वेगङ्गायाउत्तरेतटे ।। कदम्बपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ।।१०।। विविक्तेजनसंबाधावर्जिते नीरुजस्थले ।। विनोदयन्जनकजां लक्ष्मणेन विपश्चिता ।।११।। अध्युवाससुखंरामोदेवलोक इवापरः ।। कन्दमूलफलादीनिलक्ष्मणोऽनुदिनंतयोः ।।१२।। आनीयप्रददौरामसेवातत्परमानसः ।। धनुर्बाणधरोनित्यंरात्रौजागर्तिसर्वतः ।।१३।। स्नानंकुर्वन्त्य नुदिनंत्रयस्तेगौतमीजले ।। उभयोर्मध्यगासीताकुरुतेचगमागमौ ।।१४।। आनीयसलिलंनित्यंलक्ष्मणः प्रीतमानसः ।। सेवतेऽहरहः प्रीत्याएवमासन्सुखंत्रयः ।।१५।।

भगवान् रामचन्द्र ने उसे अपना आशय जताया और उसे हृदय से लगाकर आप सीता और भाई लक्ष्मणसहित पंचवटी को विदा हुए।।८।। उन्होने गोदावरी के तीर पर पहुँचकर पंचवटी में बड़े बुद्धिमान् लक्ष्मणजी के द्वारा एक अच्छे विस्तार की पर्णकुटी बनवाई।।९।। और वहां वे सब गंगा के उत्तर तट पर रहने लगे। उस पर्णकुटी के चारों ओर कदम्ब कटहर और आम आदि के फलसहित वृक्ष लग रहे हैं।।१०।। उस एकांत स्थान में मनुष्यों की भीड़ भाड़ न होने से वह स्थल रोगरहित था इसलिये बुद्धिमान् लक्ष्मणजी के सहित सीताजी से विनोद करते हुए।।११।। रामचन्द्र वहां ऐसे सुख से रहने लगे मानो दूसरे स्वर्ग में रहते हों, लक्ष्मणजी नित्य कंद मूल फल लाकर उन दोनों को देते हैं और मन लगाकर रामजी की सेवा करते हैं और धनुष धारण कर रात्रि को नित्य भगवान् के चारों ओर पहिरा देते हैं।।१२।।१३।। वे

तीनों जने राम लक्ष्मण सीता गौतमी के जल में नित्य स्नान करते हैं। राम लक्ष्मण जब कहीं जाते आते हैं तो अपने दोनों के बीच में सीताजी को कर लेते हैं।।१४।। लक्ष्मणजी प्रसन्नचित्त से नित्य जल भर लाते हैं और बड़ी प्रीति से रात दिन भगवान् की सेवा करते हैं। इस प्रकार तीनों जने पंचवटी में सुख से रहने लगे।।१५।।

एकदालक्ष्मणोराममेकान्तेसमुपस्थितम् ।। विनयावनतोभूत्वापप्रच्छपरमेश्वरम् ।।१६।। भगवन्श्रोतुमिच्छामिमोक्षस्येकातिकींगतिम् ।। त्वत्तःकमलपत्राक्षसंक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ।।१७।। ज्ञानंविज्ञानसहितंभक्तिवैराग्यबृंहितम् ।। आचक्ष्वमेरघुश्रेष्ठवक्तानान्योऽस्तिभूतले ।।१८।। राम उवाच।। शृणुवक्ष्यामितेवत्सगुह्याद्गुह्यतरंपरम् ।। यद्विज्ञायनेरोजह्यात्सद्योवैकल्पिकंभ्रमम् ।।१९।। आदौमायास्वरूपंतेवक्ष्यामि तदनन्तरम् ।। ज्ञानस्यसाधनं पश्चाज्ज्ञानंविज्ञानसंयुतम् ।।२०।। ज्ञेयंचपरमात्मानंयज्ज्ञात्वामुच्यतेभयात्।। अनात्मनिशरीरादावात्मबुद्धिस्तुयाभवेत् ।।२१।। सैवमायातयैवासौसंसारः परिकल्प्यते ।। रूपेद्वेनिश्चितेपूर्वंमायायाः कुलनन्दन ।।२२।। विक्षेपावरणेतत्रप्रथमंकल्पयेज्जगत् ।। लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तंस्थूलसूक्ष्मविभेदतः ।।२३।।

एक दिन रामजी को एकांत में बैठा देख लक्ष्मणजी ने बड़े विनयपूर्वक परमेश्वर रामचन्द्रजी से पूछा कि।।१६।। हे भगवन्! हे कमलनयन! मैं आपके मोक्ष की यथार्थ गति सुना चाहता हूं सो आप संक्षेप से वर्णन करिये।।१७।। और मुझसे भक्तिवैराग्य से बढ़नेवाले आत्मसाक्षात्कारसहित ज्ञान का वर्णन करिये क्योंकि हे रघुनन्दन! आपके समान वक्ता कोई दूसरा दुनिया भर में नहीं है।।१८।। रामचन्द्र बोले—हे प्यारे लक्ष्मण! सुनो, मैं तुमसे बड़े भारी गुप्त से गुप्त ऐसे ज्ञान को कहता हूं जिसके जानने से मनुष्य शीघ्र ही संसाररूपी भ्रम को तत्काल त्याग देता है।।१९।। प्रथम मैं माया का स्वरूप वर्णन करूंगा। फिर ज्ञान का साधन और फिर आत्मसाक्षात्कारसहित ज्ञान वर्णन करूंगा।२०।। फिर जानने योग्य

राग जैजैवंती—पंचवटी परम कुटी पातसौं छाई । तहां जाय निवास कियौ जानकी रघुराई ।।१।। कंचनकौ मृग निहार बोली मिथिलाकुमारी । याकी मृगछाला प्रभु मेरे मन भाई । पंचवटी० ।।२।। इतनी सुनि धनुष धारि लछिमन रहौ खबरदार, या वन में डोलत बहु निश्चर दुखदाई । पंचवटी० ।।३।।। मारो मृग दूरि जाय कीन्हौं वन यह उपाय, हाहा करि करुणाधुनि सीय को सुनाई। पंचवटी०।। लछमन तहँ जाउ वीर संकट महा परी भीर, वरवस पठये अनंत नाहिना भलाई ।।पंचवटी० ।।५।। लंकपती दाँव पाय जानकी लई चुराइ, सूनों भवन देख राम दारुण विकालाई ।। पंचवटी० ।।६।। पूछत द्रुम लता धाम विरहविकल फिरत राम, अवगति कान्हरे कछु वरनी नहिं जाई ।। पंचवटी० ।।७।।

अ०रा० १६७

परमात्मा को भी कहूंगा कि जिसको जानकर प्राणी संसार के भय कहिये। आवागमन से छूट जाता है। हे लक्ष्मण! शरीर आदि पदार्थ आत्मा से भिन्न और जड़ है उसमें 'मैं हूं', ऐसी आत्मबुद्धि का होना सोई माया है और वही माया इस संसार को रचती है। और हे कुलनन्दन! उस माया के दो रूप निश्चित् किये गये हैं।।२१।।२२।। एक विक्षेप दौर दूसरा आवरण अर्थात् ये दोनों शक्तियां माया में रहती है उनमें सेविक्षेपशक्ति तो स्थूल सूक्ष्मके भेद से महत्त्व को आदि लेकर ब्रह्मापर्यंत जगत् को रचती है।।२३।।

अपरत्वंखिलंज्ञानरूपमावृत्यतिष्ठति ।। माययाकल्पितंविश्वंपरमात्मनिकेवले।।२४।। रज्जौभुजङ्गवद्भ्रान्त्याविचारेनास्तिकिञ्चन ।। श्रूयतेदृश्यतेयद्यत्स्मर्यतेवानरैः सदा ।।२५।। असदेवहितत्सर्वंयथास्वप्नमनोरथौ ।। देहएवहिसंसारवृक्षमूलंदृढंस्मृतम् ।।२६।। तन्मूलः पुत्रदारादिबन्धः किंतेऽन्यथात्मनः।।२७।।देहस्तुस्थूलभूतानांपञ्चतन्मात्रपञ्चकम् ।। अहंकारश्चबुद्धिश्चइन्द्रियाणितथादश ।।२८।। चिदाभासोमनश्चैवमूलप्रकृतिरेवच ।।एतत्क्षेत्रमितिज्ञेयंदेहइत्यभिधीयते ।।२९।। एतैर्विलक्षणोजीवःपरमात्मानिरामयः।।तस्यजीवस्यविज्ञानेसाधनान्यपिमेशृणु ।।३०।। जीवश्चपरमात्माचपर्यायोनात्र भेदधीः ।। मानाभावस्तथादम्भहिंसादिपरिवर्जनम् ।।३१।। पराक्षेपातिसहनंसर्वत्रावक्रतातथा ।। मनोवाक्कायसद्भक्त्यासद्गुरोः परिसेवनम् ।।३२।। बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरतासत्क्रियादिषु ।।मनोवाक्कायदण्डश्चविषयेषुनिरीहता।३३।।निरहंकारताजन्मजराद्यालोचनंतथा असक्तिः स्नेहशून्यत्वंपुत्रदारधनादिषु ।।३४।। इष्टानिष्टागमेनित्यंचित्तस्यसमतातथा ।। मयिसर्वात्मकेरामेह्यनन्यविषयामतिः।।३५।। जनसंबाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम्।। प्राकृतैर्जनसंघैश्चह्यरतिः सर्वदाभवेत् ।।३६।। आत्मज्ञानेसदोद्योगोवेदान्तार्थावलोकनम् ।। उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानंविपरीतैर्विपर्ययः ।।३७।। बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्योविलक्षणः ।। चिदात्माऽहंनित्यशुद्धोबुद्धएवेतिनिश्चयम् ।।३८।। येनज्ञानेनसंवित्ते तज्ज्ञानंनिश्चितंचमे ।। विज्ञानंचतदैवत्साक्षादनुभवेद्यदा ।।३९।। आत्मासर्वत्रपूर्णः स्याच्चिदानन्दात्मकोऽव्ययः ।। बुद्ध्याद्युपाधिरहितः परिणामादिवर्जितः ।।४०।।

आ०का० सर्ग ४

और आवरणशक्ति संपूर्ण ज्ञान रूप को आच्छादन करे रहती है। और वह माया केवल मुझ परमात्मा के ही आधार से

विश्व को रचती है।।२४।। जैसे भ्रांति से रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है (वैसे ही परमात्मा में माया से जगत् कल्पना किया जाता है) परन्तु विचार करने से सर्प आदि कुछ भी नहीं रहता ऐसे ही हे लक्ष्मण! मनुष्य जो कुछ सदा सुनते हैं देखते हैं वा स्मरण करते हैं।।२५।। वह सब सपने के मनोरथों के समान मिथ्या ही है इसलिये शरीर ही संसाररूपी वृक्ष की पक्की जड़ कही गई है।।२६।। और पुत्र स्त्री आदि के बन्धन में भी शरीर ही मूल कारण है शरीर न हो तो आत्मा के पुत्र दारादि कौन होते हैं।।२७।। और वह शरीर दो प्रकार का है एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश इन स्थल महाभूतों से बना हुआ शरीर स्थल है और रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये पांचतन्मात्रा, तथा अहंकार, बुद्धि, और दश इंद्रियां।।२८।। और मन, इन अठारह तत्त्वों का सूक्ष्म देह है और यह चिदाभास है अर्थात् चित्त के सदृश प्रतीत होता है और उसमें बुद्धि के द्वारा मैं स्थूल हूं कृश हूं ऐसा भासता है और मूल प्रकृति ईश्वर का देह है इन सबके समूह को जड़ होने के कारण देह भी कहते हैं और क्षेत्र भी कहते हैं।।२९।। और जीव तो इन तीनों से विलक्षण अर्थात् भिन्न परमात्मा और जन्म आदि छः विकार रहित है। और जीव तथा परमात्मा दोनों का एक ही अर्थ है कुछ भेदभाव नहीं है और दोनों "इस देश में नहीं और इस काल में हैं इस काल में नहीं" ऐसे देश काल के भेद से रहित है और उस जीव के परमात्मा होने में जो साधन हैं उन्हें तुम मुझसे सुनो। दंभ, हिंसा आदि दोषों का त्याग।।३०।।३१।। दूसरे के कठोर वचन को सहना, किसी से कुटिलता न करनी, मन वचन देह और भक्ति से सद्गुरु* का सेवन

---

*दृष्टांत—एक बाबा बगीचे में रहते थे उनके पास एक साहूकार का लड़का आया करता था। बाबा ने कहा तू हमारा चेला हो जा। उसने कहा अच्छा। उसने कहा चेला होने में क्या क्या सामग्री चाहियेगी। बाबा ने कहा तू अपना सब गहना पहिर आ और नारियल पुष्पमाला मिठाई वस्त्र आदि ले आ। उसने कहा अच्छा। सवेरे वह गहना पहिरकर और सब सामग्री लेकर आ गया। फिर बाबा उससे बोले कि सब गहना मुझे उतारकर दे दे। उसने सब दे दिया। फिर बोले-मैं स्नान कर आऊं तू किवार लगाकर भीतर से सांकल लगा ले और भीतर बैठा रहियो-कोई किवाड़ खुलवावै तो खोलिओ मत। मैं आऊं तब खोलिये गोविंद भगवान् भी आकर किवाड़ खुलवावें तो मत खोलिओ-बस उसे कोठरी में बंद करके बाबा सब गहना पाता लेकर चले गये न बाबा आये न किवार खुले वह ३ दिन तक भूखा प्यासा बैठा रहा। फिर भगवान् आये और बोले कि बेटा! किवाड़ खोल। उसने कहा तुम कौन हो? उन्होंने कहा मैं गोविन्द भगवान् हूं। उसने कहा गुरु किवाड़ खोलने के लिये नाहीं कह गये हैं-भगवान् ने बहुतेरा कहा पर उसने न खोले-तब भगवान् उस ठग बाबा के पास पहुँचे और उसे धमकाकर लाये और उससे किवाड़ खुलवाये फिर चेले ने देखा कि एक ओर भगवान् खड़े हैं और एक ओर गुरु खड़े हैं। बनियें के पुत्र ने कहा कि मैं पहिले किसे दंडौत करूं? दोहा-"गुरु गोविंन्द दोनों खड़े, किसके लागूं पांय । बलिहारी गुरु आपनी, जिन सतगुरु दिये दिखाय" फिर भगवान् ने कहा पहिले गुरु को दंडौत कर फिर मुझे करियो-गुरु की कृपा से गोविंद का दर्शन हुआ।

करना।।३२।। बाहर और भीतर से शुद्ध रहना सत्कर्मों में स्थिरता करना अर्थात् ये सत्कर्म हम अवश्य करेंगे, मन में किसी का बुरा न विचारना वाणी से किसी के लिये दुर्वचन न निकालना और हाथ से किसी को न मारना और विषयों में आसक्त न होना।।३३।। अहंकार का त्यागना, जन्म और वृद्धावस्था का विचार करना, संसार से विरक्त होना, पुत्र स्त्री धनादि में स्नेह न करना।।३४।। बुरी भली वस्तु में नित्य समान चित्त रखना और मुझ सर्वात्मा राम में अनन्य भक्ति करना।।३५।। और जहां मनुष्यों की भीड़ भाड़ न हो उस शुद्ध देश में रहना, और संसारी मनुष्यों के समुदाय में सदा प्रीति न करना।।३६।। आत्मज्ञान मे सदा उद्योग करना, वेदान्त के अर्थ का विचार करना, इन साधनों से ज्ञान होता है और इनसे उलटे आचरण करने से संसार होता हैं।।३७।। और हे लक्ष्मण! बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहंकार इनसे भिन्न नित्य शुद्ध बुद्ध चिदात्मा मैं ही हूं ऐसा निश्चय।।३८।। जिस ज्ञान से प्राप्त हो वह ज्ञान है ऐसा मेरा निश्चय है। और जब साक्षात् आत्मस्वरूप का अनुभव हो उसे विज्ञान कहते हैं।।३९।। आत्मा सब जगह पूर्ण है चिदानन्द रूप से व्याप्त और नाशरहित है बुद्धि आदि उपाधि से और परिणाम कहिये रूपान्तर आदि विकार से रहित है।।४०।।

स्वप्रकाशेनदेहादीन्भासयन्ननपावृतः।। एकएवाद्वितीयश्चसत्यज्ञानादिलक्षणः।४१।। असङ्गः स्वप्रभोद्रष्टाविज्ञानेनावगम्यते ।। आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञानंयदाभवेत् ।।४२।। आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्यातदैवहि ।। लीयतेकार्यकरणैः सहैवपरमात्मनि ।।४३।। सावस्थामुक्तिरित्युक्ताह्युपचारोऽयमात्मनि ।। इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितंरघुनन्दन ।।४४।। ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितंमेपरात्मनः ।। किंत्वेतद्दुर्लभमन्येमद्भक्तिविमुखात्मनाम् ।।४५।।चक्षुष्मतामपियथारात्रौसम्यङ्नदृश्यते।। पदंदीपसमेतानांदृश्यतेसम्यगेवहि ।।४६।। एवंमद्भक्तियुक्तानामात्मासम्यक्प्रकाशते ।। मद्भक्तेः कारणंकिंचिद्वक्ष्यामिशृणुतत्त्वतः।।४७।। मद्भक्तसङ्गोमत्सेवामद्भक्तानां निरन्तरम् ।। एकादश्युपवासादिममपर्वानुमोदनम् ।।४८।। मत्कथाश्रवणेपाठेव्याख्यानेसर्वदा रतिः ।। मत्पूजापरिनिष्ठाचममनामानुकीर्तनम्।।४९।। एवंसततयुक्तानांभक्तिरव्यभिचारिणी मयिसंजायतेनित्यंततः किमवशिष्यते ।।५०।।

अपने प्रकाश से देहादिकों को प्रकाश करनेवाला है स्वयं आच्छादनरहित है एक है अद्वितीय है और सत्य ज्ञान आदि

लक्षण युक्त है॥४१॥ संगरहित है स्वयं प्रकाश है सबका देनेवाला है और विज्ञान से जाना जाता है आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जब जीव और परमात्मा के एकाकार का ज्ञान हो जाता है। उसी अवस्था में कार्यकारणसहित मूल अविद्या तत्काल ही परमात्मा में लय हो जाती है॥४२॥४३॥ उसी अवस्था को मुक्ति कहते हैं परन्तु आत्मा में यह बात केवल कल्पित मात्र है। हे रघुनन्दन! ज्ञान विज्ञान और वैराग्यसहित परमात्मसंबन्धी यह मोक्ष का स्वरूप मैंने तुमसे कहा है परन्तु मेरी समझ में जो मेरी भक्ति से विमुख हैं उनको यह दुर्लभ है॥४४॥४५॥ जैसे नेत्रवाले पुरुषों को भी रात्रि में अच्छी तरह नहीं सूझ पड़ता जिनके पास दीपक है उनको स्थान वा चिह्नादि सब भली भांति दीखता है॥४६॥ ऐसे ही मेरी भक्ति करनेवालों को आत्मस्वरूप की अच्छे प्रकार से प्रतीति होती है इसलिये अपनी भक्ति का और भी थोड़ा सा कारण तुमसे तत्व तत्व कहूंगा तुम सुनो॥४७॥ मेरे भक्तों का संग, मेरी सेवा और मेरे भक्तों की सदा सेवा एकादशी का उपवास आदि और मेरे जन्मदिन का उत्सव ॥४८॥ मेरी कथा सुनने में पाठ करने में और सुनाने में सदा प्रीति होना मेरी पूजा में तत्पर होना और मेरे नाम का कीर्तन करना॥४९॥ इस प्रकार निरन्तर जो इन साधनों को करते हैं उनको सदा मेरी अटल प्रेमलक्षणा भक्ति होती है फिर होने को क्या बाकी रहा॥५०॥

अतोमद्भक्तियुक्तस्यज्ञानंविज्ञानमेवच ॥ वैराग्यंभवेच्छीघ्रंततोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥५१॥ कथितंसर्वमेतत्तेतव प्रश्नानुसारतः ॥ अस्मिन्मनः समाधाययस्तिष्ठेत्सतुमुक्तिभाक् ॥५२॥ नवक्तव्यमिदंयत्नान्मद्भक्तिविमुखा यहि ॥ मद्भक्तायप्रदातव्यमाहूयापिप्रयत्नतः ॥५३॥ यदिदंतुपठेन्नित्यंश्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥ अज्ञानपटलध्वा न्तंविधूयपरिमुच्यते ॥५४॥ भक्तानांममयोगिनांसुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनांमत्सेवाभिरतात्मनांचविमल ज्ञानात्मनांसर्वदा ॥ सङ्गंयः कुरुतेसदोद्यतमतिः सत्सेवनानन्यधीर्मोक्षस्तस्यकरेस्थितोऽहमनिशंदृश्यो भवेनान्यथा ॥५५॥ श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकांडे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

इसलिये मेरी भक्ति करनेवाले को ज्ञान विज्ञान और वैराग्य शीघ्र होते हैं और फिर वह मुक्ति पाता है॥५१॥ हे लक्ष्मण! मैंने तुम्हारे प्रश्न के अनुसार यह सब तुमसे कहा है। जो कोई मेरे कहे हुए इस ज्ञान में मन लगावेगा वह मुक्ति का भागी होगा॥५२॥ जो मेरी भक्ति के विमुख हैं उनसे निश्चय करके इसे कदापि न कहना चाहिये और जो मेरा भक्त

होय उसे यत्नपूर्वक बुलाकर भी देना चाहिये॥५३॥ जो कोई श्रद्धा भक्ति से इसका नित्य पाठ करेगा वह अपने अज्ञानसमूहरूपी अन्धकार को दूर करके मुक्ति पावेगा॥५४॥ हे लक्ष्मण! मेरे भक्त योगी निर्मल हृदय शांत चित्त मेरी सेवा में प्रीतिपूर्वक मन लगानेवाला और विमल ज्ञानस्वरूप होते हैं इसलिये जो पुरुष उनकी संगति करता है, जो एकाग्रबुद्धि से उन सज्जनों की सेवा करता है और जो ज्ञान की प्राप्ति के लिये बुद्धि से उद्योग करता है ऐसे मनुष्य के हाथ में मोक्ष है और वही सदा मेरा दर्शन पा सकता है और उपाय से न तो मोक्ष होता है और न मेरे दर्शन होते हैं॥५ इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ॥४॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ तस्मिन्कालेमहारण्ये राक्षसीकामरूपिणी ॥ विचचारमहासत्त्वाजनस्थाननिवासिनी ॥१॥ एकदागौतमीतीरेपंचवट्याः समीपतः ॥ पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानिपदानि जगतीपतेः ॥२॥ दृष्ट्वाकामपरीतात्मापादसौन्दर्यमोहिता ॥ पश्यन्तीसाशनैरायाद्राघवस्यनिवेशनम् ॥३॥ तत्रसातंरमानाथं सीतयासहसंस्थितम् ॥ कन्दर्पसदृशंरामंदृष्ट्वाकामविमोहिता ॥४॥ राक्षसीराघवंप्राहकस्यत्वंकः किमाश्रमे ॥ युक्तोजटावल्कलाद्यैः साध्यं किंतेऽत्रमेवद ॥५॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकामरूपिणी ॥ भगिनीराक्षसेन्द्रस्यरावणस्यमहात्मनः ॥६॥ खरेणसहिताभ्रात्रावसाम्यत्रैवकानने ॥ राज्ञादत्तंचमेसर्वंमुनिभक्षावसाम्यहम् ॥७॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिवदमेवदतांवर ॥ तामाहरामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः ॥८॥ एषामेसुन्दरी भार्यासीताजनकनन्दिनी ॥ सतुभ्राताकनीयान्मेलक्ष्मणोऽतीवसुन्दरः ॥९॥ किंकृत्यंतेमयाब्रूहिकार्यंभुवनसुन्दरि ॥ इतिरामवचः श्रुत्वाकामार्तासाऽब्रवीदिदम् ॥१०॥ एहिराममयासार्धंरमस्वगिरिकानने ॥ कामर्ताहंनशक्नोमित्यक्तुंत्वांकमलेक्षणम् ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! उस समय पंचवटी के घोर वन में जनस्थान के रहनेवाली बड़ी पराक्रमी और अपनी इच्छा से चाहें जैसा रूप धर लेनेवाली एक राक्षसी फिरा करती थी॥१॥ एक दिन वह गोदावरी नदी के किनारे पंचवटी के पास कमल वज्र और अंकुश आदि के चिह्नोंसहित राजा रामचन्द्रजी के चरणों के चिह्न देखकर और उन चरणों की सुन्दरता से मोहित और चित्त में काम से पीडित हो चिह्नों को देखती देखती धीरे धीरे रामचन्द्रजी के आश्रम

में पहुँची ।।२।।३।। उस आश्रम में सीतासहित कामदेव के समान लक्ष्मी के पति उन रामजी को बैठा देखकर वह काम से मतवाली हो गई।।४।। और वह राक्षसी रामजी से बोली कि तुम कौन हो और किसके पुत्र हो और जटा वल्कल धारण कर इस आश्रम में रहने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है सो मुझसे कहो।।५।। और जो मेरी पूछो तो मैं राक्षसी हूं, शूर्पनखा मेरा नाम है। अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर लेती हूं और राक्षसों के राजा महात्मा रावण की नाते में बहन लगती हूं।।६।। और अपने भाई खर के साथ इसी वन में रहती हूं। रावण ने इन सब वन को मुझे दे रखा है सो मुनियों को भक्षण करती हुई यहां रहती हूं।।७।। सो हे मधुरभाषी! मैं तुमको जानना चाहती हूं कि तुम कौन हो? यह सुन रामजी ने कहा कि मेरा नाम राम है और मैं अयोध्या के राजा का पुत्र हूं।।८।। और यह जनकनन्दिनी सीता मेरी सुन्दर धर्मपत्नी है और वह सुन्दरता की खान लक्ष्मण मेरा छोटा भाई है।।९।। हे लोकसुन्दरी! तेरा हमसे क्या प्रयोजन है? रामजी का यह वचन सुनकर वह काम से पीड़ित शूर्पनखा यह बोली कि।।१०।। हे राम! चलो मेरे साथ पर्वत और वन में विहार करो, मैं इस समय काम से मतवाली हो रही हूं सो कमल के से नेत्रवाले तुम्हें छोड़ने में असमर्थ हूं।।११।।

रामःसीतांकटाक्षेणपश्यन्सस्मितमब्रवीत् ।। भार्यामिमैषाकल्याणीविद्यतेह्यनपायिनी ।।१२।। त्वंतुसापत्न्य दुःखेन कथंस्थास्यसिसुन्दरि ।। बहिरास्तेममभ्रातालक्ष्मणोऽतीवसुन्दरः ।।१३।। तवानुरूपोभवितापतिस्तेनै वसंचरः ।। इत्युक्तालक्ष्मणंप्राहपतिर्मेभवसुन्दर ।।१४।। भ्रातुराज्ञांपुरस्कृत्य संगच्छावोऽद्यमाचिरम् ।। इत्याहराक्षसीघोरालक्ष्मणंकाममोहिता ।।१५।। तामाहलक्ष्मणः साध्विदासोऽहंतस्यधीमतः।।दासीभविष्यसि त्वंतुततोदुःखतरंनुकिम्।।१६।।तमेवगच्छभद्रंतेसतुराजाऽखिलेश्वरः।।तच्छ्रुत्वापुनरप्यागाद्राघवंदुष्टमानसा- ।।१७।। क्रोधाद्रामकिमर्थंमांभ्रमयस्यनवस्थित ।। इदानीमेवतांसीतांभक्षयामितवाग्रतः ।।१८।। इत्युक्त्यावि- कटाकारा जानकीमनुधावति । ततो रामाज्ञयाखड्गमादाय परिगृह्यताम् ।।१९।। विच्छेदनासा कर्णौचलक्ष्म- णोऽलघुविक्रमः ।। ततोघोरध्वनिंकृत्वारुधिराक्तवपुर्द्रुतम् ।।२०।। क्रन्दमानापपाताग्रेखरस्य परुषाक्षरा ।। किमेतदितितामाहखरः खरतराक्षरः ।।२१।।

यह सुन रामचद्रजी इशारे से सीता की ओर देखते हुए मुस्कराकर बोले कि हे शूर्पनखा! मेरी तो यह सुलक्षणी और

सुख देनेवाली भार्या विद्यमान है।।१२।। और हे सुन्दरी! तू सौत के दुःख से मारे मेरे साथ कैसे रह सकेगी? इसलिये इस आश्रम के बाहर मेरा भाई लक्ष्मण बैठा है वह बड़ा सुन्दर है।।१३।। उससे तेरा गठ जोड़ा अच्छा मिलेगा। उसी को पति बनाकर विहार कर। जब रघुनाथजी ने यह कहा तब वह लक्ष्मणजी के पास जाकर बोली कि हे सुन्दर! तुम मेरे पति होना स्वीकार करो।।१४।। और अपने भैया की आज्ञा लेकर अभी मेरे संग चलो, देर मत करो। जब कामपीड़ित उस भयंकर राक्षसी ने लक्ष्मणजी से कहा।।१५।। तब लक्ष्मणजी उससे बोले कि हे पतिव्रता! मैं तो उन परम चतुर रामजी का दास हूं, मेरे पास तुझे दासी होकर रहना पड़ेगा और इससे बढ़कर तुझे और क्या दुःख होगा।।१६।। सो तू उन्हीं के पास जा, वहां ही तेरी खूब दाल गलेगी क्योंकि वे सबके स्वामी और राजा हैं। यह सुन वह दुष्टचित्ता फिर रामचन्द्रजी के पास गई।।१७।। और क्रोध कर कहने लगी कि हे राम! तुम्हारी बात का कुछ ठीक नहीं है भला क्यों तुम मुझे बार बार चक्कर लगवा रहे हो। कदाचित् तुम सीता के मारे ऐसा करते हो तो लो मैं अभी तुम्हारे सामने उस सीता को भक्षण कर लेती हूं।।१८।। यह कहकर शूर्पनखा भयंकर रूप धारण कर जानकी के सन्मुख दौड़ी फिर तो रामजी की आज्ञा से महापराक्रमी लक्ष्मणजी ने खड्ग निकाल उससे शूर्पनखा के दोनों कान और नाक काट लिये, इसके उपरांत वह बडा भयंकर दुंद मचाती हुई और शरीर को रुधिर से लपेट तुरंत ।।१९-२०।। रोती पीटती जाकर खर के सामने पछाड़ खाकर गिर पड़ी और कठोर वचन कहकर खर को फटकारने लगी। खर ने चिल्लाकर कहा उससे कहा कि कह तो सही, यह क्या बात है।।२१।।

केनैवंकारितासित्वंमृत्योर्वक्त्रानुवर्तिता ।। वदमेतं विधिष्यामिकालकल्पमपिक्षणात् ।।२२।। तमाहराक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः।।दण्डकंनिर्भयंकुर्वन्नास्तेगोदावरीतटे।।२३।।मामेवंकृतवांस्तस्यभ्रातातेनैवचोदितः ।। यदित्वंकुलजातोऽसिवीरोऽसिजहितौरिपू ।।२४।। तयोस्तुरुधिरंपास्येभक्षयेतौसुदुर्मदौ ।। नोचेत्प्राणान्परित्यज्ययास्यामियमसादनम् ।।२५।। तच्छ्रुत्वात्वरितंप्रागात्खरः क्रोधेनमूर्च्छितः ।। चतुर्दशसहस्राणिरक्षसां भीमकर्मणाम् ।।२६।। चोदयामासरामस्यसमीपंवधकांक्षया ।। खरश्चत्रिशिराश्चैवदूषणश्चैवराक्षसः ।।२७।। सर्वेरामययुः शीघ्रंनानाप्रहरणोद्यताः ।। श्रुत्वाकोलाहलंतेषारामः सौमित्रिमब्रवीत् ।।२८।। श्रूयतेविपुलः

अ०रा० १७४

शब्दोनूनमायान्तिराक्षसाः ।। भविष्यतिमहद्युद्धंनूनमद्यमयासह ।।२९।। सीतांनीत्वागुहांगत्वातत्रतिष्ठमहाबल ।। हन्तुमिच्छाम्यहंसर्वान्राक्षसान्घोररूपिणः ।।३०।। अत्रकिंचिन्नव्यक्तव्यंशापितोऽसिममोपरि ।। तथेतिसीतामादायलक्ष्मणोगह्वरंययौ ।।३१।। रामःपरिकरंबध्वाधनुरादायनिष्ठुरम् ।। तूणीरावक्षयशरौबध्वायत्तोऽभवत्प्रभुः ।।३२।।

किसने तेरे नाक कान काटे हैं? कौनसा है जो मृत्यु के मुख में जाना चाहता है। मुझसे कह तो सही कोई काल के समान ही क्यों न हो, मैं उसे पलभर में मार यमलोक पहुंचाऊंगा।।२२।। राक्षसी ने कहा कि गोदावरी के किनारे सीता लक्ष्मणसहित रामचन्द्र आकर ठहरे हुए हैं और उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि मैं इस दंडकवन को निर्भय कर दूंगा। उनके कहे से उन्हीं के भैया लक्ष्मण ने मेरी यह कुदशा की है सो जो तझे अपने कुल में वीर होने का घमंड हो तो मेरे दोनों शत्रुओं को मार।।२३-२४।। हे भैया! उन दोनों का बड़ा मद चढ़ा है, मैं उन दोनों का रुधिर पीऊंगी और दोनों को भक्षण कर जाऊंगी और जो ऐसा न करूंगी तो प्राणों को त्याग यमपुर को चली जाऊंगी।।२५।। यह सुन खर क्रोध के मारे आगबबूला होकर तुरंत गया और उसने भयंकर तथा लड़ाके चौदह हजार राक्षसों को राम के मारने की इच्छा से उनके पास भेजा और खर दूषण और त्रिशिरा राक्षस भी भांति भांति के हथियार लेकर सब इकट्ठे हो राम के पास पहुँचे। उनका कोलाहल सुनकर रामजी ने लक्ष्मण से कहा कि।।२६-२८।। हे लक्ष्मण! बड़ा भारी कोलाहल सुनाई दे रहा है, हो न हो यह राक्षस आ रहे हैं। तुम निश्चय जानो कि आज उनके साथ मेरा घोर युद्ध होगा।।२९।। सो हे महाबली! तुम सीताजी को लेकर पर्वत की गुफा में जा बैठो क्योंकि मैं इन सब भयंकर राक्षसों को अकेला मारना चाहता हूं।।३०।। इस विषय में कुछ कहना मत, तुम्हें मेरी सौगन्ध है। यह सुन लक्ष्मणजी ने कहा—अच्छा जो आज्ञा और सीताजी को लेकर पर्वत की गुफा में चले गये।।३१।। इतने में भगवान् फेंट बांध के और कठिन धनुष लेकर तरकस और अमोघ बाणों को कस तैयार हो गये।।३२।।

आ०का० सर्ग ५

ततआगत्यरक्षांसिरामस्योपरिचिक्षिपुः ।। आयुधानिविचित्राणिपाषाणान्पादपानपि।।३३।।तानिच्छेदरामोऽपिलीलयातिलशः क्षणात्।। ततोबाणसहस्रेणहत्वातान् सर्वराक्षसान्।।३४।। खरंत्रिशिरसंचैवदूषणंचैवरा-

क्षसम् ।। जघानप्रहरार्धेनसवनिवरघूत्तमः।।३५।। लक्ष्मणोऽपिगुहामध्यात्सीतामादायराघवे ।। समर्प्यराक्षसान्दृष्ट्वाहतान्विस्मयमाययौ ।।३६।।सीतारामंसमालिंग्यप्रसन्नमुखपङ्कजा।। शस्त्रव्रणानिचाङ्गेषुममार्जजनकात्मजा ।।३७।। साऽपिदुद्रावदृष्ट्वातान्हतान्राक्षसपुङ्गवान् ।। लङ्कांगत्वासभामध्येकोशन्तीपादसन्निधौ।।३८ ।। रावणस्यपपातोर्व्यांभगिनीतस्यरक्षसः ।। दृष्ट्वातांरावणः प्राहभगिनीं भयविह्वलाम्।।३९।। उत्तिष्ठोतिष्ठवत्सेत्वंविरूपकरणंतव ।। कृतंशक्रेणवाभद्रेयमेनवरुणेनवा।।४०।।कुबेरेणाथवाब्रूहिभस्मीकुर्याक्षणेनतम् ।। राक्षसीतमुवाचेदंत्वंप्रमत्तोविमूढधीः ।।४१।। पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्रलक्ष्यसे ।। चारचक्षुर्विहीनस्त्वंकथंराजाभविष्यसि ।।४२।।

इतने में राक्षस आकर भांति भांति के शस्त्र पाषाण और वृक्षों को रामजी के ऊपर फेंकने लगे।।३३।। रघुनाथजी ने खेल की तरह एक पल भर में उन सब शस्त्रादिकों के तिल के समान टुकड़े टुकड़े कर डाले और हजारों बाणों की वर्षा कर उन सब राक्षसों को मार अलग किया।।३४।। और रामजी ने खर, त्रिशिरा और दूषण राक्षसों को आधे प्रहर में मार सबको यमपुर भेज दिया।।३५।। फिर लक्ष्मणजी ने भी गुफा में से सीता को लाकर रामजी को सौंप दिया और मरे हुए राक्षसों को देख वे बड़े अचंभे में आये।।३६।। कमल के समान मुख को खिलाये जनकनन्दिनी सीताजी ने रामचंद्र को छाती से लगा लिया और अङ्ग पर लगे हुए शस्त्रों के घाव को अपने सत्य संकल्प से ही भर दिया।।३७।। इधर राक्षस की बहिन वह शूर्पनखा भी मरे हुए राक्षसों के ढेरों को देखकर दौड़ी दोड़ी लंका गई और जाकर सभा के बीच रोती पीटती रावण के पैरों के पास पृथ्वी पर गिर पड़ी। रावण अपनी उस बहन को भय के मारे घबराई हुई देख उससे बोला कि।।३८।।३९।। हे प्यारी! हे कल्याणी! तू उठ बैठ और बैठकर कह कि तेरा यह विरूप इन्द्र ने, यम ने, वरुण ने वा कुबेर ने, किसने किया है। कह तो सही उसे क्षण भर में भस्म कर दूं। यह सुन सूपर्नखा ने उससे कहा कि अरे तेरा क्या पता है, तू भस्म करेगा। तू तो आप ही मतवाला हो रहा है और तेरी मत मारी गई है।।४०–४१।। मदिरा पान कर स्त्रियों के लिये सदा हीजड़े की तरह पड़ा रहता है। राजा के दूत ही नेत्र होते हैं। उनसे वह राज्य की खबर लेता रहता है सो तेरे ऐसे दूतरूपी नेत्र है नहीं। तू राजा कैसे हो सकता है।।४२।।

खरश्चनिहतः संख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥चतुर्दशसहस्राणिराक्षसानांमहात्मनाम्॥४३॥ निहतानिक्षणेनैव-रामेणासुरशत्रुणा। जनस्थानमशेषेणमुनीनांनिर्भयंकृतम् ॥ नजानासिविमूढस्त्वमतएवमयोच्यते ॥४४॥ रावण उवाच ॥ कोवारामः किमर्थंवाकथंतेनासुराहताः ॥ सम्यक्कथयमेतेषांमूलघातंकरोम्यहम् ॥४५॥ शूर्पणखोवाच ॥ जानस्थानादहंयाताकदाचिद्गौतमीतटे ॥ तत्रपञ्चवटीनामपुरा मुनिजनाश्रया ॥४६॥ तत्राश्रमेमयादृष्टोरामोराजीवलोचनः ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्जटावल्कलमण्डितः ॥४७॥ कनीयाननुज-स्तस्यलक्ष्मणोऽपितथाविधः तस्यभार्याविशालाक्षीरूपिणी श्रीरिवापरा ॥४८॥ देवगन्धर्वनागानां मनुष्याणां तथाविधा ॥ नदृष्टानश्रुताराजन्द्योतयन्ती वनंशुभा ॥४९॥ आनेतुमहमुद्युक्तातांभार्यार्थितवानघ ॥ लक्ष्मणोनामतद्भ्राताचिच्छेदममनासिकाम्॥५०॥ कर्णौचनोदितस्तेनरामेणसमहाबलः ॥ ततोऽहमतिदुःखेनरुदतीखरमन्वगाम् ॥५१॥ सोऽपिरामंसमासाद्ययुद्धं राक्षसयूथपैः ॥ ततः क्षणेनरामेणतेनैवबलशालिना ॥५२॥ सर्वेतेनविनष्टावैराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ यदि रामो मनः कुर्यात्त्रैलोक्यं निमिषार्धतः ॥५३॥ भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो ॥ यदिसातव भार्यास्यात्सफलंतवजीवनम् ॥५४॥

खर दूषण और त्रिशिरा ये सबसंग्राममें मारे गये और राक्षसों के शत्रु अकेले राम ने बड़े बड़े वीर चौदह हजार राक्षस एक क्षण भर में मार गिराये और मुनियों का जनस्थान निर्भय कर दिया। तू ऐसा मतवाला हो रहा है कि तुझे इसकी खबर भी नहीं है इसलिये मैंने ही तुझसे कहा है।।४३।।४४।। रावण बोला–राम कौन है और किसलिये और क्यों उसने राक्षसों को मार डाला। यह बात मुझसे समझाकर कहो तो मैं राम आदि सबका जड़ से नाश कर दूं।।४५।। शूर्पनखा ने कहा–एक समय में जनस्थान से गोदावरी के तट पर गई थी, वहां एक पंचवटी नाम आश्रम है, उसमें पहिले बहुत से मुनि रहते थे।।४६।। उसी आश्रम में मैंने कमलनयन, धनुष बाण धारे, जटाजूट बांधे, छाल के वस्त्र पहने, तिस पर भी बड़े सुन्दर ऐसे राम को।।४७।। देखा। उस राम का छोटा भाई लक्ष्मण भी वैसा ही पराक्रमी और सुन्दर है और उस राम की भार्या भी बड़े बड़े नेत्रवाली दूसरी लक्ष्मी के समान रूप की खान है।।४८।। देवता, गंधर्व, नाग और मनुष्य इनमें ऐसी स्वरूपवाली आज तक देखने सुनने में नहीं आई। हे राजन्! वह सुन्दरी अपनी सुन्दरता से वन को प्रकाशित

कर रही है।।४९।। और हे निष्पाप! तेरी रानी बनाने के लिये मैंने उसे लाने की जुगत लगाई थी परंतु उस राम के कहे से उसके भाई बड़े बली लक्ष्मण ने मेरी नाक और दोनो कान काट डाले। फिर मैं बड़े दुःख की मारे रोती पीटती हुई खर के पास गई।।५०।।५१।। और वह सुनते ही झुंड के झुंड राक्षसों को ले राम पर चढ़ गया और उससे संग्राम में भुतेरी ठनाठनी हुई परंतु उस महाबली राम ने बड़े बड़े पराक्रमी और जुझाऊ राक्षसों को एक बात की बात में मार अलग किया और जो राम मन करे तो त्रिलोकी को आधे पल में भस्म कर दे, इसमें सन्देह मत समझियो। मेरे मन में आती है कि उस राम की भार्या तेरी रानी बने। तब तेरा जीवन सफल होय।।५२।।५३।।५४।।

अतो यतस्वराजेन्द्रतथाते वल्लभाभवत् ।। सीताराजीवपत्राक्षीसर्वलोकैकसुन्दरी ।।५५।। साक्षाद्रामस्यपुरतः ।।स्थातुंत्वंनक्षमः प्रभो।। मायया मोहयित्वातुप्राप्स्यसेतारंघूत्तमम् ।।५६।। श्रुत्वातत्सूक्तवाक्यैश्चदानमानादिभिस्तथा ।। आश्वास्यभगिनीं राजाप्रविवेशस्वकंगृहम् ।। तत्रचिन्तापरोभूत्वानिद्रांरात्रौनलब्धवान् ।।५७।। एकेनरामेणकथंमनुष्यमात्रेणनष्टः सबलःखरोमे ।। भ्राताकथंमेबलवीर्यदर्पयुतोविनष्टो बतराघवेण ।।५८।। यद्वानरामोमनुजः परेशोमाहन्तुकामः सबलंबलोघैः ।। संप्रार्थितोऽयंद्रुहिणेनपूर्वंमनुष्यरूपोऽद्यरघोः कुलेऽभूत् ।।५९।। वध्योयदिस्यांपरमात्मनाऽहंवैकुण्ठराज्यंपरिपालयेऽहम् ।। नोचेदिदंराक्षसराज्यमेवभोक्ष्येचिरंरामसमीपतोव्रजामि ।।६०।।

इसलिये हे महाराज! तू ऐसा यत्न कर कि जिसमें वह सीता तेरी रानी बनें क्योंकि वह सीता कमल के समान नेत्रवाली और सब लोकों की सुन्दरी है।।५५।। और हे स्वामी! साक्षात् राम के सामने खड़े होने की तो तेरी भी गूदड़ी नहीं है परन्तु कोई ऐसी माया रच कि जिसको राम को मोहित करके उस सीता को ले आवे।।५६।। यह सुनकर राजा रावण मीठी २ बातों से और दान मान से अपनी बहन सूर्पनखा को भरोसा दे अपने महल में चला गया। परन्तु उसे चिन्ता के मारे नींद नहीं आई और उसने सात पांच कर कोरी रैन गवांई।।५७।। और पड़ा पड़ा विचार करने लगा कि-राम एक साधारण मनुष्य है उस अकेले ने सेना सहित खर को कैसा मारा होगा। मेरे भाई को तो अपने बल वीर्य का बड़ा गर्व था उसे अकेले राम ने मारा यह समझ में नहीं आता।।५८।। अथवा राम मनुष्य नहीं है। हो न हो जो सबका ईश परमात्मा

है उसीने ब्रह्मा की प्रार्थना से बड़े बड़े राक्षसोंसहित मेरे मारने के लिये रघुकुल में मनुष्यरूप धारण कर जन्म लिया है।।५९।। सो जो कदाचित् परमात्मा राम के हाथ से मैं मारा जाऊंगा तो वैकुण्ठ का राज्य भोगूंगा और जो न मारा जाऊंगा तो यह राक्षसराज्य कहां गया है इसको तो बहुत काल तक भोगूंगा ही इसलिये राम के पास जाता हूं।।६०।।

इत्थंविचिंत्याखिलाराक्षसेन्द्रोरामंविदित्वापरमेश्वरंहरिम् ।। विरोधबुद्धचैवहरिंप्रयामिद्रुतंनभक्त्याभगवान्प्रसीदेत् ।।६१।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेआरण्यकाण्डेपञ्चमः सर्गः ।।५।। श्रीमहादेव उवाच ।। विचिन्त्यैवंनिशायांसप्रभातेरथमास्थितः ।। रावणोमन साकार्यमेवंनिश्चित्यबुद्धिमान् ।।१।। ययौमारीचसदनंपरंपारमुदन्वतः ।। मारीचस्तत्रमुनिवज्जटावल्कलधारकः ।।२।। ध्यायन्हृदिपरात्मानंनिर्गुणंगुणभासकम् ।। समाधिविरमेऽपश्यद्रावणंगृहमागतम् ।।३।। द्रुतमुत्थायचालिङ्ग्यपूजयित्वायथाविधि ।। कृतातिथ्यंसुखासीनंमारीचोवाक्यमब्रवीत् ।।४।। समागमनमेतत्तेरथेनैकेनरावण ।। चिन्तापरइवाभासिहृदि कार्यंविचिन्तयन् ।।५।। ब्रूहिमेनहिगोप्यंचेत्करवाणितवप्रियम् ।। न्याय्यंचेद्ब्रूहिराजेन्द्रवृजिनमांस्पृशेन्नहि ।।६।।रावणउवाच।। अस्तिराजादशरथः साकेताधिपतिः किल ।। रामनामासुतस्तस्यज्येष्ठःसत्यपराक्रमः।।७।।

फिर संपूर्ण राक्षसों के स्वामी अपने राम को साक्षात् परमेश्वर विष्णु भगवान् जानकर उसने विचार किया कि विरोध बुद्धि बिना मैं परमेश्वर को नहीं पा सकता क्योंकि भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं होते इसलिये जानेका ही निश्चय किया।।६१।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का पंचम सर्ग समाप्त हुआ।।५।। श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! बुद्धिमान् रावण रात भर इसी सोचा विचारी में रहा कि क्या उपाय करूं फिर अंत में मन में निश्चय किया कि किसी भांति सीता को हरकर लाना चाहिये यह विचार सबेरे रथ में बैठ।।१।। समुद्र के परले पार मारीच के घर गया। मारीच वहां मुनियों के समान जटा बढाये छाल के वस्त्र पहिरे।।२।। अपने हृदय में गुणों का प्रकाश करनेवाले निर्गुण परमात्मा के ध्यान में मगन था समाधि के छूटने पर उसने देखा कि रावण घर पर आया है।।३।। सो शीघ्र

उठकर उससे छाती मिलाकर मिला और विधिपूर्वक उसका पूजन सत्कार किया और जब रावण का अतिथि सत्कार कर चुका और जब वह आसन पर सुख से बैठा तब मारीच यह वचन बोला कि॥४॥ हे रावण! आज तुम्हारे रथ पर अकेले बैठकर आने का क्या कारण है? हृदय में किस काम का विचार कर रहे हो मुझे तो ऐसा समझ पड़ता है कि तुम किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हो॥५॥ और जो वह गुप्त न हो तो मुझसे कहो जहां तक होगा जो तुम चाहते हो मैं करूँगा परंतु हे राजेन्द्र! कार्य धर्म का हो कि जिसके करने से मुझे पाप न हो सो निश्चय करके कहो॥६॥ रावण बोला-अयोध्या का राजा दशरथ है उसके सबसे बड़े पुत्र का नाम राम है वह बड़ा पराक्रमी है॥७॥

विवासयामाससुतंवनंवनजनप्रियम् ॥ भार्ययासहितंभ्रात्रालक्ष्मणेनसमन्वितम् ॥८॥ सआस्तेविपिनेघोरे पञ्चवटयाश्रमेशुभे ॥ तस्यभार्याविशालाक्षीसीतालोकविमोहिनी॥९॥ रामोनिरपराधान्मेराक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ खरंचहत्वाविपिनेसुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥१०॥ भगिन्यामेशूर्पणख्यानिर्दोषायाश्चनासिकाम् ॥ कर्णौचिच्छेददुष्टात्मावनेतिष्ठति निर्भयः ॥११॥ अतस्त्वयासहायेनगत्वातत्प्राणवल्लभाम् ॥ आनयिष्यामि विपिनेरहितेराघवेणताम् ॥१२॥ त्वंतुमायामृगोभूत्वाह्याश्रमादपनेष्यसि ॥ रामंचलक्ष्मणंचैवतदासीतांहरा म्यहम् ॥१३॥ त्वंतुतावत्सहायंमेकृत्वास्थास्यसिपूर्ववत् ॥ इत्येवंभाषमाणंतंरावणंवीक्ष्यविस्मितः ॥१४॥ केनेदमुपदिष्टंतेमूलघातकरंवचः ॥ सएवशत्रुर्वध्यश्चयस्त्वन्नाशंप्रतीक्षते ॥१५॥ रामस्यपौरुषंस्मृत्वाचित्तम द्यापिरावण ॥ बालोऽपिमांकौशिकस्ययज्ञसंरक्षणायसः ॥१६॥ आगतस्त्विषुणैकेनपातयामाससागरे ॥ योजनानांशतंरामस्तदादिभयविह्वलः ॥१७॥ स्मृत्वास्मृत्वातदेवाहंरामंपश्यामिसर्वतः ॥१८॥

पिता ने उस अपने पुत्र को स्त्री और छोटे भाई लक्ष्मण सहित वन में निकाल दिया है उसे वनवासी बड़े प्यारे हैं॥८॥ वह इन दिनों इस भयंकर वन में पंचवटी के सुन्दर आश्रम में रहता है उसकी स्त्री का नाम सीता है जो बड़े बड़े नेत्रवाली और संसार भर को महामोहित करनेवाली है॥९॥ वह राम मेरे निरपराधी भयंकर पराक्रमी राक्षसों को खर को मारकर वन में निर्भय हो सुख से रहता है॥१०॥ और उसने मेरी निर्दोष बहिन शूर्पनखा के नाक कान काट डाले और वन में रहता है उसे मेरा भी भय नहीं है॥११॥ इसलिये हे मारीच! मैं तुम्हारी सहायता से वन में जाकर और

जिस समय राम आश्रम में न होगा उस समय उस प्राण प्यारी को हर लाऊंगा॥१२॥ सो तुम तो माया के मृग बनकर रामलक्ष्मण को आश्रम से बाहर निकाल ले जाना और इस बीच में मैं सीता को ले चंपत बनूंगा॥१३॥ सो तुम मेरी इतनी सहायता करके पहिले की तरह अपने घर आ बैठना उस रावण को इस प्रकार कहते हुए देख वह बड़ा दुःखी हुआ॥१४॥ और मारीच ने उससे कहा कि तुम्हें जड़मूल से नाश करने की यह सलाह किसने दी वही तुम्हारा पक्का शत्रु है सो पहिले उसीको मारकर हाथ साफ करो॥१५॥ हे रावण! रामजी के पुरुषार्थ को स्मरण करके अब तक मेरा जी घबराता है जब राम बालक थे और विश्वामित्रजी की यज्ञ रक्षा के लिये आये थे तब उन्होंने एक ही बाण से मुझे सौ योजन समुद्र में फेंक दिया था तब से लेकर अब तक भय के मारे मेरे छक्के छूट रहे हैं सो जब जब मुझे उस बात की याद आती है तब तब मुझे जहां देखता हूं वहां राम ही खड़े दिखाई देते हैं॥१६॥१७॥१८॥

दण्डकेऽपिपुनरप्यहंवनेपूर्ववरैमनुचिन्तयन्हृदि ॥ तीक्ष्णभृङ्गमृगरूपमेकदामादृशैर्बहु भिरावृतोऽभ्ययाम् ॥१९॥ राघवंजनकजासमन्वितंलक्ष्मणेनसहितंत्वरान्वितः ॥ आगतोऽहमथहन्तुमुद्यतोमांविलोक्यशरमेकमक्षिपत् ॥२०॥ तेनविद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन्राक्षसेन्द्रपतितोऽस्मिसागरे ॥ तत्प्रभृत्यहमिदंसमाश्रितःस्थानमूर्जितमिदंभयार्दितः ॥२१॥ राममेवसततंविभावयेभीतइवभोगराशितः ॥ राजरत्नरमणीरथादिकंश्रोत्रयोर्यदिगतंभयंभवेत् ॥२२॥ रामआगतइहेतिशङ्कयाबाह्यकार्यमपिसर्वमत्यजम् ॥ निद्रयापरिवृतोयदास्वपेराममेवमनसाऽनुचिन्तयन्॥२३॥ स्वप्नदृष्टिगतराघवंतदाबोधितोविगतनिद्रआस्थितः ॥ तद्भवानपिविमुच्यचाग्रहंराघवेप्रतिगृहंप्रयाहिभो ॥२४॥ रक्षराक्षसकुलंचिरागतंतत्स्मृतौसकलमेवनश्यति। तवहितंवदतोममभाषितंपरिगृहाणपरात्मनिराघवे ॥२५॥ त्यजविरोधमतिंभजभक्तितः परमकारुणिकोरघुनन्दनः ॥ अहमशेषमिदंमुनिवाक्यतोऽभृणुवमादियुगेपरमेश्वरः ॥२६॥ ब्रह्मणाऽर्थितउवाचतंहरिः किंतवेप्सितमहंकरवाणितत् ॥ ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचनत्वंप्रयाहिभुविमानुषंवपुः ॥ दशरथात्मजभावमञ्जसा जहिरिपुंदशकन्धरंहरे ॥२७॥

और फिर भी मैं एक समय पहिले वैर को हृदय में याद करके पैने सींगवाले मृग का रूप धारण कर और बहुत से

राक्षसों को अपनासा मृगरूप धराकर संग ले दंडकवन में गया था।।१९।। परन्तु ज्यौं ही मैं सीता लक्ष्मणसहित रामचन्द्र के पास शीघ्र आया और मारने को तैयार हुआ त्यौं ही मुझे देखकर रामने एक बाण छोड़ा।।२०।। हे राक्षसराज! सच मानना वह बाण मेरी छाती में आकर ऐसा लगा कि मैं घूमता हुआ समुद्र में आ गिरा उस दिन से मैं डर के मारे इस स्थान में आ रहा हूं सो यहां किसी का भय नहीं है।।२१।। जिनमें रकार है ऐसे भोगने के पदार्थों से भी भयभीत हो मुझे सदा राम का ही ध्यान लगा रहता है और राजा रत्न रमणी और रथ इन शब्दों में से एक भी कानों में पड़ जाय तो ऐसा भय लगने लगता है कि ।।२२।। कहीं यहां भी राम तो नहीं आ गये और इस शंका के मारे मैंने बाहरी सब काम छोड़ दिया और तो क्या जब निद्रा के वश मन से राम का स्मरण कर सोता हूं।।२३।। स्वप्न में भी राम ही राम देखता हूं और जब जाग जाता हूं तो फिर निद्रा नहीं आती इसलिये हे रावण! तुम अपना भला चाहो तो राम के विषय में आग्रह को छोड़ कर लौट जाओ।।२४।। और राक्षसकुल बहुत दिन से चला आया है इसका पालन करो और जो राम की बुराई की बात मन में लाओगे तो तुम्हारा जड़मूल से सब नाश हो जायगा मैंने जो कुछ कहा है सब तुम्हारे भले के लिये कहा है इसे गांठ बांधो और परमात्मा रामचन्द्र में विरोध बुद्धि को त्याग दो और भक्ति से उनका भजन करो क्योंकि रामचन्द्रजी बड़े दयालु हैं। मैं नारदमुनि से पहिले ही सब कथा सुने बैठा हूं कि सतयुग में ज़ब ब्रह्माजी ने परमेश्वर से प्रार्थना की तब उसे सुन भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा कि तुम्हारा क्या मनोरथ है? जो हो उसे मैं पूरा करूँ ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि हे कमलनयन! तुम पृथ्वी पर मनुष्य शरीर धारण कर दशरथ के यहां पुत्र रूप होकर जन्म लो और हे भगवन्! देवताओं के शत्रु रावण का शीघ्र नाश करो।।२५।।२६।।२७।।

अतोनमानुषोरामःसाक्षान्नारायणोऽव्ययः ।। मायामानुषवेषेणवनंयतोऽतिनिर्भयः ।।२८।। भूभारहरणार्थायगच्छतातगृहंसुखम् ।। श्रुत्वामारीचवचनंरावणः प्रत्यभाषत ।।२९।। परमात्मायदारामः प्रार्थितोब्रह्मणाकिल ।। मांहन्तुंमानुषो भूत्वायत्नादिहसमागतः ।।३०।। करिष्यत्यचिरादेवसत्यसंकल्पईश्वरः ।। अतोऽहंयत्नतः सीतामानेष्याम्येवराघवात्।।३१।। वधेप्राप्तेरणेवीरप्राप्स्यामिपरमंपदम्।। यद्वारामंरणेहत्वासीतांप्राप्स्यामिनिर्भयः ।।३२।। अतोत्तिष्ठ महाभागविचित्रमृगरूपधृक् ।। रामंसलक्ष्मणंशीघ्रमाश्रमादतिदूरतः ।।३३।।

आक्रम्य गच्छ त्वंशीघ्रसुखंतिष्ठ यथापुरा ॥ अतः परंचेद्यत्किंचिद्भाषसे मद्विभीषणम् ॥३४॥ हनिष्याम्यसिनाऽनेनत्वामत्रैवनसंशयः ॥ मारीचस्तद्वचः श्रुत्वास्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ॥३५॥

इसलिये हे रावण! रामचन्द्र मनुष्य नहीं है वे साक्षात् अविनाशी नारायण हैं। माया से मनुष्य रूप धारण कर भूमि का भार उतारने के लिये वन में आये हैं इसलिये उनको किसी का डर नहीं है। सो हे प्यारे! तुम सुखपूर्वक घर को लौट जाओ मारीच का यह वचन सुनकर रावण ने उत्तर दिया कि ॥२८॥२९॥ जो रामचन्द्र परमात्मा हैं और यथार्थ में ब्रह्माजी की प्रार्थना से मनुष्यरूप धारण कर मुझे मारने के लिये इस युक्ति से यहां आये हैं तो॥३०॥ वे शीघ्र ही मेरा वध करेंगे क्योंकि ईश्वर का संकल्प सत्य होता है इसलिये जहां तक मुझसे हो सकेगा राम से सीता को लाये बिना नहीं रहूंगा॥३१॥ और हे वीर! मैं रण में मरकर या तो मोक्ष पाऊंगा अथवा राम को रण में मारकर निर्भय हो सीता को पाऊंगा॥३२॥ इसलिये हे महाभाग! उठ और चित्र विचित्र रूप का धारण करके लक्ष्मणसहित राम को आश्रम से बहुत दूर शीघ्र ले जा और फिर लौटकर पहिले की भांति आनन्द से अपने घर बैठ। और अब आगे जो कुछ भी मेरे डराने की बात कहेगा तो याद रखियो यहां ही तुझे तलवार से मार डालूंगा इसमें सन्देह मत करियो रावण का वचन सुनकर मारीच ने अपने मन में विचारा कि॥३३॥३४॥३५॥

यदिमांराघवोहन्यात्तदामुक्तोभवार्णवात् ॥ मांहन्याद्यदिचेद्दुष्टस्तदामेनिरयोध्रुवम् ॥३६॥ इतिनिश्चित्यमरणंरामादुत्थायवेगतः ॥ अब्रवीद्रावणंराजन्करोम्याज्ञांतवप्रभो ॥३७॥ इत्युक्त्वारथमास्थायगतौरामाश्रमं-प्रति ॥ शुद्धजाम्बूनदप्रख्योमृगोभूद्रौप्यबिन्दुकः ॥३८॥ रत्नशृङ्गोमणिखुरोनीलरत्नविलोचनः ॥ विद्युत्प्रभोविमुग्धास्योविचचारवनान्तरे ॥३९॥ रामाश्रमपदस्यान्तेसीतादृष्टिपथेचरन् ॥४०॥ क्षणंचधाव-त्यवतिष्ठतेक्षणंसमीपमागत्यपुनर्भयावृतः ॥ एवंसमायामृगवेषरूपधृक्चचारसीतांपरिमोहयन्खलः ॥४१॥

राग कान्हरा-बीतो जात जनम छिनही छिन राम भजन कर भाई॥ जम की त्रास निकट नहिं आवै तेरी जुग २ होत बड़ाई ॥१॥ मात पिता दारा सुत बन्धू सब अपने सुख दाई। ता दिन प्रान परैं परवस में कोई न होत सहाई ॥ यह तन मन तेरौ यांही जात जैसे सुपने की नो निधि पाई। लाहाराम भजन विन कान्हर चाल्यौ जनम गँवाई ॥३॥

इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेषष्ठः सर्गः ॥६॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ अथरामोऽपितत्सर्वंज्ञात्वारावणचेष्टितम्॥ उवाचसीतामेकान्तेश्रृणुजानकिमेवचः॥१॥रावणोभिक्षुरूपेणआगमिष्यतितेऽन्तिकम् ॥ त्वंतुच्छायांत्वदाकारांस्थापयित्वोटजेविश॥२॥अग्नावदृश्यरूपेणवर्षंतिष्ठममाज्ञया ॥ रावणस्यवधान्तेमां पूर्ववत्प्राप्स्यसेशुभे॥३॥श्रुत्वारामोदितंवाक्यंसापितत्रतथाकरोत्॥ मायासीतांबहिः स्थाप्यस्वयमन्तर्दधेऽनले ॥४॥ मायासीतातदाऽपश्यन्मृगंमायाविनिर्मितम् ॥ हसन्तीराममभ्येत्यप्रोवाचविनयान्विता ॥५॥ पश्य राममृगंचित्रंकानकंरत्नभूषितम् ॥ विचित्रबिन्दुभिर्युक्तंचरन्तकुमतोभयम् ॥६॥ बद्ध्वादेहिममक्रीडामृगोभवतुसुन्दरः ॥ तथेतिधनुरादाय गच्छन्लक्ष्मणमब्रवीत् ॥७॥ रक्षत्वमतियत्नेनसीतांमत्प्राणवल्लभाम् ॥ मायिनः सन्तिविपिनेराक्षसाघोरदर्शनाः ॥८॥ अतोऽत्रावहितस्साध्वींरक्षसीतामनिन्दिताम् ॥ लक्ष्मणोराममाहेदंदेवायंमृगरूपधृक् ॥ मारीचोऽत्रनसन्देहएवंभूतोमृगः कुतः ॥९॥ श्रीरामउवाच ॥ यदिमारीचएवायंतदाहन्मिनसंशयः ॥ मृगश्चेदानयिष्यामिसीताविश्रामहेतवे ॥१०॥

जो कदाचित् रामचन्द्र मुझे अपने हाथ से मारेंगे तो मैं संसार सागर से छूट जाऊंगा और जो मुझे यह दुष्ट रावण मारेगा को निश्चय करके मुझे नरक होगा॥३६॥ यों राम के हाथ से अपने मरण को निश्चय करके और शीघ्र उठकर रावण से बोला कि हे राजन्! हे प्रभो! मैं तुम्हारी आज्ञा करूंगा॥३७॥ यह कहकर रावण और मारीच दोनों रथ में बैठकर राम के आश्रम को गये और वहां जाकर मारीच मृग बन गया॥ उसकी देह की कांति तपाये हुए सुवर्ण की सी थी और उस पर रूपहरी छीटे बड़ी शोभा दे रहे थे॥३८॥ उसके रत्नों के सींग मणियों के खुर और इन्द्रनील मणि के समान नेत्र थे बिजली के समान कांति और अत्यन्त सुन्दर मुख था इस प्रकार वह वन में फिरने लगा॥३९॥ और राम के स्थान में भी आया और सीताजी के नेत्रों के सामने चरने लगा॥४०॥ कभी क्षण भर दौड़ जाय कभी ठहर जाय कभी क्षण भर में पास आकर फिर डर के मारे छुप जाय इस प्रकार वह दुष्ट मारीच माया से मृग का रूप धरकर सीताजी को लुभाने लगा॥४१॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का छठा सर्ग समाप्त हुआ॥६॥ श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके अनन्तर जब राम ने भी रावण का सब कौतुक जान लिया तब एकांत में सीता से

बोले कि हे जानकी! मेरी एक बात सुनो।।१।। रावण सन्यासी का रूप धरकर तेरे पास आवेगा सो तुम अपने आकार की छाया को पर्ण कुटी में रखकर अग्नि में घुस जाओ कोई देखने न पावे और मेरी आज्ञा से वहां एक वर्ष रहना। हे कल्याणी! रावणवध के पीछे तुम मुझसे पहिले की भांति फिर मिलोगी।।२।।३।। राम के कहे हुए वचन को सुनकर सीता ने भी वैसा ही किया कि माया की सीता को बाहर रखकर स्वयं अग्नि में जा छिपी।।४।। फिर मायारूपी सीता माया के मृग को देखर हंसती हुई राम के पास आकर विनयपूर्वक बोली कि ।।५।। हे राम! देखो यह सोने का चितकबरा मृग रत्नों से भूषित चित्र विचित्र बिन्दुओं से युक्त कैसा निडर होकर चर रहा है।।६।। यह बड़ा सुन्दर है इसे पकड़कर मुझे ला दो मैं इससे खेलकर मन बहलाया करूंगी राम ने कहा अच्छा। और धनुष लेकर चलते समय लक्ष्मणजी से बोले कि हे लक्ष्मण! तुम मेरी प्राण प्यारी सीता की बड़ी सावधानी से रक्षा करते रहना क्योंकि इस वन में बड़े बड़े भयंकर और मायावी राक्षस रहते हैं।।७।।८।। इसलिये सावधान होकर निन्दारहित इस पतिव्रता सीता की रखवाली रखना। लक्ष्मण ने रामजी से कहा कि महाराज! यह मारीच है मृग का रूप बनाकर आया है इसमें कुछ संदेह मत समझना नहीं तो ऐसा मृग कहां धरा है?।।९।। श्रीरामजी बोले-यदि यह मारीच ही है तो इसे निस्सन्देह मारूंगा और जो मृग होगा तो सीता के मन बहलाने के लिये इसे ले आऊंगा।।१०।।

गमिष्यामिमृगंबध्वाह्यानयिष्यामिसत्वरः त्वं प्रयत्नेनसन्तिष्ठसीतासंरक्षणोद्यतः ।।११।। इत्युक्त्वाप्रययौरामोमायामृगमनुद्रुतः ।। मायायदाश्रयालोकमोहिनीजगदाकृतिः ।।१२।। निर्विकारश्चिदात्मापिपूर्णोऽपिमृगमन्वगात् ।। भक्तानुकम्पीभगवानितिसत्यंवचोहरिः ।।१३।। कर्तुंसीताप्रियार्थायजानन्नपिमृगंययौ ।। अन्यथापूर्णकामस्यरामस्यविदितात्मनः ।।१४।। मृगेणवास्त्रियावापिकिंकार्यंपरात्मनः ।कदाचिद्दृश्यतेऽभ्याशेक्षणंधावतिलीयते।।१५।। दृश्यतेचततोदूरादेवंराममपाहरत्।। ततोरामोऽपिविज्ञायराक्षसोऽयमितिस्फुटम् ।।१६।। विव्याधशरमादाय राक्षसंमृगरूपिणम् ।। पपातरुधिराक्तास्योमारीचः पूर्वरूपधृक् ।।१७।। हाहतोऽस्मिमहाबाहोत्राहिलक्ष्मणमांद्रुतम् ।। इत्युक्त्वारामवद्वाचापपातरुधिराशनः ।।१८।। यन्नामाज्ञोऽपिमरणेस्मृत्वातत्साम्यमाप्नुयात् ।। किमुताग्रेहरिंपश्यंस्तेनैवनिहतोऽसुरः ।।१९।।

मैं पकड़ने के लिये जाता हूं और निश्चय रखना में जल्दी आऊंगा तुम सीता की रखवाली में सावधानी से लगे बैठे रहना॥११॥ यह कहकर रामचन्द्रजी माया के मृग के पीछे दौड़ते हुए चले गये। भला जगत् जिसका रूप है और जगत् को मोह करानेवाली माया जिसके आश्रय है वह निर्विकार, चिदात्मा, सर्वव्यापक, रामचन्द्रजी मृग के पीछे दौड़े गये सो विष्णुभगवान् भक्तों के ऊपर दया करनेवाले हैं यह बात सत्य है॥१२॥१३॥ क्योंकि जानबूझकर भी सीता को प्रसन्न करने के लिये माया मृग के पीछे दौड़ते हुए गये नहीं तो राम जो सर्वव्यापक परमात्मा हैं उनको॥१४॥ मृग से वा स्त्री से क्या काम है। वह मृग कभी पास दीखता है, कभी पल भर में भाग जाता है, कभी छिप जाता है॥१५॥ कभी दूर जाकर दिखाई देता है, इस प्रकार छल बल करता हुआ रामजी को दूर ले गया फिर तो जब रामचन्द्र ने जान लिया कि हो न हो यह तो राक्षस ही है॥१६॥ तब तो धनुष बाण चढ़ाकर मृगरूपी राक्षस के ऐसा मारा कि मारीच भैराकर गिर पड़ा और उसके मुख से रुधिर की धारा बह निकली और वह मृग से फिर राक्षस हो गया॥१७॥ और रामकी सी बोली में यह कहकर कि "हे लक्ष्मण! हे महाबाहो! मैं मारा गया मुझे शीघ्र बचाओ" पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके मुख से रुधिर टपकने लगा॥१८॥ महादेवजी पार्वती से कहते हैं कि-मूर्ख मनुष्य भी मरते समय जिस राम के नाम को स्मरण करके राम के ही समान रूप को अर्थात् सायुज्य मुक्ति पाता है। फिर जो राक्षस भगवान् के ही समान उन्हीं का दर्शन करता हुआ उन्हीं से मारा गया यदि वह राम में लीन हो जाय तो क्या आश्चर्य है॥१९॥

तद्देहादुत्थितंतेजः सर्वलोकस्यपश्यतः ॥ राममेवाविशद्देवाविस्मयंपरमंययुः ॥२०॥ किंकर्मकृत्वाकिंप्राप्तः पातकीमुनिहिंसकः ॥ अथवाराघवस्यायंमहिमानात्रसंशयः ॥२१॥ रामबाणेनसंविद्धः पूर्वंराममनुस्मरन् ॥ भयात्सर्वंपरित्यज्यगृहवित्तादिकंचयत् ॥२२॥ हृदिरामंसदाध्यात्वानिर्धूताशेषकल्मषः ॥ अन्तेरामेणनिहतः पश्यन्राममवापसः ॥२३॥ द्विजोवाराक्षसोवाऽपिपापीवाऽधार्मिकोऽपिवा ॥ त्यजन्कलेवरंरामंस्मृत्वायातिप रंपदम् ॥२४॥ इतितेऽन्योन्यमाभाष्यतदेवादिवंययुः ॥ रामस्तच्चिन्तयामासम्रियमाणोऽसुराधमः ॥२५॥ हालक्ष्मणेतिमद्वाक्यमनुकुर्वन्ममारकिम् ॥ श्रुत्वामद्वाक्यसदृशंवाक्यंसीतापिकिंभवेत् ॥२६॥ इतिचिन्ता परीतात्मारामोदूरान्न्यवर्तत ॥ सीतातद्भाषितंश्रुत्वामारीचस्यदुरात्मनः ॥२७॥ भीताऽतिदुःखसंविग्नालक्ष्म

णंत्विदमब्रवीत् ।। गच्छ लक्ष्मणवेगेनभ्रातातेऽसुरपीडितः ।।२८।। हालक्ष्मणेतिवचनंभ्रातुस्तेनशृणोषिकिम् ।। तामाहलक्ष्मणोदेविरामवाक्यंनतद्भवेत् ।।२९।।

इतने में उस मारीच के देह से एक तेज निकला और सब लोक के देखते देखते राम के ही स्वरूप में मिल गया यह देख देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ।।२०।। वे कहने लगे कि-मुनियों को मारनेवाले पातकी मारीच ने क्या तो कर्म किया और क्या फल पाया अथवा राम की महिमा ही निराली है इसमें कुछ संदेह नहीं है।।२१।। पूर्वकाल में जब राम ने इसके बाण मारा था तब से यह भय के मारे घर धन आदि सब त्यागकर राम का ही स्मरण करता रहा और राम का ही हृदय में ध्यान करते करते इसके सब पाप दूर हो गये थे अब अंत में राम के दर्शन हुए और राम ने ही स्वयं मारा इसलिये वह राम में ही मिल गया।।२२।।२३।। ऐसा कहा है कि ब्राह्मण हो वा राक्षस हो पापी हो वा अधार्मिक हो जो कोई राम का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है वह मोक्ष पाता है।।२४।। वे देवता इस प्रकार आपस में संभाषण कर स्वर्ग को गये। अब राम को यह चिंता हुई कि यह नीच राक्षस मरते समय "हा लक्ष्मण" इस प्रकार मेरे बोल के समान बोल बोलकर क्यों मरा। मेरे बोल के समान बोल सुनकर सीता का न जाने क्या हुआ होगा।।२५।।२६।। ऐसे चिन्ता में व्याकुल हो राम तो दूर से लौटे और इधर सीताजी उस दुष्ट मारीच का वचन सुनकर।।२७।। बड़ी डरी और दुःख से व्याकुल हो लक्ष्मणजी से यह बोलीं कि हे लक्ष्मण! तुम शीघ्र जाओ तुम्हारे भाई को किसी असुर ने सताया है।।२८।। और क्या तुमने अपने भाई का "हा लक्ष्मण" यह वचन नहीं सुना। लक्ष्मण ने सीताजी से कहा कि हे रानी! वह राम का बोल नहीं हो सकता।।२९।।

यः कश्चिद्राक्षसोदेविम्रियमाणोऽब्रवीद्वचः ।। रामस्त्रैलोक्यमपियः क्रुद्धोनाशयतिक्षणात् ।।३०।। सकथंदीनवचनंभाषतेऽमरपूजितः ।। क्रुधालक्ष्मणमालोक्यसीताबाष्पविलोचना ।।३१।। प्राहलक्ष्मणदुर्बुद्धेभ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ।। प्रेषितोभरतेनैवरामनाशाभिकाङ्क्षिणा ।।३२।। मांनेतुमागतोऽसित्वंरामनाशउपस्थिते ।। नप्राप्स्यसेत्वंमामद्यपश्यप्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।३३।। नजानातीदृशंरामस्त्वांभार्याहरणोद्यतम् ।। रामादन्यंनस्पृशामित्वांवाभरतमेववा।।३४।। इत्युक्त्वावध्यमानासास्वबाहुभ्यांरुरोदह।। तच्छ्रुत्वालक्ष्मणः

अ०रा० १८७

कर्णौपि धायातीवदुःखितः ॥३५॥ मामेवंभाषसेचण्डिधिक्त्वांनाशमुपैष्यसि ॥ इत्युत्वावनदेवीभ्यः समर्प्यजनकात्मजाम् ॥३६॥ ययौदुःखातिसंविग्नोराममेवशनैः शनैः॥ ततोऽन्तरंसमालोक्यरावणोभिक्षु-वेषधृक् ॥३७॥ सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दण्डकमण्डलुः ॥ सीतातमवलोक्याशुनत्वा सपूज्यभक्तितः॥३८॥ कन्दमूलफलादीनिदत्त्वास्वागतमब्रवीत् ॥ मुनेभुङ्क्ष्वफलादीनिविश्रमस्वयथा सुखम् ॥३९॥

हे देवी! यह तो किसी राक्षस का सा बोल था जो उसने मरते समय बोला होगा यदि राम क्रोध करें तो एक पल भर में त्रिलोकी का नाश कर सकते हैं॥३०॥ वह देवों के देव भला ऐसा दीन वचन क्यों बोलेंगे यह सुन सीताजी ने क्रोध से लक्ष्मणजी की ओर देखा और वह आंखों में आँसू भरकर बोली हे लक्ष्मण! तेरी तो बुद्धि मारी गई है तू भाई की बुराई चीतता है हो न हो भरत ने तुझे राम के मारने की इच्छा से भेजा है॥३१॥३२॥ राम के नाश हो जाने पर तू मुझे लेने आया है सो तू मुझे नहीं ले सकता देख मैं अब ही प्राणों को त्यागे देती हूं॥३३॥ राम तुझे ऐसा नहीं जानते हैं कि तू उनकी स्त्री लेने को तैयार है और मैं तो राम के सिवाय किसी को स्पर्श तक नहीं करूँगी तू होय चाहे भरत हो॥३४॥ यह कहकर वह अपने दोनों हाथों से शरीर को पीटती कूटती रोने लगी यह सुनकर लक्ष्मणजी ने अत्यंत दुःखी हो अपने दोनों कान मूंद लिये॥३५॥ और कहने लगे कि हे चण्डी! तुझे धिक्कार है तू मुझसे ऐसा कहती है सो नाश में मिल जायगी यह कहकर और जानकी को वनदेवियों को सौंपकर॥३६॥ और दुःख से अत्यन्त व्याकुल हो धीरे धीरे राम के पास चले इस अन्तर को देखकर रावण सन्यासी का भेष धर दंड कमण्डल ले सीता के पास पहुँचा। सीताजी ने उसे देखकर तुरन्त प्रणाम किया और भक्ति से पूजन कर॥३७॥३८॥ कन्द मूल फल भेंट किये और बोली कि आपका अच्छा आगमन हुआ और हे मुने! फल आदि भोजन कर आनंद से आराम करो॥३९॥

आ०का० सर्ग ७

इदानिमेवभर्तामेह्यागमिष्यतितेप्रियम् ॥ करिष्यतिविशेषेण तिष्ठत्वंयदिरोचते ॥४०॥ भिक्षुरुवाच ॥ का त्वंकमलपत्राक्षिकोवाभर्तातवानघे ॥ किमर्थमत्रतेवासोवनेराक्षससेविते ॥ ब्रूहिभद्रेततः सर्वंस्ववृत्तान्तं-निवेदये ॥४१॥ सीतोवाच ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान्राजादशरथोमहान् ॥ तस्यज्येष्ठः सुतोरामः सर्वलक्षणलक्षितः ॥४२॥ तस्याहंधर्मतः पत्नीसीताजनकनन्दनी॥ तस्यभ्राताकनीयांश्चलक्ष्मणोभ्रातृवत्सलः

॥४३॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यदण्डकेवस्तुमागतः ॥ चतुर्दशसमास्त्वांतुज्ञातुमिच्छामिमेवद ॥४४॥ भिक्षुरुवाच ॥ पौलस्त्यनयोऽहंतुरावणोराक्षसाधिपः॥त्वत्कामपरितप्तोऽहंत्वांनेतुंपुरमागतः ॥४५॥ मुनिवेषेणरामेणकिं करिष्यसिमांभज ॥ भुङ्क्ष्वभोगान्मयासार्धंत्यजदुःखंवनोद्भवम् ॥४६॥ श्रुत्वातद्वचनंसीताभीताकिंचिद्वाताम् ॥ यदेवंभाषसेमांत्वंनाशमेष्यसिराघवात् ॥४७॥ आगमिष्यतिरामोऽपिक्षणंतिष्ठसहानुजः ॥ मांकोधर्षयितुंशक्तोहरेर्भार्यांशशोयथा ॥४८॥ रामबाणैर्विभिन्नस्त्वंपतिष्यसिमहीतले ॥ इतिसीतावचः श्रुत्वारावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९॥

निश्चय है कि मेरे पति अभी आते होंगे और वह तुम्हारा विशेष आदर सत्कार करेंगे यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ठहरो॥४०॥ सन्यासी बोला-हे कमलपत्रनयनी! तुम कौन हो? और हे निष्पापिनी! तुम्हारा भर्त्ता कौन है? और इन वन में तो राक्षस रहते हैं तुमने यहां आकर किसलिये निवास किया है सो कहो और हे कल्याणी! फिर मैं तुमसे अपना सब हाल कहूंगा॥४१॥ सीता ने कहा-श्रीमान् राजा दशरथ अयोध्या के बड़े भारी राजा थे उनके सबसे बड़े पुत्र राम हैं कि जो सब गुणनिधान हैं॥४२॥ उनकी मैं धर्मपत्नी हूं। सीता मेरा नाम है और मैं राजा जनक की पुत्री हूं। राम के छोटे भाई लक्ष्मण हैं और उनका भाई से बड़ा स्नेह है॥४३॥ रामजी पिता की आज्ञा को सिर पर धरके १४ वर्ष दंडकवन में निवास करने के लिये आये हैं। अब मैं तुम्हें जानना चाहती हूं सो कहो॥४४॥ संन्यासी बोला-मैं पौलस्त्य का पुत्र राक्षसों का राजा रावण हूं तेरे ऊपर काम से मतवाला हो तुझे लंकापुरी ले चलने के लिये आया हूं॥४५॥ राम तो मुनि का भेष बनाये रहते हैं उनके संग रहकर क्या करेगी? मेरे साथ रहकर संसारी भोगों को भोग और वन के दुःख को त्याग दे॥४६॥ उसके वचन सुन सीताजी डरती कांपती उससे बोली कि अरे! जो तू मुझसे यों कहता है तो तू रामचन्द्र के हाथ से अवश्य मारा जायगा॥४७॥ थोड़ी देर ठहर तो सही छोटे भय्यासहित रामजी अभी आते होंगे और देख जैसे सिंह की सिंहिनी के लेने के लिये खरगोश मन चलावे वैसा ही तेरा हाल है परन्तु किसका बूता है कि कोई मेरा सत्त बिगाड़ सके? अरे! राम के बाणों से छार छार होकर तू धरती पर गिरता फिरेगा। सीताजी का यह वचन सुनकर रावण तो क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया॥४८॥४९॥

स्वरूपंदर्शयामास महापर्वतसन्निभम् ।। दशास्यंविंशतिभुजंकालमेघसमद्युति ।।५०।। तद्दृष्ट्वावनदेव्यश्चभूतानिचवितत्रसुः ।। ततोविदार्यधरणींनखैरुद्धृत्य बाहुभिः ।।५१।। तोलयित्वारथेक्षिप्त्वाययौक्षिप्रंविहायसा हारामहालक्ष्मणेतिरुदंतीजनकात्मजा।।५२।। भयोद्विग्नमनादीनापश्यन्तीभुवमेवसा ।। श्रुत्वातत्क्रन्दितंदीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः ।।५३।। जटायुरुत्थितः शीघ्रंनगाग्रात्तीक्ष्णतुण्डकः ।। तिष्ठतिष्ठेतितं प्राहकोगच्छतिममाग्रतः ।।५४।। मुषित्वालोकनाथस्यभार्यांशून्याद्वनालयात् ।। शुनकोमन्त्रपूतंत्वंपुरोडाशमिवाध्वरे ।।५५।। इत्युक्त्वातीक्ष्णतुण्डेनचूर्णयामासतद्रथम् ।। वाहान्बिभेदपादाभ्यांचूर्णमासतद्धनुः ।।५६।। ततः सीतांपरित्यज्यरावणः खड्गमाददे ।। चिच्छेदपक्षौसामर्षः पक्षिराजस्यधीमतः ।।५७।।

और उसने अपने पर्वत के समान दश सिर, और बीस भुजा वाले काले मेघ के समान कांतिमान् स्वरूप को दिखलाया।।५०।। उस रावण के रूप को देखकर वन की देवियां और सब प्राणी डर गये। फिर रावण ने सीता के पैरों के नीचे* की पृथ्वी नखों से खोदकर उन्हें दोनों भुंजाओं से उठा लिया।।५१।। और उनका बोझ अजमाकर और उन्हें रथ पर बैठाकर तुरंत आकाशमार्ग से चल दिया। उस समय सीता हा राम! हा लक्ष्मण! यों कह रोने लगी।।५२।। और वह भय के मारे बड़ी घबराई और दुःखी हो पृथ्वी की ओर देखने लगीं। सीता के उस दीन रुदन को सुनकर पैनी चोंचवाला पक्षिराज जटायु शीघ्र ही चोटी पर से उतरा और उस रावण से कहने लगा कि अरे ठहर तो सही कहां भाग जाता है जैसे कुत्ता मंत्रों से पवित्र यज्ञ के पुरोडाश को चुराकर भागे वैसे ही तू लोक के नाथ राम की धर्मपत्नी को वन के सूने आश्रम से चुराकर मेरे आगे से ले जानेवाला कौन है?।।५३।।५४।।५५।। यह कहकर उसने अपनी पैनी चोंच से उसके रथ का चूर चूर कर दिया और पंजों से घोड़ों को घायल कर उसके धनुष का चूरा चूरा कर डाला।।५६।। फिर तो रावण ने सीता को छोड़ क्रोध से हाथ में खड्ग लिया और चतुर पक्षिराज के दोनों पंख काट अलग किये।।५७।।

---

* रावण ने सीताजी के पैरों के नीचे की मट्टी इसलिये खोदी कि रावण पृथ्वी पर से उन्हें नहीं उठा सकता था इसलिये जब धरती से पैर अलग हुए तब उन्हें उठाया। कारण वह कहते हैं कि सीता पृथ्वी की पुत्री हैं।

पपातकिंचिच्छेषेणप्राणेनभुविपक्षिराट्॥ पुनरन्यरथेनाशु सीतामादायरावणः ॥५८॥ क्रोशन्तीरामरामेतित्रताता-रंनाधिगच्छति ॥ हारामहाजगन्नाथमांनपश्यसिदुःखिताम् ॥५९॥ रक्षसानीयमानांस्वांभार्यांमोचयराघवः ॥ हालक्ष्मणमहाभागत्राहिमामपराधिनीम् ॥६०॥ वाक्शरेणहतस्त्वंमेक्षन्तुमर्हसिदेवर ॥ इत्येवंक्रोशमानां तांरामागमनशंकया ॥६१॥ जगामवायुवेगेनसीतामादायसत्वरः ॥ विहायसानीयमानासीतापश्यदधोमुखी ॥६२॥ पर्वताग्रेस्थितान्पञ्चवानरान्वारिजानना ॥ उत्तरीयार्धखण्डेनविमुच्याभरणादिकम् ॥६३॥ बद्ध्वाचिक्षेपरामायकथयन्त्वितिपर्वते ॥ ततः समुद्रमुल्लंघ्यलंकांगत्वासरावणः ॥६४॥ स्वान्तःपुरेरहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत्॥ राक्षसीभिः परिवृतांमातृबुध्याऽनुपालयत् ॥६५॥

उस समय पक्षिराज तो अचेत धरती पर गिरा और सीता को दूसरे रथ पर बैठाकर तुरंत चल दिया॥५८॥ सीताजी उस समय राम राम कहकर विलाप करने लगी परन्तु कोई रक्षक नहीं मिला फिर कहने लगीं कि हा राम! हा जगन्नाथ! मुझे दुखिया को क्यों नहीं देखते हो॥५९॥ हे राघव! तुम्हारी भार्या को राक्षस हरे लिये जाता है उससे छुड़ाओ। हा महाभाग लक्ष्मण! तुम ही मुझ अपराधिनी की रक्षा करो॥६०॥ और हे देवर! वाणीरूपी बाणों से जो मैंने तुम पर प्रहार किया था अर्थात् तुमसे बुरे बुरे वचन कहे थे सो तुम मुझे क्षमा करो। इस प्रकार जब सीताजी बहुत विलाप करने लगीं तब राम के आ जाने की शंका से सीताजी को उठाकर और वायु के वेग के समान रथ में बैठाकर उन्हें तुरन्त भगा ले गया। आकाश मार्ग से जाते समय सीताजी नीचे मुख किये जा रही थीं सो उन्होंने जब पर्वत के शिखर पर बैठे पांच वानर देखे तब उन्होंने अपनी ओढनी का आधा टुकड़ा फाड़ उसमें कुछ आभूषण आदि बांधकर पर्वत के ऊपर फेंक दिया इसलिये कि वे वानर मेरा समाचार रामचन्द्रजी से कह दें इतनें में रावण समुद्र को लांघ लंका में जा पहुँचा॥६१॥६२॥६३॥६४॥ और सीताजी को अपने महल के भीतर अशोक वाटिका के एकान्त स्थान में ले जाकर रखा और उनके चारों ओर रखवाली के लिये राक्षसियों का पहरा बैठा दिया और माता* के समान उनका पालन करने लगा॥६५॥

---

* रावण सीताजी का माता के समान पालन इसलिये करता रहा कि उसे दूसरे की स्त्री के साथ बल से भोग करने में नलकूबर का शाप था। इसकी कथा यों

कृशाऽतिदीनापरिकर्मवर्जितादुःखेन शुष्यद्वदनाऽतिविह्वला ।। हारामरामेतिविलप्यमानासीतास्थिता राक्षस वृन्दमध्ये ।।६६।। इति श्रीमदमध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकांडेसप्तमः सर्गः ।।७।। श्रीमहादेव उवाच ।। रामोमायाविनंहत्वाराक्षसंकामरूपिणम् ।। प्रतस्थेस्वाश्रमंगन्तुंततोदूराद्दर्शतम् ।।१।। आयान्तंलक्ष्मणंदीनंमुखेनपरिशुष्यता ।। राघवश्चिन्तयामासस्वात्मन्येवमहामतिः ।।२।। लक्ष्मणस्तन्नजानाति मायासीतां मयाकृताम् ।। ज्ञात्वाप्येनंवञ्चयित्वाशोचामिप्राकृतोयथा।।३।।यद्यहंविरतोभूत्वातूष्णींस्थास्यामि मन्दिरे ।। तदाराक्षसकोटीनांवधो पायः कथं भवेत् ।।४।। यदिशोचामितां दुखसन्तप्तः कामुकोयथा ।। तदाक्रमेणानुचिन्वन्सीतांयास्येऽसुरालयम् ।। रावणंसकुलं हत्वा सीतामग्नौस्थितांपुनः ।।५।। मयैवस्थापितां-नीत्वायाताऽयोध्यामतन्दितः ।। अहंमनुष्यभावेनजातोऽस्मिब्रह्मणाऽर्थितः ।।६।।

परंतु वहां सीताजी बड़ी दीन और दुबली हो गई। उबटना लगाकर स्नान बंद हो गया। दुःख के मारे उनका मुख सूख गया और बड़ी व्याकुल हो हा राम! हा राम! विलाप करती हुई राक्षसों के बीच में रहा करी।।६६।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का सातवां सर्ग समाप्त हुआ।।७।। श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जब रामजी उस इच्छारूपधारी और मायावी राक्षस को मारके अपने आश्रम को आ रहे थे तब दूर से ही उन्होंने दीन और अत्यंत उदास मुख किये लक्ष्मणजी को आते देखा। फिर बुद्धिमान् रामजी अपने मन में विचार करने लगे कि।।१–२।। लक्ष्मण तो यह जानता नहीं कि मैं मुख्य सीता को अग्नि को सौंप मायारुपिणी सीता को आश्रम में छोड़ मृग मारने आया हूं। इसलिये मैं जान बूझकर भी उस बात को लक्ष्मण से छिपाकर उसके सामने इस प्रकार शोक करूं कि जैसे साधारण मनुष्य स्त्री के वियोग में शोक करता है।।३।। और जो मैं शांत होकर आश्रम में चुप बैठा रहूंगा तो

है कि एक बार रावण दिग्विजय करने के लिये निकला और एक दिन रात्रि को कैलास पर रहा। वहां चांदनी रात में एक अप्सरा श्रृंगार किये कुबेर के पुत्र नलकूबर के पास जा रही थी। उसे पकड़ रावण ने उसके साथ बलात्कार से भोग किया। नलकूबर ने यह हाल सुन रावण को शाप दिया कि यदि रावण बिना इच्छा किसी स्त्री से भोग करेगा तो उसके शिर के सौ खंड होकर पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे।। बा० रामा० ।।

करोड़ों राक्षसों के मारने का उपाय कैसे होगा।।४।। और जो मैं कामी के समान दुःख से व्याकुल हो उस सीता का शोक करूंगा तो क्रम क्रम से सीता को ढूंढता ढूंढता लंका को पहुँच जाऊंगा। और कुलसहित रावण को मारकर फिर स्वयं अग्नि में स्थापित की हुई अपनी सीता को लेकर सावधान हो अयोध्या को लौट जाऊंगा। और दूसरा कारण यह भी है कि ब्रह्माजी की प्रार्थना से मैंने मनुष्य का अवतार लिया है, सो थोड़े काल तक मनुष्यरूप से पृथ्वी पर निवास करूंगा। मुझ माया मनुष्य के चरित्र सुननेवालों की।।५–७।।

मनुष्यभावमापन्नः किञ्चित्कालंवसामिकौ ।। ततोमायामनुष्यस्यचरितंमेऽनुशृण्वताम् ।।७।। मुक्तिः स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम् ।। निश्चित्यैवंतदादृष्ट्वा लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ।।८।। किमर्थमागतोऽसि त्वंसीतांत्यक्त्वाममप्रियाम् ।। नीतावाभक्षितावापिराक्षसैर्जनकात्मजा ।।९।। लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राहसीतायादुर्वचोरुदन् ।। हलक्ष्णेतिवचनंराक्षसोक्तंश्रुतंतया ।।१०।। त्वद्वाक्यसदृशंश्रुत्वामांगच्छेति त्वराब्रवीत् ।। रुदतीसामयाप्रोक्तादेवीराक्षसभाषितम् ।। नेदंरामस्यवचनंस्वस्थाभवशुचिस्मिते ।।११।। इत्येवंसान्वित्वतासाध्वीमया प्रोवाचमांपुनः ।। यदुक्तंदुर्वचोरामनवाच्यं पुरतस्तव ।।१२।। कर्णौपिधाय निर्गत्ययातोऽहंत्वांसमीक्षितुम् ।। रामस्तुलक्ष्मणंप्राहतथाऽप्यनुचितंकृतम् ।।१३।। त्वयास्त्रीभाषितंसत्य कृत्वात्यक्त्वाशुभाननाम् ।। नीतावाभक्षितावाऽपिराक्षसैर्नात्रसंशयः ।।१४।। इतिचिन्तापरोरामः स्वाश्रमं त्वरितोययौ ।। तत्रादृष्ट्वाजनकजांविललापातिदुःखितः ।।१५।। हाप्रियेक्वगताऽसित्वंनासिपूर्ववदाश्रमे ।। अथवा मद्विमोहार्थंलीलयाक्वविलीयसे ।।१६।।

और भक्ति मार्ग में चलनेवालों की सहज मुक्ति हो जायगी। इस प्रकार निश्चय करके और उस समय लक्ष्मणजी को देखकर रामजी उनसे यह बोले कि।।८।। हे लक्ष्मण! तुम मेरी प्यारी सीता को छोड़कर भला क्यों आ गये। राक्षसों ने जनकनन्दिनी को खा लिया होगा वा उसे ले गये होंगे। लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर और रो रोकर सीताजी के दुर्वचन सुनाये और कहने लगे कि जब सीता ने 'हा लक्ष्मण' यह आपके बोल के समान राक्षस का बोल सुना तब उन्होंने मुझे शीघ्र जाने की आज्ञा दी और हे भैय्या! जब वह रोने लगी तो मैंने बहुतेरा समझाया कि हे रानी! यह राक्षस का बोल है।

रामजी का यह बोल नहीं है। हे मृदुहासिनी! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो।।९–११।। इस प्रकार मैंने उस पतिव्रता को समझाया परंतु वे न मानी और फिर मुझसे जाने को कहा और हे राम! जो जो खोटी खरी उन्होंने मुझसे कही हैं, आपके सामने कहने योग्य नहीं है।।१२।। फिर मैं तो दोनों कान बंद कर और वहां से निकलकर तुम्हारे दर्शन करने के लिये चला आया। रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि तो भी तुमने अनुचित किया।।१३।। तुम स्त्री के कहे को सत्य मानकर उस सुन्दर मुखी को छोड़ आये उसे तो राक्षस उठाकर ले गये होंगे वा उन्होंने उसे भक्षण कर ली होगी। इसमें संदेह नहीं है।।१४।। रामजी इस चिंता में मग्न होते हुए शीघ्र अपने आश्रम को गये और वहां सीता को न देखकर बड़े दुःखी हो विलाप करने लगे।।१५।। हा प्यारी! तू कहां गई, पहले के समान आश्रम में नहीं दीखती अथवा मुझे विशेष मोहित करने के लिये तू लीला से कहीं छुप रही है।।१६।।

इत्याचिन्वन्वनंसर्वनापश्यज्जानकीं तदा ।। वनदेव्यः कुतः सीतांब्रुवन्तुममवल्लभाम् ।।१७।। मृगाश्वपक्षिणोवृक्षादर्शयन्तुममप्रियाम् ।। इत्येवंविलपन्नेवरामः सीतांनकुत्रचित् ।।१८।। सर्वज्ञः सर्वथाक्वापिनापश्यद्रघुनन्दनः। आनन्दोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति ।।१९।। निर्ममोनिरहङ्कारोऽप्य खण्डानन्दरूपवान् ।। ममजायेतिसीतेतिविललापातिदुःखितः ।।२०।। एवंमायामनुचरन्नसक्तोऽपिरघूत्तमः।। आसक्तइवमूढानांभातितत्त्वविदांनहि ।।२१।। एवंविचिन्वन्सकलंवनंरामः सलक्ष्मणः ।। भग्नंरथंछत्रचापं कूबरंपतितंभुवि।।२२।।दृष्ट्वालक्ष्मणमाहेदंपश्यलक्ष्मणकेनचित्।।नीयमानांजनकजांतंजित्वाऽन्योजहारताम् ।।२३।। ततः कश्चिद्भुवोभागंगत्वापर्वतसन्निभम् ।। रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वारामोवाक्यमथाऽब्रवीत् ।।२४।। एषवैभक्षयित्वातांजानकींशुभदर्शनाम् शेतेविविक्तेऽतितृप्तः पश्यहन्मिनिशाचरम् ।।२५।।

भगवान् ने सब वन को ढूंढ मारा और जब जानकी को कहीं नहीं देखा तब वे वनदेवियों से पूछने लगे कि हे वनदेवियों! मेरी प्यारी सीता कहां है? सो तो मुझे बताओ।।१७।। हे पशुओं! हे पक्षियों! हे वृक्षो! मेरी प्यारी को दिखलाओ। इस प्रकार राम ने बहुतेरा विलाप किया परंतु सीता को कहीं न पाया।।१८।। महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! रामचन्द्रजी सर्वज्ञ हैं सो यथार्थ में सीता को देखते भी हैं और नहीं भी देखते हैं, आनन्दस्वरूप भी हैं और शोक

भी करते हैं और अचल भी हैं और सीता के देखने को दौड़ रहे हैं।।१९।। और रामजी ममता और अहंकार रहित, अखंड आनन्द स्वरूप होकर भी 'मेरी स्त्री मेरी सीता' इस प्रकार दु:खी हो विलाप करते हैं।।२०।। सो ममता और अहंकार रहित, अखंड आनन्द स्वरूप होकर भी 'मेरी स्त्री मेरी सीता' इस प्रकार दु:खी हो विलाप करते हैं।।२०।। सो रामचन्द्रजी तो संसार से विरक्त ही हैं परंतु माया से नररूप धारण किया है इसलिये तदनुसार काम करते हैं। अज्ञानियों को भले ही भगवान् संसारी विषयों से प्रीति करनेवाले जचें परन्तु जो तत्त्वज्ञानी है उन्हें तो रामजी सत्यस्वरूप ही प्रतीत होते हैं।।२१।। इस प्रकार सब वन ढूंढ़ते हुए राम लक्ष्मण ने एक टूटा हुआ रथ फटी छत्री, टूटा धनुष और रथ की डंडी, ये समान भूमि पर पड़ा हुआ देखा तो उसे देख भगवान् ने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण! कोई राक्षस सीता को लिये जाता होगा उसको जीतकर किसी दूसरे ने यहां जानकी को छिनाया है।।२२।।२३।। फिर कुछ दूर चलकर पर्वत के समान रुधिर से सने हुए एक शरीर को पृथ्वी पर पड़ा देखकर रामजी लक्ष्मणजी से कहने लगे कि।।२४।। हे लक्ष्मण! हो न हो, यह कोई राक्षस सुन्दर जानकी को भोजन करके एकान्त में अत्यन्त तृप्त होकर पड़ा है, देखो मैं इसे मारता हू।।२५।।

चापमानयशीघ्रंमेबाणंचरघुनन्दन।। तच्छ्रुत्वारामवचनंजटायुः प्राहभीतवत् ।।२६।। मांनमारयभद्रंते म्रियमाणंस्वकर्मणा ।। अहं जटायुस्तेभार्याहारिणंसमनुद्रुतः ।।२७।। रावणंतत्रयुद्धमेबभूवारिविमर्दन ।। तस्यवाहान्रथंचापंछित्त्वाहंतेनघातितः ।।२८।। पतितोऽस्मिजगन्नाथप्राणांस्त्यक्ष्यामिपश्यमाम्।।तच्छ्रुत्वा राघवोदीनंकण्ठप्राणंददर्शह ।।२९।। हस्ताभ्यांसंस्पृशन्रामोदुःखाश्रुवृतलोचनः ।।३०।। जटायोब्रूहिमेभार्याके ननीताशुभानना ।। मत्कार्यार्थंहतोऽसित्वमतो मेप्रियबान्धवः ।।३१।। जटायुः खिन्नयावाचावक्त्राद्रक्तं समुद्वमन् ।। उवाच रावणो रामराक्षसोभीमविक्रमः ।।३२।। आदायमैथिलींसी तांदक्षिणाभिमुखोययौ ।। इतोवक्तुंनमेशक्तिः प्राणांस्त्यक्ष्यामितेऽग्रतः ।।३३। दिष्ट्याद्दष्टोऽसिरामत्वंम्रियमाणेनमेऽनघ।।परमात्माऽसि विष्णुस्त्वंमायामनुजरूपधृक् ।।३४।।अन्तकालेऽपिदृष्ट्वात्वांमुक्तोहंरघुसत्तम ।। हस्ताभ्यांस्पृशमांरामपुनर्यास्यामितेपदम् ।।३५।।

हे लक्ष्मण! मेरा धनुष बाण शीघ्र लाओ। राम का यह वचन सुनकर जटायु डरकर बोला॥२६॥ हे राम! तुम्हारा भला होय, तुम मुझे मत मारो, मैं तो अपने कर्म से आप ही मरा पड़ा हूं। मैं जटायु हूं और हे शत्रुमर्दन! तुम्हारी भार्या को रावण चुराये लिये जा रहा था सो मैं उसके पीछे दौड़ा गया और वहां उसके साथ मेरा बड़ा भारी युद्ध हुआ। मैंने उसके घोड़े रथ धनुष तोड़ डाले और उसने मुझे मार घायल कर दिया॥२७॥२८॥ सो हे जगन्नाथ! मैं यहां पड़ा हूं, मुझे कृपादृष्टि से देखो, मैं प्राणों को छोड़ा ही चाहता हूं। यह सुनकर रामचन्द्र ने उस विचारे जटायु को देखा कि सच्चों ही इसके प्राण कंठ में आ लगे हैं॥२९॥ फिर राम ने अपने दोनों हाथ उस पर फेरे और दुःख के कारण नेत्रों में आंसू भरकर बोले॥३०॥ जटायु! मेरी सुन्दरमुखी भार्या को कौन उड़ाकर ले गया उसे बताओ और तुम मेरे कार्य के लिये मारे गये हो इसलिये तुम मेरे प्यारे भैय्या के समान हो॥३१॥ उस समय जटायु मुख से रुधिर वमन करता हुआ धीमे स्वर से बोला कि हे राम! बड़ा भारी पराक्रमी राक्षस रावण॥३२॥ जनकनन्दिनी सीता को लेकर दक्षिण दिशा की ओर गया है। इससे आगे अधिक कहने की मेरी शक्ति नहीं है। मैं तुम्हारे देखते देखते प्राणों को त्याग कर देता हूं॥३॥ हे राम! हे निष्पाप! यह बड़े भाग्य की बात है कि मरते समय मुझे तुम्हारे दर्शन हुए। तुम साक्षात् परमात्मा विष्णु हो। माया से तुमने मनुष्य रूप धारण किया है॥३४॥ और हे रघुश्रेष्ठ! अंतकाल में मैं तुम्हारे दर्शन कर मुक्त होऊंगा। हे राम! इस समय तुम अपना हाथ मेरे ऊपर फेरो फिर मैं तुम्हारे पद को जाऊंगा॥३५॥

तथेतिरामः पस्पर्शतदङ्गंपाणिनास्मयन् ॥ ततः प्राणान्परित्यज्यजटायुः पतितोभुवि ॥३६॥ रामस्तमनुशोचित्वाबन्धुवत्साश्रुलोचनः ॥ लक्ष्मणेनसमानाय्यकाष्ठानिप्रददाहतम्॥३७॥ स्नात्वादुःखेनरामोऽपिलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ हत्वावनेमृगंतत्रमांसखण्डान्समन्ततः ॥३८॥ शाद्वलेप्राक्षिपद्रामः पृथक्पृथगनेकधा ॥ भक्षन्तुपक्षिणः सर्वेतृप्तोभवतुपक्षिराट् ॥३९॥ इत्युक्त्वा राघवः प्राहजटायोगच्छमत्पदम् ॥ मत्सारूप्यंभजस्वाद्यसर्वलोकस्यपश्यतः ॥४०॥ ततोऽनन्तरमेवासौदिव्यरूपधरः शुभः॥ विमानवरमारुह्यभास्वरंभानुसन्निभम् ॥४१॥ शंखचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणैः ॥ द्योतयन्स्वप्रकाशेनपीताम्बरधरोऽमलः ॥४२॥ चतुर्भिः पार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजितः ॥ स्तूयमानोयोगिगणैराममाभाष्यसत्वरः॥कृताञ्जलिपुटो

भूत्वातुष्टावरघुनन्दम् ॥४३॥ जटायुरुवाच ॥ अगणितगुणमप्रमेयमाद्यंसकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम् ॥ उपरमपरमंपरात्मभूतंसततमहंप्रणतोऽस्मिरामचंद्रम् ॥४४॥

रामजी ने कहा—अच्छा और उसके शरीर पर अपना हाथ फेरा और मंद मंद मुसकुराये कि इस पक्षी को ऐसा ज्ञान है। फिर जटायु प्राणों को छोड़कर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥३६॥ रामजी ने उसका बड़ा शोक किया और वे भैय्या के समान रोने लगे। फिर उन्होंने लक्ष्मणजी से लकड़ियां मँगाकर उसकी दाह क्रिया की॥३७॥ फिर लक्ष्मणसहित दुःख पूर्वक स्नान किया और वहां वन में उन्होंने एक मृग मारकर उसके मांस के टुकड़े को आसपास॥३८॥ हरी घास पर अलग अलग अनेक भांति फैलया और वे बोले कि हे पक्षियो! तुम इस मांस का भोजन करो जिससे यह पक्षिराज तृप्त हो॥३९॥ यह कहकर रामजी पक्षिराज से बोले कि हे जटायु! आज सब लोक के देखते देखते तुम मेरा सा रूप धरकर मेरे लोक को जाओ॥४०॥ यह वचन सुनते ही यह जटायु सुन्दर दिव्यरूप धर सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर चढ़कर शंख चक्र गदा पद्म धारे क्रीट और सुन्दर भूषणों से भूषित और अपने प्रकाश से सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ पीतांबर पहिने निर्मल स्वरूप और विष्णु के पार्षदों के सदृश ही चार पार्षद जिसकी सेवा में खड़े हैं और योगी जिसकी स्तुति कर रहे हैं, शीघ्र ही राम से संबोधन करके दोनों हाथ जोड़ उन रामचन्द्रजी की स्तुति करने लगा॥४१॥४२॥ जटायु बोला—हे राम! तुम्हारे गुणों की गिनती नहीं हो सकती। तुम्हारे देश काल की मर्यादा नहीं है कि इस देश और इस काल में हो, दूसरे में नहीं हो। तुम पुराण पुरुष हो। संपूर्ण जगत् के उत्पन्न पालन और संहार के आदि कारण हो। तुम्हारा परम शान्त स्वरूप है और तुम साक्षात् परमात्मा हो, ऐसे तुम रामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूं॥४४॥

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षंक्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम् ॥ नरवरमनिशंनतोऽस्मिरामंवरदमहंवरचाप-बाणहस्तम् ॥४५॥ त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यंविशतभासुरमीहितप्रदानम् ॥ शरणदमनिशंसुरागमूलेकृतनिलयंरघुनन्दनप्रपद्ये ॥४६॥ भवविपिनदवाग्निनामधेयंभवमुखदैवतदैवतंदयालुम्॥दनुजपतिसहस्रकोटिनाशंरवितनयासदृशंहरिंप्रपद्ये ॥४७॥ अविरतभवभावनातिदूरंभवविमुखैर्मुनिभिः सदैवदृश्यम् ॥ भवजलधिसुता

रणाङ्घ्रिपोतंशरणमहंरघुनन्दनंप्रपद्ये ॥४८॥ गिरिशगिरिसुतामनोनिवासंगिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ॥ सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिंसुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥४९॥ परधनपरदारवर्जितानांपरगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ॥ परहितनिरतात्मनांसुसेव्यंरघुवरमम्बुजलोचनंप्रपद्ये ॥५०॥

तुम्हारे सुख की अवधि नहीं है। लक्ष्मीजी सदा तुम्हारे स्वरूप को निरखा करती हैं। तुम ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं के दुःखनाशक हो। तुम पुरुषोत्तम हो, वर के देनेवाले हो और हाथों में सुन्दर धनुष बाण धारण किये हो, ऐसे आप रामचन्द्र को मैं सदा प्रणाम करता हूं॥४५॥ तुम्हारा स्वरूप त्रिलोकी में अत्यन्त सुन्दर है। तुम स्तुति के योग्य हो। सैंकड़ों सूर्यों का सा तुम्हारा प्रकाश है। भक्तों को अभीष्टफल और सदा शरण देनेवाले हो। और तुम प्रेमी पुरुषों के चित्त में निवास करते हो। ऐसे आप रामचन्द्रजी की मैं शरण हूं॥४६॥ हे राम! तुम्हारा नाम संसाररूपी वन के भस्म करने के लिये दावाग्नि है। तुम महादेव आदि देवों के देव और दयालु हो। हजारों करोड़ों राक्षसों के नाशक हो, ऐसे यमुनाजी के सदृश श्याम सुन्दर भगवान् की मैं शरण हूं॥४७॥ जिन पुरुषों का सदा संसार में चित्त है। उनसे तुम अत्यन्त दूर हो और संसार के विरक्त मुनियों को नित्य दर्शन देते हो। तुम अपने चरणरूपी नौका के द्वारा संसार समुद्र से पार करनेवाले हो। ऐसे तुम रामचन्द्रजी की मैं शरण हूं॥४८॥ हे राम! तुम महादेव पार्वतीजी के हृदय में निवास करनेवाले हो। कृष्ण रूप से पर्वत धारण करनेवाले हो। तुम्हारी लीला बड़ी सुन्दर है। बड़ें बड़े देवता और दैत्यराजों ने तुम्हारे चरणकमल पूजे हैं और तुम देवताओं को वर देनेवाले हो। ऐसे तुम रामचन्द्र की मैं शरण हूं॥४९॥ जो पुरुष पराये धन स्त्री को त्यागनेवाले हैं, दूसरों के गुण और ऐश्वर्य को देख जिनको सन्तोष होता है और पराया हित करने में जिनकी प्रीति है वे पुरुष तुम्हारी सुखपूर्वक सेवा करते हैं, ऐसे कमलनयन रामचन्द्र की मैं शरण हूं॥५०॥

स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभंसुरराजनीलनीलम् ॥ सितजलरुहचारुनेसशोभंरघुपतिमीशगुरोर्गुरुंप्रपद्ये ॥५१॥ हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिहविभासिगुणत्रयानुवृत्तः ॥ रविरिवजलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुपात्रमीशमीडे ॥५२॥ रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गंशतपथगोचरभावनाविदूरम् ॥ यतिपतिहृदयेसदाविभातंरघुपतिमार्तिहरंप्रभुंप्रपद्ये ॥५३॥ इत्येवंस्तुवतस्तस्यप्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः॥उवाचगच्छभद्रंतेममविष्णोः

परंपदम् ॥५४॥ शृणोतियइदंस्तोत्रंलिखेद्वानियतः पठेत् ॥ सयातिममसारूप्यंमरणेमत्स्मृतिंलभेत् ॥५५॥ इतिराघवभाषितंतदाश्रुतवान्हर्षसमाकुलोद्विजः ॥ रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौब्रह्मसपूजितंपदम् ॥५६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकांडे अष्टम सर्गः ॥८॥

हे राम! तुम्हारा मुख कमल सुन्दर मन्द मन्द मुस्कान से प्रफुल्लित हो रहा है। तुम सबको सुलभ हो और तुम्हारा शरीर इन्द्रनीलमणि के समान नील है और तुम्हारे सुन्दर नेत्रों की शोभा श्वेतकमल के समान है और तुम देवताओं के गुरुओं के भी गुरु हो ऐसे आप रामचन्द्र की मैं शरण हूं॥५१॥ जैसे एक ही सूर्य जल के भरे अनेक पात्रों में प्रतिबिंब पड़ने से अनेक रूप का प्रतीत होता है वैसे ही तुम सत्त्व, रज, तम इन तीन माया के गुणों के भेद से ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप से अनेक भांति के प्रतीत होते हो। इन्द्रादि तुम्हारी स्तुति करते हैं। ऐसे तुम रामजी की मैं स्तुति करता हूं॥५२॥ तुम्हारा अंग कामदेव से सौ करोड़ गुना सुन्दर है। शतपथ के ब्राह्मण भाग में कहे हुए ध्यान से सहज में प्राप्त होनेवाले हो और तुम योनियों के हृदय में सदा प्रकाशमान रहते हो, ऐसे दुःखहरण प्रभु आप रामचन्द्रजीकी मैं शरण हूं॥॥ जब जटायु ने ऐसी स्तुति की तब तो रामजी प्रसन्न होकर बोले कि हे जटायु! तेरा कल्याण हो अब तू मेरे विष्णु के परमपद को प्राप्त हो॥५४॥ और जो कोई इस स्तोत्र को सुनेगा या लिखेगा वा नित्य पाठ करेगा वह मेरे समान रूप को पावेगा और अन्तसमय में उसको मेरा स्मरण होगा॥५५॥ उस समय कहे हुए वचन को सुनकर जटायु परम प्रसन्न हुआ और रामजी के समान स्वरूप को पाकर वह जटायु ब्रह्मपूजित विष्णुलोक को विदा हुआ॥५६॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का आठवां सर्ग समाप्त हुआ॥८॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ ततो रामोलक्ष्मणेनजगामविपिनान्तरम् ॥ पुनर्दुःखंसमाश्रित्यसीतान्वेषणतत्परः ॥१॥ तत्राद्भुतसमाकारोराक्षसः प्रत्यदृश्यत ॥ वक्षस्येवमहावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥२॥ बाहूयोजनमात्रेण व्यापृतौतस्यराक्षस॥ कबन्धोनामदैत्येन्द्रः सर्वसत्वविहिंसकः ॥३॥ तद्बाह्वोर्मध्यदेशेतौचरन्तौरामलक्ष्मणौ ॥ ददर्शतुर्महासत्वंतद्बाहुपरिवेष्टितौ ॥४॥ रामः प्रोवाचविहसन्पश्यलक्ष्मणराक्षसम् ॥ शिरः पादविहीनोऽयंयस्यवक्षसिचाननम् ॥५॥ बाहुभ्यांलभ्यतेयद्यत्तत्तद्भक्षन्स्थितोध्रुवम् ॥ आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्येसंक-

लितौध्रुवम् ॥६॥ गन्तुमन्यत्रमार्गो न दृश्यतेरघुनन्दन ॥ किंकर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानींभक्षयेत्सनौ ॥७॥ लक्ष्मणस्तमुवाचेदंकिंविचारणराघव ॥ आवामेकैकमव्यग्रोछिन्द्यांरक्षोभुजोध्रुवम् ॥८॥ तथेतिरामः खड्गेनभुजंदक्षिणमच्छिनत् ॥ तथैवलक्ष्मणोवामंचिच्छेदभुजमञ्जसा ॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके अनंतर लक्ष्मण को साथ लेकर रामचन्द्रजी दूसरे वन को गये और दुःख से विकल हो फिर सीता के ढूंढने में लगे॥१॥ वहां उन्होंने एक ऐसे बड़े शरीरवाले राक्षस को देखा कि जिसकी छाती में एक बड़ा भारी मुख था और नेत्र आदि उसके कुछ नहीं थे॥२॥ और उस राक्षस की चार कोस लम्बी दोनों भुजा थी, कबंध उसका नाम था और वह दैत्यों का राजा, सब प्राणियों को मारनेवाला था॥३॥ उसकी भुजाओं के बीच में वे दोनों राम लक्ष्मण विचरने लगे और उसकी भुजाओं के लपेट में फँसकर उसके बड़े भारी शरीर को देखने लगे॥४॥ फिर राम ने हँसकर कहा कि हे लक्ष्मण! इस राक्षस को तो देखो, इसके सिर पैर कुछ नहीं, इसकी छाती में केवल शिर ही शिर है॥५॥ भुजाओं से जो जो कुछ मिलता है उसे खाकर यह अचल धरा हुआ है और हम तुम भी इसकी भुजाओं में आ फँसे हैं, इसमें सन्देह ही क्या है॥६॥ और हे लक्ष्मण! दूसरी जगह जाने के लिये कहीं मार्ग नहीं दीखता। इससे बचने के लिये हमें अब क्या उपाय करना चाहिये? नहीं तो यह हम तुम दोनों को खा लेगा॥७॥ लक्ष्मणजी ने रामचन्द्रजी से कहा कि हे राघव! सोचा विचारी में क्या धरा है। हम तुम दोनों सावधान हो इस राक्षस की एक एक भुजा काट अलग करें। इसमें सन्देह क्या करते हो॥८॥ अच्छा कहकर राम ने तो खड्ग से उसकी दाईं भुजा काट डाली और उसी तरह लक्ष्मणजी ने उसकी बाईं भुजा काट अलग करी॥९॥

ततोऽतिविस्मितोदैत्यः कौयुवांसुरपुङ्गवौ ॥ मद्बाहुच्छेदकौलोकेदिवि देवेषुवाकुतः ॥१०॥ ततोऽब्रवीद्धसन्नेव रामोराजीवलोचनः ॥ अयोध्यापतिः श्रीमान्राजादशरथोमहान्॥११॥रामोऽहंतस्यपुत्रोऽसौभ्रातालक्ष्मणः सुधीः ॥ ममभार्याजनकजासीतात्रैलोक्य सुन्दरी ॥१२॥ आवांमृगययायातौतदाकेनापिरक्षसा ॥ नीतांसीतांविचिन्वन्तौचागतौघोरकानने ॥१३॥ बाहुभ्यांवेष्टितावत्रवप्राणरिरक्षया ॥ छिन्नौतवभुजौत्वंच कोवाविकटरूपधृक् ॥१४॥ कबन्ध उवाच ॥ धन्योहंयदिरामस्त्वमागतोऽसिममान्तिकम् ॥

पुरागन्धर्वराजोऽहंरूपयौवनदर्पितः ॥१५॥ विचरँल्लोकमखिलंवरनारीमनोहरः ॥ तपसाब्राह्मणोलब्धम वध्यत्वंरघूत्तम॥१६॥अष्टावक्रंमुनिंदृष्ट्वाकदाचिदहसंपुरा ॥ क्रुद्धोऽसावाहदुष्टत्वंराक्षसोभवदुर्मते ॥१७॥ अष्टावक्रः पुनः प्राहवन्दितोमेंदयापरः ॥ शापस्यान्तंचमेप्राहतपसाद्योतितप्रभः ॥१८॥ त्रेतायुगेदाशरथि र्भूत्वानारायणः स्वयम् ॥ आगमिष्यतितेबाहूछिद्येतेयोजनायतौ ॥१९॥ तेनशापाद्विनिर्मुक्तो भविष्यसियथा पुरा ॥ इतिशप्तोऽहमद्राक्षंराक्षसींतनुमात्मनः ॥२०॥

यह देख दैत्य को बड़ा अचम्भा हुआ और वह पूछने लगा कि तुम दोनों कौन हो? हो न हो तुम दोनों कोई बड़े देवता हो क्योंकि इस लोक में क्या और स्वर्ग में क्या और देवताओं में क्या कहीं कोई मेरी भुजाओं का काटनेवाला नहीं है॥१०॥ फिर कमलसमान नेत्रवाले रामजी हँसकर बोले कि अयोध्यापति राजा दशरथ बड़े लक्ष्मीवान् थे, मैं उनका पुत्र हूं, राम मेरा नाम है और यह लक्ष्मण मेरा चतुर भैय्या है और त्रिलोकी में सुन्दरी जनकनन्दिनी सीता मेरी स्त्री है॥११॥१२॥ हम दोनों जने जब शिकार को गये तब कोई राक्षस सीता को चुरा ले गया, उसे ढूंढते ढूंढते हम इस भयंकर वन में आ निकले हैं॥१३॥ और यहां जब हम तुम्हारी भुजाओं के बीच में पड़ गये तो तब अपने प्राण बचाने के लिये तुम्हारी भुजा काट डालीं। तुम तो बताओ, तुम ऐसे भयंकर रूप को धारण किये कौन हो॥१४॥ कबन्ध बोला–यदि तुम राम होकर मेरे पास आये हो तो मेरा जीवन धन्य है। पूर्वकाल में मैं गंधर्वराज था और अपने रूप यौवन के गर्व से सुन्दर स्त्रियों को मोहित करता हुआ संपूर्ण लोक में फिरा करता था और हे राम! तप करने से ब्रह्माजी ने मुझे अमर कर दिया था॥१५॥१६॥ पहिले एक समय में अष्टावक्र मुनि को देखकर जो हँसा सो उन्होंने क्रोध करके मुझे शाप दिया कि हे दुष्टदुर्बुद्धि! तू राक्षस हो जा॥१७॥ और जब मैंने बड़ी विनय की तब तप से प्रकाशमान अष्टावक्रजी ने फिर मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे मेरा शाप का अन्तसमय जता दिया कि॥१८॥ त्रेतायुग में जब साक्षात् नारायण दशरथ के पुत्र होकर वन में आवेंगे और जब ये योजनभर लंबी तेरी दोनों भुजा काटेंगे॥१९॥ तब तू इस शाप से मुक्त होगा और तुझे अपना पहले जैसा रूप मिल जायगा। इस प्रकार उनका शाप लगते ही मुझे अपना शरीर राक्षस का सा दीखने लगा॥२०॥

अ०रा०
२०१

कदाचिद्देवराजानमभ्यद्रवमहं रुषा ॥ सोऽपिवज्रेणमांरामशिरोदेशेऽभ्यताडयत् ॥२१॥ तदाशिरोगतंकुक्षिं पादौचरघुनन्दन ॥ ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मेवज्रताडनात् ॥२२॥ मुखाभावेकथंजीवेदयमित्यमराधिपम् ॥ ऊचुः सर्वेदयाविष्टामांविलोक्यास्यवर्जितम् ॥२३॥ ततोमांप्राहमघवाजठरेतेमुखंभवेत् ॥बाहूतेयोजनायामौ भविष्यतइतावज्र ॥२४॥ इत्युक्तोऽत्रवसन्नित्यंबाहुभ्यांवनगोचरान्॥ भक्षयाम्यधुनाबाहूखण्डितौमेत्वयाऽनघ ॥२५॥ इतः परंमांश्वभ्रास्येनिक्षिपाग्नीन्धनावृत्ते ॥ अग्निनादह्यमानोऽहंत्वयारघुकुलोत्तम ॥२६॥ पूर्वरूपमनुप्राप्यभार्यामार्गंवदामिते ॥ इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशुश्वभ्रंनिर्मायतत्रतम् ॥२७॥ निक्षिप्यप्रादहत्काष्ठै स्ततोदेहात्समुत्थितः ॥ कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः ॥२८॥ रामंप्रदक्षिणंकृत्वासाष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदंभक्तिगद्‌गदयागिरा ॥२९॥ गन्धर्व उवाच॥स्तोतुमुत्सहतेमेऽद्यमनोरामातिसम्भ्रमात् ॥ त्वामनन्तमनाद्यन्तंमनोवाचामगोचरम् ॥३०॥

हे राम! फिर एक बार मैं क्रोध कर इन्द्र के सामने दौड़ा तो उसने भी मेरे सिर में अपना वज्र ऐसा तानकर मारा॥२१॥ कि जिससे मेरा शिर और पेट सिमटकर कोख में धंस गये परंतु ब्रह्मा के वर प्रदान के कारण वज्र की चोट से भी मेरी मृत्यु नहीं हुई॥२२॥ फिर मुझे मुखरहित देखकर सब देवताओं ने दया विचार इन्द्र से कहा कि भला यह बिना मुख के कैसे जियेगा॥२३॥ तब इन्द्र ने मुझसे कहा कि हे राक्षस! पेट में से तेरा मुख निकलेगा और तेरी योजनभर की दोनों भुजा होंगी। तू अब यहां से चला जा॥२४॥ इस प्रकार इन्द्र के कहते ही मैं यहां आकर रहने लगा और नित्य भुजाओं से खैंच खैंच कर वन के जीवों को खाकर जीता था। हे पापरहित! सो अब तुमने मेरी भुजाओं को भी काट छांट अलग किया॥२५॥ अब आगे ऐसा और करो कि एक गढ़ा खोदकर और इसमें ईंधन भरकर अग्नि लगा दो। और हे राम! जो तुम मेरा अग्निदाह कर दोगे तो॥२६॥ मैं अपने पहिले गन्धर्वरूप को पाकर तुम्हारी भार्या मिलने का मार्ग तुम्हें बता दूंगा। जब उसने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी ने तुरंत गढ़ा खोद उसमें उसे डाल बहुत सी लकड़ियों से उसका अग्निदाह किया। फिर उस जलती हुई देह में से कामदेव के समान और सब आभूषणों से भूषित एक पुरुष निकला॥२७॥२८॥ और राम की प्रदक्षिणा और उनको साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़ भक्ति के कारण गद्‌गद वाणी

आ०का०
सर्ग
९

अ०रा० २०२

से कहने लगा॥२९॥ गंधर्व बोला—हे राम! आज मेरा मन बड़े आदर से तुम्हारी स्तुति करने को उत्साह कर रहा है। तुम अनंत आदि अंतरहित तथा मन और वाणी से अगोचर हो॥३०॥

सूक्ष्मंतेरूपमव्यक्तंदेहद्वयविलक्षणम्।दृग्रूपमिततरत्सर्वंदृश्यंजडमनात्मकम्।।तत्कथंत्वांविजानीयाद्व्यतिरिक्तंमनः प्रभो ॥३१॥ बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यंजीवइत्यभिधीयते ॥ बुद्ध्यादिसाक्षीब्रह्मैवतस्मिन्निर्विषयेऽखिलम् ॥३२॥ आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥ हिरण्यगर्भस्तेसूक्ष्मंदेहस्थूलंविराट्स्मृतम् ॥३३॥ भावनाविषयोरामसूक्ष्मंतेध्यातृमङ्गलम् ॥ भूतंभव्यंभविष्यच्चयत्रेदंदृश्यतेजगत् ॥३४॥ स्थूलेऽण्डकोशेदेहेते महदादिभिरावृते ॥ सप्तभिरुत्तरगुणैर्वैराजोधारणाश्रयः ॥३५॥ त्वमेवसर्वकैवल्यंलोकास्तेऽवयवाः स्मृताः ॥ पातालंतेपादमूलंपार्ष्णिस्तवमहातलम् ॥३६॥ रसातलंतेगुल्फौतुतलातलमितीर्यते ॥ जानुनीसुतलंराम-ऊरूतेवितलंतथा ॥३७॥ अतलंचमहीरामजघनंनाभिगंनभः ॥ उरः स्थलंतेज्योतींषिग्रीवाते महउच्यते ॥३८॥

तुम्हारा सूक्ष्मरूप अव्यक्त है अर्थात् बड़े बड़े योगी भी उसे नहीं जान सकते और स्थूल सूक्ष्म जो दो प्रकार के शरीर है उनमें भी विलक्षण अर्थात् भिन्न केवल ज्ञानरूप है। और साक्षिरूप तुम्हें छोड़कर सब जगत् जड़ है इसलिये आत्मा से भिन्न है सो हे प्रभो! तुमसे भिन्न होने के कारण इस मन को कैसे तुम्हारा ज्ञान हो सकता है॥३१॥ बुद्धि में जो आत्मा का प्रतिबिंब पड़ता है उसकी बुद्धि के साथ एकता को जीव कहते हैं। वह जीव बुद्धि आदि का साक्षी ब्रह्म ही है। उस वाणी और मन के अगोचर निर्विकार जीव में अज्ञान से जगत् की मिथ्या कल्पना कर ली है। लिंगशरीरों का समूह हिरण्यगर्भ आपका सूक्ष्म देह है और स्थूल शरीरों का समूह विराट् तुम्हारा स्थूल देह है॥३२–३४॥ हे राम! तुम्हारा सूक्ष्म शरीर हृदय में ध्यान करने योग्य है और ध्यान करनेवालों को मंगल का दाता है और जिसके ध्यान करने से भूत भविष्यत् और वर्तमान् तीन काल के पदार्थ दिखाई पड़ते हैं॥३५॥ और हे राम! सब प्राणियों के अंत में प्राप्त होने योग्य कैवल्य मुक्ति तुम ही हो और सब लोक तुम्हारे अंग कहे गये हैं। पाताललोक तुम्हारे चरणों का तलुआ है, महातल एडी है॥३६॥ रसातल तुम्हारे टकने हैं, तलातल तुम्हारी पिंडुरी है और हे राम! सुतल तुम्हारे घुटने हैं और वितल

तुम्हारी जंघा है।।३७।। और हे राम! अतल जांघों के नीचे का भाग है और पृथ्वी तुम्हारी कमर है। स्वर्गलोक तुम्हारी नाभि है। नक्षत्रलोक तुम्हारी छाती है और महर्लोक तुम्हारी गर्दन कही गई है।।३८।।

वदनंजनलोकस्तेतपस्तेशंखदेशगम् ।। सत्यलोकोरघुश्रेष्ठशीर्षण्यास्तेसदाप्रभो ।।३९।। इंद्रादयोलोकपाला बाहवस्तेदिशः श्रुती ।। अश्विनौनासिके रामवक्त्रंतेऽग्निरुदाहृतः ।।४०।। चक्षुस्तेसवितारामममनश्चन्द्रउदाहृतः ।। भ्रूभङ्गएवकालस्तेबुद्धिस्तेवाक्पतिर्भवेत् ।।४१।। रुद्रोऽहङ्कारूपस्तेवाचश्छन्दांसितेऽव्यय ।। यमस्तेदष्ट्रदेशस्थोनक्षत्राणिद्विजालयः ।।४२।। हासोमोहकरीमायासृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम् ।। धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्चपृष्ठभागउदीरितः ।।४३।। निमिषोन्मेषणेरात्रिर्दिवाचैवरघूत्तम ।। समुद्राः सप्ततेकुक्षिर्नाड्योनद्यस्तवप्रभो ।।४४।। रोमाणिवृक्षोषधयो रेतोवृष्टिस्तवप्रभो ।। सहिमाज्ञानशक्तिस्तेएवंस्थूलंवपुस्तव ।।४५।। यदस्मिन्स्थूलरूपेते मनः संधार्यतेनरैः ।। अनायासेनमुक्तिः स्यादतोऽन्यन्नहिकिञ्चन ।।४६।। अतोऽहंरामरूपंतेस्थूलमेवानुभावये । यस्मिन्ध्यातेप्रेमरसः सरोमपुलकोभवेत् ।।४७।।

हे राम! जनलोक तुम्हारा मुख है, तपलोक मस्तक है और हे प्रभो! सत्यलोक सदा से तुम्हारा सिर है।।३९।। और हे राम! इन्द्रादि आठ लोकपाल तुम्हारी भुजा हैं, दिशा तुम्हारे कान हैं। अश्विनीकुमार तुम्हारी नाक है और अग्नि तुम्हारा मुख कहा गया है।।४०।। हे राम! सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं और चंद्र तुम्हारा मन कहा गया है। काल तुम्हारा भ्रकुटि का फेरना है। बृहस्पति तुम्हारी बुद्धि है।।४१।। रुद्र तुम्हारा अहंकार रूप है और हे अविनाशी! वेद तुम्हारी वाणी है। यमराज तुम्हारी डाढ है और नक्षत्र तुम्हारे दांत हैं।।४२।। सब जीवों को मोह करानेवाली माया तुम्हारा हास्य है। सृष्टि तुम्हारा कटाक्ष अर्थात् देखना है। धर्म तुम्हारी छाती है और अधर्म तुम्हारी पीठ कही गई है।।४३।। और हे रघुश्रेष्ठ! दिन रात तुम्हारे नेत्रों का खोलना मूंदना है और हे प्रभो! सातों समुद्र तुम्हारी कोख है और सब नदियां तुम्हारे शरीर की नाड़ियां हैं।।४४।। और हे प्रभो! वृक्ष और औषधि अर्थात् यव आदि तुम्हारे रोम हैं और जल की वृष्टि तुम्हारा वीर्य है। ज्ञानशक्ति तुम्हारी महिमा है। इस प्रकार तुम्हारा स्थूल अर्थात् विराट् शरीर है।।४५।। जो पुरुष तुम्हारे इस स्थूल शरीर में मन लगाते हैं तो थोड़े ही परिश्रम से उनकी मुक्ति हो जाती है। इससे बढ़कर मोक्ष का कोई

दूसरा उपाय नहीं है॥४६॥ हे राम! इसलिये मैं तुम्हारे स्थूल रूप का ध्यान करता हूं जिसके ध्यान करने से प्रेमरस टपकता है और शरीर रोमांचित होने से पुलकायमान हो जाता है॥४७॥

तदैवमुक्तिः स्याद्रामयदातेस्थूलभावकः ॥ तदप्यास्तांतवैवाहमेतद्रूपंविचिन्तये ॥४८॥ धनुर्बाणधरंश्यामंजटा वल्कलभूषितम् ॥ अपीच्यवयसं सीतांविचिन्वन्तंसलक्ष्मणम् ॥४९॥ इदमेवसदामेस्यान्मानसेरघुनन्दन ॥ सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात्पार्वत्यासहितः सदा ॥५०॥ त्वद्रूपमेवंसततंध्यायन्नास्तेरघूत्तम ॥ मुमूर्षूणांसदाकाश्यां तारकंब्रह्मवाचकम् ॥५१॥ रामरामेत्युपदिशन्सदासन्तुष्टमानसः ॥ अतस्त्वं जानकीनाथपरमात्मा सुनिश्चितः ॥५२॥ सर्वेतेमाययामूढास्त्वांजानन्ति तत्त्वतः ॥ नमस्तेरामभद्रायवेधसेपरमात्मने ॥५३॥ अयोध्याधिपते तुभ्यंनमः सौमित्रिसेवित ॥ त्राहित्राहिजगन्नाथमांमायानावृणोतुते ॥५४॥ श्रीराम उवाच ॥ तुष्टोऽहंदेवगन्धर्वभक्त्यास्तुत्याचतेऽनघ ॥याहिमेपरमंस्थानंयोगिगम्यंसनातनम्।५५॥जपन्तियेनित्यमनन्य बुद्ध्याभक्त्यात्वदुक्तंस्तवमागमोक्तम् ॥ तेऽज्ञानसम्भूतभवंविहायमांयान्तिनित्यानुभवानुमेयम् ॥५६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकाण्डे नवमस्सर्गः ॥९॥

हे राम! जब पुरुष तुम्हारे स्थूल रूप का ध्यान करता है तब ही उसकी मुक्ति होती है। और जो स्थूल रूप का ध्यान न हो सके तो मत हों, मैं तुम्हारे इसी प्रत्यक्ष रूप का ध्यान करता हूं॥४८॥ तुम धनुष बाण धारे श्याम वर्ण जटा और छाल के वस्त्र पहिरे तरुण अवस्था वाले सीता को ढूंढते हुए और लक्ष्मणजी से युक्त हो॥४९॥ हे रघुनन्दन! यही रूप सदा मेरे मन में बसे क्योंकि पार्वतीसहित घट घट निवासी साक्षात् महादेवजी भी सदा तुम्हारे इसी रूप का ध्यान किया करते हैं और काशी में प्राणियों को मरते समय ब्रह्मरूप तारक मंत्र 'राम राम' का उपदेश देते हुए सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं इसलिये हे जानकीनाथ! तुम साक्षात् परमात्मा हो, इसमें कुछ संदेह नहीं है॥५०–५२॥ परंतु वे सब कि जो तुम्हारी माया से मोहित हो रहे हैं, तुम्हारे यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते, हे रामभद्र! हे सृष्टिकर्ता! हे परमात्मा! तुमको नमस्कार है॥५३॥ हे अयोध्यापति! हे लक्ष्मणजी से सेवित! तुमको नमस्कार है हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करो २ जिससे आपकी माया मुझे मोहित न करे॥५४॥ श्रीरामचन्द्र बोले–हे गंधर्व! मैं तेरी भक्ति और स्तुति से बड़ा संतुष्ट

हुआ और तेरा सब पाप क्षीण हो गया। अब तू मेरे उस परम पद को जा जो कि सनातन है और जहां योगीजन जाते हैं।।५५।। और यह जो तुमने शास्त्र रीति से हमारी स्तुति की है इसे जो कोई एकाग्र चित्त से नित्य भक्तिपूर्वक पढेंगे, वे अज्ञान से उत्पन्न हुए संसार को त्यागकर नित्य और ज्ञान से अनुभव करने योग्य मुझे पावेंगे।।५६।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित आरण्यकांड का नवम सर्ग समाप्त हुआ।।९।।

श्रीमहादेव उवाच ।। लब्ध्वावरंसगन्धर्वः प्रयास्यन्राममब्रवीत् ।। शबर्यास्तेपुरोभागेआश्रमेरघुनन्दन ।।१।। भक्त्यात्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा ।। तांप्रयाहिमहाभागसर्वंतेकथयिष्यति ।।२।। इत्युक्त्वाप्रययौसोऽपिविमानेनार्कवर्चसा ।। विष्णोः पदंरामनाम स्मरणेफलमीदृशम् ।।३।। त्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम् ।। शनैरथाश्रमपदंशबर्यारघुनन्दन ।।४।। शबरीराममालोक्यलक्ष्मणेनसन्वितम् ।। आयान्तमाराद्धर्षेणप्रत्युत्थायाचिरेणसा ।।५।। पतित्वापादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना ।। स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासनेसंन्यवेशयत् ।।६।। रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौप्रक्षाल्यभक्तितः ।। तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता ।।७।। सम्पूज्यविधिवद्रामंससौमित्रिंसपर्यया ।। संगृहीतानि दिव्यानिरामार्थंशबरीमुदा ।।८।। फलान्यमृतकल्पानिददौरामायभक्तितः ।। पादौसम्पूज्यकुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः ।।९।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके अनंतर वह गंधर्व वरदान पाकर चलते समय रामजी से बोला कि हे रघुनंदन! वह जो सामने आश्रम दिखाई दे रहा है, उसमें एक शबरी रहती है। वह भक्तिमार्ग में बड़ी निपुण है और उसे तुम्हारे चरणों में बड़ी भक्ति है सो हे महाराज तुम उनके पास जाओ, वह तुमसे सीताजी का सब समाचार कहेगी ।।१।।२।। यह कहकर वह गंधर्व सूर्य के समान प्रकाशमान् विमान पर बैठ स्वर्ग को चला गया। महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! राम के स्मरण का ऐसा फल है।।३।। इधर रामचन्द्रजी सिंह व्याघ्र आदि युक्त उस भयंकर वन को छोड़कर धीरे धीरे शबरी के आश्रम को बिदा हुए।।४।। शबरी लक्ष्मणसहित रामजी को दूर से ही आता हुआ देख अंग में फूली न समाई और तुरंत उनको आगे लेने गई। और उनके चरणों के सामने गिरकर और हर्ष के कारण नेत्रों में आंसू भरकर उनके शुभागमन की बड़ाई करने लगी और फिर उन्हें सुन्दर आसन पर बैठाया।।५।।६।। और भक्ति से राम लक्ष्मणजी

अ०रा०
२०६

के चरणों की भली भांति धोये, चरणामृत को अपने अंग पर छिड़का और अर्घ्य आदि पूजन की सामग्रियों से लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजी का सोलह उपचार की विधि से पूजन किया फिर शबरी ने प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी के लिये जो अमृत के समान अनोखे स्वाद के बेर इकट्ठे कर रखे थे वे भक्तिपूर्वक उन रामजी के अर्पण करे और सुगन्धित चन्दन और पुष्पों से उनके दोनों चरणों का पूजन किया।।७।।८।। फिर अतिथि सत्कार के पीछे जब लक्ष्मणसहित रामजी स्वस्थ होकर बैठे तब शबरी भक्ति से हाथ जोड़ यह कहने लगी कि।।९।।१०।।

कृतातिथ्यंरघुश्रेष्ठमुपविष्टंसहानुजम् ।। शबरीभक्तिसम्पन्नाप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।।१०।।अत्राश्रमेरघुश्रेष्ठ गुरवोमेमहर्षयः ।। स्थिताः शुश्रूषणंतेषांकुर्वतीसमुपस्थिता ।।११।। बहुवर्षसहस्राणिगतास्तेब्रह्मणः पदम् ।। गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मांत्वंवसात्रैवसमाहिता ।।१२।। रामोदाशरथिर्जातः परमात्मासनातनः।। राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ।।१३।। आगमिष्यतिचैकाग्रध्याननिष्ठास्थिराभव ।। इदानींचित्रकूटाद्रावाश्रमेवसतिप्रभुः ।।१४।। यावदागमनंतस्य तावद्रक्षकलेवरम् ।। दृष्टैवराघवंदग्ध्वादेहंयास्यसितत्पदम् ।।१५।। तथैवाकरवंरामत्वद्ध्यानैकपरायणा ।। प्रतीक्ष्यागमनंतेऽद्यसफलंगुरुभाषितम् ।।१६।। तवसन्दर्शनंरामगुरूणामपिमेनहि ।। योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन्हीनजातिसमुद्भवा ।।१७।। तवदासस्यदासानां शतंसख्योत्तरस्यवा ।। दासीत्वेनाधिकारोऽस्तिकुतः साक्षात्तवैवहि ।।१८।। कथंरामाद्यमेदृष्टस्त्वंमनोवागगोचरः ।। स्तोतुंनजाने देवेशकिंकरोमिप्रसीदमे ।।१९।।

हे रघुश्रेष्ठ! इस आश्रम में मेरे गुरु महर्षिजन बहुत हजार वर्ष तक जीते रहे और मैं उनकी सेवा करती रही परंतु जब वे स्वर्ग को पधार गये वे चलते समय मुझसे कह गये थे कि तू इसी आश्रम में सावधान हो एकाग्रचित्त से भगवान् का ध्यान करती रहियो। साक्षात् सनातन परब्रह्म राक्षसों के मारने के लिये और ऋषियों की रक्षा के लिये दशरथ के पुत्र

आ०का०
सर्ग
१०

कवित्त-बेर बेर बेर ले सरा है बेर बेर बहु रसिकबिहारी देत बन्धुकौं फेर फेर ।। चाखि चाखि भाख यह वाहूते महान मीठौ लेहु तो लखण यों बखानत है हेर हेर।बेर बेर देवे बेर शबरी सुबेर बेर तौऊ रघुवीर बेर बेर तेहि टेर टेर।बेर जनि लावौ बेर बेरजनि लावौ,बेर बेर जनि लाओ, बेर लावौ कहें बेर बेर।

राम के नाम से प्रगट हुए-हैं वे यहां आवेंगे और इस समय भगवान् चित्रकूट पर निवास कर रहे हैं।।११–१४।। इसलिये जब तक वे न आवें, तू अपने शरीर की रक्षा करती रह फिर रामचन्द्रजी का दर्शन कर अपने देह को अग्नि में भस्म कर उनके विष्णुपद को चली जायगी।।१५।। हे राम! मैंने तदनुसार ही किया कि तुम्हारे ही ध्यान में एकाग्र चित्त से लगकर तुम्हारे आगमन की राह देखती रही सो गुरुओं का कहा आज सब सफल हुआ।।१६।। हे राम! तुम्हारा दर्शन मेरे गुरुओं तक को नहीं हुआ फिर मैं तो स्त्रीजाति तिस पर भी मूढ़ और हीन जाति में उत्पन्न हुई सो हे परमात्मा! मुझे आपका दर्शन हुआ, यह मेरा अहो भाग्य हैं।।१७।। तुम्हारे दास के दास का जो दास उसका जो दास यों सौ तक गिनने में अंत का जो दास, उसकी दासी होने का भी मुझे अधिकार नहीं है फिर साक्षात् आपकी दासी कैसे हो सकती हूं।।१८।। और हे राम! तुम तो मन और वाणी से अगोचर हो, न जाने मुझे तुम्हारे दर्शन कैसे हो गये और हे देवेश! मैं तुम्हारी स्तुति करना भी नहीं जानती इसलिये आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।।१९।।

श्रीराम उवाच ।। पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषोवाजातिनामाश्रमादयः ।। नकारणंयद्भजनेभक्तिरेवहि कारणम् ।।२०।। यज्ञदानतपोभिर्वाविदाध्ययनकर्मभिः ।। नैवद्रष्टुमहंशक्योमद्भक्तिविमुखैः सदा ।।२१।। तस्माद्भामिनिसंक्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम् ।। सतांसङ्गतिरेवात्रसाधनंप्रथमस्मृतम् ।।२२।। द्वितीयंमत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम् ।। व्याख्यातृत्वंमद्वचसां चतुर्थंसाधनंभवेत् ।।२३।। आचार्योपासनंभद्रेमद्बुद्ध्याऽमाययासदा ।। पञ्चमंपुण्यशीलत्वंयमादिनियमादि च ।।२४।। निष्ठामत्पूजनेनित्यंषष्ठंसाधनमीरितम् ।। ममममन्त्रोपासकत्वं साङ्गंसप्तममुच्यते ।।२५।। मद्भक्तेष्वधिकापूजासर्वभूतेषुमन्मतिः ।। बाह्यार्थेषु विरागित्वंशमादिसहितंतथा ।।२६।। अष्टमंनवमंतत्त्वविचारोममभामिनी ।। एवं नवविधाभक्तिः साधनंयस्यकस्यवा ।।२७।। स्त्रियोवापुरुषस्यापितिर्यग्योनिगतस्यवा ।। भक्तिःसञ्जायतेप्रेमलक्षणाशुभलक्षणे ।।२८ भक्तौसञ्जातमात्रायांमत्तत्त्वानुभवस्तदा ।। ममानुभवसिद्धस्यमुक्तिस्तत्रैवजन्मनि ।।२९।। स्यात्तस्मात्कारणंभक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम् ।। प्रथमंसाधनंयस्यभवेत्तस्यक्रमेणतु ।।३०।।

श्रीरामजी बोले—हे शबरी! पुरुष स्त्री जाति और आश्रम ये मेरे भजन में कोई कारण नहीं है केवल एक भक्ति ही

अ०रा०
२०८

कारण है।।२०।। पुरुष भले ही यज्ञ दान तप और वेदपाठ आदि अन्य कर्म करे परंतु जो भक्ति से विमुख है तो उनको मेरे दर्शन नहीं हो सकते।।२१।। इसलिये हे शबरी! मैं तुझसे थोड़े से में भक्ति का साधन कहूंगा। इसमें संतों की संगति पहला साधन है।।२२।। मेरी कथा का कहना सुनना दूसरा साधन है, मेरे गुणों का कीर्तन तीसरा साधन है और मेरे स्वरूप के प्रतिपादन करनेवाले उपनिषद आदि का व्याख्यान करना चौथा साधन है।।२३।। और हे कल्याणि! सदा मेरे समान जान कपट छोड़ गुरु की सेवा करना पांचवां साधन है और पुण्य में प्रीति करना हिंसा चोरी आदि न करना, सत्य बोलना आदि यम और शौच संतोष करना आदि नियम करना।।२४।। और नित्य मेरे पूजन में लगे रहना, यह छठा साधन कहा है और अंग सहित मेरे मंत्र का जप करना सातवां साधन कहा है।।२५।। मुझसे भी अधिक मेरे भक्तों का सत्कार करना और सब प्राणियों में मेरी सी बुद्धि रखना संसार के भोगों से विरक्त होना और मन आदि इन्द्रियों को वश में रखना यह आठवां साधन है और भामिनि! तत्वमस्यादि वाक्यों से मैं ब्रह्म हूं, ऐसा विचार करना मेरा नववां साधन है। इस प्रकार मेरी नौ भांति की भक्ति है इसका साधन जो कोई करता है।।२६–२७।। वह हे सुन्दर लक्षणी! चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष हो, चाहे पशु पक्षी आदि तिर्यग्योनि हो उसको मेरी सुन्दर भक्ति उत्पन्न होती है और शुद्ध प्रेम ही भक्ति का लक्षण है।।२८।। फिर भक्ति के अनंतर मेरे स्वरूप का ज्ञान होता है और मेरे साक्षात्कार होने से इसी जन्म में मुक्ति हो जाती है।।२९।। इसलिये निश्चय करके भक्ति ही मोक्ष का कारण है और जिसको पहिला साधन सत्संग होता है उसको क्रम क्रम से सब साधन होते हैं। पहिले प्रेमलक्षण भक्ति होती है उससे फिर मुक्ति होती है यह बात निश्चित् है क्योंकि तूने मेरी भक्ति की तो मैं आकर तुझे अपना दर्शन दिया।।३०–३१।।

---

* दृष्टांत–एक नबाब की भगवान् कृष्णचन्द्र का बड़ा इष्ट था। एक दिन भगवान् ने उसे अपना चतुर्भुज रूप दिखाया तब ही से उसे कन्हैया माशूक २ यह झक लग गई। सबेरा होते ही घर से निकल गया और कन्हैया कन्हैया कहता मथुरा पहुँचा और वहां मंदिर में जाने लगा तो इसे मुसलमान जान गुसांइयों ने रोका सो वह बाहर सामने पड़ा रहे। संध्याको गुसांइयोंने कहा फकीर साहब कुछ खानेको तो खा लीजिये।उसने कहा मुझे तो मेरा कन्हैया ही खवावेगा तो खाऊंगा। आखिर सब लोग जाकर सो रहे। जब आधी रात हुई तब भगवान् खुद भोग का थाल लेकर आये और नबाब से बोले कि नबाब साहब भोजन कर लो। उसने कहा मैं तो अपनें कन्हैया के हाथ से करूंगा। तब भगवान् ने कहा कि अजी मैं कन्हैया ही हूं। यह सुन नबाब ने आंखे खोल देखा तो भगवान् के दर्शन कर जीवन्मुक्त हो भोजन किया। उधर सवेरे पुजारियों ने एक थाल कमती देख नबाब से पूछा उसने सब हाल कहा। तब सब कहने लगे कि सत्य तो यों ही है कि 'जाति पांति पूछै नहिं कोई' । हरि को भजै सो हर का होई।

आ०का०
सर्ग
१०

भवेत्सर्वंततोभक्तिर्मुक्तिरेवसुनिश्चितम् ।। यस्मान्मद्भक्तियुक्तात्वततोऽहंत्वामुपस्थितः ।।३१।। इतोमद्दर्शनान्मुक्तिस्तवनास्त्यत्रसंशयः । यदिजानासिमेब्रूहिसीता कमललोचना ।।३२।। कुत्रास्तेकेनवानीताप्रियामेप्रियदर्शना ।।३३।। शबर्युवाच ।। देवजानासिसर्वज्ञसर्वंत्वंविश्वभावन ।। तथाऽपिपृच्छसेयन्मांलोकाननुसृतः प्रभो ।।३४।। ततोऽहमभिधास्यामिसीतायत्राधुनास्थिता ।। रावणेनहृतासीतालंकायांवर्ततेऽधुना ।।३५।। इतः समीपेरामस्तेपम्पानामसरोवरम् ।। ऋष्यमूकगिरिर्नामतत्समीपेमहानगः ।।३६।। चतुर्भिर्मांत्रिभिः सार्धंसुग्रीवोवानराधिपः ।। भीतभीतः सदायत्रतिष्ठत्यतुलविक्रमः ।।३७।। वालिनश्चभयाद् भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात् ।। वालिनस्तत्रगच्छत्वंतेन सख्यंकुरुप्रभो ।।३८।। सुग्रीवेणससर्वंतेकार्यसम्पादयिष्यति ।। अहमग्निंप्रवेक्ष्यामितवाग्रेरघुनन्दन ।।३९।। मुहूर्तंतिष्ठराजेन्द्रयावद्दग्धाकलेवरम् ।। यास्यामिभगवन्रामतवविष्णोः परंपदम् ।।४०।। इतिरामंसमामन्त्र्यप्रविवेशहुताशनम् ।। क्षणान्निर्धूयसकलमविद्याकृतबन्धनम् ।। रामप्रसादाच्छबरीमोक्षंप्रपातिदुर्लभम् ।।४१।। दुर्लभंकिं जगन्नाथेश्रीरामेभक्तवत्सले ।। प्रसन्नेऽधमजन्मापिशबरीमुक्तिमापसा ।।४२।। किंपुनर्ब्राह्मणमुख्याः पुण्याश्रीरामचिन्तकाः ।। मुक्तिंयान्तीतितद्भक्तिर्मुक्तिरेवनसंशयः ।।४३।। भक्तिर्मुक्तिविधायिनीभगवतः श्रीरामचन्द्रस्यहेलोकाःकामदुघांघ्रिपद्मयुगलंसेवध्वमत्युत्सुकाः ।। नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिंत्यक्त्वा सुदूरेभृशंरामंश्यामतनुंस्मरारिहृदये भान्तंभजध्वंबुधाः ।।४४।। इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वसंवादे आरण्यकाण्डे दशमः सर्गः।।१०।।आरण्यकाण्डेभर्गोणसर्गाणादशकंतथा ।। पद्यानांपञ्चशतकंप्रोक्तंपञ्चदशोत्तरम् ।। छ ।। छा।। छा।। छा।

अब इस मेरे दर्शनसे मुक्ति होगी इसमें कुछ संदेह नहीं। अब तू मेरी कमलनयनी सुन्दरी प्यारी सीता का कुछ पता जानती हो तो बता दे कि वह कहां है और उसे कौन ले गया है।।३२।।३३।। शबरी बोली–हे देव! तुम सब जानते हो क्योंकि सब विश्व के रचनेवाले हो तो भी हे प्रभो! तुम साधारण लोगों की भांति मुझसे पूछते हो।।३४।। इसलिये मैं कहती हूं कि जहां इस समय सीताजी विराजमान हैं। देखो सीताजी को रावण हर ले गया है और इस समय वह लंका में है।।३५।। हे राम! यहां से पास ही एक पपासरोवर है और उसके पास एक ऋष्यमूक बड़ा भारी पर्वत है।।३६।। उस

अ०रा० २१०

पर्वत पर अपने भाई वाली के भय से अत्यंत भयभीत हो सदा चार मंत्रियों सहित बड़ा भारी पराक्रमी सुग्रीव नाम बंदरों का राजा रहता है। और हे प्रभो! ऋषि के शाप से वाली नहीं आ सकता इसलिये तुम वहां जाओ और उस सुग्रीव से मित्रता करो। वह तुम्हारा सब काम सिद्ध कर देगा और हे रघुनन्दन! मैं तुम्हारे सामने चिता में बैठ भस्म होती हूं।।३७–३९।। हे राजाधिराज! हे भगवन्! तब तक तुम दो घड़ी ठहर जाओ कि जब तक मैं अपने शरीर को भस्म करके तुम्हारे विष्णुस्वरूप परंपद को जाऊं।।४०।। इस प्रकार रामजी से प्रार्थना कर शबरी अग्नि में जा बैठी और क्षण भर में अविद्या से उत्पन्न हुए अपने सब बन्धन नाश करके रामजी की कृपा से दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त हुई। महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! जगत् के स्वामी भक्तवत्सल रामचन्द्रजी के प्रसन्न होने पर कौनसा पदार्थ दुर्लभ है। नीच कुल में जन्म लेकर भी शबरी तक मुक्त हो गई।।४१।–४२।। फिर ब्राह्मण जो सब में मुख्य पवित्र और श्रीरामजी के उपासक हैं वे मुक्ति पावें तो क्या कहना है। भगवान् की भक्ति मुक्ति ही है इसमें कुछ संदेह नहीं है।।४३।। इसलिये हे लोगो! भगवान् रामचन्द्रजी की भक्ति मुक्ति की देनेवाली है। हे पंडितो! तुम कामधेनु के समान सब कामनाओं के देनेवाले भगवान् के चरण कमलों का प्रीति से सेवन करो। और अज्ञान विशेष से नाना प्रकार के जो बहुत से मंत्रादिकों की जपाजपी है उसे दूर से त्याग महादेवजी के हृदय में प्रकाशमान ऐसे श्यामसुन्दर रामचन्द्र का निरंतर भजन करो।।४४।। इति आगरानिवासी पंडित रामेश्वर भट्टकृत रसालाटीकासहित अध्यात्मरामायण के आरण्यकाण्ड का दशम सर्ग समाप्त हुआ।। शुभम् ।।

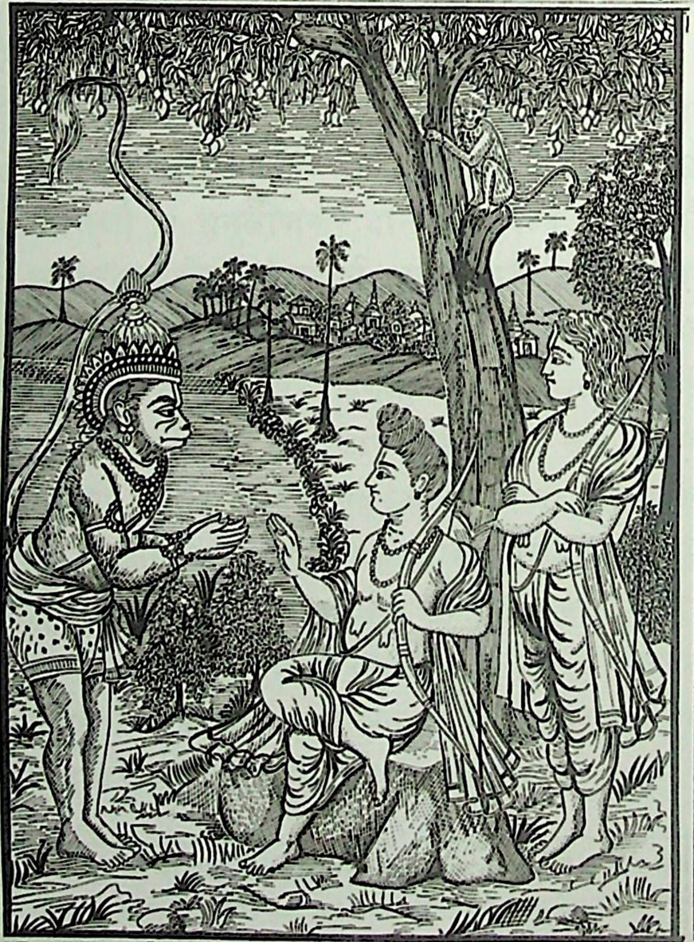
---

* बाली के शाप की कथा आगे किष्किंधाकांड के प्रथम सर्ग में है।

आ०का० सर्ग १०

काफी तिताला–कहो मन रसना श्रीरामारामा नाम प्रताप वेद जस गावत जगत सुधारत कामा। राम सुमिर विधि जग-उपजावत राम समर शिव करत संग्रामा।। राम नाम जप विष्णु जग पालत राम ही अखिल लोक विश्रामा।। रामप्रताप शेष महि धारत रामनाम नारद गुन गाना।। रामहिं सुमिर कोटि खल उधरे अजामेल गनिका गज नामा।। सोई दशरथ घर प्रकट भये हैं सरजूतीर अवधपुर धामा। लाहाराम राखि उर अपने मृदु मूरत सुन्दर घनश्यामा।।१।।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणेहिन्दीटीकासहिते आरण्यकांडं समाप्तम्



अथाध्यात्मरामायणे

भाषाटीकासहिते

किष्किंधाकाण्ड

प्रारम्भः

श्रीमहादेव उवाच ॥ ततः सलक्ष्मणो रामः शनैः पम्पासरस्तटम् ॥ आगत्यसरसांश्रेष्ठंदृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥१॥ क्रोशमात्रंसुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम् ॥ उत्फुल्लाम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णंचक्रवाकादिशोभितम् ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौञ्चनादोपनादितम् ॥ ॥२॥३॥ नानापुष्पलताकीर्णं नानाफलसमावृतम्॥ सतांमनः स्वच्छजलंपद्मकिञ्जल्कवासितम् ॥४॥ तत्रोपस्पृश्य सलिलंपीत्वाश्रमहरंविभुः ॥ सानुजः सरसस्तीरेशीतलेनपथाययौ ॥५॥ ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वेगच्छन्तौराम·लक्ष्मणौ ॥ धनुर्बाणकरौदान्तौजंटावल्कलमण्डितौ ॥ पश्यन्तौविविधान्वृक्षान्गिरेः शोभांसुविक्रमौ ॥६॥ सुग्रीवस्तुगिरेर्मूर्ध्निचतुर्भिः सह वानरैः ॥ स्थित्वाददर्शतौयान्तावारुरोहगिरेः शिरः ॥७॥ भयादाहहनूमन्तं कौतौवीरवरौसखे ॥ गच्छजानीहिभद्रंतेबटुर्भूत्वाद्विजाकृतिः ॥८॥

किष्किन्धाकाण्ड । श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके उपरान्त रामचंद्र लक्ष्मणजी को साथ लेकर तडागों में श्रेष्ठ पपासर के किनारे धीरे धीरे आकर और उसे देखकर बड़े अचंभे में आये॥१॥ उस पंपासरोवर का एक कोस का विस्तार है और उसमें अथाह निर्मल जल भर रहा है अंबुज कल्हार कुमुद और उत्पल आदि जाति जाति के कमल खिल रहे हैं॥२॥ हंस कारंड और चक्रवाक आदि पक्षियों से शोभायमान हो रहा है जलमुरगावियां जल में विहार कर रही हैं और कोयल और क्रौंच चहचहा रहे हैं॥३॥ नाना प्रकार के पुष्प खिल रहे हैं बेलें चढ़ रही हैं भांति भांति के फल लटक रहे हैं। सज्जनों के मन* के समान स्वच्छ जल में कमल की केसरों की लपटें आ रही हैं॥४॥ लक्ष्मणसहित रामजी ने ऐसे पंपासरोवर में स्नान करके श्रम दूर किया और सरोवर के किनारे २ शीतल मार्ग से जाने लगे॥५॥ ऋष्यमूकपर्वत के पास बड़े पराक्रमी और जितेन्द्री राम·लक्ष्मण हाथ में धनुष बाण लिये जटाजूट बांधे छाल के वस्त्र धारण किये भांति

---

*दृष्टांत—दो बाबाजी गुरु और चेला एक बगीचे में आन बैठे। और चेले से बोले कि तू दुनियां को ठगकर ला मैं यहां आंखे मूंदे बैठूं-जो भेंट आयेगी हम तुम आधा आधा ले लेंगे फिर चेला सब जगह जाकर और उनकी तारीफ करके बहुत से लोगों को लाया और खूब भेंट आई दोनों ने आधी २ बांट ली-फिर जो एक बनिये ने २ भेंट किये सो चेले ने १ छुपा लिया और बाबाजी से कहा १ आया है-बाबा ने कहा २ आये हैं मेरा तो मन रुपयों के खटकों में लगा था और मैं जरा जरा देख भी रहा था-सो ऐसा बाबा का सा मन नहीं होना चाहिये।

भांति के वृक्षों और पर्वत की शोभा देखते चले जा रहे हैं।।६।। उस पर्वत के शिखर पर चार वानरों सहित बैठे हुए सुग्रीव ने उन जाते हुए राम लक्ष्मण को देखा और डर के मारे पर्वत की चोटी पर चढ़ गया और हनुमान्‌जी से बोला कि हे मित्र! तुम्हारा भला होय ब्रह्मचारी का भेस बना के उनके पास जाओ और टोह लगाओ कि वे दोनों सुन्दर वीर कौन हैं?।।७।।८।।

वालिना प्रेषितौकिंवामाहंन्तुंसमुपागतौ ।। ताभ्यांसम्भाषणंकृत्वाजानीहृदयंतयोः ।।९।। यदितौदुष्टहृयौ संज्ञांकुरुकराग्रतः ।। विनयावनतोभूत्वाएवंजानीहिनिश्चयम् ।।१०।। तथेतिवटुरूपेणहनुमान्समुपागतः ।। विनयावनतोभूत्वारामंनत्वेदमब्रवीत् ।।११।। कौयुवांपुरुषव्याघ्रौयुवावानौवीरसम्मतौ ।। द्योतयन्तोदिशः सर्वाः प्रभयाभास्कराविवः ।।१२।। युवांत्रैलोक्यकर्तारावितिभातिमनोमम ।। युवांप्रधानपुरुषौजगद्धेतू जगन्मयौ ।।१३।। माययामानुषाकारौचरन्तविवलीलया।। भूभारहरणार्थायभक्तानांपालनायच ।।१४।। अवतीर्णाविहपरौचरन्तौक्षत्रियाकृती ।। जगत्स्थिति लयौसर्गलीलयाकर्तुमुद्यतौ ।।१५।।

कहीं वाली ने तो उन्हें मेरे पास मुझे मारने के लिये नहीं भेजा है हे मित्र! उन दोनों से बातचीत करके उनके पेट की थाह लाओ।।९।। और जो मन में पाप हो तो तुम मुझे उंगली से ईशारा कर देना इस प्रकार विनय नम्र होकर पक्की पक्की बात जानकर आ जाओ।।१०।। बहुत अच्छा कहकर हनुमान्‌जी ब्रह्मचारी का भेष धरकर आये और विनय से नम्रतापूर्वक रामजी को प्रणाम* करके यह बात बोले कि।।११।। तुम दोनों युवावस्थावाले सुन्दर वीर और सूर्य के

---

* अब यहां यदि कोई इस बात की शंका करे कि हनूमान जी ब्राह्मण ब्रह्मचारी का वेश धरकर गये थे इन्होंने छत्रीरूप रघुनाथजी को प्रणाम क्यों किया? इसका समाधान यह है कि यहां ब्राह्मण क्षत्रीय का विवाद वृथा है यदि हनूमानजी ने विप्ररूप धरा भी था तो क्या ब्राह्मण हो गये थे? तो वानर ही और रूप तो भेद लेने के लिये धरा था। इसलिये उन्होंने रामजी को तपस्वी के वेश में देख अपने ज्ञाति भाव से प्रणाम किया और हनूमानजी ने उन्हें क्षत्री कब माना था जो क्षत्री जानते तो यों क्यों पूछते कि "कौ युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ" और हनूमानजी ने तो ब्राह्मण का ही रूप धरा था परन्तु बड़े बड़े देवता और ऋषि मुनि रामजी को प्रणाम करते हैं अतः यह शंका निर्मूल है। अब यदि दूसरी शंका करो कि हनूमानजी ब्रह्मचारी का ही रूप क्यों धरा और ही किसी का रूप धरते। इसका समाधान यह है कि दूत ब्राह्मण या ब्राह्मण का रूप ही होना चाहिये यह राजनीति है जैसा कहा है कि "भक्तो गुणी शुचिर्दक्ष प्रगल्भोऽव्यसनी क्षमी । ब्राह्मणः परमर्मज्ञो दूतः स्यात्प्रतिभाववान्" अर्थात् जो राजभक्त गुणी शुद्ध कहिये रिशवत् न लेनेवाला चतुर बोलने में निपुण अवगुण रहित क्षमाशील बुद्धिमान् और शत्रु का भेद जाननेवाला ऐसा ब्रांह्मण दूत होना चाहिये।।

समान अपनी कांति से दशों दिशाओं को प्रकाशमान् करते हुए कौन हो?॥१२॥ मेरे मन में तो यह भासता है कि हो न हो तुम दोनों तीनों लोकों के रचनेवाले जगत् के कारण और जगत् के स्वरूप प्रधान पुरुष हो॥१३॥ तुम दोनों माया से मनुष्य रूप धारण कर लीला करते फिरते हो तुमने पृथ्वी का भार उतारने के लिये और भक्तों की रक्षा के लिये इस संसार में अवतार लिया है। तुम क्षत्रियों का सा भेष बनाये फिरते हो परन्तु हो प्रकृति से परे परमात्मा और तुम लीला से ही जगत् के उत्पन्न पालन और नाश करने में समर्थ हो॥१५॥

स्वतंत्रौप्रेरकौसर्वंहृदयस्थाविहेश्वरौ ॥ नरनारायणौलोकेचरन्तावितिमेमतिः ॥१६॥ श्रीरामोलक्ष्मणंप्राह-पश्यैनंबटुरूपिणम् ॥ शब्दशास्त्रमशेषेणश्रुतंनूनमनेकधा ॥१७॥ अनेनभाषितंकृत्स्नंनकिञ्चिदपशब्दितम् ॥ ततः प्राहहनूमन्तंराघवोज्ञानविग्रहः ॥१८॥ अहंदाशरथीरामस्त्वयंमेलक्ष्मणोऽनुजः ॥ सीतयाभार्ययासार्धंपितुर्वचनगौरवात् ॥१९॥ आगतस्तत्रविपिनेस्थितोऽहंदण्डकेद्विज ॥ तत्रभार्याहृतासीतारक्षसाकेनचिन्मम ॥२०॥ तामन्वेष्टुमिहायातौत्वंकोवाकस्यवावद ॥ बटुरुवाच ॥ सुग्रीवोनामराजायोवानराणांमहामतिः ॥ चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धंगिरिमूर्धनितिष्ठति ॥२१॥ भ्राताकनीयान्सुग्रीवोवालिनः पापचेतसः तेननिष्कासितो भार्याहृतातस्येहवालिना ॥२२॥ तद्भयादृष्यमूकाख्यंगिरिमाश्रित्यसंस्थितः ॥ अहंसुग्रीवसचिवोवायुपुत्रो महामते ॥२३॥

तुम स्वतंत्र और अंतर्यामी रूप से सबके प्रेरक साक्षात् ईश्वर भी हो और सबके अंतःकरण में स्थित हो रहे हो बात यह है कि मेरी समझ से तो तुम नारायण* का रूप धारण कर इस लोक में विचर रहे हो यह सुन रामजी लक्ष्मण से बोले कि इस ब्रह्मचारी को देखो इसमें सन्देह नहीं कि इसने अनेक बार संपूर्ण व्याकरण सुना सुनाया है। इसने सब जो कुछ कहा उसमें कहीं अशुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया फिर ज्ञान स्वरूप रामजी हनुमान्जी से बोले कि॥१६॥१७॥१८॥ हे द्विज! मैं दशरथ का पुत्र राम हूं यह मेरा छोटा भैय्या लक्ष्मण है। हम पिता का वचन मानकर सीता नाम अपनी धर्मपत्नी को साथ लेकर आये थे और आकर दंडकवन में ठहरे थे परन्तु वहां से कोई राक्षस मेरी अर्धांगिनी सीता को

* नरनारायण की कथा भागवत के चतुर्थ स्कंध में है।

हर ले गया है॥१९॥२०॥ उसी के ढूंढने के लिये हम यहां आये हैं। अब तुम तो बताओ तुम कौन हो? और किसके पुत्र हो? ब्रह्मचारी ने कहा एक बड़ा बुद्धिमान् वानरों का राजा है उनका नाम सुग्रीव है और वह चार मंत्रियो सहित ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर रहता है॥२१॥ वह सुग्रीव मन के पापी बालि का छोटा भाई है उस वाली ने ही उसको निकाल उसकी भार्या हर लीनी है॥२२॥ उसी के भय से यह ऋष्यमूक पर्वत पर रहता है और हे महाचतुर! मैं सुग्रीव का मंत्री और वायु का पुत्र हूं॥२३॥

हनूमान्नामविख्यातोह्यञ्जनीगसंभवः ॥ तेनसख्यंत्वयायुक्तंसुग्रीवेणरघूत्तम ॥२४॥ भार्यापहारिणंहन्तुं सहायस्तेभविष्यति ॥ इदानीमेवगच्छामआगच्छ यदिरोचते ॥२५॥ श्रीराम उवाच ॥ अहमप्यागतस्तेन सख्यंकर्तुंकपीश्वर ॥ सख्युस्तस्यापियत्कार्यंतत्करिष्याम्यसंशयम्॥२६॥हनूमान्स्वस्वरूपेणस्थितोराममथा-ब्रवीत् ॥ आरोहतांममस्कन्धौगच्छामः पर्वतोपरि ॥२७॥ यत्रतिष्ठति सुग्रीवोमंत्रिभिर्वालिनोभयात् तथेतितस्यारुरोहस्कन्धंरामोऽथलक्ष्मणः ॥२८॥ उत्पपातगिरेर्मूर्ध्निक्षणादेवमहाकपिः ॥ वृक्षच्छायांसमाश्रि-त्यस्थितौतौरामलक्ष्मणौ ॥२९॥

मैं हनूमान् के नाम से प्रसिद्ध और अंजनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूं और हे रघुश्रेष्ठ! उस सुग्रीव के साथ तुम्हारी मित्रता का होना अच्छा है॥२४॥ क्योंकि वह तुम्हारी भार्या हरनेवाले के मारने में सहायक होगा यदि यह बात तुम्हें रुचै तो आइये अभी चलें॥२५॥ श्रीरामचन्द्र बोले-हनुमान् मैं भी उसके साथ मित्रता करने को ही आया हूं और उस मेरे मित्र का भी जो कार्य होगा उसे मैं भी निस्संदेह करूंगा॥२६॥ तब तो हनूमान् अपना निज स्वरूप प्रकट कर रामजी से बोले कि आओ तुमदोनों मेरे दोनों कंधों पर सवार हो लो और जहां बाली के भय से सुग्रीव मंत्रियों के साथ रहता है उस ऋष्यमूक पर्वत परमैं अभी आपको लिये चलता हूं। बहुत अच्छा कहकर राम और लक्ष्मण हनूमानजी के कंधों पर चढ़ लिये॥२७॥२८॥ उन दोनों को लेकर हनूमान् ऐसे उछले कि एक क्षण भर में पर्वत के शिखर पर पहुँच गये और पहुँचकर राम लक्ष्मणजी तो वृक्ष की छाया मैं बैठ गये॥२९॥

हनूमानपिसुग्रीवमुपगम्यकृताञ्जलिः ।। व्येतुतेभयमायातौराजन्श्रीरामलक्ष्मणौ।।३०।। शीघ्रमुत्तिष्ठरामेण सख्यंते योजितंमया ।। अग्निंसाक्षिणमारोप्यतेनसख्यंद्रुतकुरु ।।३१।। ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवः समागम्यरघूत्तम्। वृक्षशाखांस्वयंछित्त्वाविष्टरायददौमुदा।।३२।।हनूमाल्लँक्ष्मणायौदात्सुग्रीवायचलक्ष्मणः।।हर्षेणमहताविष्टाः सर्व एवावतस्थिरे ।।३३।। लक्ष्मणस्त्व ब्रवीत्सर्वंरामवृत्तान्तमादितः ।। वनवासाभिगमनं सीताहरणमेवच ।।३४।। लक्ष्मणोक्तंवचः श्रुत्वासुग्रीवोराममब्रवीत् ।। अहंकरिष्ये राजेन्द्रसीतायाः परिमार्गणम् ।।३५।। साहाय्यमपितेरामकरिष्येशत्रुघातिनः ।। श्रृणुराममयादृष्टंकिञ्चित्ते कथयाम्यहम् ।।३६।। एकदामन्त्रिभिः सार्धंस्थितोऽहंगिरिमूर्धनि ।। विहायसानीयमानांकेनचित्प्रमदोत्तमाम् ।।३७।। क्रोशन्तीरामरामेति दृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि ।। आमुच्याभरणान्याशुस्वोत्तरीयेणभामिनी ।।३८।। निरीक्ष्याधः परित्यज्यक्रोशन्ती तेनरक्षसा ।। नीताहंभूषणान्याशुगुहायामक्षिपंप्रभो ।।३९।। इदानीमपिश्यत्वंजानीहितववानवा ।। इत्युक्त्वानीयरामायदर्शयामासवानरः ।।४०।। विमुच्यरामस्तद्दृष्ट्वाहासीतेतिमुहुर्मुहुः ।। हृदिनिक्षिप्य तत्सर्वंरुरोदप्राकृतोयथा ।।४१।। आश्वास्यराघवंभ्रातालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ।। अचिरेणैवतेरामप्राप्यते जानकीशुभा ।। वारेन्द्रसहायेनहत्वारावणमाहवे ।।४२।। सुग्रीवोऽप्याहहेरामप्रतिज्ञांकरवाणिते ।। समरेरावणंहत्वातवदास्यामिजानकीम् ।।४३।।

उधर हनुमानजी ने सुग्रीव के पास जाकर और हाथ जोड़कर उससे कहा कि हे राजा! तुम्हारा भय दूर हुआ वे दोनों तो राम लक्ष्मणजी निकले और आ भी गये।।३०।। तुम शीघ्र उठो, मैंने रामजी के साथ तुम्हारी मित्रता की जुगत लगाईं है और तुम अग्नि को बीच में साक्षी धर के उनके साथ मित्रता कर लो।।३१।। फिर सुग्रीव बड़ा प्रसन्न हो रामचन्द्रजी के पास आया और स्वयं वृक्ष से एक गुद्दा तोड़कर प्रसन्नता से रामजी को बैठने के लिये दिया।।३२।। हनुमान ने तोड़कर वैसा ही गुद्दा लक्ष्मणजी को दिया और लक्ष्मणजी ने तोड़कर सुग्रीव को दिया फिर सब बड़े भारी प्रसन्न हुए और वहां वृक्ष की शाखाओं पर बैठ गये।।३३।। फिर लक्ष्मणजी ने रामजी का वनवास के लिये आना और सीताजी का हर जाना आदि वृत्तान्त आदि से लेकर अन्त तक सब सुनाया।।३४।। लक्ष्मणजी की कही हुई बात को

सुनकर सुग्रीव ने राम से कहा कि हे महाराज! सीताजी की खोज का मैं बीड़ा उठाता हूं।।३५।। और जिस समय तुम शत्रु वध करो उस समय हे राम! मैं तुम्हारी सहायता करूंगा और हे राम! जो कुछ थोड़ा बहुत मैंने देखा है वह मैं तुमसे कहता हूं, उसे सुनो। एक दिन मैं अपने मंत्रियों सहित पर्वत के शिखर पर बैठा था। उस समय कोई एक सुंदर स्त्री को आकाशमार्ग से लिये जा रहा था।।३६।।३७।। वह स्त्री हे राम! हे राम! ऐसे शब्द पुकार पुकार रोती चली जा रही थी सो हम सब वानरों को पर्वत के ऊपर बैठा देख उस स्त्री ने अपने आभूषण उतारे और ओढ़ने के वस्त्र में उन आभूषणों को बांध नीचे को देख डाल दिये और रोती हुई उस राक्षस के साथ चली गई। हे प्रभो! उन आभूषणों को लाकर मैंने तुरंत उन्हें गुफा में धर दिया।।३८।।३९।। अब तुम उन्हें देख कर पहिचानो कि वे तुम्हारे ही हैं वा नहीं? यह कहकर सुग्रीव ने उन्हें लाकर रामजी को दिखाये।।४०।। राम ने खोलकर उन आभूषणों को देखा और देखकर उन सबको छाती से लगाया और हाय सीता सीता कह कहकर ऐसा विलाप किया जैसे कोई साधारण पुरुष रोता हो।।४१।। लक्ष्मण भैया रामजी को ढांढस देकर यह बात बोले कि हे प्रभो! घबराये क्यों जाते हो। वानरराज सुग्रीव की सहायता से रावण मारा जाएगा और बहुत जल्दी तुम्हें सुन्दर जानकीजी मिल जायंगी।।४२।। इधर सुग्रीव ने भी कहा कि हे राम! मैं तुमसे छाती ठोककर कहता हूं कि समर में रावण को मारकर तुम्हें जानकी ला दूंगा।।४३।।

ततोहनूमान्प्रज्वाल्यतयोरग्निं समीपतः ।। तावुभौरामसुग्रीवावग्नौसाक्षिणि तिष्ठति ।।४४।। बाहू प्रसार्यचालिङ्ग्य परस्परमकल्मषौ समीपेरघुनाथस्यसुग्रीवः समुपाविशत् ।।४५।। स्वोदंतंकथयामास प्रणयाद्रघुनायक ।। सखेश्रृणुममोदन्तंवालिनायत्कृतंपुरा ।।४६।। मय पुत्रोऽथमायावीनाम्ना परमदुर्मदः ।। किष्किन्धांसमुपागत्यवालिनंसमुपाह्वयत् ।।४७।। सिंहनादेनमहतावालीतुतदमर्षणः।। निर्ययौक्रोधताम्राक्षो जघानदृढमुष्टिना ।।४८।। दुद्रावतेनसंविग्नोजगामस्वगुहांप्रति ।। अनुदुद्रावतंवालीमायाविनमहंतथा ।। ततः प्रविष्टमालोक्यगुहां मायाविनंरुषा ।।४९।। वालीमामाहतिष्ठत्वंबहिर्गच्छाम्यहंगुहाम् ।। इत्युक्त्वा प्रविश्यगुहांमासमेकं निर्ययौ ।।५०।। मासादूर्ध्वंगुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरंबहु ।। तद्दृष्टवापरितप्ताङ्गो मृतोवालीतिदुःखितः ।।५१।।

फिर हनुमानजी ने दोनों के पास अग्नि जलाई और रामजी और सुग्रीव दोनो ने अग्नि* को साक्षी कर।।४४।। निष्कपट भाव से भुजा पसार आपस में छाती से छाती मिलाकर मित्रता की और सुग्रीव रामजी के पास बैठ गये।।४५।। और बड़ी नम्रता से अपना वृत्तान्त रामजी से कहा कि हे मित्र! मेरा हाल सुनो कि जैसा कुछ वाली ने मेरे साथ पहिले अन्याय कर रखा है।।४६।। एक मयदानव का पुत्र बड़ा अहंकारी कि जिसका नाम मायावी है किष्किन्धा आया और बाली को युद्ध करने के लिये ललकारने लगा।।४७।। इधर वाली भी उसके शब्द को न सहकर सिंह का सा नाद करता हुआ घर से बाहर निकला और क्रोध से लाल लाल आंखे फाड़ उसने उस मायावी के ऐसा जोर से एक घूंसा जमाया कि।।४८।। वह बड़ा घबराया और अपनी गुफा के सामने तुरंत धाया चला गया फिर मैंने और बाली ने दौड़कर उस मायावी का पीछा किया। फिर मायावी को गुफा में घुसा देखकर बाली क्रोधित हो मुझसे कहने लगा कि तू तो बाहर ठहर और मैं गुफा में जाता हूं। यह कहकर वह गुफा में घुस गया और एक मास तक बाहर न निकला।।४९।।५०।। एक महीने पीछे गुफा के द्वार से बहुत सा लोहू निकला। उसे देखकर मेरे शरीर में बड़ा संताप हुआ और बाली को मरा जान मैं बड़ा दुःखी हुआ।।५१।।

गुहाद्वारिशिलामेकांनिधायगृहमागतः ।। ततोऽब्रुवंमृतोवालीगुहायांरक्षसाहतः ।।५२।। तच्छ्रुत्वादुःखिता सर्वेमामनिच्छन्तमप्युत ।। राज्येऽभिषेचनंचक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः ।।५३।। शिष्टंतदामयाराज्यं किंचित्कालमरिंदम ।। ततः समागतोवालीमामाह परुषं रुषा ।।५४।। बहुधा भर्त्सयित्वामांनिजघान च मुष्टिभिः ।। ततोनिर्गत्यनगरा दधावंपरयाभिया ।।५५।। लोकान्सर्वान्परिक्रम्यत्र्यृष्यमूकंसमाश्रितः ।। ऋषे शापभयात्सोऽपिनायातीमांगिरिंप्रभो ।।५६।। तदादिममभार्यांसस्वयंभुक्तेविमूढधीः ।। अतोदुःखेनसन्तप्तो हृतदारोहृताश्रयः ।।५७।। वसाम्यद्यभवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम्।मित्रदुःखेनसन्तप्तोरामोराजीवलोचनः

* यहां कोई शंका करे कि अग्नि को ही साक्षी क्यों किया। किसी दूसरे देवता को क्यों नहीं किया? उसका समाधान यह है कि अग्नि को साक्षी करने से सब देवता साक्षी हो जाते हैं क्योंकि जो कुछ अग्नि में होमा जाता है उसमें सब देवता अपना अपना भाग पा लेते हैं और जो अन्य देवता को साक्षी करते तो एक ही साक्षी होता। सब देवता नहीं हो सकते। इसलिये अग्नि को ही साक्षी कर मित्रता की।

।।५८।। हनिष्यामितवद्वेष्यंशीघ्रंभायपहारिण ।। इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्यपुरस्तदा ।।५९।। सुग्रीवोऽप्याहराजेन्द्रवालीबलवतांबली ।।कथंहनिष्यति भवान्देवैरपिदुररासदम्।।६०।।शृणुतेकथयिष्यामित-द्बलंबलिनांवर ।। कदाचिद्दुन्दुभिर्नाममहाकायोमहाबलः ।।६१।। किष्किन्धामगमद्रामममहामर्हिषरूपधृक् ।। युद्धायवालिनंरात्रौसमाह्वयत भीषणः ।।६२।।

फिर मैं गुफा के द्वार पर एक शिला ढ़ककर अपने घर लौट आया और आकर कह दिया कि बाली मर गया। राक्षस ने उसे गुफा में मार डाला।।५२।। यह सुनकर सब बड़े दुःखी हुए और उधर मैंने बहुतेरा मना किया परंतु सब वानर मंत्रियों ने मिलकर मुझे राजगद्दी पर बैठा दिया।।५३।। और शत्रु नाशक थोड़े दिन तक तो मैंने राज्य का पालन किया परंतु फिर वाली आ गया तो उसने क्रोध कर मुझसे बड़े कठोर वचन कहे।।५४।। और अनेक प्रकार से मुझे धमकाकर उसने घूंसो से मेरी खूब खबर ली। फिर मैं मारे डर के नगर से निकल भागा।।५५।। और सब लोको में घूम घामकर मैंने ऋष्यमूकपर्वत पर आकर विश्राम लिया क्योंकि हे प्रभो! मातंग ऋषि के शाप भय से वह बाली इस पहाड़ पर नहीं आता।।५६।। और उस दिन से वह मूर्ख मेरी स्त्री के साथ स्वयं भोग विलास करता है। इसलिये स्त्री के छिन जाने से और किसी का मुझे आसरा न रहने से दुःख के मारे व्याकुल हो मैं इस पर्वत पर रहता हू। आज आपके चरणकमल छूकर मेरा जी में जी आया है। कमलसमान विशाल नेत्रवाले रामजी मित्र के दुःख से बड़े विकल हुए।।५७।।५८।। और उन्होंने सुग्रीव के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं तेरी भार्या को हरनेवाले शत्रु को शीघ्र न मारूं तो मेरा नाम राम नहीं।।५९।। सुग्रीव ने कहा—हे महाराज! बाली तो बलवानों में ऐसा बड़ा बली है कि देवताओं से भी हराया नहीं हारता, तुम उसे कैसे मारोगे।।६०।। और हे वीर शिरोमणि! उसके बल को मैं कहता हूं उसे सुनिये। हे राम! एक समय दुंदुभीनाम दैत्य बड़ा पराक्रमी और उसका शरीर ऐसा बड़ा कि देखते ही डर लगे।।६१।। बड़े भारी भैंसे का रूप धरकर किष्किन्धा में आया और रात्रि में बाली को युद्ध के लिये ललकारने लगा।।६२।।

तच्छ्रुत्वाऽसहमानोऽसौवालीपरमकोपनः ।। महिषंभृङ्ग्योर्धृत्वापातयामासभूतले ।।६३।। पादेनैकेनतत्काय माक्रम्यास्य शिरोमहत् ।। हस्ताभ्यांभ्रामयंश्छित्त्वातोलयित्वाक्षिपद्भुवि ।।६४।। पपाततच्छिरोराममातंगा-

श्रमसन्निधौ ।। योजनात्पतितं तस्मान्मुनेराश्रममण्डले ।।६५।। रक्तवृष्टिं पपातोच्चैर्दृष्ट्वातांक्रोधमूर्च्छितः ।।मातङ्गोवालिनंप्राहद्यागन्तासिमेगिरिम।।६६।।।। इतः परंभग्नशिरामरिष्यसिनसंशयः।।एवंशप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकंनयात्यसौ ।।६७।। एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्रवसामिभयवर्जितः ।। रामपश्य शिरस्तस्यदुन्दुभेः पर्वतोपमम् ।।६८।। तत्क्षेपणेयदाशक्तः शक्तस्त्वंवालिनोवधे ।। इत्युक्त्वादर्शयामासशिरस्तद्गिरिसन्निभम् ।।६९।। दृष्ट्वारामः स्मितंकृत्वापादाङ्गुष्ठेनचाक्षिपत् ।। दशयोजनपर्यंततद्भुतमिवाभवत् ।।७०।। साधुसाध्विवतितं प्राहसुग्रीवोमन्त्रिभिः सह ।। पुनरप्याहसुग्रीवोरामंभक्तपरायणम् ।।७१।।

यह सुनकर और उसकी ललकारको न सहकर वह बाली आपे से बाहर हो गया और उसने भैंसें के दोनों सींग पकड़कर उसे भूमि पर चारों खाने चित्त धर पटका।।६३।। और फिर एक पैर से उसके शरीर को दबाकर दोनों हाथों से उसके शिर को घुमाया और फिर उसे धड़ से अलग कर उसका बोझ अजमा पृथ्वी पर फैंक मारा।।६४।। हे राम! उसका शिर एक योजन दूर मातंगऋषि के आश्रम में जा गिरा सो मातंगऋषि ने बड़े ऊंचे से गिरती हुई उसके रक्त की वृष्टि देखकर बड़े क्रोधित हुए और उन मातंग ऋषि ने बालि को शाप दिया कि अब जो बाली मेरे पर्वत पर आवेगा तो उसका शिर कटकर गिर पड़ेगा और वह मर जाएगा। इसमें संदेह नहीं है। इस शाप के कारण वह उस दिन से इस ऋष्यमूकपर्वत पर नहीं आता।।६५–६७।। यह बात जानकर मैं यहां निडर होकर रहता हूं और हे राम! उस दुंदुभी के पर्वत समान इस शिर को देखो।।६८।। उसके फैंकने में जो तुम समर्थ होगे तो जान लिया जायेगा कि तुम उसके मारने में समर्थ होगे। यह कहकर उसने रामजी को उस पर्वत के समान शिर को दिखाया।।६९।। रामजी ने उसे देखा और हँसकर अपने पैर के अंगूठे से ऐसा ठुकराया कि दश योजन दूर जा पड़ा। भगवान् का यह कार्य बड़ा अनोखा हुआ।।७०।। यह देख मंत्रियों सहित सुग्रीव भगवान् से बोले कि बलिहारी महाराज! बहुत अच्छा! क्या कहना है और सुग्रीव ने फिर भक्तवत्सल रामजी से कहा कि।।७१।।

एतेतालामहासाराः सप्तपश्यरघूत्तम ।। एकैकंचालयित्वासौनिष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ।।७२।। यदित्वमेकबाणेन विध्वाच्छिद्रंकरोषिचेत् ।। हतस्त्वयातदावालीविश्वासोमेप्रजायते ।। तथेतिधनुरादायसायकंतत्रसंदधे ।।७३।।

बिभेदचतदारामः सप्ततालान्महाबलः ।। तालान्सप्तविनिर्भिद्यगिरिंभूमिंचसायकः ।।७४।। पुनरागत्यराम-स्यतूणीरेपूर्ववत्स्थितः ।। ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवोराममाहातिविस्मितः ।।७५।। देवत्वंजगतांनाथः परमात्मान संशयः ।। मत्पूर्वकृतपुण्यौघैः सङ्गतोऽद्यमयासह ।।७६।। त्वांभजन्तिमहात्मानः संसारविनिवृत्तये ।। त्वांप्राप्यमोक्षसचिवंप्रार्थयेऽहंकथंभवम् ।।७७।। दाराः पुत्राधनंराज्यंसर्वंत्वन्माययाकृतम् ।। अतोऽहंदेवदेवेश नाकांक्षेऽन्यत्प्रसीदमे ।।७८।।आनन्दानुभवंत्वाद्यप्राप्तोऽहंभाग्यगौरवात्।। मृदर्थंयतमोनेननिधानमिवसत्यते ।।७९।। अनाद्यविद्यासंसिद्धंबन्धनंछिन्नमद्यनः ।। यज्ञदानतपः कर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ।।८०।।

हे राम! अब आप इन बड़े भारी सात ताल वृक्षों को देखिये। बाली इनमें से एक एक को हिलाकर क्षणमात्र में इन सबका पतझड़ कर देता है।।७२।। यदि तुम एक ही बाण से वेधकर इनमें एक साथ छेद दोगे तो मुझे भरोसा हो जायगा कि तुमने वाली को मार लिये। बहुत अच्छा, ऐसा कहकर भगवान् ने धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया।।७३।। और महाबलशाली रामजी ने उन सात तालवृक्षों को एक साथ वेध दिया और फिर उनका बाण सात तालवृक्षों को और भूमिपर्वत को वेधकर फिर आकर राम के तरकस में पहिले की तरह घुस गया। तब तो सुग्रीव बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़ा आश्चर्य करके रामजी से बोला।।७४।।७५।।। हे देव! तुम जगत् के नाथ और साक्षात् परमात्मा हो, इसमें सन्देह नहीं है। मेरे पूर्वजन्म के किये हुए पुण्यों से मेरे साथ आपका समागम हुआ है।।७६।। महात्मालोग संसार से मुक्त होने के लिये तुम्हारा भजन करते हैं सो मोक्ष के देनेवाले आपको पाकर मैं संसारी सुख की कैसे प्रार्थना करूं।।७७।। स्त्री, पुत्र, धन और राज्य यह सब तुम्हारी माया का किया हुआ है इसलिये हे देवों के देव! अब मेरी जितनी लालसा थी सब दूर हो गई, मैं कुछ नहीं चाहता। केवल तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ।।७८।। और हे संतरक्षक! जैसे किसी को मिट्टी खोदते में खजाना मिल जाय, ऐसे ही आज मुझे बड़े भाग्य से आपके दर्शनरूपी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ है।।७९।। और आज मेरा माया से उत्पन्न विषय वासनारूप बंधक कट गया और यज्ञ दान तप और अग्निहोत्र आदि इष्ट कर्म और वापी कूप तड़ागादि पूर्त कर्म इनसे यह संसार घटता नहीं वरन् अधिक अधिक दृढ़ होता है।।८०।।

नजीर्यतेपुनर्दार्ढ्यं भजतेसंसृतिः प्रभो ।। त्वत्पाददर्शनात्सद्योनाशमेति न संशयः ।।८१।। क्षणार्धमपियच्चि-

तंत्वयितिष्ठत्यचञ्चलम् ॥ तस्याज्ञानमनर्थानांमूलंनश्यतितत्क्षणात् ॥८२॥ तत्तिष्ठतुमनोरामत्वयिनान्यत्रमे सदा॥८३॥रामरामेतियद्वाणीमधुरंगायतिक्षणम्॥सब्रह्महासुरापोवामुच्यतेसर्वपातकैः॥८४॥नकांक्षेविजयं- रामनचदारसुखादिकम् ॥ भक्तिमेवसदाकाङ्क्षेत्वयिबन्धविमोचनीम् ॥८५॥ त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहं रघूत्तम्॥ स्वपादभक्तिमादिश्यत्राहिमांभवसङ्कटात् ॥८६॥ पूर्वंमित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः ॥ आसन्मेऽद्यभवत्पाददर्शना देवराघव ॥८७॥ सर्वंब्रह्मैवमेभातिक्वमित्रंक्वचमेरिपुः ॥ यावत्त्वन्माययाबद्धस्ता- वद्गुणविशेषता ॥८८॥ सायावदस्तिनानात्वंतावद्भवतिनान्यथा ॥ यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतं- भयम्॥८९॥ अतोऽविद्यामुपास्तेयः सोऽन्धेतमसिमज्जति ॥ मायामूलमिदंसर्वंपुत्रदारादिबन्धनम् ॥ अतोत्सारयमायांत्वंदासीं तवरघूत्तम् ॥९०॥

और हे प्रभो! आपके दर्शन से तो शीघ्र नाश हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है॥८१॥ जिसका चित्त स्थिर होकर आधे भी तुम्हारे ध्यान में लगे तो सब अनर्थों का मूल कारण उसका अज्ञान तत्काल नष्ट हो जाय॥८२॥ सो हे राम! मैं यह मांगू कि मेरा मन सदा तुममें लगा रहे और जगह न जाय॥८३॥ और जिस पुरुष की वाणी 'राम राम' ये मधुर अक्षर क्षण भर भी गान करती है वह ब्रह्मघाती हो वा मदिरापान करता हो, सब पापों से छूट जाता है॥८४॥ इसलिये हे राम! न तो मैं विजय को चाहता हूं न स्त्री सुखादिक को चाहता हूं। मैं तो भवबन्धन से छुड़ाने वाली तुम्हारी अटल भक्ति चाहता हूं॥८५॥हे रघुनाथ! मैं तुम्हारा ही अंश और तुम्हारी ही माया से मुझे यह संसार भोगने को मिला है। सो आप मुझे अपने चरणारविन्दों की भक्ति का उपदेश करके इस संसाररूपी संकट से मेरा उद्धार कीजिये॥८६॥ और पहिले जब मेरा चित्त तुम्हारी माया से मोहित हो रहा था तब तो मेरे मित्र, शत्रु और उदासीन सम थे परंतु हे राघव! आज आपके चरणकमलों के दर्शन से ही मुझे सब जगत् ब्रह्मरूप प्रतीत हो रहा है। कौन मेरा शत्रु और कौन मेरा मित्र है यह सब भेद जाता रहा अर्थात् मुझे अब बाली शत्रु नहीं दीखता। हे राम! जब तक यह जीव तुम्हारी माया से बँधा हुआ है तभी तक उसके गुण असर करते हैं॥८७॥८८॥ और जब तक माया रहती है तब तक शत्रु मित्र उदासीनरूप भेद बुद्धि रहती है और जब तक अज्ञान से भेद बुद्धि रहती है तभी तक मृत्यु का भय रहता है॥८९॥ इसलिये जो माया का

सेवन करता है वह संसाररूपी अंधतम नरक में डूबा ही रहता है क्योंकि सब पुत्र स्त्री आदि का बन्धन माया का ही रचा हुआ है इसलिये हे राघव! अपनी दासी माया को दूर कर दीजिये।।९०।।

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासुवाणी ।। त्वद्भक्तसेवानिरतौ करोमेत्वदङ्गसङ्गंलभतां मदङ्गम् ।।९१।। त्वन्मूर्तिभक्तान्स्वगुरुंचचक्षुः पश्यत्वजस्रंसशृणोतुकर्णः ।। त्वज्जन्मकर्माणिचपादयुग्मंव्रजत्वजस्रंतवमन्दिराणि ।।९२।। अङ्गानितेपादरजोविमिश्रतीर्थानिबिभ्रत्वहिशत्रुकेतो ।। शिरस्त्वदीयंभवपद्मजाद्यैर्जुष्टंपदंरामनमत्वजस्रम् ।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ।।१।।

हे राम! मेरा मन तुम्हारे चरणों में लगा रहे। वाणी तुम्हारे नाम का कीर्तन करे और तुम्हारी कथा सुने मेरे हाथ तुम्हारे भक्तों की सेवा में रहे और मेरा अंग तुम्हारे अंग के संग रहे।।९१।। मेरे नेत्र तुम्हारी मूर्ति को और गुरु को देखा करें। मेरे कान तुम्हारे जन्म और कर्मको निरंतर सुना करें और मेरे पैर सदा तुम्हारे मंदिर के जाने आने में लगे रहें।।९२।। और हे गरुड़ध्वज! अंग तुम्हारी चरणरजसे मिले हुए गंगादि तीर्थों के जल को धारण करें और हे राम! मेरा सिर शिव ब्रह्मा आदि से सेवित तुम्हारे चरणकमलों को सदा प्रणाम करता रहे।।९३।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किंधाकांड का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।।१।।

श्रीमहादेव उवाच! इत्थंस्वात्मपरिष्वङ्गनिर्धूताशेषकल्मषम् ।। रामः सुग्रीवमालोक्यसस्मितंवाक्यमब्रवीत् ।।मायांमोहकरींतस्मिन्वितन्वन्कार्यसिद्धये ।। सखेत्वदुक्तंयत्तन्मांसत्यमेवनसंशयः।।२।। किंतुलोकावदिष्यन्ति मामेवंरघुनन्दनः ।। कृतवान्किंकपीन्द्रायसत्यंकृत्वाग्निसाक्षिकम् ।। इतिलोकापवादोमेभविष्यतिनसंशयः ।। तस्मादाह्वयभद्रंतेगत्वायुद्धायवालिनम् ।।४।। बाणेनैकेनतंहत्वाराज्ये त्वामभिषेचये ।। तथेतिगत्वासुग्रीवः किष्किन्धोपवनंद्रुतम् ।।५।। कृत्वाशब्दंमहानादंतमाह्वयतवालिनम् ।। तच्छ्रुत्वाभ्रातृनिनदंरोषताम्रविलोचनः ।।६।। निर्जगामगृहाच्छीघ्रंसुग्रीवोयत्रवानरः ।। तमापतन्तंसुग्रीवः शीघ्रंवक्षस्यताडयत् ।।७।। सुग्रीवमपिमुष्टिभ्यांजघानक्रोधमूर्च्छितः वालीतमपिसुग्रीवएवंक्रुद्धौपरस्परम् ।।८।।अयुद्धचेतामेकरूपौदृष्ट्वारामोऽतिविस्मितः ।। नमुमोचतदाबाणंसुग्रीववधशङ्कया ।।९।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जब सुग्रीव ने ऐसी ज्ञान की बातें कीं तब रामजी ने सुग्रीव को अपने शरीर के आलिंगन के कारण संपूर्ण पापों से रहित देखकर अपने कार्य सिद्ध होने के लिये फिर अपनी मोह करनेवाली माया को उस पर फैलाई और हँसकर उससे बोले कि हे सखा! जो तुमने मुझसे कहा है सो ज्यों का त्यों है, इसमें संदेह नहीं।।२।। परंतु सब लोग मुझसे यों कहेंगे कि अग्नि को साक्षी करके जो बाली के मारने की सत्य प्रतिज्ञा की थी सो क्या किया अर्थात् नहीं मारा।।३।। सो मेरी यह निन्दा संसार में फैले बिना नहीं रहेगी। हे सुग्रीव! तू बाली के यहां जाकर उसे युद्ध के लिये ललकार, इसी में तेरा भला है।।४।। मैं एक ही बाण से उस बाली को मारकर तुझे किष्किन्धा का राजतिलक कर दूंगा। यह सुन सुग्रीव ने कहा बहुत अच्छा और तुरंत किष्किन्धा के बगीचे में चला गया।।५।। और वहां भयंकर शब्द कर उस बाली को युद्ध के लिये बुलाने लगा। भाई के शब्द को सुनकर बाली अपने आंखों को क्रोध से लाल लाल करके शीघ्र बाहर निकला और वहां आया कि जहां सुग्रीव राह देख रहा था। और उसके सन्मुख आते ही सुग्रीव ने तुरत उसकी छाती पर एक घूंसा जमाया।।६।।७।। फिर वाली ने भी क्रोध में भरकर सुग्रीव के दोनों हाथों से घूंसे जमाये फिर सुग्रीव ने वाली को मारा उस प्रकार क्रोधित हो पैंतरे बदल २ कर युद्ध करने लगे परन्तु उन दोनों का एकसा रूप देखकर रामचंद्रजी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इसमें वाली कौनसा है और सुग्रीव कौनसा है? और उन्होंने इस शंका से कि कहीं धोखे में सुग्रीव न मारा जाय अपने बाण को उस समय न छोड़ा।।८।।९।।

ततोदुद्रावसुग्रीवोवमन्रक्तंभयाकुलः ।। वालीस्वभवनंयातः सुग्रीवोराममब्रबीत् ।।१०।। किंमांघातयसेराम शत्रुणाभ्रातृरूपिणा ।। यदि मद्धननेवाञ्छात्वमेवजहिमांविभो।।११।। एवंमेप्रत्ययंकृत्वासत्यवादिन्रघूत्तम ।। उपेक्षसेकिमर्थंमांशरणागतवत्सल ।।१२।। श्रुत्वासुग्रीव वचनंरामः साश्रुविलोचनः ।। आलिंग्यमास्मभैषीस्त्वं दृष्ट्वावामेकरूपिणौ ।।१३।। मित्रवातित्वमांशक्यमुक्तवान्सायकंनहि ।। इदानीमेवतेचिह्नंकरिष्येभ्रमशा-न्तये ।।१४।। गत्वाह्वयपुनः शत्रुंहतंद्रक्ष्यसिवालिनम् ।। रामोऽहंत्वांशपेभ्रातर्हनिष्यामिरिपुंक्षणात् ।।१५।। इत्याश्वास्यसुग्रीवंरामोलक्ष्मणम् ब्रवीत् ।। सुग्रीवस्यगलेपुष्पमालामामुच्यपुष्पिताम् ।।१६।। प्रेषयस्वमहाभा-गसुग्रीवंवालिनंप्रति ।।लक्ष्मणस्तुतदाबद्ध्वागच्छगच्छेतिसादरम् ।।१७।। प्रेषयामाससुग्रीवंसोपिगत्वातथा करोत् ।। पुनरप्यद्भुतंशब्दंकृत्वालिनमाह्वयत् ।।१८।।

फिर सुग्रीव मुख से रक्त गेरता हुआ भय से व्याकुल हो भाग आया और उधर वाली भी अपने घर लौट गया। वहां आकर सुग्रीव ने रामजी से कहा कि ।।१०।। हे राम! भाईरूपी शत्रु से तुम मुझे क्यों मरवाये डालते हो? हे प्रभो! जो तुम्हारी इच्छा मेरे मारने की ही है तो तुम ही मुझे मार डालो।।११।। हे रघुनन्दन! तुम तो सत्यवादी और शरणागतवत्सल बनते हो और पहिले मुझे भरोसा देकर भला अब तुम मुझे क्यों त्यागते हो।।१२।। सुग्रीव का वचन सुनकर रामजी के नेत्रों में आंसू भर आये और उन्होंने सुग्रीव को छाती से लगाकर कहा कि डर मत मैंने तुम दोनों का एकसा* रूप देखकर मित्रघात की शंका से कि कहीं तू न मारा जाय बाण नहीं छोड़ा था अभी मैं तेरे एक चिह्न किये देता हूं कि जिससे आगे को भ्रम न हो।।१३।।१४।। तू फिर जाकर शत्रु को ललकार अबकी बार तू वाली को मरा ही देखेगा और हे भय्या! मैं राम हूं झूठ नहीं बोलता मेरी बात पत्थर की लकीर है तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूं तेरे बैरी वाली को एक बात की बात में मार अलग करूंगा।।१५।। इस प्रकार उन रामचंद्रजी ने सुग्रीव को ढाढस बंधाकर लक्ष्मण से कहा कि सुग्रीव के गले में खिले हुए पुष्पों की माला पहिराकर हे महाभाग! सुग्रीव को वाली के पास लड़ने के लिये विदा कर दो। लक्ष्मणजी ने भगवान् की आज्ञानुसार सुग्रीव के गले में माला पहिराई और बड़े आदर प्रेम से कहा जाओ जाओ और सुग्रीव को भेज दिया और उस सुग्रीव ने भी जाकर वैसा ही किया कि एक बड़ा अनोखा शब्द करके वाली को बुलाया।।१६।।१७।।१८।।

---

* यहां यह शंका होती है कि जब रामजी सुग्रीव और वाली का रूप देखकर यह शंका हो गई कि कौनसा वाली और कौनसा सुग्रीव है तो रघुनाथजी की सर्वज्ञता में दोष आता है इसका समाधान यह है कि रामजी ने जो दोनों को एक रूप कहा उसका भीतर यह आशय है कि रामजी समदर्शी हैं उनका न कोई शत्रु है न मित्र है जो जिस भाव से उनको भजता है उसे वैसा ही फल मिलता है। इधर तो शरणागत सुग्रीव से मित्रता होना और वाली के मारने की प्रतिज्ञा कर देना और उधर बिना अपराध वाली को मारकर अपने समदर्शीपन में दोष लाना ये दोनों पक्ष समान हुए इसलिये रामजी ने सुग्रीव से गुप्तरूप से कहा कि तुम एक रूप हो कुछ यह बात न थी कि वाली को पहिचानकर न मार सकते हों अतएव सर्वज्ञता स्पष्ट है। दूसरा भाव पहिली बार वाली को न मारने का कारण यह भी है कि भाइयों में लड़ाई हुआ ही करती है और फिर आपस मे़ं मेल हो जाता है जो सहसा हम वाली को मार दें तो कदाचित् सुग्रीव को फिर पछतावा हो जैसा पहिले कह चुका है कि " न कांक्षे विजयं राम न च दारसुखादिकम् । भक्तिमेव सदा कांक्षे त्वयि बन्धविमोचनीम्। सर्वं ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्रं क्वचमे रिपुः" इसलिये सुग्रीव का अधिक आग्रह देखकर सोच विचार कर मारेंगे-यहां रामजी की दयालुता, गंभीरता और भक्तवत्सलता पूर्ण रूप से प्रकट है। माला गेरने का तीसरा भाव यह है कि जिसमें वाली माला देखकर सुग्रीव से शत्रुता छोड़ दे और जान जाय कि इस पर मेरी कृपा है। वृक्ष की ओट में छुपकर मारने का चौथा भाव यह है कि वाली मुझे समदर्शी कह चुका है और मुझे सुग्रीव प्यारा है अब भी मान जाय तो अच्छा है।

तच्छ्रुत्वाविस्मितोवालीक्रोधेनमहतावृतः।। बद्ध्वापरिकरंसम्यग्गमनायोपचक्रमे।।१९।। गच्छन्तंवालिनंतारागृहीत्वानिषिषेधतम्।। नगन्तव्यंत्वयेदानींशङ्कामेऽतीवजायते।।२०।। इदानीमेवतेभग्नः पुनरायातिसत्वरः ।। सहायोबलवांस्तस्यकश्चिन्नूनंसमागतः ।।२१।। वालीतामाहहेसुभ्रुशङ्कातेव्येतुतद्गता प्रियेकरंपरित्यज्यगच्छगच्छामितेरिपुम् ।।२२।। हत्वाशीघ्रंसमायास्येसहायस्तस्यकोभवेत् ।। सहायोयदिसुग्रीवस्ततोहत्वोभयक्षणात् ।।२३।। आयास्येमाशुचः शूरः कथंतिष्ठेद्गृहेरिपुम् ।। ज्ञात्वाप्याह्वयमानंहिहत्वा यास्यामिसुन्दरि ।।२४।। तारोवाच ।। मत्तोऽन्यच्छृणुराजेन्द्रश्रुत्वाकुरुयथोचितम् ।। आहमामङ्गदः पुत्रोमृगयायांश्रुतंवचः ।।२५।। अयोध्याधिपतिः श्रीमान्रामोदाशरथिः किल ।। लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयाभार्ययासह ।।२६।। आगतोदण्डकारण्यंतत्रसीताहृताकिल ।। रावणेनसहभ्रात्रामार्गमाणोऽथजानकीम् ।।२७।। आगतोऋष्यमूकाद्रिंसुग्रीवेणसमागतः ।। चकारतेनसुग्रीवः सख्यंचानलसाक्षिकम् ।।२८।।

यह बोल सुनकर वाली को बड़ा अचरज हुआ और बड़े भारी क्रोध में भरकर और अपनी कमर अच्छी तरह कसकर जाने के लिये तैयार हुआ।।१९।। जाते समय वाली को ताराने हाथ पकड़कर मना किया कि अब तुम्हें नहीं जाना चाहिये अब तुम्हारे जाने में मेरे जी में बड़ा भारी खुटका होता है।।२०।। क्योंकि अभी तो सुग्रीव तुमसे पिटकर चला ही गया था और जल्दी से फिर युद्ध करने को लौट आया। जान पड़ता है कि उसे कोई बलवान् हिमायती मिल गया सो वह सुग्रीव के संग आया है इसमें संदेह मत समझना।।२१।। यह सुन वाली ने तारा से कहा कि हे सुंदर भ्रुकुटीवाली! तू इस खुटके को त्याग दे इन बातों में क्या धरा है कि सुग्रीव को कोई सहायक मिल गया और हे प्यारी! मेरा हाथ छोड़कर घर में बैठ मैं तो शत्रु से भिड़ने जाता हूं।।२२।। और उसे मारकर अभी आता हूं और हाल तो उसका कोई हिमायती है नहीं और जो सुग्रीव का हिमायती होगा भी तो दोनों को मार एक क्षण भर में आऊंगा। शोक मत करो अरी देख शत्रु सामने से ललकार रहा है यह जानकर भी भला जो शूर होगा सो घर में कैसे बैठे रहेगा सो हे सुन्दरी! मैं उसे मारकर लौट आऊंगा तू भरोसा रख ।।२३।।२४।। तारा ने कहा हे महाराज मेरी एक बात और सुन लो और सुनकर जो तुम्हें ठीक जचें सो करना। देखो पुत्र अंगद शिकार खेलने गया था सो वह कुछ चर्चा सुन आया है उसकी कही कहती हूं कि-दशरथ

के पुत्र अयोध्या के राजा श्रीमान् रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या सीता समेत ऋष्यमूक पर्वत पर आकर सुग्रीव से मिले हैं और उन्होंने अग्नि को साक्षी करके उससे मित्रता करी है॥२५॥२६॥२७॥२८॥

इतिनिश्चित्यतौयातौनिश्चितं शृणुमद्वचः ॥ इदानीमेवतेभग्नः कथंपुनरुपागतः॥३०॥अतस्त्वंसर्वथावैरंत्यक्त्व सुग्रीवमानय ॥ यौवराज्येऽभिषिच्याशुरामंत्वंशरणंव्रजः ॥३१॥ पाहिमामङ्गदंराज्यंकुलंचहरिपुंगव ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखीतारापादयोः प्रणिपत्यतम् ॥३२॥ हस्ताभ्यांचरणौधृत्वारुरोदभयविह्वला ॥ तामालिङ्ग्य तदावालीसस्नेहमिदमब्रवीत् ॥३३॥ स्त्रीस्वभावाद्बिभेषित्वंप्रियेनास्तिभयंमम ॥ रामोयदिसमायातोलक्ष्मणेनसमंप्रभुः ॥३४॥ तदारामेणमेस्नेहोभविष्यतिनसंशयः ॥ रामोनारायणः साक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥३५॥ भूभारहरणार्थाय श्रुतंपूर्वंमयानघे ॥ स्वपक्षः परमक्षोवानास्तितस्यपरात्मनः ॥३६॥

यह निश्चय करके वे दोनों आये हैं यह बात पत्थर की लकीर है मेरा कहा मानो और जो यह बात न होती तो सुग्रीव अभी तो हारकर गया था और अभी फिर आ जाता यह नहीं हो सकता॥३०॥ इसलिये तुम सब तरह से वैर को छोड़कर सुग्रीव को मना लाओ और उसे युवराज के पद का तिलक कर दो और फिर रामचन्द्रजी की शरण चले जाओ॥३१॥ हे वानरराज! मेरी तथा अंगद राज्य और कुल की रक्षा करो। यह कहकर तारा आँखों में आंसू भरकर बाली के पैरों पड़ी॥३२॥ और दोनों हाथों से चरण पकड़कर भय के मारे गिड़गिड़ाकर रोने लगी। उस समय वाली ने उसे छाती से लगाया और बड़े स्नेह से उससे यह बोला कि ॥३३॥ स्त्री का स्वभाव डरपोक होता है इसलिये तू भय कर रही है। हे प्यारी! मुझे कुछ डर नहीं है और जो कदाचित् लक्ष्मण को साथ लेकर सबके स्वामी रामचन्द्रजी आये भी हैं तो राम के साथ मेरा स्नेह होगा इसमें कुछ संदेह नहीं है क्योंकि रामजी साक्षात् नारायण और सबके स्वामी हैं और उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार लिया है। हे निष्पापिनी! यह मैंने पहिले से सुन रखा है उस परमात्मा का कोई अपना पराया नहीं है॥३४॥३६॥

आनेष्यामिगृहंसाध्विनत्वाच्चरणांबुजम्॥भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्यः सुरेश्वरः॥३७॥ यदिस्वयंसमायाति सुग्रीवोहन्मितंक्षणात् ॥ यदुक्तंयौवराज्यायसुग्रीवस्याभिषेचनम् ॥३८॥ कथमाहूयमानोऽहंयुद्धायरिपुणाप्रिये

॥ शूरोऽहंसर्वलोकानांसंमतः शुभलक्षणे ॥३९॥ भीतभीतमिदंवाक्यंकथंवालीवदेत्प्रिये ॥ तस्माच्छोकंपरित्यज्यतिष्ठसुन्दरिवेश्मनि ॥४०॥ एवमाश्वास्यतारांतांशोचन्तीमश्रुलोचनाम् ॥ गतोवालीसमुद्युक्तः सुग्रीवस्यवधायसः ॥४१॥ दृष्ट्वावालिनमायान्तंसुग्रीवोभीमविक्रमः उत्पपातगलेबद्धपुष्पमालः पतङ्गवत् ॥४२॥ मुष्टिभ्यांताडयामासवालिनंसोऽपितितथा ॥ अहन्वालीचसुग्रीवंसुग्रीवोवालिनंतथा ॥४३॥ रामंविलोकयन्नेवसुग्रीवोयुयुधेयुधि ॥ इत्येवंयुध्यमानौतौदृष्ट्वारामः प्रतापवान् ॥४४॥ बाणमादायतूणीरादैन्द्रेधनुषिसन्दधे ॥ आकृष्यकर्णपर्यन्तमदृश्योवृक्षखण्डगः ॥४५॥

हे पतिव्रता! उन रामजी के चरण कमलों को प्रणाम करके उन्हें घर लिया लाऊंगा क्योंकि जो उनका भजन करता है उसका वह भी स्मरण रखते हैं वे देवताओं के भी ईश्वर और भक्ति से दर्शन देनेवाले हैं॥३७॥ और जो सुग्रीव अकेला आवेगा तो उसी क्षण उसे मार डालूंगा और तैंने जो यह बात कही कि युवराज पद पर सुग्रीव का अभिषेक कर दो॥३८॥ सो हे प्यारी! जो वैरी मुझे युद्ध के लिये बुला रहा है उसका अभिषेक करने से मेरी नाक कैसे रहेगी और हे शुभलक्षणी! मैं तो सब लोकों में बड़ा नामी शूर गिना जाता हूं॥३९॥ सो हे प्यारी! भय से डर करने वाली बात सुग्रीव से कैसे कहे कि चल तुझे युवराज कर दूं इसमें तो मेरी बात बिगड़ जायेगी इसलिये हे सुन्दरी! शोक को छोड़कर अपने घर में बैठ॥४०॥ इस प्रकार शोक करती और रोती हुई तारा को समझा बुझाकर वाली सुग्रीव के मारने के लिये तैयार होकर विदा हुआ॥४१॥ गले में पुष्पोंकी माला पहिरे महापराक्रमी सुग्रीव वाली को आया हुआ देखकर अग्नि में पतंग के समान उछला॥४२॥ और वाली को दोनों घूसों से मारने लगा और वाली सुग्रीव को मारने लगा फिर सुग्रीव वाली का इस प्रकार द्वंद्वयुद्ध होने लगा॥४३॥ सुग्रीव संग्राम में युद्ध करते राम को देखता जाता था अर्थात् ऐसा इशारा करता जाता था कि वाली को जल्दी मारो इस प्रकार युद्ध करते हुए दोनों को देखकर प्रतापी रामचन्द्र ने॥४४॥ तरकस से बाण निकालकर उसे इन्द्र के दिये धनुष पर चढ़ाया और कान तक खैंचकर और वृक्षों के झुंड में छुपकर॥४५॥

निरीक्ष्यवालिनंसम्यग्लक्ष्यंतद्धृदयंहरिः ॥ उत्ससर्जाशनिसमंमहावेगंमहाबलः ॥४६॥ बिभेदसशरोवक्षोवा-

लिनः कम्पयन्महीम् ॥ उत्पपातमहाशब्दंमुञ्चन्सनिपपातह ॥४७॥ तदामुहूर्तंनिःसंज्ञोभूत्वाचेतनमापसः ॥ ततोवालीददर्शाग्रेराममंराजीवलोचनम् ॥ धनुरालम्ब्यवामेन हस्तेनान्येनसायकम् ॥४८॥ बिभ्राणंचीरवसनं जटामुकुटधारिणम् ॥ विशालवक्षसंभ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥४९॥ पीनचार्वायतभुजंनवदूर्वादलच्छविम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांचप्रार्श्वयोः परिसेवितम् ॥५०॥ विलोक्यशनकैः प्राहवालीरामंविगर्हयन् ॥ किंमयापकृतंरामतवयेनहतोऽस्म्यहम् ॥५१॥ राजधर्ममविज्ञायगर्हितंकर्मतेकृतम् ॥ वृक्षखण्डेतिरोभूत्वात्यजतामयिसायकम् ॥५२॥ यशः किंलप्स्यसेरामचोरवत्कृतसङ्गरः ॥ यदिक्षत्रियदायादोमनोर्वंशसमुद्भवः ॥५३॥ युद्धंकृत्वासमक्षंमेप्राप्स्यसेतत्फलंतदा ॥ सुग्रीवेणकृतंकिंतेमयावानकृतंकिमु ॥५४॥ रावणेनहृताभार्यातव-राममहावने ॥ सुग्रीवंशरणंयातस्तदर्थमितिशुश्रुम ॥५५॥

वाली को अच्छी तरह देखा और फिर उसके हृदय का निशाना करके महाबली रामचन्द्रजी ने अपने व्रजतुल्य और बड़े वेग से जानेवाले बाण को छोड़ा॥ वह बाण जाकर वाली के हृदय में लगा कि जिसके मारे वाली बड़े जोर से किकयाता हुआ उछलकर ऐसा गिरा कि उसके गिरने से पृथ्वी थर थर कांपने लगी॥४७॥ इसके उपरान्त घड़ी भर तो बाली अचेत होकर रहा परन्तु फिर जब होश आया तब उसने अपने सामने कमल के समान विशाल नेत्रवाले बांये हाथ में धनुष और दायें में तीर लिये छाल के वस्त्र पहिरे शिर पर जटा मुकुट धारण किये सुन्दर विशाल वक्षस्थल पर कंठ से लेकर घोंटुओं तक लटकती हुई वनमाला से शोभायमान पुष्ट सुन्दर और दीर्घ भुजावाले, नवीन दुर्वादल के समान श्याम सुन्दर, और सुग्रीव तथा लक्ष्मण जिनके दोनों ओर सेवा में खड़े हैं ऐसे रामचन्द्रजी को देखा॥४८॥४९॥५०॥ और देखकर वाली रामचन्द्र को खोटी खरी कहता हुआ उनसे बोला हे राम! मैंने तुम्हारे संग क्या बुराई करी थी कि जिससे तुमने मुझे मारा॥५१॥ राजधर्म के बिना जाने तुमने यह निन्दित कर्म किया है कि वृक्षों की ओट में होकर मेरे ऊपर बाण चलाया॥५२॥ हे राम! चोर की तरह संग्राम करने से तुम्हें क्या यश मिलेगा। जो तुम मनुवंश के असल क्षत्री के पुत्र होते तो मेरे सामने युद्ध करके उसका फल पाते अर्थात् मारे जाते अथवा यश पाते। और सुग्रीव ने तुम्हारे संग क्या किया है और मैंने क्या नहीं किया॥५३॥५४॥ मैंने सुना है कि दंडकवन में से रावण तुम्हारी भार्या को हर ले गया है उसी के लिये तुम सुग्रीव की शरण में आये हो॥५५॥

बत रामनजानीषेमद्बलंलोकविश्रुतम् ॥ रावणंसकुलंबध्वाससीतंलङ्कयासह ॥५६॥ आनयामिमुहूर्तार्धाद्यदि-चेच्छामिराघव॥ धर्मिष्ठइति लोकेऽस्मिन्कथ्यसे रघुनन्दंन ॥५७॥ वानरंव्याधवद्धत्वाधर्मकंलप्स्यसेवद ॥ अभक्ष्यंवानरंमांसंहत्वामांकिंकरिष्यसि ॥५८॥ इत्येवबहुभाषन्तंवालिनंराघवोऽब्रवीत् ॥ धर्मस्यगोप्तालोकेऽस्मिंश्चरामिसशरासनः ॥५९॥ अधर्मकारिणंहत्वासद्धर्मंपालयाम्यहम् ॥ दुहिताभगिनीभ्रातुर्भार्याचैवतथा स्नुषा ॥६०॥ समायोरमतेतासामेकामपिविमूढधीः ॥ पातकीसतुविज्ञेयः सवध्योराजभिः सदा ॥६१॥ त्वंतुभ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायांरमसेबलात् ॥ अतोमयाधर्मविदाहतोऽसिवनगोचर ॥६२॥ त्वंकपित्वान्नजा-निषेमहान्तौविचरन्तियत् ॥ लोकंपुनानासञ्चारैरतस्तान्नातिभाषयेत् ॥६३॥ तच्छ्रुत्वाभयसन्त्रस्तोज्ञात्वा रामंरमापतिम् ॥ वालीप्रणम्यरभसाद्रामं वचनमब्रवीत् ॥६४॥

हे राम! बड़े खेद की बात है कि संसार में प्रसिद्ध मेरे बल को तुम नहीं जानते। जो मैं चाहूं तो रावण को कुल सहित बांध लाऊं और सीता सहित लंका को एक घड़ीभर में उठा लाऊं तो मेरा नाम बाली, नहीं तो नहीं, हे रघुनन्दन! तुम तो संसार में धर्मात्मा कहलाते हो॥५५॥५६॥ भला यह तो कहो कि एक वानर को व्याध की तरह छुपकर मारने से तुम्हें कौनसा धर्म मिलेगा और मेरा मांसभी तो तुम्हारे भोजनके योग्य नहीं है फिर तुम मुझ वानरको मारकर क्या करोगे॥५८॥ जब बाली ने इस प्रकार बहुत से अनर्गल वचन कहे तब रामचन्द्रजी बाली से कहने लगे कि मैं तो धर्म का रक्षक हूं इसलिये इस संसार में धनुष बाण लिये फिरता हूं॥५९॥ और अधर्म करनेवाले को मारकर सद्धर्म की रक्षा करता हूं। बेटी बहन भाई की स्त्री और कन्या ये चारों आपस में समान हैं जो मूर्ख इनमें से एक के साथ भी भोग विलास करता है उसे पातकी जानना चाहिये और राजाओं को चाहिये कि वे सदा पापी का वध करते रहें॥६०॥६१॥ और तू तो छोटे भाई की स्त्री के साथ धींगाधींगी से भोग करता है इसलिये हे वानर! धर्म को जानकर ही मैंने तेरा वध किया है॥६२॥ और हे वानरराज! तू वानर जाति होने से नहीं जानता है कि महात्माजन अपने गमन से लोक को पवित्र करते फिरते हैं, इससे उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये अर्थात् तारा ने तुझे मेरा बोध भी कराया तो भी तू न माना। उस समय तुझे चाहिये था कि सुग्रीव से मिलाप कर मेरे पास सीधा चला आता सो तो तुमने नहीं किया और अब उलटी

मेरी निन्दा कर दोषका भागी बनाता है।।६३।। वाली यह सुनकर और रामजी को लक्ष्मीपति भगवान् जानकर बड़ा भयभीत हुआ और प्रणाम कर प्रसन्न हो यह वचन बोला।।६४।।

रामराममहाभागजानेत्वांपरमेश्वरम्।।अजानतामयाकिञ्चिदुक्तंतत्क्षन्तुमर्हसि।।६५।। साक्षात्त्वच्छरघातेनविशेषेणतवाग्रतः ।। त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभंतवदर्शनम् ।।६६।। यन्नामविवशोगृह्णन्म्रियमाणः परंपदम् ।। यातिसाक्षात्सएवाद्यमुमूर्षोर्मेपुरः स्थितः ।।६७।। देवजानामिपुरुषंत्वांश्रियंजानकींशुभाम् ।रावणस्यावधार्थाय जातंत्वांब्रह्मणार्थितम् ।।६८।। अनुजानीहिमांरामयान्तंत्वत्पदमुत्तमम्।। ममतुल्यबले बालेआङ्गदेत्वंदयां कुरु ।।६९।। विशल्यंकुरुमेरामहृदयंपाणिनास्पृशन् ।। तथेतिबाणमुद्धृत्यरामः पस्पर्शपाणिना ।। त्यक्त्वातद्वानरं देहममरेन्द्रोऽभवत्क्षणात् ।।७०।। वालीरघूत्तमशराभिहतोविमृष्टोरामेण शीतलकरेणसुखाकरेण ।। सद्योविमुच्यकपिदेहमनन्यलंभ्यंप्राप्तः परंपरमहसगणैर्दुरापम् ।।७१।। इति श्रीमद० उमामहे० किष्किन्धाकाण्डद्वितीयेः सर्गः ।।२।। श्रीमहादेव उवाच ।। निहतेवालिनि रणेरामेणपरमात्मना ।। दुद्रुवुर्वानराः सर्वेकिष्किन्धांभयविह्वलाः ।।१।।

हे राम राम हे महाभाग! मैंने जान लिया है कि तुम परमेश्वर हो बिना जाने जो कुछ मैंने तुमसे अनुचित कहा हो उसे क्षमा करिये।।६५।। प्रभो! तुम्हारा दर्शन तो बड़े बड़े योगियों को दुर्लभ है फिर मैं तो साक्षात् तुम्हारे बाण के घात से और उसमें विशेषता यह कि आपके सामने अपने प्राणों को त्यागता हूं इस मेरे भाग्य का क्या कहना।।६६।। प्राणी मरते समय जिसके नाम को बेमन से भी लेकर परमपद को पाता है फिर मरते समय मेरे तो सामने वह भगवान् साक्षात् खड़े हैं मैं परम पद को जाऊं तो क्या आश्चर्य है।।६७।। हे देव! मैं जानता हूं कि तुम साक्षात् नारायण हो और जानकीजी सुन्दर लक्ष्मीजी हैं और ब्रह्माजी की प्रार्थना से तुमने रावण के मारने के लिये अवतार लिया है।।६८।। और हे राम! मैं अब तुम्हारे उत्तम पद को जाता हूं मुझे आज्ञा दीजिये और मेरा पुत्र अंगद मेरे ही समान पराक्रमी है उस पर दया रखना।।६९।। और हे राम! अपने हाथ से मेरे हृदय को छूकर बाण निकाल लीजिये और ज्यों ही रामजी ने उसे अपने हाथ से छूक उसका बाण निकाला त्यों ही वह बानरी देह को त्यागकर तत्काल इन्द्र का स्वरूप हो गया

अर्थात् इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुआ था सो मरकर इन्द्र में ही लय हो गया।।७०।। महादेवजी कहते हैं-हे पार्वती! रामजी के शर से पीडित वाली को जब रामचन्द्र के सुखदाई शीतल हाथ का स्पर्श हुआ सो ही वह वानरदेह को छोड़कर दूसरे को न मिल सके और परमहंसों को दुर्लभ ऐसे परमपद को चला गया।।७१।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किन्धाकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।।२।। श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! जब परमात्मा रामचन्द्र के द्वारा वाली रण में मारा गया तब सब वानर भय से व्याकुल हो किष्किन्धानगरी को भाग गये।।१।।

तारामूचुर्महाभागेहतोवालीरणाजिरे ।। अङ्गदंपरिरक्षाद्यमंत्रिणः परिनोदय ।।२।। चतुर्द्वारकपाटादीन्बध्वा रक्षामहेपुरीम् ।। वानराणांतुराजानमङ्गदंकुरुभामिनि।।३।। निहतंवालिनंश्रुत्वातारा शोकविमूर्छिता ।। अताडयत्स्वपाणिभ्यांशिरोवक्षश्चभूरिशः।।४।।किमङ्गदेनराज्येननगरेणधनेनवा।।इदानीमेवनिधनंयास्यामि पतिनासह ।।५।। इत्युक्त्वात्वरितातत्ररुदतीमुक्तमूर्धजा ।। ययौताराऽतिशोकार्तायत्रभर्तृकलेवरम् ।।६।। पतितंवालिनंदृष्ट्वारक्तैः पांसुभिरावृतम् । रुदतीनाथनाथेतिपतितातस्यपादयोः।।७।। करुणंविलपन्तीसाददर्शरघुनन्दनम् ।। राम मांजहिबाणेनयेनवालीहतस्त्वया ।।८।। गच्छामिपतिसालोक्यंपतिर्मामभिकांक्षते ।। स्वर्गेऽपिनसुखंतस्यमांविनारघुनन्दन ।।९।। पत्नीवियोगजंदुःखमनुभूतंत्वयानघ।। वालिनेमांप्रयच्छाशुपत्नीदानफलंभवेत्।।१०।। सुग्रीवत्वंसुखंराज्यंदापितंवालिघातिना ।। रामेणरुमयासार्धंभुंक्ष्वासापत्नवर्जितम्।।११।

और जाकर उन्होंने तारा से कहा कि हे रानी! वाली तो रणखेत में मारा गया सो तू अब मंत्रियों से कहकर अंगद को बचाया जाय तो बचा ले।।२।। और हम सब बन्दर चारों दरवाजों के फाटक बन्द करके नगरी की रक्षा करते हैं और हे रानी! अंगद को वानरों का राज करना चाहिये।।२।। वाली का मरना सुनकर तारा शोक के मारे मूर्छित हो गई और फिर अपने दोनों हाथों से शिर और छाती को अत्यंत पीटने लगी और बोली कि ।।४।। अरे वानरो! अब मुझे अंगद से राज्य से नगर से वा धन से क्या प्रयोजन है मैं तो अभी पति के साथ सती हो जाऊंगी।।५।। यह कहकर तारा रोती हुई बाल बखेरे औरं शोक से अत्यंत कातर हो शीघ्र वहां गई कि जहां उसके पति का मृतक शरीर पड़ा था।।६।। रक्त और

धूलि से लिपटे हुए वाली को पड़ा हुआ देखकर हा नाथ नाथ! कहकर रोती हुई उसके पैरों में पड़ गई।।७।। और करुणा से विलाप करते करते उसने रामजी को देखा और उनसे बोली कि हे राम! तुमने जिस बाण से वाली को मारा है उसीसे मुझे भी मार डालो।।८।। मैं पति के पास जाने को तैयार हूं क्योंकि पति मेरी राह देख रहा होगा हे रघुनंदन! मेरे बिना उसे स्वर्ग में भी सुख नहीं मिलेगा।।९।। और हे पुण्यात्मन्! पत्नी वियोग से दुःख का तुम अनुभव कर ही चुके हो इसलिये तुम मुझे वाली के पास भेजकर पत्नीदान का फल लो।।१०।। और हे सुग्रीव! वाली को मारकर रामने जो तुम्हें राज्य और सुख दिलाया है उसे तुम अपनी भार्या रुमासहित निष्कण्टक भोगो।।११।।

इत्येवंविलपन्तींतांतारांरामोमहामनाः।।सान्त्वयामासदययातत्त्वज्ञानोपदेशतः।१२।। किंभीरुशोचसिव्यथशोकस्याविषयंपतिम् ।। पतिस्तवायंदेहोवाजीवोवावदतत्त्वतः ।।१३।। पञ्चात्मकोजडोदेहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान् ।। कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापितेपुरः ।।१४।। मन्यसेजीवमात्मानंजीवस्तर्हिनिरामयः ।। नजायतेनम्रियते नतिष्ठतिनगच्छति ।।१५।। नस्त्रीपुमान्वाषण्ढोवाजीवः सर्वगतोऽव्ययः ।। एकएवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपकः ।। नित्योज्ञानमयः शुद्धः सकथंशोकमर्हति ।।१६।। तारोवाच ।। देहोऽचित्काष्ठवद्रामजीवोनित्यश्चिदात्मकः।। सुखदुःखादिसम्बधःकस्याद्राममेवद ।।१७।। श्रीराम उवाच ।। अहंकारादिसम्बन्धोयावद्देहेन्द्रियैः सह।।संसारस्तावदेवस्यादात्मनस्त्वविवेकिनः।।१८।।मिथ्यारोपितसंसारो नस्वयंविनिवर्तते ।। विषयान्ध्यायमानस्यस्वप्नेमिथ्यागमोयथा ।।१९।।

इस प्रकार विलाप करती हुई उस तारा को उदार मन रामजी दया करके ज्ञानचर्चा के उपदेश से धीरज बँधाने लगे।।१२।। हे डरपोकनी! तू अपने पति का वृथा शोक क्यों करती है वह शोक करने योग्य नहीं है तू विचार कर यह तो बतला कि तेरा पति देह है वा जीव है।।१३।। जो देह को पति मानती है तो वह पंचतत्वों से बना मांस रुधिर और हड्डियों से भरा हुआ और जड़ है कुछ कर नहीं सकता और काल और पुण्य पाप कर्म तथा सत्वादि गुण इनसे उत्पन्न हुआ है। यदि यही तेरा पति है तो अभी तक मेरे सामने पड़ा है।।१४।। और जो जीवात्मा को पति मानती है तो जीव विकाररहित है न वह उत्पन्न होता है न मरता है न बैठता है न चलता है।।१५।। न वह स्त्री है न पुरुष है न नपुंसक है

वह जीव तो सर्वव्यापी और अविनाशी है एक है अद्वितीय है और यह आकाश के समान निर्लेप है नित्य है ज्ञानस्वरूप है और शुद्ध है फिर उसके लिये कैसे शोक हो सकता है।।१६।। यह सुन तारा बोली-हे राम! जो देह काष्ठ के तुल्य जड़ है और जीव नित्य ज्ञानमय है तो सुख दुःख का संबन्ध किसको होता है सो मुझसे कहिये।।१७।। श्रीरामजी बोले-जब तक देह और इन्द्रियों में अहंकार का संबन्ध है तब तक विवेकरहित आत्मा को संसार भोगना पड़ता है।।१८।। और हे तारा! यह संसार अज्ञान से होता है अतएव झूठ है परन्तु यह अपने आप नहीं छूटता, कि जैसे कोई पुरुष विषयों का ध्यान करते करते सो जाय तो स्वप्न में भी उसे वे झूठे पदार्थ मिलते हैं और बिना जागे पीछा नहीं छूटता ऐसे ही संसार ज्ञान बिना दूर नहीं होता।।१९।।

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्यहंकृतेस्तथा।। संसारोऽपार्थकोपिस्याद्रागद्वेषादिसंकुलः।।२०।। मनएवहिसंसारो बन्धश्चैवमनःशुभे।। आत्मामनः समानत्वमेत्यतद् गतबंधभाक् ।।२१।। यथा विशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः ।। तत्तद्वर्णयुगाभातिवस्तुतोनास्तिरञ्जनम् ।।२२।। बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात् ।। आत्मास्वलिङ्गंतुमनःपरिगृह्यतदुद्भवान्।।२३।। कामान्जुषन्गुणैर्बद्धः संसारेवर्ततेऽवशः ।। आदौमनोगुणान् सृष्ट्वा ततः कर्माण्यनेकधा ।।२४।। शुक्लोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानतः ।। एवंकर्मवशाज्जीवोभ्रमत्याभूतसंप्लवम् ।।२५।।

अनादि काल के अविद्या के संबन्ध से और उसके कार्य अहंकार से यह झूठा संसार भी राग द्वेष आदि को उत्पन्न करता है।।२०।। और हे कल्याणी! मन* ही संसार का कारण और बंधन करनेवाला है यह जीव मन से मिलकर उसके सुख दुःखादि बंधन को भोगता है।।२१।। जैसे स्फटिक निर्मल श्वेत होता है और यथार्थ में उसमें कोई रंग नहीं होता परन्तु

---

* दृष्टांत—दो मित्र थे वे दोनों परदेश को चले जन्मअष्टमी के दिन दोनों मित्र शहर में आये एक मित्र परमेश्वर के मंदिर में रहा कि व्रत कर भगवान् का चरणामृत लेंगे एक मित्र वेश्या के घर गया-वह बोला हम तो वहां आनन्द करेंगे-फिर मंदिरवाले मित्र ने तो कहा हाय वह वेश्या के यहां आनन्द सुख भोग रहा होगा सो उसका मन तो वेश्या के यहां गया और जो वेश्या के यहां था वह मन में कहने लगा कि मैं बड़ा पापी हूं मेरा मित्र भगवद्भक्ति में लौलीन हो चरणामृत पान करता होगा-इस प्रकार दोनों का मन एक दूसरे में लगा रहा था कि इतने में ही दोनों के प्राण छूट गये-जो मंदिर में था वह नरक को गया और जो वेश्या के यहां था सो वेकुण्ठ में गया-इसलिये सब बात मन से होती है।।

लाख के पास रहने से उसीके समान रंग का दीखने लगता है।।२२।। ऐसे ही बुद्धि और इन्द्रिय आदि की समीपता से आत्मा भी अवश हो संसारी प्रतीत होता है और मन जड़ है उसमें बिना आत्मा के ज्ञान नहीं होता इसलिये आत्मा, अपने अनुमान के साधन रूप मन को ग्रहण करके, अज्ञानी होकर मन से उत्पन्न हुए विषयों को भोगता है और इसलिये राग द्वेष आदि मन के गुणों से बँधकर पराधीन हो संसार में लिप्त होता है और आत्मा पहिले मन के राग द्वेष आदि गुणों को उत्पन्न करके फिर अनेक प्रकार के सत् असत् कर्मों को रचता है।।२३।।२४।। उन कामों के तीन भेद हैं एक शुक्ल अर्थात् हिंसारहित जप ध्यान आदि, दूसरा रक्त कर्म अर्थात् हिंसा जिनमें हो ऐसे यज्ञ आदि, और तीसरा कृष्ण कर्म अर्थात् पापकर्म और इनकी गति भी उन्हीं कर्मों के समान है अर्थात् शुक्ल कर्म की गति ब्रह्मलोक रक्तकर्म की गति स्वर्गलोक और कृष्णकर्म की गति नरकलोक इस प्रकार जीव कर्म के वश प्रलयकाल तक इन गतियों में भ्रमण किया ही करता है।।२५।।

सर्वापसंहृतौजीवोवासनाभिः स्वकर्मभिः ।। अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ।।२६।। सृष्टिकालेपुनः पूर्ववासनामानसैः सह ।।जायतेपुनरप्येवंघटीयन्त्रमिवावशः ।।२७।। यदापुण्यविशेषेणलभतेसङ्गतिंसताम् । मद्भक्तानांसुशान्तानांतदामद्विषयामतिः ।।२८।। मत्कथाश्रवणेश्रद्धादुर्लभाजायतेततः।। ततः स्वरूपविज्ञान-मनायासेन जायते ।।२९।। तदाचार्यप्रसादेनवाक्यार्थज्ञानतः क्षणात् ।। देहेन्द्रियमनः प्राणाहंकृतिभ्यः पृथक्स्थितम् ।।३०।। स्वात्मानुभवतः सत्यमानन्दात्मानमद्वयम् ।। ज्ञात्वासद्योभवेन्मुक्तः सत्यमेव मयोदितम् ।।३१।। एवंमयोदितंसम्यगालोचयतियोऽनिशम् ।। तस्यसंसारदुःखानिनस्पृशन्तिकदाचन ।।३२।। त्वमप्ये-तन्मयाप्रोक्तमालोचयविशुद्धधीः ।। नस्पृश्यसेदुःखजालैः कर्मबन्धाद्विमोक्ष्यसे ।।३३।। पूर्वजन्मनितेसुभ्रूकृता-मद्भक्तिरुत्तमा ।। अतस्तवविमोक्षायारूपं मेदर्शितंशुभे ।।३४।।

और प्रलय समय यह जीव वासना और कर्मोंसहित अंतः करण आदि में मिलकर अनादि अविद्या में लीन हो जाता है।।२६।। और जब सृष्टिकाल होता है तब जीव फिर पूर्वकाल की वासना और कर्म सहित अंतः करण आदि को अनादि अविद्या में से खैंचकर उत्पन्न होता है और इस प्रकार जीवात्मा विवश हो घटी यंत्र अर्थात् रहट के समान घूमता रहता

है॥२७॥ (तारा पूछने लगी कि हे राम! जब यह हाल है तो मुक्ति काहे कों होती होगी तहां राम कहते हैं कि) जब कभी इस जीव को पूर्वजन्म के पुण्यों के प्रभाव अत्यंत शांत स्वभाववाले मेरे भक्तों संतों की संगति हो जाती है तब उसे मेरे बड़े होने की बुद्धि उत्पन्न होती है॥२८॥ फिर मेरी कथा सुनने में श्रद्धा उत्पन्न होती है कि जो संसारी पुरुषों को अतिदुर्लभ है फिर अनायास मेरे स्वरूप का ज्ञान होता है॥२९॥ फिर गुरु की कृपा से तत्त्वमसि आदि महावाक्य के अर्थज्ञान द्वारा शीघ्र ही आत्मा का अनुभव होता है और फिर उससे देह इन्द्रिय, मन प्राण और अहंकार इनसे भिन्न सत्य, आनन्द, द्वैतरहित आत्मा को जानकर शीघ्र ही मुक्त हो जाता है यह मैंने सत्य ही कहा है॥३०॥३१॥ इस प्रकार मेरे कहे हुए ज्ञान को जो अच्छी तरह निरंतर विचार करता है उसको संसारी दुःख कभी स्पर्श तक नहीं करते॥३२॥ और हे तारा! तू भी इस मेरे ज्ञान को निर्मल बुद्धि से विचार कर तो दुःखों के समूह तेरा स्पर्श नहीं करेंगे और तू कर्मबन्धन से छूट जायगी॥३३॥ और हे सुन्दर भ्रुकुटीवाली! पूर्वजन्म में तैंने मेरी बड़ी भक्त करी है इसलिये हे कल्याणी! मैंने तेरे मोक्ष होने के लिये अपने स्वरूप का दर्शन दिया है॥३४॥

ध्यात्वामद्रूपमनिशमालोचयमयोदितम् ॥ प्रवाहपतितंकार्यंकुर्वत्यपिनलिप्यसे ॥३५॥ श्रीरामेणोदितंसर्वंश्रुत्वातारातिविस्मिता ॥ देहाभिमानजंशोकंत्यक्त्वानत्वारघूत्तमम् ॥३६॥ आत्मानुभवसन्तुष्टाजीवन्मुक्ताबभूवह ॥ क्षणसगममात्रेणरामेणपरमात्मना ॥३७॥ अनादिबन्धंनिर्धूयमुक्तासापिविकल्मषा ॥ सुग्रीवोऽपिचतच्छ्रुत्वारामवक्त्रात्समीरितम् ॥३८॥ जहावज्ञानमखिलंस्वस्थचित्तोऽभवत्तदा ॥ ततः सुग्रीवमाहेदंरामोवानरपुङ्गवम् ॥३९॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्यपुत्रेणयद्युक्तंसांपरायिकम् ॥ कुरुसर्वंयथान्यायंसंस्कारादिममाज्ञया ॥४०॥

मेरे स्वरूप का सदा ध्यान करके और मेरे कहे हुए ज्ञान को विचार कर तू संसारी कार्य करती हुई संसारबन्धन से लिप्त नहीं होगी॥३५॥ रामजी ने जो कुछ कहा उसे सुनकर तारा को बड़ा आश्चर्य हुआ और देहाभिमान से उत्पन्न हुए शोक को त्यागकर उसने रामजी को प्रणाम किया॥३६॥ और आत्मज्ञान से संतुष्ट होकर वह जीवन्मुक्त हो गई। और

परमात्मा रामचन्द्रजी की क्षणमात्र की संगति* से।।३७।। अपने अनादि काल के बन्धन को नाश करके और सब पापों से शुद्ध होकर तारा मुक्त हो गई। सुग्रीव भी रामजी के मुख से निकले हुए इस उपदेश को सुनकर।।३८।। सब अज्ञान को खो बैठा और उस समय उसका अंतःकरण शुद्ध हो गया फिर रामजी ने वानरराज सुग्रीव से कहा कि ।।३९।। अपने बड़े भाई के परलोक के लिये जो कुछ संस्कार आदि कर्म होना चाहिये उसे मेरी आज्ञा से विधिपूर्वक अंगद के हाथ से करा दो।।४०।।

तथेतिबलिभिर्मुख्यैर्वानरैः परिणीयतम् ।। वालिनंपुष्पकेक्षिप्त्वासर्वराजोपचारकैः ।।४१।। भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मान्त्रिभिःसह ।।यूथपैर्वानरैः पौरैस्तारयाचाङ्गदेनच ।।४२।। गत्वाचकारतत्सर्वंयथाशास्त्रंप्रयत्नतः ।। स्नात्वाजगामरामस्यसमीपंमन्त्रिभिः सह ।।४३।। नत्वारामस्यचरणौसुग्रीवः प्राहहृष्टधीः ।। राज्यंप्रशाधिराजेन्द्रवानराणांसमृद्धिमत् ।।४४।। दासोऽहंतेपादपद्मंसेवेलक्ष्मणवच्चिरम् ।। इत्युक्तोराघवः प्राहसुग्रीवंसस्मितंवचः ।।४५।। त्वमेवाहंनसन्देहः शीघ्रंगच्छममाज्ञया ।। पुरराज्याधिपत्येत्वंस्वात्मानमभिषेचय ।।४६।। नगरंनप्रवेक्ष्यामिचतुर्दशसमाः सखे ।। आगमिष्यतिमेभ्रातालक्ष्मणः पत्तनंतव ।।४७।। अङ्गदं यौवराज्येत्वमाभिषेचयसादरम् ।। अहंसमीपेशिखरेपर्वतस्यसहानुजः ।।४८।। वत्स्यामिवर्षदिवसांस्ततस्त्वंयत्नवान्भव ।। किञ्चित्कालंपुरेस्थित्वासीतायाः परिमार्गणे ।।४९।। साष्टाङ्गंप्रणिपत्याहसुग्रीवोरामपादयोः ।। यदाज्ञापयसेदेवतत्तथैवकरोम्यहम् ।।५०।।

---

*दृष्टांत—अजामेल ब्राह्मण बडा पापी था वह सदा वेश्या के साथ विहार करता रहता था। एक दिन वह तो जंगल में जीव मारने गया पीछे से उसके घर कई साधु आये और भोजन मांगने लगे उसकी स्त्री ने कहा महाराज! यहां तो हम खुद ही भूखे बैठे हैं घरवाला महाहिंसक चोर और जीवघाती है सो वह वन में गया है-भोजन तो कुछ नहीं है पर थोड़ा अनाज लेते जाओ अन्न देकर स्त्री ने कहा कि महाराज! आप तो साधु हो कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे हमारी दोनों प्राणियों की मुक्ति हो। साधु बोले तेरे कोई पुत्र है। उसने कहा महाराज! मेरे नौ पुत्र मौजूद हैं और दसवां पेट में है। साधु बोले उनका नाम क्या है? उसने कहा-एक का नाम सकटुआ, दूसरे का नाम मकटुआ, तीसरे का नाम रेंदा, चौथे का पदा, पांचवें का लोथा, छठे का पोथा, सातवें का झंगा, आठवें का मंगा, नवें का नंगा इस प्रकार नौ पुत्र हैं। साधु बड़े हँसे कहा राम राम ये नाम। अच्छा अबके जो तेरे दसवां पुत्र हो उसका नाम नारायण रखिये उसीके पुकारने से तुम दोनों की मुक्ति हो जायगी कुछ दिन उपरांत उसके पुत्र हुआ उसका नाम उसने नारायण रखा। जब मृत्यु का समय आया तो अजामेल ने अपने पुत्र नारायण को बुलाया सो ही प्राण निकल गये और वह विष्णुलोक को गया और यही दशा उसकी स्त्री की हुई।

सुग्रीव ने बहुत अच्छा ऐसा कहकर और बड़े बड़े बली मुख्य २ वानरों के द्वारा वाली को शरीर के राजाओं के योग्य वस्त्राभूषण से भूषित कराके पुष्पक विमान के समान विमान पर बैठाया।।४१।। फिर भेरी और नगाड़े आदि बाजे बजाते हुए ब्राह्मण मंत्री सेनापति वानर पुरवासी तारा और अंगद सहित ।।४२।। सुग्रीव ने श्मशान में जाकर शास्त्रविधि से बड़े सावधान होकर दाहादिक कर्म वह सब जो कुछ करना था किया। और फिर शुद्ध से स्नान करके मंत्रियों को साथ लेकर रामजी के पास गया।।४३।। और रामजी के चरणों में प्रणाम कर प्रसन्न चित्त से बोला कि हे महाराज! इस सम्पत्तियुक्त वानरों के राज्य का शासन करिये।।४४।। और मैं तो तुम्हारा दास हूं लक्ष्मणजी के समान तुम्हारे चरणकमलों की बहुत काल तक सेवा किया करूंगा जब सुग्रीव ने यह कहा तब रामचन्द्रजी हँसकर सुग्रीव से यह बात बोले।।४५।। हे सुग्रीव! जो तू है सो मैं हूं इसमें संदेह नहीं है सो मेरी आज्ञा से तू शीघ्र जा और किष्किन्धापुरी की राजगद्दी पर अपना राजतिलक करा ले।।४६।। हे सखा! मैं तो चौदहवर्ष नगर में नहीं जाऊंगा। तेरे नगर में मेरी ओर से मेरा भय्या लक्ष्मण आवेगा।।४७।। और तू अंगद को युवराज पद पर आदरपूर्वक तिलक करा दीजिये। और मैं समीप ही इस प्रर्वषण पर्वत के शिखर पर लक्ष्मणसमेत ।।४८।। वर्षाॠतु तक वास करूंगा। तू थोड़े समय पुर में रहकर फिर सीता के ढूंढने का यत्न कर दीजिये।।४९।। सुग्रीव रामजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर बोले कि जो महाराज आज्ञा देंगे मैं उसे उसी भांति करूंगा।।५०।।

अनुज्ञातस्तुरामेणसुग्रीवस्तुसलक्ष्मणः।।गत्वापुरंतथाचक्रेयथारामेणचोदितः ।।५१।। सुग्रीवेणयथान्यायंपूजितो लक्ष्मणस्तदा ।। आगत्यराघवंशीघ्रंप्रणिपत्योपतस्थिवान् ।।५२।। ततोरामोजगामाशुलक्ष्मणेनसमन्वितः ।। प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वंशिखरंभूरिविस्तरम् ।।५३।। तत्रैकंगह्वरंदृष्ट्वास्फाटिकंदीप्तिमच्छुभम् ।। वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम्।।वासायरोचयामासतत्ररामः सलक्ष्मणः ।।५४।। दिव्यमूलफलपुष्पसंयुतेमौक्तिकोपमजलौघपल्वले ।। चित्रवर्णमृगपक्षिशोभितेपर्वतेरघुकुलोत्तमोऽवसत् ।।५५।। इतिश्री म० रा० उमामहे० किष्किन्धाकाण्डेतृतीयःसर्गः।।३।।श्रीमहादेव उवाच ।।तत्रवार्षिकदिनानिराघावोलीलयामणिगुहासुसञ्चरन् ।।पक्वमूलफलभोगतोषितोलक्ष्मणेनसहितोऽवसत्सुखम्।।१।। वातनुन्नजलपूरितमेघानन्तरस्तनितवैद्युतगर्भान्

।। वीक्ष्यविस्मयमगाद्गजयूथान्यद्वदाहितसुकाञ्चनकक्षान् ।।२।। नवघासंसमस्वाद्यहृष्टपुष्टमृगद्विजाः ।। धावन्तः परितोरामंवीक्ष्यविस्फारितेक्षणाः ।।३।। नचलन्तिसदाध्याननिष्ठाइवमुनीश्वराः ।। रामंमानुषरूपेणगिरिकाननभूमिषु।।४।।चरन्तंपरमात्मानंज्ञात्वासिद्धगुणाभुवि ।। मृगपक्षिगणा भूत्वाराममेवानुसेविरे।।

रामजी की आज्ञा से सुग्रीव लक्ष्मणजी को साथ लेकर किष्किंधापुरी में गया और जैसे रामजी ने बताया था उसी भांति से सब राजतिलक का उत्सव किया।।५१।। सुग्रीव ने लक्ष्मणजी का भी जैसा चाहिये था वैसा अच्छा पूजन सत्कार किया। फिर लक्ष्मणजी शीघ्र लौट आये और रामजी को प्रणाम करके उनके पास बैठ गये।।५२।। इसके अनंतर रामचंद्रजी लक्ष्मण को साथ लेकर प्रवर्षण पर्वत के ऊपर ले शिखर पर चले गये कि जो अच्छा और लंबा चौडा था।।५३।। और जहां कंद मूल फल समीप में मिल सकें और वर्षाधूप और हवा से जहां बचाव हो उस पर्वत पर ऐसी एक स्फटिक की बड़ी प्रकाशयुक्त सुंदर गुफा देखकर वहां राम लक्ष्मणजी ने रुचिपूर्वक अपने रहनेका ठाट जमाया।।५४।। जहां सुन्दर कंद मूल फल लग रहे हैं मोती के समान जहां सरोवरों में निर्मल शीतल जल भर रहे हैं और जहां भांति भांति के रंग जीव जन्तु और पक्षी शोभा दे रहे हैं ऐसे उस पर्वत पर रघुकुलराज रामजी ने निवास किया।।५५।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किन्धाकांड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।।३।। श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! उस प्रवर्षण पर्वत पर लक्ष्मण सहित रामजी नरलीला करते हुए मणिमय गुफाओं में विचरते हुए और पके हुए फल मूल के भोजनों से संतोष करते हुए सुखपूर्वक वर्षाऋतु तक रहें।।१।। वहां उन्होंने सोने की झूलें जिन पर पड़ी हुई हैं ऐसे चिंघारते हुए हाथियों के झुंडों के समान हवा से उड़ाये हुए और जिनके ऊपर बिजली कड़क रही है ऐसे गर्जते हुए जल भरे काले काले मेघों को देखकर बड़ा आश्चर्य किया।।२।। अब उस वर्षाऋतु में नवीन घास पत्र को बड़े चाव से चर चर कर प्रसन्न और पुष्ट मृग पक्षी चारों ओर से दौड़ते हुए दृष्टि से रामजी को देख ऐसे खड़े के खड़े रह जाते हैं कि जैसे मुनिजन ध्यान मगन हो सदा अचल रहते हैं। और सिद्धों के समूह तो पर्वत और वन की भूमियों में विचरते हुये उन रामजी को मनुष्यरूप से परमात्मा जानकर मृग पक्षियों का रूप धरकर पृथ्वी पर रामजी के पीछे पीछे जा उनकी सेवा करते हैं।।४।।५।।

सौमित्रिरेकदाराममेकान्तेध्यानतत्परम् ॥ समाधिविरमेभक्त्याप्रणयाद्विनयान्वितः ॥६॥ अब्रवीद्देवते वाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतोमम ॥ अनाद्यविद्यासम्भूतः संशयोहृदिसंस्थितः ॥७॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामिक्रिया-मार्गेणराघव ॥ भवदाराधनंलोके यथाकुर्वन्तियोगिनः ॥८॥ इदमेवसदाप्राहुर्योगिनोमुक्तिसाधनम् ॥ नारदोऽपितथाव्यासोब्रह्माकमलसम्भवः ॥९॥ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणांचमोक्षदम् ॥ स्त्रीशूद्राणांच राजेन्द्रसुलभंमुक्तिसाधनम् ॥ तवभक्तायमेभ्रात्रेब्रूहिलोकोपकारकम् ॥१०॥ श्रीरामउवाच ॥ ममपूजाविधा-नस्यनान्तोऽस्तिरघुनन्दन॥तथापिवक्ष्येसंक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः॥११॥स्वगृह्योक्तप्रकारेणद्विजत्वंप्राप्यमानवः ॥ सकाशात्सद्गुरोर्मन्त्रंलब्ध्वामद्भक्तिसंयुतः ॥१२॥ तेनसन्दर्शितविधिममिवाराधयेत्सुधीः ॥ हृदयेवाऽ-नलेवर्चित्प्रतिमादौविभावसौ ॥१३॥

एक समय रामजी एकान्तमें बैठे ध्यानमें मगन थे परन्तु जब उनका ध्यान छूटा उस समय लक्ष्मणजी भक्ति और विनय से नम्र होकर भगवान् से बोले कि हे देव! पहिले जो आपने मुझे उपदेश दिया था उससे अनादि अविद्या से उत्पन्न मेरे हृदय का संदेह दूर हो परन्तु हे राघव! अब इस समय कर्ममार्ग से जैसे योगी जन आपका पूजन करते हैं उस विधान को सुनना चाहता हूं॥६॥७॥८॥ और हे राम! नारद व्यास और कमलयोनि ब्रह्मा आदि योगीजन इसी कर्ममार्ग को मुक्ति का साधन बतलाते हैं॥९॥ और तुम्हारा पूजन ब्राह्मण क्षत्री आदि वर्णों को और ब्रह्मचारी आदि आश्रमवालों को मोक्ष देनेवाला है और हे राजेन्द्र! स्त्री और शूद्रों को भी यह सुलभ और मोक्ष का दाता है। मैं तुम्हारा भक्त भाई हूं सो मुझसे इस लोकोपकारक पूजन के विधान को आप कहिये॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे लक्ष्मण! यों तो मेरी पूजा के विधान का अंत नहीं है तो भी संक्षेप से क्रमपूर्वक ठीक ठीक कहता हूं॥११॥ मनुष्य अपने अपने गृह्यसूत्र की रीति से पहिले अपना यज्ञोपवीत करावे फिर गुरु से मंत्र लेकर और गुरु की बताई हुई विधि से बुद्धिमान् को चाहिये कि भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करे। हृदय में मेरा मानसिक पूजन करे वा अग्नि में मेरा हवन से पूजन करे वा प्रतिमा में आवाहन कर मेरा पूजन करे॥१२॥१३॥

शालग्रामशिलायांवापूजयेन्मामतन्द्रितः ॥ प्रातः स्नानंप्रकुर्वीतप्रथमंदेहशुद्धये ॥१४॥ वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रैर्मृल्ले-

पनविधानतः ।। सन्ध्यादिकर्मयन्नित्यंतत्कुर्याद्विधिनाबुधः।।१५।। संकल्पमादौकुर्वीतसिद्ध्यर्थंकर्मणांसुधीः ।। स्वगुरुंपूजयेद्भक्त्यामद्बुध्यापूजकोमम् ।।१६।। शिलायांस्नपनंकुर्य्यात्प्रतिमासुप्रमार्जनम् ।। प्रसिद्धैर्गन्धपुष्पाद्यैर्मत्पूजासिद्धिदायिका ।।१७।। अमायिकोऽनुवृत्त्यामांपूजयेन्नियतव्रतः ।। प्रतिमादिष्वलंकारः प्रियोमेकुलनन्दन ।।१८।। आग्नौयजेतहविषाभास्करेस्थण्डिलेयजेत् ।। भक्तेनोपहृतंप्रीत्यैश्रद्धयाममवार्यपि ।।१९।। किंपुनर्भक्ष्यभोज्यादिगन्धपुष्पाक्षतादिकम् ।। पूजाद्रव्याणिसर्वाणिसम्पाद्यैवंसमारभेत् ।।२०।।

वा शालग्रामशिला में सावधान होकर मेरे पूजन करे। पहिले वेद और तन्त्रों में कहे हुए मंत्रो से विधानपूर्वक शरीर में मृत्तिका लेपन करे फिर पंडित को चाहिये कि देह शुद्धि के लिये प्रातःकाल स्नान कर सन्ध्या आदि जो नित्य कर्म है उसे विधिपूर्वक करे।।१४।।१५।। फिर बुद्धिमान् कर्म किया चाहे उसकी सिद्धि के लिये संकल्प करे फिर पूजनेवाला अपने गुरु को मेरे समान समझकर उसका भक्तिपूर्वक पूजन करे।।१६।। फिर शिलानिर्मित मेरी मूर्ति को स्नान करावे और जो मृत्तिका की मूर्ति वा चित्र हो तो उसका जल से मार्जन करे और गंध पुष्प आदि जो जो पूजा की प्रसिद्ध वस्तु हैं उनसे मेरा पूजन करे। तो यह पूजा सिद्धि की देनेवाली होती है।।१७।। और कपट दंभ आदि दोषों को छोड़कर गुरु के बताये मार्ग से भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करे हे लक्ष्मण! मूर्ति आदिकों का शृंगार करना मुझे बहुत प्यारा लगता है।।१८।। और अग्नि में मेरा पूजन करना हो तो घृत से हवन करे सूर्य में पूजन करना हो तो वेदी पर सूर्य की प्रतिमा काढ़कर पूजन करे और अधिक क्या कहूं यदि भक्तजन श्रद्धा से मुझे केवल जल ही भेंट में चढ़ावें तो भी मैं प्रसन्न होता हूं।।१९।। और जो भक्ष्य भोज्य गंध पुष्प अक्षत आदि पूजन की सब सामग्री इकट्ठी कर पूजा करे तो उसका क्या ही कहना है।।२०।।

चैलाजिनकुशैः सम्यगासनांपरिकल्पयेत् ।। तत्रोपविश्यदेवस्यसम्मुखेशुद्धमानसः।।२१।। ततोन्यासंप्रकुर्वीतमातृकाबहिरान्तरम् ।। केशवादिततः कुर्यात्तत्त्वन्यासंततः परम् ।।२२।।मन्मूर्तिपञ्जरन्यासंमंत्रन्यासंततोन्यसेत् ।। प्रतिमादावपितथाकुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।।२३।। कलशंस्वपुरोवामेक्षिपेत्पुष्पादिदक्षिणे ।। अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थंमधुपर्कार्थमेवच ।।२४।। तथैवाचमनार्थंतुन्यसेत्पात्रचतुष्टयम् ।। हृत्पद्मेभानुविमलेमत्कलांजीवसंज्ञिताम्

॥२५॥ ध्यायेत्स्वदेहमखिलंतयाव्याप्तमरिन्दम ॥ तामेवावाहयेन्नित्यंप्रतिमादिषुमत्कलाम् ॥२६॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवस्त्रविभूषणैः ॥ यावच्छक्योपचारैर्वात्वर्चयेन्माममायया ॥२७॥ विभवेसतिकर्पूरकुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥ अर्चयेन्मंत्रवन्नित्यंसुखगंधकुसुमैः शुभैः ॥२८॥ दशावरणपूजांवैह्यागमोक्तांप्रकारयेत् ॥ नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥२९॥ श्रद्धयोपहरेन्नित्यंश्रद्धाभुगहमीश्वरः ॥ होमंकुर्यात्प्रयत्नेनविधिनामन्त्रकोविदः ॥३०॥ अगस्त्येनोक्तमार्गेणकुण्डेनागमवित्तमः ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेणपुंसूक्तेनाथवाबुधः

ऊनी वस्त्र मृगचर्म और कुश इनमें से किसी का एक आसन बिछावे और शुद्धचित्त हो मुझ देवता के सामने बैठे॥२१॥ फिर बाहर भीतर मातृकान्यास करे फिर केशव आदि मेरे नामों से न्यास करे फिर तत्त्वन्यास करे॥२२॥ फिर विष्णुंपजर को रीति से मेरी मूर्ति का पञ्जरन्यास करे और प्रतिमा में भी सावधान होकर सदा न्यास करे॥२३॥ फिर अपने सामने बाईं ओर जल से भरा एक कलश स्थापन करे और अपने दाईं ओर पुष्प सामग्री आदि रखे और अर्घ्य पाद्य देने के लिये और मधुपर्क और आचमन के लिये चार पात्र सामने स्थापन करे फिर हृदयकमल में सूर्य के समान निर्मल जीवरूप मेरी कला का ध्यान करे और हे लक्ष्मण! फिर जिस कला से यह संपूण देह व्याप्त हो रहा है उस मेरी कला का सदा प्रतिमाओं में आवाहन करे॥२४॥२५॥२६॥ फिर दंभ को त्यागकर पाद्य पदार्थ अर्घ्य आचमन आदि से और स्नान वस्त्र तथा आभूषण आदि से अपनी शक्ति के अनुसार मेरा पूजन करे॥२७॥ और जो अपने पास द्रव्य हो तो कर्पूर केशर अगर चन्दन सुन्दर सुगंधित पुष्प धूप दीप नैवेद्य और पांच बत्ती की आरती इस बड़े विस्तार से प्रत्येक के मंत्रानुसार नित्य मेरा पूजन करे और अगस्त्यसंहिता में कही हुई विधि से दशावरणों का पूजन करे॥२८॥२९॥ परन्तु जो कुछ नित्य करे श्रद्धा से करे क्योंकि मैं ईश्वर श्रद्धा का भूखा हूं और पूजन के पीछे मंत्रों का ज्ञाता विधिपूर्वक सावधान हो मेरे प्रीत्यर्थ हवन करै॥३०॥ और अगस्त्यसंहिता में जो कुंड की ही रीति कही है उससे कुण्ड बनावे फिर पण्डित उस कुंड में गुरु के दिये मूलमंत्र से अथवा पुरुषसूक्त के मंत्रों से हवन करे॥३१॥

अथवौपासनाग्नौवाचरुणाहविषातथा ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं दिव्याभरणभूषितम् ॥३२॥ ध्यायेदनलमध्यस्थं होमकालेसदाबुधः ॥ पार्षदेभ्योबलिंदत्त्वाहोमशेषंसमापयेत्॥३३॥ततोजपं प्रकुर्वीतध्यायन्मांयतवाक्स्मरन्

॥ मुखवासंचताम्बूलंदत्त्वाप्रीतिसमन्वितः ॥३४॥ मदर्थेनृत्यगीतादिस्तुतिपाठादिकारयेत् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौहृदयेमांनिधायच ॥३५॥ शिरस्याधाय मद्दत्तंप्रसादंभावनामयम् ॥ पाणिभ्यांमत्पदेमूर्ध्निगृहीत्वाभक्तिसंयुतः ॥३६॥ रक्षमांघोरसंसारादित्युक्त्वाप्रणमेत्सुधीः ॥ उद्वासयेद्यथापूर्वंप्रत्यग्ज्योतिषिसंस्मरन् ॥३७॥ एवमुक्तप्रकारेणपूजयेद्विधिवद्यदि ॥ इहामुत्रचसंसिद्धिंप्राप्नोतिमदनुग्रहात्॥३८॥मद्भक्तोयदिमामेवं पूजाचैवदिनेदिने ॥ करोतिममसारूप्यंप्राप्नोत्येवनसंशयः ॥३९॥ इदंरहस्यंपरमंचपावनंमयैवसाक्षात्कथितं सनातनम् ॥ पठत्यजस्रंयदिवाशृणोतियः ससर्वपूजाफलभाङ्नसंशयः ॥४०॥

अथवा अग्निहोत्र के कुंड की ही अग्नि में चरु से वा घृत से हवन करे और विद्वान् को चाहिये कि होमकाल में मेरा सदा ऐसा ध्यान करे कि भगवान् तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्णवाले सुन्दर सुन्दर आभूषण पहिरे अग्नि में स्थित हों और होम के अंत में मेरे पार्षद हनुमान् आदि को बलिदान दे और फिर हवन समाप्त करे ॥३२॥३३॥ फिर मौन होकर मेरा ध्यान करता हुआ जप करे और सदा स्मरण करता रहे और प्रीतिपूर्वक मुझे इलायची आदि सुगन्धयुक्त ताम्बूल भेंट करे॥३४॥ फिर मेरे लिये नृत्य गीत आदि और स्तुति पाठ आदि करावे और अपने हृदय में मेरा ध्यान करता हुआ मुझे भूमि पर दंडवत् प्रणाम करे॥३५॥ और मेरे प्रसाद को भावना पूर्वक अपने शिर पर चढ़ावे फिर भक्तिपूर्वक अपने दोनों हाथों से मेरे चरणों को अपने मस्तक पर धारण करे॥३६॥ और बुद्धिमान् मन में ऐसा स्मरण करे कि हे भगवान् इस घोर संसार से मेरी रक्षा करो। और फिर मुझे प्रणाम करके जिस हृदयस्थित ज्योतिस्वरूप से प्रतिमा में मेरे स्वरूप का आवाहन किया था वह स्वरूप उसी ज्योति में मिल गया ऐसा स्मरण कर विसर्जन कर दे॥३७॥ इस प्रकार कहे हुए प्रकार से यदि विधिपूर्वक मेरा पूजन करे तो मेरे अनुग्रह से पुरुष इस लोक और परलोक में सुख पाता है॥३८॥ और जो मेरा भक्त इस प्रकार नित्य पूजन करता है वह निस्सन्देह मेरे समानरूप को पाता है॥३९॥ हे लक्ष्मण! तुम्हारे सामने जो मैंने यह परम पवित्र अत्यंत गुप्त और सनातन पूजन का विधान कहा है उसे जो कोई निरंतर पढ़ता वा सुनता है वह सब पूजन के फल का भागी होता है इसमें सन्देह नहीं है॥४०॥

एवंपरात्माश्रीरामः क्रियायोगमनुत्तमम् ॥ पृष्टः प्राहस्वभक्तायशेषांशायमहात्मने ॥४१॥ पुनः

प्राकृतवद्रामोमायामालम्ब्यदुःखितः ।। हासीतेतिवदन्नैवनिद्रांलभेकथञ्चन ।।४२।। एतस्मिन्नन्तरे तत्रकिष्कि-न्धायां सुबुद्धिमान् ।। हनूमान्प्राहसुग्रीवमेकान्तेकपिनायकम् ।।४३।। शृणुराजन्प्रवक्ष्यामितवैवहित मुत्तमम्।। रामेणतेकृतः पूर्वमुपकारोह्यनुत्तमः ।।४४।। कृतघ्नवत्त्वयानूनंविस्मृतः प्रतिभातिमे ।। त्वत्कृतेनिहतोवाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मतः ।।४५।। राज्येप्रतिष्ठतोऽसित्वं तारां प्राप्तोसिदुर्लभाम् ।। सरामः पर्वतस्याग्रेभ्रात्रा-सहवसन्सुधीः ।।४६।। त्वदागमनमेकाग्रमीक्षतेकार्यगौरवात् ।। त्वंतुवानरभावेनस्त्रीसक्तोनावबुद्धचसे ।।४७।। करोमीतिप्रतिज्ञायसीतायाः परिमार्गणम् ।। नकरोषिकृतघ्नस्त्वंहन्यसेवालिवद्द्रुतम् ।।४८।। हनूमद्वचनंश्रुत्वा सुग्रीवोभयविह्वलः ।। प्रत्युवाचहनूमन्तंसत्यमेवत्वयोदितम् ।।४९।।

लक्ष्मणजी के पूछने पर परमात्मा रामजी ने इस परमोत्तम क्रियायोग को अपने भक्त महात्मा शेषांअवतार लक्ष्मणजी से इस प्रकार वर्णन किया है।।४१।। इसके अनन्तर रामचन्द्रजी फिर माया में पड़कर संसारी मनुष्य की भांति दुःखी होने लगे और हाय सीता! विलाप ही करते रहे। उन्हें रातभर किसी तरह नींद न आई।।४२।। उधर किष्किंधा में परम बुद्धिमान् हनूमानजी ने एकांत में कपिराज सुग्रीव से कहा कि।।४३।। हे राजन्! मैं तुम्हारे बड़े हित की एक बात कहता हूं उसे सुनो। रामजी ने पहिले ही तुम्हारे साथ ऐसा उपकार किया है कि उससे अच्छा हो नहीं सकता।।४४।। परंतु मुझे यह समझ पड़ता है कि तुम कृतघ्न की तरह उस सबको भूल गये इसमें सन्देह नहीं। देखो राम ने तुम्हारे लिये त्रिलोकी में प्रसिद्ध महापराक्रमी बाली को मारा।।४५।। तुम्हें राज्य पर बैठाया और तुमने तारा को पाया कि जिसका मिलना तुम्हें जन्मभर दुर्लभ था। इस समय वही चतुर रामचन्द्रजी भाई के साथ अकेले पर्वत के ऊपर बैठे हैं और सीता की खोजरूपी अपने भारी कार्य के लिये तुम्हारे आने की राह देख रहे हैं और तुम तो वानरजाति होने से कुछ समझते नहीं हो, स्त्री के लिये पड़े रहते हो।।४६।।४७।। मैं सीता की खोज करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके भी नहीं करते हो इसलिये तुम कृतघ्नी हो और शीघ्र ही तुम बाली की तरह मारे जाओगे।।४८।। हनूमान का यह वचन सुनते ही सुग्रीव के पेट में पानी हो गया और हनूमान से बोला कि तुमने जो कुछ कहा है, है तो सब सत्य।।४९।।

शीघ्रंकुरुममाज्ञांत्वंवानराणांतरस्विनाम् ।। सहस्राणिदशेदानींप्रेषयाशुदिशोदश ।।५०।। सप्तद्वीपगतान्सर्वा-

न्वानरानानयन्तुते ॥ पक्षमध्येसमायान्तु सर्वेवानरपुङ्गवाः ॥५१॥ येपक्षमतिवर्तन्तेतेवध्यामेनसंशयः ॥ इत्याज्ञाप्यहनूमन्तंसुग्रीवोगृहमाविशत् ॥५२॥ सुग्रीवाज्ञांपुरस्कृत्यहनूमान्मन्त्रिसत्तमः ॥ तत्क्षणेप्रेषयामा-सहरीन्दशदिशः सुधाः ॥५३॥ अगणितगुणसत्त्वान्वायुवेगप्रचारान्वनचरगणमुख्यान्पर्वताकाररूपान् ॥ पवनहितकुमारः प्रेषयामासदूतानतिरभसतरात्मादानमानादितृप्तान् ॥५४॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

अच्छा! मेरी आज्ञा से एक बात करो कि वेग से जानेवाले दस हजार वानरों को दशों दिशाओं में तुरंत अभी भेज दो॥५०॥ वे सब अच्छे अच्छे वानर सातों द्वीपों के सब वानरों को लिवा आवें और देखो वे सब एक पखवाड़े में आ जायं॥५१॥ और जो न आवेंगे तो मैं उन्हें प्राणदंड दिये बिना नहीं छोडूंगा, इसमें संदेह मत समझना। इस प्रकार हूनूमान को आज्ञा देकर सुग्रीव तो महल में घुस गये॥५२॥ फिर मंत्रियों में श्रेष्ठ और बुद्धिमान् हनूमानजी ने सुग्रीव की आज्ञा के अनुसार उसी क्षण दशों दिशाओं में बन्दरों को भेज दिया॥५३॥ और राम का कार्य शीघ्र करनेवाले श्रीहनूमानजी ने अनगिनत गुण और पराक्रमवाले वायु के वेग के समान जानेवाले, पर्वत के समानरूपवाले सब वानरों में मुख्य ऐसे दूतों को भेजते समय उनको दानमान से संतुष्ट किया॥५४॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किंधाकांड का चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ॥४॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ रामस्तुपर्वतस्याग्रेमणिसानौनिशामुखे ॥ सीताविरहजंशोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥१॥ पश्यलक्ष्मणमेसीताराक्षसेनहृताबलात् ॥ मृताऽमृतावानिश्चेतुंनजानेऽद्यापिभामिनीम् ॥२॥जीवतीतिमम ब्रूयात्कश्चिद्वाप्रियकृत्समे ॥ यदिजानामितांसाध्वींजीवन्तींयत्रकुत्रवा ॥३॥ हठादेवाहरिष्यामिसुधामिव पयोनिधेः ॥ प्रतिज्ञांशृणुमेभ्रातर्येनमेजनकात्मजा ॥४॥ नीतांतंभस्मसात्कुर्यांसपुत्रबलवाहनम् ॥ हेसीतेचंद्रवदनेवसन्तीराक्षसालये ॥५॥ दुःखार्तामामपश्यन्तीकथंप्राणान् धरिष्यसि ॥ चन्द्रोऽपिभानुवद्भा-तिममचन्द्राननांविना ॥६॥ चन्द्रत्वंजानकींस्पृष्ट्वाकरैर्मांस्पृशशीतलैः ॥ सुग्रीवोऽपिदयाहीनोदुःखितंमांन पश्यति ॥७॥ राज्यंनिष्कण्टकंप्राप्यस्त्रीभिः परिवृतोरहः ।कृतघ्नोदृश्यतेव्यक्तंपानासक्तोऽतिकामुकः॥८॥

नायातिशरदं पश्यन्नमेमार्गयितुंप्रियाम् ।। पूर्वोपकारिणंदुष्टः कृतघ्नोविस्मृतोहिमाम् ।।९।। हन्मिसुग्रीवमप्ये-वंसपुरंसहबान्धवम् ।। वालीयथाहतोमेऽद्यसुग्रीवोऽपितथाभवेत् ।।१०।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जहां मणियों का शिखर शोभायमान है, ऐसे प्रवर्षणगिरि पर संध्या के समय रामजी सीता विरह के दुःख को न सहकर यह बात कहने लगे कि।।१।। हे लक्ष्मण! देखो मेरी सीता को राक्षस धींगाधींगी से हर ले गया है परंतु मैं अभी तक इस बात को निश्चय नहीं जान सका कि मेरी प्यारी धर्मपत्नी मर गई वा जीती है।।२।। वही मेरा प्यारा है जो आकर मुझे सीता कें जीने की खबर सुनावे। जो मुझे यह खबर पड़ जाय कि पतिव्रता सीता जीती है तो वह कहीं हो, जैसे बनेगा, वैसे समुद्र से अमृत की भांति लाये बिना नहीं रहूंगा और है भैय्या! मेरी प्रतिज्ञा सुन ले कि जो मेरी जनकनन्दिनी को ले गया है उसको उसके पुत्र सेना और हाथी घोड़ों सहित भस्म कर दूंगा। हे चन्द्रमुखी सीता! राक्षस के घर में दुःख से व्याकुल और बिना मेरे देखे तू कैसे प्राणों को धारण करती होगी। क्या कहूं, चंद्रमुखी बिना यह चंद्रमा भी मुझे सूर्य के समान तपाता है।।३।।४।।५।।६।। हे चन्द्रमा! तू अपनी शीतल किरणों से जानकी को छूकर फिर मेरा स्पर्श कर। और तो हुई सो हुई, सुग्रीव भी निर्दयी हो गया, वह भी आकर मुझ दुःखिया को नहीं देखता।।७।। निष्कंटक राज्य पाकर एकांत में मदिरा पीकर स्त्रियों को लिये पड़ा रहता है। सरासर यह महाकामी और कृतघ्नी है।।८।। इसीलिये शरत्काल को आया देखकर भी मेरी प्रिया को ढूंढने के लिये नहीं आता, मैंने पहिले उपकार कर दिया है न इसी से वह दुष्ट कृतघ्नी मुझे बिल्कुल भूल गया।।९।। देख लेना पुर और बांधवोंसहित सुग्रीव को भी मारे बिना नहीं छोड़ूंगा, जैसे मैंने वाली को बाण से मारा है, आज सुग्रीव को भी वैसे ही मारुंगा।।१०।।

इतिरुष्टंसमालोक्यराघवंलक्ष्मणोऽब्रवीत् ।। इदानीमेवगत्वाहंसुग्रीवंदुष्टमानसम् ।।११।। ममाज्ञापयहत्वात-मायास्येरामतेऽन्तिकम् ।। इत्युक्त्वाधनुरादायखड्गंतूणीरमेवच ।।१२।। गन्तुमभ्युद्यतंवीक्ष्यरामोलक्ष्मणम-ब्रवीत् । न हन्तव्यस्त्वयावत्स सुग्रीवमेप्रियःसखा ।।१३।। किन्तुभीषयसुग्रीवंनालिवन्नहनिष्यसे ।। इत्युक्त्वाशीघ्रमादायसुग्रीवप्रतिभाषितम् ।।१४।। आगत्यपश्चाद्यत्कार्यंतत्करिष्याम्यसंशयम् ।। तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितोभीममविक्रमः ।।१५।। किष्किन्धाप्रतिकोपेननिर्दहन्निववानरान् ।। सर्वज्ञोनित्यलक्ष्मी कोविज्ञानात्मापिराघवः ।।१६।।

तो मेरा नाम राम, नहीं तो नहीं। इस प्रकार रामचन्द्रजी को क्रोधित देखकर लक्ष्मणजी ने कहा कि हे राम! मुझे आज्ञा दो तो मैं अभी जाकर और उस कपटी सुग्रीव को मारकर तुम्हारे पास आऊं। यह कहकर धनुष खड्ग और तरकस को लेकर चलने को तैयार हो गये। यह देख लक्ष्मण से बोले कि हे प्यारे! तुम सुग्रीव को मारना मत क्योंकि आख़िर तो वह मेरा प्यारा सखा है॥११–१३॥ परंतु तुम सुग्रीव को यह गीदड़ भभकी दिखाना कि वाली की तरह तू भी मारा जायगा। यह कहकर और सुग्रीव का उत्तर लेकर शीघ्र आ जाओ॥१४॥ आने के बाद निस्संदेह जो कुछ हमें करना होगा, करेंगे, लक्ष्मणजी ने कहा–बहुत अच्छी बात है। फिर महापराक्रमी लक्ष्मणजी किष्किंधा को तुरंत ऐसा कोप करते हुए गये, मानों वानरों को भस्म कर देंगे। यद्यपि रामचंद्रजी सर्वज्ञ नित्यलक्ष्मीयुक्त और विज्ञानस्वरूप हैं तो भी॥१५॥१६॥

सीतामनुशुशोचार्तः प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्यमाया कार्यातिवर्तिनः ॥१७॥ रागादिरहितस्यास्यतत्कार्यंकथमुद्भवेत् ॥ ब्रह्मणोक्तमृतंकर्तुंराज्ञोदशरथस्यहि ॥१८॥ तपसःफलदानायजा-तोमानुषवेषधृक् ॥ माययामोहिताः सर्वेजनाअज्ञानसंयुता ॥१९॥ कथमेषां भवेन्मोक्षइतिविष्णुर्विचिन्तयन् ॥ कथांप्रथयितुंलोकेसर्वलोकमलापहाम् ॥२०॥ रामायणाभिधांरामोभूत्वामानुषचेष्टकः॥क्रोधंमोहंचका-मंचव्यवहारार्थसिद्धये ॥२१॥ तत्तत्कालोचितंगृह्णन्मोहयत्यवशाः प्रजाः ॥ अनुरक्तइवाशेषगुणेषुगुणवर्जितः ॥२२॥ विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः ॥ अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तोयथानभः ॥२३॥ विन्दन्तिमुनयः केचिज्जानन्तिसनकादयः ॥ तद्भक्तानिर्मलात्मानः सम्यग्जानन्ति नित्यदा ॥२४॥

दुःखी हो संसारी अज्ञ पुरुषकी भांति छायारूप सीताका शोक करने लगे पार्वतीजीने पूछा कि हे शंकर! भगवान् तो बुद्धि आदि के साक्षी, माया के कार्यों से परे॥१७॥ और राग द्वेष आदि रहित हैं उनके चित्त में मायाकृत विचार कैसे उत्पन्न हुआ। तहां महादेवजी पार्वती से कहते हैं कि भगवान् ब्रह्मा का वचन सत्य करने के लिये और राजा दशरथ को तप का फल देने के लिये मनुष्यरूप धारण कर प्रकट हुए हैं। और विष्णु भगवान् ने यह भी विचार किया कि सब अज्ञानी मनुष्य मेरी माया से मोहित हो रहे हैं इनका मोक्ष कैसे होगा इसलिये संसार में सब लोगों के पाप दूर कर मोक्ष देनेवाली

रामायण की कथा को प्रचार करने के लिये और संसारी व्यवहारों का उपदेश करने के लिये रामजी ने मनुष्यरूप धारण किया है और जिस काल में जैसा उचित है जैसे ही काम क्रोध मोह के वश हो गुणों के अधीन प्रजा को मोहित करते हैं और विज्ञानस्वरूप विज्ञानरूपी शक्तियुक्त और सबके साक्षी भगवान् निर्गुण होकर भी सत्वादिगुणों में लिप्त से प्रतीत होते हैं परन्तु जैसे आकाश मेघादि से लिप्त नहीं होता वैसे ही रामजी भी कामक्रोधादि से सदा अलग रहते हैं।।१८ से २३।। कितने ही मुनीश्वर भगवान् को श्रुतियों के द्वारा जानते हैं और सनक आदि समाधि और योगादि से जानते हैं और निर्मल अंत:करणवाले उनके भक्तजन उन्हें सदा ही अच्छी भांति जानते हैं।।२४।।

भक्तचित्तानुसारेणजायतेभगवानजः।। लक्ष्मणोऽपितदागत्वाकिष्किन्धानगरान्तिकम्।।२५।। ज्याघोषमकरोत्ती व्रंभीषयन्सर्ववानरान्।। तंदृष्ट्वाप्राकृतास्तत्रवानरावप्रमूर्धनि।।२६।। चक्रुः किलकिलाशब्दंधृतपाषाणपादपाः ।। तान्दृष्ट्वाक्रोधताम्राक्षोवानरान्लक्ष्मणस्तदा।।२७।।निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तोधनुरानम्यवीर्यवान् ।। ततः शीघ्रंसमापत्यज्ञात्वालक्ष्मणमागतम् ।।२८।। निवार्यवानरान्सर्वानङ्गदोमन्त्रिसत्तमः ।। गत्वालक्ष्मणसामीप्यंप्रणनामसदण्डवत् ।।२९।। ततोऽङ्गदंपरिष्वज्यलक्ष्मणः प्रियवर्धनः ।। उवाचवत्सगच्छ त्वंपितृव्यायनिवेदय ।।३०।। मामागतंराघवेणचोदितंरौद्रमूर्तिना ।। तथेतित्वरितंगत्वासुग्रीवायन्यवेदयत् ।।३१।। लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिः स्थितः ।। तच्छ्रुत्वातीवसन्त्रस्तः सुग्रीवोवानरेश्वरः ।।३२।। आहूयमन्त्रिणांश्रेष्ठंहनूमन्तमथाऽब्रवीत् ।। गच्छत्वमङ्गदेनाशुलक्ष्मणंविनयान्वितः ।।३३।। सान्त्वयन्कोपितं वीरंशनैरानयमन्दिरम्।। प्रेषयित्वाहनूमन्तंतारामाहकपीश्वरः।।३४।।त्वंगच्छसान्त्वयन्तीतंलक्ष्मणंमृदुभाषितैः ।। शान्तमन्तः पुरंनीत्वापश्चाद्दर्शयमेऽनघे ।।३५।। भवत्वितिततस्तारामध्यकक्षंसमाविशत् ।। हनूमानंगदेनैवसहितोलक्ष्मणान्तिकम् ।।३६।।

और यद्यपि भगवान् जन्मरहित हैं परन्तु जो भी भक्तजनों के चित्त के अनुसार प्रकट होते हैं। अब उधर लक्ष्मणजी ने भी किष्किंधानगरी के पास जाकर प्रत्यंचा की ऐसी घोर टंकार करी कि सब बन्दरों के छक्के छूट गये। और विचारे छोटे छोटे बंदर तो नगर के परकोटे पर चढ़ गये।।२५।।२६।। और जो कुछ मन रखते थे वे पाषाण और वृक्षों को हाथों में ले

लेकर किलकारियां मारने लगे। उन बन्दरों को देखकर उस समय लक्ष्मणजी की आंखे क्रोध के मारे लाल लाल हो गई॥२७॥ और पराक्रमी लक्ष्मणजी धनुष तानकर उन बन्दरों को जड़ से नाश में मिलाने के लिये तैयार हो गये। इतने में प्रधान मंत्री अंगद को जो खबर पड़ी कि लक्ष्मणजी आये हैं सो उसने शीघ्र आकर सब बंदरों को रोक दिया कि अरे यह क्या करते हो और लक्ष्मणजी के पास जाकर उनको दंडवत् प्रणाम किया॥२८॥२९॥ फिर प्यारों का ऐश्वर्य बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी ने अंगद को छाती से लगाया और उससे कहा कि बेटा! तू जाकर अपने चाचाजी से कह तो दे कि ॥३०॥ रुद्र के समान क्रोधमूर्त्तिधारण करनेवाले रामजी का कुछ संदेश लेकर लक्ष्मण आया हूं उसने कहा जो आज्ञा। और तुरन्त जाकर सुग्रीव से निवेदन कर दिया कि ॥३१॥ लक्ष्मणजी क्रोध से लाल लाल आंखे किये नगर के द्वार के बाहर खड़े हैं यह सुनते ही डर के मारे वानरों के राजा सुग्रीव के पेट में पानी हो गया उसने श्रेष्ठ मंत्री हनुमानजी को बुलाकर कहा कि तुम जरा अंगद के साथ लक्ष्मणजी के पास तो चले जाओ और वे वीर जो क्रोध में भरं रहे हैं उन्हें मधुर वचनों से शांत करके धीरे से महल में लिवा लाओ। यों सुग्रीव ने हनुमानजी को उधर भेजकर इधर तारा से कहा कि ॥३४॥ हे कल्याणी! तू जा और चापालोसी की बातों से उन लक्ष्मणजी के क्रोध को ठंढा कर और जब जाने कि वे शांत हो गये तब रनवास में लाकर मुझे दर्शन कराइये॥३५॥३६॥

गत्वाननामशिरसाभक्त्यास्वागतमब्रवीत्।एहिवीरमहाभागभवद्गृहमशङ्कितम्॥३७॥ प्रविश्यराजदारादीन्दृष्ट्वासुग्रीवमेवच॥यदाज्ञापयसेपश्चात्सर्वंकरवाणिभो ॥३८॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंभक्त्याकरेगृह्यसमारुतिः ॥आनयामासनगरमध्याद्राजगृहंप्रति ॥३९॥ पश्यंस्तत्रमहासौधान्यूथपानांसमन्ततः ॥ जगामभवनंराज्ञः सुरेन्द्रभवनोपमम् ॥४०॥ मध्यकक्षेगतातत्रतारातारााधिपानना ॥- सर्वाभरणसम्पन्नामदरक्तान्तलोचना ॥४१॥ उवाचलक्ष्मणं नत्वास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ याहिदेवरभद्रंतेसाधुस्त्वंभक्तवत्सलः ॥४२॥ किमर्थंकोपमाकार्षीर्भक्तेभृत्येकपीश्वरे ॥ बहुकालमनाश्वासंदुःखमेवानुभूतवान् ॥४३॥

अच्छा ऐसा ही करती हूं यह कह तारा तो बीच की डयौढी पर चली गई और हनुमानजी ने अंगद के साथ लक्ष्मणजी के पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक शिर से प्रणाम किया और उन्होंने कहा कि आपका अच्छा आगमन हुआ हे वीर! हे

महाराज! यह गृह आपका ही है बेखटके चले आइये।।३७।। और भीतर चलकर रनवासी की स्त्रियों को और सुग्रीव को दर्शन दीजिये फिर जो आप आज्ञा देंगे हम सब करेंगे।।३८।। यह कहकर हनुमानजी भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजी का हाथ पकड़कर नगर के बीच होकर राजमहल को लिवा लाये।।३९।। फिर लक्ष्मणजी चारों ओर वानरसेनापतियों के बड़े बड़े महलों को देखते हुए इन्द्र के भवन के समान राजमन्दिर में पधारे।।४०।। और जब बीच की ड्योढ़ी पर पहुँचे तो संपूर्ण भूषणों से सजी हुई और मद से नेत्रों के कोयों की लाल किये ऐसे चन्द्रमुखी सुन्दर वयनी तारा ने लक्ष्मणजी को प्रणाम किया और हँसकर बोली हे देवरजी! आओ तुम्हारा भला हो तुम बड़े परोपकारी और भक्तों को प्यार करनेवाले हो।।४१।।४२।। तुमने सुग्रीव पर क्यों क्रोध कर रखा है हे प्रभो वह तो तुम्हारा भक्त और सेवक है। बहुत काल से निरंतर दुःख ही दुःख भोगता रहा।।४३।।

इदानींबहुदुःखौघाद्भवद्भिरभिरक्षितः ।। भवत्प्रसादात्सुग्रीवः प्राप्तसौख्योमहामतिः ।।४४।। कामासक्तोरघुपतेः सेवार्थंनागतोहरिः ।। आगमिष्यन्तिहरयोनानादेशगताः प्रभो ।।४५।। प्रेषितादशसाहस्राहरयोरघुसत्तम ।। आनेतुं वानरान्दिग्भ्योमहापर्वतसन्निभान् ।।४६।। सुग्रीवः स्वयमागत्यसर्ववानरयूथपैः वधयिष्यतिदैत्यौघान्रावणंचहनिष्यति ।।४७।। त्वयैवसहितोऽद्यैवगन्तावानरपुङ्गवः ।। पश्यान्तर्भवनंतत्रपुत्रदारसुहृद्युतम् ।।४८।। दृष्ट्वासुग्रीवमभयंदत्त्वानयसहैवते ।। तारायावचनं श्रुत्वाकृशक्रोधोऽथलक्ष्मणः ।।४९।। जगामान्तःपुरंयत्रसुग्रीवोवानरेश्वरः ।। रुमामालिंग्यसुग्रीवः पर्यङ्केपर्यवस्थितः ।।५०।। दृष्ट्वा लक्ष्मणत्यर्थमुत्पपातातिभीतवत् ।। तंदृष्ट्वालक्ष्मणः क्रुद्धोमदविह्वलितेक्षणम् ।।५१।। सुग्रीवंप्राहदुर्वृत्तविस्मृतोसिरघूत्तमम् ।। वालीयेनहतोवीरः सबाणोऽद्यप्रतीक्षते ।।५२।। त्वमेववालिनोमार्गंगमिष्यसिमयाहतः ।। एवमत्यन्तपरुषंवदन्तंलक्ष्मणंतदा ।।५३।।

अब कृपाकर तुमने बहुत से दुःखों से सुग्रीव का पीछा छुटाया है और हे चतुर! अब तुम्हारी कृपा से उसको सुख मिला है।।४४।। और तुम यह मत जानना कि सुग्रीव विषयभोग में पड़कर रामजी की सेवा के लिये नहीं आया हे प्रभो! देशदेशांतरों से अनगिनती वानर आते होंगे।।४५।। हे रघुकुलनन्दन! दश हजार वानर दशों दिशाओं से बड़े बड़े पर्वतों

के से आकारवाले बन्दरों के लाने के लिये भेज दिये गये हैं।।४६।। उन वानरों के आते ही सुग्रीव उन सब वानरों की सेना को साथ लेकर जायगा और केवल दैत्यों के झुंडों को ही नहीं मारेगा वरन् रावण को भी मार यमपुर भेज देगा।।४७।। और वानरराज आज ही तुम्हारे साथ जायगा। तुम रनवास को देखो और वहां पुत्र स्त्री और बांधवोसहित सुग्रीव को दर्शन देकर और उसे अभय वांह देकर अपने साथ ले जाना। तारा का वचन सुनकर लक्ष्मणजी का क्रोध शांत हो गया।।४८।।४९।। और वे रनवास में गये कि जहां वानरराज सुग्रीव रुमा को हृदय से लगाये पलंग पर बैठा था सो।।५०।। लक्ष्मणजी को देखते ही वह डर के मारे पलंग पर से बड़े जोर से कूद पड़ा। फिर मदपान से आंखों में चढाये सुग्रीव को देखकर लक्ष्मणजी बड़े क्रोधित हुए।।५१।। और सुग्रीव से बोले कि हे दुराचारी! तू रामचन्द्रजी को भूल गया वीर रामजी ने जिस बाण से वाली को मारा था वह बाण अब तेरी राह देख रहा है।।५२।। सो तू मेरे हाथ से मरकर जहां वाली गया है वहां ही तू भी पहुँच जायगा। जब लक्ष्मणजी ने सुग्रीव को ऐसी खोटी बातें सुनाई।।५३।।

उवाचहनुमान्वीरः कथमेवंप्रभाषसे ।। त्वत्तोऽधिकतरोरामेभक्तोऽयंवानराधिपः ।।५४।। रामकार्यार्थमनिशं जागर्तिनतुविस्मृतः ।। आगताः परितः पश्यवानराः कोटिशः प्रभो ।।५५।। गमिष्यन्त्यचिरेणैवसीतायाः परिमार्गणम् ।। साधयिष्यतिसुग्रीवोरामकार्यमशेषतः ।।५६।। श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंसौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्।। सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मणंसंप्रपूजयत् ।।५७।। आलिंग्यप्राहरामस्यदासोहंतेन रक्षितः ।। रामः स्वतेजसालोकान्क्षणार्धेनैवजेष्यति ।।५८।। सहायमात्रमेवाहंवानरैः सहितः प्रभो।।सौमित्रिरपिसुग्रीवंप्राहकिञ्चिन्मयोदितम् ।।५९।। तत्क्षमस्वमहाभागप्रणयाद्भाषितंमया ।। गच्छामोऽद्यैवसुग्रीवरामस्तिष्ठतिकानने ।।६०।। एकवातिदुःखार्तोजानकीविरहात्प्रभुः ।। तथेतिरथमारुह्यलक्ष्मणेनसमन्वितः ।।६१।। वानरैः सहितोराजाराममेवान्वपद्यत ।।६२।। भेरीमृदंगैर्बहुऋक्षवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनै श्चशोभितः ।। नीलांगदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतोराघवमभ्यगाद्धरिः ।।६३।। इति श्रीम० उमामहेश्वर० किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ।।५।।

तब वीर हनुमानजी से न रहा गया और वे लक्ष्मणजी से बोले कि हे महाराज! आप ऐसा क्यों कहते हैं यह वानरराज तो आपसे भी अधिक रामचन्द्रजी का भक्त है।।५४।। रामजी के काम का इसे सदा खटका लगा रहता है कुछ यह मत जानो कि भूल गया है। हे नाथ! देखो करोड़ों बन्दर चारों ओर से आ रहे हैं।।५५।। और शीघ्र ही सीताजी की खोज के लिये जानेवाले हैं और सुग्रीव रामचन्द्रजी का सब काम सिद्ध कर देगा।।५६।। हनुमान का वचन सुनकर लक्ष्मणजी लजा गये। इधर सुग्रीव ने भी अर्घ्य पाद्य आदि से लक्ष्मणजी का अच्छा पूजन सत्कार किया।।५७।। और हृदय से लगाकर बोला कि मैं तो रामजी का दास हूं उन्होंने ही मेरे प्राण बचाये हैं। और रामचन्द्रजी तो अपने प्रताप से ही सब लोकों को एक आधे क्षण में जीत सकते हैं।।५८।। हे नाथ! वानरोंसहित मैं तो नाममात्र के लिये सहायक हूं। यह सुन लक्ष्मणजी ने सुग्रीव से कहा कि जो कुछ मैंने तुमसे कहनी अनकहनी बातें कही हैं।।५९।। उनको क्षमा करो और हे कपिराज! मैंने जो कुछ कहा है प्रेम संबन्ध से कहा है। और हे सुग्रीव! चलो अब ही चलें क्योंकि भगवान् रामचन्द्रजी सीता के विरह के कारण अत्यंत दु:खी वन में अकेले बैठे हैं।।६०।। बहुत अच्छा ऐसा कहकर और लक्ष्मणजी सहित रथ पर बैठ वानरों को साथ ले राजा सुग्रीव रामजी के पास चला।।६१।। जिस समय सुग्रीव भगवान् के पास चला उस समय साथ में भेरी और मृदंग बजते जाते हैं संग में रीछ बन्दरों के झुंड के झुंड चले जा रहे हैं श्वेत छत्र लग रहे हैं चमर ढुर रहे हैं नील अंगद हनुमान आदि प्रधान प्रधान मंत्री चारों ओर साथ में हैं इस प्रकार वानरराज सुग्रीव बड़ी धूमधाम से श्रीरामचन्द्रजी के पास पहुँचा।।६३।। इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीका सहित किष्किंधाकांड का पंचम सर्ग समाप्त हुआ।।५।।

।। श्रीमहादेव उवाच ।। दृष्ट्वारामंसमासीनंगुहाद्वारिशिलातले ।। चैलाजिनधरंश्यामंजटामौलिविराजितम् ।।१।। विशालनयनंशान्तंस्मितचारुमुखाम्बुजम् ।। सीताविरहसन्तप्तंपश्यन्तंमृगपक्षिणः ।।२।। रथाद्दूरात्समुत्पत्यवेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ ।। रामस्यपादयोरग्रेपेततुर्भक्तिसंयुतौ ।।३।। रामः सुग्रीवमालिङ्ग्यपृष्ट्वानामयमन्तिके ।। स्थापयित्वायथान्यायंपूजयामासधर्मवित् ।।४।। ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठंसुग्रीवोभक्तिनम्रधीः ।। देवपश्यसमायान्तींवानराणांमहाचमूम् ।।५।। कुलाचलाद्रिसम्भूतामेरुमन्दरसन्निभाः।।नानाद्वीपसरिच्छैलवा-

सिनः पर्वतोपमाः ।।६।। असंख्याताः समायांतिहरयः कामरूपिणः ।। सर्वेदेवांशसम्भूताः सर्वेयुद्धविशारदा ।।७।। अत्रकेचिद्गजबलाः केचिद्दशगजोपमाः ।। गजायुतबलाः केचिदन्येऽमितबलाः प्रभो ।।८।। केचिन्ज्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः ।। केचिद्रक्तान्तवदनादीर्घवालास्तथापरे ।।९।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! गुहा के द्वार पर सुन्दर स्फटिक शिला पर बैठे हुए वल्कल वस्त्र धारण किये मृगचर्म ओढ़े श्यामवर्ण जटाजूट से शोभित विशाल नेत्र जिनके शांत स्वरूप सुन्दर मुखकमल से मंद २ मुसक्यान करते हुए सीताजी कै विरह से दुःखी और मृगपक्षियों को देखते हुए ऐसे रामचन्द्रजी को दूर से सुग्रीव और लक्ष्मणजी ने देखा और वे दोनों शीघ्र रथ से उतरकर भक्तिपूर्वक रामजी के चरणों में जा गिरे।।१।।२।।३।। धर्मज्ञ रामजी ने सुग्रीव को हृदय से लगाकर कुशल समाचार पूछा और पास बैठाकर यथायोग्य उसका सत्कार किया।।४।। फिर सुग्रीव भक्ति से नम्र होकर रघुनाथजी से बोला कि हे महाराज! वानरों की बड़ी भारी सेना को आती हुई देखिये।।५।। कुलाचलपर्वत में उत्पन्न हुए सुमेरु और मंदराचल के समान और अनेक द्वीप नदी और पर्वतों के रहनेवाले पर्वतों के समान।।६।। और मनमाना रूप धरनेवाले अनगिनती वानर आ रहे हैं। ये सब देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए और सब युद्ध में लड़ाके हैं।।७।। हे प्रभो! इनमें से कितनों ही में एक एक हाथीका बल है और कितने ही बलमें दश दश हाथियोंके बराबर हैं कितने ही में दश दश हजार हाथियों का बल है और कितने ही वानरों के बल का ठिकाना ही नहीं है।।८।। कितने ही अंजन के पर्वत के तुल्य हैं कोई सुवर्णपर्वत के तुल्य हैं कितने ही लाल लाल मुख के हैं कितने बड़े बड़े बालवाले हैं।।९।।

शुद्धस्फटिकसंकाशाःकेचिद्राक्षससन्निभाः।।गर्जन्तः परितोयान्तिवानरायुद्धकांक्षिणः ।।१०।। त्वदाज्ञाकारिणः सर्वेफलमूलाशनाः प्रभो ।। ऋक्षाणामधिपोवीरोजाम्बवान्नामबुद्धिमान् ।।११।। एषमेमन्त्रिणांश्रेष्ठः कोटिभल्लूकवृन्दपः ।। हनूमानेषविख्यातोमहासत्त्वपराक्रमः ।।१२।। वायुपुत्रोऽतितेजस्वीमन्त्रीबुद्धिमतांवरः ।। नलोनीलश्चगवयोगवाक्षो गन्धमादनः ।।१३।। शरभोमैन्दवश्चैवगजः पनसएवच ।। वलीमुखोदधिमुखः सुषेणस्तारएवच ।।१४।। केसरीचमहासत्त्वः पिताहनुमतोबली ।। एतेमेयूथपारामप्रधान्येनमयोदिताः ।।१५।। महात्मानोमहावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः ।। एतेप्रत्येकतः कोटिकोटिवानरयूथपाः ।।१६।।

तवाज्ञाकारिणः सर्वेसर्वेदेवांशसम्भवाः ।। एषवालिसुतः श्रीमानङ्गदोनामविश्रुतः ।।१७।। वालितुल्यबलोवीरोराक्षसानांबलान्तकः ।। एतेचान्येचबहवस्त्वदर्थेत्यक्तजीविताः ।।१८।। योद्धारः पर्वताग्रैश्चनिपुणाः शत्रुघातने ।। आज्ञापय्यरघुश्रेष्ठसर्वे तेवशवर्तिनः ।।१९।।

कोई निर्मल स्फटिक के समान श्वेत हैं कितनों ही का रूप राक्षसों के समान है और ये वानर युद्ध की लालसा से चारों ओर गर्ज रहे हैं।।१०।। और हे नाथ! ये सब आपके आज्ञाकारी और कंद मूल फल के खानेवाले हैं। और देखिये कि यह रीछों का स्वामी जिसका नाम जाम्बवान् है बड़ा वीर और बुद्धिमान् है।।११।। और यह मेरे मंत्रियों में श्रेष्ठ मंत्री है और एक करोड़ रीछ सेना का अधिकारी है। यह हनुमान है बड़ा बली और पराक्रमी प्रसिद्ध है।।१२।। यह वायु का पुत्र महातेजस्वी सब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है यह भी मेरा मंत्री है। और नल, नील, गवय, गवाक्ष गन्धमादन।।१३।। शरभ, मैदव गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण ।।१४।। तार और बड़ा बली दीर्घ शरीरवाला हनुमान का पिता केसरी ये वानर मेरे सेनापति हैं और ये सब मैंने प्रधान प्रधान गिना दिये हैं।।१५।। ये बड़े यशस्वी बड़े शूरवीर और इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। इनमें से हर एक एक एक करोड़ बंदरों की सेना का अधिपति हैं।।१६।। ये सब आपके आज्ञाकारी और सब देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए हैं। यह देखिये वाली का बेटा सुन्दर अंगद है यह बड़ा नामी वाली के तुल्य पराक्रमी बड़ा लड़ाका और राक्षसों की सेना का काल के समान नाश करनेवाला है। हे नाथ! ऐसे ऐसे और बहुत से हैं जिन्होंने आपके लिये अपने प्राण होमने का संकल्प कर रखा है।।१८।। ये पर्वतों के शिखरों को ले लेकर उड़नेवाले हैं और शत्रुओं के मारने में बड़े पक्के हैं। हे राम! आप आज्ञा दीजिये ये सब आपके वश में हैं।।१९।।

रामःसुग्रीवमालिंग्यहर्षपूर्णाश्रुलोचनः ।। प्राहसुग्रीवजानासिसर्वंत्वंकार्यगौरवम् ।।२०।। मार्गणार्थंहिजानक्यानियुंक्ष्वयदिरोचते।। श्रुत्वारामस्यवचनंसुग्रीवःप्रीतमानसः।।२१।।प्रेषयामासबलिनोवानरान्वानरर्षभः ।। दिक्षुसर्वासुविविधान्वानरान्प्रेष्यसत्वरम् ।।२२।। दक्षिणांदिशमत्यर्थंप्रयत्नेनमहाबलान् ।। युवराजं जाम्बवन्तं हनूमन्तंमहाबलम्।।२३।। नलंसुषेणंशरभंमैन्दद्विविदमेवच।।प्रेषयामाससुग्रीवोवचनंचेदमब्रवीत् ।।२४।। विचिन्वन्तुप्रयत्नेनभवन्तोजानकींशुभाम् ।। मासादर्वाङ्निवर्तध्वंमच्छासनपुरः सराः ।।२५।।

सीतामदृष्ट्वायदिवोमासादूर्ध्वंदिनंभवेत् ।। तदाप्राणान्तिकंदण्डंमत्तः प्राप्स्यथवानराः।।२६।। इति प्रस्था-प्यसुग्रीवोवानरान्भीमविक्रमान् ।। रामस्यपार्श्वेश्रीरामंनत्वाचोपविवेशसः।।२७।। गच्छन्तंमारुतिंदृष्ट्वारा-मोवचनमब्रवीत् ।। अभिज्ञानार्थमेतन्मेह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ।।२८।। मन्नामाक्षरसंयुक्तंसीतायैदीयतांरहः ।। अस्मिन्कार्येप्रमाणंहित्वमेवकपिसत्तम् ।। जानामिसत्त्वंतेसर्वंगच्छपन्थाः शुभस्तव ।।२९।।

रामजी ने सुग्रीव को छाती से लगाया और हर्ष के कारण आंखों में आंसू भरकर बोले कि हे सुग्रीव! तुम तो सब जानते हो कि यह काम कितना भारी है।।२०।। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो जानकी के ढूंढने के लिये इन बंदरों को भेजो। सुग्रीव रामजी का वचन सुनकर मन में बड़ा प्रसन्न हुआ।।२१।। और सुग्रीव ने बली बली वानरों को सब दिशाओं में भेजा फिर भांति भांति के वानरों को शीघ्र भेजकर।।२२।। दक्षिण दिशा की ओर छांट छांट कर बड़े बड़े बली युवराज अंगद, जाम्बवान् और महाबली हनुमान ।।२३।। नल सुषेण, शरभ, मैंद और द्विविद इनको भेजा और सुग्रीव ने यह बात समझा दी कि ।।२४।। तुम लोग सुन्दर जानकीजी की खोज लगाओ कोई कसर बाकी न रहे। मेरी आज्ञा है कि तुम सब एक मास के भीतर भीतर लौट आना और हे वानरो! सीता के बिना देखे जो तुम्हारे आने में महीने के उपरांत एक दिन भी हो जायगा तो मैं तुम सबको फांसी लगवा दूंगा।।२५।।२६।। इस प्रकार सुग्रीव बड़े बड़े पराक्रमी वानरों को भेजकर और रामजी को प्रणाम करके उनके पास बैठ गया।।२७।। अब राम ने हनुमान को जाता हुआ देखकर उनसे कहा कि हे हनुमान! तुम जाते तो हो ही इस सुन्दर मेरी अंगूठी को निशानी के लिये लेते जाओ मेरे नाम के अक्षर इस पर खुदे हैं इसे एकांत में सीताजी को दे देना और हे कपिश्रेष्ठ! इस मेरे कार्य को तुम ही भली भांति कर सकते हो। मैं तुम्हारा सब बल जानता हूं जाओ तुम्हारा मार्ग शुभ हो।।२८।।२९।।

एवंकपीनांराज्ञातेविसृष्टाः परिमार्गणे ।। सीतायाअङ्गदमुखाबभ्रमुस्तत्रतत्रह ।।३०।। भ्रमन्तोविन्ध्यगहनेद-दृशुः पर्वतोपमम् ।। राक्षसंभीषणाकारंभक्षयन्तंमृगान्गजान् ।।३१।। रावणोऽयमितिज्ञात्वाकेचिद्वानरपुंगवाः ।। जघ्नुः किलकिलाशब्दंमुञ्चन्तोमुष्टिभिः क्षणात् ।। नायंरावणइत्युक्त्वाययुरन्यन्महद्वनम् ।। तृषार्ताः सलिलंतत्रनाविन्दन्हरिपुंगवाः ।।३३।। विभ्रमन्तोमहारण्येशुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ।। ददृशुर्गह्वरंतत्रतृणगुल्मा-

वृतंमहत् ॥३४॥ आर्द्रपक्षान्क्रौञ्चहंसान्निःसृतान्ददृशुस्ततः ॥ अत्रास्तेसलिलंनूनंप्रविशामोमहागुहाम् ॥३५॥ इत्युक्त्वाहनुमानग्रेप्रविवेशतमन्वयुः ॥ सर्वेपरस्परंधृत्वाबाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥३६॥ अन्धकारेमहद-दूरंगत्वाऽपश्यन्कपीश्वराः ॥जलाशयान्मणिनिभतोयान्कल्पद्रुमोपमान् ॥३७॥ वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् ॥ गृहान्सर्वगुणोपेतान्मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥३८॥ दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषैः परिवर्जितान् ॥ विस्मितास्तत्रभवनेदिव्येकनकविष्टरे ॥३९॥ प्रभयादीप्यमानांतुददृशुः स्त्रियमेकलाम् ॥ ध्यायन्तींचीरवसनांयोगिनींयोगमास्थिताम् ॥४०॥

इस प्रकार कपियों के राजा सुग्रीव के भेजे हुए अंगद आदि वानर सीता की खोज में इधर उधर विचरने लगे॥३०॥ और घूमते घामते उन्होंने क्या देखा कि विंध्याचल की गुफा में पर्वत के समान एक बड़ा भयंकर राक्षस ॥३१॥ मृग और हाथियों को खा रहा है कितने ही बड़े वानर तो उसे रावण जानकर किलकिला शब्द करते हुए तत्काल उस पर घूंसे जमाने लगे॥३२॥ फिर यह रावण नहीं है ऐसा कहकर दूसरे बड़े वन को चले वे श्रेष्ठ वानर बड़े प्यासे थे परन्तु उनको वहां कहीं जल न मिला॥३३॥ उस महाभयंकर वन में घूमते घूमते उनके कंठ होठ और तालुए सूख गये। फिर उन्होंने घास और वृक्षलताओं से ढकी हुई एक बड़ी गुफा देखी॥३४॥ और उसमें से भीगे पंखवाले क्रौंच हंसों को निकलता देख उन्होंने अनुमान लगाया कि हो न हो इसमें जल अवश्य होगा चलो इस बड़ी गुफा के भीतर चलें॥३५॥ यह कहकर आगे २ तो हनुमान् और पीछे पीछे वानर सब बड़ी उमंग से आपस में एक दूसरे का हाथ पकड़े उस गुफा में घुसे॥३६॥ फिर अंधकार में बहुत दूर तक जाकर वानरों ने स्फटिक मणियों के समान निर्मल जल भरे हुए सरोवर देख और कल्पवृक्षों के समान वृक्षों को देखा कि जिनमें पके हुए मीठे फल लटक रहे हैं और उनके बोझ से वृक्ष लचर रहे हैं और मणि वस्त्र आदि सामग्रियों से भरे हुए तथा संपूर्ण गुणों से युक्त ॥३७॥३८॥ दिव्य भोजन के पदार्थ जिनमें भर रहे हैं और मनुष्यों से खाली ऐसे भवनों को देखा उन सब वानरों को बड़ा अचरज हुआ फिर वहां एक दिव्य भवन में सोने की चौकी पर अकेली बैठी हुई अपनी कांति से प्रकाशमान् ध्यान में लगी हुई छाल के वस्त्र धारण करें योगाभ्यास जाननेवाली और योग में स्थित ऐसी एक स्त्री को देखा॥३९॥४०॥

प्रणेमुस्तांमहाभागांभक्त्या भीत्याचवानराः ॥ दृष्ट्वातान्वानरान्देवीप्राहयूयंकिमागताः ॥४१॥ कुतोवाक-स्यावादूतामत्स्थानंकिंप्रधर्षथ ॥ तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणुवक्ष्यामिदेविते ॥४२॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान्राजादशरथः प्रभु ॥ तस्यपुत्रोमहाभागोज्येष्ठोरामइतिश्रुतः ॥४३॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्यसभार्यः सानुजोवनम् ॥ गतस्तत्रहृताभार्यातस्यासाध्वीदुरात्मना ॥४४॥ रावणेनततोरामः सुग्रीवंसानुजोययौ ॥ सुग्रीवोमित्रभावेनरामस्यप्रियवल्लभाम् ॥४५॥ मृगयध्वमितिप्राहततोवयमुपागताः ॥ ततोवनंविचिन्वन्तो जानकींजलकांक्षिणः ॥४६॥ प्रविष्टागह्वरंघोरंदैवादत्रसमागताः ॥ त्वंवाकिमर्थमत्रासिकावात्वंवदनः शुभे ॥४७॥ योगिनीचतथादृष्ट्वावानरान्प्राहहृष्टधीः ॥ यथेष्टंफलमूलानिजरध्वापीत्वामृतंपयः ॥४८॥ आगच्छततोवक्ष्येममवृत्तान्तमादितः ॥ तथेतिभुक्त्वापीत्वाचहृष्टास्तेसर्ववानराः ॥४९॥

वानरों ने भय से और प्रीति से उस तपस्विनी को प्रणाम किया। वह देवी उन वानरों को देखकर उनसे बोली कि तुम यहां क्यों आये हो?॥४१॥ और कहां से आये हो। और किसके दूत हो? और मेरे स्थान में क्यों गड़बड़ मचा रहे हो। यह सुनकर हनुमान ने कहा कि हे देवी! सुनो, मैं सब वृत्तान्त तुमसे कहता हूं॥४२॥ एक अयोध्यानगरी के राजा बड़े समर्थ श्रीमान् राजा दशरथजी थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र बड़े यशस्वी राम इस नाम से प्रसिद्ध हैं॥४३॥ वह पिता की आज्ञा मानकर अपनी भार्या और छोटे भाई को संग लेकर वन में आये थे सो दुष्ट रावण उनकी पतिव्रता स्त्री को हर ले गया॥४४॥ फिर रामजी लक्ष्मण भाई को साथ लेकर सुग्रीव के पास गये और उससे मित्रता की। उस सुग्रीव ने मित्रभाव से रामजी की प्यारी धर्मपत्नी की खोज करने के लिये हमें आज्ञा दी सो वहां से हम आये हैं और वन में जानकी को खोजते खोजते जल की इच्छा से॥४५॥४६॥ हम इस भयंकर गुफा में घुसते घुसते दैवयोग से यहां आ पहुंचे हैं हे कल्याणी!अब तुमभीतो हमें बताओं कि तुम कौन हो और यहां क्यों रहती हो?॥४७॥ इस प्रकार योगिनी वानरों को प्यासा देखकर मन में प्रसन्न हो उनसे बोली कि पहिले तो तुम कंद मूल फल खाकर अपना पेट भरो और अमृत समान जल पिओ॥४८॥ फिर मेरे पास आना, मैं तुम्हें अपनी राम कहानी सिरे से सुनाऊंगी। वानरों ने कहा–अच्छी बात है। फिर तो सब वानर खा पीकर बड़े प्रसन्न हुए॥४९॥

अ०रा०
२५९

देव्याः समीपंगत्वातेबद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः ।। ततः प्राहहनूमन्तंयोगिनीदिव्यदर्शना ।।५०।। हेमानाम पुरादिव्यरूपिणीविश्वकर्मणः ।। पुत्रीमहेशंनृत्येनतोषयामासभामिनी ।।५१।। तुष्टोमहेशः प्रददाविदंदिव्यपुरं महत् ।। अत्रस्थितासासुदती वर्षाणामयुतायुतम् ।।५२।। तस्याअहंसखीविष्णु तत्परामोक्षकांक्षिणी ।। नाम्नास्वयंप्रभादिव्यगन्धर्वतनयापुरा ।।५३।। गच्छन्तीब्रह्मलोकंसामामाहेदंतपश्चर ।। अत्रैवनिवसन्तीत्वं-सर्वप्राणिविवर्जिते ।।५४।। त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणोऽव्ययः ।। भूभारहरणार्थायविचरिष्यतिकानने ।।५५।। मार्गन्तोवानरास्तस्यभार्यामायान्तितेगुहाम् ।। पूजयित्वाथतान्गत्वारामंस्तुत्वाप्रयत्नतः ।।५६।। मयातासिभवनंविष्णोर्योगिगम्यंसनातनम् इतोऽहंगन्तुमिच्छामिरामंद्रष्टुंत्वरान्विता ।।५७।। यूयंपिदध्वम-क्षीणिगमिष्यथबहिर्गुहाम् ।। तथैवचक्रुस्तेवेगाद्गताः पूर्वस्थितंवनम् ।।५८।। सापित्यक्त्वागुहांशीघ्रंययौ राघवसन्निधिम् ।। तत्ररामंससुग्रीवंलक्ष्मणंचददर्शह ।।५९।।

और फिर देवी के पास जा हाथ जोड़कर खड़े हो गये। सुन्दर योगिनी हनुमानजी से बोली कि।।५०।। पूर्वकाल में एक बड़ी सुन्दर विश्वकर्मा की पुत्री थी उसका नाम हेमा था, उस सुन्दरी ने अपना नृत्य दिखा दिखाकर शिवजी को प्रसन्न किया।।५१।। फिर महादेवजी ने प्रसन्न होकर उसे इस परमसुन्दर घर को दे दिया। वह सुन्दरदन्ती यहां करोड़ वर्ष तक रही।।५२।। उसकी मैं सखी हूं। मोक्ष की इच्छा से विष्णुभगवान् के ध्यान में लगी रहती हूं। पूर्वकाल में एक दिव्य गन्धर्व था उसकी पुत्री हूं, स्वयंप्रभा मेरा नाम है।।५३।। ब्रह्मलोक को जाती विरियां वह हेमा मुझसे कह गई थी कि तू सब प्राणियों से रहित इसी स्थान में तप करती रहिये।।५४।। त्रेतायुग में अविनाशी, नारायण दशरथ के पुत्र होंगे और पृथ्वी का भार उतारने के लिये इस वन में विचरेंगे।।५५।। और वानर उनकी भार्या की खोज करते हुए तेरी गुफा में आवेंगे, फिर तू उनका पूजन करके और अच्छी भांति रामजी की स्तुति करके।।५६।। उस विष्णुधाम को जायगी जो कि योगियों को भी दुर्लभ और सनातन है। इसलिये मैं अब शीघ्र यहां से रामजी के दर्शनो को जाना चाहती हूं।।५७।। तुम सब आंखे मींच लो फिर गुहा के बाहर पहुंच जाओगे। फिर वानरों के ज्योंही आंखें मींची, त्योंही वे वेग से पहिले की भांति गुहा के बाहर वन में चले गये।।५८।। और वह हेमप्रभा भी गुहा को शीघ्र छोड़कर रामजी के पास चली गई और वहां जाकर उसने राम लक्ष्मण और सुग्रीव को देखा।।५९।।

कि०का०
सर्ग
६

कृत्वाप्रदक्षिणंरामंप्रणम्यबहुशः सुधीः ।। आहगद्गदयावाचारोमाञ्चिततनूरुहा ।।६०।। दासीतवाहंराजेन्द्र दर्शनार्थमिहागता ।। बहुवर्षसहस्राणितप्तंमेदुश्चरंतपः ।।६१।। गुहायांदर्शनार्थंतेफलितंमेऽद्यतत्तपः ।। अद्यहित्वांनमस्यामिमायायाः परतः स्थितम् ।।६२।। सर्वभूतेषुचालक्ष्यंबहिरन्तरवस्थितम् ।। योगमायाजव-निकाच्छन्नोमानुषविग्रहः ।।६३।। नलक्ष्यतेऽज्ञानदृशांशैलूषइवरूपधृक् ।। महाभागवतानांत्वंभक्तियोगविधि-त्सया।।६४।। अवतीर्णोऽसिभगवन्कथंजानामितामसी ।। लोकेजानातुयः कश्चित्तवतत्त्वंरघूत्तम ।।६५।। मादिमध्यान्तवर्जितम् ममैतदेवरूपंतेसदाभातुहृदालये ।। रामतेपादयुगलंदर्शितंमोक्षदर्शनम् ।।६६।। अदर्शनंभवार्णानांसन्मार्गपरिदर्शनम। धनपुत्रकलत्रादि विभूतिपरिदर्पितः ।। अकिञ्चनधनंत्वाद्यनाभिधातुंज-नोऽर्हति ।।६७।। निवृत्तगुणमार्गायनिष्किञ्चनधनायते ।।६८।। नमः स्वात्माभिरामायनिर्गुणायगुणात्मने ।। कालरूपिणमीशानमादिमध्यान्तवर्जितम् ।।६९।।

उस निर्मल बुद्धी ने रामजी की प्रदक्षिणा करके उनको बारंबार प्रणाम किया। और शरीर में रोमांचित होकर गद्गदवाणी से स्तुति करने लगी कि।।६०।। हे राजेन्द्र! मैं तुम्हारी दासी हूं और तुम्हारे दर्शन के लिये यहां आई हूं। बहुत हजार वर्ष तक मैंने तुम्हारे दर्शन के लिये गुहा में बैठकर कठिन तप किया है सो वह तप आज सफल हुआ कि जो आपके दर्शन हुए। अब मैं तुम्हें नमस्कार करती हूं। तुम माया से परे हो।।६१–६२।। और तुम सब प्राणियों के बाहर भीतर स्थित हो परंतु जाने नहीं जाते क्योंकि अपनी योगमायारूपी कनात में छुपकर मनुष्यरूप किये हो।।६३।। जैसे कोई बहुरूपिया पुरुष अपने सच्चे रूप को बदलकर दूसरा भेष धरकर आता है और मूर्ख पुरुष उसे नहीं पहिचानते वैसे अज्ञानी पुरुष तुम्हारे सत्यस्वरूप को नहीं जान सकते। और भगवान के परमभक्त पुरुषों की भक्तिरूपी विधानयोग करने की इच्छा से तुमने अवतार लिया है सो हे भगवन्! संसार में जो कोई तुम्हारे उस सच्चिदानंदरूप को जानता हो सो भले ही जाने परंतु हे रघुवर! मैं तमोगुणी स्त्री कैसे जान सकती हूं।।६४।।६५।। मेरे हृदय में आपका जो यह रूप है, यह रूप सदा प्रकाशित रहे क्योंकि हे राम! आपने मुझे मोक्ष का दिखानेवाला अपने चरणारविंदो का दर्शन कराया है।।६६।। तुम्हारा चरण भवसागर से छुटानेवाला अच्छे मार्ग का दिखानेवाला और निर्धनों का धनरूप है परंतु जो पुरुष

धन पुत्र कलत्रादि और संपत्ति से गर्वित हो रहा है वह तुम्हारा नाम लेने योग्य नहीं फिर तुम्हें क्या जान सकता है।।६७।। तुम संसार में निवृत्त, निर्धनियों के धन अपने सच्चिदानंद में रमण करनेवाले निर्गुणस्वरूप और सबके उपादानकारणहोने से सगुणरूप हो, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है। तुम कालरूप से सबके संहार करनेवाले ईशरूप से सृष्टि के कर्ता और पालक हो अतएव आदि मध्य और अंत रहित हो।।६८।।६९।।

समंचरन्तंसर्वत्रमन्येत्वांपुरुषंपरम् ।। देवतेचेष्टितंकश्चिन्नवेदनृविडम्बनम् ।।७०।। नतेऽस्तिकश्चिद्दयितोद्वेष्यो वापरएवच ।। त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वांपश्यंतितथाविधम् ।।७१।। अजस्याकर्तुरीशस्यदेवतिर्यङ्नरादिषु- ।।जन्मकर्मादिकंयद्यत्तदत्यंतविडम्बनम् ।।७२।। त्वामाहुरक्षरंजातंकथाश्रवणसिद्धये ।। केचित्कोसलराज्यस्य तपसः फलसिद्धये ।।७३।। कौसल्ययाप्रार्थ्यमानंजातमाहुः परेजनाः ।। दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितोविभुः ।।७४।। ब्रह्मणानररूपेणजातोऽयमितिकेचन ।। शृण्वंतिगायंतिचयेकथास्तेरघुनंदन ।।७५।। पश्यंतितवपादा- ब्जंभवार्णसुतारणम् ।। त्वन्मायागुणबद्धाहंव्यतिरिक्तंगुणाश्रयम् ।।७६।। कथंत्वांवेदजानीयांस्तोतुंवाऽविषयं विभुम् ।। नमस्यामिरघुश्रेष्ठंबाणासनशरान्वितम् ।। लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासुग्रीवादिभिरन्वितम् ।।७७।।

अंतर्यामी रूप से सर्वत्र समान गमन करनेवाले आपको मैं आदि पुरुष जानती हूं, हे देव! तुम नररूप से जो लीला करते हो उसे कोई नहीं जानता।।७०।। न कोई तुम्हारा मित्र है न शत्रु है और न उदासीन है तो भी तुम्हारी माया से जिनकी आत्मा ढक रही है ऐसे पुरुष तुमको शत्रु मित्र और उदासीन रूप से देखते हैं।।७१।। तुम जन्मरहित, कर्मरहित और ईश्वर होकर भी जो देवता, तिर्यक् और नररूपों में अवतार लेकर जन्म कर्म आदि लेते करते हो यह तुम्हारी एक कोरी दिखावटमात्र है।।७२।। तुम हो तो अविनाशी परंतु कोई कहते हैं कि तुमने इस प्रयोजन से अवतार लिया कि मेरी कथा सुनने से प्राणी मोक्ष पावे और कोई कहता है कि तुमने राजा दशरथ को तप का फल देने के लिये अवतार लिया है।।७३।। और बहुत से कहते हैं कि पूर्वजन्म में कौसल्या ने तप करके तुमसे प्रार्थना की थी कि तुम मेरे पुत्र होना, इसलिये तुमने अवतार लिया है और कोई यह कहते हैं कि जो ब्रह्माजी ने तुमसे दुष्ट राक्षसरूपी पृथ्वी का भार दूर करने के लिये प्रार्थना की थी इसलिये तुमने मनुष्यरूप से अवतार लिया है। कुछ हो परंतु हे रघुनंदन! बात सब यह है

कि जो तुम्हारी कथा को सुने सुनावेंगे॥७४॥७५॥ उनको तुम्हारे संसारसागर से तरनेवाले चरणकमल का दर्शन हो सकता है और मैं तो तुम्हारी माया के गुणों से बँध रही हूं और तुम उन गुणों से भिन्न सुंदर गुणों के आश्रय, मनवाणी के अगोचर और व्यापक हो सो हे देव! मैं तुम्हारी स्तुति करना कैसे जान सकती हूं। इसलिये हे राम! मैं तो लक्ष्मण भाई सहित धनुष बाण धारण किये और सुग्रीव आदि सहित तुम्हारे इस रूप को केवल प्रणाम करती हूं॥॥७६॥७७॥

एवंस्तुतोरघुश्रेष्ठः प्रसन्नः प्रणताघहृत् ॥ उवाचयोगिनींभक्तांकिंतेमनसिकांक्षितम् ॥७८॥ साप्राहराघवं भक्त्याभक्तिंतेभक्त वत्सल ॥ यत्रकुत्रापिजातायानिश्चलांदेहिमेप्रभो ॥७९॥ त्वद्भक्तेषुसदासङ्गोभूयान्मे प्राकृतेषु न ॥ जिह्वामेरामरामेति भक्त्यावदतुसर्वदा ॥८०॥ मानसंश्यामलंरूपंसीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ धनुर्बाणधरंपीतवाससंमुकुटोज्जवलम् ॥८१॥ अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः॥ भान्तंस्मरतुमेरामं वरंनान्यंवृणेप्रभो ॥८२॥ श्रीराम उवाच ॥ भवत्वेवंमहाभागेगच्छत्वंबदरीवनम् ॥ तत्रैवमांस्मरंतीत्वंत्य क्त्वेदंभूतपञ्चकम् ॥ मामेवपरमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यते ॥८३॥ श्रुत्वारघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पंगत्वा तदैवबदरीतरुखण्डजुष्टम् ॥ तीर्थंतदारघुपतिंमनसा स्मरन्तीत्यक्त्वा कलेवरमवापपरंपदंसा ॥८४॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

जब स्वयंप्रभा योगिनी ने इस प्रकार स्तुति की तब भक्तों के पापनाशक रामजी बड़े प्रसन्न हुए और भक्त योगिनी से बोले कि तेरे मन में क्या अभिलाषा है? ७८॥ वह योगिनी भक्तिपूर्वक रामजी से बोली कि हे भक्तवत्सल! मुझे यह वर दो कि जहां जहां मैं जन्म लूं, तहां तहां मुझे तुम्हारी अटल भक्ति हो, सदा तुम्हारे भक्तों का संग हो, संसारी मनुष्यों का न हो और मेरी जीभ सदा राम राम ही रटती रहे॥७९-८०॥ और हे राम! सीतालक्ष्मणसहित धनुषबाण धारे पीताबंर पहिने, क्रीट मुकुट से शोभायमान, हाथों में बाजूबंद, पैरों बजने झांझन, गले में मोतियों के हार, गले में कौस्तुभमणि और कानों में मकराकृत कुंडल इनसे प्रकाशमान जो तुम्हारा श्यामसुन्दर स्वरूप है उसे मेरा मन स्मरण किया करे और कुछ वर मैं नहीं मांगती॥८१॥८२॥ श्रीरामचन्द्र बोले-हे तपस्विनी! ऐसा ही होगा। अब त बदरी वन

को चली जा और वहां तू मुझे स्मरण करती हुई इस पंच महाभूत के रचे हुए शरीर को त्यागकर शीघ्र ही मुझ परमात्मा को पावेगी अर्थात् मुझमें ही लय हो जायगी॥८३॥ वह योगिनी रामजी के अमृतसमान वचन सुनकर और उसी समय बेरियों के वृक्ष जिसमें लग रहे हैं ऐसे बदरीकाश्रमतीर्थ में जाकर मन में रामचन्द्र का स्मरण करती हुई अपने शरीर को छोड़ परमपद को प्राप्त हुई॥८४॥ इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किंधाकाण्ड का छठवां सर्ग समाप्त हुआ॥६॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ अथतत्रसमासीनावृक्षखण्डेषुवानराः ॥ चिन्तयन्तोविमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्शिताः ॥१॥ तत्रोवाचांगदः कांश्चिद्वानरान्वानरर्षभः ॥ भ्रमतांगह्वरेऽस्माकंमासोनूनंगतोऽभवत् ॥२॥ सीतानाधिगतास्माभिर्नकृतंराजशासनम् ॥ यदिगच्छामकिष्किन्धांसुग्रीवोऽस्मान्हनिष्यति ॥३॥ विशेषतः शत्रुसुतंमांमिषान्निहनिष्यति ॥ मयितस्यकुतः प्रीतिरहंरामेणरक्षितः ॥४॥ इदानींरामकार्यमेनकृतं तन्मिषंभवेत् ॥ तस्यमद्धनेनूनं सुग्रीवस्यदुरात्मनः ॥५॥ मातृकल्पांभ्रातृभार्यांपापात्मानुभवत्यसौ ॥ नगच्छेयमतः पार्श्वंतस्यवानरपुंगवाः ॥६॥ त्यक्ष्यामिजीवितंचात्रयेनकेनापिमृत्युना ॥ इत्यश्रुनयनंकेचिद्दृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥७॥ व्यथिताः साश्रुनयनायुवराजमथाब्रुवन् ॥८॥ किमर्थंतवशोकोऽत्रवयं ते प्राणरक्षकाः ॥ भवामो निवसामोऽत्रगुहायांभयवर्जिताः ॥९॥ सर्वसौभाग्यसहितंपुरंदेवपुरोपमम् ॥ शनैः परस्परंवाक्यंवदतांमारुतात्मजः ॥१०॥ श्रुत्वाङ्गदंसमालिङ्ग्यप्रोवाचनयकोविदः॥ विचार्यतेकिमर्थंतेदुर्विचारोनयुज्यते ॥११॥ राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्वंहितारापुत्रोऽतिवल्लभः ॥ रामस्यलक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयिनित्यंप्रवर्धते

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके अनंतर वहां वन में सब वानर वृक्ष की डालियों पर बैठे बैठे चिंता करने लगे कि सीताजी की खोज करते करते हम तो महादुःखी और निर्बल हो गये॥१॥ उनमें से एक अंगद नाम श्रेष्ठ वानर बन्दरों से बोला कि इस गुफा में घूमते घूमते हमें एक मास पूरा हो गया इसमें सन्देह नहीं॥२॥ परंतु न तो हमें सीता मिली और न हम राजा की आज्ञा पूरी कर सके इसलिये अब जो किष्किंधापुरी चलेंगे तो सुग्रीव हमें मारे बिना नहीं छोड़ेगा॥३॥ और विशेष कर इस बहाने से मुझे ही मारेगा क्योंकि मैं उसके शत्रु बाली का पुत्र हूं। मेरे ऊपर भला

उसकी प्रीति कैसी, मैं तो रामजी का बचाया बच रहा हूं।।४।। और अब मैं राम का भी कार्य न कर सका तो उस दुष्ट सुग्रीव को मारने के लिये यह बहाना अच्छा मिल जायगा।।५।। वह बड़ा पापी है क्योंकि माता के समान अपने भाई की स्त्री से भोग करता है इसलिये हे वानरो! चाहे जो कुछ हो, मैं उसके पास नहीं जाऊंगा।।६।। और यहां ही चाहे जैसी मृत्यु के द्वारा अपने प्राण त्याग दूंगा। कितने ही बड़े बड़े वानर उसको रोता हुआ देख।।७।। बड़े दुःखी हुए और आंखों में आंसू भरकर युवराज अंगद से बोले कि।।८।। हे अंगद! इस विषय में शोक करने की क्या बात है। हम तुम्हारे ऊपर रक्षक बैठे हैं, इस गुहा में ही बेखटके रहेंगे।।९।। क्योंकि इस पुर में सब प्रकार की संपत्तियां भरी हैं इसलिये स्वर्ग के समान है। इस प्रकार धीरे धीरे बाते कर रहें थे कि इतने में नीति निपुण हनुमान ने उनकी बातें सुनकर अंगद को हृदय से लगा लिया और कहने लगे कि तुम ऐसा काहिलों का सा विचार क्यों कर रहे हो, ऐसा खोटा विचार नहीं करना चाहिये।।१०–११।। हे अंगद! तुम राजा के बड़े प्यारे हो क्योंकि तुम तारा के प्यारे पुत्र हो और राम लक्ष्मणजी की प्रीति तुम्हारे ऊपर दिन रात चौगुनी हो रही है।।१२।।

अतोनराघवाद्भीतिस्तवराज्ञोविशेषतः ।। अहंतवहितेसक्तोवत्सनान्यं विचारय ।।१३।। गुहावासाश्चनिर्भेद्यइ-त्युक्तंवानरैस्तुयत् ।। तदेतद्रामबाणानामभेद्यंकिंजगत्त्रये ।।१४।। येत्वांदुर्बोधन्त्येवानरावानरर्षभ ।। पुत्रदारादिकंत्यक्त्वाकथंस्थास्यन्तितेत्वया ।।१५।। अन्यद्गुह्यतमंवक्ष्येरहस्यंशृणुमेसुतः।। रामोनमानुषोदेवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ।।१६।। सीताभगवतीमायाजनसम्मोहकारिणी ।। लक्ष्मणोभुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः ।।१७।। ब्रह्मणाप्रार्थिताः सर्वेरक्षोगणविनाशने ।। मायामानुषभावेनजातालोकैकरक्षकाः ।।१८।। वयंचपार्षदाः सर्वेविष्णोर्वैकुण्ठवासिनः ।। मनुष्यभावमापन्नेस्वेच्छयापरमात्मनि।।१९।वयंवानररूपेणेजाता-स्तस्यैवमायया ।। वयंतुतपसापूर्वमाराध्यजगतांपतिम् ।।२०।। तैनेवानुगृहीताः स्मः पार्षदत्वमुपागताः ।। इदानीमपितस्यैवसेवांकृत्वैवमायया ।।२१।। पुनर्वैकुण्ठमासाद्यसुखंस्थास्यामहेवयम् ।। इत्यङ्गदमथाश्वास्य गताविन्ध्यंमहाचलम् ।।२२।। विचिन्वन्तोऽथशनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधेः ।। तीरेमहेन्द्राख्यगिरेः पवित्रंपादमाययुः ।।२३।।

इसलिये तुम्हें रामजी से कुछ भय नहीं है और विशेष करके राजा से तो सपने में भी नहीं है। हे वत्स! जिस बात में तुम्हारा भला हो, उसे मैं करने को तैयार हूं। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो।।१३।। वानरों ने जो तुमको पट्टी दी है कि गुहा के रहने में किसी तरह का खटका नहीं सो यह मिथ्या है क्योंकि राम का वैरी कहीं नहीं बच सकता और राम के बाणों से जिसका भेद न हो, ऐसा त्रिलोकी में कौनसा स्थान है।।१४।। और हे अंगद! जो वानर तुम्हें यहां रहने की बुरी सलाह दे रहे हैं वे स्त्री पुत्रादिकों को छोड़कर तुम्हारे साथ कैसे रहेंगे।।१५।। और हे बेटा! एक बात बड़ी गुप्त है उस गुप्त को भी मैं तुमसे कह देता हूं सुनो। यह रामचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं। यह तो देवता साक्षात् नारायण अविनाशी हैं।।१६।। और सीता मनुष्यों को मोह करानेवाली भगवती माया है और लक्ष्मणजी पृथ्वी को धारण करनेवाले साक्षात् सर्पराज शेषजी के अवतार हैं।।१७।। पहिले ब्रह्माजी ने राक्षसों के विनाश के लिये इनसे प्रार्थना की थी इसलिये इन्होंने लोक की रक्षा के लिये मनुष्य का अवतार लिया है।।१८।। और हम सब वैकुंठ के वासी विष्णु के पार्षद हैं। जब परमात्मा ने अपने इच्छा से मनुष्यावतार लिया।।१९।। तब हम उनकी ही माया से वानर शरीर धारण कर उत्पन्न हुए हैं। पूर्वकाल में हमने तप करके जगत् के पति भगवान् की बड़ी आराधना की थी।।२०।। इसलिये उन्होंने हमारे ऊपर अनुग्रह किया है और हम यहां आकर पार्षद हुए हैं। और अब भी उन्हीं की सेवा करके और उनकी ही माया से फिर हम वैकुंठ जाकर अपने सुखपूर्वक रहेंगे। इस प्रकार हनुमान्जी अंगदको समझा बुझा चुके तब सब वानर विंध्याचल पर्वत पर गये।।२१।।२२।। और फिर सीताजी को ढूंढ़ते हुए धीरे धीरे दक्षिण समुद्र के तीर पर महेंद्राचल के एक पवित्र छोटे पर्वत पर पहुंचे ।।२३।।

दृष्ट्वासमुद्रं दुष्पारमगाधंसभयवर्धनम् ।।वानराभयसन्त्रस्ताः किंकुर्मइतिवादिनः ।।२४।। निषेदुरुदधेस्तीरे सर्वेचिन्तासमन्विताः ।। मंत्रमायासुरन्योन्यमंगदाद्यामहाबलाः ।।२५।। भ्रमतोमेवनेमासोगतोऽत्रैवगुहान्तरे ।। नदृष्टोरावणोवाद्यसीतावाजनकात्मजा ।।२६।। सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येवनसंशयः ।। सुग्रीव वधतोऽस्माकंश्रेयः ।। प्रायोपवेशनम् ।।२७।। इतिनिश्चत्यतत्रैवदर्भानांस्तीर्यसर्वतः ।। उपाविवेशुस्तेसर्वेमरणे कृतनिश्चयाः ।।२८।। एतस्मिन्नन्तरेतत्रमहेन्द्राद्रिगुहान्तरात् ।। निर्गत्यशनकैरागाद्गृध्रः पर्वतसन्निभः

॥२९॥ दृष्ट्वाप्रायोपवेशेनस्थितान्वानरपुंगवान् ॥ उवाच शनकैर्गृध्रः प्राप्तोभक्षोऽद्यमेबहुः ॥३०॥ एकैकशः क्रमात्सर्वान् भक्षयामिदिनेदिते ॥ श्रुत्वा तद्गृध्रवचनंवानराभीतमानसाः ॥३१॥ भक्षयिष्यतिनः सर्वानसौगृध्रोनसंशयः ॥ रामकार्यंचनास्माभिः कृतंकिंचिद्धरीश्वराः ॥३२॥

वहां उन्होंने बड़ी कठिनता से पार होने योग्य अथाह समुद्र को देखा कि जिसको देखते ही भय लगे। उसे देख बन्दरों के छक्के छूट गये और कहने लगे कि अब क्या करें।॥२४॥ फिर सब चिंता में व्याकुल होकर समुद्र के किनारे ठहर गये और अंगद आदि महापराक्रमी वानर आपस में सलाह करने लगे कि॥२५॥ वन में घूमते घूमते हमें उस गुहा में ही एक महीना तो होने आया और न तो रावण दीखा और न जनकनंदिनी सीताजी के दर्शन हुए॥२६॥ सुग्रीव बड़ा कठोर दंड देनेवाला है वह हमें प्राणदंड दिये बिना नहीं छोड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है और सुग्रीव के हाथ से मरने से तो यहां भूखे प्यासे मरना अच्छा है॥२७॥ यह कहकर वे सब वहां ही कुशाको चारों ओर बिछाकर मरने का निश्चय करके बैठ गये॥२८॥ इस बीच में वहां महेन्द्राचल की गुहा के भीतर से धीरे धीरे निकलकर पर्वत के समान एक गृध्र आया॥२९॥ और भूखे प्यासे बड़े बड़े वानरों को बैठा देखकर वह गृध्र धीरे धीरे कहने लगा कि आज तो अनायास मुझे बहुत सा खाने को मिल गया॥३०॥ एक एक करके नित्य सब वानरों को क्रम से खाता रहूंगा। गृध्र का वचन सुनकर बंदरों के पेट में पानी हो गया कि॥३१॥ यह गृध्र हम सबों को खाये बिना नहीं छोड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है। और हे बन्दरो! रामजी का कार्य तो हम कुछ नही करने पाये॥३२॥

सुग्रीवस्यापिचहितंनकृतंस्वात्मनामपि ॥ वृथानेनवधंप्राप्तागच्छामोयमसादनम् ॥३३॥ अहोजटायुर्धर्मात्मा-रामस्यार्थेमृतः सुधीः ॥ मोक्षंप्रापदुरावापंयोगिनामप्यरिन्दमः ॥३४॥ सम्पातिस्तुतदावाक्यंश्रुत्वावानर-भाषितम् ॥ केवायूयंममभ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम् ॥३५॥ जटायुरितिनामाद्यव्याहरन्तः परस्परम् ॥ उच्यतांवोभयंमाभून्मत्तः प्लवगसत्तमाः ॥३६॥ तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितोगृध्रसन्निधौ ॥ रामोदाशरथिः श्रीमान्लक्ष्मणेसमन्वितः ॥३७॥ सीतयाभार्ययासार्धंविचचारमहावने ॥ तस्यसीताहृतासाध्वी रावणेनदुरा-त्मना ॥३८॥ मृगयांनिर्गते रामेलक्ष्मणेचहृताबलात् ॥ रामरामेतिक्रोशन्तीश्रुत्वागृध्रः प्रतापवान् ॥३९॥

अ०रा० २६७

जटायुर्नामपक्षीन्द्रोयुद्धंकृत्वासुदारुणम् ॥ रावणेनहतोवीरोराघवार्थंमहाबलः ॥४०॥ रामेणदग्धोरामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात् ॥ रामः सुग्रीवमासाद्य सख्यंकृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥४१॥ सुग्रीवचोदितोहत्वावालिनं सुदुरासदम् ॥ राज्यंददौवानराणांसुग्रीवायमहाबलः ॥४२॥

और न कुछ सुग्रीव का भला किया न आपना भला किया। यह हमें वृथा मार डालेगा और हम सब यमपुर चले जायंगे॥३३॥ आहा हा! सच पूछो तो जटायु बड़ा धर्मात्मा और शत्रुओंको जीतनेवाला था कि उस बुद्धिमान् ने रामजी के लिये अपने प्राण छोड़े और उसने योगियोंको भी दुर्लभ ऐसी मोक्ष पाई॥३४॥उस समय उन वानरोंकी बातको सुनकर सपाती कहने लगा कि बताओ तुम कौन हो जो कर्णो को अमृतसमान सुख देनेवाले मेरे भाई जटायु नाम आज आपस में ले रहे हो और हे श्रेष्ठवानरो! अब मुझमें तुम्हें कुछ भय नहीं है॥३५–३६॥ यह सुन उन वानरों में से सुन्दर अंगद गृध्र के पास जाकर कहने लगा कि दशरथ पुत्र बड़े लक्ष्मीवान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और अपनी भार्या सीतासहित दंडकारण्य में विचर रहे थे और जिस समय राम लक्ष्मण शिकार खेलने गये उस समय दुष्ट रावण रामजी की पतिव्रता भार्या को बलपूर्वक हर ले गया। वह सीता 'राम राम' इस प्रकार विलाप करती चली जा रही थी उसको सुनकर बड़ा प्रतापी पक्षियों का राजा गृध्र कि जिसका नाम जटायु था उसने रावण के साथ रामजी के लिये बड़ा भयंकर युद्ध किया पर अंत में रावण ने उस महापराक्रमी शूरवीर को मार डाला॥३७–४०॥ फिर रामजी ने उंसकी दाह क्रिया की और वह उसी क्षण राम के ही स्वरूप में मिल गया। इस पीछे रामजी ने सुग्रीव के पास आ और अग्नि को साक्षी देकर उससे मित्रता करी॥४१॥ फिर सुग्रीव के कहे से महाबली रामजी ने महापराक्रमी बाली को मारकर वानरों का राज्य सुग्रीव को दे दिया॥४२॥

कि०का० सर्ग ७

सुग्रीवः प्रेषयामाससीतायाः परिमार्गणे ॥ आस्मान्वानरवृन्दान्वैमहासत्त्वान्महाबलः ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वंनोचेत्प्राणान्हरामिवः ॥ इत्याज्ञयाभ्रमन्तोऽस्मिन्वनेगह्वरमध्यगाः ॥४४॥ गतोमासोनजानीमः सीतांवारावणंचवा ॥ मर्तुंप्रायोपविष्टाः स्मस्तीरेलवणवारिधेः ॥४५॥ यदिजानासिहेपक्षिन्सीतांकथयनः शुभाम् ॥ अंगदस्यवचः श्रुत्वासम्पातिर्हृष्टमानसः ॥४६॥ उवाचमत्प्रियोभ्राताजटायुः प्लवगेश्वराः ॥

बहुवर्षसहस्रान्तेभ्रातृवार्ताश्रुतामया ।।४७।। वाक्साहाय्यंकरिष्येऽहंभवतांप्लवगेश्वराः ।।भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वंमांजलान्तिकम् ।।४८।। पश्चात्सर्वंशुभंवक्ष्येभवतांकार्यसिद्धये ।। तथेतिनिन्युस्तेतीरंसमुद्रस्यविहंगम् ।। सोऽपितत्सलिलेस्नात्वा भ्रातुर्दत्त्वाजलाञ्जलिम् ।।४९।। पुनः स्वस्थानमासाद्यस्थितोनीतोहरीश्वरैः ।। सम्पातिः कथयामासवानरान्परिहर्षयन् ।।५०।। लङ्कानामनगर्यास्तेत्रिकूटगिरिमूर्धनि ।। तत्राशोकवने सीताराक्षसीभिः सुरक्षिता ।।५१।। समुद्रमध्येसालंकाशतयोजनदूरतः ।। दृश्यतेमेनसन्देहः सीता च परिदृश्यते ।।५२।।

फिर सुग्रीव ने बड़े बड़े देहधारी और महापराक्रमी झुंड के झुंड हम सब वानरों को सीताजी को ढूंढने के लिये भेजा है।।४३।। और यह आज्ञा दे दी है कि एक मास के भीतर लौट आना नहीं तो मैं जान से मार डालूंगा। परंतु वन में घूमते घूमते हमें गुहा में ही एक मास बीत गया और हमने सीता वा रावण को नहीं जाना कि वे कहां है? सो अब हम इस लवण समुद्र के किनारे मरने के लिये तैयार बैठे हैं।।४४–४५।। हे पक्षिराज! जो तुम सुन्दर सीता को जानते हो तो बताओ। अंगद का यह वचन सुनकर संपाती मन में बड़ा प्रसन्न हुआ।।४६।। और बोला कि हे श्रेष्ठ बंदरो! जटायु मेरा प्यारा भाई था, बहुत हजार वर्ष पीछे मैंने अपने भाई की चर्चा सुनी है।।४७।। हे सुन्दर वानरों! मैं वाणी से तुम्हारी सहायता करूंगा पहिले तो तुम मुझे भाई का तर्पण करने के लिये जल के किनारे ले चलो।।४८।। फिर वहां से आकर तुम्हारे कार्य सिद्ध होने का सब शुभ समाचार सुनाऊंगा। 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर वे सब वानर उस पक्षी को समुद्र के तीर पर ले गये। और उसने वहां जल में स्नान कर अपने भाई को जल की अंजलि दी।।४९।। फिर वानर उसे अपने स्थान पर ले आये और उस संपाती ने बैठकर प्रसन्न हो वानरों से कहा कि।।५०।। त्रिकूट पर्वत के ऊपर एक लंका नाम नगरी है उसकी अशोक वाटिका में सीताजी रहती है और चारों ओर से राक्षसियां उनकी रखवाली करती हैं।।५१।। वह लंका यहां से सौ योजन दूर समुद्र के बीचों बीच खड़ी है और मुझे लंका और सीता दोनों दिखाई दे रही हैं, इसमें संदेह नहीं है।।५२।।

गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मेनात्रसंशयितुंक्षमम् ।। शतयोजनविस्तीर्णसमुद्रंयस्तुलंघयेत् ।।५३।। सएवजानकींदृष्ट्वा-

पुनरायास्यतिध्रुवम् ।। अहमेवदुरात्मानंरावणंहन्तुमुत्सहे ।।५४।। भ्रातुर्हन्तारमेकाकीकिन्तुपक्षविवर्जितः ।। यतध्वमतियत्नेनलंघितुं सरितांपतिम् ।। ततोहन्तारघुश्रेष्ठोरावणं राक्षसाधिपम् ।।५५।। उल्लंघ्यसिंधुंशतयोजनायतंलङ्कांप्रविश्याथविदेहकन्यकाम् ।। दृष्ट्वा समाभाष्यचवारिधिंपुनस्तर्तुंसमर्थः कतमोविचार्यताम् ।।५६।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किंधाकाण्डे सप्तमः सर्गः ।।७।।

मैं गृध्र होने से दूर तक देख सकता हूं, तुम नहीं देख सकते। इसमें तुम्हारा संशय करना ठीक नहीं और देखो कि सौ योजन पाटवाले समुद्र को जो कोई लांघ जावेगा।।५३।। वही जानकी को देख आ सकता है, इसमें सन्देह नहीं है और मैं अकेला ही उस अपने भाई के मारनेवाले दुष्ट रावण को मारने की हिम्मत करता हूं परंतु क्या करूं, मेरे पंख नहीं है इसलिये तुम जैसा हो सके समुद्र फांदने का उपाय करो फिर तोश्रीरामचन्द्रजीउनराक्षसोंके राजा रावण को मारे बिना न रहेंगे।।५४।।५५।। हे वानरों! जो सौ योजन समुद्र को लांघकर लंका में जाय और जानकी को देखकर और उनसे बातचीत करके फिर जिसका समुद्र पार करने का बूता हो, ऐसा तुम वानरों में से कौनसा है सो सब विचारकर देख लो।।५६।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किन्धाकाण्ड का सातवां सर्ग समाप्त हुआ।।७।।

श्रीमहादेव उवाच ।। अथतेकौतुकाविष्टाः सम्पातिंसर्ववानराः ।। पप्रच्छुर्भगवन्ब्रूहिस्वमुदंतंत्वमादितः ।।१।। सम्पातिः कथयामास स्ववृत्तांतंपुराकृतम् ।। अहंपुराजटायुश्चभ्रातरौरूढयौवनैः ।।२।। बलेनदर्पितावावांबलजिज्ञासयाखगौ ।। सूर्यमण्डलपर्यंतंगन्तुमुत्पतितौमदात् ।।३।। बहुयोजनसाहस्रंगतौतत्र प्रतापितः ।। जटायुस्तंपरित्रातुंपक्षैराच्छाद्यमोहतः ।।४।। स्थितोऽहंरश्मिभिर्दग्धपक्षोस्मिन्विन्ध्यमूर्धनि।। पतितोदूरपतनान्मूर्च्छितोऽहंकपीश्वराः ।।५।। दिनत्रयात्पुनः प्राणसहितोदग्धपक्षकः ।। देशंवागिरिकूटान्वान जानेभ्रांतमानसः ।।६।। शनैरुन्मील्यनयनेदृष्ट्वातत्राश्रमंशुभम् ।। शनैः शनैराश्रमस्यसमीपंगतवानहम् ।।७।। चंद्रमानाममुनिराट् दृष्ट्वामांविस्मितोऽवदत् ।। सम्पातेकिमिदंतेऽद्यविरूपंकेनवाकृतम् ।।८।। जानामित्वामहंपूर्वमत्यंतंबलवानसि ।। दग्धौकिमर्थंतेपक्षौ कथ्यतांयदिमन्यसे ।।९।। ततः स्वचेष्टितंसर्वंकथयित्वाति दुःखितः ।। अब्रुवंमुनिशार्दूलंदह्येऽहं दावह्निना ।।१०।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके उपरांत सब बन्दर संपाती की बातें सुनकर बड़े अचंभे में आये, सपाती से पूछने लगे कि हे महात्मा! तुम हमें आदि से अपना वृत्तान्त सुनाओ।।१।। संपाती अपना पुराना वृत्तान्त सुनाने लगा कि पूर्वकाल में मैं और जटायु जब तरुण अवस्था पर पहुँचे।।२।। तब हम दोनों पक्षियों को अपने बल का बड़ा घमंड था सो हम अपना बल जांचने की इच्छा से बड़े गर्व के साथ सूर्यमंडल तक जाने के लिये उड़े।।३।। और जब हम बहुत हजार योजन तक पहुँच गये और जब जटायु सूर्य के तेज से तपने लगा तब स्नेह के कारण उसकी रक्षा के लिए उसे अपने पंखों से ढ़ककर बैठ गया परंतु जटायु चला आया, इतने में सूर्य की किरणों से मेरे भी पंख जल गये और मैं इस विंध्याचल के शिखर पर गिर पड़ा और दूर से गिरने के कारण हे वानरो! मैं मूर्च्छित हो गया।।४–५।। फिर तीन दिन पीछे मुझे चेत हुआ पर एक तो पक्षहीन होने से दूसरे ठिकाना न होने से यह न जान पड़ा कि मैं अपने देश में पड़ा हूं कि पर्वत के शिखरों पर पड़ा हूं।।६।। फिर धीरे धीरे नेत्र खोलकर मैंने वहां एक सुन्दर आश्रम देखा और धीरे धीरे खिसकता हुआ मैं उस आश्रम के पास चला गया।।७।। वहां चन्द्रमा नाम मुनीश्वर मुझे देखकर बड़े दुःखी हुए और पूछने लगे कि हे संपाती! आज यह तेरी क्या कुदशा आई और किसने तेरे पंख जलाकर कुरूप कर डाला।।८।। मैं जानता हूं कि पहिले तू तो बड़ा भारी बलवान् था। तेरे ये दोनों पंख कैसे जल गये? सो तो ठीक ठीक कहो।।९।। फिर मैंने दुःखी होकर उनको अपना सब रोना सुनाया और सुनाकर उस मुनिराज से मैंने कहा कि महाराज! मैं तो चिंता के मारे वन की अग्नि के समान भीतर ही फूंका जाता हूं।।१०।।

कथंधारयितुं शक्तोविपक्षोजीवितंप्रभो ।। इत्युक्तोऽथमुनिर्वीक्ष्यमांदयार्द्रविलोचनः।।११।। शृणुवत्सवचोमेऽद्य श्रुत्वाकुरुयथेप्सितम् ।। देहमूलमिदं दुःखदेहः कर्मसमुद्भवः ।।१२।। कर्मप्रवर्तते देहेऽहंऽबुध्यापुरुषस्यहि ।। अहंकारस्त्वनादिः स्यादविद्यासंभवोजडः ।।१३।। चिच्छाययासदायुक्तस्तप्तायः पिण्डवत्सदा ।। तेनदेहस्यतादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत्।।१४।। देहोऽहमितिबुद्धिः स्यादात्मनोऽहंकृतेर्बलात्।।तन्मूलएषसंसारः सुखदुःखादिसाधकः ।।१५।। आत्मानोऽनिर्विकारस्यमिथ्यातादात्म्यतः सदा ।। देहोऽहं कर्मकर्ताहमिति सङ्कल्प्यसर्वदा ।।१६।। जीवः करोतिकर्माणितत्फलैर्बद्धयतेऽवशः ।। ऊर्ध्वाधोभ्रमतेनित्यंपापपुण्यात्मकः

स्वयम् ॥१७॥ कृतंमयाधिकंपुण्यंयज्ञदानादिनिश्चितम् ॥ स्वर्गंगत्वासुखभोक्ष्यइतिसङ्कल्पवान्भवेत् ॥१८॥ तथैवाध्यासतस्तत्रचिरंभुक्त्वासुखंमहत् ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदितः ॥१९॥

हे प्रभो! बिना पंखों के कैसे प्राण रख सकता हूं, जब मैंने यह कहा तो मुझे देखकर दया के कारण मुनि की आंखे भर आईं और वे बोले॥११॥ हे बेटा! आज मेरी एक बात सुन फिर जो तुझे अच्छा लगे सो करिये। हे संपाती! दुःख की जड़ देह है और देह की उत्पत्ति कर्म से है॥१२॥ और कर्म पुरुष की अहंकार बुद्धि से होता है और अहंकार अविद्या से उत्पन्न हुआ है इसलिये जड़ और अनादि है अर्थात् यह नहीं जान पड़ता कि कब से उत्पन्न हुआ है॥१३॥ सो अहंकार तपाये हुए लोहे के गोले की तरह सदा चिदाभास युक्त रहता है अर्थात् जैसे तपे हुए लोहे के गोले में असल में अग्नि नहीं होती परंतु वह अग्नि में तपाने से अग्नि के समान दीखता है और अग्नि का कार्य भी करता है और अग्नि से भिन्न नहीं हो सकता, ऐसे ही अहंकार का देह के साथ ऐसा सम्बन्ध है कि भिन्न होकर भी अभिन्न सा दीखता है, इसी से देह चेतन युक्त सा दीखता है॥१४॥ इस चेतन आत्मा को अहंकार के बल से 'मैं देह हूं' ऐसी मिथ्या बुद्धि होती है और उसी बुद्धि के कारण संसार होता है सो कर्म के सुख दुःख को उत्पन्न करता है॥१५॥ और आत्मा को निर्विकार है परंतु सदा मिलना और अलग रहना, इस मिथ्या तादात्म्य संबध होनेसे मैं देह हूं, मैं कर्मों का करनेवाला हूं, ऐसा सदा प्रतीत होता है॥१६॥ इसलिये जीव जो नित्य पुण्य पापे के कर्म करता है उन कर्मों के फल से जो सुख दुःखादि फल होते हैं, उनसे अवश्य ही बंधन पाता है और नीचे ऊंचे भ्रमता है अर्थात् अच्छे कर्म करता है, स्वर्ग में रहता है, पाप कर्म करता है, अधोगति पाता है॥१७॥ और यह जीव ऐसा विचार करता है कि मैंने बहुत सा पुण्य और यज्ञ दानादि किया है इसलिये स्वर्ग में जाकर अवश्य सुख भोगूंगा॥१८॥ परंतु वह जीवात्माअपनी मिथ्याबुद्धि से वहां स्वर्ग में बहुत काल तक महान् सुख भोगकर जब पुण्य क्षीण हो जाता है तब बिना चाहे भी कर्म के वश नीचे को गिरता है॥१९॥

पतित्वामण्डलेचेन्दोस्ततानीहारसंयुतः ॥ भूमौपतित्वाव्रीह्यादौतत्रस्थित्वाचिरंपुनः ॥२०॥ भूत्वाचतुर्विधं भोज्यंपुरुषैर्भुज्यतेततः ॥ रेतोभूत्वापुनस्तेनऋतौस्त्रीयोनिसिञ्चितः ॥२१॥ योनिरक्तेन संयुक्तंजरायुपरि वेष्टितम् ॥ दिनेनैकेनकललंभूत्वारूढत्वमाप्नुयात् ॥२२॥ तत्पुनः पञ्चरात्रेणबुद्बुदाकारतामियात् ॥

सप्तरात्रेणतदपिमांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥२३॥ पक्षमात्रेणसापेशीरुधिरेणपरिप्लुता ॥ तस्याएवांकुरोत्पत्तिः पञ्चविंशतिरात्रिषु ॥२४॥ ग्रीवा शिरश्चस्कन्धश्चपृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ पञ्चधाङ्गनिचैकैकंजायन्तेमासतः क्रमात् ॥२५॥ पाणिपादौतथापार्श्वः कटिर्जानुतथैवच ॥ मासद्वयात्प्रजायन्तेक्रमेणैवनचान्यथा ॥२६॥ त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते अङ्गानांसन्धयः क्रमात् ॥ सर्वाङ्गुल्यः प्रजायन्तेक्रमान्मासचतुष्टये ॥२७॥ नासाकर्णौचनेत्रेचजायन्तेपञ्चमासतः ॥ दन्तपंक्तिर्नखागुह्यंपञ्चमेजायतेतथा ॥२८॥ अर्वाक्षण्मासतश्छिद्रंकर्णयोर्भवतिस्फुटम् ॥ पायुर्मेढ्रमुपस्थंचनाभिश्चापिभवेन्नृणाम् ॥२९॥ सप्तमेमासिरोमाणिशिरः केशास्तथैवच ॥विभक्तावयत्वचसर्वंसम्पद्यतेऽष्टमे॥३०॥ जठरेवर्धतेगर्भस्त्रियाएवंविहंगम ॥ नवमेमासिचैतन्यंजीवः प्राप्नोतिसर्वशः ॥३१॥ नाभिसूत्राल्परन्ध्रेणमातृभुक्तान्नसारतः ॥ वर्धतेगर्भगः पिण्डोनम्रियेतस्वकर्मतः ॥३२॥ स्मृत्वासर्वाणिजन्मानिपूर्वकर्माणिसर्वश ॥ जठरानलतप्तोऽयमिदंवचनमब्रवीत् ॥३३॥

फिर वह सूक्ष्म शरीरवाला जीव चन्द्रमंडल में आता है, वहां से चन्द्र की किरणों के द्वारा कोहिरे में आता है। कोहिरे से पृथ्वी पर गिरकर यव गेंहू आदि अन्न में आता है फिर अन्न में बहुत काल रहकर॥२०॥ फिर अन्न का चार प्रकार का भोजन बनता है उसे पुरुष भोजन करते हैं उससे वीर्य होता है। फिर ऋतुकाल में भोग करने से वह वीर्य स्त्री की योनि में पड़ता है॥२१॥ फिर वहां स्त्री के रुधिर में मिलकर वह जेल में लिपटता है फिर एक दिन में मिलकर कुछ दृढ हो जाता है और फिर पांच रात्रि में बुलबुले के समान हो जाता है और फिर सात रात्रि में मांस की थैली के तुल्य हो जाता है॥२२॥२३॥ फिर पंद्रह दिन में वह थैली रुधिर से भर जाती है फिर पच्चीस रात्रि में उसमें अंकुरों की उत्पत्ति होती है॥२४॥ फिर एक महीने में क्रम क्रम से गर्दन, शिर, कंधा, पीठ की रीढ और उदर ये पांच अंग बनते हैं॥२५॥ फिर दूसरे महीने में हाथ, पांव, पसली, कमर और घोंटू बनते हैं॥२६॥ फिर तीसरे महीने में क्रम से सब अंगो के जोड़ और सब अंगुलियां ये अंग बनते हैं॥२७॥ फिर पांचवें मास में नाक कान और नेत्र बनते हैं और पांचवें ही महीने में मसूढे नख और मूत्रस्थान बनते हैं॥२८॥ फिर छः महीने के भीतर पुरुषों के कान, गुदा, मूत्रस्थान नाभि ये बनकर इनमें छिद्र प्रकट दीखने लगते हैं॥२९॥ और सातवें महीने में रोम और शिर के बाल होते हैं और आठवें महीने में सब अंग अलग

अलग होते हैं।।३०।। और हे पक्षिराज! इस प्रकार स्त्री के उदर में गर्भ बढ़ता है और नववें मास में जीव को सब इन्द्रियों का ज्ञान हो जाता है।।३१।। बालक की नाभि से लिपटे हुए नाल में एक बड़ा महीन छेद होता है उसके द्वारा माता के भोजन के रस से वह गर्भ का पिंड पुष्ट होता रहता है और अपने कर्म के वश मरता नहीं है।।३२।। फिर नववें मास में जब प्राणी को ज्ञान होता है तो अनेक जन्म और सब पूर्व जन्मों के कर्मों को स्मरण करता है और उदर की अग्नि से तपकर यह बात कहता है कि।।३३।।

नानायोनिसहस्त्रेषुजायमानोऽनुभूतवान् ।। पुत्रदारादिसम्बन्धंकोटिशः पशुबान्धवान् ।।३४।। कुटुम्बभरणासक्त्यान्यायान्यायैर्धनार्जनम् ।। कृतंनाकरवंविष्णुचिन्तास्वप्नेऽपिदुर्भगः।।३५।। इदानींतत्फलंभुञ्जेगर्भदुःखं महत्तरम् ।। अशाश्वतेशाश्वतवद्देहेतृष्णासमन्वितः ।।३६।। अकार्याण्येवकृतवान्नकृतंहितमात्मनः ।। इत्येवंबहुधादुःखमनुभूयस्वकर्मतः ।।३७।। कदानिष्क्रमणं मेस्याद्गर्भान्निरयसन्निभात् ।। इतऊर्ध्वंनित्यमहं विष्णुमेवानुपूजये ।।३८।। इत्यादिचिन्तयन्जीवोयोनियन्त्रपीडितः।। जायमानोऽतिदुःखेननरकात्पातकोयथा- ।।३९।। पूतिव्रणान्निपतितः कृमिरेषइवापरः ।। ततोबाल्यादिदुःखानिसर्वेएवं विभुञ्जते ।।४०।। त्वयाचैवानुभूतानिसर्वत्रविदितानिच ।। नवर्णितानिमेगृध्रयौवनादिषुसर्वतः ।।४१।। एवंदेहोऽहमित्यस्माद्भ्यासन्निरयादिकम् ।। गर्भवासादिदुःखानिभवन्त्यभिनिवेशतः ।।४२।। तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानंप्रकृतेः परम् ।। ज्ञात्वादेहादिममतांत्यक्त्वात्म ज्ञानवान्भवेत् ।।४३।।

मैंने अनेक प्रकार की हजारों योनियों में उत्पन्न होकर करोड़ों स्त्री पुत्रादिकों के संबन्ध का और करोड़ों पशु और बांधवों का अनुभव किया है।।३४।। और जैसे हुआ वैसे कुटुंब पालन के लिये न्याय से वा अन्याय से धन पैदा किया परंतु मुझ अभागे ने स्वप्न में भी भगवान् का स्मरण नहीं किया।।३५।। यह बड़ा भारी गर्भ का दुःख उसी कर्म का फल है जो अब मैं भोग रहा हूं और अनित्य देह में नित्य के समान तृष्णा कर रहा हूं।।३६।। मैंने न करने के काम तो बहुत से किये परंतु अपने हित का एक भी नहीं किया इसलिये अपने कर्म के वश बहुत भांति के दुःख भोग रहा हूं।।३७।। इस नरक समान गर्भ में मेरा कब छुटकारा होगा। अब किसी भांति इससे मेरा पीछा छूटे तो मैं नित्य विष्णु भगवान् का पूजन

किया करूंगा।।३८।। इत्यादि सब बातों को विचारता हुआ यह जीव योनियंत्र से पीड़ित हो ऐसे अत्यन्त दु:ख से निकलता है कि जैसे नरक से पापी निकलता हो।।३९।। अथवा जैसे पीब से भरे हुए फोड़े में से कृमि निकलते हों फिर बाल्यावस्था के जो दु:ख हैं उन सबको भोगता है।।४०।। तुमने भी इन्हें भोगे होंगे और सर्वत्र विदित ही हैं इसलिये हे गृध्र! मैंने युवावस्था आदि के सब दु:ख नहीं कहे।।४१।। इसलिये 'मैं देह हूं' ।। इसी अभ्यास से अर्थात् मैं कर्ता भोक्ता हूं इस आग्रह से नरक और गर्भवास आदि दु:ख भोगने पड़ते हैं।।४२।। इसलिये स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहों से भिन्न और माया से परे अपने आत्मस्वरूप को जानकर और देह आदि की ममता को छोड़कर पुरुष को आत्मज्ञानी होना चाहिये।।४३।।

जाग्रदादिविनिर्मुक्तंसत्यज्ञानादिलक्षणम् ।। शुद्धंबुद्धंसदाशान्तमात्मानमवधारयेत् ।।४४।। चिदात्मनि परिज्ञातेनष्टेमोहेऽज्ञसम्भवे ।। देहः पततुवारब्धकर्मवेगेनतिष्ठतु ।।४५।। योगिनोनहिदु:खंवासुखंवाज्ञान सम्भवम् ।। तस्माद्देहेनसहितो यावत्प्रारब्धसंक्षयः ।।४६।। तावत्तिष्ठसुखेनत्वंधृतकञ्चुकसर्पवत् ।। अन्यद्वक्ष्यामितेपक्षिन्शृणुमेपरमंहितम् ।।४७।। त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणोऽव्ययः ।। रावणस्यवधार्थाय दण्डकानागमिष्यति ।।४८।। सीतयाभार्ययासार्धंलक्ष्मणेनसमन्वितः ।। तत्राश्रमेजनकजांभ्रातृभ्यांरहितेवने ।।४९।। रावणश्चोरवन्नीत्वालङ्कायांस्थापयिष्यति ।। तस्याः सुग्रीवनिर्देशाद्वानराः परिमार्गणे ।।५०।। आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरंतत्रसमागतः ।। त्वयातैः कारणवशाद्भविष्यतिनसंशयः ।।५१।। तदासीतास्थितिंतेभ्यः कथयस्वयथार्थतः ।। तदैव तवपक्षौद्वावुत्पत्स्येतेपुनर्नवौ ।।५२।। सम्पातिरुवाच ।। बोधयामासमांचन्द्रनामामुनिकुलेश्वरः ।। पश्यन्तुपक्षोमेजातौनूतनावतिकोमलौ ।।५३।।

आत्माका ऐसा ध्यान करे कि वह जाग्रत् आदि अवस्थाओंसे रहित,सत्य ज्ञान आदि स्वरूप, शुद्ध, बुद्ध और सदा शांत रूप है।।४४।। जब चैतन्यस्वरूप आत्माका ज्ञान हो जाता है तब अविद्यासे उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हो जाता है फिर यह देह चाहे नष्ट हो जाय वा प्रारब्ध बल से स्थित रहे।।४५।। ज्ञानी को न मरने में दु:ख और न जीने में सुख होता है। क्योंकि सुख दु:खकी उत्पत्ति तो अज्ञानसे होती है इसलिये जब तक प्रारब्ध कर्म का क्षय नहीं होता है तब तक जीव ज्ञानी होकर भी शरीर धारण किये रहता

है॥४६॥ इसलिये हे गृध्र! जब तक तेरा प्रारब्ध कर्म है तब तक तू कैंचुलीसे युक्त सर्प की तरह शरीर धारण किये रह और हे पक्षी! और भी एक बात मैं बड़े भलेकी कहता हूं उसे सुन॥४७॥ त्रेतायुगमें अविनाशी नारायण दशरथके पुत्र होकर रावणके मारनेके लिये सीता भार्या और लक्ष्मणसहित दंडकवनमें आवेंगे और जिस समय दोनों भाई आश्रममें न होंगे और वनमें जायंगे,उस समय रावण जानकीको चुराकरले जायगा और उन्हें लंका में रखेगा फिर सुग्रीवकी आज्ञासे उन सीताजीकी खोजमें वानर आवेंगे और समुद्रके किनारे पर तुम्हारा उनके साथ कारणवश अवश्य समागम होगा॥४८–५१॥ और जब तू उनसे सीताकी दशा सत्य कहेगा उसी समय तेरे दोनों पंख निकल आयेंगे॥५२॥ संपाती ने कहा–हे कपीश्वरो! चन्द्रनाम मुनिराजने मुझसे यह सब कहा था सो तुम सब देख लो कि सीताका हाल कहते ही मेरे दोनों नये पंख निकल आये॥५३॥

स्वस्तिवोऽस्तुगमिष्यामिसीतांद्रक्ष्यथनिश्चयम् ॥ यत्नंकुरुध्वंदुर्लङ्घ्यसमुद्रस्यविलङ्घने ॥५४॥यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितंसंसारवारांनिधिंतीर्त्वागच्छतिदुर्जनोपिपरमंविष्णोः पदंशाश्वतम् ॥ तस्यैवस्थितिकारिणस्त्रि गतांरामस्यभक्ताः प्रियायूयंकिंनसमुद्रमात्रतरणेशक्ताः कथंवानराः ॥५५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥

हे वानरो! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो अब जाता हूं, तुमको सीताजी का दर्शन अवश्य होगा। परंतु समुद्र बड़ी कठिनता से लांघा जायगा उसके लांघने की कोई युक्ति निकालो॥५४॥ हे वानरो! जिस राम के नाम के स्मरण मात्र से दुर्जन भी संसाररूपी अपार समुद्र को पार करके विष्णु का सनातन परमपद पाता है उसी तीनों लोक के उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले राम के प्यारे भक्त होकर तुम क्या जरा सा समुद्र पार नहीं कर सकते, यह कैसे हो सकता है॥५५॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित किष्किंधाकांड का अष्टम सर्ग समाप्त हुआ॥८॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ गतेविहायसागृध्रराजेवानरपुंगवाः ॥ हर्षेणमहताविष्टाः सीतादर्शनलालसाः ॥१॥ ऊचुः समुद्रंपश्यन्तोनक्रचक्रभयङ्करम् ॥ तरंगादिभिरुन्नद्धमाकाशमिवदुर्ग्रहम् ॥२॥ परस्परमवोचन्वैकथमेनंतरामहे ॥ उवाचचांगदस्तत्रशृणुध्वंवानरोत्तमाः ॥३॥ भवन्तोऽत्यंतबलिनः शूराश्चकृतविक्रमाः ॥ कोवाऽत्रवारिधिंतीर्त्वाराजकार्यंकरिष्यति ॥४॥ एतेषांवानराणांसप्राणदाता न संशयः ॥ अतोत्त्तिष्ठतुमेशीघ्रंपुरतोयोमहाबलः ॥५॥ वानराणांचसर्वेषांरामसुग्रीवयोरपि॥ स एव पालकोभूयान्नात्रकार्याविचारणा

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! यह कहकर जब गृध्रराज संपाती आकाशमार्ग से चला गया तब सब श्रेष्ठ वानर सीताजी के दर्शन की लालसा बड़े प्रसन्न हुए।।१।। और समुद्र को देखकर कहने लगे कि इसमें तो बडे भयंकर घड़याल डोल रहे हैं, भ्रमर पड़ रहे हैं और ऊंची ऊंची तरंगे उठ रही हैं। जैसे कोई आकाश को नहीं छू सकता, ऐसे ही इसका तरना भी महा कठिन है।।२।। सब आपस में कह रहे थे इसके पार कैसे जायंगे, इतने में उनमें से अंगद ने कहा हे श्रेष्ठवानरो।।३।। तुम तो बड़े भारी बलवान् और शूरवीर हो और बड़े बड़े पराक्रम भी कर चुके हो परंतु इन वानरों में से कोई ऐसा भी है जो समुद्र को लांघकर राजा का काम सिद्ध करे, जो ऐसा करेगा वह राजा का प्राणदाता समझा जायगा, इसमें संदेह नहीं है इसलिये जो कोई महाबली हो सो उठकर मेरे सामने आवे।।४।।५।। वह रामचन्द्र, सुग्रीव और वानर इन सबका पालक होगा, इसमें कोई सोचा विचारी की बात नहीं है।।६।।

इत्युक्तेयुवराजेनतूष्णींवानरसैनिकाः ।। आसन्नोचुः किञ्चिदपिपरस्परविलोकिनः ।।७।। अङ्गद उवाच ।। उच्यतांवैबलंसर्वैः प्रत्येकंकार्यसिद्धये ।। केनवासाध्यतेकार्यंजानीमस्तदनन्तरम् ।।८।। अङ्गदस्यवचः श्रुत्वाप्रोचुर्वीराबलंपृथक् ।। योजनानांदशारभ्य दशोत्तरगुणंजगुः ।।९।। शतादर्वाग्जाम्बवांस्तुप्राहमध्येवनौकसाम् ।। पुरात्रिविक्रमेदेवेपादंभूमानलक्षणम् ।।१०।। त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगांप्रदक्षिणविधानतः ।। इदानींवार्धकग्रस्तोनशक्नोमिविलङ्घितुम् ।।११।। अङ्गदोऽप्याहमेगन्तुंशक्यंपारंमहोदधेः ।। पुनर्लंघनसामर्थ्यंनजानाम्यास्तिवानवा ।।१२।। तमाहजाम्बवान्वीरस्त्वंराजानोनियामकः।। न युक्तंत्वांनियोक्तुंमेत्वं-समर्थोऽसियद्यपि ।।१३।। अङ्गद उवाच ।। एवंचेत्पूर्ववत्सर्वैस्स्वप्स्यामोदर्भविष्टरे।। केनापिनकृतंकार्यंजीवितुं-चनशक्यते ।।१४।। तमाहजाम्बवान्वीरोदर्शयिष्यामितेसुत ।। येनास्माकंकार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेणच ।।१५।। इत्युक्त्वाजाम्बवान्प्राहहनूमन्तमवस्थितम् ।। हनूमन्किंरहस्तूष्णींस्थीयतेकार्यगौरवे ।।१६।।

जब युवराज अंगद ने यह कहा कि तब सब सेनापति वानरों में सन्नाटा छा गया, वे कुछ न बोले, आपस में एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।।७।। तब तो अंगद ने कहा इस कार्य को सिद्ध करने के लिये हर एक अपने अपने बल का बखान करो फिर मुझे मालूम हो जायगा कि कौन इस कार्य को सिद्ध करेगा।।८।। अंगद का वचन सुनकर सबने अलग अलग अपना

अपना बल बखान किया और दस योजन से लगाकर अपने दस दस योजन बढ़ा बढ़ा कर कहने लगे। किसी ने कहा मैं दस योजन जा सकता हूं, किसी ने कहा मैं २० योजन जा सकता हूं परंतु उन वनचरों में से केवल जाम्बवान् ने कहा कि मैं नब्बे योजन जा सकता हूं। जाम्बवान् ने यह भी कहा कि पहिले वामन अवतार के समय जब भगवान् ने एक पैर से सब पृथ्वी नापी थी, तब मैंने वामनजी की इक्कीस बार परिक्रमा की थी परंतु अब तो मुझे बुढ़ापे ने दबा लिया है इसलिये अब समुद्र के पार जाने का मेरा बूता नहीं है।।९।।१०।।११।। अंगद ने भी कहा कि समुद्र के पार तो मैं चला जाऊंगा परंतु लौटकर फांदने की मैं हांमी नहीं भरता कि लौट संकूंगा या नहीं।।१२।। यह सुन जाम्बवान् ने अंगद से कहा कि तुम तो हमारे राजा और हमारे ऊपर आज्ञा करनेवाले हो और यद्यपि सब भांति से वीर और समर्थ हो, हमारे करने का यह काम नहीं कि हम तुम्हें वहां भेंजे।।१३।। अंगद बोला–जो ऐसे ही पहिले की तरह सब दाभ के बिस्तरों पर लेट लगावेंगे तो किसी से भी काम न होगा वरन् जीना भी भारी पड़ जायगा।।१४।। यह सुनकर जाम्बवान् अंगद से बोला कि बेटा! मैं तुमको उसे दिखलाऊंगा कि जिससे हमारा काम हालोंहाल सिद्ध हो जायगा।।१५।। इस प्रकार कहकर जाम्बवान् ने एकांत में बैठे हुए हनुमान से कहा कि हे हनुमान्! ऐसा बड़ा भारी कार्य तो सिर पर है, तुम एकांत में मौन हुए अनजांन से क्यों बैठे हो।।१६।।

प्राप्तेऽज्ञेनेवसामर्थ्यंदर्शयाद्यमहाबल ।। त्वंसाक्षाद्वायुतनयोवायुतुल्यपराक्रमः।।१७। रामकार्यार्थमेवत्वंजनितोऽसिमहात्मना ।। जातमात्रेणतेपूर्वंदृष्ट्वोद्यन्तंविभावसुम् ।।१८।। पक्वंफलंजिघृक्षामीत्युत्प्लुतबालचेष्टया ।। योजनानांपञ्चशतंपतितोऽसि ततोभुवि ।।१९।। अतस्त्वद्बलमहात्म्यंकोवाशक्नोतिवर्णितुम् ।। उत्तिष्ठकुरु रामस्यकार्यंनः पाहिसुव्रत ।।२०।। श्रुत्वाजाम्बवतोवाक्यंहनूमानतिहर्षितः ।।चकारनादंसिंहस्यब्रह्माण्डंस्फोटयन्निव ।।२१।। बभूवपर्वताकारस्त्रिविक्रमइवापरः ।। लङ्घयित्वाजलनिधिं कृत्वालंकांचभस्मसात् ।।२२।। रावणंसकुलंहत्वानेष्ये जनकनन्दिनीम् ।। यद्वाबद्ध्वागलेरज्ज्वारावणंवामपाणिना ।।२३।। लङ्कांसपर्वतां धृत्वारामःस्याग्रेक्षिपाम्यहम् ।। यद्वादृष्टैवयास्यामिजानकींशुभलक्षणाम्।।२४।। श्रुत्वाहनुमतोवाक्यंजाम्बवानिदमब्रवीत् ।। दृष्टैवागच्छभद्रंतेजीवन्तींजानकींशुभाम् ।।२५।। पश्चाद्रामेणसहितोदर्शयिष्यतिपौरुषम् ।।

कल्याणंभवताद्भद्रगच्छतस्तेविहायसा ॥२६॥ गच्छन्तंरामकार्यार्थंवायुस्त्वामनुगच्छतु ॥ इत्याशीर्भिः समामन्त्र्यविसृष्टः प्लवगाधिपैः ॥२७॥ महेन्द्राद्रिशिरोगत्वाबभूवाद्भुतदर्शनः॥२८॥महानगेन्द्रप्रतिमोमहात्मासुवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ॥ महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यतसर्वभूतैः ॥२९॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥ ॥छ॥ ॥छ॥

हे महाबल! आज अपनी सामर्थ्य दिखाओ। तुम साक्षात् वायु के पुत्र हो और वायु के तुल्य ही तुम्हारा पराक्रम है॥१७॥ और रामजी के कार्य के लिये ही माहात्मा वायु से तुम्हारा जन्म हुआ है। जन्म लेते ही तुम पहिले उदय हुए सूर्य को देखकर॥१८॥ और उसे पका फल जान उसके लेने की इच्छा कर अपनी बाललीला से पांच सौ योजन ऊपर उछल गये थे और फिर पृथ्वी पर गिर पड़े थे॥१९॥ इसलिये तुम्हारे बल वीर्य के माहात्म्य को वर्णन करने की किसकी सामर्थ्य है, उठो राम के कार्य करो और हे सुव्रत! हमारे प्राण बचाओ॥२०॥ जाम्बवन्त का वचन सुनकर हनुमान बड़े प्रसन्न हुए और सिंह के समान ऐसे गर्जे मानो ब्रह्मांड को फोड़ डालेंगे॥२१॥ और दूसरे वामन अवतार के समान उन्होंने अपना शरीर पर्वत के समान बढ़ाया और बोले—हे वानरो! कहो तो मैं समुद्र को लांघकर लंका को भस्म कर॥२२॥ और रावण को कुलसहित माकर जनकनन्दिनी को ले आऊं अथवा हो तो रावण के गले में रस्सी बांधकर त्रिकूट पर्वत सहित लंका को बायें हाथ पर उठाकर ले आऊं और रामजी के आगे ला पटकूं अथवा कहो तो सुन्दर लक्षणी सीताजी को देखकर ही लौट आऊं॥२३॥२४॥ हनुमान का वचन सुनकर जाम्बवान् ने यह कहा कि हे हनुमान्! तुम्हारा भला होय, सुन्दर जानकीजी को देखकर ही लौट आना॥२५॥ और अपना बल पराक्रम तो जब रामचन्द्रजी के साथ जाओ तब दिखाना। और हे कल्याणस्वरूप! जिस समय तुम आकाशमार्ग से जाओ उस समय तुम्हारा मंगल होय॥२६॥ और रामजी के कार्य के लिये जाने में वायु तुम्हारे पीछे पीछे रक्षा करती जाय। इस प्रकार आशीर्वाद देकर सेनापति वानरों ने हनुमान को विदा किया॥२७॥ हनुमानजी ने महेन्द्राचल के शिखर पर जाकर अपना स्वरूप बड़ा अद्भुत बना लिया॥२८॥ उस समय बड़े भारी पर्वत के समान रूप धारण किये सुवर्ण के वर्णसमान शोभायमान सुन्दर रक्तमुखी और शेष नाग के समान दीर्घभुजावाले और यशस्वी इस प्रकार के वायुपुत्र हनुमान्जी को सब प्राणियों ने जाते हुए

देखा॥२९॥ इति आगरानिवासीपण्डितरामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अध्यात्मरामायण का किष्किन्धाकांड का नवमसर्ग समाप्त हुआ॥९॥

रागझंझौटी-रे मन काहे न राम भजै। जा सुमिरत कोटिन खल उधरे सो तू मूढ तजै।
ऐसो नाम सिया रघुबर को निस दिन शंकर शेष रटैं। गुरुकौ वचन हृदे नहिं आयो हरिते दूर भजै।
संतन की संगति सुखकारी तिनमें जात लजै। कान्हर लाहाराम भजन बिन जग में न सुरझै॥१॥

इति हिन्दीटीकासहितकिष्किन्धाकांड समाप्तम्॥

इति अध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते

किष्किंधाकाण्ड: समाप्त:



अथाध्यात्मरामायणे

भाषाटीकासहिते

सुन्दरकाण्ड

प्रारम्भः

श्रीमहादेव उवाच ॥ शतयोजनविस्तीर्णंसमुद्रंमकरालयम् ॥ लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहोमारुतात्मजः ॥१॥ ध्यात्वारामंपरात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ पश्यन्तुवानराः सर्वेगच्छन्तंमांविहायसा ॥२॥ अमोघंरामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः ॥ पश्याम्यद्यैवरामस्यपत्नीजनकनन्दिनीम् ॥३॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंपुनः पश्यामिराघवम् ॥ प्राणप्रयाणसमयेयस्यनामसकृत्स्मरन् ॥४॥ नरस्तीर्त्वाभवाम्भोधिमपारंयातितत्पदम् ॥ किंपुनस्तस्यदूतोऽहंतदङ्गांगुलिमुद्रिकः॥५॥ तमेवहृदयेध्यात्वालङ्घयाम्यल्पवारिधिम्॥ इत्युक्त्वाहनुमान्बाहू प्रसार्यायतवालधिः॥६॥ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टिःसन्नाकुञ्चितपद्द्वयः।दक्षिणाभिमुखस्तूर्णंपुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥७॥ आकाशात्त्वरितं देवैर्वीक्ष्यमाणोजगामसः ॥ दृष्ट्वाऽनिलसुतंदेवागच्छन्तंवायुवेगतः ॥८॥ परीक्षणार्थंसत्त्वस्यवानरस्येदमब्रुवन् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वो वानरोवायुविक्रमः ॥९॥ लंकांप्रवेष्टुंशक्तोवानवाजानीमहेबलम् ॥ एवंविचार्यनागानांमातरंसुरसाभिधाम् ॥१०॥

सुन्दरकाण्ड ॥ श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! मगरमच्छ आदि से भरे हुए और सौ योजन चौड़े समुद्र के पार जाने की इच्छा करनेवाले आनंदस्वरूप वायुपुत्र हनुमान परमात्मा रामचन्द्रजी का ध्यान कर यह बात बोले कि जैसे रामजी का छोड़ा हुआ अमोघ महा बाण जाता है, ऐसे ही मैं आकाशमार्ग से जाता हूं, मुझे सब वानर जाता हुआ देखें। मैं आज ही जनकनन्दिनी रामजी की धर्मपत्नी के दर्शन करके और बारंबार कृतार्थ होकर फिर रामजी के दर्शन करूंगा। प्राणांतसमय जिनके नाम का एक बार स्मरण करने से मनुष्य संसाररूपी अपार समुद्र को पार करके उन भगवान् के पद कहिये विष्णु धाम को पाता है फिर मैं तो उनका दूत हूं और उनके अंग कीअंगुलीसे उतरी हुई अंगूठी मेरे पास है सो उन भगवान् का हृदय में ध्यान कर इस छोटे से समुद्र को पार कर जाना मेरे लिये कौन बड़ी बात है? यह कहकर हनुमानजी ने अपनी भुजा पसारी और पूंछ लंबी की॥१–६॥ फिर सीधी गर्दन की और ऊंची दृष्टि करके दोनों पैर सकोड़े और वायु के समान पराक्रमी हनुमान् दक्षिण की ओर मुख करके फड़ाक से उछले और आकाश से देवताओं के देखते देखते वह समुद्र पार चले गये। देवता वायुपुत्र को वायु के वेग से जाता हुआ देखकर॥७॥८॥ हनुमान के बल की परीक्षा करने के लिये आपस में यह कहने लगे कि यह महाबली और वायु के समान पराक्रमी वानर जाता है परंतु लंका

के भीतर जाने की इसकी सामर्थ्य है वा नहीं, इस बल को अवश्य जानना चाहिये, ऐसा विचार कर सब देवता सुरसा नाम नागों की माता से चकित होकर कहने लगे कि तू हनुमान के पास जाकर कुछ विघ्न कर॥९॥१०॥

अब्रवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः ॥ गच्छत्वंवानरेन्द्रस्यकिञ्चिद्विघ्नंसमाचर ॥११॥ ज्ञात्वातस्यबलंबुद्धिं पुनरेहित्वरान्विता ॥ इत्युक्तासाययौशीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात् ॥१२॥ आवृत्यामार्गंपुरतः स्थित्वावानरमब्र-वीत् ॥ एहिमेवदनं शीघ्रंप्रविशस्वमहामते ॥१३॥ देवैस्त्वंकल्पितो भक्षः क्षुधासंपीडितात्मनः ॥ तामाहहनुमान्मातरहंरामस्यशासनात् ॥१४॥ गच्छामिजानकींद्रष्टुंपुनरागम्यसत्वरः ॥ रामायकुशलंतस्याः कथयित्वात्वदाननम् ॥१५॥ निवेक्ष्येदेहिमेमार्गंसुरसायैनमोस्तुते ॥ इत्युक्तापुनरेवाहसुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥१६॥ प्रविश्यगच्छमेवक्त्रंनोचेत्त्वांभक्षयाम्यहम् ॥ इत्युक्तोहनुमानाहमुखंशीघ्रंविदारय ॥१७॥ प्रविश्यवद नंतेऽद्यगच्छामित्वरयान्वितः ॥ इत्युक्त्वायोजनायामदेहोभूत्वापुरः स्थितः ॥१८॥ दृष्ट्वाहनूमतोरूपं सुरसापञ्चयोजनम् ॥ मुखंचकारहनुमान्द्विगुणंरूपमादधत् ॥१९॥ ततश्चकारसुरसायोजनानांचविंशतिम् ॥ वक्त्रंचकारहनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥२०॥

और उसके बल बुद्धि की परीक्षा कर तुरंत लौट आ। जब देवताओं ने यह कहा तब वह हनुमान के पास विघ्न करने के लिये गई॥११॥१२॥ और मार्ग को रोक आगे खड़ी हो हनुमान से बोली कि हे बुद्धिमान्! तुम शीघ्र आकर मेरे मुख में प्रवेश करो॥१३॥ मेरी आत्मा भूख के मारे बिलबिला रही है। इसलिये आज मैं तुम्हारा ही भोजन कर तृप्त हुआ चाहती हूं और देवताओं ने भी यही रच रखा है। हनुमानजी ने उससे कहा कि हे माता! रामजी की आज्ञा से इस समय तो मैं जानकीजी की खोज में जाता हूं परंतु फिर आकर और रामजी को उनकी खबर सुनाकर मैं तेरे मुख में प्रवेश करूंगा सो हे सुरसा! मैं तेरे हाथ जोडूं, तू मार्ग छोड़ दे। यह सुनकर सुरसा बोली कि मैं भूख के मारे मरी जाती हूं। तुम मेरे मुख में घुसकर फिर चले जाना नहीं तो मैं तुझे खाये लेती हूं। जब उसने यह कहा तब हनुमान बोले कि अच्छा, शीघ्र अपना मुख फाड़॥१४–१७॥ आज तेरे मुख में घुसकर ही फिर शीघ्र चला जाऊंगा, ऐसा कहकर हनुमान योजन भर का लंबा शरीर धारण कर उसके सामने खड़े हो गये॥१८॥ हनुमान के रूप को देखकर जब सुरसा ने अपना मुख पांच

योजन करा तब हनुमान से उससे दुगुना दश योजन मुख फाड़ लिया॥१९॥ फिर सुरसा ने जब बीस योजन का मुख बढ़ाया तब हनुमानजी ने हँसकर अपने मुख को तीस योजन का कर लिया॥२०॥

ततश्चकारसुरसापञ्चाशद्योजनायतम् ॥ वक्त्रंतदाहनुमांस्तुबभूवांगुष्ठसन्निभः ॥२१॥ प्रविश्यवदनंतस्याः पुनरेत्यपुरः स्थितः ॥ प्रविष्टो निर्गतोऽहंतेवदनंदेवितेनमः ॥२२॥ एवंवदन्तंदृष्ट्वासाहनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ गच्छसाधयरामस्यकार्यंबुद्धिमतांवर ॥२३॥ देवैः संप्रेषिताहंतेबलंजिज्ञासुभिः कपे ॥ दृष्ट्वासीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छभोः॥२४॥ इत्युक्त्वासाययौदेवलोकंवायुसुतः पुनः॥जगामवायुमार्गेणगरुत्मानिवपक्षिराट् ॥२५॥ समुद्रोऽप्याहमैनाकंमणिकाञ्चनपर्वतम् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वोहनुमान्मारुतात्मजः ॥२६॥ रामस्यकार्यसिद्ध्यर्थंतस्यत्वं सचिवोभव ॥ सगरैर्वर्धितोयस्मात्पुरांसागरोऽभवम् ॥२७॥ तस्यान्वयेबभूवा-सौरामोदाशरथिः प्रभुः ॥ तस्यकार्यार्थसिद्ध्यर्थंगच्छत्येषमहाकपिः ॥२८॥ त्वमुत्तिष्ठजलात्तूर्णंत्वयिविश्रा-म्यगच्छतु ॥ सतथेतिप्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥२९॥ नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरिनराकृतिः ॥ प्राहयान्तंहनूमंतंमैनाकोऽहंमहाकपे ॥३०॥

फिर जब सुरसा ने पचास योजन का मुख फाड़ा तब हनुमान् ने अपना शरीर अंगूठे के बराबर कर लिया॥२१॥ और उँसके मुख में घुसकर और फिर उससे बाहर आकर खड़े हो गये और कहने लगे कि मैं तेरे मुख में घुसकर फिर जीता जागता निकल आया इसलिये तुझे नमस्कार करता हूं॥२२॥ फिर इस प्रकार कहते हुए हनुमान् को देखकर सुरसा कहने लगी कि हे हनुमान! तुम अब जाकर रामजी का काम सिद्ध करो। मैंने परख लिया कि तुम बड़े भारी बुद्धिमान् हो॥२४॥ हे हनुमान! देवताओं ने मुझे तुम्हारा बल जानने के लिये भेजा था सो मैंने देख लिया, अब शौक से जाओ। तुम सीता को अवश्य देखकर फिर रामचन्द्रजी के दर्शन करोगे॥२४॥ यह कहकर सुरसा तो उधर स्वर्ग को गई और इधर हनुमान् पक्षिराज गरुड के समान वायुमार्ग से चल दिये॥२५॥ इनको जाता देख समुद्र ने मणिसुवर्ण के मैनाक पर्वत से कहा कि देखो, यह महाबली वायुपुत्र हनुमान रामचंद्र का कार्य सिद्ध करने के लिये जाते हैं। तुम सहायक बन इनका श्रम दूर करो। क्योंकि पूर्वकाल में सगर के पुत्रों ने ही मुझे बढ़ाया था, इसीलिये मेरा नाम सागर हुआ

है।।२६।।२७।। उसी सगर के वंश में भगवान् दशरथ के पुत्र रामचन्द्र हुए हैं और उन्हीं के कार्य के लिये यह हनुमान जाते हैं।।२८।। तू शीघ्र जल से बाहर निकल आ कि जिनमें यह तेरे ऊपर विश्राम करके चले जाय। उसने कहा—बहुत अच्छा और भांति भांति के मणियों के शिखरों से युक्त वह जल के बाहर बड़ा ऊंचा प्रगट हो गया और उसके ऊपर मनुष्यरूप धारण कर जाते हुए हनुमान्जी से बोला कि हे वानरराज! मैं मैनाक पर्वत हूं।।२९।।३०।।

समुद्रेणसमादिष्टस्त्वदिष्टस्त्वद्विश्रामायमारुते ।। आगच्छामृतकल्पानिजग्ध्वापक्वफलानिमे ।।३१।। विश्राम्यात्रक्षणंपश्चाद्‌गमिष्यसियथासुखम् ।। एवमुक्तोऽथतंप्राहहनूमान्मान्मारुतात्मजः ।।३२।। गच्छतोराम कार्यार्थंभक्षणंमेकथंभवेत् ।। विश्रामोवाकथंमेस्याद्‌गन्तव्यंत्वरितंमया ।।३३।। इत्युक्त्वास्पृष्टशिखरः कराग्रेणययौकपिः ।। किञ्चिद्‌दूरंगतस्यास्यछायांछायाग्रहोऽग्रहीत् ।।३४।।सिंहिकानामसाघोराजलमध्येस्थि-तासदा ।। आकाशगामिनांछायामाक्रम्याकृष्यभक्षयेत् ।।३५।। तयागृहीतोहनुमांश्चिन्तयामासवीर्यवान् ।। केनेदंमेकृतंवेनरोधनंविघ्नकारिणा।।३६।।दृश्यतेनैवकोऽप्यत्रविस्मयोमेप्रजायते।।एवंविचिन्त्यहनुमानधोदृष्टिं प्रसारयत् ।।३७।। तत्रदृष्ट्वामहाकायांसिंहिकांघोररूपिणीम् ।। पपातसलिलेतूर्णंपद्भ्यामेवाहनद्रुषा ।।३८।। पुनरुत्प्लुत्यहनुमान्दक्षिणाभिमुखोययौ ।। ततोदक्षिणमासाद्यकूलंनानाफलद्रुमम् ।।३९।। नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम् ।। ततोददर्शननगरंत्रिकूटाचलमूर्धनि ।।४०।। प्राकारैर्बहुभिर्युक्तंपरिखाभिश्चसर्वतः ।। प्रवेक्ष्यामि कथंलङ्कामितिचिन्तापरोऽभवत् ।।४१।।

और हे पवनपुत्र! समुद्र ने मुझे तुम्हारे विश्राम देने के लिये आज्ञा करी है सो आओ और मेरे अमृतसमान पके २ फलो को खाकर और थोड़ी देर विश्राम करके फिर आनन्द से चले जाना। जब मैनाक ने ऐसा कहा तब वायुपुत्र हनुमान उससे बोले कि ।।३१।। मैं तो रामजी के कार्य निमित्त जा रहा हूं मुझे खाने और ठहरने का कहां होश है क्योंकि मुझे बहुत शीघ्र जाना है।।३३।। यह कहकर हनुमान उसके शिखर को अंगुली से छूकर तुरत विदा हुए और थोड़ी दूर जाने पाये थे कि सिंहिका ने उनकी छाया को पकड़ लिया।।३४।। यह सिंहिका नाम बड़ी भयंकर राक्षसी सदा जल में रहा करती थी और आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की छाया को पकड़ २ कर छल से उन्हें खा लेती थी।।३५।। जब पराक्रमी हनुमान

को भी पकड़ लिया तब वह विचारने लगे कि यह कौनसा विघ्न करनेवाला पैदा हो गया कि जिसने मेरे इस वेग को रोका है॥३६॥ मुझे यह कोई दीखता भी तो नहीं है इसलिये बड़ा आश्चर्य होता है इस प्रकार विचार कर हनुमान ने नीचे को निगाह करी॥३७॥ और वहां बड़े डीलडौल वाली भयंकर रूप धारण किये सिंहिका को देखकर तुरंत जल में कूद पड़े और क्रोध के मारे तुरन्त पैरों से कुचल उसका काम तमाम किया॥३८॥ फिर हनुमान उछलकर दक्षिण दिशा की ओर विदा हुए और दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचकर क्या देखते हैं कि वहां नाना प्रकार के फलों से लदे वृक्ष लग रहे हैं॥३९॥ अनेक प्रकार के पक्षी चुहचुहा रहे हैं जीव जन्तु कलोलें कर रहे हैं भांति २ के पुष्प खिल रहे हैं लता पेड़ो पर चढ़ रही है जिसके बहुत से परकोटे बन रहे हैं चारों ओर जो खाइयों से घिर रहा है ऐसा त्रिकूट पर्वत के ऊपर एक नगर बस रहा है इसे देख हनुमानजी को बड़ी चिन्ता हुई कि इस लंका में कैसे घुसूंगा॥४०॥४१॥

रात्रौवेक्ष्यामिसूक्ष्मोऽहंलङ्कांरावणपालिताम्॥ एवंविचिन्त्यतत्रैवस्थित्वालङ्कांजगामसः॥४२॥ धृत्वासूक्ष्मं-वपुर्द्वारंप्रविवेशप्रतापवान्॥तत्रलङ्कापुरीसाक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी॥४३॥प्रविशन्तंहनूमन्तंदृष्ट्वालङ्काव्यत-र्जयत् ॥ कस्त्वंवानररूपेणमामनादृत्यलङ्किनीम् ॥४४॥ प्रविश्यचोरवद्रात्रौकिंभवान्कर्तुमिच्छति ॥ इत्युक्त्वारोषताम्राक्षीपादेनाभिजघानतम् ॥४५॥हनूमानपितांवाममुष्टिनावज्ञयाहनत्॥तदैवपतिताभूमौ-रक्तमुद्वमतीभृशम् ॥४६॥ उत्थायप्राहसालङ्काहनूमन्तंमहाबलम् ॥ हनूमन्गच्छभद्रंतेजिता लङ्कात्वयानघ ॥४७॥ पुराऽहंब्रह्मणाप्रोक्ताह्यष्टाविंशतिपर्यये ॥ त्रेतायुगेदाशरथीरामोनारायणोऽव्ययः ॥४८॥ जनिष्यतेयोग मायासीताजनकवेश्मनि ॥ भूभारहरणार्थायप्रार्थितोऽयंमयाक्वचित् ॥४९॥

फिर पवनपुत्र ने यह निश्चय किया कि छोटासा रूप धारण कर इस रावण से पालित लंका में रात्रि को घुसना चाहिये सो दिन को नगर के बाहर ही बिताकर फिर रात्रि में लंका को गये॥४२॥ और प्रतापी हनुमान बहुत छोटासा रूप धरकर ज्यों ही द्वार में घुसे त्यों ही वहां साक्षात् लंकापुरी राक्षसी का वेश धरकर आई॥४३॥ और हनुमान को घुसते हुए देख उस लंका ने उन्हें फटकारा कि अरे तू कौन है और वानर का रूप धरे मुझ लंकिनी का अनादर करके कहां जाता है॥४४॥ और रात्रि में चोर के समान घुसकर तू क्या कौतुक किया चाहता है यह कहकर और क्रोध के मारे लाल

लाल आंखे फाड़कर उसने हनुमानजी को एक लात मारी।।४५।। फिर तो हनुमानजी भी उसे तुच्छ समझकर बायें हाथ का एक ऐसा घूंसा जमाया कि वह तत्काल भैराकर धरती पर गिरी और मुख से बहुत सा लहू बहाने लगी।।४६।। फिर उठकर उस लंका ने महापराक्रमी हनुमान से कहा कि हे हनुमान! जा तेरा भला होगा और हे कल्याणरूप! अपने मन में तू अब लंकापुरी को जीत लिया ही समझियो।।४८।। क्योंकि पूर्व काल में ब्रह्मा ने मुझसे कह दिया था कि अट्ठाईसवीं चौकड़ी में जब त्रेतायुग आवेगा तब साक्षात् अविनाशी नारायण दशरथ के पुत्र राम के नाम से।।४८।। अवतार लेंगे और योगमाया सीता के रूप से जनक के घर जन्म लेगी क्योंकि मैं एक समय पृथ्वी का भार उतारने के लिये भगवान् से प्रार्थना कर चुका हूं।।४९।।

सभार्योराघवोभ्रात्रागमिष्यतिमहावनम्।।तत्रसीतांमहामायांरावणोऽपहरिष्यति ।।५०।। पश्चाद्रामेणसाचिव्यंसुग्रीवस्यभविष्यति।। सुग्रीवजानकीद्रष्टुंवानरान्प्रेषयिष्यति।।५१।। तत्रैकोवानरोरात्रावागमिष्यतितेऽन्तिकम् ।। त्वयाचभर्त्सितः सोऽपित्वांहनिष्यतिमुष्टिना ।।५२।। तेनाहतात्वंव्यथिताभविष्यसियदानघे ।। तदैवरावणस्यान्तोभविष्यतिनसंशयः ।।५३।। तस्मात्त्वयाजितालंकाजितंसर्वंत्वयानघ ।। रावणान्तःपुरवरेक्रीडाकाननमुत्तमम् ।।५४।। तन्मध्येऽशोकवनिकादिव्यपादपसंकुला ।। अस्तितस्यामहावृक्षःशिंशपानाममध्यगः ।।५५।। तत्रास्तेजानकीघोरराक्षसीभिः सुरक्षिता ।। दृष्ट्वैवगच्छत्वरितंराघवायनिवेदय ।।५६।। धन्याहमप्यद्यचिरायराघवस्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचनी ।। तद्भक्तसंगोऽप्यतिदुर्लभोममप्रसीदतांदाशरथिः सदाहृदि।।५७।। उल्लङ्घितेब्धौपवनात्मजेनधरासुतायाश्चदशाननस्य ।। पुस्फोरवामाक्षिभुजश्चतीव्रंरामस्यदक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ।।५८।। इतिश्रीमद० उमामहेश्वरसं० सुन्दरकाण्डेप्रथमः सर्गः ।।१।।

अपनी धर्मपत्नी सीता और भाई लक्ष्मण को साथ लेकर वन में आवेंगे और वहां रावण उस महामाया सीता को हर ले जायगा।।५०।। फिर रामजी के साथ सुग्रीव की मित्रता होगी और सुग्रीव जानकीजी को देखने के लिये बंदरों को भेजेगा।।५१।। फिर वहां रात्रि को तेरे पास एक बंदर आवेगा और तू उसे फटकारेगी और फिर वह तेरे एक घूंसा मारेगा।।५२।। और हे पापरहिता! जब तू उसके मारने से दुःखी हो जाय तब ही जान लेना कि रावण का अंत हो

जायगा यह बात निश्चय है।।५३।।और हे निष्पाप! तैने मुझे और लंकाको जीत लिया मानों सबको जीत लिया। और देख रावण के सुन्दर रनवास में एक उत्तम क्रीड़ावन है।।५४।। उसके बीच में एक अशोकवाटिका है उसमें बड़े बड़े दिव्य पेड़ लग रहे हैं। उनके बीच में एक बड़ा भारी सीसम का पेड़ है।।५५।। उसके नीचे जानकी बैठी है और बड़ी बड़ी भयंकर राक्षसियां उनका भली भांति पहिरा दे रही हैं तुम वहां जाओ और सीताजी को देखकर रामजी को शीघ्र खबर दो।।५६।। और मैं आज धन्य हूं कि मुझे बहुत काल के पीछे संसार बंधन से छुड़ानेवाले रामचन्द्रजी का स्मरण और अत्यंत दुर्लभ उनके भक्त का समागम हुआ सो वह दशरथ नंदन रामचन्द्र, सदा मेरे हृदय में निवास करें ।।५७।। जिस घड़ी हनुमानजी ने समुद्र पार किया उसी समय सीताजी की और रावणकी जो बाईं आंख और बाईं भुजा फड़की और रामजी की दाईं आंख और दाईं भुजा फड़की और यद्यपि रामजी इन्द्रियों से परे हैं उनकी आंख और भुजा फड़कने से क्या काम परन्तु यह सब नरलीला हो रही है।।५८।। इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित सुन्दर काण्ड का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।।१।।

श्रीमहादेवउवाच ।। ततोजगामहनुमान्लंकांपरमशोभनाम् ।। रात्रौसूक्ष्मतनुर्भूत्वाबभ्रामपरितः पुरीम् ।।१।। सीतान्वेषणकार्यार्थीप्रविवेशनृपालयम् ।। तत्रसर्वप्रदेशेषुविविच्यहनुमान् कपिः ।।२।। नापश्यज्जानकीं स्मृत्वाततोलङ्काभिभाषितम् ।। जगामहनुमान्शीघ्रमशोकवनिकांशुभाम् ।।३।। सुरपादपसम्बाधांरत्नसोपानवापिकाम् ।। नानापक्षिमृगाकीर्णांस्वर्णप्रासादशोभिताम् ।।४।। फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम् ।। विचिन्वन्जानकींतत्रप्रतिवृक्षंमरुत्सुतः ।।५।। ददर्शाभ्रंलिहं तत्रचैत्यप्रासादमुत्तमम् ।। दृष्ट्वाविस्मयमापन्नोमणिस्तम्भशतान्वितम् ।।६।। समतीत्यपुनर्गत्वाकिञ्चिद्दूरंसमारुतिः ।। ददर्शशिंशपावृक्षमत्यन्तनिविडच्छदम् ।।७।। अदृष्ट्वातपमाकीर्णस्वर्णवर्णविहंगमम् ।। तन्मूलेराक्षसीमध्येस्थितांजनकनन्दिनीम् ।।८।। ददर्शहनुमान्वीरोदेवतामिवभूतले ।। एकवेणींकृशांदीनांमलिनाम्बरधारिणीम् ।।९।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके उपरान्त हनुमान परम सुन्दर लंकापुरी को गये और रात्रि में छोटा सा रूप धरकर घूमने लगे फिर घूमते २ हनुमान सीताजी के ढूंढने के लिये रावण के महलमें गये और सब जगह उन्हें ढूंढ़ा।।२।। और

जब जानकीजी को कही न देखा तब लंकापुरी ने जो अशोक वाटिका में सीताजी का पता बतलाया था उसकी उन्हें याद आई फिर पवनपुत्र शीघ्र अशोकवाटिका में पहुँचे ।।३।। कैसी अशोकवटिका है कि जहां कल्पवृक्षों के झुंड लग रहे हैं बावड़ियों में रत्नों की सीड़ियां लगी हुई हैं अनेक प्रकार के पशु पक्षी जिसमें कलोल कर रहे हैं और जहां सुवर्ण के महल शोभायमान हो रहे हैं। और वहां भांति भांति के वृक्ष ऐसे लगे हुए हैं कि जिनकी शाखाएं फलों के बोझ से झुक रही हैं ऐसी अशोकवाटिका में हनुमानजी हर एक वृक्ष के नीचे जानकीजी की खोज करने लगे।।४।।५।। फिर उन्होंने एक महल देखाकि जो आकाश से बातें कर रहा था और उसमें मणियों के सैंकड़ों खम्भ लगे हुए थे उसे देख अचंभे में आये।।६।। उसको लांघकर और कुछ दूर जाकर उन हनुमानजी ने एक सीसम के वृक्ष को देखा कि जो पत्तों से सघन हो रहा है और जिसके कारण से वहां कभी धूप नहीं फैलने पाती और जहां सुनहरी रंग के पक्षी विहार कर रहे हैं उस वृक्ष के नीचे वीर हनुमानजी ने राक्षसियों के बीच में जनकनन्दिनीजी को कैसी विराजमान देखा मानो स्वर्ग से आकर कोई देवता बैठा हो। सीताजी अति दीन और तन मलिन हो रही है मलिन वस्त्र धारण किये है आपस में चिपटने से जिनके बालों का

भूमौशयानांशोचन्तींरामरामेतिभाषिणीम् ।। त्रातारंनाभिगच्छन्तीमुपवासकृशांशुभाम् ।।१०।। शाखान्त-च्छदमध्यस्थोददर्श कपिकुञ्जरः।कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंदृष्ट्वाजनकनन्दिनीम्।।११।मयैवसाधितंकार्यंरामस्य-परमात्मनः ।। ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तः पुराद्बहिः ।।१२।। किमेतदितिसँल्लीनोवृक्षपत्रेषुमारुतिः ।। आयान्तंरावणंतत्रस्त्रीजनैः परिवारितम् ।।१३।। दशास्यंविंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम् ।।दृष्ट्वाविस्मय-मापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत ।।१४।। रावणोराघवेणाशुमरणंमेकथंभवेत् ।।सीतार्थमपिनायातिरामःकिंकारणं-भवेत् ।।१५।। इत्येवंचिन्तयन्नित्यंराममेवसदाहृदि ।। तस्मिन्दिनेपररात्रौरावणोराक्षसाधिपः ।।१६।। स्वप्ने रामेणसन्दिष्टः कश्चिदागत्यवानरः ।। कामरूपधरः सूक्ष्मोवृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ।।१७।। इतिदृष्ट्वाद्भुतंस्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्यसः ।। स्वप्नकदाचित् सत्यः स्यादेवंतत्रकरोम्यहम् ।।१८।। जानकींवाक्शरैर्विध्वादुःखितां नितरामहम् ।। करोमिदृष्ट्वारामायनिवेदयुतुवानरः ।।१९।। इत्येवं चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् ।। नूपुराणांकिङ्किणीनांश्रुत्वासिञ्जितमङ्गना।।२०।।सीताभीतालीयमानास्वात्मन्येवसुमध्यमा।।अधोमुख्यश्रुन

यनास्थितारामार्पितान्तरा॥२१॥रावणोऽपितदासीतामालोक्याहसुमध्यमे।मांदृष्ट्वाकिंवृथासुभ्रूस्वात्मन्येव विलीयसे॥२२॥रामोवनचराणांहिमध्येतिष्ठतिसानुजः॥कदाचिद्दृश्यतेकैश्चित्कदाचिन्नैवदृश्यते ॥२३॥

और सोच के मारे पृथ्वी पर पड़ी हुई राम राम रट रही हैं और निराहार व्रत करने से ऐसी कृश हो रही है कि देखी नहीं जाती परन्तु सुन्दर जानकीजी को कोई ऐसा नहीं मिलता कि जो उनकी रक्षा करे॥१०॥ ऐसी जानकीजी को हनुमानजी ने वृक्ष की शाखा पर बैठ पत्तों के बीच में से देखा और सीताजी के दर्शन कर कहने लगे कि मैं बारम्बार कृतार्थ हुआ॥११॥ और मन में विचारने लगे कि मैंने परमात्मा रामचन्द्रजी का कार्य सिद्ध कर लिया। इतने में रनवास के बाहर बड़ा किल किल शब्द हुआ॥१२॥ उसे सुन हनुमानजी वृक्ष के पत्तों में छुप गये और क्या देखते हैं कि दश शिर, बीस भुजा और काजल के से वर्णवाला रावण बहुत सी स्त्रियों को साथ लेकर वहां आया। उसे देखकर हनुमानजी को बड़ा अचरज हुआ और वे पत्तों में और भी छुप गये॥१३॥१४॥ रावण मन में विचारने लगा कि रामजी के हाथ से शीघ्र कैसे मरण होय? सीताजी के लिये भी तो राम नहीं आते न जाने इसका क्या कारण है॥१५॥ इस प्रकार अपने हृदय में सदा राम का ही स्मरण करता रहता है परन्तु जिस दिन हनुमान लंका में आये उसी दिन पिछली रात्रि को राक्षसों के राजा रावण ने ॥१६॥ सपने में देखा कि राम का भेजा हुआ एक वानर आया है और अपनी इच्छानुसार बहुत छोटासा रूप धरकर वृक्षकी डाली पर बैठ छुपकर सब देख रहा है॥१७॥ ऐसा अनोखा सपना देखकर रावण अपने मन में विचारने लगा कि कदाचित् सपना सत्य ही होय इसलिये मैं वहां ऐसा करूं॥१८॥ जानकी को वचनरूप बाणों से बेधकर सदा मैं उसे दुःखी करता रहूं। यह देख वानर जाकर राम से अवश्य कहेगा॥१९॥ इस प्रकार विचार कर तुरन्त सीता के पास गया उस समय रावण के साथ साथ जो स्त्रियां गई थीं उनकी पायजेबों और बजनी तागड़ियों का शब्द सुनकर सुन्दरी॥२०॥ सीताजी बहुत डरीं और वह सूक्ष्मकटिवाली अपने शरीर में सिकुड़ गई और नीचा मुँह करके रोती हुई और अपने अंतः करण में राम का ध्यान करती हुई बैठ गई॥२१॥ उस समय रावण सीता को देख बोला कि हे

सूक्ष्म कटिवाली! हे सुन्दर भृकुटीवाली! मुझे देखकर क्यों वृथा अपने शरीर में सिकुड़ रही है राम* तो लक्ष्मणसहित बन्दरों के बीच में रहता है और कभी किसीको दीखता है कभी नहीं दीखता॥२२॥२३॥

---

*'रामो वनचराणाम्' इस २३वें श्लोक में "नराधम त्वद्विमुखं किं करिष्यसि भामिनि" यहां तक ६ श्लोक रावण का कथन रामजी के विषय में निन्दित दीखता है परन्तु गुप्त रीति से रावणने रामजीकी स्तुति की है सो ही अर्थ लिखते हैं। रावण ने जो यह कहा कि 'राम बंदरोंके साथ रहता है कभी दिखाई देता है कभी नहीं देता" इसका आशय यह है कि रामजी वनवासी तपस्वियों के साथ रहते हैं और योगियों को भी कभी समाधि में प्रतीत होते हैं कभी नहीं होते इसी कारण नारदजी को दासीपुत्र की अवस्था में एक बार दर्शन होकर फिर नहीं हुआ-यह कथा भागवत के पहिले स्कंध के छठे सर्ग में है और यों तो परमेश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित होने से सबके संग रहता है परन्तु मूढ पुरुषों को अविद्या के कारण उन्हें अपने पास ऐसे नहीं दीखता कि जैसे दरिद्री पुरुष घर में खजाना गड़ा हो और वह उसे न जानकर घर घर भीख मांगता फिरे और ज्ञानी लोग सब जगह राम को छोड़ और वस्तु को सत्य नहीं देखते इसीसे उनके संग रहना सिद्ध है॥२३॥ और रावण ने जो यह कहा कि "मैंने अपने बहुत से दूत राम के देखने को भेजे और उन्होंने उसे चारों ओर ढूंढ़ा परन्तु कहीं नहीं देखा" अब यहां व्याकरण की रीति से लोकशब्द का यह अर्थ है कि जिस द्वारा देखा जाय वा जाना जाय। इसलिये लोकशब्द से इन्द्रिय और उनके देवताओं का ग्रहण है सो यहां रावण के कहने का आशय यह है कि मैंने देवताओं सहित अपनी इन्द्रियों को राम को देखने को भेजा परन्तु यत्न करने पर उनका दर्शन नहीं हुआ जो बुद्धि आदि इन्द्रियों से परे हैं। फिर रजोगुणी इंद्रियां उन्हें कैसे देख सकती है। और रावण ने जो यह कहा कि "प्रेमहीन राम का तू क्या करेगी" इसका भाव यह है कि राम तो आत्माराम हैं उनकी स्वाभाविक रुचि अपनी आत्मा को छोड़ किसी और पदार्थ में नहीं है फिर प्रकृतिरूपिणी सीता में रुचि कैसे हो सकती है? और यह कहा कि "तैंने राम का आलिंगन किया और तेरे पास स्थित होकर भी इस राम का हृदय से तुझमें स्नेह नहीं है" इसका यह भाव है कि शक्ति और शक्तिमान् के अभेद से परमात्मा सदा शक्ति से आलिंगित और समीप में ही स्थित है परन्तु आत्माराम होने से बाह्य पदार्थों में उसका स्नेह नहीं है। और यों शक्ति की प्रतीति तो कार्य द्वारा होती ही है और परमेश्वर की शक्ति का कार्य सर्वत्र है। जो परमेश्वर जगत् में स्नेह करे तो प्रकृति रूप शक्ति में भी स्नेह जाना जाय सो कभी जीव की भांति परमेश्वर को स्नेह होता नहीं है इसीलिये रावण ने सीताजी से कहा कि तुझमें राम का स्नेह नहीं है। और रावण ने जो कहा कि "तेरे किये हुये सब भोग और तेरे गुणों को राम भोगता है और नहीं जानता कि मैंने भोगे इसलिये कृतघ्न निर्गुण और नीच है" इसका आशय यह है कि रामजी प्रकृति के गुणों के और उसके उत्पन्न किये भोगों के भोक्ता है परन्तु "मैं भोगनेवाला नहीं मानते इसीलिये कृतघ्न हैं। अथवा भक्तों के किये शुभाऽशुभ कर्मों को ज्ञानरूपी अग्नि प्रकट करके भस्म करते हैं इसमें कृतघ्न हैं कुछ किसीके किये उपकार को न माने इससे वह परमेश्वर का नाम कृतघ्न नहीं है, और सच्चिदानंद स्वरूप होने से जब साक्षात् माया उसके सामने नहीं ठहर सकती तो माया के गुण से उसे क्या कर सकते हैं इसलिये निर्गुण है। और धर्मशब्दसे प्रतिपादन करने के अयोग्य अर्थात् वाणी के अगोचर होने से राम अधम है कुछ नीच होने से अधम नहीं हैं। और रावण ने जो यह कहा कि "मैं तुझ पतिव्रता को यहां ले आया और तू दुःख शोक से व्याकुल रहती है अब भी तो वह नहीं आता क्योंकि जिसे प्रीति ही नहीं है सो आवे कैसे? इसका यह भाव है कि सीताजी को जो रावण ने पतिव्रता कहा सो ठीक ही है और रावण ने ब्रह्मा के वरदान से सब लोक वश में किये यह बात प्रसिद्ध है और ब्रह्मा सब प्रकृति कार्य जगत् का स्वामी हैं और सीताजी प्रकृति रूप हैं और परमेश्वर रामचन्द्रजी की शक्ति है और सदा रामजी की अधीन रहती है और सब देवता उसके अधीन हैं और सब जगत् सीता का स्वरूप है तहां ब्रह्माजी के वर से रावण ने जगत को वश में किया यही कार्य सीताजी का ले जाना हुआ और रावण कें अन्याय से जो सब लोग दुःखी हुए यही सीता का दुःखशोकयुक्त होना है। और परमेश्वर आप्तकाम होने से संसारी किसी विषय में प्रीति नहीं करता यही सीता में प्रीत का नहीं होना है और व्यापक

मयातुबहुधालोकाः प्रेषितास्तस्यदर्शने ॥ नपश्यन्तिप्रयत्नेनवीक्षमाणाः समन्ततः ॥२४॥ किंकरिष्यसिरामेणनिःस्पृहेणसदात्वयि ॥ त्वयासदालिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपिसर्वदा ॥२५॥ हृदयेऽस्यनचस्नेहस्त्वयिरामस्यजायते ॥ त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्चत्वद्गुणानपिराघवः ॥२६॥ भुञ्जानोऽपिनजानातिकृतघ्नोनिर्गुणोऽधमः ॥ त्वमानीतामयासाध्वीदुःखशोकसमाकुला ॥२७॥ इदानीमपिनायातिभक्तिहीनः कथंव्रजेत् ॥ निःसत्त्वोनिर्ममोमतीमूढः पण्डितमानवान् ॥२८॥ नराधमंत्वद्विमुखंकिंकरिष्यसिभामिनि ॥ त्वय्यतीवसमासक्तंमांभजस्वासुरोत्तमम् ॥२९॥देवगन्धर्वनागानांयक्षकिन्नरयोषिताम् ॥ भविष्यसिनियोक्त्रीत्वंयदिमांप्रतिपद्यसे ॥३०॥ रावणस्यवचः श्रुत्वासीतामर्षसमन्विता ॥ उवाचधोमुखीभूत्वानिधायतृणमन्तरे ॥३१॥ राघवद्भिभ्यतानूनंभिक्षुरूपंत्वयाधृतम् ॥ रहितेराघवाभ्यांत्वंशुनीव हविरध्वरे ॥३२॥ हृतवानसिमांनीचतत्फलंप्राप्स्यसेऽचिरात् ॥ यदारामशरौघेणविदारितवपुर्भवान्॥३३॥ ज्ञास्यसेमानुषंरामं गमिष्यसियमान्तिकम् ॥ समुद्रंशोषयित्वावाशरैर्बध्वाथवारिधिम् ॥३४॥ हन्तुंत्वांसमरेरामोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ आगमिष्यत्यसन्देहोद्रक्ष्यसेराक्षसाधम ॥३५॥ त्वांसपुत्रंसहबलंहत्वानेष्यतिमांपुरम् ॥ श्रुत्वारक्षः पतिः क्रुद्धोजानक्याः परुषाक्षरम् ॥३६॥ वाक्यंक्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्यसत्वरः ॥ हन्तुंजनकराजस्यतनयांताम्रलोचनः ॥३७॥ मन्दोदरीनिवार्याहपतिंपतिहितेरता ॥ त्यजैनांमानुषींदीनांदुःखितांकृपणांकृशाम् ॥३८॥ देवगन्धर्वनागानांबह्व्यः सन्तिवराङ्गनाः ॥ त्वामेवरमयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥३९॥

मैंने तो बहुत से दूत राम के देखने के लिये भेजे और उन्होंने बड़े बड़े यत्न से उसे चारों ओर देखा परन्तु कहीं भी दिखाई नहीं दिया॥२४॥ और जो कहीं हुआ भी तो जब तुझ पर उसका स्नेह ही नहीं है तब ऐसे राम को लेकर क्या करेगी और

उसका आशय यह है कि भगवान् की ईश्वर भाव करके सब प्राणियों में सत्ता है और ममता इसलिये नहीं है कि राम समदृष्टि और नित्य मुक्त स्वरूप हैं। और यह जो कहा कि "बड़ा घमंडी है और मूर्ख होने पर भी अपने को पण्डित समझता है" इसका आशय है कि वह सब भक्तों के सन्मान करनेवाले हैं इसलिये उनका नाम मानी है कुछ वह घमंडी नहीं हैं। और मूढ कहिये बालक के समान अभिमानरहित है और पंडितजनों से किये गये सत्कार को माननेवाला है। और रावण ने यह जो कहा है कि "-वह राम नरों में नीच और तुझसे विमुख है उसको तू क्या करेगी" इसका यह भाव है कि नर है अधम जिससे अर्थात् वह सब मनुष्यों से उत्तम हैं। और विमुख इसलिये हैं तुझ प्रकृति से भिन्न हैं तू उस पर अपना मोह डाल सकती है

यों तो तैंने उसे सदा से हृदय से लगाया और वह सदा तेरे पास रहा है॥२५॥ परन्तु इस राम के हृदय में तेरे लिये तनिक भी स्नेह नहीं है। उस राम ने तेरे कारण सब तरह के भोग और तेरे सुन्दर गुण भोगे परन्तु कुछ गुण नहीं मानता वह बड़ा कृतघ्नी निर्गुण और नीच है। मैं तुझ पतिव्रता को यहां ले आया और तू यहां दुःख शोक से व्याकुल रहती है॥२६॥२७॥ अब भी तो वह नहीं आता क्योंकि जिसे प्रीति ही नहीं है सो कैसे आवे हो न हो वह नपुंसक है इसीलिये उसे तेरी कुछ भी ममता नहीं है। वह बड़ा घमण्डी है और मूर्ख होकर भी अपने को पण्डित समझता है॥२८॥ वह मनुष्यों में नीच और तुझसे विमुख है सो उसको लेकर क्या करेगी और हे भामिनी! मैं तुझ पर मन प्राण से न्योछावर हूं सो मुझ राक्षस से प्रीति कर॥२९॥ और जो तू मुझसे प्रीति करेगी तो मैं देवता गन्धर्व नाग यक्ष और किन्नर इनकी स्त्रियों की तुझे रानी बना दूंगा॥३०॥ रावण का वचन सुनकर सीता को बड़ा क्रोध हुआ और नीचा मुख करके और तृण* की ओट करके बोलीं कि॥३१॥ अब मैं समझ गई तैंने रामजी के डर के मारे ही सन्यासी का भेष धरा था और जिस समय राम लक्ष्मण नहीं थे उस समय तू सूने आश्रम से मुझे ले भागा कि जैसे यज्ञ के हवि को कोई कुत्ता ले भागता हो सो हे नीच! उसका फल तू बहुत जल्दी पावेगा। और जब रामजी के बाणसमूह से तेरा शरीर खण्ड खण्ड होगा॥३२॥३३॥ और जब तू यमराज के घर जायगा तब जानेगा कि राम कैसे मनुष्य हैं। और हे नीच राक्षस! लक्ष्मणसहित रामचन्द्र बाणों से समुद्र को सुखाकर अथवा उसका पुल बांधकर समर में तुझे मारने आवेंगे इसमें सन्देह

---

*तृण की ओट इसलिये करी कि पतिव्रता स्त्री परपुरुष से सन्मुख बात नहीं करती दूसरा भाव यह है कि रावण को तृण समान जाना। दृष्टांत-एक शहर में शेर आया करता था-जो कोई हाथ पड़े उसे ही खा जाया करे-शहर के आदमी बेहद दुःखी हुए। एक दिन एक आदमी बड़ा मोटा ताजा चुस्त अंगरखा और चरमर का पैर में जोड़ा पहिरे टेढी पगिया लगाये आया उसे देखकर शहर के बनिये ने पूछा कि तेरा नाम क्या है? उसने कहा कि मेरा नाम है शेरमारखां, बनियों ने पूछा कि क्या तुम शेर को मारकर खा जाते हो? उसने कहा हां सबने कहा कि तुम यहां रहो। हमारे शहर में शेर आया करता है उसे मारकर तुम खा जाना अपनी नौकरी ठहरा लो। उसने कहा एक सीधा और एक रुपया नित्य लेंगें। सबने कहा अच्छा वह रहता रहा। फिर शेर जो आया करता था नहीं आया तब सबने कहा कि शेर तो आया नहीं, शेरमारखां ने कहा कि मेरे शरीर की सुगंध जहां जहां पहुंचती है तहां तक शेर नहीं रहता फिर एक दिन शेर आया सो वे शेरमारखां को ढूंढते डोले और वह कहीं मिले नहीं, फिर बड़ी कठिनाई से एक कोठरी में संदूक के भीतर छुपा पाया। सबने कहा कि शेर आ गया उसे मार कर खा-यहां छुपा क्यों बैठा है उसने कहा मेरा नाम तो घुसनूखां है। शेरमारखां नाम तो मेरी माँने लाड़का धर लिया था। सो सीताजीने रावण से कहा कि तू भी ऐसा ही डरपोक है जो राम के बिना मुझे ले आया है।

नहीं है तब तू देखियो कि ।।३४।।३५।। पुत्र तथा सेनासहित तुझे संग्राम में मारकर मुझे अयोध्यापुरी को ले जायेंगे। जानकी के कठोर वचन सुनकर रावण आग बबूला हो गया और लाल लाल आंखे फाड़ तलवार निकाल जानकीजी को मारने के लिये तैयार हो गया।।३६।।३७।। इतने में पतिका भला चाहनेवाली रानी मन्दोदरी ने पति को रोका कि यह दीन दुखिया विचारी दुर्बल अबला आप ही मर रही हैं इस पर हाथ उठाकर यह क्या अन्याय करते हो इसे छोड़ दो।।३८।। हे पति! मद से मतवाले नेत्रवाली ऐसी देवता गंधर्व और नागों की बहुत सी अच्छी से अच्छी स्त्रियां मौजूद हैं और वे तुम्हें चाहती हैं उनके साथ जो कुछ करना हो करो।।३९।।

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवोराक्षसीर्विकृताननाः ।। यथामेवशगासीताभविष्यतिसकामना ।। तथायतध्वंत्वरितं तर्जनादरणादिभिः।।४०।। द्विमासाभ्यन्तरेसीतायदिमेवशगाभवेत्।। तदासर्वसुखोपेताराज्यंभोक्ष्यतिसामया ।।४१।। यदिमासद्वयादूर्ध्वंमच्छय्यांनाभिनन्दति ।। तदामेप्रातराशायहत्वाकुरुतमानुषीम् ।।४२।। इत्युक्त्वाप्रययौस्त्रीभीरावणोऽन्तः पुरालयम् ।। राक्षस्योजानकीमेत्यभीषयन्त्यः स्वतर्जनैः।।४३।। तत्रैकाजानकीमाहयौवनंतेवृथागतम् ।। रावणेनसमासाद्यसफलंतुभविष्यति ।।४४।। अपराचाहकोपेनकिंविलम्बेनजानकि ।। इदानींछिद्यतामङ्गंविभज्यच पृथक्पृथक् ।।४५।। अन्यातुखड्गमुद्यम्यजानकींहन्तुमुद्यता ।। अन्याकरालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ।।४६।। एवंतांभीषयन्तीस्ताराक्षसीर्विकृताननाः ।। निवार्यत्रिजटावृद्धाराक्षसीवाक्यमब्रवीत् ।।४७।। शृणुध्वंदुष्टराक्षस्योमद्वाक्यंवोहितंभवेत् ।।४८।। नभीषयध्वंरुदतींनमस्कुरुतजानकीम् ।। इदानीमेवमेस्वप्नरामः कमललोचनः ।।४९।। आरुह्यैरावतंशुभ्रंलक्ष्मणेनसमागतः ।। दग्ध्वालंकापुरींसर्वांहत्वारावणमाहवे ।।५०।।आरोप्यजानकींस्वांकेस्थितोदृष्टोऽगमूर्धनि।।रावणागोमयह्रदेतैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ।।५१।। अगाहत्पुत्रपौत्रैश्चकृत्वावदनमालिकाम् ।। विभीषणस्तुरामस्यसन्निधौहृष्टमानसः ।।५२।

यह सुन रावण भयंकरमुखी राक्षसियों से बोला कि तुम भय और साम दाम आदि से शीघ्र ऐसा उपाय करो कि जिससे यह सीता मेरे वश होकर भोग विलास करे।।४०।। जो दो महीने के भीतर सीता मेरे वश में हो जायगी तो उसे सब सुख मिलेंगे और मेरे संग राज्य भोगेगी।।४।। और जो दो महीने पीछे मेरी सेज पर न पौढ़ेगी तो इस स्त्री को

मारकर मेरा सवेरे का कलेऊ बना डालना॥४२॥ यह आज्ञा देकर रावण तो स्त्रियों को साथ लेकर रनवास को चला गया। इधर राक्षसियां जानकी को अकेली पाकर धमकियों से उसे डरपाने लगीं॥४३॥ उनमें से एक राक्षसी जानकी से कहने लगी कि तेरा तो यौवन वृथा गया अब तेरा रावण से संग हो तो वह सफल हो॥४४॥ फिर दूसरी राक्षसी क्रोध करके बोली कि हे जानकी! देर क्यों करती हो? और दूसरी राक्षसी तो तलवार निकालकर जानकी को मारने के लिये ही तैयार हो गई कि अभी इसके अंग को काटकर टुकड़े टुकड़े कर डालूं। और एक अन्य महाभयंकर मुखवाली मुँह फाड़कर सीताजी को डराने लगी॥४५॥४६॥ इस प्रकार सीताजी को डराती हुई उसे भांति भांति के मुखवाली राक्षसियों को मने करके एक बूढी बड़ी त्रिजटा नाम राक्षसी उनसे यह बोली कि ॥४७॥ हे दुष्टराक्षसियों! तुम मेरी बात सुनो जिसमें तुम्हारा भला होय॥४८॥ तुम रोती हुई सीता को डराओ मत वरन् उसे प्रणाम करो। मैंने इस समय सपना देखा है कि जाने कमल के समान विशाल नेत्रवाले रामचन्द्र, लक्ष्मणसहित श्वेत ऐरावत हाथी पर चढकर आये हैं और सब लंकापुरी को भस्म करके और रावण को संग्राम में मारकर॥४९॥५०॥ और जानकीजी को अपनी गोदी में बैठाकर पर्वत के ऊपर बैठे दीखे हैं। और रावण तेल में न्हाया, नंगधड़ंग, मुंडों की माला पहिरे, बेटे पोतोंसहित गोबर के तालाब में गोते खा रहा है और विभीषण बड़े आनन्द से राम के पास बैठा हुआ है॥५१॥५२॥

सेवांकरोतिरामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ॥ सर्वथारावणंरामोहत्वासकुलमञ्जसा ॥५३॥ विभीषणायाधिपत्यं दत्त्वासीतांशुभाननाम् ॥ अंकेनिधायस्वपुरीं गमिष्यतिनसंशयः ॥५४॥ त्रिजटायावचः श्रुत्वाभीतास्ताराक्षसस्त्रियः ॥ तूष्णीमासंस्तत्रतत्रनिद्रावशमुपागताः ॥५५॥ तार्जिता राक्षसीभिः सासीताभीतातिविह्वला॥ त्रातारंनाधिगच्छन्तीदुःखेनपरिमूर्च्छिता॥५६॥अश्रुभिः पूर्णनयनाचिन्तयन्तीदमब्रवीत्॥ प्रभातेभक्षयिष्यन्तिराक्षस्योमांनसंशयः ॥ इदानीमेवमरणंकेनोपायेनमेभवेत् ॥५७॥ एवंसुदुःखेनपरिप्लुतासाविमुक्तकण्ठंरुदती चिराय ॥ आलम्ब्यशाखांकृतनिश्चयामृतौनजानतीकञ्चिदुपायमङ्गना ॥५८॥ इति श्री० उमामहे० सुन्दरकाण्डेद्वितीयः सर्गः ॥२॥

भक्तिपूर्वक रामजी के चरणारविन्दों की सेवा कर रहा है। सो चाहे जो कुछ होय रामचन्द्र रावण को कुलसहित

शीघ्र मारकर।।५३।। और विभीषण को लंका का राज्य देकर और सुन्दरमुखी जानकी को गोद में बैठाकर अपनी अयोध्यापुरी को ले जायेंगे इसमें संदेह नहीं है।।५४।। त्रिजटा का यह वचन सुनकर वे राक्षसियां बड़ी डरी और चुप साधकर और निद्रा के वश होकर इधर उधर जा लेटीं।।५५।। इधर राक्षसियों ने जो सीताजी को डराया सो वह भय के मारे वह व्याकुल हो गईं और किसी रक्षक को न पाकर दुःख के कारण उन्हें मूर्छा आ गई।।५६।। आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई और वह चिन्ता करती हुई यह बोली कि सबेरे राक्षसियां निस्संदेह मुझे खाये बिना नहीं छोड़ेंगी। ऐसा कौनसा उपाय है कि जिससे मेरा मरण अभी हो जाय।।५७।। इस प्रकार दुःख से दुःखी वह सीता बहुत काल तक गला फाड़ फाड़ कर रोती रही परंतु उस समय किसी उपाय को न देख अंत में उस अबला जानकी ने पेड़ की शाखा से लटककर अपने मरने का निश्चय कर लिया।।५८।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित सुन्दरकाण्ड का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।।२।।

श्रीमहादेवउवाच ।। उद्बन्धनेनवामोक्ष्येशरीरंराघवंविना ।। जीवितेनफलंकिंस्यान्ममरक्षोऽधिमध्यतः ।।१।। दीर्घावेणीममात्यर्थमुद्बन्धायभविष्यति ।। एवंनिश्चित्यबुद्धिंतांमरणायाथजानकीम् ।।२।। विलोक्यहनुमान्किञ्चिद्विचार्यैतदभाषत ।। शनैः शनैः सूक्ष्मरूपोजानक्याः श्रोत्रगंवचः ।।३।। इक्ष्वाकुवंशसम्भूतोराजादशरथोमहान् ।। अयोध्याधिपतिस्तस्यचत्वारोलोकविश्रुताः ।।४।। पुत्रादेवसमाः सर्वेलक्षणैरुपलक्षिताः ।। रामश्चलक्ष्मणश्चैवभरतश्चैवशत्रुहा ।।५।। ज्येष्ठोरामः पितुर्वाक्याद्दंडकारण्यमागतः ।। लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयाभार्ययासह ।।६।। उवासगौतमीतीरेपञ्चवटयांमहामनाः ।। तत्रनीतामहाभागासीताजनकनन्दिनी ।।७।। रहितेरामचन्द्रेणरावणेनदुरात्मना ।। ततोरामोऽतिदुःखार्तोमार्गमाणोऽथजानकीम् ।।८।। जटायुषंपक्षिराजमपश्यत्पतितंभुवि ।। तस्मै दत्त्वादिवंशीघ्रमृष्यमूकमुदागमत् ।।९।। सुग्रीवेणकृतामैत्रीरामस्यविदितात्मनः ।। तद्भार्याहारिणंहत्वावालिनंरघुनन्दनः ।।१०।। राज्येऽभिषिच्यसुग्रीवंमित्रकार्यंचकारसः ।। सुग्रीवस्तुसमानाय्यवानरान्वानरप्रभुः ।।११।। प्रेषयासपरितोवानरान्परिमार्गणे ।। सीतायास्तत्रचैकोऽहंसुग्रीवसचिवोहरिः ।।१२।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! उस समय सीताजी विचारने लगी कि रामचन्द्रजी के बिना इन राक्षसों में जीवन बिताना धिक्कार है इसलिये मैं तो शरीर में फांसी देकर ही मरूंगी।।१।। मेरी बेनी बहुत लंबी है इससे मेरे गल में फांसी अच्छी लग जायगी। जब जानकीजी ने अपनी बुद्धि से मरना ही निश्चय कर लिया तब उन्हें।।२।। हनुमान ने देखा और फिर कुछ विचार कर अपना छोटा सा रूप धरे जानकीजी से ऐसे धीरे धीरे बोले कि जिसमें उनके कान में भनक पड़ जाय।।३।। क्या बोले कि इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न अयोध्या नगरी के पति राजा दशरथ एक बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं उनके देवताओं के समान सब सुन्दर लक्षणों से युक्त और लोक में विख्यात ऐसे राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न चार पुत्र हुए।।४।।५।। उनमें जेष्ठ पुत्र रामचन्द्र अपने छोटे भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या सीता को लेकर दंडकारण्य में आये और उन महात्मा ने गौतमी नदी के तीर पर पंचवटी में आकर निवास किया। जब रामजी कहीं बाहर चले गये तब दुष्ट रावण बड़ी भाग्यशालिनी जनकनन्दिनी सीता को चुरा ले गया इससे रामचन्द्रजी बड़े भारी दुःखी हुए और इधर उधर जानकीजी को खोज करने लगे।।६।।७।।८।। फिर उन्होंने पक्षिराज जटायु को धरती पर पड़ा हुआ देखा। उसे स्वर्ग देकर तुरन्त ऋष्यमूक पर्वत पर आये।।९।। फिर वहां रामचन्द्रजी ने अपना सब वृत्तांत कहकर सुग्रीव के साथ मित्रता की। फिर भगवान् ने उसकी भार्या को हरनेवाले वाली को मारकर।।१०।। और सुग्रीव को राजतिलक करके मित्र का कार्य किया। फिर वानरराज सुग्रीव ने भी वानरों को जोड़ा।।११।। और सीताजी की खोज करने के लिये उन वानरों को चारों ओर भेजा उन्हीं में से सुग्रीव का मंत्री एक वानर मैं भी हूं।।१२।।

सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लंघ्यशतयोजनम् ।। समुद्रंनगरीलंकांविचिन्वन्जानकींशुभाम् ।।१३।। शनैरशोकवनिकांविचिन्वन्शिंशपातरुम् ।। अद्राक्षंजानकीमत्रशोचन्तींदुःखसंप्लुताम् ।।१४।। रामस्यमहिषींदेवींकृतकृत्योऽहमागतः ।। इत्युक्त्वोपररामाथमारुतिर्बुद्धिमत्तरः ।।१५।। सीताक्रमेणतत्सर्वंश्रुत्वाविस्मयमाययौ ।। किमिदंमेश्रुतंव्योम्निवायुनासमुदीरितम् ।।१६।। स्वप्नोवामेमनोभ्रांतिर्यदिवासत्यमेवतत् ।। निद्रामेनास्तिदुःखेनजानाम्येतत्कुतोभ्रमः ।।१७।। येनमेकर्णपीयूषंवचनंसमुदीरितम् ।। सदृश्यतांमहाभागः प्रियवादीममाग्रतः ।।१८।। श्रुत्वातज्जानकीवाक्यंहनुमान्पत्रखण्डतः ।। अवतीर्यशनैः सीतापुरतः समवस्थितः ।।१९।। कलविङ्क-

प्रमाणाङ्गोरक्तास्यः पीतवानरः ।। ननामशनकैः सीतांप्रांजलिः पुरतः स्थितः ।।२०।। दृष्ट्वातंजानकीभीता रावणोऽयमुपागतः ।। मांमोहयितुमायातोमाययावानराकृतिः ।।२१।। इत्येवंचिन्तयित्वासातूष्णीमासीदधोमुखी ।। पुनरप्याहतांसीतांदेवियत्त्वंविशङ्कसे ।।२२।। नाहंतथाविधोमातस्त्यजशङ्कामयिस्थिताम् ।। दासोऽहं कोसलेन्द्रस्यरामस्यपरमात्मनः ।।२३।।

संपाती के वचन से सौ योजन चौड़े समुद्र को शीघ्र लांघकर और लंकापुरी में शुभ लक्ष्मणवाली सीता को ढूंढता ढूंढता फिर धीरे धीरे अशोकवाटिका और शिंशपावृक्ष को ढूंढता हुआ मैं यहां आ निकला तब कहीं यह सीसम के नीचे दुःखित और सोच करती हुई राम की रानी सीता का दर्शन कर मैं कृतकृत्य हुआ। यह कहकर महाबुद्धिमान् वायुपुत्र चुपके हो गये।।१३।।१४।।१५।। इस प्रकार आदि से अंत तक सब वृत्तांत सुनकर सीताजी को बड़ा अचंभा हुआ और मन में कहने लगी कि क्या यह वचन मुझसे वायु ने आकाश में से कहा है।।१६।। अथवा मुझे स्वप्न हुआ अथवा मेरे मन की भ्रान्ति है अथवा हो न हो यह सत्य ही है। क्योंकि दुःख के कारण निद्रा मुझे आती नहीं और मेरी समझ में यह भ्रम भी नहीं है।।१७।। जिसने मेरे कानों को यह अमृत समान वचन सुनाया है वह यशस्वी प्रियवादी मेरे सन्मुख हो जावे तो अच्छा।।१८।। सीताजी का यह वचन सुनकर हनुमानजी पत्तों में से निकलकर वृक्ष पर से उतरे और फिर धीरे धीरे सीताजी के सामने आ उपस्थित हुए।।१९।। चिंटी के बराबर जिसका शरीर और लाल मुख ऐसे पीले वर्ण के एक वानर ने धीरे धीरे सीताजी के सामने खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया।।२०।। उसको देखकर जानकी बड़ी डरी कि मुझे छलने के लिये यह तो रावण की माया से वानर का रूप धरकर आया है ऐसी चिन्ता कर वह चुपकी हो गई और नीचे मुंह कर लिया। फिर हनुमानजी सीताजी से बोले कि हे माता! तुम जिसकी शंका कर रही हो वह रावण मैं नहीं हूं इसलिये मेरे ऊपर शंका मत करो मैं तो कौसलेन्द्र परमात्मा रामचन्द्रजी का दास हूं।।२१।।२२।।२३।।

सचिवोऽहंहरीन्द्रस्यसुग्रीवस्यशुभप्रदे ।। वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्यशोभने ।।२४।। तच्छ्रुत्वाजानकी प्राहहनूमन्तंकृताञ्जलिम् ।। वानराणांमनुष्याणांसंगतिर्घटते कथम् ।।२५।। यथात्वंरामचन्द्रस्यदासोऽहमितिभाषसे ।। तामाहमारुतिः प्रीतोजानकीपुरतः स्थितः ।।२६।। ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्यानोदितः सुधीः

।। सुग्रीवोऋष्यमूकस्थोदृष्टवान्रामलक्ष्मणौ ।।२७।। भीतोमांप्रेषयामासज्ञातुंरामस्यहृद्गतम् ।। ब्रह्मचारि वपुर्धृत्वा गतोऽहंरामसन्निधिम् ।।२८।। ज्ञात्वारामस्यसद्भावंस्कन्धोपरिनिधायतौ ।। नीत्वासुग्रीवसामीप्यं सख्यंचाकरवंतयोः ।।२९।। सुग्रीवस्यहृताभार्यावालिनातंरघूत्तमः ।।जघानैकेनबाणेनततोराज्येऽभ्यषेचयत् ।।३०।। सुग्रीवंवानराणांसप्रेषयामासवानरान् ।। दिग्भ्योमहाबलान्वीरान्भवत्याः परिमार्गणे ।।३१।। गच्छन्तंराघवोदृष्ट्वामामभाषतसादरम् ।।३२।। त्वयिकार्यमशेषंमेस्थितं मारुतनन्दन ।। ब्रूहिमेकुशलंसर्व सीतायैलक्ष्मणस्यच ।।३३।।

हे कल्याणि! मैं वानराज सुग्रीव का मंत्री हूं और हे सुन्दरी! सब जगत् की प्राण जो वायु है उसका मैं पुत्र हूं।।२४।। यह सुनकर हाथ जोड़े खड़े हुए हनुमान से सीताजी ने कहा कि वानरों की और मनुष्यों की संगति आपस में कैसे हो सकती है।।२५।। और तुम जो कहते हो कि मैं रामचन्द्रजी का दास हूं सो बिना मेल के हो नहीं सकता इसलिये मुझे ब्योरेवार हाल सुनाओ। फिर तो आगे खड़े हुए हनुमानजी प्रसन्न होकर सीताजी से कहने लगे कि।।२६।। शबरी के कहने से चतुर रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वत पर गये, वहां ऋष्यमूकपर्वत पर सुग्रीव बैठा था उसने राम लक्ष्मणजी को देखा।।२७।। और डरकर रामजी के हृदय की बात जानने के लिये मुझे भेजा। मैं ब्रह्मचारी का भेस धरके रामजी के पास गया।।२८।। और रामजी के हृदय का शुद्ध भाव जानकर और उन दोनों को कंधे पर बैठाकर सुग्रीव के पास ले गया और रामचन्द्रजी और सुग्रीव दोनों की आपस में मित्रता करा दी।।२९।। सुग्रीव की स्त्री उसके भाई बाली ने हर ली थी सो रामचन्द्रजी ने उसे एक ही बाण से मार वानरों के राज्य पर सुग्रीव का राजतिलक कर दिया फिर सुग्रीव ने बड़े बड़े बलवान् वानरों को तुम्हारे ढूंढने के लिये सब दिशाओं में भेजा।।३०।।३१।। जब मैं चलने लगा तब राम ने मुझे देखकर प्रीतिपूर्वक कहा कि।।३२।। हे पवनपुत्र! मेरा सब काम तुम्हारे हाथ है। इसलिये मेरी और लक्ष्मणजी की सब कुशल सीताजी को सुना आओ।।३३।।

अङ्गुलीयकमेतन्मेपरिज्ञानार्थमुत्तमम् ।। सीतायैदीयतांसाधुमन्नामाक्षरमुद्रितम् ।।३४।। इत्युक्त्वाप्रददौमह्यं कराग्रादंगुलीयकम् ।। प्रयत्नेनमयानीतंदेविपश्यांगुलीयकम् ।।३५।।इत्युक्त्वाप्रददौदेव्यै मुद्रिकांमारुतात्मजः

॥ नमस्कृत्वास्थितोदूराद्बद्धाञ्जलिपुटोहरिः ॥३६॥ दृष्ट्वासीताप्रमुदितारामनामाङ्कितांतदा ॥ मुद्रिकांशिरसाधृत्वास्त्रवदानन्दनेत्रजा ॥३७॥ कपेमेप्राणदातात्वंबुद्धिमानसिराघवे ॥ भक्तोऽसिप्रियकारीत्वं विश्वासोऽस्तितवैवहि ॥३८॥ नोचेन्मत्सन्निधिंचान्यंपुरुषंप्रेषयेत्कथम् ॥ हनुमन्दृष्टमखिलंममदुःखादिकंत्वया ॥३९॥ सर्वंकथयरामाययथामेजायते दया ॥ मासद्वयावधिप्राणाः स्थास्यन्तिममसत्तम ॥४०॥ नागमिष्यतिचेद्रामोभक्षयिष्यतिमांखलः ॥ अतः शीघ्रंकपीन्द्रेणसुग्रीवेणसमन्वितः ॥४१॥ वानरानीकपैः सार्धंहत्वारावणमाहवे ॥ सपुत्रंसबलंरामोयदिमांमोचयेत्प्रभुः ॥४२॥ तत्तस्यसदृशंवीर्यंवीरवर्णय वर्णितम् ॥ यथामांतारयेद्रामोहत्वाशीघ्रंदशाननम् ॥४३॥ तथायतस्वहनुमन्वाचाधर्ममवाप्नुहि ॥ हनूमानपितामाह देविदृष्टोयथामया ॥४४॥

और मेरी वह एक सुन्दर अंगूठी है, इस पर मेरे नाम के अक्षर खुदे हुए हैं, इसे पहिचान के लिये सीताजी को दे देना॥३४॥ यह कहकर उन्होंने अपने हाथ से अंगूठी उतारकर मुझे दी और मैं उसे बड़े यत्न से यहां लाया हूं सो हे रानी! इस अंगूठी को देखो॥३५॥ यह कहकर हनुमान ने वह अंगूठी सीतारानी को दे दी। और हनुमान आप हाथ जोड़ नमस्कार कर दूर खड़े हो गये॥३६॥ उस समय सीताजी रामनाम से अंकित उस मुंदरी को देख अंग में फूली न समाई और अंगूठी को शिर पर धरकर आनंद के कारण उनके नेत्रों में आंसुओं की झड़ी लग गई॥३७॥ और यह बोली कि हे कपि! तुमने इस समय मेरे प्राण बचा लिये, तुम बड़े बुद्धिमान् रामजी के भक्त और हितैषी हो इसीलिये सब बंदरों में रामजी को तुम्हारा पतयारा है॥३८॥ और जो तुम्हारा पतयारा न होता तो एक निहायत मनुष्य मेरे पास कैसे भेजते। हे हनुमान! तुमने मेरा दुःख आदि सब देख ही लिया है॥३९॥ सो सब रामजी को इस प्रकार से जता देना कि जिसमें उनकी जल्दी कृपा होय क्योंकि हे सज्जन! दो मास तक तो प्राण रहेंगे॥४०॥ और जो इतने में राम न आवेंगे तो वह दुष्ट रावण मुझे भक्षण कर लेगा। इसलिये वानरों के राजा सुग्रीव और वानरों की सेना और सेना सहित इनको साथ लेकर जो भगवान् रामचंद्रजी शीघ्र आवें और पुत्र तथा सेनासहित रावण को संग्राम में मारकर मुझे इस कष्ट से छुड़ावें तो यह पराक्रम उनके योग्य होगा और हे वीर! ऋषियों ने वर्णन किये गये उनके पहिले पराक्रम का भी उनसे वर्णन

करना और क्या कहूं जिसमें रामजी रावण को शीघ्र मारकर मेरा उद्धार करें, सो यत्न करना। मेरा संदेसा भुगताने से तुम्हें बड़ा पुण्य होगा। हनुमानजी ने भी सीताजी से कहा हे देवी! जो कुछ मैंने देखा है।।४१–४४।।

रामःसलक्ष्मणः शीघ्रमानयिष्यतिसायुधः ।। सुग्रीवेणससैन्येनहत्वादशमुखंबलात् ।।४५।। समानेष्यति देवित्वामयोध्यांनात्रसंशयः ।। तमाहजानकीरामः कथंवारिधिमाततम् ।।४६।। तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैःसह ।। हनूमानाहमेस्कन्धावारुह्यपुरुषर्षभौ ।।४७।। आयास्यतः ससैन्यश्चसुग्रीवोवानरेश्वरः ।। विहायसाक्षणेनैवतीर्त्वावारिधिमाततम् ।।४८।। निर्दहिष्यतिरक्षौघांस्त्वत्कृतेनात्रसंशयः ।। अनुज्ञांदेहिमेदेवि गच्छामित्वरयान्वितः ।।४९।। द्रष्टुंरामंसहभ्रात्रात्वरयामितवान्तिकम् ।। देविकिञ्चिदभिज्ञानंदेहिमेयेन राघवः ।।५०।। विश्वसेन्मांप्रयत्नेनततोगन्तासमुत्सुकः ।। ततः किञ्चिद्विचार्याथसीताकमललोचना।।५१।। विमुच्यकेशपाशान्तेस्थितंचूडामणिंददौ ।। अनेनविश्वसेद्रामस्त्वांकपीन्द्रसलक्ष्मणः ।।५२।। अभिज्ञानार्थमन्य-च्चवदामितवसुव्रत ।। चित्रकूटगिरौपूर्वमेकदारहसिस्थितः ।। मंदकेशिरआधायनिद्रातिरघुनन्दनः ।।५३।। ऐन्द्रःकाकस्तदागत्यनखैस्तुण्डेनचासकृत् ।। मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तंविददारामिषाशया ।।५४।।

उससे तो यही जान पड़ता है कि रामचन्द्रजी धनुषबाण धारण कर लक्ष्मण सुग्रीव और सेना को साथ लेकर शीघ्र आवेंगे और बलपूर्वक रावण को मारकर।।४५।। हे देवी! तुम्हें अयोध्या को लिवा ले चलेंगे, इसमें संदेह नहीं है। फिर जानकीजी ने हनुमानजी से कहा कि वे भगवान् रामचन्द्रजी ऐसे चौड़े समुद्र को लांघकर वानर और उनके सेनापतियों सहित कैसे आवेंगे। हनुमान से कहा कि वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ रामलक्ष्मणजी तो तुम्हारे लिये मेरे कन्धों पर चढ़कर चले आवेंगे और वानरराज सुग्रीव सेना को साथ लेकर आकाशमार्ग से क्षणभर में चौड़े समुद्र को पार करके आ जावेंगे और राक्षसों के समूहों को भस्म करे बिना न मानेंगे। तुम इस बात का निश्चय रखो और हे रानी! अब मुझे जाने की आज्ञा दो।।४६–४९।। जिससे मैं शीघ्र जाऊं क्योंकि इधर तो मुझे लक्ष्मणसहित रामजी के दर्शनों की जल्दी पड़ी है और उधर फिर तुम्हारे पास आने की जल्दी है और हे रानी! मुझे कुछ अपनी निशानी दो कि जिससे रामचन्द्रजी को यह पतयारा हो कि मैं यहां हो चला क्योंकि जैसे बने तैसे अब राम के पास जाने को उतावला हो रहा हूं। फिर कुछ विचारकर कमल

समान नेत्रवाली सीताजी ने चोटी में गुथी हुईं चूड़ामणि खोलकर वायुपुत्र को दे दी और कहा कि हे हनुमान! इससे राम लक्ष्मण दोनों को विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पास हो चले।।५०-५२।। और हे सुजन! एक और बात तुमसे पहिचान के लिये कहती हूं कि एक समय चित्रकूट पर्वत पर एकान्त में श्रीरामजी मेरी गोदी में शिर धरे सो रहे थे।।५३।। उस समय इंद्र का पुत्र जयंत काक का रूप धरकर आया और मांस की इच्छा से पेरे पैर के रक्तवर्ण अंगूठे में अपने चोंच और पंजो से बारंबार घाव करने लगा।।५४।।

ततोरामः प्रबुद्धचाथदृष्ट्वापादंक्षतव्रणम् ।। केनभद्रेकृतंचैतद्विप्रियंमेदुरात्मना ।।५५।। इत्युक्त्वापुरतोऽपश्यद्वायसंमांपुनः पुनः ।। अभिद्रवन्तंरक्तास्यनखतुण्डंचुकोपह ।।५६।। तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत् ।। चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलत् ।।५७।। अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन्पुनः ।। इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ।।५८।। रामस्य पादयोरग्रेऽपतद्भीत्या दयानिधेः ।। शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ।।५९।। अमोघमेतदस्त्रं मे दत्वैकाक्षमितो व्रज ।। सव्यं दत्त्वा ततः काक एवं पौरुषवानपि ।।६०।। उपेक्षते किमर्थमामिदानीं सोऽपि राघवः ।। हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ।।६१।। देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः ।। करिष्यति क्षणाद्भस्मः लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ।।६२।।

इतने मे रामचन्द्रजी जग उठे और मेरे पैर के घाव को देखकर बोले कि हे कल्याणी! यह नीचता हमारे साथ किस दुष्ट ने की है, ऐसा कहकर अपने आगे रुधिर से मुख पंजे और चोंच को लाल लाल किये और वार मेरी ओर दौड़ते हुए उस काक को देखा फिर तो उनके गुस्से का पार नहीं रहा और रामजी।।५५।।५६।। तुरंत एक तृण को उठाकर और उसे दिव्यास्त्रमंत्र से अभिमंत्रित करके अपनी लीला से उस काक पर छोड़ा, सो छोड़ते ही वह तृण अग्निरूप होकर।।५७।। उसके पीछे दौड़ा और जब काक उससे जलने लगा तब वह डर के मारे सब लोकों में भ्रमता फिरा और फिर इंद्र ब्रह्मा आदि की शरण गया परंतु कोई उसकी रक्षा करने के लिये समर्थ न हुआ।।५८।। परंतु फिर जो भयभीत हो दयानिधान रामजी के चरणों में ही आकर गिरा तब शरणागत को देखकर रामजी उससे यह बोले कि।।५९।। हे

काक! मेरा यह अस्त्र अमोघ है, कभी निष्फल नहीं जाता इसलिये तू अपना एक नेत्र दंड में देकर यहां से काला मुँह कर जा फिर काक अपना बायां नेत्र देकर वहां से चला गया सो ऐसे पराक्रमी होकर भी।।६०।। वे रामचन्द्रजी अब मेरी खबर नहीं लेते। सीता का वचन सुनकर हनुमान्ने उनसे कहा कि।।६१।। हे देवीजी! जब रामचन्द्रजी को यह खबर हो जायगी कि तुम यहां हो तो राक्षसों से भरी लंका को क्षण भर में भस्म कर देंगे।।६२।।

जानकीप्राहतंवत्सकथंत्वंयोत्स्यसेऽसुरैः ।। अतिसूक्ष्मवपुः सर्वेवानराश्चभवादृशाः ।।६३।। श्रुत्वातद्वचनंदेव्यैपूर्वरूपमदर्शयत् ।। मेरुमन्दरसंकाशंरक्षोगणविभीषणम् ।।६४।। दृष्ट्वासीताहनूमन्तंमहापर्वतसन्निभम् ।। हर्षेणमहताविष्टाप्राहतंकपिकुञ्जरम् ।।६५।। समर्थोऽसिमहासत्त्वद्रक्ष्यन्तित्वांमहाबलम् ।। राक्षस्यस्तेशुभःपन्थागच्छरामान्तिकं द्रुतम् ।।६६।। बुभुक्षितः कपिः प्राहदर्शनात्पारणंमम ।। भविष्यतिफलैःसर्वैस्तवदृष्टिस्थितैर्हिमे ।।६७।। तथेत्युक्तः सजानक्याभक्षयित्वा फलंकपिः ।। ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकींप्रणिपत्यसः। किंचिद्दूरमथोगत्वास्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ।।६८।।कार्यार्थमागतोदूतःस्वामिकार्याविरोधतः ।। अन्यत्किंचिदसंपाद्यगच्छत्यधमएवसः ।।६९।।

जानकीजी ने हनुमान से कहा कि हे पुत्र! तुंम राक्षसों के संग युद्ध कैसे करोगे, तुम्हारा शरीर तो इतना छोटा सा है क्या सब बन्दर तुम्हारे ही बराबर हैं।।६३।। यह सुन पवनपुत्र ने सीताजी को सुमेरु और मंदराचल के समान अपना पहिला रूप दिखाया कि जिसके देखते ही राक्षसों के छक्के छूट जायं।।६४।। बड़े भारी हनुमानजी को देखकर सीताजी को बड़ा भारी आनंद हुआ और उन्होंने कहा कि।।६५।। मैंने देख लिया कि तुम बड़े भारी बली और समर्थ हो। अब कहीं तुम्हें राक्षसियां न देख ले इसलिये तुरंत रामजी के पास बिदा हो जाओ। भगवान् करें तुम्हें तुम्हारा मार्ग मंगलकारी हो।।६६।। फिर हनुमान्जी ने कहा कि हे माता! मैं भूखा हूं। तुम्हारा दर्शन हुआ सो तो मेरा व्रत पूरा हुआ परंतु व्रत के पीछे अब पारण अर्थात् व्रत के पीछे का भोजन होना चाहिये। सो यदि आज्ञा होय तो तुम्हारे सामने जो ये फल लग रहे हैं इन सबको भक्षण कर अपनी भूख मिटा लूं।।६७।। जानकीजी ने कहा कि अच्छा फिर हनुमानजी फलों को खाकर और जानकीजी को प्रणाम कर उनसे विदा हो चल दिये। फिर थोड़ी दूर ही जाने पाये थे कि अपने मन में विचारने लगे

कि॥६८॥ जो दूत कार्य के लिये आवे और स्वामी का कार्य बनाकर फिर उसका विरोध जिसमें न पाया जाय, ऐसे दूसरे कार्य को बिना सिद्ध किये लौट जाय तो वह दूत अधम कहलाता है॥६९॥

अतोऽहंकिञ्चदन्यच्चकृत्वादृष्ट्वाथरावणम् ॥ संभाष्यच ततोरामदर्शनार्थंव्रजाम्यहम् ॥७०॥ इतिनिश्चित्यम-नसावृक्षषण्डान्महाबलः ॥ उत्पाटयाशोकवनिकांनिर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ॥७१॥ सीताश्रयणगंत्यक्त्वावनंशून्यं चकारसः ॥ उत्पाटयन्तंविपिनंदृष्ट्वाराक्षसयोषितः ॥७२॥ आपृच्छन्जानकींकोऽसौ वानराकृतिरुद्भटः ॥७३॥ जानक्युवाच ॥ भवत्यएवजानन्तिमायांराक्षसनिर्मिताम् ॥ नाहमेनंविजानामिदुःखशोकसमाकुला ॥७४॥ इत्युक्तास्त्वरितं गत्वाराक्षस्योभयपीडिताः ॥ हनूमताकृतंसर्वंरावणायन्यवेदयन् ॥७५॥ देवकश्चिन्महासत्त्वोवानराकृतिदेहभृत् ॥ सीतयासहसम्भाष्यह्यशोकबानिकांक्षणात् ॥ उत्पाटचचैत्यप्रासादं भञ्जामितविक्रमः ॥७६॥

इसलिये मैं कुछ दूसरा कार्य करके और रावण से मिलकर तथा उससे बातचीत करके फिर रामचंद्रजी के पास जाऊंगा॥७०॥ मन में ऐसा निश्चय करके महापराक्रमी हनुमान ने वृक्षों को उखाड़कर क्षणभर में अशोकवाटिका का ऐसा सत्यानाश किया कि वहां एक भी पेड़ देखने को न मिला॥७१॥ और एक सीताजी के रहने के स्थान को छोड़कर उसने वन को सूना कर दिया। फिर तो वन को उजाड़ते हुए हनुमानजी को देख राक्षसियों ने जानकीजी से पूछा कि यह वीर वानररूप कौन है?॥७२॥७३॥ जानकीजी ने कहा कि राक्षसों की रची माया को तुम ही जानती होगी, भला मैं क्या जानती हूं। दुःख शोक के कारण अपनी मारी आप मर रही हूं॥७४॥ जब सीताजी ने यह कहा तब भयभीत होकर उन राक्षसियों ने शीघ्र जाकर हनुमानजी ने जो कुछ किया था सब रावणसे निवेदनकरदिया कि।७५॥ हे महाराज! कोई बड़ा पराक्रमी जीव वानरी रूप धारण करके आया है। उसके पराक्रम का क्या कहना है उसने सीताजी के साथ बातचीत करके क्षण भर में अशोकवाटिका को उजाड़ डाला और फिर आपके देवमंदिर को ढाकर और महल के सब रखवालों को माकर वहां ही डटा हुआ है। अशोकवाटिका के उजड़ने का समाचार सुनकर रावण को बड़ा बुरा लगा और उसने तुरंत दश लाख राक्षसों को भेजा। वे वहां क्या देखते हैं कि टूटे हुए देवमंदिर के पहिले खन में पर्वत के समान

लंब धडंग लोहे के खंभ का हथियार हाथ में लिये कुछ कुछ पूंछ को हिलाते हुए लाल लाल मुख किये, जिनको देख डर लगे, ऐसे हनुमान बेधड़क बैठे हैं।।७६–७९।।

प्रासादरक्षिणः सर्वान्हत्वातत्रैवतस्थिवान्।।तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थायवनभङ्गंमहाप्रियम् ।।७७।।किंकरान्प्रेषयामासनियुतंराक्षसाधिपः।।निर्भग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसंस्थितः।।७८।।हनुमान्पर्वताकारोलोहस्तम्भकृतायुधः ।।किञ्चिल्लांगूलचलनोरक्तास्योभीषणाकृतिः।।७९।।आपतन्तंमहासंघंराक्षसानांददर्शसः चकारसिंहनादंचश्रुत्वातेमुमुहुर्भृशम् ।।८०।।हनूमन्तमथोदृष्ट्वाराक्षसाभीषणाकृतिम्।। निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैःसर्वराक्षस घातिनम्।।८१।।ततउत्थायहनुमान्मुद्गरेणसमन्ततः।।निष्पिपेषेक्षणादेवमशकानिवयूथपः।।८२।। निहतान्किङ्करान् श्रुत्वारावणःक्रोधमूर्च्छितः।।पञ्चसेनापतींस्तत्रप्रेषयामासदुर्मदान्।।८३।। हनूमानपितान्सर्वाँल्लोहस्तम्भेनचाहनत्।। ततः क्रुद्धोमन्त्रिसुतान्प्रेषयामाससप्ततः।।८४।। आगतानपितान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वरः।। क्षणान्निःशेषतोहत्वालोहस्तम्भेनमारुतिः।।८५।।पूर्वस्थानमुपाश्रित्यप्रतीक्षन्राक्षसान्स्थितः।ततोजगामबलवान्कुमारोऽक्षःप्रतापवान्।८६।तमुत्पपातहनुमान्दृष्ट्वाकाशेसमुद्गरः।गगनात्त्वरितोमूर्ध्निमुद्गरेणव्यताडयत्।।८७।।

हनुमान ने राक्षसों की बड़ी भारी भीड़ को आया हुआ देख ऐसा भारी सिंहनाद किया कि जिसे सुन सब राक्षसों की सिट्टी गुम हो गई।।८०।। फिर हनुमानजी का भयंकर रूप देखकर और उनको सब राक्षसों का घाती देख राक्षस अनेक प्रकार के बहुत से शस्त्र अस्त्र ले उन पर टूट पड़े।।८१।। फिर तो हनुमानजी ने भी उठकर मुद्गर से चारों ओर खड़े हुए राक्षसों के झुंडो को क्षणभर में इस प्रकार कुचल डाला जैसे हाथी अपने पैर से मच्छरों को पिचल डालता हो।।८२।। अपने सेवकों को मरे हुए सुनकर रावण क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और उसने बड़े जुझाऊ पांच सेनापतियों को वहां भेजा।।८३।। हनुमानजी ने उन सबको भी लोहे के खम्भे से मार अलग किया। फिर रावण ने क्रोधकर सात मंत्रिपुत्रों को भेजा।।८४।। वानरों के स्वामी हनुमान् जी ने उन आये हुओं को भी पहिले की भांति अपने लोह के खंभ से क्षणभर में माकर सबकी सफाई कर दी।।८५।। और पहिले ही स्थान में आ बैठ राक्षसों की राह देखने लगे। फिर इतने में बड़ा प्रतापी और बली रावणका बेटा अक्षयकुमार आया।।८६।। हनुमानजी उसे देखकर लोहे का खंभा लिये

आकाश में उछल गये फिर आकाश से तुरंत उतर उन्होंने अपने लोह खंभ से उसके सिर को चकनाचूर कर दिया॥८७॥

हत्वातमक्षंनिःशेषंबलंसर्वंचकारसः ॥८८॥ ततः श्रुत्वाकुमारस्यवधंराक्षसपुङ्गवः ॥ क्रोधेनमहताविष्टइन्द्रजेतारमब्रवीत् ॥८९॥ पुत्रगच्छाम्यहंतत्रयत्रास्तेपुत्रहारिपुः ॥ हत्वातमथवाबध्वाआनयिष्यामितेऽन्तिकम् ॥९०॥ इन्द्रजित्पितरंप्राहत्यजशोकंमहामते ॥ मयिस्थितेकिमर्थंत्वंभाषसेदुःखितंवचः ॥९१॥ बध्वानेष्येद्रुतं तातवानरंब्रह्मपाशतः ॥ इत्युक्त्वारथमारुह्यराक्षसैर्बहुभिर्वृत्तः ॥९२॥ जगामवायुपुत्रस्यसमीपंवीरविक्रमः ॥ ततोऽतिगर्जितंश्रुत्वास्तम्भमुद्यम्यवीर्यवान् ॥९३॥ उत्पपातनभोदेशंगुरुत्मानिवमारुतिः ॥ ततोभ्रमन्तं नभसिहनूमप्तंशिलीमुखैः ॥९४॥ विध्वातस्यशिरोभागमिषुभिचाष्टभिः पुनः ॥ हृदयंपादयुगलंषड्भिरेकेनवालधिम् ॥९५॥ भेदयित्वाततोघोरंसिंहनादमथाकरोत् ॥ ततोऽतिहर्षाद्धनुमान्स्तम्भमुद्यम्यवीर्यवान् ॥९६॥ जघानसारथिंसाश्वंरथंचाचूर्णयत्क्षणात् ॥ ततोऽन्यंरथमादायमेघनादोमहाबलः ॥९७॥ शीघ्रंब्रह्मास्त्रमादायबध्वावानरपुङ्गवम् ॥ निनायनिकटंराज्ञोरावणस्यमहाबलः ॥९८॥ यस्यनामसततंजपन्तियेऽज्ञानकर्मकृतबन्धनंक्षणात् ॥ सद्यएवपरिमुच्यतत्पदंयान्तिकोटिविभासुरंशिवम् ॥९९॥ तस्यैवरामस्यपदाम्बुजंसदाहृत्पद्ममध्येसुनिधाय मारुतिः ॥ सदैवनिर्मुक्तसमस्तबन्धनः किं तस्यपाशैरितरैश्चबन्धनैः ॥१००॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

और उस अक्षयकुमार को मार उसका सब बल धूल में मिला दिया॥८८॥ अक्षयकुमार को मरा सुनकर रावण के क्रोध का ठिकाना न रहा और अपने पुत्र इन्द्रजीत से बोला कि॥८९॥ हे पुत्र! मैं वहां जाता हूं कि जहां मेरे पुत्र का घातक वैरी खड़ा है। हाल तो उसे मारे बिना नहीं छोडूंगा और जो न मरा तो उसे बांधकर तेरे पास ले आऊंगा॥९०॥ इंद्रजीत ने पिता से कहा कि आप सरीखे बुद्धिमान् लोगों को शोक करना वृथा है। मेरे जीतेजी तुम ऐसे दीन वचन क्यों मुँह से काढते हो॥९१॥ हे पिता! मैं उस बंदर को ब्रह्मपाश से बांधकर शीघ्र लिये आता हूं। यह कहकर रथ में बैठ और बहुत से राक्षसों को साथ ले॥९२॥ वहां वीर पराक्रमी रावणपुत्र हनुमानजी के पास गया और जाकर बड़ा गर्जा, उसकी

गर्जना सुनते ही पराक्रमी हनुमान अपने लोक के खंभे को उठाकर गरुड़ के समान आकाश में उछल गये फिर इन्द्रजीत ने आकाश में घूमते हुए हनुमानजी के शिर को बहुत से बाणों से वेधकर आठ बाणों से उनके हृदय में वेधा, फिर छः बाणों से उनके पैरों को और एक बाण से पूंछ को वेधकर बड़ा भयंकर सिंहनाद किया। फिर तो वीर हनुमानजी ने बड़े हर्ष से अपने लोह के खंभको उठाकर उसे घोड़े सारथी और रथ इनमें ऐसा घुमाकर मारा कि क्षण भर में सबका चूरा चूरा हो गया फिर महाबली मेघनाद ने दूसरा रथ लाकर।।९३–९७।। और शीघ्र ब्रह्मास्त्र को लेकर उससे हनुमानजी को बांध लिया और वह महाबली इन्द्रजीत उन्हें राजा रावण के पास ले गया।।९८।। जो रामजी के नाम को सदा भजते हैं वे अज्ञान से उत्पन्न हुए कर्मबन्धन से क्षण भर में छूटकर तुरंत ही करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान कल्याण रूप विष्णुपद पाते हैं।।९९।। उन्हीं रामजी के चरणकमलों को निरंतर अपने हृदय में रखकर हनुमानजी सदा ही समस्त बन्धनों से मुक्त रहते हैं। उनको ऐसे ऐसे पाश बन्धनों से क्या होता है।।१००।। इति पण्डित रामेश्वर भट्ट कृत रसालाटीकासहित सुन्दरकांड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।।३।।

श्रीमहादेव उवाच ।। यान्तंकपीन्द्रंधृतपाशबन्धनंविलोकयन्तंनगरंविभीतवत् ।। अताडयन्मुष्टितलैः सुकोपनाः पौराः समन्तादनुयान्तईक्षितुम् ।।१।। ब्रह्मास्त्रमेनंक्षणमात्रसंगमंकृत्वागतंब्रह्मवरेणसत्वरम् ।। ज्ञात्वाहनूमानपिफल्गुरज्जुभिर्धृतोययौकार्यविशेषगौरवात् ।।२।। सभान्तरस्थस्यचरावणस्यतंपुरोनिधायाहवलारिजित्तदा ।। बद्धोमयाब्रह्मवरेणवानरः समागतोऽनेनहताःमहासुराः ।।३।। यद्युक्तमत्रार्थविचार्यमन्त्रिभिर्विधीयतामेषनलौकिकोहरिः ।। ततोविलोक्याहसराक्षसेश्वरः प्रहस्तमग्रेस्थितमञ्जनाद्रिभम् ।।४।। प्रहस्त पृच्छैनमसौकिमागतः किमत्रकार्यंकुतएववानरः ।वनंकिमर्थंसकलंविनाशितंहताःकिमर्थंममराक्षसाबलात् ।।५।। ततः प्रहस्तोहनुमन्तमादरात्पप्रच्छकेन प्रहितोऽसिवानर ।। भयंचतेमास्तुविमोक्ष्यसेमयासत्यंवद स्वाखिलराजसन्निधौ ।।६।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जिस समय मेघनाद हनुमानजी को ब्रह्मपाश में बांधकर ले चला और वे लंकापुरी को देखते हुए भयभीत की भांति चले उस समय पुरवासी राक्षस जो चारों ओर तमाशा देखने आये थे, वे क्रोधित हो

हनुमानजी को घूंसे मारने लगे।।१।। इधर यह ब्रह्मपाश हनुमानजीको क्षण भर स्पर्श करके ब्रह्माजी के वरदान से शीघ्र ही लोप हो गया। परंतु हनुमान यह जानकर भी अपना मुख्य कार्य साधने के लिये उन थोथी रस्सियों में बन्धे हुए चले गये।।२।। उस समय मेघनाद सभा में बैठे हुए रावण के सामने हनुमानको खड़ा करके कहने लगा कि मैं इस वानर को ब्रह्मपाश में बांधकर ले आया हूं। इसने बड़े बड़े असुरों का संहार किया है।।३।। हे आर्य! इसलिये मंत्रियों के साथ सलाह करके जो उचित हो सो करिये क्योंकि यह ऐसा वैसा साधारण बंदर नहीं है। फिर रावण पवन पुत्र को देखकर अपने आगे काजल के पहाड़ के समान बैठे हुए प्रहस्त से कहने लगा कि।।४।। हे प्रहस्त! इस बन्दर से पूछो तो सही कि यह क्यों और किस काम के लिये यहां आया है और इसने सब अशोकवनिका क्यों उजाड़ डाली और क्यों इसने बलपूर्वक हमारे राक्षसों को मार डाला।।५।। फिर प्रहस्त ने पुचकारा देखकर पूछा कि हे वानर! तुझे किसने भेजा है? तू डर मत। जो कुछ बात हो महाराज के सामने सब सत्य कह दें , मैं तुझे बन्धन से छुडवां दूंगा।।६।।

ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजोरिपुंनिरीक्ष्यलोकत्रयकण्टकासुरम् ।। वक्तुंप्रचक्रेरघुनाथसत्कथांक्रमेणरामंमनसा-स्मरन्मुहुः ।।७।। श्रृणुस्फुटंदेवगुणाद्यमित्रहेरामस्यदूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ।। यस्याखिलेशस्यहृताधुनात्वया भार्यास्वनाशायशुनेवसद्धविः ।।८।। सराघवोऽभ्येत्यमतङ्गपर्वतंसुग्रीवमैत्री मनलस्यसन्निधौ ।। कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिनंसुग्रीवमेवाधिपतिंचकारतम् ।।९।। सवानराणामधिपोमहाबलीमहाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ।। रामेणसार्धंसहलक्ष्मणेनभोप्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ।।१०।। सञ्चोदितास्तेनमहाहरीश्वराधरासुतांमार्गयितुं दिशोदश ।। तत्राहमेकः पवनात्मजाकपिः सीतांविचिन्वञ्छनकैः समागतः ।।११।। दृष्टामयापद्मपलाश-लोचनासीताकपित्वाद्विपिनंविनाशितम् ।। दृष्ट्वाततोऽहंरभसासमागतान्मांहन्तुकामान्धृत्चापसायकान् ।।१२।। मयाहतास्तेपरिरक्षितंवपुः प्रियोहिदेहोखिलदेहिनांप्रभो ।। ब्रह्मास्त्रपाशेननिबध्यमांततः समागमन्मेघनिनादनामकः ।।१३।।

फिर हनुमानजी ने त्रिलोकी के कंटक राक्षस रावण शत्रु को देखकर प्रसन्नतापूर्वक और मन में बारंबार रामजी का स्मरण करके क्रम से रघुनाथजी की सुन्दर कथा कहना आरंभ किया।।७।। हे देवगण के शत्रु! अब तू साफ साफ सुन ले

कि मैं घट घट निवासी सब जगत् के स्वामी उन रामचंद्रजी का दूत हूं कि जिनकी भार्या को तू अपने नाश के लिये ऐसे ले आया है कि जैसे पवित्र हवन की हवि को नीचा कुत्ता ले भागता है॥८॥ वे रामजी आकर मतंग पर्वत पर ठहरे हैं और उन्होंने अग्नि को साक्षी देकर सुग्रीव से मित्रता की है और वालीको एक बाण से मारकर सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाया है॥९॥ वह वानरों का राजा बड़ा बली सुग्रीव बड़े बड़े जुझाऊ करोड़ों वानरों के झुंडो को लिये राम लक्ष्मण सहित प्रवर्षण पर्वत पर बड़े क्रोधमें भरा बैठा है॥१०॥ उसी सुग्रीवकी आज्ञासे बडे बड़े वानर सीताजीको ढूंढनेके लिये दशो दिशाओंमें गये हैं। मैं भी उनमें से एक पवनका पूत वानर हूं और सीताजीको ढूंढता हुआ धीरे धीरे यहां आ निकला था॥११॥ सो पद्मदलनयनी सीताको देख लिया और वानर भावसे मैंने अशोकवाटिका उजाड़ डाली, फिर जब मैंने देखा कि बहुतसे राक्षस धनुषबाण लिये मेरे मारनेके लिये बड़े वेगसे आ रहे हैं तब मैंने भी अपने शरीर की रक्षाके लिये उन्हें मारा क्योंकि हे राजन्! जितने प्राणी हैं उन सबको अपनी अपनी देह प्यारी है। इस बीच तेरा बेटा मेघनाद मुझे ब्रह्मपाश में बांधकर तुम्हारे पास ले आया है॥१२॥१३॥

स्पृष्ट्वैवमांब्रह्मवरप्रभावतस्त्यक्त्वागतंसर्वमवैमिरावण ॥ तथाप्यहंबद्धइवातो हितंप्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः ॥१४॥ विचार्यलोकस्यविवेकतोगतिंनराक्षसींबुद्धिमुपैहिरावण ॥ दैवींगतिंसंसृतिमोक्षहेतुकींसमाश्रयात्यंतहितायदेहिनः ॥१५॥ त्वंब्राह्मणोह्युत्तमवंशसम्भवः पौलस्त्यपुत्रोऽसिकुबेरबान्धवः ॥ देहात्मबुद्धयापिचपश्यराक्षसोनास्यात्मबुद्धयाकिमुराक्षसोनहि ॥१६॥ शरीरबुद्धिन्द्रियदुःखसन्ततिर्नतेनचत्वंतवनिर्विकारतः ॥ अज्ञानहेतोश्चतथैवसन्ततेरसत्त्वमस्याः स्वपतोहिदृश्यवत् ॥१७॥ इदंतुसत्यंतवनास्तिविक्रियाविकारहेतुर्नचतेऽद्वयत्वतः ॥ यथानभः सर्वगतंनलिप्यतेतथाभवान्देहगतोऽपिसूक्ष्मकः॥देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतस्त्वात्मेतिबुद्धयाखिलबन्धभाग्भवेत् ॥१८॥ चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरोह्यानन्दभावोहमितिप्रमुच्यते ॥ देहोऽप्यनात्मापृथिवीविकारजोनप्राणआत्मानिलएषएवसः ॥१९॥

वह ब्रह्मपाश मेरे शरीर को स्पर्श मात्र करके ब्रह्मा के वर के प्रभाव से चला गया यह मैं जान गया था तो भी मन में तेरी दया विचार कर तेरे हित* की बात कहने के लिये कैदी की भांति मैं यहां आ गया हूं॥१४॥ हे रावण! ज्ञान से

---

* कवित्त-मैं हों रामदूत आयोतोहि समझाइबेको, मान कह्यौ मेरौ एती उरमें अरन लै। बरनत भट्ट तजि क्रुद्धा मनमाँझ मूढ, सांझ और सबेरे रामनाम की रटन लै। जोरि कर बीस दस सीसन नवाय अब, पाहि २ कहि गहि प्रभु के चरन लै। जानकी कुसल जो पै चाहत अजान अरे, जानकी समर्पि जानकीशकी सरन लै ॥१॥

संसार की गति को विचार देख राक्षसी बुद्धि को छोड़ दे क्योंकि दैवीगति संसार से छुड़ानेवाली है उसीको ग्रहण कर उसीसे प्राणी का हित होता है॥१५॥ तू ब्राह्मण है उत्तम वंश में तेरा जन्म है पौलस्त्य की संतान है कुबेर का भय्या है। जो देहात्मबुद्धि से देखे तो भी राक्षस नहीं है और जो आत्मविचार की दृष्टि से देखे तो भी राक्षस नहीं है॥१६॥ शरीर बुद्धि और इन्द्रियों से उत्पन्न हुए दुःखों के समूह तुमको नहीं होते हैं क्योंकि ये चित्त के धर्म है और न तू उन दुःखों के आश्रय है क्योंकि तू निर्विकार है। ये दुःखों के समूह तो अज्ञान से उत्पन्न होते हैं और स्वप्न में देखे हुए पदार्थों के समान मिथ्या हैं॥१७॥ मैं सत्य कहता हूं कि तेरा स्वरूप निर्विकार है और विकार का कारण अज्ञान मिथ्या है क्योंकि वेद में आत्मा को अद्वितीय कहा है। जैसे आकाश सब जगह व्याप्त होने पर भी किसी विकार से लिप्त नहीं होता वैसे ही देह में स्थित आत्मा भी देह के धर्मों से लिप्त नहीं होता है। सूक्ष्म शरीर इंद्रिय, प्राण, स्थूल शरीर, इनके संग से और इनको ही अपना स्वरूप समझने से आत्मा सुख दुःख के बंधक का भागी होता है॥१८॥

मनोऽप्यहंकारविकारएवनोनचापिबुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा॥आत्माचिदानन्दमयोऽविकारवान्देहादिसङ्घाद्व्यतिरिक्तईश्वरः ॥२०॥ निरञ्जनोमुक्तउपाधितः सदाज्ञात्वैवमात्मानंमितोविमुच्यते ॥ अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनंवक्ष्येशृणुष्वावहितोमहामते ॥२१॥ विष्णोर्हिभक्तिः सुविशोधनंधियस्ततोभवेज्ज्ञानमतीवनिर्मलम् ॥ विशुद्धतत्त्वानुभवोभवेत्ततः सम्यग्विदित्वापरमंपदंव्रजेत्॥२२॥अतोभजस्वाद्यहरिंरमापतिंरामंपुराणंप्रकृतेः परंविभुम् ॥ विसृज्यमौर्ख्यंहृदिशत्रुभावनांभजस्वरामंशरणागतप्रियम् ॥ सीतांपुरस्कृत्यसपुत्रबान्धवोरामंनमस्कृत्यविमुच्यसेभयात् ॥२३॥ रामंपरात्मानमभावयन्जनोभक्त्याहृदिस्थंसुखरूपमद्वयम् ॥ कथंपरंतीरमवाप्नुयाज्जनोभवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥२४॥ नोचेत्त्वमज्ञानमयेनवह्निनाज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् ॥ नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्चपातकैर्विमोक्षशङ्कानचतेभविष्यति ॥२५॥श्रुत्वामृतास्वादसमानभाषितंतद्वायुसूनोर्दशकन्धरोसुरः ॥ अमृष्यमाणोऽतिरुषाकपीश्वरंजगादरक्तान्तविलोचनोज्वलन् ॥२६॥ कथंममाग्रेविलपस्यभीतवत्प्लवङ्गमानामधमोऽसिदुष्टधीः॥ कएषरामः कतमोवनेचरोनिहन्मिसुग्रीवयुतंनराधमम् ॥२७॥ त्वांचाद्यहत्वाजनकात्मजांततोनिहन्मिरामंसहलक्ष्मणंततः ॥ सुग्रीवमग्रेबलिनंकपीश्वरंस-

वानरंहन्म्यचिरेणवानर ।। श्रुत्वादशग्रीववचः समारुतिर्विवृद्धकोपेनदहन्निवासुरम्।।२८।।नमेसमारावणकोटयोऽधमरामस्यदासोऽहमपारविक्रमः ।। श्रुत्वातिकोपेनहनूमतोवचोदशाननोराक्षसमेकमब्रवीत्।।२९।।

और जब अपने को चैतन्यस्वरूप जन्मरहित अविनाशी और आनन्दस्वरूप समझता है तब ही मोक्ष पाता है। और वह देह तो पृथ्वी के विकार से उत्पन्न हुआ है इसलिये आत्मा नहीं है और प्राण दृश्य पवनरूप जड़ है सो भी आत्मा नहीं है।।१९।। और मन अहंकार का विकार है इसलिये वह भी आत्मा नहीं है और अहंकार प्रकृति से विकार अर्थात् महत्तत्त्व से उत्पन्न होता है इसलिये वह भी आत्मा नहीं है आत्मा तो चैतन्यस्वरूप आनन्दमय निर्विकार देहादि के समूह से भिन्न तथा सर्वशक्तिमान् है।।२०।। और आत्मा निर्मल तथा उपाधियों से मुक्त है। इस भांति जब मनुष्य आत्मा को पहिचानता है तब मोक्ष को प्राप्त होता है। इसलिये हे बुद्धिमान्! अब मैं मोक्ष का सर्वोत्तम साधन कहता हूं उसे तू सावधान होकर सुन ।।२१।। विष्णु की भक्ति से ही चित्त शुद्ध होता है और फिर उससे निर्मल ज्ञान होता है फिर ज्ञान से आत्मा का साक्षात्कार होता है और आत्मस्वरूप को पूर्ण रीति से जानकर पुरुष परमपद पाता है।।२२।। इसलिये लक्ष्मी के पति प्रकृति से परे सर्वव्यापक और पुराण पुरुष ऐसे भगवान् रामचन्द्र का भजनकर और अपनी मूर्खता और हृदय के शत्रुभाव को त्यागकर भगवान् शरणागतवत्सल हैं इसलिये रामभजन बिना तेरा पीछा नहीं छूटेगा। सीताजी को आगे करके पुत्रबांधव सहित राम को नमस्कार करते ही तू भय से छूट जायगा।।२३।। घट घट के निवासी सर्वदा सुखरासी द्वैतभाव से विनासी ऐसे परमात्मा रामचन्द्रजी का भक्ति से विना ध्यान किये पुरुष दुःख की तरंगे जिसमें उठ रही हैं ऐसे संसाररूपी समुद्र से कैसे पार जा सकता है।।२४।। और जो तू मेरा कहा मानेगा और अज्ञानरूपी अग्नि से जलते हुए अपने अंतःकरण की रक्षा न करेगा तो अपने किये हुए परस्त्रीहरण ऋषिवध आदि पातकों से अधोगति पावेगा और सपने में भी तेरी मोक्ष न होगी अपना शत्रु आप ही मत बन ।।२५।। राक्षस रावण हनुमानजीके अमृत समान स्वादिष्ट वचन सुनकर उन्हें सहन न कर सका और बड़े क्रोध से लाल लाल आंखे निकालकर हनुमानजी से इस प्रकार बोला मानों उन्हें भस्म कर देगा कि ।।२६।। हे नीच तू मेरे सामने डर की भांति कैसे बकवास कर रहा है तू बन्दरों में महानीच और दुष्ट बुद्धि है। अरे यह राम है कौन और सुग्रीव कौनसा वानर है मैं सुग्रीव सहित इस नरों में नीच राम

को मारे बिना नही छोडूंगा।।२७।। और हे वानर तैंने समझा क्या है मैं तुझे अभी मारकर सीता की जान लेता हूं और फिर लक्ष्मणसहित राम को यमलोक पहुँचाकर फिर वानरों सहित वानरों के राजा सुग्रीव को तुरंत मार अलग करूंगा रावण का इतना कहना था कि हनुमान आगबबूला हो गयें मानों राक्षस को अभी भस्म कर देंगे।।२८।। और कहने लगे कि हे नीच! मैं रामजी का दूत हूं और ऐसा भारी पराक्रमी हूं कि तुझ सरीखे करोड़ों रावण भी मेरी बराबरी नहीं कर सकते। हनुमान का यह वचन सुनकर रावण ने क्रोधकर एक राक्षस से कहा कि ॥२९॥

पार्श्वेस्थितंमारयखण्डशः कपिंपश्यन्तुसर्वेऽसुरमित्रबान्धवाः निवारयामासततोबिभीषणोमहासुरंसायुधमुद्यतं वधे ।। राजन्वधार्होनभवेत्कथंचनप्रतापयुक्तैः परराजवानरः ।।३०।। हतेऽस्मिन्वानरेदूतेवार्तां को वानिवेदयेत् ।। रामायत्वंयमुद्दिश्यवधायसमुपस्थितः ।।३१।। अतोवधसमंकिंचिदन्यच्चिन्तयवानरे ।। सचिह्नोगच्छतुहरिर्यंदृष्ट्वायास्यतिद्रुतम् ।।३२।। रामसुग्रीवसहितस्ततोयुद्धंभवेत्तव ।। बिभीषणवचः श्रुत्वारावणोऽप्येतदब्रवीत्।।३३।।वानराणांहिलांगूलेमहामानोभवेत्किल ।। अतोवस्त्रादिभिः पुच्छंवेष्टयित्वा प्रयत्नतः ।।३४।।वह्निनायोजयित्वैनंभ्रामयित्वापुरेऽभितः ।। विसर्जयतपश्यन्तुसर्वेवानरयूथपाः ।।३५।। तथेतिशणपट्टैश्चवस्त्रैरन्यैरनेकशः ।। तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लांगूलंमारुतेर्दृढम् ।।३६।। पुच्छाग्रेकिञ्चिदनलंदीपयित्वाथराक्षसाः ।। रज्जुभिः सुदृढंबद्ध्वाधृत्वातंबलिनोऽसुराः ।।३७।। समन्ताद्भ्रामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिनः ।। तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तोमुहुर्मुहुः ।।३८।।

यह बन्दर पास खड़ा है इसे मारकर टुकड़े कर डाल जिसमें मेरे मित्र और भाई बन्धु सब राक्षस देख लें। जब रावण के कहने से एक बड़ा सा राक्षस आयुध लेकर हनुमानजी को मारने के लिये तैयार हुआ तब विभीषण ने रोककर कहा कि

कवित्त-भ्रात कुंभकर्ण मेगनाद से सपूत पूत महामजबूत मेरे सेना यातुधानकी ।। सागर के अंक मध्य बंक गढ लंक जहां काहू की न संक सूर सत्रुके जुझानकी। एरे सुन वानर जीते युद्धने चराचरहू भक्ति सुर शंकर की शक्ति ये भुजान की। निपट अजानकी सी बात कहै जानकीश कैसे देहुँ जानकी पियारी मेरी जानकी ।।१।।

कवित्त-ऐरे मतिमंद खल बन्दर बकत काह तकत न खोलि चख फुरति भुजान की । देव नर देव औ अदेव दिगपाल सब कांपत विलोकि मोहि गह धनु बानकी । बंदी कवि कान तामा रुकै प्रमान बजाने नर वानर न वानि अभिमान की । देह देहौं जानकी और गेह देहौं जानकी और जान देहौं जानकी न जान देहौं जानकी ।।१।।

हे राजन्! यह शत्रु के राज का वानर दूत बनकर आया है सो आप सरीखे प्रतापी राजाओं को इसे कदापि नहीं मारना चाहिये क्योंकि दूत को मारना नीति विरुद्ध है।।३०।। और दूसरी बात यह है कि जो यह वानर दूत मारा जायगा तो रामजी से खबर कौन करैगा कि जिन राम के मारने के लिये तुम दांत पीस रहे हो।।३१।। इसलिये वध के समान और कोई सा दंड इस वानर के लिये विचार करिये। इस वानर की देह में कोई चिह्न हो जाना चाहिये कि जिसमें जब यह जाय तो इसका चिह्न देखकर रामचन्द्रजी सुग्रीव को साथ लेकर तुरत आवें और उनसे तुम्हारी ठनाठनी मचे। विभीषण का वचन सुनकर रावण ने भी यही कहा कि ठीक है।।३२।।३३।। वानरों की अपनी पूँछ में बड़ी प्रीति और ममता होती है यह बात निश्चय है सो बड़े यत्न से इसकी पूँछ को बहुत से चीथड़ों से लपेटकर।।३४।। फिर उसमें आग लगा दो और फिर इसे लंकापुरी में चारों ओर घुमाकर छोड़ दो कि जिसमें सब वानर और उनके सेनापति इसे देखें।।३५।। बहुत अच्छा ऐसा कहकर राक्षसों ने टाठ और तरह तरह के रुई आदि के तेल में भिगोकर हनुमानजी की पूँछ लपेटे और रस्सियों से पक्के बांध दिये जिससे खुलने न पावें। फिर बड़े बड़े बली राक्षसों ने हनुमान को बहुत सी रस्सियों से दृढ बांध उनको पकड़ लिया और वे पूँछ के सिरे पर आग की चिनगारी दिखाकर ढोल बजाते चोर चोर कहते और बारम्बार मारते पीटते हुए बड़ी धूमधाम से उन्हें लंका में चारों ओर घुमाने ले गये।।३६।।३७।।३८।।

हनूमतापितत्सर्वंसोढंकिंचिच्चिकीर्षुणा ।। गत्वातुपश्चिमद्वारसमीपंतत्रमारुतिः ।।३९।। सूक्ष्मोबभूवबन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ ।। बभूवपर्वताकारस्ततउत्प्लुत्यगोपुरम् ।।४०।। तत्रैकंस्तम्भदायहत्वातान्रक्षिणः क्षणात् ।। विचार्यकार्यशेषंसप्रादाग्राद्गृहाद्गृहम् ।।४१।। उत्प्लुत्योत्प्लुत्यसन्दीप्तपुच्छेन महताकपिः ।। ददाहलङ्कामखिलांसाट्टप्रासादतोरणाम् ।।४२।। हातातपुत्रनाथेतिक्रन्दमानाः समन्ततः ।। व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्या रूढादैत्ययोषितः ।।४३।। देवताइवदृश्यन्तेपतन्त्यः पावकेऽखिलाः ।। बिभीषणगृहंत्यक्त्वा सर्वंभस्मीकृतंपुरम् ।।४४।। ततउत्प्लुत्यजलधौहनूमान्मारुतात्मजः ।। लांगूलंमज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूवसः ।।४५।। वायोः प्रियसखित्वाच्चसीतयाप्रार्थितोऽनलः ।। नददाहहरेः पुच्छंबभूवात्यन्तशीतलः।।४६।। यन्नामसंस्मरण धूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीहतरन्तिसद्यः ।। तस्यैवकिंरघुवरस्यविशिष्टदूतः सन्तप्यते कथमसौप्रकृतानलेन ।।४७।। इतिश्रीमद०उमामहेश्वरसं० सुन्दरकाण्डेचतुर्थःसर्गः।।४।।

उधर हनुमानजी ने भी अपना कुछ काम बनाने की इच्छा से इस सब बात को सह लिया फिर जब हनुमानजी लंका के पश्चिम द्वार पर पहुंचे तब।।३९।। शरीर को छोटाकर रस्सियों के बंधन से निकल गये और पर्वत के समान होकर लंका के द्वार पर उछल गये।।४०।। और उस द्वार का एक खंभा उखाड़कर उससे क्षण भर में उन्होंने अपने साथ के रक्षक राक्षसों को मार यमलोक को भेज दिया फिर जो कार्य करना रह गया था उसे विचारकर महल से महल और घर से घर पर।।४१।। उछल कूदकर अपनी जलती पूंछ से उन हनुमानजी के क्या तो महल क्या अटारी और क्या तोरण सब लंकापुरी को भस्म कर दिया।।४२।। लंका जलते समय महलों की अटारियों पर राक्षसियां हा पिता! हा पुत्र! हा नाथ! ऐसा चिल्लाती हुई गला फाड़कर रोने लगीं।।४३।। और जलती हुई अग्नि में गिरती हुई इस प्रकार दिखाई देने लगीं मानों आकाश से देवता गिरते हों। हनुमानजी ने एक विभीषण के घर को छोड़कर सब लंका फूंककर राख कर दी।।४४।। फिर वायुपुत्र समुद्र में कूदकर और अपनी पूंछ को बुझाकर स्वस्थचित्त हो गये।।४५।। सीताजी की प्रार्थना से और अपनी प्यारी सहेली पवन का पुत्र होने के कारण अग्नि ने हनुमान की पूंछ को नहीं जलाया और वह अत्यंत शीतल ही रही।।४६।। जिन रामजी के नाम का स्मरण कर पुरुष सब पापों को नाशकर तीन प्रकार के तापरूपी अग्नि से तत्काल बच जाते हैं उन्हीं रामचन्द्रजी का यह मुख्य दूत इस संसारी अग्नि से भला कैसे जल सकता है।।४७।। इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित सुन्दरकाण्ड का चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।।४।।

श्रीमहादेव उवाच ।। ततः सीतांनमस्कृत्यहनूमानब्रवीद्वचः ।। आज्ञापयतुमांदेवीभवतीरामसन्निधिम् ।।१।। गच्छामिरामत्वांद्रष्टुमागमिष्यतिसानुजः ।। इत्युक्त्वात्रिः परिक्रम्यजानकींमारुतात्मजः ।।२।।प्रणम्यप्रस्थि-तोगन्तुमिदंवचनमब्रवीत् ।देविगच्छामिभद्रंतेतूर्णंद्रक्ष्यसिराघवम् ।।३।। लक्ष्मणंचससुग्रीवंवानरायुतकोटिभिः ।। ततः प्राहहनूमन्तंजानकीदुःखकर्शिता ।।४।। त्वांदृष्ट्वाविस्मृतंदुःखमिदानींत्वंगमिष्यसि ।। इतः परंकथंवर्तेरामवार्ताश्रुतिंविना ।।५।। मारुतिरुवाच ।। यद्येवंदेविमेस्कंधमारोहक्षणमात्रतः ।। रामेणयोजयिष्यामिमन्यसेयदि जानकी।।६।। सीतोवाच ।। रामः सागरमाशोष्यबद्धवावाशरपञ्जरैः।। आगत्यवानरैः सार्धंहत्वारावणमाहवे ।।७।। मांनयेद्यदिरामस्य कीर्तिभवतिशाश्वती ।। अतोगच्छकथंचापि प्राणान्सन्धारयाम्यहम् ।।८।।

श्रीमहादेवजी बोले—फिर हनुमानजी सीताजी को प्रणाम करके बोले कि हे माता! मुझे रामजी के पास जाने की आज्ञा दीजिये। और लक्ष्मणजी को साथ लेकर रामजी तुम्हें देखने शीघ्र आवेंगे, यह कहकर हनुमानजी ने सीताजी की तीन परिक्रमा की।।१।।२।। और चलते समय नमस्कार कर यह कहा कि हे माता! मैं जाता हूं, तुम्हारा भला हो, तुम शीघ्र ही राम लक्ष्मण और करोड़ों वानरों सहित सुग्रीव को देखोगी। तब दुःख से दुर्बल जानकीजी हनुमानजी से बोली कि।।३।।४।। हे हनुमान! तुम्हें देखकर मैं अपना सब दुःख भूल गई थी और अब तुम जाते हो फिर पीछे रामजी की चर्चा सुने बिना मुझसे कैसे रहा जायगा।।५।। हनुमान बोले—हे माता! जो यह बात है और जो उचित समझो तो आओ मेरे कंधे पर सवार हो लो। हे जानकीजी! मैं इस बात का बीड़ा उठाता हूं कि क्षण भर में तुम्हें रामचन्द्रजी से मिला दूंगा।।६।। सीताजी बोलीं—हे पवनपुत्र! जो रामजी बाणो से समुद्र को सुखाकर अथवा बाणों के समूह से पुल बांधकर वानरों को साथ लेकर तथा रावण को संग्राम में मारकर जो मुझे लिवा ले जायंगे तो रामजी की सदा के लिये कीर्ति बनी रहेगी। इसलिये तुम्हारा जाना ही ठीक है, जैसे बनेगा तैसे मैं उनके आने तक अपने प्राणों को थामे रहूंगी।।७।।८।।

इतिप्रस्थापितोवीरः सीतयाप्रणिपत्यताम् ।। जगामपर्वतस्याग्रगन्तुंपारंमहोदधेः ।।९।। तत्रगत्वामहासत्त्वः पादाभ्यांपीडयन्गिरिम् ।। जगामवायुवेगेनपर्वतश्चमहीतलम् ।।१०।। ततोमहीसमानत्वंत्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ।। मारुतिर्गगनान्तस्थोमहाशब्दंचकारसः ।।११।। तंश्रुत्वावानराः सर्वेज्ञात्वामारुतिमागतम् ।। हर्षेणमहताविष्टाः शब्दंचक्रुर्महास्वनम् ।।१२।। शब्देनैवविजानीमः कृतकार्यः समागतः ।। हनूमानेवपश्यध्वंवानरावानरर्षभम् ।।१३।। एवं ब्रुवत्सुवीरेषुवानरेषुसमागतः ।। अवतीर्यगिरेर्मूर्ध्निर्वानरानिदमब्रवीत्।।१४।। दृष्टासीतामयालङ्काधर्षिताचसकानना ।। सम्भाषितोदशग्रीवस्ततोऽहंपुनरागतः ।।१५।। इदानीमेवगच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम् ।। इत्युक्त्वा वानराः सर्वेहर्षेणालिङ्ग्यमारुतिम् ।।१६।। केचिच्चुचुम्बुर्लांगूलंननृतुः केचिदुत्सुकाः ।। हनूमतासमेतास्तेजग्मुः प्रस्रवणंगिरिम् ।।१७।। गच्छन्तोददृशुर्वीरावनंसुग्रीवरक्षितम् ।।१९।। मधुसंज्ञंतदाप्राहुरङ्गदंवानरर्षभाः ।।१८।। क्षुधिताः स्मोवयंवीरदेह्यनुज्ञांमहामते ।। भक्षयामः फलान्यद्यपिबामोऽमृतवन्मधु ।।१९।।

यों कहकर सीताजी ने हनुमानजी को विदा किया और वह उन्हें प्रणाम करके समुद्र के पार जाने के लिये पर्वत के शिखर पर चढ़ गये॥९॥ वहां जाकर उछलने के लिये जो दोनों पैरों से पर्वत दबाया तो आप तो वायु के वेग से चले गये और पर्वत पृथ्वी में घुस गया॥१०॥ फिर तीस योजन उंचा पर्वत पृथ्वी के समान हो गया और हनुमानजी ने आकाशमार्ग में पहुँचते ही बड़ा भारी भयंकर शब्द किया॥११॥ सब वानर उस गर्जना को सुनकर और हनुमानजी को आया जानकर आनन्द के मारा फूलकर कुप्पा हो गये और बड़े शब्द से गर्जने लगे॥१२॥ और आपस में कहने लगे कि हम शब्द से ही जान गये कि हनुमान कार्य सिद्ध करके लौट आए और हे वानरो! वानरवीर को देखो॥१३॥ इस प्रकार सब वीर वानर बातें कर रहे थे कि इतने में हनुमान आकाश से पर्वत के शिखर पर उतरकर वानरों से यह बोले कि॥१४॥ हे वानरों! मैं सीताजी के दर्शन कर अशोकवाटिका समेत लंका को तहस नहसकर और रावण से दो दो बातें कर यहां लौटकर आया हूं॥१५॥ अब चलो, अभी राम सुग्रीव के पास चलें। जब हनुमानजी ने यह कहा तब सब वानरो ने उन्हें छाती से लगाया॥१६॥ कितने ही उनकी पूंछ चूमने लगे, कितने ही उमंग के मारे नाचने कूदने लगे और फिर वे हनुमानजी को साथ लेकर प्रवर्षण पर्वत पर गये॥१७॥ बड़े बड़े वीर वानरों ने जाते में सुग्रीव के लगाये हुए मधुवन को देखा और वे अंगद से बोले कि॥१८॥ हे चतुर वीर! हम सब भूख के मारे घबरा रहे हैं जो आज्ञा दो तो अब इस वन में फलों को खा लें और अमृत के तुल्य ताड़ी आदि मद्य पान कर लें॥१९॥

सन्तुष्टाराघवंद्रष्टुंगच्छामोऽद्यैवसानुजम् ॥२०॥ अङ्गद उवाच ॥ हनूमान्कृतकार्योऽयंपिबतैतत्प्रसादतः ॥ जक्षध्वंफलमूलानित्वरितंहरिसत्तमाः ॥२१॥ ततः प्राविश्यहरयः पातुमारेभिरेमधु ॥ रक्षिणस्तानानाहत्यद-धिवक्त्रेणोदिनान् ॥२२॥ पिबतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभाः ॥ ततस्तान्मुष्टिभिः पादैश्चूर्णयित्वापपुर्मधु ॥२३॥ ततोदधिमुखः क्रुद्धः सुग्रीवस्यसमातुलः ॥ जगामरक्षिभिः साधयत्रराजाकपीश्वरः ॥२४॥ गत्वातमब्रवीद्देवचिरकालाभिरक्षितम् ॥ नष्टंमधुवनंतेऽद्यकुमारेणहनूमता॥२५॥श्रुत्वादधिमुखनोक्तंसुग्रीवो हृष्टमानसः ॥ दृष्ट्वागतोनसन्देहः सीतांपवननन्दनः॥२६॥ नोचेन्मधुवनंद्रष्टुंसमर्थः कोभवन्मम ॥ तत्रापिवायुपुत्रेणकृतंकार्यं न संशयः॥२७॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंहृष्टोरामस्तमब्रवीत् ॥ किमुच्यतेत्वया-

राजन्वचः सीताकथान्वितम् ॥२८॥ सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्य देवदृष्टावनीसुता ॥ हनूमत्प्रमुखाः सर्वेप्रविष्टामधुकाननम् ॥२९॥

फिर खापीकर जब जी भर जाएगा तब राम लक्ष्मणजी के दर्शनों को चलेंगे॥२०॥ अंगद बोला–यह हनुमान कार्य सिद्ध कर आये हैं, इस खुशी में हे श्रेष्ठ वानरो! तुम सब तुरंत मद्य पी और फल मूल खाओ॥२१॥ फिर तो सब बंदर मधुवन में घुस पड़े और मधु पीना आरंभ कर दिया। दधिमुख के कहे से रखवालों ने मधु पीनेवाले सब वानरों को बहुतेरा मना किया और मारपीट मचाई परंतु उन जंगी बदरों ने एक न मानी और उन रखवालों को लात घूसों से कुचलकर खूब मधुपान किया॥२२॥२३॥ फिर वह दधिमुख जो नाते में सुग्रीव का मामा लगता था, बड़ा गुस्सा करके और रक्षकों को साथ लेकर राजा सुग्रीव के पास पहुँचा॥२४॥ और वहां जाकर उससे कहा कि महाराज! अंगद और हनुमान ने आज तुम्हारे बहुत काल से रखवाली किये हुए मधुवन का नाश कर दिया॥२५॥ दधिमुख का वचन सुनकर सुग्रीव अपने मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और विचारने लगा कि हो न हो हनुमान सीताजी को देखकर आ गये, इसमें सन्देह नहीं॥२६॥ नहीं तो किसकी ताकत थी कि मेरे मधुवन की ओर कोई आंख उठाकर देखता। लंका में जाकर वायुपुत्र ने कार्य सिद्ध कर लिया, इसमें संदेह नहीं है। सुग्रीव के वचन सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सुग्रीव से बोले कि हे राजा! सीताजी के विषय की क्या चर्चा चला रहे हो॥२७–२८॥ सुग्रीव ने कहा कि हे महाराज! हनुमान सीताजी को देख आए क्योंकि हनुमान आदि सब वानर मधुवन में घुसकर फल खा रहे हैं और सब रखवालों को मारा पीटा है। हे पृथ्वीपते! आपके कार्य किये बिना किसी का बूता नहीं था जो मेरे मधुवन की ओर देखता, इसलिये हनुमान सीता रानी को देख आये, यह पक्की ही समझिये। फिर रखवालों से कहा कि डरो मत। मेरी आज्ञा से अंगद आदि सब वानरों को मेरे पास बुला लाओ।

भक्षयन्तिस्मसकलंताडयंतिस्मरक्षिणः ॥ अकृत्वादेवकार्यंतेद्रष्टुं मधुवनंमम ॥३०॥ नसमर्थास्ततोदेवीदृष्टा-सीतेतिनिश्चितम् ॥रक्षिणोवोभयंमास्तुगत्वाब्रूतममाज्ञया।३१॥ वानरानङ्गदमुखानानयध्वं ममान्तिकम् ॥ श्रुत्वा सुग्रीववचनंगत्वातेवायुवेगतः ॥३२॥ हनूमान्प्रमुखानूचुर्गच्छतेभ्वरशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छतिसुग्रीवः

सरामोलक्ष्मणान्वितः ।।३३।। युष्मानतीवहृष्टास्तेत्वरयन्तिमहाबलाः ।। तथेत्यम्बरमासाद्ययुस्तेवानरोत्तमाः ।।३४।। हनूमन्तंपुरस्कृत्य युवराजंतथाङ्गदम् ।। रामसुग्रीवयोरग्रेनिपेतुर्भुविसत्वरम् ।।३५।। हनूमान्राघवंप्राहहृष्टासीतानिरामया ।। साष्टाङ्गंप्रणिप्रत्याग्रेरामंपश्चाद्धरीश्वरम् ।।३६।। कुशलंप्राहराजेन्द्रजानकीत्वांशुचाऽन्विता ।। अशोकवनिकामध्येशिंशपामूलमाश्रिता ।।३७।। राक्षसीभिः परिवृतानिराहाराकृशाप्रभो हारामरामरामेति शोचन्तीमलिनाम्बरा ।।३८।। एकवेणीमयाहृष्टाशनैराश्वासिताशुभा ।। वृक्षशाखान्तरेस्थित्त्वासूक्ष्मरूपेणतेकथाम् ।।३९।।

सुग्रीव का वचन सुनकर वे वायु के वेग के समान गये।।२९–३२।। और हनुमान आदि वानरों से कहा कि जाओ, राजा ने तुम्हें बुलाया है। राम लक्ष्मणजी सहित सुग्रीव तुम्हें देखा चाहते हैं।।३३।। और हे महापराक्रमी वानरो! वे तुम्हारे ऊपर बड़े प्रसन्न हैं इसलिये बुलाने की जल्दी मचा रहे हैं। फिर तो बहुत अच्छा ऐसा कहकर वे वीर वानर आकाश मार्ग से चल दिये।।३४।। और हनुमान और अंगद को आगे करके राम सुग्रीव दोनों के आगे जाकर शीघ्र पृथ्वी पर पड़ गये।।३५।। और उन्होंने पहिले रामजी को पश्चात् सुग्रीव को दंडवत् प्रणाम किया। फिर हनुमानजी ने रामजी से कहा कि महाराज! मैं सीताजी को देख आया वह कुशलपूर्वक हैं।।३६।। और हे राजेन्द्र! जानकीजी ने आपसे कुशल कही है और वह अशोक वाटिका के बीच शिंशपावृक्ष के नीचे शोक में बैठी हुईं हैं।।३७।। राक्षसियां उन्हें चारों ओर से घेरे रहती हैं और हे नाथ! बिना खाये पिये दुर्बल हो रही हैं। मलिन वस्त्र पहने शोक में मगन हा राम! हा राम! हा राम! रटा करती हैं।।३८।। बालों की यह दशा है कि चिपटकर एक वैनी बन गई है। इस प्रकार देखकर मैंने उन सुन्दर लक्षणी को धीरे धीरे बड़ी धीरज बंधाई। अपना छोटा सा रूप धरकर वृक्ष की शाख के बीच बैठ तुम्हारी कथा सुनाई कि।।३९।।

जन्मारभ्यतवात्यर्थंदण्डकागमनंतथा ।। दशाननेनहरणंजानक्यारहितेत्वयि ।।४०।। सुग्रीवेणयथामैत्रींकृत्वा वालिनिबर्हणम् ।। मार्गणार्थं चवैदेह्याः सुग्रीवेणविसर्जिताः ।।४१।। महाबलामहासत्त्वाहरयोजितकाशिनः ।। गताः सर्वत्रसर्वेवैतत्रैकोऽहमिहागतः ।।४२।। अहंसुग्रीवसचिवोदासोऽहंराघवस्यहि ।। दृष्टायज्जानकी-

भाग्यात्प्रयासः फलितोऽद्यमे ।।४३।। इत्युदीरितमाकर्ण्यसीताविस्फारितेक्षणा ।। केनवाकर्णपीयूषंश्रावितं-मेशुभाक्षरम् ।।४४।। यदिसत्यंतदायातुमद्दर्शनपथंतुसः ।। ततोऽऽहंवानराकारः सूक्ष्मरूपेणजानकीम् ।।४५।। प्रणम्यप्राञ्जलिर्भूत्वादूरादेवस्थितः प्रभो ।। पृष्टोऽहंसीतयाकस्त्वमित्यादिबहुविस्तरम् ।।४६।। मयासर्वं-क्रमेणैवविज्ञापितमरिंदम ।। पश्चान्मयार्पितंदेव्यैभवद्दत्तांगुलीयकम् ।।४७।।

जैसे दंडक वन में आपका आना हुआ और आपके न होने पर जैसे रावण ने सीताजी को हरा।।४०।। फिर जैसे सुग्रीव के साथ मित्रता करके आपने बाली का वध किया और फिर जैसे सुग्रीव ने सीताजी को ढूंढने के लिये बड़े बड़े बली महापराक्रमी और संग्रामों को जीतनेवाले सब वानरों को इधर उधर भेजा और वे चारों ओर गये फिर मैंने कहा कि उनमें से एक मैं यहां आया हूं।।४१।।४२।। मैं सुग्रीव का मंत्री और श्रीरामजी का दास हूं, मैंने जो प्रारब्ध से जानकीजी का दर्शन किया सो आज मेरा परिश्रम सफल हुआ।।४३।। इस प्रकार मेरे कथन को सुनकर सीताजी आंख उठाकर कहने लगीं कि मेरे कानों को अमृत के समान यह सुन्दर वचन किसने सुनाया है?।।४४।। यदि यथार्थ में कोई है तो वह मेरे सामने आवे, हे प्रभो! फिर तो मैं वानर का छोटा सा रूप धरकर और जानकीजी को हाथ जोड़ प्रणाम करके उनके सामने जा दूर खड़ा हो गया। फिर सीताजी ने मुझसे पूछा कि तू कौन है? फिर हे शत्रुमर्दन! मैंने क्रमपूर्वक सब वृत्तान्त सुनाया। इसके पीछे मैंने आपकी दी हुई अंगूठी सीताजी को अर्पण की।।४५-४७।।

तेनमामतिविश्वस्तावचनंचेदमब्रवीत् ।। यथादृष्टास्मिहनुमन्पीडयमानादिवानिशम् ।।४८।। राक्षसीनांतर्ज-नैस्तत्सर्वंकथयराघवे ।। मयोक्तदेविरामोऽपित्वच्चिन्तापरिनिष्ठितः ।।४९।। परिशोचत्यहोरात्रंत्वद्वार्तांना-धिगम्यसः ।। इदानीमेवगत्वाहंस्थितिंरामायतेब्रुवे ।।५०।। रामः श्रवणमात्रेणसुग्रीवेणसलक्ष्मणः ।। वानरानीकपैः सार्धमागमिष्यतितेऽन्तिकम् ।।५१।। रावणंसकुलंहत्वानेष्यतित्वांस्वकंपुरम् ।। अभिज्ञांदेहिमेदे-वियथामांविश्वसेद्विभुः ।।५२।। इत्युक्तासाशिरोरत्नंचूडापाशेस्थितंप्रियम् ।। दत्त्वाकाकेनयद्वृत्तंचित्रकूट-गिरौपुरा ।।५३।। तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षीकुशलं ब्रूहिराघवम् ।। लक्ष्मणंब्रूहिमेकिंचिद्दुरुक्तंभाषितंपुरा ।।५४।। तत्क्षमस्वाज्ञभावेनभाषितंकुलनन्दन ।। तारयेन्मांयथारामस्तथाकुरुकृपान्वितः ।।५५।। इत्युक्त्वारुदतीसीता

दुःखेनमहतावृता ॥ मयाप्याश्वासितारामवदतासर्वमेवते ॥५६॥ ततः प्रस्थापितोरामत्वत्समीपमिहागतः ॥ तदागमनवेलायामशोकवनिकांप्रियाम् ॥५७॥ उत्पाटचराक्षसांस्तत्रबहून्हत्वाक्षणादहम् ॥ रावणस्यसुतं- हत्वारावणेनाभिभाष्यच ॥५८॥

तब उन्होंने मेरा विश्वास करके मुझसे यह कहा कि हे हनुमान्! तुमने देख ही लिया है कि मैं इन राक्षसियों की धमकियों से दिन रात कैसी पीड़ित रहती हूं सो सब श्रीरामजी से कह देना। यह सुन मैंने कहा कि हे देवी! रामजी भी तुम्हारी चिन्ता में मग्न रहते हैं और तुम्हारी खबर न पाकर वे रात दिन शोक सागर में डूबे रहते हैं सो मैं अभी जाकर रामचन्द्रजी से तुम्हारी दशा कहूंगा।।४८–५०।। रामचन्द्रजी सुनते ही सुग्रीव लक्ष्मण और वानरी सेना के सेनापतियों को साथ लेकर पास आवेंगे।।५१।। और कुलसहित रावण को मारकर तुम्हें अपनी अयोध्यापुरी को ले जायंगे। हे देवी! मुझे तुम अपनी कोई निशानी दो कि जिससे भगवान् को यहां आने का मेरा भरोसा हो।।५२।। जब मैंने यह कहा तब जानकीजी ने जूड़े में गुथे हुए अपने प्यारे चूडारत्न को खोलकर मुझे दे दिया। और पहिले चित्रकूट पर्वत पर जो आपके साथ जयंत काक का वृत्तान्त हुआ था सो भी कहा और आंखों में आंसू भरकर कहा कि रामजी से मेरी कुशल कह देना और मेरी ओर से लक्ष्मणजी से कहना कि जो कुछ पहिले मैंने तुमसे कुछ खोटी खरी बातें कही थी उन्हें क्षमा करें क्योंकि हे कुलनन्दन! जो कुछ कहा था सब अज्ञान के कारण कहा था और क्या कहूं, जैसे कृपानिधान रघुनाथजी मुझे इस कष्ट से छुटावें सो करना।।५३–५५।। यह कहकर सीताजी रोने लगीं और दुःखरूपी महासागर में मग्न हो गईं। हे रामजी! फिर मैंने भी आपकी ओर से सब बातें कहकर उनको धीरज बंधाई।।५६।। फिर वहां से विदा होकर मैं यहां आपके पास आया। हे पृथ्वीनाथ! आते समय मैंने वहां रावण की सुन्दर अशोक वाटिका को उजाड़ अनगिनती राक्षसों को पल भर में मार रावण से दो दो बातें कर।।५७–५८।।

लङ्कामशेषतोदग्ध्वापुनरप्यगमंक्षणात् ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरामोऽत्यन्तप्रहृष्टधीः ॥५९॥ हनूमंस्तेकृतंकार्यं देवैरपिसुदुष्करम् ॥ उपकारंनपश्यामितवप्रत्युपकारिणः ॥६०॥ इदानींतेप्रयच्छामिसर्वस्वंममसारुते ॥ इत्यालिङ्ग्यसमाकृष्यगाढंवानरपुङ्गवम् ॥६१॥ सार्द्रनेत्रोरघुश्रेष्ठः परांप्रीतिमवापसः ॥ हनूमन्तमुवाचेदं-

राघवोभक्तवत्सलः।।६२।।परिरम्भोहिमेलोकेदुर्लभः परमात्मनः ।। अतस्त्वंममभक्तोऽसिप्रियोऽसिहरिपुङ्गव ।।६३।। यत्पादपद्मयुगलंतुलसीदलाद्यैः संपूज्यविष्णुपदवीम तुलांप्रयान्ति ।। तेनैवकिंपुनरसौपरिरब्धमूर्ती-रामेणवायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः ।।६४।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः।।५।। सुन्दरकाण्डेसर्गाः पञ्चैवान्यात्मिकशब्दिते ।। प्रोक्तास्त्रीणिशतानिश्लोकास्त्रिभुवनपापहराः ।।

और बची खुची लंका को भस्म करके फिर एक क्षण भर में यहां आया हूं। इस प्रकार हनुमानजी का वाक्य सुनकर रामचन्द्रजी अंग में फूले न समाये।।५९।। और कहने लगे कि हे हनुमान! तुमने मेरा वह कार्य किया है कि जिसे देवता भी नहीं कर सकते, मैं तुम्हारा क्या उपकार करूं सो नहीं देखता परंतु हां एक बात है कि तुम्हारे उपकार से सदा ऋणी बना रहूंगा।।६०।। हे वायुपुत्र! मैं अब तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूं। इस प्रकार कहकर और हनुमानजी को पास खींचकर बड़े प्रेम से छाती से लगाया।।६१।। उस समय श्रीरामचंद्रजी की आखों में जल भर आया और परम प्रसन्न होकर भक्तवत्सल रामजी हनुमानजी से कहने लगे कि।।६२।। हे पवनपुत्र! संसार में मुझ परमात्मा का आलिंगन बड़ा दुर्लभ है। यह बात निश्चय जानना (क्योंकि ब्रह्मानन्द के भीतर सब आनन्द है सो आनन्द की राशि ब्रह्मरूप मैंने तुम्हें हृदय से लगाकर अपने बराबर कर लिया फिर क्या बाकी रहा) इसलिये आज से तुम मेरे प्यारे भक्त और सब वानरों में पूजनीय हुए।।६३।। महादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि जिन भगवान् के चरण कमलों को तुलसीदल आदि से पूजन करके पुरुष अनुपम विष्णुपद वैंकुठ को पाते हैं उन्हीं साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी के शरीर से जिसने आलिंगन किया उस पवनपुत्र के पुण्यपुंजो का क्या कहना है अर्थात् उनका वर्णन नहीं हो सकता।।६४।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित सुन्दरकाण्ड का पंचम सर्ग समाप्त हुआ।।५।।

राग अलैया—जै हनुमान् वीरवरवंका । तेजपुंज बल प्रबल पराक्रम विधि विवेक कर दीनों अंका।।१।। कूदि सिंधु सीता सुधि कीन्हीं अतिलघु रूप धरचो जनु रंका । नौ लख बाग उपारी पल में, सूत साथ कीन्हैं दोय फंका।।२।। लै लँगूर कपि खेल बनायो उलटि पलटि सब जारी लंका। गर्व न रह्यौ नगर नर नारिन जब हरि कोप करी हनुहंका ।।३।। कपि कुलमंडन रिपुकुल खंडन प्रकटे सुफल अंजनी पंका । रावण कुंभकरण निसिचर के तिमिर हरनकौं उदित मयंका ।।४।।

जीति निशान बजाय राम के भक्त वछल को दीनो डंका। लाहा रामदास कान्हर भजि असुर मारी मेरी सब शंका ॥५॥ जै हनुमान वीर० ॥

भजन—जाउं कहां तजि चरण तिहारे। क्राकौ नाम पतित पावन जग केहि अतिदीन पियारे ॥१॥ कौन देव वरि आय विरद हित हठि हठि अधम उधारे। खग मृग व्याध पषान विटप जड़ यमन कौन सुर तारे ॥२॥ देव दनुज नर नाग मनुज सब माया विवश विचारे। तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपुनपौ हारे जाऊं कहां० ॥३॥

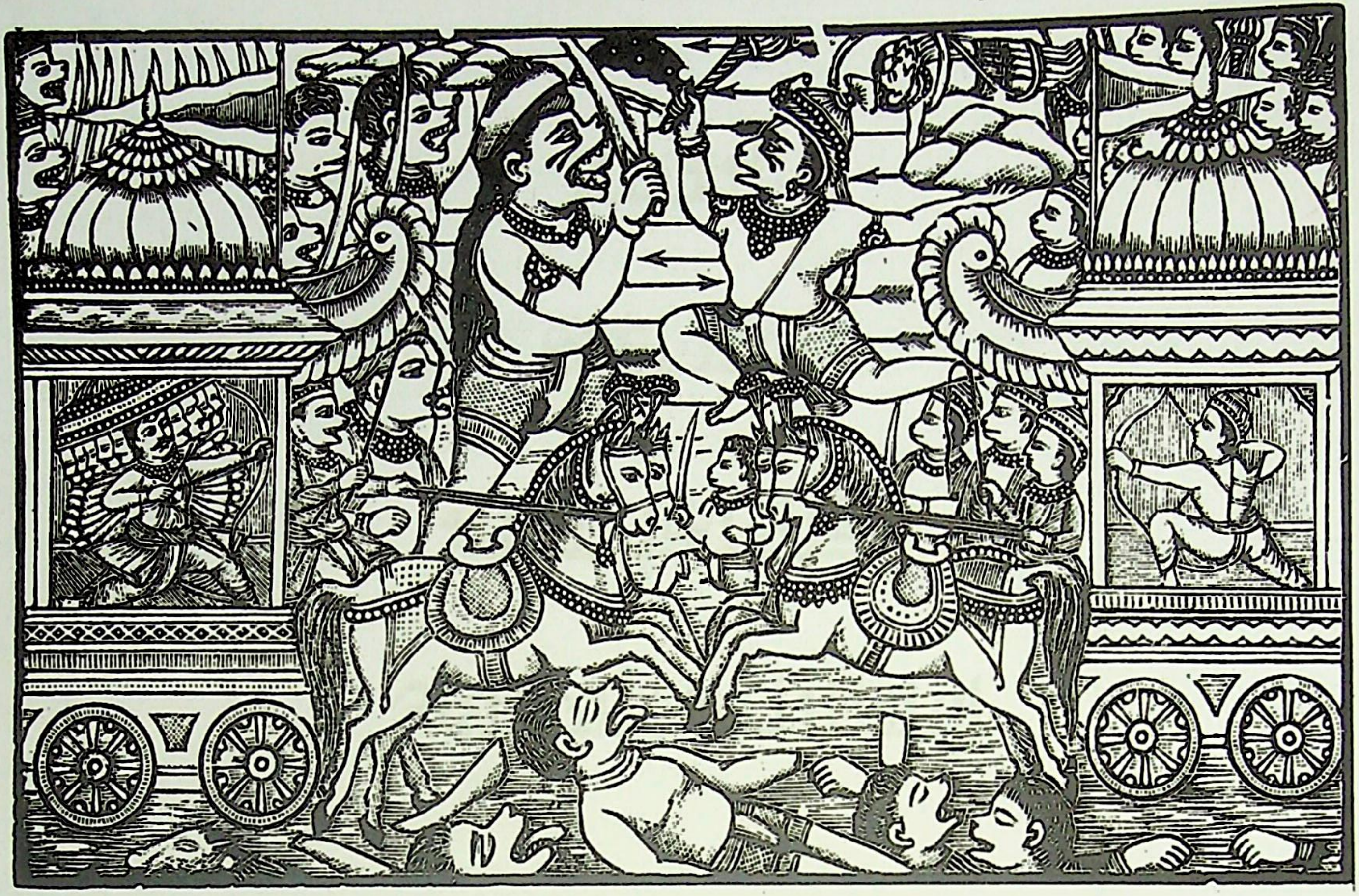
इतिध्यात्मरामायणे हिन्दीटीकासहिते सुन्दरकाण्डः समाप्तः ॥

अथाध्यात्मरामायणे

भाषाटीकासहिते

लंकाकाण्ड

प्रारम्भः



श्रीमहादेव उवाच ॥ यथावद्भाषितंवाक्यं श्रुत्वारामोहनूमतः ॥ उवाचानन्तरंवाक्यंहर्षेमहतावृतः ॥१॥ कार्यंकृतंहनुमतादेवैरपिसुदुष्करम् ॥ मनसापियदन्येनस्मर्तुंशक्यंनभूतले ॥२॥ शतयोजनविस्तीर्णलङ्घयेत्कप योनिधिम् ॥ लङ्कांचराक्षसैर्गुप्तांको वाधर्षयितुंक्षमः ॥३॥ भृत्यकार्यंहनुमताकृतंसर्वमशेषतः ॥ सुग्रीवस्येदृशोलोकेनभूतोनभविष्यति॥४॥ अहंचरघुवंशश्च लक्ष्मणश्चकपीश्वरः॥ जानक्यादर्शनेनाद्यरक्षिताः स्मोहनूमता ॥५॥ सर्वथासुकृतंकार्यंजानक्याः परिमार्गणम् ॥ समुद्रंमनसास्मृत्वासीदतीवमनोमम ॥६॥ कथंनक्रझषाकीर्णंसमुद्रंशतयोजनम् ॥ लङ्घयित्वारिपुंहन्यांकथंद्रक्ष्यामिजानकीम् ॥७॥ श्रुत्वातुराम-वचनंसुग्रीवः प्राहराघवम् ॥ समुद्रंलङ्घयिष्यामोमहानक्रझषाकुलम् ॥८॥ लङ्कांचविधमिष्यामोहनिष्यामोऽद्यरावणम् ॥ चिन्तांत्यजरघुश्रेष्ठचिन्ताकार्यविनाशिनी ॥९॥

अथ लंकाकांडप्रारम्भ ॥ श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! रामचन्द्रजी हनुमानजी की बात को अच्छी तरह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और यह बोले कि ॥१॥ हनुमान ने वह कार्य किया है कि जो देवताओं को भी करना कठिन है और पृथ्वी तल पर कोई इस काम करने का मन से स्मरण भी नहीं कर सकता फिर करने की तो क्या चलाई है॥२॥ क्योंकि सौ योजन चौड़े समुद्र को लांघना सहज बात नहीं है कौन लांघ सकता है? और राक्षस जिसकी रक्षा कर रहे हैं उस लंका को भस्म करने का किसका बूता है॥३॥ परन्तु हनुमान ने सेवक का जितना कार्य है सब भले प्रकार से किया और सुग्रीव का ऐसा मंत्री संसार में न कोई हुआ और न होगा॥४॥ हनुमान ने सीताजी के दर्शन करके मेरे तथा लक्ष्मण, सुग्रीव जानकी और रघुवंश भरे के आज मानों प्राण बचा लिये॥५॥ जानकीजी की खोज करने का कार्य तो हनुमान ने भले प्रकार से कर लिया परन्तु अब जो करना है उसके लिये जब मैं मन में समुद्र का स्मरण करता हूं तो मेरी सिट्टी गुम हुई जाती है कि ॥६॥ मगरमच्छों से भरे हुए इस सौ योजन चौड़े समुद्र को लांघकर कैसे तो शत्रु को मारूंगा और कैसे जानकीजी को देखूंगा॥७॥ श्रीरामजी का वचन सुनकर सुग्रीव ने कहा प्रभो! बड़े बड़े नाके और मच्छों से भरे हुए समुद्र को बात की बात में लांघ जायेंगे और लंका को भस्म कर रावण को अभी काल के गाल में पहुँचावेंगे आप रघुवंश शिरोमणि हो किसी बात की चिंता मत करो क्योंकि चिन्ता से काम नहीं बनता वरन् उलटा बिगड़ जाता है॥८॥९॥

एतान्पश्यमहासत्वान्शूरान्वानरपुङ्गवान् ॥ त्वत्प्रियार्थंसमुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपिपावकम्॥१०॥ समुद्रतरणेबुद्धिं कुरुष्वप्रथमंततः ॥ दृष्ट्वालङ्कांदशग्रीवोहतइत्येवमन्महे ॥११॥ नहिपश्याम्यहंकश्चित्त्रिषुलोकेषुराघव ॥ गृहीत धनुषोयस्तेतिष्ठेदभिमुखोरणे ॥१२॥ सर्वथानोजयोरामभविष्यतिनसंशयः ॥ निमित्तानिचपश्यामित थाभूतानिसर्वशः ॥१३॥ सुग्रीववचनंश्रुत्वाभक्तिवीर्य समन्वितम् ॥ अङ्गीकृत्याब्रवीद्रामोहनूमन्तंपुरः स्थितम् ॥१४॥ येनकेनप्रकारेणलङ्घयामोमहार्णवम् ॥ लङ्कास्वरूपंमेब्रूहिदुःसाध्यं देवदानवैः ॥१५॥ ज्ञात्वातस्यप्रतीकारंकरिष्यामिकपीश्वर॥ श्रुत्वारामस्यवचनंहनूमान्विनयान्वितः॥१६॥उवाचप्राञ्जलिर्देव यथादृष्टंब्रवीमिते ॥ लङ्कादिव्यापुरीदेवत्रिकूटशिखरेस्थिता ॥१७॥

इन बड़े बड़े बली और शूर वीर श्रेष्ठवानरों को देखिये ये सब तुम्हारे हित के लिये अपने प्राणों को आग* में झोंकने के लिये तैयार बैठे हैं॥१०॥ हे भगवन्! पहिले समुद्र तरने की सलाह कर लीजिये फिर तो लंका देखी नहीं कि रावण को मरा ही समझियेगा॥११॥ हे राम! मैं तीनों लोकों में ऐसा किसी को नहीं देखा था कि जिस समय आप धनुष हाथ में ले उस समय वह रण में तुम्हारे सामने खड़ा रहे॥१२॥ और हे राम! संग्राम में बीसों विस्वे हमारी जय होगी क्योंकि सब शकुन मुझे जय के ही दीख रहे हैं॥१३॥ सुग्रीव के भक्ति और पराक्रम से भरे हुए वचन को सुनकर रामजी ने मान लिया कि ठीक है और उन्होने पास बैठे हुए हनुमानजी से कहा कि ॥१४॥ जैसे होगा वैसे इन बड़े समुद्र को लांघना पड़ेगा परन्तु मुझसे लंका की दशा तो कहो वहां तो देव दानव भी कठिनता से जा सकते हैं॥१५॥ हे हनुमान्! उसकी सब दशा जानकर उसका उपाय करूंगा। रामजी का वचन सुनकर हनुमानजी विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले कि हे महाराज! जो कुछ मैंने देखा है आपसे निवेदन करता हूं कि हे प्रभो! वह लंकापुरी बड़ी दिव्य है और चित्रकूटपर्वत के शिखर पर बसी हुई है॥१६॥१७॥

---

* मित्र ऐसे ही होने चाहिये जैसे आपस में दूध और पानी-ऐसा कहा है-"क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः क्षीरं तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥ गन्तुं पावकमुन्मनास्तदभवदृष्ट्वा तु मित्रापदं युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी"। अर्थात् पानी के अपने में मिलते ही दुग्ध ने अपने सब गुण पानी को दे दिये और दूध का गरम होता देख पानी ने भी अपने को उससे पहिले पजार दिया। जब दूध ने देखा कि मेरे पीछे पानी जला जाता है तो आप भी उफनकर आग में गिरने को चला इतने में उसे जाता देख पानी जो ऊपर से आया सो वह उफनता हुआ रह गया सो सज्जनों की ऐसी प्रीति होती है॥

स्वर्णप्राकारसहितास्वर्णाट्टालकसंयुता ।। परिखाभिः परिवृतापूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ।।१८।। नानोपवनशोभा ढ्यादिव्यवापीभिरावृता ।। गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः ।।१९।। पश्चिमद्वारमासाद्यगजवाहाः सहस्रशः ।। उत्तरेद्वारितिष्ठन्तिसाश्ववाहाः सपत्तयः ।।२०।। तिष्ठन्त्यर्बुदसंख्याकाः प्राच्यामपितथैवच ।। रक्षिणोराक्षसावीराद्वारंदक्षिणमाश्रिताः ।।२१।। मध्यकक्षेऽप्यसंख्यातागजश्वरथपत्तयः ।। रक्षयन्तिसदाल-ङ्कांनानास्त्रकुशलाः प्रभो ।।२२।। संक्रमैर्विविधैर्लङ्काशतघ्नीभिश्चसंयुता ।। एवंस्थितेऽपिदेवेशशृणुमेतत्रचेष्टि-तम् ।।२३।। दशाननबलौघस्यचतुर्थांशोमयाहतः ।। दग्ध्वालङ्कांपुरींस्वर्णप्रासादोधर्षितोमया ।।२४।। शतघ्न्यः संक्रमाश्चैवनाशितामेरघूत्तम ।। देवत्वद्दर्शनादेवलङ्काभस्मीकृताभवेत् ।।२५।। प्रस्थानंकुरुदेवेशग-च्छामोलवणाम्बुधेः ।। तीरंसहमहावीरैर्वानरौघैः समन्ततः ।।२६।। श्रुत्वाहनूमतोवाक्यमुवाचरघुनन्दनः।। सुग्रीवसैनिकान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ।।२७।।

उसके चारों ओर सुवर्ण का परकोटा है वहां सुवर्ण के महल और अटारियां बन रही है। चारों ओर खाइयां खुद रही हैं और उनमें निर्मल जल भर रहे हैं।।१८।। नगर के बहुत से बगीचे अपनी न्यारीही छटा दिखा रहे हैं जगह २ बावड़ियां बनी हुई हैं और मणियों के खंभे जिनमें लग रहे हैं ऐसे सुन्दर घरों से उसकी एक अनोखी शोभा हो रही है।।१९।। अब पश्चिम के द्वार पर आये तो हजारों गज सवार खड़े हैं उधर उत्तर के द्वार पर हजारों घुड़सवार और प्यादों की सेना डटी हुई है।।२०।। और लंका के पूर्वी द्वार पर भी दश करोड़ योद्धा तैनात रहते हैं और दक्षिण द्वार पर बड़े २ लडाके वीर राक्षस पहिरा दिया करते हैं।।२१।। और हे राम! लंका की बीच की डचोढी पर गज सवार घुड़सवार और पैदल सेना की भीड़ भाड़ है कि उसकी गिनती नहीं हो सकती। वे सब योंद्धा अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाने में कुशल हैं और सदा लंका की सुरक्षा किया करते हैं।।२२।। लंका के मार्ग मार्ग पर अनेक प्रकार की नाकेबंदी कर रखी है और तोपें चढ़ी हुइ हैं। इतना होने पर भी हे पृथ्वीनाथ! मैंने जो कौतुक किया उसे सुनिये कि।।२३।। रावण की सेना समूह का चौथाई भाग तो मैंने स्वयं नाश कर डाला और लंकापुरी को भस्म कर स्वर्ण में देवमंदिर को धूल में मिला दिया।।२४।। और हे राम महाराज! मैंने तोपों को तोड़ डाला और सब नाके बंदियों के सकड़े मार्गों को परकोटा ढाकर

चौड़ा कर दिया। सो हे रघुनाथजी! अब आपके देखते ही लंका को भस्म हुई समझना।।२५।। हे देवताओं के ईश! अब प्रस्थान करिये और चारों ओर से बड़े २ सूरवीर वानों के झुंडों को साथ लेकर समुद्र के तीर पर चलिये।।२६।। हनुमानजी का वचन सुनकर रघुनाथजी ने कहा कि हे सुग्रीव! सब सेनापतियों को प्रस्थान के लिये आज्ञा कर दो।।२७।।

इदानीमेवविजयोमुहूर्तः परिवर्तते ।। अस्मिन्मुहूर्तेगत्वाहंलङ्कांराक्षससङ्कुलाम् ।।२८।। सप्राकारांसुदुर्धर्षांनाशयामिसरावणाम् ।। आनेष्यामिचसीतांमेदक्षिणाक्षिस्फुरत्यधः।।२९।।प्रयातुवाहिनीसर्वावानराणांतरस्विनाम् ।। रक्षन्तुयूथपाः सेनामग्रेपृष्ठेचपार्श्वयोः ।।३०।। हनूमन्तमथारुह्यागच्छाम्यग्रेऽङ्गदततः ।। आरुह्यलक्ष्मणोयातु सुग्रीव त्वंमयासह ।।३१।। गजोगवाक्षोगवयोमैन्दोद्विविदएवच ।। नलोनीलः सुषेणश्चजांबवाश्चतथापरे ।।३२।। सर्वेगच्छन्तुसर्वत्रसेनायाः शत्रुघातिनः ।। इत्याज्ञाप्यहरीन्रामः प्रतस्थेसहलक्ष्मणः ।।३३।। सुग्रीवसहितोहर्षात्सेनामध्यगतोविभुः ।। वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ।।३४।। क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तोजग्मुस्तेदक्षिणांदिशम् ।। भक्षयन्तोययुस्सर्वेफलानिचमधूनिच ।।३५।। ब्रुवन्तोराघवस्याग्रेहनिष्यामोद्यरावणम् ।। एवंतेवानरश्रेष्ठागच्छन्त्यतुलविक्रमाः ।।३६।। हरिभ्यामूह्यमानौतौशुशुभातेरघूत्तमौ ।। नक्षत्रैः सवितायद्वच्चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ।।३७।।

इस समय विजयनाम मुहूर्त है इस मुहुर्त में जाकर राक्षसों से भरी परकोटों से घिरी और कठिनता से टूट सके ऐसी रावणसहित उस लंका को नाशकर सीताजी को ले आऊंगा और इस समय मेरे दाहिने नेत्र का नीचे का भाग भी फड़क रहा है।।२८।।२९।। पहिले बड़े बड़े सूरवीर वानरों की सब सेना चलें और सेना के आगे पीछे और दायें बायें सेनापति रक्षा करते हुए चलें।।३०।। और हनुमान के कंधे पर सवार होकर आगे मैं चलता हूं तिस पीछे अंगद के कंधे पर चढ़कर लक्ष्मण चलें और हे सुग्रीव! तुम मेरे साथ २ पैदल चलो।।३१।। फिर गज, गवाक्ष, गवय, मैंद, द्विविद नल, नील, सुषेण, जाम्बवान् आदि शत्रुओं के नाश करनेवाले सब सेनापति अपनी अपनी सेना के चारों ओर रक्षा करते हुए चलें।। रामजी ने इस प्रकार बन्दरों को आज्ञा देकर और लक्ष्मणजी को साथ ले प्रस्थान किया।।३२।।३३।। महाराज रामचन्द्रजी

सुग्रीव को साथ लिये सेना के बीच में प्रसन्न होते चले जा रहे हैं। गजराजों के समान शरीरवाले और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सब वानर।।३४।। उछलते कूदते फैंतरा बदलते और गर्जते हुए दक्षिण दिशा की ओर चलें।। और वे सब अतोल पराक्रमी वानर मधु फल खाते हुए और रामजी के आगे यह कहते हुए कि आज रावण को मार लिया है आगे बढ़े चले जा रहे हैं उस समय हनुमान और अंगद के कंधों पर चढ़कर जाते हुए राम लक्ष्मणजी कैसे शोभायमान लगते हैं कि जैसे आकाश में तारागणों के बीच सूर्य चन्द्रमा लगते हैं।।३५।।३७।।

आवृत्यपृथिवींकृत्स्नांजगाममहतीचमूः ।। प्रस्फोटयन्तः पुच्छाग्रानुद्वहन्तश्चपादपान् ।।३८।। शैलानारोहयन्तश्चजग्मुर्मारुतवेगतः ।। असंख्याताश्चसर्वत्रवानराः परिपूरिताः ।।३९।। हृष्टास्तेजग्मुरत्यर्थंरामेणपरि-पालिताः ।। गताचमूर्दिवारात्रंक्वचिन्नासज्जतक्षणम् ।।४०।। काननानिविचित्राणिपश्यन्मलयसह्ययोः ।। तेसह्यंसमतिक्रम्यमलयंचतथागिरीन् ।।४१।। आययुश्चानुपूर्व्येणसमुद्रंभीमनिः स्वनम् ।। अवतीर्य हनूमन्तंरामः सुग्रीवसंयुतः ।।४२।। सलिलाभ्याशमासाद्यरामोवचनमब्रवीत् ।। आगताः स्मोवयंसर्वेसमुद्रंमक रालयम् ।।४३।। इतोगन्तुमशक्यंनोनिरुपायेनवानराः ।। अत्रसेनानिवेशोऽस्तुमन्त्रयामोऽस्यतारणे ।।४४।। श्रुत्वारामस्यवचनं सुग्रीवः सागरान्तिके ।। सेनांन्यवेशयत्क्षिप्रंरक्षितांकपिकुञ्जरैः ।।४५।। तेपश्यन्तोविषेदु-स्तंसागरंभीमदर्शनम् ।। महोन्नततरङ्गाढ्यंभीमनक्रभयंकरम् ।।४६।। अगाधंगगनाकारंसागरंवीक्ष्यदुःखिताः ।। तरिष्यामः कथंघोरंसागरं वरुणालयम् ।।४७।।

जिस समय वानरों की बड़ी भारी सेना चली उस समय उससे सब पृथ्वी छा गई। वानर पूँछों के अग्रभाग को फटकारते हुए युद्ध के लिये वृक्षों को उखाड़ते ।।३८।। और पर्वतों पर चढ़ते हुए वायु के वेग के समान उड़े जा रहे हैं। और वह अनगिनती वानरदल टीडीदल के समान सब जगह पुर गया।।३९।। और रामचन्द्रजी की छत्रछाया में वे वानर बड़े प्रसन्न होते हुए जा रहे हैं। इस प्रकार वह सेना रात दिन चलती गई और मार्ग में कहीं क्षण भर नहीं ठहरी।।४९।। फिर वे सब सह्य और मलयपर्वतों के चित्र विचित्र वनों को देखते हुए क्रम क्रम से उन पर्वतों को लांघते हुएं समुद्र के किनारे आ पहुँचे और देखा कि समुद्र का बड़ा भयंकर शब्द हो रहा है। वहां रामचन्द्रजी हनुमान के कंधों पर से

उतरकर और सुग्रीव को साथ लेकर जल के किनारे गये और यह बात कहने लगे कि हम सब मगरमच्छों से भरे समुद्र पर तो आ गये।।४१ से ४३।। परन्तु हे वानरो! यहां से बिना उपाय चलना बड़ी टेढी खीर है इसलिये यहां ही सेना के डेरे डाल दो और पहिले इस समुद्र के तरने का मनसूबा करो।।४४।। श्रीरामजी का वचन सुनकर सुग्रीव ने समुद्र के किनारे तुरंत सेना को ठहरा दिया और बड़े बड़े वानरों से उसकी रक्षा करने की आज्ञा दे दी।।४५।। वे उस भयंकर समुद्र को देखकर मन में बड़े उदास हुए और जब उन्होंने देखा कि इसमें तो बड़ी ऊंची तरंगें उठ रही है और यह बड़े बड़े शरीरवाले नाकों से भयंकर अथाह और आकाश के समान है तो बड़े दुःखी हुए कि इस वरुण के समान भयंकर समुद्र को कैसे पार कर सकेंगे।।४६।।४७।।

हन्तव्योऽस्माभिरद्यैवरावणोराक्षसाधमः ।। इतिचिन्ताकुलाः सर्वेरामपार्श्वेव्यवस्थिताः ।।४८।। रामः सीतामनुस्मृत्यदुःखेनमहतावृतः ।। विलप्यजानकींसीतांबहुधाकार्यमानुषः ।।४९।। अद्वितीयश्चिदात्मैकः परमात्मासनातनः ।। यस्तुजानातिरामस्यस्वरूपंतत्त्वतोजनः ।।५०।। तंनस्पृशतिदुःखादिकिमुतानन्दमव्ययम् ।। दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः ।।५१।। अज्ञानलिङ्गान्येतानिकुतः सन्तिचिदात्मनि ।। देहाभिमानिनो दुःखंनादेहस्यचिदात्मनः।।५२।।संप्रसादेद्वयाभावात्सुखमात्रंहिदृश्यते ।। बुद्धयाद्यभावात्संशुद्धेदुःखंतत्रनदृश्यते ।। अतोदुःखादिकंसर्वंबुद्धेरेवनसंशयः ।।५३।। रामः परात्मापुरुषः पुराणोनित्योदितानित्यसुखोनिरीहः ।। तथापिमायागुरसङ्गतोऽसौसुखीवदुःखीवविभाव्यतेऽबुधैः ।।५४।। इति श्रीमद० उमामहेश्वर० युद्धकाण्डे-प्रथमः सर्गः ।।१।।

और हमें नीच राक्षस को आज ही मारना है इस चिन्ता में व्याकुल होकर सब रामजी के पास बैठ गये।।४८।। और रावण आदि के वध के लिये जिन्होंने नररूप धारण किया है ऐसे रामचन्द्रजी इस समय सीताजी का स्मरण करके और उन जनकनन्दिनी के लिये बहुत सा विलाप करके दुःख से बड़े दुःखी हुए।।४९।। वास्तव में रामजी अद्वितीय, चैतन्यरूप, एक परमात्मा, और सनातन अर्थात् नित्य हैं परन्तु जो पुरुष रामजी के इस यथार्थ स्वरूप को जानता है।।५०।। उसको दुःख आदि स्पर्श नहीं करता फिर आनन्दस्वरूप अविनाशी रामचन्द्रजी को दुःख आदि कैसे हो सकता है? दुःख, हर्ष,

भय, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि ये सब अज्ञान के चिह्न हैं सो ये चैतन्यस्वरूप रामजी में कैसे हो सकते हैं जितना दुःख है सब देहाभिमानी को होता है और देहाभिमान रहित चित्स्वरूप को नहीं होता।।५१।।५२।। जैसे सुषुप्तिअवस्था में दूसरे के प्रतीत न होने में केवल सुख ही सुख दिखाई पड़ता है क्योंकि उस समय बुद्धि आदिकों के नहीं प्रतीत होने से शुद्ध आत्मा में दुःखादिक भी प्रतीत नहीं होता इससे जाना जाता है कि दुःखादिक बुद्धि के ही धर्म हैं आत्मा के नहीं हैं इसमें संदेह नहीं।।५३।। और राम तो बुद्धि से परे आत्मस्वरूप, पुराणस्वरूप, सबके अंतर्यामी, नित्य प्रकाशमान सदा सुखस्वरूप और क्रियारहित हैं तो भी माया के गुणों को अंगीकार करने से यह अज्ञानी पुरुषों को सुखी दुःखी से जान पड़ते हैं।।५४।। इति पंडितरामेश्वरभट्ट कृत रसाला टीकासहित युद्धकांड का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।।१।।

श्रीमहादेव उवाच ।। लङ्कायांरावणोदृष्ट्वाकृतंकर्महनूमता ।। दुष्करंदैवतैर्वापिह्रियाकिञ्चिदवाङ्मुखः ।।१।। आहूयमन्त्रिणः सर्वानिदंवच नमब्रवीत् ।। हनूमताकृतंकर्मभवद्भिर्दृष्टमेवतत्।।२।। प्रविश्यलङ्कांदुर्धर्षां दृष्ट्वासीतांदुरासदाम् ।। हत्वाचराक्षसान्वीरानक्षंमन्दोदरीसुतम् ।।३।। दग्ध्वालङ्कामशेषेणलंघयित्वाच-सागरम् ।। युष्मान्सर्वानतिक्रम्यस्वस्थोऽगात्पुनरेवसः ।।४।। किंकर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयंमन्त्रविशारदाः ।। मंत्रयध्वंप्रयत्नेनयत्कृतंमेहितंभवेत् ।।५।। रावणस्यवचः श्रुत्वाराक्षसास्तमथाब्रुवन् ।। देवशङ्काकुतोरामात्तव लोकजितोरणे ।।६।। इन्द्रस्तुबद्ध्वानिक्षिप्तः पुत्रेणतवपत्तने ।। जित्वाकुबेरमानीयपुष्पकंभुज्यतेत्वया ।।७।। यमोजितः कालदण्डाद्भयंनाभूत्तवप्रभो ।। वरुणोहुंकृतेनैवजितः सर्वेऽपिराक्षसाः ।।८।। मयोमहासुरोभीत्याक न्यांदत्त्वास्वयंतव ।। त्वद्वशेवर्ततेऽद्यापिकिमुतान्येमहासुराः ।।९।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! उधर लंकापुरी में देवताओं से भी न हो सके हनुमानजी के किये हुए कर्म को देखकर रावण ने लज्जा से कुछ नीचा मुख कर लिया और वह सब मंत्रियों को बुलाकर यह बात कहने लगे कि हनुमानजी ने जो कार्य किया है उसे तुम सब लोगों ने देखा ही है कि ।।१।।२।। कोई जिसमें प्रवेश न कर सके ऐसी लंका में आकर और कोई जिसके पास न जा सके ऐसी सीता को देखकर और बड़े बड़े वीर राक्षसों को और मन्दोदरी के पुत्र अक्षयकुमार को मारकर और संपूर्ण लंका को भस्म करके और समुद्र को पार करके और तुम सबों के दांत खट्टे करके फिर वह

कुशलपूर्वक लौट गया॥३॥४॥ अब इसके आगे हमें क्या करना चाहिये सो कहो और तुम सलाह करने में बड़े निपुण हो इसलिये यत्नपूर्वक ऐसी सलाह करो कि जिसमें मेरा भला होय॥५॥ रावण का वचन सुनकर राक्षस उससे बोले कि हे महाराज! तुम सब लोकों को जीते बैठे हो तुम्हें संग्राम में राम से क्या भय है॥ तुम्हारे पुत्र ने इन्द्र को बांधकर लंकापुरी में पटक ही रखा है तुम कुबेर को जीतकर उसके पुष्पक विमान को जो ले आये हो उस पर बैठे आनन्द भोगते ही हो॥७॥ और हे प्रभो! तुमने यमराज को भी जीत लिया और उसके कालदंड से तुम्हें कुछ भय नहीं हुआ और वरुण को तुमने हुंकार शब्द से ही जीत लिया है और राक्षस तो सब जिताये ही हैं उनका कहना ही क्या है इधर मय नामक महा असुर ने डर के मारे आप ही कन्या तुम्हारे अर्पण कर दी और आज तक वह तुम्हारे वश में हो रहा है फिर अन्य असुरों की क्या चलाई है॥८॥९॥

हनूमद्धर्षणंयत्तुतदवज्ञाकृतंचनः ॥ वानरोऽयंकिमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥१०॥ इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणं-तेनकिं भवेत् ॥ वयंप्रमत्ताः किंतेनवञ्चिताः स्मोहनूमता ॥११॥ जानीमोयदितंसर्वेकथंजीवन्गमिष्यति ॥ आज्ञापयजगत्कृत्स्नमवानरम मानुषम् ॥१२॥ कृत्वायास्यामहेसर्वेप्रत्येकंवानियोजय ॥ कुम्भकर्णस्तदाप्राह-रावणंराक्षसेश्वरम् ॥१३॥ आरब्धंयत्त्वयाकर्मस्वात्मनाशायकेवलम् ॥ नदृष्टोऽसितदाभाग्यात्त्वंरामेण-महात्मना ॥१४॥ यदिपश्यतिरामस्त्वांजीवन्नायासिरावण ॥ रामोनमानुषोदेवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥१५॥ सीताभगवतीलक्ष्मीरामपत्नीयशस्विनी ॥ राक्षसानांविनाशायत्वयानीतासुमध्यमा ॥१६॥ विषपिण्डमिवागीर्यमहामीनोयथातथा ॥ आनीताजानकीपश्चात्त्वयाकिंवाभविष्यति ॥१७॥ यद्यप्यनुचि-तंकर्मत्वयाकृतमजानता ॥ सर्वंसमंकरिष्यामि स्वस्थचित्तोभवप्रभो ॥१८॥

और तुमने जो कहा कि हनुमान ने हमारी बात दो कौड़ी की कर दी सो सच पूछो तो हमने ही उसकी बात बिगाड़ी क्योंकि हम यह जानते रहे कि यह बन्दर है इसमें पराक्रम दिखाने से हमारी क्या बड़ाई होगी॥१०॥ इसलिये हमने उसे छोड़ दिया और ऐसे बात बिगाड़ने से क्या होता है हम उसे बंदर जानकर असावधान रहे इसमें वह हनुमान हमको धोखा दे गया॥ परन्तु इससे हुआ ही क्या॥११। जो हम जानते कि हनुमान ऐसा है तो क्या वह हमारे सामने से जीता

जागता जा सकता था! और जो ऐसा ही है तो आप अब हमें आज्ञा दीजिये हम सब जगत् को ऐसा करके लौटेंगे कि उसमें कहीं वानर और मनुष्य का निशान तक बाकी न रहेगा अथवा इस काम के लिये आप एक एक को आज्ञा करिये यह सुन उस समय कुंभकर्ण राक्षसराज रावण से बोला कि ॥१२॥१३॥ हे राजन्! सीताहरण कार्य जो तुमने किया है यह केवल तुमने अपने नाश के लिये किया है परन्तु इतनी ही खैर हुई कि तुम्हारे भाग्य से उस समय महात्मा रामचन्द्र ने तुम्हें नहीं देखा॥१४॥ जो राम तुम्हें देख लेते तो हे रावण! तुम जीते जागते न आते राम मनुष्य नहीं हैं वह देवता साक्षात् नारायण और अविनाशी हैं॥१५॥ और राम की यशस्विनी धर्मपत्नी साक्षात् भगवती लक्ष्मी का अवतार है सो उस सीता को तुम राक्षस के नाश के लिए ले आये हो॥१६॥ और हे रावण! जैसे कोई बड़ा मच्छ विष मिले पिंड को अपने नाश के लिये निगल जाय वैसे ही तुम अपने नाश के लिये सीता को ले आये हो न जाने क्या होनहार है॥१७॥ और यद्यपि तुमने यह कर्म अनजाने किया है परन्तु मैं सब ठीकठाक कर दूंगा हे राजन्! तुम किसी बात की चिंता मत करो॥१८॥

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वावाक्यमिन्द्रजिदब्रवीत् ॥ देहिदेवममानुज्ञांहत्वारामंसलक्षणम् ॥ सुग्रीवंवानरांश्चैवपुनर्या स्यामितेऽन्तिकम् ॥१९॥ तत्रागतो भागवतप्रधानोविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ श्रीरामपादद्वयएकतानः प्रणम्यदेवारिमुपोपविष्टः ॥२०॥ विलोक्यकुम्भश्रवणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ॥ विलोक्यकामातु रमप्रमत्तोदशाननंप्राहविशुद्धबुद्धिः ॥२१॥ नकुम्भकर्णेन्द्रजितौचराजंस्तथामहापार्श्वमहोदरौतौ ॥ निकुम्भ कुम्भौचतथातिकायः स्थातुंनशक्तायुधिराघवस्य ॥२२॥ सीताभिधानेनमहाग्रहेणग्रस्तोऽसिराजन्नचते-विमोक्षः ॥ तामेवसत्कृत्यमहाधनेनदत्त्वाभिरामायसुखीभवत्वम् ॥२३॥ यावन्नरामस्यशिताः शिलीमुखाल-ङ्कामभिव्याप्यशिरांसिरक्षसाम् ॥ छिन्दन्तितावद्रघुनायकस्यभोतांजानकी त्वंप्रतिदातुमर्हसि ॥२४॥

कुंभकर्ण का वचन सुनकर इन्द्रजीत ने यह बात कही कि हे महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये तो मैं राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और सब वानरों को मारकर तुम्हारे पास लौट आऊं॥१९॥ इतने ही में वहां भगवान् का प्रधान भक्त बड़ा बुद्धिमान् और श्रीरामजी के चरणकमलों में अटल प्रीति करनेवाला विभीषण आया और राक्षसराज रावण को प्रणाम करके पास

बैठ गया॥२०॥ और बड़े भारी मतवाले कुंभकर्ण आदि दैत्यों को और अतिकामातुर रावण को दुःखपूर्वक देखकर यह निर्मलबुद्धि विभीषण सावधान हो रावण से कहने लगा कि ॥२१॥ हे राजन्! कुंभकर्ण, इन्द्रजीत, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुंभ और अतिकाय इनमें से एक का भी बूता नहीं है जो संग्राम में रामजी के सन्मुख ठहरे॥२२॥ हे राजन्! सीतारूपी बड़े भारी ग्राह ने तुम्हें पकड़ लिया है उससे छूटना कठिन है इसलिये बहुत से मणिरत्नोंसहित उस सीता को सत्कारपूर्वक रामजी को देकर निचंताई से घर बैठो॥२३॥ और जब तक रामचन्द्रजी के पैंने बाण लंका में आकर राक्षसों के शिर न काटें तब तक तुम उस जानकीजी को रामचन्द्रजी को दे दो इसीमें भला है॥२४॥

यावन्नगाभाः कपयोमहाबलाहरीन्द्रतुल्यानखदंष्ट्रयोधिनः ॥ लङ्कांसमाक्रम्यविनाशयन्तितेतावद्द्रुतंदेहि-रघूत्तमायताम् ॥२५॥ जीवन्नरामेणविमोक्ष्यसेत्वंगुप्तः सुरेन्द्रैरपिशंकरेण ॥ नदेवराजाङ्कगतोनमृत्योः पाताललोकानपिसंप्रविष्टः ॥२६॥शुभंहितंपवित्रंचविभीषणवचः खलः ॥ प्रतिजग्राहनैवासौम्रियमाणइवौ-षधम् ॥२७॥ कालेननोदितोदैत्योविभीषणमथाब्रवीत् ॥ मद्दत्तभोगैः पुष्टाङ्गोमत्समीपेवसन्नपि ॥२८॥ प्रतीपमाचरत्येषममेवहितकारिणः ॥ मित्रभावेनशत्रुर्मेजातोनास्त्यत्रसंशयः ॥२९॥ अनार्येणकृतघ्नेनसङ्गति र्मेनयुज्यते ॥ विनाशमभिकाङ्क्षन्तिज्ञातीनांज्ञातयः सदा ॥३०॥ योऽन्यस्त्वेवंविधंब्रूयाद्वाक्यमेकंनिशाचरः ॥ हन्मितस्मिन्क्षणेएवधिक्त्वारंक्षः कुलाधमम् ॥३१॥ रावणेनैवमुक्तः सन्परुषंसविभीषणः ॥ उत्पपातसभामध्याद्गदापाणिर्महाबलः ॥३२॥ चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धंगगनस्थोऽब्रवीद्वचः ॥ क्रोधेनमहता-विष्टोरावणंदशकन्धरम् ॥माविनाशमुपैहित्वंप्रियवादिनमेवमाम्॥३३॥धिक्करोषितथापित्वंज्येष्ठोभ्रातापितुः समः ॥ कालोराघवरूपेणजातोदशरथालये ॥३४॥ कालीसीताभिधानेनजाताजनकनन्दिनी ॥ तावुभावागतावत्रभूमेर्भारापनुत्तये ॥३५॥

और हे रावण! जब तक पर्वत के समान शरीरधारी नख और दांतों से युद्ध करनेवाले और सिंहों के समान वानर लंका को घेरकर तुम्हारा नाश न करें तब तक तुम उस जानकी को शीघ्र रामजी के हवाले करो॥२५॥ हे रावण! तुम भले ही ब्रह्मा आदि और शिवजी की शरण जाओ और इन्द्र की वा मृत्यु की गोदी में जा बैठो अथवा पाताल लोकों में क्यों न

चले जाओ परन्तु रामजी के हाथ से जीते नहीं बचोगे।।२६।। इस प्रकार विभीषण के धर्मयुक्त हितकारक और निष्कपट वचन सुनकर इस खल रावण ने उन पर ऐसे ध्यान नहीं दिया कि जैसे मरनेवाला प्राणी औषधि को नहीं पीता है।।२७।। यह सुनकर काल का मारा वह रावण विभीषण से बोला कि क्यों रे! तू मेरे ही यहां रहकर और मेरे ही रोटियों से मोटा होकर और मैं तेरे संग बराबर भलाई करता आया हूं मेरे ही प्रतिकूल बात करता है (जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना) अच्छा मैंने निस्संदेह जान लिया कि तू देखने का ही हितु है परन्तु भीतर तू मेरा शत्रु पैदा हो गया है।।२८।।२९।। मैं ऐसे नीच और कृतघ्नी को पास बैठाना नहीं चाहता। और तेरा भी क्या दोष है जाति भाई जात भाइयों का बुरा चीता ही करते हैं।।३०।। जो कोई दूसरा राक्षस मुझसे ऐसी एक भी बात कहता तो उसको उसी क्षण मारे बिना न छोड़ता परन्तु तू राक्षसकुल में नीच और मेरा भाई है इसलिये तुझे धिक्कार है।।३१।। जब रावण ने ऐसा कठोर वचन कहा तब तो वह महाबली विभीषण गदा हाथ में लेकर चार मंत्रियों सहित सभा के बीच में से उछला और आकाश में खड़ा होकर और बड़े क्रोध में भरकर दशमुख रावण से यह बात बोला कि मेरे बिना अब तुम सुख से रहो मैंने तुमसे हित की बात कही थी उस पर भी तुम मुझे धिक्कारते हो सो कुछ बात नहीं है क्योंकि तुम मेरे जेठ भाई पिता के समान हो। परन्तु इतना कहे देता हूं कि दशरथ के घर में जो राम उत्पन्न हुए हैं वह तेरा काल है और जनक के घर जो सीता उत्पन्न हुई है वह काली हैं और वे दोनों यहां पृथ्वी का भार दूर करने के लिये आये हैं।।३२ से ३५।।

तेनैवप्रेरितस्त्वंतुनश्रृणोषिहितंमम ।। श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदास्थितः ।।३६।। बहिरन्तश्चभू-तानांसमः सर्वत्रसंस्थितः ।। नामरूपादिभेदेनतत्तन्मयइवामलः ।।३७।। यथानानाप्रकारेषुवृक्षेष्वेकोमहानलः ।। तत्तदाकृतिभेदेनभिद्यतेज्ञानचक्षुषाम् ।।३८।। पञ्चकोशादिभेदेनतत्तन्मयइवाबभौ ।। नीलपीतादियोगेन-निर्मलः स्फटिकोयथा ।।३९।। सएवनित्यमुक्तोऽपिस्वमायागुणबिम्बितः ।। कालः प्रधानंपुरुषोऽव्यक्तंचति-चतुर्विधः ।।४०।। प्रधानपुरुषाभ्यांसजगत्कृत्स्नंसृजत्यजः ।। कालरूपेणकलनांजगतः कुरुतेऽव्ययः ।।४१।। कालरूपीसभगवान्रामरूपेणमायया ।।४२।। ब्रह्मणाप्रार्थितोदेवस्त्वद्वधार्थमिहागतः ।।तदन्यथाकथंकुर्यात्स-

त्यसंकल्पईश्वरः ॥४३॥ हनिष्यतित्वांरामस्तुसपुत्रबलवाहनम् ॥ हन्य मानंनशक्नोमिद्रष्टुंरामेणरावण ॥४४॥ त्वांराक्षसकुलंकृत्स्नंततोगच्छामिराघवम् ॥ मयियातेसुखीभूत्वारमस्वभवनेचिरम् ॥४५॥ विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणाद्विसृज्यसर्वंसपरिच्छदं गृहम् ॥ जगामरामस्यपदारविन्दयोः सेवाभिकाङ्क्षी-परिपूर्णमानसः ॥४६॥ इति श्रीमदध्यात्मरा० उमामहे० युद्धकाण्डेद्वितीयः सर्गः ॥२॥

वही काल तेरे सिर पर घूम रहा है इसीलिये तू मेरा हितकारी वचन नहीं सुनता है। श्रीरामजी सदा साक्षात् प्रकृति से परे स्थित रहते हैं॥३६॥ रामजी निर्मल स्वरूप और वे सब प्राणियों के बाहर भीतर सर्वत्र समान रूप से स्थित हैं परन्तु नाम रूप आदि भेद से नाना भांति के जान पड़ते हैं॥३७॥ जैसे एक ही महाअग्नि नाना प्रकार के छोटे बड़े वृक्षों में काष्ठ भेद से अज्ञानियों को अलग अलग २ दिखाई देती है वैसे ही परमात्मा रामचन्द्रजी का भी अन्नमय, प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पांच कोशों के मद से भांति भांति का आकार प्रतीत होता है और जैसे निर्मल स्फटिक नील पीत आदि रंगों के योग से नीला पीला आदि प्रतीत होता है॥३८॥३९॥ वैसे ही नित्य मुक्त रामजी भी अपनी माया के गुणों से संयोग से काल प्रधान पुरुष और अव्यक्त इन चार प्रकार से जाने जाते हैं॥४०॥ और वह अजन्म रामजी प्रधान (प्रकृति) और पुरुष से सब जगत को रचते हैं और वही अविनाशी काल रूप से सब जगत् का संहार करते हैं॥४१॥ वही कालस्वरूप भगवान् माया से रामरूप धारण करके॥४२॥ ब्रह्माजी की प्रार्थना से तुम्हारे मारने के लिये यहां आये हैं सो उन्होंने जो तुम्हारे मारने का सच्चा संकल्प कर रखा है उससे विपरीत कैसे करेंगे॥४३॥ और रामजी तुझे पुत्र सेना और वाहनसमेत अवश्य मारेंगे और हे रावण! तेरा और सब राक्षसकुल काल राम के हाथ से मरना मुझसे देखा नहीं जायगा इसलिये मैं तो रामजी की शरण जाता हूं॥ मेरे जाने के पीछे तू सुखी होकर अपने घर में आनन्द से रहो॥४४॥४५॥यह कहकर विभीषण रावण के कठोर वचन से क्षणमात्र में अपने धन पुत्र स्त्री सहित गृह को त्यागकर श्रीरामजी के चरणारविन्दों की सेवा करने की इच्छा से और अपना मनोरथ पूर्ण करने के लिये उनकी शरण में चला गया॥४६॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकाण्ड का द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ॥२॥

श्रीमहादेव उवाच ।। विभीषणोमहाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह ।। आगत्यगगनेरामसम्मुखेसमवस्थितः ।।१।। उच्चैरुवाचभोः स्वामिन्रामराजीवलोचन ।। रावणस्यानुजोऽहंतेदारहर्तुर्विभीषणः ।।२।। नाम्नाभ्रात्रानिरस्तोऽहंत्वामेवशरणंगतः ।। हितमुक्तंमयादेवतस्यचाविदितात्मनः ।।३।। सीतांरामायवैदेहींप्रेषयेतिपुनः पुनः ।। उक्तोऽपिनशृणोत्येषकालपाशवशंगतः ।।४।। हन्तुंमांखड्गमादायप्राद्रवद्राक्षसाधमः ।। ततोऽचिरेणसचिवैश्चतुर्भिः सहितोभयात् ।।५।। त्वामेवभवमोक्षायमुमुक्षुः शरणंगतः ।। विभीषणवचः श्रुत्वासुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ।।६।। विश्वासार्होनतेराममायावीराक्षसाधमः ।। सीताहर्तुर्विशेषेणरावणस्यानुजोबली ।।७।। मन्त्रिभिः सायुधैरस्मान्विवरेनिहनिष्यति ।। तदाज्ञापयमेदेववानरैर्हन्यतामयम् ।।८।।

श्रीमहादेवजी वर्णन करने लगे कि हे पार्वती! भाग्यशाली विभीषण चारों मंत्रियों सहित आकाश में आकर रामजी के सामने खड़ा हो गया।।१।। और ऊंचे स्वर से कहने लगा कि हे स्वामी! हे कमलनेत्र! हे राम! जो रावण तुम्हारी भार्या को हर ले गया है उसका मैं छोटा भाई हूं, विभीषण मेरा नाम है। भाई से तिरस्कृत होकर मैं आपकी शरण में आया हूं। हे महाराज! मैंने उस अहंकारीसे हित की बात कही थी।।२।।३।। सीताजी को रामजी के पास भेज दे परंतु बार बार कहने पर भी उसने कुछ ध्यान नहीं दिया क्योंकि वह काल के फंदे में घिर रहा है।।४।। और जब नीच राक्षस खड्ग लेकर उलटा मुझे मारने को दौड़ा तब मैं भय के मारे शीघ्र चार मंत्रियों को साथ लेकर मोक्ष की इच्छा से संसार बंधन से छूटने के लिये आपकी शरण आया हूं। विभीषण का वचन सुनकर सुग्रीव बोला कि।।५।। हे रामजी! एक तो नीच राक्षस स्वभाव से ही मायावी होता है फिर जिसमें यह तो सीताजी के हरनेवाले रावण का छोटा भाई है इसलिये यह भरोसे का आदमी नहीं है।।६-७।। मंत्री इसके साथ है आयुध इसके पास है मौका पाते ही हमें मार डालेगा। इसलिये हे महाराज! आज्ञा दीजिये तो मैं इसे वानरों से मरवा डालूं।।८।।

ममैवंभातितेरामबुद्ध्याकिंनिश्चितंवद ।। श्रुत्वा सुग्रीववचनंरामः सस्मितमब्रवीत् ।।९।। यदीच्छामिकपिश्रेष्ठलोकान्सर्वान्सहेश्वरान् ।। निमिषार्धेनसंहन्यांसृजामिनिमिषार्धतः ।।१०।। अतोमयाभयंदत्तंशीघ्रमानयराक्षसम् ।।११।। सकृदेवप्रपन्नायतवास्मीतिचयाचते ।। अभयंसर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतंमम ।।१२।।

रामस्यवचनंश्रुत्वासुग्रीवोहृष्टमानसः ।। विभीषणमथानाय्यदर्शयामासराघवम् ।।१३।। विभीषणस्तु-साष्टाङ्गंप्रणिपत्यरघूत्तमम् ।। हर्ष गद्गदयावाचाभक्त्याचपरयान्वितः ।।१४।। रामंश्यामंविशालाक्षंप्रसन्न-मुखपङ्कजम् ।। धनुर्बाणधरंशान्तंलक्ष्मणेनसमन्वितम् ।।१५।। कृताञ्जलिपुटोभूत्वास्तोतुंसमुप-चक्रमे ।।१६।।

हे रामजी! मेरी समझ में तो ऐसा ही आता है और जो आपने बुद्धि से निश्चित् किया हो सो कहिये। सुग्रीव का वचन सुनकर रामचन्द्रजी हँसकर यह बोले कि।।९।। हे कपिवर! जो मैं इच्छा करूं तो लोकपालोंसहित सब लोकों को आधे पल में नाश कर दूं और आधे पल में फिर रच दूं।।१०।। इसलिले मैंने इसे अभय* दान दिया। तुमं इस राक्षस को शीघ्र लिवा लाओ।।११।। क्योंकि मेरा यह व्रत है कि जो प्राणी मेरे पास आकर एक बार भी यों कहता है कि मैं तुम्हारी शरण हूं तो मैं उसे सब प्राणियों से शीघ्र अभय कर देता हूं।।१२।। रघुनाथजी का वचन सुनकर सुग्रीव अपने मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और फिर विभीषण को लिवा लाकर रामजी का दर्शन कराया।।१३।। विंभीषण भी श्याम वर्ण विशाल नेत्रवाले प्रसन्न है मुखकमल जिनका, धनुष बाण धारे, शांतस्वरूप और लक्ष्मणजी को साथ लिए ऐसे श्रेष्ठ रघुश्रेष्ठ रामजी को साष्टांग प्रणाम करके हर्ष के कारण गद्गद वाणी से भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगा।।१४–१६।।

विभीषण उवाच ।। नमस्तेरामराजेन्द्रनमः सीतामनोरम ।। नमस्तेचण्डकोदण्डनमस्तेभक्तवत्सल ।।१७।। नमोऽनन्तायशान्तायरामायामिततेजसे ।। सुग्रीवमित्रायचतेरघूणांपतयेनमः ।।१८।। जगदुपत्तिनाशानां-

---

ऐसा कहा है 'न भूप्रदानं न सुवर्णदानं न गोप्रदान न तथान्नदानम् । यथा वदन्तीह महाप्रदानं सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानं' अर्थात् इस संसार में सब दानों में बड़ा दान अभयदान कहा है, वैसा न तो भूमिदान है न सुवर्णदान है न गोदान है न अन्नदान है। यहां एक दृष्टांत भी है–एक बहेलिये ने एक कबूतर की स्त्री को मारा और दूसरे दिन शिकार खेलने फिर उसी जगह गया और सब दिन घूमने पर भी कुछ नहीं पाया। रात को भूख आदि के भय से उसी कबूतरवाले वृक्ष के नीचे शीत का मारा आया और अतिदीन होकर बोला कि जो कोई इस वृक्ष पर होवे, मैं उसकी शरण हूं यह सुन कबूतर ने उसे पहिचाना और शरणागत जान प्रथम अपना घोंसला गिरा दिया फिर कहीं से जलती हुई लकड़ी लाकर उस घोंसले पर डाल दी और जब अग्नि प्रज्वलित हुई तब आप भी उसमें गिरकर भुन गया, ऐसा करने पर उस वधिक का शीत दूर हुआ और क्षुधा भी गई फिर इस शरणागत की रक्षा के प्रभाव से स्वर्ग से विमान आया। कबूतर ने कहा कि मैं अपने शरणागत को छोड़कर नहीं जाऊंगा और वह वधिक समेत स्वर्ग को चला गया।।

कारणायमहात्मने ॥ त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थायनमोनमः ॥१९॥ त्वमादिर्जगतांरामत्वमेवस्थितिकारणम् ॥ त्वमन्तेनिधनस्थानंस्वेच्छाचारत्वमेवहि ॥२०॥ चराचराणांभूतानांबहिरन्तश्चराघव ॥ व्याप्यव्यापकरूपेणभवान्भातिजगन्मयः ॥२१॥ त्वन्माययाहृतज्ञानानष्टात्मानोविचेतसः ॥ गतागतंप्रपद्यन्तेपापपुण्यवशात्सदा ॥२२॥ तावत्सत्यंजगद्भातिशुक्तिकारजतंयथा ॥ यावन्नज्ञायतेज्ञानचेतसानन्यगामिना ॥२३॥ त्वदज्ञानात्सदायुक्ताः पुत्रदारगृहादिषु ॥ रमन्तेविषयान्सर्वानन्तेदुःखप्रदान्विभो ॥२४॥ त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमोरक्षोवरुणश्चतथानिलः ॥ कुबेरश्चतथारुद्रस्त्वमेवपुरुषोत्तम ॥२५॥

विभीषण बोला–हे महाराज! हे राम! हे सीताजी के मन को प्रसन्न करनेवाले! हे प्रचंडधनुषधारी! हे भक्तवत्सल! आपको बारंबार नमस्कार है॥१७॥ हे अनंत! हे शांतस्वरूप! हे परमतेजस्वी रामचन्द्र! हे सुग्रीव के मित्र! हे रघुकुलशिरोमणि! तुम्हें बारंबार नमस्कार है॥१८॥ जगत् की उत्पत्ति पालन और नाश के कारण, महात्मा, त्रिलोकी के सुन्दर उपदेश देनेवाले और माया है। गृहिणी जिसकी ऐसे अनादि गृहस्थ रामजी को बारंबार नमस्कार है॥१९॥ हे राम! तुम्हीं जगत् के पालन और अंत में संहार करनेवाले हो और तुम ही स्वतंत्र हो, इसमें संदेह नहीं है॥२०॥ हे राघव! तुम्हीं चर अचर प्राणियों के बाहर भीतर व्याप्य व्यापक रूप से प्रतीत होते हो और तुम ही जगत् रूप हो॥२१॥ हे राम! तुम्हारी माया से जिनका ज्ञान नष्ट हो गया है अर्थात् जो पुरुष सब जगत् को तुम्हारा रूप नहीं जानते और जो अपने सत्यस्वरूप को भूल गये हैं अतएव निवृत्ति मार्ग में उनका चित्त नहीं लगता, ऐसे अज्ञानी पुरुष पुण्य पाप के सदा वशीभूत होकर संसार में आते जाते रहते हैं॥२२॥ जब तक मनुष्य एकाग्र चित्त से ज्ञानस्वरूप आपको नहीं पहिचानता है तब तक सीपी चांदी के समान यह जगत् सत्य सा दीखता है॥२३॥ और हे राम! पुत्र दान और गृहादि में प्रीति करनेवाले पुरुष सदा आपको न जानने के कारण अंत में दुःख देनेवाले ऐसे संपूर्ण विषयों में ही रमा करते हैं॥२४॥ तुम ही इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु और कुबेर हो और हे पुरुषोत्तम! तुम ही रुद्र हो॥२५॥

कवित्त–वाटनमें घाटन में वीथिन में बागनमें वृक्षनमें बेलिनमें वाटिकामें वनमें। दरन में दिवारन में देहरी दरीचनमें हीरनमें हारनमें भूषनमें तनमें। काननमें कुंजनमें गोपनमें गायनमें गोकुलमें गोधनमें दामिनिमें घन में। जहां जहां देखूं तहां कृष्ण ही दिखाई देत, सालगराम छाय रह्यो नैनमें मनमें॥१॥

त्वमणोरप्यणीयांश्च स्थूलात्स्थूलतरः प्रभो ॥ त्वंपिता सर्वलोकानां माताधातात्वमेवहि ॥२६॥ आदिमध्यान्तरहितः परिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः ॥ त्वंपाणिपादरहितश्चक्षुः श्रोत्रविबर्जितः ॥२७॥ श्रोता द्रष्टाग्रहीताचजनवस्त्वंखरान्तकः ॥कोशेभ्योव्यतिरिक्तस्त्वंनिर्गुणोनिरुपाश्रयः॥२८॥निर्विकल्पोनिर्विकारो निराकारोनिरीश्वरः ॥ षड्भावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः ॥२९॥ मायया गृह्यमाणस्त्वंमनुष्य इवभाव्यसे ॥ ज्ञात्वात्वांनिर्गुणमजंवैष्णवामोक्षगामिनः ॥३०॥ अहंत्वत्पादसद्भक्तिनिः श्रेणिंप्राप्यराघव ॥ इच्छामि ज्ञानयोगाख्यंसौधमारोढुमीश्वर ॥३१॥ नमः सीतापतेरामनमः कारुणिकोत्तम ॥ रावणारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां भवसागरात् ॥३२॥ ततः प्रसन्नः प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सलः ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते. वाञ्छितंवरदोऽस्म्यहम् ॥३३॥

हे प्रभो! तुम सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल हो और तुम ही सब लोकों के पिता माता और कर्ता धर्ता हो॥२६॥ हे राम! तुम आदि अन्त और मध्य रहित सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् वृद्धिक्षयभाव से रहित और हाथ पैर नेत्र और कान इनसे रहित हो॥२७॥ तुम सुननेवाले देखनेवाले ग्रहण करनेवाले और वेगपूर्वक जानेवाले और अहंकाररूपी खरदैत्य के नाशक हो और अन्नमय आदि पांच कोश तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकते, क्योंकि तुम निर्गुण और निराधार हो॥२८॥ तुम भेद रहित विकार रहित और आकार रहित हो और तुम्हारे ऊपर कोई ईश्वर नहीं है और तुम उत्पन्न होना बढ़ना आदि छः विकारों से रहित आदि पुराण पुरुष और प्रकृति से भिन्न हो॥२९॥ (कदाचित् कहो कि जो राम प्रकृतिभिन्न हैं तो नेत्रों से कैसे दिखाई देते हैं इस पर विभीषण कहता है कि) हे राम! माया से तुम मनुष्य की भांति दिखाई पड़ते हुए प्रतीयमान होते हो और जो वैष्णव आपको निर्गुण और अजन्मा जानते हैं वे मोक्ष पाते हैं॥३०॥ (भगवान् के श्यामसुन्दर रूप में बिना भक्ति के निर्गुणरूप ज्ञान नहीं होता, इस आशय से विभीषण कहता है कि) हे राम! मैं तो तुम्हारे चरणारविन्दों की भक्तिरूपी सीढ़ी के द्वारा ज्ञानयोगरूपी राजमहल के ऊपर चढ़ता हूं सो यह आपही की कृपा से होगा॥३१॥ हे सीतापतिराम! हे अत्यन्त कृपालु! हे अहंकाररूपी रावण के शत्रु! तुम्हें बारंबार नमस्कार है। तुम भवसागर से मेरी रक्षा करो॥३२॥ इस प्रकार विभीषण की स्तुति सुनकर भक्तवत्सल रामजी प्रसन्न होकर बोले कि तेरा कल्याण हो, तू वर मांग, तुझे मनोवांछित वरदान दूंगा॥३३॥

विभीषण उवाच ।। धन्योऽस्मिकृतकृत्योऽस्मिकृतकार्योऽस्मिराघव ।। त्वत्पादर्शनादेवविमुक्तोऽस्मिनसंशयः ।।३४।। नास्तिमत्सदृशोधन्योनास्ति मत्सदृशः शुचिः ।। नास्ति मत्सदृशोलोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात् ।।३५।। कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानंभक्तिलक्षणम् ।। त्वद्ध्यानंपरमार्थं च देहिमेरघुनन्दन ।।३६।। न याचेरामराजेन्द्रसुखंविषयसम्भवम् ।। त्वत्पादकमलेसक्ता भक्तिरेवसदास्तु मे ।।३७।। ओमित्युक्त्वापुनः प्रीतोरामः प्रोवाचराक्षसम् ।। शृणुवक्ष्यामि ते भद्र रहस्यंमम निश्चितम् ।।३८।। मद्भक्तानांप्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम् ।। हृदये सीतया नित्यंवसाम्यत्र न संशयः ।।३९।। तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः ।। मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात् ।।४०।। स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु लिखेद्यः शृणुयादपि ।। मत्प्रीतये ममाभीष्टं सारूप्यं समवाप्नुयात् ।।४१।। इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान् ।। पश्यत्विदानीमेवैषमम संदर्शने फलम् ।।४२।।

विभीषण बोला–हे राघव! मैं धन्य हूं, मैं कृतकृत्य हूं और मेरे सब काम सिद्ध हो गये और तुम्हारे दर्शन से ही मैं मुक्त हो गया, इसमें संदेह नहीं है।।३४।। हे राम! तुम्हारी मूर्ति के दर्शन से न तो मेरे समान कोई धन्य है न मेरे समान कोई पवित्र है और न मेरे समान कोई संसार में भाग्यशाली है।।३५।। हे रघुनन्दन! कर्मबन्धन से मुक्त होने के लिये भक्तिपूर्वक अपना ज्ञान और परमार्थरूपी अपना ध्यान यही वरदान दीजिये।।३६।। और हे राम! हे राजेन्द्र! मैं विषयों से उत्पन्न हुए सुख को नहीं चाहता, मुझे तो तुम्हारे चरणारविन्दों की भक्ति हो।।३७।। फिर श्रीरामजी 'ऐसा ही होगा' यह कहकर और प्रसन्न होकर विभीषण से बोले कि मैं तुझसे अपना निश्चित् किया हुआ रहस्य कहता हूं उसे सुन कि।।३८।। जो मेरे भक्त हैं और जिनका शांतचित्त है तथा जो रागद्वेषरहित हैं, ऐसे योगियों के हृदय में मैं सीतासहित वसता हूं, इसमें संदेह नहीं है।।३९।। इसलिये तू सदा शांत और संपूर्ण पापों से रहित होकर तथा मेरा ध्यान करने से इस भयंकर संसार सागर से छूट जायगा।।४०।। और हे विभीषण! जो कोई मेरे प्रीत्यर्थ इस मेरे प्रिय स्तोत्र का पाठ करेगा वा लिखकर ब्राह्मण को देगा वा सुनेगा, वह मेरे सायुज्य पद को पावेगा।।४१।। इस प्रकार कहकर भक्तों से प्रीति करनेवाले रामजी लक्ष्मणजी से बोले कि ऐसा करो कि जिसमें यह विभीषण अभी मेरे दर्शन के फल को देखे।।४२।।

लङ्कराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात्।।यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी।।४३।। यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्यसौ ।। इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम् ।।४४।। लङ्कराज्याधिपत्यार्थमभिषेकं रमापतिः ।। कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषतः ।।४५।। साधुसाध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ।। सुग्रीवोऽपिपरिष्वज्य विभीषणमथाब्रवीत् ।।४६।। विभीषण वयं सर्वे रामस्य परमात्मनः ।। किंकरास्तत्र मुख्यस्त्वं भक्त्या रामपरिग्रहात् ।। रावणस्य विनाशे त्वं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ।।४७।। विभीषण उवाच ।। अहं कियान्सहायत्वे रामस्य परमात्मनः ।। किन्तु दास्यं करिष्येहं भक्त्या शक्त्यात्मायया ।।४८।। दशग्रीवेण संदिष्टः शुको नाम महासुरः ।। संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।।४९।। त्वामाह रावणो राजा भ्रातरं राक्षसाधिपः । महाकुलप्रसूतस्त्वं राजाऽसि वनचारिणाम् ।।५०।। ममभ्रातृसमानस्त्वंतवनास्त्यर्थविप्लवः ।। अहंयदहरं भार्याराजपुत्रस्य किं तव ।।५१।।

तुम समुद्र से जल ले आओ, मैं अभी विभीषण को लंका का राजतिलक करूंगा और जब तक सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी रहे और जब तक लोक में मेरी कथा रहे तब तक यह विभीषण लंका का राज्य करे, यह कहकर भगवान् ने लक्ष्मणजी से कलसे में जल मंगवाया और उस जल से लक्ष्मीपति भगवान् ने लंका के राज्य पर मंत्रियों से और विशेषकर लक्ष्मणजी के हाथ से विभीषण को राजतिलक कराया।।४३–४५।। यह देख वानर बड़े प्रसन्न हो कहने लगे कि धन्य है बलिहारी महाराज। फिर सुग्रीव भी विभीषण को छाती से लगाकर कहने लगा कि।।४६।। हे विभीषण! हम सब परमात्मा रामचन्द्रजी के सेवक हैं उनमें तुम प्रधान हो क्योंकि रामजी ने प्रीति से तुम्हें अपनाया है। तुम्हें रावण के विनाश करने में सहायता देना उचित है।।४७।। विभीषण ने कहा कि हे सुग्रीव! रामजी स्वयं सर्व शक्तिमान् है, उनकी सहायता मैं क्या कर सकता हूं परंतु हां निष्कपट होकर जहां तक हो सकेगा यथाशक्ति भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करूंगा।।४८।। उस समय रावण का भेजा हुआ एक शुक नाम महाराक्षस आकाश में आकर सुग्रीव से यह बात बोला कि।।४९।। हे सुग्रीव! राक्षसपति रावण ने तुमको भाई समझ कर यह संदेश कहला भेजा है कि तुम बड़े कुल में उत्पन्न हुए हो और वानरों के राजा हो।।५०।।

और तुम मेरे भाई के समान हो क्योंकि बाली के भाई हो और मैंने कुछ तुम्हारा माल नहीं मारा है। और मैं जो राजपुत्र राम की भार्या हर लाया हूं इससे तुम्हें क्या मतलब है॥५१॥

किष्किन्धांयाहिहरिभिर्लंकाशक्यानदैवतैः ॥ प्राप्तुं किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥५२॥ तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमुत्प्लुत्यवानराः ॥ प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं निहन्तुं दृढमुष्टिभिः ॥५३॥ वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत् ॥ न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान्वारय प्रभो ॥५४॥ रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम् ॥ मवधिष्टेति रामस्तान्वारयामास वानरान् ॥५५॥ पुनरम्बरमासाद्य शुकः सुग्रीवमब्रवीत् ॥ ब्रूहि राजन्दशग्रीवं किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम् ॥५६॥ सुग्रीव उवाच ॥ यथा वाली ममभ्राता तथा त्वं राक्षसाधम ॥ हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः ॥५७॥ ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि ॥ ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बध्वान्वरक्षयत् ॥५८॥ शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत् ॥ यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षसः ॥५९॥ दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे ॥ ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः ॥६०॥ पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् ॥ नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥६१॥

इसलिये तुम अपने बन्दरों को साथ लेकर किष्किन्धा नगरी को लौट जाओ, यह लंका देवताओं की भी तोड़ी नहीं टूटेगी फिर भला विचार अल्प पराक्रमवाले मनुष्य और बंदरों की क्या चलाई है॥५२॥ इस प्रकार कहते हुए उस शुक नाम राक्षस को वानरों ने उछलकर तुरंत पकड़ लिया और जोर जोर के घूंसों से उसे मारने लगे॥५३॥ जब बन्दर उसे मारने लगे तब शुक ने रामजी से कहा कि हे राजेन्द्र! कहीं दूतों को नहीं मारते हैं इसलिये हे प्रभो! वानरों को मना कर दीजिये॥५४॥ उस समय शुक का विलापयुक्त वचन सुनकर रामजी ने वानरों को रोक दिया और उनसे कह दिया कि इसे मत मारो॥५५॥ जब बन्दरों ने छोड़ दिया तब शुक फिर आकाश में जाकर सुग्रीव से कहने लगा कि हे राजन्! अब मैं जाता हूं। तुम्हारी ओर से रावण से क्या कह दूं॥५६॥ सुग्रीव बोला–रावण से कह देना कि तू राक्षसों में महानीच है सो जैसे मेरा भाई वाली मारा गया है वैसे ही मैं तुझे पुत्र सेना और वाहनों सहित खेल खिलाकर

मारूंगा।।५७।। और मेरी ओर से यह भी कहना कि रामजी की भार्या को हरकर कहां जायगा? फिर रामजी की आज्ञा से शुक को पकड़कर वानरों के पहरे में बैठा दिया।।५८।। इतने में रावण ने एक शार्दूलनामक राक्षस भेजा, वह दूर से ही बड़े भारी कपिदल को देखकर लौट गया और उस राक्षस ने सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों सुना दिया।।५९।। यह सुन रावण बड़ी भारी चिंता में पड़ गया और महल में पड़ा पड़ा गहरे श्वास भरने लगा। इधर रामजी ने समुद्र को देखा और नेत्रों को लाल लाल करके लक्ष्मणजी ने कहने लगे कि।।६०।। हे लक्ष्मण! देखो यह समुद्र बड़ा दुष्ट है। मुझे अपने किनारे आया हुआ जानकर भी दुष्टात्मा मेरे दर्शन के लिये नहीं आया।।६१।।

जानाति मानुषोऽयंमे किं करिष्यति वानरैः ।। अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम् ।।६२।। पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः ।। इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः ।।६३।। तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम् ।। सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ।।६४।। पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् ।। इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ।।६५।। एवं ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना ।। चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसावृताः।।६६।। चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ।। तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसु ।।६७।। एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक् ।। दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः ।।६८।। स्वान्तस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्यसः ।। पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनंबहु ।।६९।। दण्डवत्प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम् ।। त्राहित्राहिजगन्नाथराम-त्रैलोक्यरक्षक ।।७०।।

मन में जानता होगा कि यह मनुष्य है, वानरों में मेरा कर ही क्या लेगा सो दीर्घबाहु लक्ष्मण! आज देखना, मैं समुद्र को सुखाये देता हूं।।६२।। और वानर अनायास ही पैदल उतर जायंगे। यह कहकर और क्रोध से लाल नेत्र करके रामजी ने धनुष उठाया।।६३।। और तरकसों में से प्रलयकाल की अग्नि के समान जाज्वल्यमान बाण को निकालकर धनुष पर चढाया और प्रत्यंचा को खींचकर रामचंद्रजी कहने लगे कि।।६४।। सब देव, दानव, गन्धर्व आदि प्राणी राम के बाण का पराक्रम देखें। इसी समय मैं नदियों के पति समुद्र को भस्म किये देता हूं।।६५।। जब रघुनाथजी ने ऐसा कहा तब पर्वत

और वनसहित सब पृथ्वी कांपने लगी और आकाश तथा सब दिशाओं में अंधकार ही अंधकार छा गया।।६६।। और समुद्र ऐसा खलबलाया कि अपने तट को छोड़ एक योजन आगे बढ़ गया और समुद्र में से अनेक प्रकार के मगरमच्छ आदि जलजीवों के पेट में खलबली मच गई।।६७।। यह दशा होते ही साक्षात् समुद्र दिव्य रूप धरकर और दिव्य आभूषण धारण किये और अपनी कांति से सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ।।६८।। और अपने भीतर के दिव्य रत्नों को हाथों में लिये आया और रामजी के आगे चरणों में बहुत सी भेंट धरकर।।६९।। और दंडवत् प्रणाम करके लाल हैं नेत्र जिनके ऐसे रामजी से बोला कि हे संसार के पालक! हे त्रिलोकी के रक्षक! मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो! ।।७०।।

जडोऽहं राम ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत् ।। स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम् ।।७१।। स्थूलानि पञ्चभूतानि जडान्येव स्वभावतः ।। सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न ।।७२।। तामसादहमो राम भूतानि प्रवन्तिहि ।। कारणानुगमात्तेषां जड त्वं तामसं स्वतः ।।७३।। निर्गुणस्त्वं निराकारो यदामायागुणान्प्रभो ।। लीलयाङ्गीकरोषि त्वं तदा वैराजनामवान् ।।७४।। गुणात्मनो विराजश्च सत्त्वाद्देवा बभूविरे ।। रजोगुणात्प्रजेशाद्या मन्योर्भूतपतिस्तव ।।७५।। त्वामहंमायया छन्नं लीलया मानुषाकृतिम् ।।७६।। जडबुद्धिर्जडो मूर्खः जानामि निर्गुणम् ।। दण्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो।।७७।। भूतानाममरश्रेष्ठपशूनां लगुडा यथा ।। शरणं ते व्रजामीश शरण्यं भक्तवत्सल ।। अभयं देहि मे राम लङ्कामार्गं ददामि ते।।७८।। श्रीराम उवाच ।। अमोघोऽयंमहाबाणः कस्मिन्देशेनिपात्यताम् ।। लक्ष्यंदर्शय मे शीघ्रंबाणस्या मोघपातिनः ।।७९।।

हे राम! जिस समय तुमने जगत् रचा था उस समय मुझे जड़ स्वभाव रचा सो आपने रचे हुए स्वभाव को पलटने का किसका बूता है।।७१।। और स्थूल पंचभूतों को आपने स्वभाव से ही जड़ रचा है इसलिये वे आज्ञा को उल्लंघन नहीं कर सकते हैं।।७२।। और हे राम! तामस अहंकार से आकाश आदि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं और कारण का गुण स्वभाव से ही कार्य में आया करता है सो जब तामस अहंकार हमारा कारण ही जड़ स्वभाव है तब हम पंचमहाभूत जड़ हुआ ही

चाहें।।७३।। (अब जो यह कहो कि भगवान् तो निर्गुण हैं उनसे तामस अहंकार कैसे उत्पन्न हुआ? तहां समुद्र कहता है कि) हे प्रभो! तुम निर्गुण और निर्विकार हो परंतु जब लीला से माया के गुणों को अंगीकार करते हो तब तुम्हारा नाम वैराज होता है।।७४।। और सगणरूप वैराज से सत्वगुण से देवता उत्पन्न हुए और तुम्हारे रजोगुण से प्रजेश मनु आदि और तमोगुण से रुद्र उत्पन्न हुए।।७५।। तुमने अपनी माया से लीला करने के लिये मनुष्य का सा रूप धारण किया है।।७६।। परंतु हो तुम निर्गुण ईश्वर सो एक जड़बुद्धि और दूसरे स्वभाव से जड़, ऐसा मूर्ख मैं तुम्हें कैसे पहिचान सकता हूं। हे देवराज! जैसे प्राणियों में पशुओं की लकड़ी सीधे मार्ग पर चलती है, ऐसे ही हे प्रभो! दंड मूर्खों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है, इसमें संदेह नहीं है। हे ईश! हे भक्तवत्सल! हे शरणागतरक्षक! मैं तुम्हारी शरण हूं। हे रामजी! मुझे अभयवांह दीजिये मैं लंकापुरी का मार्ग देने को तैयार हूं।।७७।।७८।। रामजी बोले–यह मेरा बाण निष्फल नहीं जा सकता है तू कहे जिस देश में छोड़ूं। इस मेरे अमोघ बाण के लिये जल्दी निशाना बता।।७९।।

रामस्यवचनंश्रुत्वा करेदृष्टामहाशरम् ।। महादधिर्महातेजाराघवंवाक्यमब्रवीत् ।।८०।। रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्यइतिश्रुतः ।। प्रदेशस्तत्रबहवः पापात्मानोदिवानिशम् ।।८१।। बाधन्तेमांरघुश्रेष्ठतत्र ते पात्यतांशरः ।। रामेणसृष्टोबाणस्तुक्षणादाभीरमण्डलम् ।।८२।। हत्वापुनः समागत्यतूणीरेपूर्ववत्स्थितः ।। ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरोविनयान्वितः ।।८३।। नलः सेतुंकरोत्वस्मिन्जले मे विश्वकर्मणः ।। सुतोधीमान्समर्थोऽस्मिन्कार्ये लब्धवरोहरिः ।।८४।। कीर्तिजानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम् ।। इत्युक्त्वाराघवंनत्वाययौसिन्धुरदृश्यताम् ।।८५।। ततोरामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांसमन्वितः ।। नलमाज्ञापयच्छीघ्रंवानरैः सेतुबन्धने ।।८६।। ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपैर्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतोनलः ।। बबन्धसेतुंशतयोजनायतं सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम् ।।८७।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ।।३।।

रघुनाथजी का वचन सुनकर और हाथ में अमोघ बाण को देखकर महातेजस्वी समुद्र रामजी से यह वचन बोला कि।।८०।। उत्तर की ओर एक प्रसिद्ध द्रुमकुल्यदेश है वहां बड़े पापी रहते हैं और मुझे रात दिन सताते हैं, हे रघुश्रेष्ठ! अपने शर को उस देश पर छोड़ दीजिये। फिर राम ने उस बाण को छोड़ दिया और वह बाण क्षणभर में भीरों के समूह

को नाश करके और फिर आकर पहले की भांति तरकस में घुस गया। फिर समुद्र ने रघुनाथजी से विनयपूर्वक कहा कि॥८१-८३॥ हे रघुनन्दन! विश्वकर्मा का पुत्र नल नाम वानर बड़ा बुद्धिमान् और होशियार है उससे मेरे जल पर पुल बनवाइये और वह इस काम का ब्रह्मा से वर भी पा चुका है॥८४॥ जिसभें पुल बंध जाने पर सब लोक संपूर्ण लोकों के पापों को दूर करनेवाली आपकी कीर्ति जाने। यह कहकर और रघुनाथजी को प्रणाम करके समुद्र अंतर्धानि हो गया॥८५॥ फिर सुग्रीव लक्ष्मणजी सहित रामजी पुल बांधने के लिये वानरोंसहित नल को तुरंत आज्ञा कर दी॥८६॥ इसके अनंतर बड़े बड़े पर्वतों के समान शरीरवाले यूथपति महापराक्रमी वानरों सहित नल ने बड़े प्रसन्न होकर पर्वत और वृक्षों से बड़ा पक्का सौ योजन चौड़ा और बड़े विस्तारवाला पुल बांधकर तैयार कर दिया॥८७॥ इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम् । संस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोकहिताय च ॥१॥ प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥२॥ सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् ॥ सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नरः ॥३॥ आनिय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्यच ॥ समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् ॥४॥ कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ॥ द्वितीयेन तथाचाह्ना योजनानि तु विंशतिः ॥५॥ तृतीयेन तथाचाह्ना योजनान्येकविंशतिः ॥ चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वविंशतिरिरिति श्रुतम् ॥६॥ पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः ॥ बबन्ध सागरे सेतु नलो वानरसत्तमः ॥७॥ तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् ॥ असंख्याताः सुवेलादि रुरुधुः प्लवगोत्तमाः॥८॥ आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गदं तथा॥ दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचलं महत् ॥९॥ दृष्ट्वा लङ्कां सुविस्तीर्णां नानाचित्रध्वजाकुलाम् ॥ चित्रप्रासादसम्बाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! पुल बांधते समय रामजी ने संसार के हित के लिये वहां रामेश्वर महादेवजी की स्थापना के लिये विधि से पूजन* भजन किया और कहा कि॥१॥ जो पुरुष रामेश्वर महादेवजी के दर्शन करके सेतुबन्ध

*राग झझौटी-भज रे मन शिवशिवशिवशंकर शुभकारी। रे० । अरधंगी संग गंग जटाजूट भारी ॥१॥ मुंडमाल कर कपाल बाघंबर धारी ॥ गोरो तन अति सुहात

को प्रणाम करेगा वह मेरी कृपा से ब्रह्महत्या आदि संपूर्ण पापों से छूट जायगा॥२॥ और जो मनुष्य सेतुबन्ध पर स्नान करके और रामेश्वर महादेवजी का दर्शन करके संकल्पपूर्वक जितेन्द्री हो काशी जायगा॥३॥ और वहां से गंगाजल लाकर रामेश्वरजी को स्नान कराकर उन गंगाजल के पात्रों को समुद्र में पधरावेगा वह निःसंदेह ब्रह्म को पावेगा॥४॥ (अब सेतु बांधने के क्रम को कहते हैं कि) उस श्रेष्ठ वानर नल ने पहिले दिन चौदह योजन दूसरे दिन बीस योजन॥५॥ तीसरे दिन इक्कीस योजन और चौथे दिन बाईस योजन॥६॥ पांचवे दिन तेईस योजन, इस प्रकार समुद्र पर सब पुल बांध यिा॥७॥ उसी के द्वारा अनगिनती वानर तुरंत सो योजन समुद्र के पार चले गये और उन बड़े बड़े वानरों ने सुवेल पर्वत को घेर लिया॥८॥ फिर रामजी हनूमानजी के कंधों पर और लक्ष्मणजी अंगद के ऊपर चढ़कर दोनों जने लंका देखने की इच्छा से उस बड़े सुवेल पर्वत के ऊपर चढ़ गये। ऊपर से क्या देखते हैं कि वह लंका बड़ी लंबी चौड़ी है। नाना भांति के रंग रंग की जिसमें ध्वजा फहरा रही हैं। भांति भांति के विचित्र विचित्र अनेक महल बन रहे हैं। सुवर्ण की दीवारों का परकोटा और बाहरी द्वार बन रहा है॥१०॥

परिखाभिः शतघ्नीभिः संक्रमैश्च विराजिताम ॥ प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरः ॥११॥ मन्त्रिभिः सहितो वीरः किरीटदशकोज्वलः ॥ नीलाद्रिशिखरकारः कालमेघसमप्रभः ॥१२॥ रत्नदण्डैः सितच्छत्रैरनेकैः परिशोभितः ॥ एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुकः ॥१३॥ वानरैस्ताडितः सम्यक् दशाननमुपागतः ॥ प्रहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक ॥१४॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत् ॥ सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रुवं ते वचनं यथा ॥ तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्तः ॥१५॥ मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तुं लोप्तुं प्रचक्रमुः ॥ ततो मां राम रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुङ्गवः ॥१६॥ बिसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोऽहं कपीश्वरैः ॥ ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद्वानरं बलम् ॥१७॥ राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ॥ नैतयोर्विद्यतेसन्धिर्देवदानवयोरिव ॥१८॥ पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ॥ सीतांवाऽस्मै प्रयच्छाशुयुद्धंवा दीयतां प्रभो ॥१९॥

भस्म भूति प्यारी, भज रे० ॥२॥ सर्पन के भूषण वहु भूषित त्रिपुरारी ॥ भूत प्रेत संग रहत सिंगी धुनि न्यारी । भज रे० ॥३॥ तीन नयन कर त्रिशूल त्रिभुवन लयकारी । नीलकंठ दयासिंधु भक्तन भयहारी । भज रे० ॥४॥ आसन कैलासवास संतन सुखकारी । पारवती प्राणनाथ अव गति न्यारी । भज रे० ॥५॥ काशी में तारक महामंत्र के उचारी । ऐसे महादेव चरन कान्हर बलिहारी । भज नरे० ॥६॥

चारों ओर खाइयां बन रही हैं नाके नाके पर तोपें चढाई हुई हैं और फाटक वन्दियों से शोभायमान हो रही है। वहां राजमहल के ऊपर एक खुलासा जगह में बड़ा वीर झमझमाते दश मुकुटों को धारण किये नील पर्वत के शिखर के समान शरीरवाला प्रलयकाल के मेघ के समान कांतिमान् ऐसा दशकंधर रावण चार मंत्रियों सहित बैठा है।।११।।१२।। और उसके ऊपर रत्नों की डंडी के अनेक श्वेत छत्र लग रहे हैं। इस बीच में रामजी ने शुक को बन्दरों की कैद से छुड़वा दिया।।१३।। छुड़वाते ही वानरों ने उसे खूब पीटा और फिर वह सीधा रावण के पास चला गया। रावण ने हँसकर उससे पूछा कि हे शुक! क्या शत्रुओं से पिटकर आया है।।१४।। रावण का यह वचन सुनकर शुक ने कहा हे महाराज! समुद के उत्तरी तट पर जाकर मैंने तुम्हारा संदेसा ज्योंही सुग्रीव को सुनाया त्यों ही वानरों ने उछलकर तुरन्त मुझे पकड़ लिया।।१५।। और घूंसों से मारना नखों से बकोटना और दांतों से फाड़ना आरंभ कर दिया।। परन्तु जब मैं चिल्लाया कि रामजी की दुहाई है तब रघुनाथजी बोले कि अरे भाई उसे छोड़ दो तब उन बड़े बड़े बन्दरों ने मेरा पीछा छोड़ा। फिर मैं उस वानरी फोज को देखकर डर के मारे यहां लौट आया ।।१६।।१७।। और राक्षसों की अतुल सेना की और वानरों की अनगिनती सेना की देव दानवों की भांति कदापि संधि नहीं होती दीखती।।१८।। और अब वानर लंकापुरी के परकोटे पर आया ही चाहते हैं सो हे स्वामी! तुरन्त दो बातों में से एक बात करो या तो रामजी को सीता दे दो और या शीघ्र युद्ध की तैयारी होने दो।।१९।।

ममाहरामस्त्वंब्रूहि रावणंमद्वचः शुकः ।। यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।।२०।। तद्दर्शययथाकामंससैन्यः सहबान्धवः ।। श्वकाले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।।२१।। राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ।। घोररोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण ।।२२।। इत्युक्त्वोपरराभाथ रामः कमललोचनः ।। एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ।।२३।। श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषणः ।। एत एव समर्थास्ते लङ्का नाशयितुं प्रभो ।।२४।। उत्पाटच भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ।। तस्य यादृग् बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च ।।२५।। वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ।। पश्य वानरसेनां तामसंख्यातां प्रपूरिताम् ।।२६।। गर्जन्तिवानरास्तत्रपश्यपर्वतसन्निभाः ।। नशक्यास्तेगणयितुंप्राधान्येनब्रवी-

मिते ॥२७॥ एषयोभिऽमुखोलंकांनलोस्तिष्ठतिवानरः ॥ यूथपानांसहस्राणांशतेनपरिवारितः ॥२८॥ सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलोनामाग्निनन्दनः ॥ एषपर्वतशृंगाभः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ॥२९॥ स्फोटयत्यभिसंरब्धोलांगूलंचपुनः पुनः ॥ युवराजोंऽगदोनामवालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ॥३०॥

और राम ने मुझसे यह कहा है कि हे शुक! तू रावण से मेरा संदेसा कह देना कि जिसके बल भरोसे तैंने मेरी सीता हरी है॥२०॥ अब उस बल सेना और बांधवों को मन आवे जितना दिखा कल सबेरे शहरपनाह और नगर के द्वारों सहित लंका को और सब राक्षसी सेना को मेरे बाणों से विध्वंस हुआ ही देखियो। और भी समझइयो कि हे रावण! मैं अपने भयंकर क्रोध को छोड़ता हूं तू अपने बल को संभाल॥२१॥२२॥ यह कहकर फिर कमलनयन रामचंद्रजी चुपके हो गये। और हे अन्नदाता! जहां ये राम लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण चारों जने एक जगह इकट्ठे हुए नहीं कि लंका को टूटी ही समझना हे प्रभो! ये बड़े बली हैं॥२३॥२४॥ और उन रामजी का जैसा मैंने रूप बल देखा है तथा उनके शस्त्र देखे हैं उससे तो यही प्रतीत होता है कि वानर क्या और लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण क्या सब बैठे ही रहें अकेले रामचंद्र ही लंका को उखाड़कर भस्म कर देंगे और सब पुरवासी राक्षसों की सफाई कर डालेंगे देखो तो सही बंदरों की सेना टीडी दल के समान चारों ओर कैसी भर रही है॥२५॥२६॥ और देखो वहां पर्वत के समान शरीरधारी वानर कैसे गर्ज रहे हैं उन सबके गिनने का तो बूता किसी में है नहीं परन्तु मैं तुम्हें मुख्य मुख्य वानरों को गिनाये देता हूं॥२७॥ यह जो वानर लंका के सामने बैठा गर्ज रहे है और जिसके चारों ओर सौ हजार वानर बैठे हैं वह सुग्रीव की सेना का अधिकारी अग्नि का पुत्र नील है। और यह पर्वत के समान शरीरधारी और जिसका कमल की केशर के समान रंग है और जो बड़े क्रोध में भरा बारम्बार पूंछ को फटकार रहा है यह बड़ा शूरवीर वाली का पुत्र युवराज अंगद है॥२८॥२९॥३०॥

येनदृष्टाजनकजारामस्यातीववल्लभा ॥ हनूमानेषविख्यातोहतोयेनतवात्मजः ॥३१॥ श्वेतोरजतसंकाशोमहाबुद्धिपराक्रमः ॥ तूर्णंसुग्रीवमागम्यपुनर्गच्छतिवानरः ॥३२॥ यस्त्वेषसिंहसंकाशः पश्यत्यतुलविक्रमः ॥ रम्भोनाममहासत्त्वोलङ्कांनाशयितुंक्षमः ॥३३॥ एषपश्यतिवैलंकांदिधक्षन्निववानरः ॥ शरभोनामराजेन्द्रको-

टियूथपनायकः ।।३४।। पनसश्चमहावीर्योमैन्दश्चद्विविदस्तथा ।। नलश्चसेतुकर्तासौविश्वकर्मसुतोबली ।।३५।। वानराणांवर्णनेवासंख्यानेवाकईश्वरः ।। शूराः सर्वेमहाकायाः सर्वेयुद्धाभिकांक्षिणः ।।३६।। शक्ताः सर्वेचूर्णयितुंलंकांरक्षोगणैः सह ।। एतेषांवलसंख्यानंप्रत्येकंवच्मितेश्रृणु ।।३७।। एषांकोटिसहस्राणिनवपञ्चच सप्तच ।। तथाशंखसहस्राणितथार्बुदशतानिच ।।३८।। सुग्रीवसचिवानांतेबलमेतत्प्रकीर्तितम्।।अन्यषांतुबलंना हंवक्तुंशक्तोऽस्मिरावण ।।३९।।

और जिसने आकर रामजी की प्यारी सीताजी को देखा था और जिसने तुम्हारे प्रसिद्ध पुत्र अक्षकुमार को मारा था वह हनुमान है।।३१।। और जो सुग्रीव के पास आकर फिर शीघ्र लौटकर जा रहा है और जिसकी चांदी के समान कांति है और जो बड़ा बुद्धिमान् और पराक्रमी है यह श्वेत नाम सुग्रीव का सेनापति है।।३२।। और देखो सिंह के समान कांतिमान् अतुल पराक्रम बड़े शरीरवाला रंभनाम वानर है और यह अकेला ही लंका के नाश करने में समर्थ है।।३३।। और हे राजेन्द्र! यह जो वानर लंका को ऐसे देख रहा है मानों भस्म ही कर डालेगा इसका नाम शरभ है यह एक करोड़ बन्दरों की फौज का नायक है।।३४।। यह देखो वे महापराक्रमी पनस मैंद और द्विविद बैठे हैं और वह जो नल बैठा है यह विश्वकर्मा का पुत्र और बड़ा बली है और इसीने समुद्र का सेतु बांधा है।।३५।। वानरों के वर्णन करने का और उनकी गिनती गिनाने का किसी का बूता नहीं है सब बड़े बड़े शूर और लंबधंडंम हैं और सब संग्राम के लिये दांत पीस रहे हैं।।३६।। और सब राक्षसगणोंसहित लंका का चूरा कर सकते हैं अब मैं तुमसे उनमें से हर एक सेनापति सेना की गिनती सुनाता हूं तुम उसे सुनो।।३७।। इक्कीस हजार करोड़ शंख और सौ अर्बुद इतना सेना का प्रमाण तो सुग्रीव के दशों मंत्री नलनील हनुमान अंगद श्वेतरंभ, शरभ, पनस, मैंद और द्विविद इनकी सेना का है और हे रावण! और को केसरी जाम्बवान् गज जो गयव, सुषेण आदि वानरी सेना के अधिपति हैं हे रावण! उनकी सेना का वर्णन करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है।।३८।।३९।।

रामोनमानुषः साक्षादादिनारायणः परः ।। सीतासाक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका ।।४०।। ताभ्यामेवसमुत्पन्नंजगत्स्थावरजंगमम् ।। तस्माद्रामश्चसीताचजगतस्तस्थुषश्च तौ ।।४१।। पितरौपृथिवीपाल

तयोर्वैरीकथंभवेत् ॥ अजानतात्वयाऽनीताजगन्मातैवजानकी ॥४२॥ क्षणनाशिनिसंसारेशरीरे क्षणभंगुरे ॥ पञ्चभूतात्मकेराजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥४३॥ मलमांसास्थिदुर्गन्धभूयिष्ठेऽहंकृतालये ॥ कैवास्थाव्यतिरिक्त स्यकायेतव जडात्मके॥४४॥यत्कृतेब्रह्महत्यादिपातकानिकृतानिते॥भोगभोक्तातुयोदेहः सदेहोऽत्रपतिष्यति ॥४५॥ पुण्यपापेसमायातो जीवनेसुखदुःखयोः कारणेदेहयोगादिनाऽऽत्मनः कुरुतोऽनिशम् ॥४६॥ यावद्देहोऽस्मिकर्तास्मीत्यात्माऽहंकुरुतेऽवशः ॥ अध्यासात्तावदेवस्याज्जन्मनाशादिसम्भवः ॥४७॥ तस्मात्त्वं त्यजदेहादावभिमानंमहामते ॥ आत्मातिनिर्मलः शुद्धोविज्ञानात्माऽचलोऽव्ययः ॥४८॥

हे रावण! राम मनुष्य नहीं है किन्तु सबसे परे आदिदेव साक्षात् नारायण हैं और सीता साक्षात् जगत् की कारण जगत्स्वरूणिणी और चित्शक्ति है और इनही दोनों से स्थावर जंगम सर्व जगत् उत्पन्न हुआ है इसलिये हे राजन्! राम और सीता ये दोनों स्थावरजंगमरूप संसार के माता पिता हैं। हे पृथ्वीनाथ! उन दोनों का वैरी होकर कोई कैसे जी सकता है और तुम जो जगत् की माता जानकी को ले आये हो सो तुमने बड़ी भूल करी है।।४०।।४१।।४२।। हे राजा! तुम चेतनस्वरूप होकर भी क्षणभर में नाश होनेवाले इस संसार में और पंचभूत और चौबीस तत्त्वों से बने, और मल मांस अस्थि और दुर्गंधि से अधिक भरे तथा अहंकार के स्थान ऐसे क्षणभंगुर जड़भूत शरीर में क्या विश्वास करते हो।।४३।।४४।। जिस देह के लिये तुमने ब्रह्महत्या आदि पातक किये हैं वह सुखों के भोगनेवाला देह यहां ही नाश हो जायगा।।४५।। और सुख दुःख के देनेवाले पाप पुण्य जीव के संग जाते हैं और वे ही पाप पुण्य देह के संयोग से सुख दुःखों को निरंतर उत्पन्न करते हैं परन्तु वे देह संबन्धरहित अद्वितीय चैतन्यस्वरूप आत्मा को सुख दुःखादि नहीं कर सकते।।४६।। जब तक आत्मा माया के वशीभूत होकर "मैं देह हूं" ऐसा अहंकार करता है तब तक अध्यास के कारण अर्थात् जड़ और चेतन में परस्पर मिथ्या एकाकार बुद्धि करने से जन्म मरण को पाता है इसलिये सुख दुःख की प्राप्ति में देह का संबन्ध मुख्य कारण नहीं हैं वरन् अध्यास ही मुख्य कारण है।।४७।। इसलिये हे चतुर रावण! तुम देह आदिम अभिमान त्याग दो क्योंकि तुम्हारा आत्मा अतिनिर्मल शुद्ध विज्ञान स्वरूप अचल और अविनाशी है।।४८।।

स्वाज्ञानवशतोबन्धंप्रतिपद्यविमुह्यति ॥ तस्मात्त्वंशुद्धभावेनज्ञात्वात्मानंसदास्मर ॥४९॥ विरतिंभजसर्वत्र-

पुत्रदारगृहादिषु।। निरयेष्वपिभोगः स्याच्छ्वसूकरतनावपि ।।५०।। देहंलब्ध्वाविवेकाढ्यंद्विजत्वंचविशेषतः ।। तत्रापिभारतेवर्षेकर्मभूमौसुदुर्लभम् ।।५१।। कोविद्वानात्मसात्कृत्वादेहंभोगानुगोभवेत् ।। अतस्त्वंब्राह्मणो भूत्वापौलस्त्यतनश्श्वसन् ।।५२।। अज्ञानीवसदाभोगाननुधावसिकिंमुधा ।। इतः परंवात्यक्त्वात्वंसर्वसङ्गं समाश्रय ।।५३।। रामेवपरात्मानंभक्तिभावेनसर्वदा ।। सीतांसमर्प्यरामायतत्पादानुचरोभव ।।५४।।४।। विमुक्तः सर्वपापेभ्योविष्णुलोकंप्रयास्यसि ।। नोचेद्गमिष्यसेऽधोधः पुनरावृत्तिवर्जितः ।। अङ्गीकुरुष्वमद्वाक्यं हितमेववदामिते ।।५५।। सत्सङ्गतिंकुरुभजस्वहरिंशरण्यंश्रीराघवंमरकतोपलकान्तिकान्तम् ।। सीतासमेत मनिशंधृतचापबाणं सुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेवितांघ्रिम् ।।५६।। इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर-संवादे युद्धकाण्डेचतुर्थः सर्गः ।।४।।

औरऐसेअपने स्वरूपको न जाननेके कारण पुरुष बंधन को पाकर मोह को प्राप्त होता है अर्थात् बारम्बार कर्म में प्रवृत्त होता है इसलिये तुम आत्मा को शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव जानकर उसका सदा स्मरण करो।।४९।। और हे रावण! पुत्र कलत्र और गृह आदि सबमें चित्त को हटा लो क्योंकि विषयभोग तो नरक में और कूकर शूकर आदि का शरीर धारण करने पर भी होता है।।५०।। और इस मनुष्य देह को पाकर तो प्राणी ज्ञान प्राप्त कर सकता है और जिसमें भी ब्राह्मण का चोला पाकर और तिस पर भी कर्मभूमि भारतवर्ष में दुर्लभ जन्म को पाकर।।५।। ऐसा कौनसा विद्वान् है जो देह को अपने आधीन मानकर देह के भोगों को दास की भांति भोगेगा। इसलिये तुम ब्राह्मण होकर और पौलस्त्य के पुत्र होकर।।५२।। अज्ञानी की भांति सदा झूंठे भोगों के पीछे क्यों दौड़ रहे हो अब आगे को तुम सब कहिये विषयभोग है उन्हें त्यागकर सदा भक्तिभाव से परमात्मा रामचंद्रजी का सेवन करो। और सीताजी को रघुनाथजी के समर्पण कर उनके चरणसेवक बनो।।५३।।५४।। ऐसा करोगे तो सब पापों से छूटकर विष्णु लोक को पाओगे और जो न करोगे तो उत्तम लोक न पाकर अधोगति पाओगे। इसलिये मेरे वचन को मानो क्योंकि मैं तुम्हारे भले के लिये कह रहा हूं।।५५।। और हे रावण! एक तो तुम सत्पुरुषों का सत्संग करो और दूसरे शरणागतवत्सल मरकतमणि की कांति के समान श्यामवर्णसीतासहित धनुष बाण धारे सुग्रीव और विभीषण जिनके चरणकमल दाब रहे हैं ऐसे भगवान् रामचन्द्रजी का सदा भजन करो।।५६।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का चतुर्थसर्ग समाप्त हुआ।।४।।

श्रीमहादेव उवाच ।। श्रुत्वाशुकमुखोद्गीतंवाक्यमज्ञाननाशनम् ।। रावणः क्रोधताम्राक्षोदहन्निवतमब्रवीत् ।।१।। अनुजीव्यसुर्दुबुद्धेगुरुवद्भाषसेकथम् ।। शासिताऽहंत्रिजगतांत्वंमांशिक्षन्नलज्जसे ।।२।।इदानीमेवहन्मि-त्वांकिंतुपूर्वकृतंतव ।। स्मरमितेनरक्षामित्वांयद्यपिवधोचितम् ।।३।। इतो गच्छविमूढत्वमेवंश्रोतुंनमेक्षमम् ।। महाप्रसादइत्युक्त्वावेपमानोगृहंययौ ।।४।। शुकोऽपिब्राह्मणः पूर्वब्रह्मिष्ठोब्रह्मवित्तमः ।। वानप्रस्थविधानेन-वनेतिष्ठन्स्वकर्मकृत्।।५।।देवानामभिवृद्ध्यर्थंविनाशायसुरद्विषाम् ।। चकारयज्ञविततिमविच्छिन्नांमहामतिः ।।६।।राक्षसानांविरोधोऽभूच्छुकोदेवहितोद्यतः।।वज्रदंष्ट्रइतिख्यातस्तत्रैकोराक्षसोमहान्।।७।।अन्तरंप्रेप्सुरा-तिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः ।। कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदंमुनेः ।।८।। तेनसम्पूजितोऽगस्त्योभोजनार्थं-निमन्त्रितः ।। गतेस्नातुंमनौकुम्भसम्भवेप्राप्यचान्तरम् ।।९।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! अब शुक से कहे हुए अज्ञान के नाश करनेवाले वचन सुनकर रावण क्रोध से लाल लाल आंखें कर उससे ऐसे बोला मानो उसे भस्म कर देगा।।१।। क्या बोला कि हे शुक! तू बड़ा दुर्बुद्धि है । मेरा ही सेवक है और मुझ ही को गुरु की भांति कैसी शिक्षा देता है। अरे तीनों लोकों को शिक्षा करनेवाला तो मैं हूं मुझे शिक्षा देते शर्म नहीं आती।।२।। अरे! मैं तुझे मार तो अभी डालता परन्तु पहिले तैंने मेरे बड़े बड़े काम किये हैं उनको स्मरण करके तुझे छोड़ देता हूं नहीं तो तू मारने के ही लायक है।।३।। और महामूर्ख तू यहां से काला मुख कर जा क्योंकि मुझसे तेरे यह वचन नहीं सुने जाते। यह सुन शुक बोला "आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया" यह कह कापता हुआ अपने घर चला गया।।४।। शुक पहिले ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, ब्रह्मविचार में तत्पर ब्राह्मण था और वानप्रस्थ आश्रम में जैसी विधि कही है उससे वन में निवास कर अपना कर्म करता था।।५।। उस बुद्धिमान् शुक ने देवताओं की वृद्धि के लिये और राक्षसों के नाश के लिये लगातार बहुत से यज्ञ किये।।६।। जब शुक ने देवताओं का हित करना आरंभ किया तब उसका राक्षसों से विरोध बढ़ा। और वज्रदंत नाम से प्रसिद्ध जो एक बड़ा भारी राक्षस था।।७।। वह उस शुक की बुराई करने के लिये छिद्र ढूंढने लगा। एक समय ऐसा हुआ कि उस शुकमुनि के आश्रम में अगस्त्यजी आये।।८।। उसने अगस्त्यजी का पूजन किया और भोजन करने के लिये न्यौता दिया। परंतु जब अगस्त्यमुनि स्नान करने गये इस बीच में वह राक्षस

अगस्त्यजी का रूप धरकर आया और शुक से बोला कि हे ब्राह्मण! जो तुझे मुझे भोजन कराना है तो मांस का भोजन कराओ।।९।।१०।।

अगस्त्यरुपधृक्सोऽपिराक्षसः शुकमब्रवीत् ।। यदिदास्यसिमेब्रह्मन्भोजनंदेहिसामिषम् ।।१०।। बहुकालंनभुक्तं मेमांसंछागाङ्गसम्भवम् ।। तथेतिकारयामासमांसभोज्यंसविस्तरम् ।।११।। उपविष्टेमुनौभोक्तुंराक्षसोऽतीव सुन्दरम् ।। शुकभार्यावपुर्धृत्वातांचान्तर्मोहयन्खलः ।।१२।। नरमांसंददौतस्मैसुपक्वंबहुविस्तरम् ।। दत्त्वैवान्तर्दधेरक्षस्ततोदृष्ट्वाचुकोपसः ।।१३।। अमेध्यंमानुषंमांसमगस्त्यः शुकमब्रवीत् ।। अभक्ष्यंमानुषंमांसं दत्तवानसिदुर्मते ।।१४।। मह्यंत्वंराक्षसो भूत्वातिष्ठत्वंमानुषाशनः ।। इतिशप्तः पुरोभीत्याप्राहागस्त्यं-मुनेत्वया ।।१५।। इदानींभाषितंमेऽद्यमांसंदेहीतिविस्तरम् ।। तथैवदत्तंमेदेवकिंमेशापंप्रदास्यसि ।।१६।। श्रुत्वाशुकस्यवचनंमुहूर्तंध्यानमास्थितः ।। ज्ञात्वारक्षः कृतंसर्वंततः प्राहशुकंसुधीः ।।१७।। तवापकारिणासर्व-राक्षसेनकृतंत्विदम् ।। अविचार्यैवमेदत्तः शापस्तेमुनिसत्तम ।।१८।।

क्योंकि बहुत काल से हमने बकरे के मांस का भोजन नहीं किया है। यह सुन शुक ने बड़े विस्तार से मांस बनाया।।११।। फिर जब अगस्त्यजी स्नान करके आये और भोजन करने बैठे उस समय उस दुष्ट राक्षस ने शुक की स्त्री को तो अपनी माया से मोहित कर दिया कि जिसमें वह न आ सके और आपने उसका बड़ा सुंदररूप धारण कर लिया।।१२।। और अगस्त्यजी के सामने बहुत सा अच्छा पका हुआ नरमांस परोसकर वह राक्षस तुरंत अंतर्धान हो गया। फिर तो अगस्त्यजी उस अपवित्र नरमांस को देखकर क्रोधित हुए और शुक से बोले कि हे दुर्बुद्धि! तुमने मुझे अभक्ष्य नरमांस भोजन के लिये दिया।।१३।।१४।। सो तू राक्षस हो जा और मनुष्य का ही मांस खाता रह। जब अगस्त्यजी ने इस प्रकार शाप दिया तब तो शुक ब्राह्मण डर के मारे अगस्त्यजी के सामने आकर बोला कि।।१५।। हे मुनिराज! आपने ही तो आज मुझसे कहा कि मुझे बहुत सा नरमांस भोजन करा दो। हे महाराज! मैंने आपकी आज्ञानुसार परोस दिया, अब तुम मुझे क्यों शाप देते हो।।१६।। शुक का वचन सुनकर ब्रह्मज्ञानी अगस्त्यजी ने दो घड़ी तक ध्यान किया और फिर वह सब काम राक्षस का किया जानकर शुक से बोले कि।।१७।। यह सब काम तेरे वैरी राक्षस ने किया है और हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने बिना विचारे तुझे शाप दे दिया है।।१८।।

तथापिमेवचोऽमोघमेवभविष्यति ॥ राक्षसं वपुररास्ताय रावणस्य सहायकृत् ॥१९॥ तिष्ठतावद्यदारामो दशाननवधायहि ॥ आगमिष्यतिलङ्कायाः समीपंवानरैः सह ॥२०॥ प्रेषितो रावणेनत्वं चारोभूक्त्वा रघूत्तमम् ॥ दृष्ट्वाशापाद्विनिर्मुक्तोबोधयित्वांचरावणम् ॥२१॥ तत्त्वज्ञानंतदोमुक्तः परंपदमवाप्स्यसि ॥ इत्युक्तोऽगस्त्य मुनिनाशुकोब्राह्मणसत्तमः ॥२२॥ बभूवराक्षसः सद्योरावणंप्राप्यसंस्थितः ॥ इदानींचार रूपेणदृष्ट्वारामंसहानुजम् ॥२३॥ रावणंतत्त्वविज्ञानंबोधयित्वापुनर्द्रुतम् ॥ पूर्ववद्ब्राह्मणोभूत्वास्थितो वैखानसैः सह ॥२४॥ ततः समागमद् बृद्धोमाल्यवान् राक्षसोमहान् ॥ बुद्धिमान्नीति निपुणोराज्ञोमातुः प्रियः पिता ॥२५॥ प्राहतंराक्षसंवीरं प्रशान्तेनान्तरात्मना ॥ श्रृणुराजन्वचोमेऽद्यश्रुत्वाकुरुयथेप्सितम् ॥२६॥ यदाप्रविष्यानगरीं जानकीरामवल्लभा ॥ तदादिपुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानिदशानन ॥२७॥ घोराणिनाशहेतूनितानिमेवदतः श्रृणु ॥ खरस्तनितनिर्घोषामेघाअतिभयङ्कराः ॥२८॥ शोणितेनाभिवर्षन्ति लंकामुष्णेन सर्वदा ॥ रुदन्तिदेवलिंगानि स्विद्यन्तिप्रचलन्ति च ॥२९॥

परंतु मेरा वचन निष्फल नहीं हो सकता सो तू तब तक राक्षस का शरीर धारण कर रावण की सहायता करता रह जब रामचंद्रजी रावण को मारने के लिये बंदरों को साथ लेकर लंका के पास आवेंगे तब रावण तुझे अपना दूत बनाकर रघुनाथजी के पास भेजेगा और फिर तू उनका दर्शन करके शाप से छूट जायगा और फिर रावण को तत्त्वज्ञान का उपदेश करके मुक्त हो परमपद पावेगा, जब अगस्त्य मुनि ने श्रेष्ठ ब्राह्मण से यह कहा तब वह तत्काल ही राक्षस होकर और रावण के पास जाकर रहने लगा और इस समय दूतरूप से लक्ष्मणजी सहित रामजी का दर्शन करके॥१९–२३॥ और रावण को तत्त्वज्ञान का उपदेश करके शीघ्र ही पहिले के समान ब्राह्मण हो गया और वानप्रस्थ ब्राह्मणों सहित रहने लगा॥२४॥ इसके अनंतर बड़ा वृद्ध माल्यवान् राक्षस आया वह बड़ा बुद्धिमान् और नीति निपुण था और माता का पिता होने के कारण वह रावण को बहुत प्यारा था॥२५॥ सो वह माल्यवान् बड़े शांतचित्त से वीर राक्षस रावण से बोला कि हे राजा! तुम आज मेरी एक बात सुनो और सुनकर जैसी इच्छा हो तैसा करना॥२६॥ हे रावण! जब* से

* कवित्त–जा दिन तें आय पांय धरचो है असोक बाग, लागी होन छीन नित्त सेना यातुधानकी । अक्षय कुमार मर्यो, नगर तमाम जर्यो गय गिरी, गर्भ सुन हांक

लंका में रामजी की प्यारी जानकीजी आई हैं उस दिन से लंका में नाश के दरसानेवाले बड़े बड़े भयानक शकुन दिखाई देते हैं, उनको मैं कहता हूं सो सुनो कि कठोर गर्जते हुए और बिजली जिनमें गिर रही, ऐसे भयंकर मेघ सदा लंका में गरम लोहू की वर्षा करते हैं और देवताओं की प्रतिमा रोती हैं, पसीनों में नहा जाती है और चलायमान हो जाती हैं॥२७-२९॥

कालिका पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिता ॥ खरागोषुप्रजायन्तेमूषकानकुलैः सह ॥३०॥ मार्जारेणतुयुध्यन्तिपन्नगागरुडेनतु॥ करालोविकटोमुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः॥३१॥कालोगृहाणिसर्वेषांकाले‌कालेत्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानि दृश्यन्तेनिमित्तान्युद्भवन्तिच ॥३२॥ अतः कुलस्यरक्षार्थंशान्तिंकुरुदशानन ॥ सीतांसत्कृत्यसधनांरामायाशुप्रयच्छभोः ॥३३॥ रामंनारायणंविद्धि विद्वेषंत्यजराघवे ॥ यत्पादपोतमाश्रित्यज्ञानिनोभवसागरम् ॥३४॥ तरन्तिभूक्तिपूतान्सातास्ततोरामोनमानुषः ॥ भजस्वभक्तिभावेन रामंसर्वहृहालयम् ॥३५॥ यद्यपित्वंदुराचारोभक्त्यापूतोभविष्यसि ॥ मद्वाक्यंकुरुराजेन्द्रकुलकौशलहेतवे ॥३६॥ तत्तुमाल्यबतो वाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥३७॥ मानवंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थंमन्यसेकेन हीनंपित्रामुनिप्रियम् ॥३८॥ रामेणप्रेषितोनूनंभाषसेत्वमनर्गलम् ॥ गच्छवृद्धोऽसिबन्धुस्त्वंसोढंसर्वंत्वयोदितम् ॥३९॥ इतोमत्कर्णपदवींदहत्येतद्वचस्तव ॥ इत्युक्त्वासर्वसचिवैः सहितः प्रस्थितस्तदा ॥४०॥

और कालीदेवी श्वेत दांतों को निकाल निकाल कर राक्षसों के सामने खड़ी होकर हँसती है (मानो चितौती देती है कि मैं तुम्हारा भक्षण करूंगी) और गौओं से गधे उत्पन्न होते हैं और मूसे और नौले विलाव के साथ सर्प गरुड के साथ युद्ध करते हैं और एक बडा भयंकरं विकटरूप मुडमुंडा और काले पीछे रंग का पुरुष का वेश धारण करके काल सब राक्षसों के घर घर समय समय पर आकर दिखाई देता है सो हे रावण! ये बुरे शकुन और इसी तरह के और भी अपशकुन होते

हनूमान की। अंगद ने प्रण कियो कांहूतें, न पांव टरचौ, तदपि छांडौ बालि बात अभिमान की। जानी बन्धु जानकी निसानी नास जानकी, या जानकी न लाए गहि लाए पास जानकी॥२॥

रहते हैं।।३०-३२।। इसलिये कुल की रक्षा के लिये हे रावण! शांति करिये और उस शांति का यह उपाय है कि सत्कारपूर्वक सीता को बहुत सा धन देकर उन्हें रामजी के अर्पण कर दो।।३३।। और हे रावण! तुम रघुनाथजी को नारायण जानो और राम में द्वेषभाव को छोड़ दो और जिन रामजी के चरणकमलरूपी नौका का सहारा लेकर और उनकी भक्ति से अपने अंतः करण को पवित्र कर ज्ञानीजन भवसागर से पार हो जाते हैं वह राम मनुष्य नहीं हैं सो तुम उन घट २ निवासी रामचन्द्रजी का भक्तिभाव से भजन करो।।३४।।३५।। यद्यपि तुम दुराचारी हो तथापि भक्ति से पवित्र हो जाओगे। इसलिये हे राजेन्द्र! जो तुम अपने कुनबे की खैर चाहो तो मेरा कहा मानो।।३६।। माल्यवान् के कहे हुए इस हितकारी वाक्य को सुनकर रावण नहीं सह सका क्योंकि वह दुष्ट तो काल के वश में हो रहा है।।३७।। सो यह बोला कि हे माल्यवान्! पिता ने जिसे वन में निकाल दिया है और जिसने आकर वानरों का सहारा लिया है और जिसकी जो मुनिजनों से प्रीति है ऐसे दीन मनुष्य और अकेले राम को तू कैसे समर्थ जानता है।।३८।। हो न हो तुझे राम ने सिखाकर भेजा है इसीलिये तू पागलों की भांति बेरोक बक रहा है। जा एक तो बूढा है और नाते में नाना लगता है इसलिये तेरे कहे को मैंने सह लिया है।।३९।। अब आगे तेरा कहना मेरे कानों को भस्म करे देता है। यह कहकर और सब मंत्रियों को साथ लेकर उठके चल दिया।।४०।।

प्रासादाग्रेसमासीनः पश्यन्वानरसैनिकान् ।। युद्धायायो जयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ।।४१।। रामोऽपिधनुरादायलक्ष्मणेनसमाहृतम् ।। दृष्ट्वारावणमासीनंकोपेनकलुषीकृतः ।।४२।। किरीटिनंसमासीनंमन्त्रिभिः परिवेष्टितम् ।। शशांकार्धनिभेनैवबाणेनैकेनराघवः ।।४३।। श्वेतच्छत्रसहस्राणिकिरीटदशकंतथा ।। चिच्छेदनिमिषार्धेन तदद्भुतमिवाभवत् ।।४४।। लज्जितोरावणस्तूर्णंविवेशभवनंस्वकम् ।।आहूयराक्षसान् सर्वान्सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान्खलः ।।४५।। वानरैः सहयुद्धायनोदयामाससत्वरः ।। ततोभेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः।।४६।।महिषोष्ट्रखरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः ।। खड्गशूलधनुः पाशयष्टितोमरशक्तिभिः ।।४७।। लक्षिताः सर्वतोलंकांप्रतिद्वारमुपाययुः ।। तत्पूर्वमेवरामेणनोदितावानरर्षभाः ।।४८।। उद्यम्यगिरिशृङ्गाणिशिखराणिमहान्तिच ।। तरूंश्चोत्पाटचविविधान्युद्धायहरियूथपाः ।।४९।। प्रेक्षमाणारावणस्यतान्यनी

कानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलङ्कामारुरुहुस्तदा ॥५०॥

इधर राम जो लक्ष्मणजी के लाये हुए धनुष को लेकर और रावण को बैठा देख बड़े क्रोधित हुए।॥४२॥ और रामजी ने अपने एक अर्द्धचन्द्राकार बाण से मंत्रियों के बीच में किरीट पैहिरे बैठे हुए रावण के हजारों श्वेत छत्रों को और दश मुकुटों को आधे क्षण में काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। इससे सब राक्षसों को बड़ा अचरज हुआ कि बैठे ठाले यह क्या हो गया॥४३॥४४॥ यह देख दुष्ट रावण बड़ा लज्जित हुआ और तुरंत अपने महल में घुस गया और वहां प्रहस्त आदि सब राक्षसों को बुलाकर॥४५॥ वानरों के साथ शीघ्र युद्ध करने की आज्ञा दे दी। सो वे राक्षस भेरी, मृदंग, ढोल, नगाड़े, नफीरी आदि बाजे बजाते हुए॥४६॥ और भैंसे, ऊंट, गधे, सिंह और चीते इन पर लाठी तोमर और शक्ति आदि अस्त्र शस्त्रों को हाथ में ले लेकर लंका के चारों ओर सब दरवाजोंपर आकर डट गये और इधर रघुनाथजी तो इसके पहिले ही सब रीछ और बंदरों को आज्ञा दे चुके थे॥४७॥४८॥ सेनापति वानर सो वे पर्वतों के छोटे छोटे और बड़े बड़े भारी शिखरों को ले लेकर और अनेक प्रकार के वृक्षों को उखाड़ उखाड़ कर हाथों में लिये युद्ध के लिये रावण की सेना की राह देखने लगे और अपनी अपनी सेना की अलग अलग टोली बांध रामजी का कार्य करने के लिये लंका के ऊपर चढ़ गये॥४९॥५०॥

तेद्रुमैः पर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवङ्गमाः ॥ ततः सहस्त्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः ॥५१॥ कोटीशतयुताश्चान्ये रुरुधुर्नगरंभृशम् ॥ आप्लवन्तः प्लवन्तश्चगर्जन्तश्चप्लवङ्गमाः ॥५२॥ रामोजयत्यतिबलोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणानुपालितः ॥५३॥ इत्येवंघोषयन्तश्चसमंयुयुधिरेऽरिभिः ॥ हनूमानङ्गदश्चैवकुमुदोनीलएवच ॥५४॥ नलश्चशरभश्चैवमैन्दोद्विविदएवच ॥ जाम्बवान्दधिवक्त्रश्चकेसरीतारएवच ॥५५॥ अन्ये च बलिनः सर्वेयूथपाश्चप्लवङ्गमाः ॥ द्वाराण्युत्प्लुत्यलङ्कायाः सर्वतोरुरुधुर्भृशम् ॥ तदावृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्चवानराः ॥५६॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दन्तैश्चवेगिताः ॥ राक्षसाश्चतदाभीमाद्वारेभ्यः सर्वतोरुषा ॥५७॥ निर्गत्यभिन्दिपालैश्चखड्गैः शूलैः परश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरानीकंमहाकायामहाबलाः ॥५८॥ राक्षसांश्चतथाजघ्नुर्वानराजितकाशिनः ॥ तदाबभूवसमरोमांसशोणितकर्दमः ॥५९॥

और वे वानर वृक्ष पर्वत और घूंसों से राक्षसों को मारने के लिये दांत पीसने लगे।। किसी द्वार को वानरों के हजारों झुंडों ने किसी द्वार को सेनापतियों सहित वानरों के करोड़ों झुंडों ने।।५१।। और कहीं सैंकड़ों करोड़ और दश हजार कोटि वानरों ने चारों ओर से लंकापुरी को खूब घेर लिया। कोई उछल रहे हैं कोई कूद रहे हैं कोई गर्ज रहे हैं।।५२।। और यह कह रहे हैं कि महापराक्रमी रघुनाथजी की जय होय। महाबली लक्ष्मणजी की जय होय। रामरक्षित राजा सुग्रीव की जय होय।।५३।। इस प्रकार जय जय शब्द करते हुए शत्रुओं के साथ युद्ध में भिड़ गये। अब हनुमान, अंगद, कुमुद, नील।।५४।। नल, शरभ, मद द्विविद, जाम्बवान्, दधिवक्र केसरी और तार ।।५५।। और दूसरे बड़े बड़े सब सेनापति वानरों ने लंका के द्वारों पर कूदकर उन्हें चारों ओर से खूब घेर लिया। उस समय बड़े शरीरधारी बन्दर वृक्षों से और पर्वतों से ।।५६।। उन राक्षसों को मारने लगे कोई उन्हें नखों से फाड़ने और दांतों से काटने लगे।। उस काल बड़े बड़े भयंकर राक्षस भी बड़े वेग से क्रोध भर और लंका के सब द्वारों से निकल निकल कर भिंदिपाल, तलवार त्रिशूल, और फरसों से वानरों की सेना का सरफ्ते के समान नाश करने लगे। और इधर बड़े शरीरधारी सूरवीर वानर भी राक्षसों का विध्वंस करने लगे उस समय रणभूमि में मांस की और लोय की लोथें बिछ गई नदियां बह निकली।।५७-५९।।

रक्षसांवानराणांचसम्बभूवाद्भुतोपमः ।। तेहयैश्चगजैश्चैवरथैः काञ्चनसन्निभैः ।।६०।। रक्षोव्याघ्रायुयुधिरेनादयन्तोदिशोदश ।। राक्षसाश्चकपीन्द्राश्चपरस्परजयैषिणः ।।६१।। राक्षसान्वानराजघ्नुवानरांश्चैवराक्षसाः ।। रामेणविष्णुनादृष्टाहरयोदिविजांशजाः ।।६२।। बभूबुर्बलिनोहृष्टास्तदापीतामृताइव ।। सीताभिमर्शपापेन रावणेनाभिपालितान्।।६३।।हतश्रीकान्हतबलान्राक्षसान्जघ्नुरोजसा ।। चतुर्थांशावशेषेणनिहतंराक्षसंबलम् ।।६४।। स्वसैन्यंनिहतंदृष्ट्वामेघनादोऽथदुष्टधीः ।। ब्रह्मदत्तवरः श्रीमानन्तर्धानंगतोऽसुरः ।।६५।। सर्वास्त्रकुशलोव्योम्निब्रह्मास्त्रेणसमन्ततः।।नानाविधानिशस्त्राणिवानरानकिमर्दयन्।।६६।।ववर्षशरजालानि तद्भुतमिवाभवत् ।। रामोऽपिमानयन्ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदांवरः ।।६७।। क्षणंतूष्णीमुवासाथददर्शपतितंबलम् ।। वानराणांरघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसंनिभः ।।६८।।

और राक्षसों का वानरों का यह अनोखा घमासान समर युद्ध हुआ कि न कभी हुआ और न आगे होगा फिर बड़े बड़े राक्षस हाथी घोड़े और सुवर्ण के समान प्रकाशमान रथ इन पर चढ़ कर युद्ध करने लगे और राक्षस और बड़े बड़े वानर दोनों परस्पर जय की इच्छा से दशों दिशाओं में कोलाहल मचाने लगे।।६०।।६१।। वानर राक्षसों पर और राक्षस वानरों पर धड़ाधड़ मारपीट करने लगे। उस समय देवताओं के अंशों से उत्पन्न हुए वानरों को ज्यों ही साक्षात् विष्णुरूप रामचन्द्रजी ने देखा त्योंही वे ऐसे प्रसन्न और बली हो गये मानो अमृत पीकर अमर हो गये हों सीताजी को स्पर्श करने के कारण महापापी रावण से रक्षित ऐसे कांतिहीन और बलहीन राक्षसों को बड़े जोर जोर से मारने लगे। इस प्रकार राक्षसों की चौथाई सेना बाकी रही और सबको वानरों ने नाश कर डाली।।६२-६४।। अब तो जिसने ब्रह्माजी से वरदान पाया था ऐसा कांतिमान् दुष्ट राक्षस मेघानाद अपनी सेना को मरी हुई देखकर अंतर्धान हो गया।।६५।। और संपूर्ण अस्त्रविद्या में चतुर वह मेघनाद ने आकाश में जाकर ब्रह्मास्त्र से चारों ओर वानरी सेना का नाक में दम करता हुआ नाना प्रकार के शस्त्र और बाणों की वर्षा करने लगा कि जिसे देख बड़ा आश्चर्य हुआ। और इधर रामचन्द्रजी भी शस्त्रविद्या में निपुण थे परन्तु ब्रह्मास्त्र का मान रखने के लिये क्षण भर तो चुपके रहे फिर बन्दरों की सेना को गिरी हुई देखकर रघुनाथजी क्रोध के मारे प्रलयकाल की प्रचंड अग्नि के समान हो गये।।६६-६८।।

चापमानयसौमित्रेब्रह्मास्त्रेणासुरंक्षणात्।।भस्मीकरोमिमेपश्यबलमद्यरघूत्तम।।६९।। मेघनादोऽपितच्छ्रुत्वा-रामवाक्यमतन्द्रितः ।। तूर्णंजगामनगरंमाययामायिकोऽसुरः ।।७०।। पतितंवानरानीकंदृष्ट्वारामोऽति-दुःखितः ।। उवाचमारुतिंशीघ्रंगत्वाक्षीरमहोदधिम् ।।७१।। तत्रद्रोणगिरिर्नामदिव्यौषधिसमुद्भवः ।। तमानयद्रुतंगत्वासञ्जीवयमहामते ।।७२।। वानरौघान्महासत्त्वान्कीर्तिस्तेसुस्थिराभवेत् ।। आज्ञाप्रमाणमि-त्युक्त्वाजगामानिलनन्दनः ।।७३।। आनीयचगिरिंसर्वान्वानरान्वानरर्षभः ।। जीवयित्वापुनस्तत्रस्थापयित्वा ययौद्रुतम् ।।७४।। पूर्ववद्भैरवंनादंवानराणांबलौघतः ।। श्रुत्वाविस्मयमापन्नोरावणोवाक्यमब्रवीत् ।।७५।। राघवोमेमहान्शत्रुः प्राप्तोदेवविनिर्मितः ।। हन्तुंतंसमरेशीघ्रंगच्छन्तुममयूथपाः ।।७६।। मन्त्रिणोबान्धवाः शूरायेचमत्प्रियकाङ्क्षिणः ।। सर्वेगच्छन्तुयुद्धायत्वरितंमम शासनात् ।।७७।। येनगच्छन्तियुद्धायभीरवः

प्राणविप्लवात् ॥ तान्हनिष्याम्यहंसर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ॥७८॥

और लक्ष्मणजी से कहने लगे कि हे रघुनन्दन! मेरा धनुष लाओ मैं ब्रह्मास्त्र से एक क्षणमात्र में असुरों को भस्म किये देता हूं और आज तुम मेरे बल को देखना॥६९॥ इधर महामायावी राक्षस मेघनाद भी रामजी का वाक्य सुनकर सावधान हो अपनी माया से लंकापुरी को तुरंत चला गया॥७०॥ रामजी वानरी सेना को बिछा हुआ देख बड़े दुःखी हुए और हनुमानजी से बोले कि तुम शीघ्र समुद्र को जाओ वहां एक द्रोण नाम पर्वत है कि जिस पर दिव्य औषधियाँ उत्पन्न होती हैं हे चतुर! उसे जाकर तुरंत ले आओ और इन सूरवीर वानरों की सेना को जीवदान दो कि जिसमें तुम्हारी कीर्ति सदा के लिये अचल हो जाय हनुमानजी ने कहा कि "जो महाराज की आज्ञा" ऐसा कहकर वह विदा हुए॥७१-७३॥ और द्रोणपर्वत को लाकर हनुमानजी ने सब वानरों को जीवदान दिया और फिर तुरन्त उसे जहां का तहां स्थापित करके लौट आये॥७४॥ अब तो वन्दरों की सेना में से फिर पहिले का भयंकर किलकिला शब्द निकलने लगा उसे सुन रावण को बड़ा अचरज हुआ और कहने लगा कि ॥७५॥ रामसरीखे बड़े भारी पराक्रमी शत्रु से मेरा पाला पड़ा है और इसे देवताओं ने रचा है सो मेरे सेनापति उसे रणखेत में मारने के लिये शीघ्र जायँ॥७६॥ मंत्री बांधव और शूर जो जो मेरे भले के साथी हैं वे सब मेरी आज्ञा से तुरन्त युद्ध करने के लिये जायँ॥७७॥ और जो काहिल प्राण खोने के भय से नहीं जायेंगे उन अपनी आज्ञा को उल्लंघन करनेवाले सब राक्षसों को मैं यमलोक पहुँचाऊंगा॥७८॥

तत् श्रुत्वाभयसंत्रस्तानिर्जग्मूरणकोविदा ॥ अतिकायः प्रहस्तश्चमहानादमहोदरौ ॥७९॥ देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ अपरेबलिनः सर्वेययुर्युद्धायवानरैः ॥८०॥ एतेचान्येचबहवः शूराः शतसहस्रशः ॥ प्रविश्यवानरसैन्यंममन्थुर्बलदर्पिताः ॥८१॥ भुशुण्डैर्भिन्दिपालैश्चबाणः खड्गैः परश्वधैः ॥ अन्यैश्चविविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥८२॥ प्राणैर्विमोचयामासुः सर्वराक्षसयूथपान् ॥८३॥ रामेणनिहताः केचित्सुग्रीवेणतथापरे ॥ हनूमताचाङ्गदेनलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ यूथपैर्वानराणांतेनिहताः सर्वराक्षसाः ॥८४॥ रामतेजः समाविश्यवानराबलिनोऽभवन् ॥ रामशक्तिविहीनानामेवंशक्तिः कुतोभवेत् ॥८५॥ सर्वेश्वरः सर्वमयोविधा-

तामायामनुष्यत्वविडम्बनेन ॥ सदाचिदानन्दमयोऽपिरामोयुद्धादिलीलांवितनोति-मायाम् ॥८६॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वसंवादेयुद्धकाण्डेपञ्चमः सर्गः ॥५॥

यह सुनकर डर के मारे संग्राम झूझनेवाले अतिकाय प्रहस्त महानाद देवशत्रु निकुंभ देवान्तक नरांतक आदि सब राक्षस बड़े बड़े बली वानरों के साथ युद्ध करने के लिये निकले॥७९॥८०॥ और ये ही क्या और भी कितने ही सैंकड़ों हजारो शूरवीर की जो मन से शूरवीर होने का दम भरते थे उन्होंने बंदरों की सेना में घुसकर उसको दही के समान विलो डाला॥८१॥ और वे सब राक्षस भुशुंडी भिंदपाल बाण फरसे और खड्ग तथा भांति भांति के अनेक अस्त्रों से वानरों की सेना के दांत खट्टे करने लगे॥८२॥ इधर वानरों ने भी नखों से बकोटकर दांतों से घूसों से मारकर और पर्वत के शिखर और वृक्षों से उनका शिर फोड़ उनका ऐसा भुरता किया कि सब राक्षस और उनके सेनापतियों के प्राण पखेरू यमलोक को उड़ गये॥८३॥ कितनों को तो रामजी ने यमलोक को पहुँचाया और बहुतों को सुग्रीव ने मारा और फिर हनुमान अंगद महापराक्रमी लक्ष्मण और वानरों के सेनापतियों ने बचे खुचे सब राक्षसों को मार कर सफाई कर दी॥८४॥ सो यह ठीक नहीं हुआ क्योंकि वानर तो रामजी का तेज पाकर बली हो गये थे और राक्षसों में रघुनाथजी की शक्ति थी नहीं इसलिये उनका बूता कहां था कि बन्दरों के दांत खट्टे करते॥८५॥ श्रीरघुनाथजी तो सबके ईश्वर सर्वस्वरूप सबके रचनेवाले और सब काल में चिदानंदमय है परन्तु माया से मनुष्य रूप धारण किया है इसलिये उन्होंने युद्ध आदि लीला कर अपनी माया का विस्तार दिखाया है॥८६॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का पंचम सर्ग समाप्त हुआ॥५॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ श्रुत्वायुद्धेबलंनष्टमतिकायमुखंमहत् ॥ रावणो दुःखसन्तप्तः क्रोधेनमहतावृतः ॥१॥ निधायेचन्द्रजितंलङ्कारक्षणार्थंमहाद्युतिः ॥ स्वयंजगामयुद्धायरामेणसहराक्षसः ॥२॥ दिव्यं स्यन्दनमारुह्य-सर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् ॥ रामसेवाभिदुद्रावराक्षसेन्द्रोमहाबलः ॥३॥ वानरान्बहुशोहत्वाबाणैराशीविषोपमैः पातयामास सुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥४॥ गदापाणिंमहासत्वंतत्रदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ उत्ससर्जमहाशक्तिं मयदत्तांविभीषणे ॥५॥ तामाप तन्तीमालोक्यविभीषणविघातिनीम्॥ दत्ताभयोऽयंरामेणवधार्होनायमासुरः

॥६॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणोभीमंचापमादायवीर्यवान् ॥ विभीषणस्यपुरतः स्थिततोऽकम्पइवाचलः ॥७॥ साशक्तिर्लक्ष्मणतनुंविवेशामोघशक्तितः ॥ यावन्त्यः शक्तयोलोकेमायायाः सम्भवन्ति हि ॥८॥ तासामाधारभूतस्यलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ मायाशक्त्याभवेत्किंवाशेषांशस्यहरेस्तनोः ॥९॥ तथापिमानुषंभावमापन्नस्तदनुव्रतः॥ मूर्च्छितः पतितोभूमौतमादातुंदशाननः॥१०॥ हस्तैस्तोलयितुंशक्तोनबभूवातिविस्मितः ॥ सर्वस्यजगतः सारंविराजं परमेश्वरम् ॥११॥ कथंलोकाश्रयंविष्णुंतोलयेल्लघुराक्षसः॥ग्रहीतुकामंसौमित्रिंरावणंवीक्ष्यमारुतिः ॥१२॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! रावण युद्ध में अतिकाय आदि राक्षसों की बड़ी भारी सेना को मरा सुनकर बड़ा दुःखी हुआ और ऐसे क्रोध में भरा कि जिसका ठिकाना नहीं॥१॥ और लंका की देखभाल अपने पुत्र इन्द्रजीत को सौंपकर तेजस्वी राक्षस रावण रामजी के साथ युद्ध करने के लिये स्वयं गया॥२॥ वह महाबली राक्षसराज सब अस्त्र शस्त्र सजाकर और दिव्य रथ पर बैठ रामजी के ऊपर धावा करने के लिये दौड़ा॥३॥ और विष के बुझे बाणों से अनगिनती वानरों को मारकर उसने सुग्रीव आदि सेना के नायकों के भी खूब दांत खट्टे किये॥४॥ फिर जब रावण ने महाबली विभीषण को हाथ में गदा लिये देखा तब उसने मयदानव की दी हुई महाशक्ति को विभीषण पर छोड़ा॥५॥ अब विभीषण को नाश करने के लिये आती हुई उस अमोघ शक्ति को देखकर लक्ष्मणजी ने विचारा कि रामजी ने विभीषण को अभयदान दे रखा है सो असुर विभीषण का तो बाल बांका न होना चाहिये॥६॥ यह विचारकर लक्ष्मणजी अपना भयंकर धनुष लेकर विभीषण के सामने अचल पर्वत के समान खड़े हो गये॥७॥ फिर तो वह रावण की शक्ति अमोध होने से लक्ष्मण के शरीर में प्रवेश कर गई। लोक में जितनी शक्तियां हैं सब माया की रची हुई हैं ॥८॥ उन सब शक्तियों के आधार और शेषभगवान् का अवतार महात्मा लक्ष्मणजी का इस महाशक्ति से क्या हो सकता है॥९॥ परन्तु मनुष्यरूप धारण किया है इसलिये मनुष्य के समान ही आचरण करनेवाले लक्ष्मणजी मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े उस समय रावण अपनी बीस भुजाओं से उन्हें बहुतेरा उठाता रहा परन्तु जब न उठा सका तब बड़ा खिसियाना हुआ। क्योंकि सब जगत् के सारभूत विराटरूप और जगदाधार परमेश्वर विष्णु भगवान् को एक छोटा सा राक्षस कैसे उठा सकता था। इधर हनुमानजी ने जो रावण को लक्ष्मणजी को उठाता हुआ देखा॥१०-१२॥

आजघानोरसिक्रुद्धो वज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणजानुभ्यामपतद्भुवि ॥१३॥ आस्यैश्चनेत्रश्रवणैरुद्वमन्रुधिरंबहु ॥ विघूर्णमाननयनोरथोपस्थ उपाविशत् ॥१४॥ अथलक्ष्मणमादायहनूमान्रावणार्दितम् ॥ आनयद्रामसामीप्यंबाहुभ्यांपरिगृह्यतम् ॥१५॥ हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्याचपरमेश्वरः ॥ लघुत्त्वमगमद्देवोगुरूणांगुरुरप्यजः॥१६॥ साशक्तिरपितंत्यक्त्वाज्ञात्वानारायणांशजम्॥ रावणस्यरथंप्रागाद्रावणोऽपिशनैस्ततः ॥१७॥ सञ्ज्ञामवाप्यजग्राहबाणासनमथोरुषा ॥ राममेवाभिदुद्रावदृष्ट्वारामोऽपितंक्रुधा ॥१८॥ आरुह्यजगतांनाथोहनूमन्तं महाबलम् ॥ रथस्थंरावणंदृष्ट्वाअभिदुद्रावराघवः ॥१९॥ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ रामो गम्भीरयावाचाराक्षसेन्द्रमुवाचह ॥२०॥ राक्षसाधमतिष्ठाद्यक्वगमिष्यसिमेपुरः ॥ कृत्वापराधमेवंमेसर्वत्रसमदर्शिनः॥२१॥ येनबाणेननिहताराक्षसास्तेजनालये ॥ तेनैवत्वांहनिष्यामितिष्ठाद्यममगोचरे ॥२२॥

सो क्रोध से उस रावण की छाती में वज्र के समान एक ऐसा घूंसा जमाया कि उस घूंसे की चोट से रावण घुटनों के बल भैराकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१३॥ और मुख, नेत्र और कानों से रक्त की नदी बहाता नेत्रों को चलाता हुआ ज्यों त्यों कर अपने रथ पर जा बैठा॥१४॥ फिर हनुमानजी, रावण की शक्ति से पीड़ित लक्ष्मणजी को दोनों भुजाओं से उठाकर उन्हें रघुनाथजी के पास ले आये॥१५॥ यद्यपि अजन्मा, देवरूप, परमेश्वर लक्ष्मणजी त्रिलोकी के भार से भी भारी थे परन्तु हनुमानजी के सुहृद्भाव और भक्ति के कारण वे हलके हो गये॥१६॥ और लक्ष्मणजी के जो वह शक्ति लगी थी सो भी उनको नारायण के अंश से उत्पन्न हुआ जानकर रावण के रथ में चली गई फिर रावण ने भी धीरे धीरे॥१७॥ होश में आकर धनुष बाण उठाया और क्रोध कर रामकी ओर दौड़ा उसे देख जगत् के स्वामी रामजी भी क्रोधित हुए और उन रघुनाथजी ने महाबली हनुमानजी के ऊपर सवार होकर रथ में बैठे हुए रावण को देख उस पर धावा किया॥१८॥१९॥ और अपने धनुष की प्रत्यंचा का बिजली के समान कानों को फोड़ने वाला शब्द करके वह रामचन्द्रजी गंभीर वाणी से रावण से कहने लगे कि ॥२०॥ अरे नीच राक्षस खड़ा तो रह आज तू मेरे सामने से कहां जायगा यों तो मैं समदर्शी हूं परन्तु मेरा अपराध करके तू जहां जायगा वहां सर्वत्र मैं मौजूद हूं॥२१॥ पंचवटी में जिस

बाणसे मैंने तेरे खर दूषणादिका नाश किया है उसी से आज मैं तेरे प्राण लूंगा मेरे सामने खड़ा रह॥२२॥

श्रीरामस्यवचः श्रुत्वारावणोमारुतात्मजम् ॥ वहन्तंराघवंसंख्येशरैस्तीक्ष्णै रताडयत् ॥२३॥ हतस्यापि-शरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोः स्वतेजसा ॥ व्यवर्धतपुनस्तेजोननर्दचमहाकपिः ॥२४॥ ततोदृष्ट्वाहनूमन्तंसव्रणं रघुसत्तमः ॥ क्रोधमाहारयामासकालरुद्रइवापरः ॥२५॥ साश्वंरथंध्वजंसूतंशस्त्रौघंधनुरञ्जसा ॥ छत्रंपताकांतरसाचिच्छेदशितसायकैः ॥२६॥ ततोमहाशरेणाशुरावणंरघुसत्तमः ॥ विव्याधवज्रकल्पेन-पाकारिरिवपर्वतम् ॥२७॥ रामबाणहतोवीरश्चालचमुमोह च ॥ हस्तान्निपतितश्चापस्तंसमीक्ष्यरघूत्तमः ॥२८॥ अर्द्धचन्द्रेणचिच्छेदतत्किरीटंरविप्रभम् ॥ अनुजानामिगच्छत्वमिदानींबाणपीडितः ॥२९॥ प्रविश्यलङ्कामाश्वास्यश्वः पश्यसिबलंमम ॥ रामबाणेनसंविद्धोहतदर्पोऽथरावणः ॥३०॥ महत्यालज्जया-युक्तोलङ्कां प्राविशदातुरः ॥ रामोऽपिलक्ष्मणंदृष्ट्वामूर्च्छितंपतितंभुवि ॥३१॥ मानुषत्वमुपाश्रित्यलीलया-नुशुशोचह ॥ ततः प्राहहनूमन्तंवत्स जीवयलक्ष्मणम्॥३२॥ महौषधीः समानीयपूर्ववद्वानरानपि ॥ तथेतिराघवेणोक्तोजगामाशुमहाकपिः ॥३३॥

श्रीरामजी का वचन सुनकर रावण ने संग्राम में रघुनाथजी को अपने ऊपर बैठाये हनुमानजी के तीखे तीखे बाण मारे॥२३॥ रावण के पैने बाणों से घायल होकर भी हनुमानजी का तेज असाधारण रुद्र तेज से और भी अधिक बढ़ा और वह पवनपुत्र खूब गर्जे॥२४॥ फिर रघुनाथजी ने वायुपुत्र को घायल देखकर प्रलयकाल के रुद्र के समान बड़े क्रोधित हुए॥२५॥ और फिर उन्होंने एक साथ पैने बाणों से रावण के घोड़े रथ ध्वजा सूत शस्त्रसमूह छत्र और पताका इन सबको शीघ्र काट अलग फेंका॥२६॥ फिर रामजी ने रावण के ऊपर तुरन्त एक वज्र के समान ऐसा भारी बाण मारा कि जैसा इन्द्र पर्वत के ऊपर वज्र मारता हो॥२७॥ फिर रामजी के बाण से घायल हुआ रावण वीर होने पर चक्कर खाकर मूर्छित हो गया और उसके हाथ से धनुष गिर पड़ा। इतने में रघुनंदन ने उसकी यह दशा देखकर॥२८॥ अर्धचन्द्राकार बाण से रावण का सूर्य के समान झलकता हुआ किरीट काटकर गिरा दिया और कहा कि मैं जानता हूं तू मेरे बाण से पीड़ित हो रहा है सो इस समय तू चला जा॥२९॥ और लंका में जाकर जब तू रात भर आराम कर ले अब

कल आकर फिर मेरे बल को देखिये इस प्रकार रामजी के बाण से घायल होकर और अपने घमंड को गवांकर रावण।।३०।। बड़ी भारी शर्म के मारे तुरन्त लंका को लौट गया इधर रामजी भी लक्ष्मणजी को मूर्च्छित हो भूमि पर गिरा हुआ देखकर।।३१।। मनुष्य की भांति लीला से शोक करने लगे और पवनपुत्र से बोले कि प्यारे! द्रोणगिरी पर से दिव्य दिव्य औषधियां लाकर लक्ष्मणजी को ऐसे जिलाओ कि जैसे पहिले तुमने वानरों को जिलाया था। जब रघुनाथजी ने यह कहा तब हनुमान बहुत अच्छा कहकर शीघ्र चले गये।।३२।।३३।।

हनूमान्वायुवेगेनक्षणात्तीर्त्वामहोदधिम् ।। एतस्मिन्नन्तरेचारारावणायन्यवेदयन् ।।३४।। रामेणप्रेषितोदेव-हनूमान्क्षीरसागरम् ।। गतोनेतुंलक्ष्मणस्यजीवनार्थंमहौषधीः ।।३५।। श्रुत्वातच्चारवचनंराजाचिन्ता-परोऽभवत् ।। जगामरात्रावेकाकीकालनेमिगृहंक्षणात् ।।३६।। गृहागतंसमालोक्यरावणंविस्मयान्वितः ।। कालनेमिरुवाचेदंप्राञ्जलिर्भयविह्वलः ।। अर्घ्यादिकंततः कृत्वारांवणस्याग्रतः स्थितः ।।३७।। किंतेकरोमि-राजेन्द्रकिमागमनकारणम् ।। कालनेमिमुवाचेदंरावणोदुःखपीडितः ।।३८।। ममापिकालवशतः कष्टमेतदु-पस्थितम् ।। मया शक्त्याहतोवीरोलक्ष्मणः पतितोभुवि ।।३९।। तंजीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान्गतः ।। यथातस्यभवेद्विघ्नंतथाकुरुमहामते ।।४०।। मायया मुनिवेषेणमोहयस्वमहाकपिम्।।कालात्ययोयथाभूयात्तथा कृत्वैहिमन्दिरे ।।४१।। रावणस्यवचः श्रुत्वाकालनेमिरुवाचतम् ।। रावणेशवचोमेऽद्यश्रृणुधारयतत्त्वतः

और वायुपुत्र वायु के समान वेग से क्षणभर में समुद्र फांदकर आगे बढ़ते ही थे कि इतने ही बीच में दूतों ने जाकर रावण से निवेदन किया कि ।।३४।। हे महाराज! रामचन्द्र ने हनुमान को क्षीरसागर भेजा है वह लक्ष्मणजी के जिलाने के संजीवनि बूटी लेने गये हैं।।३५।। दूतों के इस वचन को सुनकर राजा रावण चिंता में डूब गया और क्षणभर में रात्रि को अकेला कालनेमि के घर गया।।३६।। कालनेमि रावण को घर आया देख बड़ा अचरज में आया और अर्घ्य आदि से उसका पूजन सत्कार करके रावण के आगे खड़ा हो गया और भय से व्याकुल कालनेमि हाथ जोड़कर यह बोला कि ।।३७।। हे राजेन्द्र! आप आज इस समय कैसे आये? और आपकी क्या आज्ञा है जिसे मैं करूं? यह सुन रावण दुःखी हो कालनेमि से यह बोला कि।।३८।। काल के वश से भी एक बड़े चक्कर में आ गया हूं कि मैंने शक्ति से जो लक्ष्मणजी को

मारा था सो वह धरती पर पड़े हैं॥३९॥ उनके जिलाने के लिये हनुमान संजीविनी बूटी लेने गये हैं सो तुम बड़े चतुर हो जिस प्रकार यह काम बिगड़े तैसा करो॥४०॥ माया से मुनि का वेश धारण कर हनुमान पर मोह का जाल गेरो और ऐसा करो कि जिसमें समय टल जाय अर्थात् रात बीतकर दिन निकल आवे और यह करके फिर तुम अपने घर में आ घुसो॥४१॥ रावण का वचन सुनकर कालनेमि उससे बोला कि हे स्वामी! मेरी सच्ची सच्ची बात सुनो और उसे गांठ में बांधो॥४२॥

प्रियंतेकरवाण्येवनप्राणान्धारयाम्यहम् ॥ मारीचस्ययथारण्येपुराभून्मृगरूपिणः ॥४३॥ तथैवमेनसन्देहोभविष्यतिदशानन ॥ हताः पुत्राश्चपौत्राश्चबांन्धवाराक्षसाश्चते ॥४४॥ घातयित्वाऽसुरकुलंजीवितेनापिकिं तव ॥ राज्येनवासीतयावाकिंदेहेनजडात्मना ॥४५॥ सीतांप्रयच्छरामायराज्यंदेहिबिभीषणे ॥ वनंयाहिमहाबाहोरम्यंमुनिगणाश्रयम् ॥४६॥ स्नात्वाप्रातः शुभजलेकृत्वासन्ध्यादिकाः क्रियाः ॥ ततएकान्तमाश्रित्यसुखासनपरिग्रहः ॥४७॥ विसृज्यसर्वतः सङ्गमितरान्विषयान्बहिः ॥ बहिः प्रवृत्ताक्षगणंशनैः प्रत्यक्प्रवाहय ॥४८॥ प्रकृतेर्भिन्नमात्मानंविचारयसदानघ ॥ चराचरंजगत्कृत्स्नं देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥४९॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंदृश्यतेश्रूयतेचयत् ॥ सैषाप्रकृतिरित्युक्तासैवमायेतिकीर्तिता ॥५०॥ सर्गस्थितिविनाशानां जगद्वृक्षस्यकारणम् ॥ लोहितश्वेतकृष्णादिप्रजाः सृजतिसर्वदा ॥५१॥ कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिंसातृष्णादिकन्यकाः ॥ मोहयत्यनिशं देवमात्मानंस्वैर्गुणैर्विभुम् ॥५२॥

हे रावणजी! मैं तो जिसमें तुम्हारा भला हो करने को तैयार हूं परन्तु मेरे प्राण नहीं बचेंगे। पहिले वन में मृग का रूप धरने से जो दशा मारीच की हुई थी वही दंशा मेरी होगी हे रावण! इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है तुम्हारे बेटे पोते भाई बन्धु सब राक्षस तो मर गये॥४३॥४४॥ अब सब राक्षस कुल का नाश कराकर तुम जीकर क्या करोगे। और राज्य से सीता से और इस जड़ देह से तुम्हें अब क्या काम बाकी रहा है॥४५॥ मेरी समझ में तो सीता को तो राम को अर्पण कर दो और विभीषण को राज्य सौंपकर हे दीर्घबाहो! जहां मुनिगण निवास करते हैं उस रमणीक वन में चले जाओ॥४६॥ और प्रातः काल सुन्दर निर्मल जल में स्नान करके संध्या आदि क्रिया करो फिर एकांत में आनन्द से आसन

लगाकर बैठ जाओ।।४७।। और सब जगह से चित्त हटाकर और बाहर के विषय जो वासनारूप से तुम्हारे अंतःकरण में घुस रहे हैं उनको बाहर निकालकर और बाहर के विषयों में जो इंद्रिया प्रवृत्त हो रही है उन्हें धीरे धीरे आत्मा में लगाओ।।४८।। और हे निष्पाप! सदा प्रकृति से भिन्न परमात्मा का चिंतन करो। और सब चर अचर जगत् और देह, बुद्धि, इन्द्रिय आदि, और ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ देखने में और सुनने में आता है उसी को प्रकृति कहते हैं और उसी का नाम माया है।।४९।।५०।। और यह माया ही संसाररूपी वृक्ष की सृष्टि स्थिति और संहार की कारण है। यही सदा रक्त श्वेत और कृष्ण इस भेद से तीन प्रकार की प्रजा रचती है।।५१।। और हे रावण! यही माया काम क्रोध आदि रूपी अपने पुत्रों को और हिंसा तृष्णा आदि कन्याओं को जानता है और यही सदा अपने गुणों से सर्वत्र व्यापक प्रकाशस्वरूप आत्मा पर अपना मोहजाल फैलाती है कि जिससे प्राणी आत्मा को भूल मेरा मेरा करता है।।५२।।

कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान्स्वगुणानात्मनीश्वरे ।। आरोप्यस्ववशकृत्वातेनक्रीडतिसर्वदा ।।५३।। शुद्धोऽप्यात्मायायुक्तः पश्यतीवसदाबहिः ।। विस्मृत्यचस्वमात्मानं मायागुणविमोहितः ।।५४।। यदासद्गुरुणायुक्तोवोध्यते बोधरूपिणा ।। निवृत्तदृष्टिरात्मानं पश्यत्येवसदास्फुटम् ।।५५।। जीवन्मुक्तः सदादेही मुच्यते प्राकृतैर्गुणैः ।। त्वमप्येवंसदात्मानंविचार्य नियतेन्द्रियः ।।५६।। प्रकृतेरन्यमात्मानं ज्ञात्वामुक्तोभविष्यसि ।। ध्यातुंयद्यसमर्थोऽसि सगुणंदेवमाश्रय ।।५७।। हृत्पद्मकर्णिकेस्वर्णपीठे मणिगणन्विते ।। मृदुश्लक्ष्णतरेतत्रजानक्या सहसंस्थितम् ।।५८।। वीरासनं विशालाक्षं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ।। किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ।।५९।। नूपुरैः कटकैर्भान्तंतथैववनमालया ।। लक्ष्मणेनधनुर्द्वन्द्वकरेण परिसेवितम् ।।६०।। एवंध्यात्वासदात्मानं रामंसर्वहृदिस्थितम् ।। भक्त्यापरमयायुक्तोमुच्यतेनात्रसंशयः ।।६१।। शृणुवैचरितंतस्यभक्तैर्नित्यमनन्यधीः ।। एवंचेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ।। क्षणादेवविनश्यन्ति यथाऽग्नेस्तूलराशयः ।।६२।। भजस्वरामंपरिपूर्णमेकंविहायवैरंनिजभक्तियुक्तः ।। हृदा सदाभावित भावरूपमनामरूपंपुरुषंपुराणम् ।।६३।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे षष्ठः सर्गः ।।६।।

यह प्रकृति ही कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि अपने गुणों को ईश्वर आत्मा में आरोपण करके और फिर उसे अपने आधीन करके उसके साथ सदा क्रीड़ा करती है।।५३।। यह आत्मा शुद्ध है परंतु जब माया से मुक्त होता है तब माया के गुणों से विमोहित हो अपने स्वरूप को भूल सदा बाहर के विषयों को देखता हुआ प्रतीत होता है।।५४।। परंतु जब प्राणी ज्ञानी सद्गुरु का सत्संग करता है और उससे ज्ञान प्राप्त करता है तब विषयों से दृष्टि को हटाकर सदा अपने निर्मल आत्मस्वरूप को देखता है।।५५।। और प्राणी उस गुरु की कृपा से आत्मध्यान करता हुआ सदा जीवन्मुक्त हो जैसे प्रकृति गुणों से छूट जाता है वैसे ही तुम भी जितेन्द्री होकर आत्मा का विचार करो और आत्मा को प्रकृति से भिन्न जानो। तुम भी जीवन्मुक्त हो जाओगे और जो ध्यान करने में असमर्थ हो तो सगुण देव रामजी का सेवन करो।।५६।।५७।। हृदयरूपी कमल की कली में मणिजटित कोमल और चिकने सुवर्णके सिंहासन पर जानकीजी सहित वीरासन लगाये बैठे हुए, विशाल नेत्र, बिजली के पुंज के समान पीतांबर धारण किये, शिर पर मुकुट, गले में मोतियों के हार, वनमाला और कौस्तुभ मणियों को पहिन, भुजाओं में बाजूबंद धारे, पैरों में बजने झांझन और कड़ों से शोभायमान दोनों हाथों में धनुष बाण लिये और लक्ष्मणजी जिनकी सेवा में खड़े हैं। सबके हृदय में वसनेवाले ऐसे परमात्मा रामजी का सदा परम भक्ति से ध्यान कर प्राणी मुक्त हो जाता है इसमें संदेह नहीं है।।५८-६१।। और हे रावण! एकाग्र चित्त होकर उनके भक्तों से नित्य उनका चरित्र सुनो। जो ऐसा करोगे तो पूर्वजन्म में किये हुए बड़े बड़े पाप भी क्षणभर में नष्ट हो जायंगे कि जैसे अग्नि से रुई के ढेर भस्म हो जाते हैं।।६२।। हे रावण! वैर भाव को छोड़कर सर्वव्यापी अद्वितीय साक्षात् ब्रह्मस्वरूप नामरूपसहित और पुराण पुरुष ऐसे रामचन्द्रजी का अपनी भक्ति से सदा हृदय में ध्यान करो।।६३।। इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का छठा सर्ग समाप्त हुआ।।६।।

श्रीमहादेव उवाच ।। कालनेमिवचः श्रुत्वारावणोऽमृतसन्निभम् ।। जज्वालक्रोधताम्राक्षः सर्पिरर्द्भिरिवाग्निमत् ।।१।। निहन्मित्वांदुरात्मानंमच्छासनपराङ्मुखम् ।। परैः किञ्चिद्गृहीत्वात्वंभाषसेरामकिङ्कर: ।।२।। कालनेमिरुवाचेदंरावणंदेवकिंक्रुद्धा ।। नरोचतेमेवचनंयदिगत्वाकरोमितत् ।।३।। इत्युक्त्वाप्रययौशीघ्रं कालनेमिर्महासुरः ।। नोदितोरावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात् ।।४।। सगत्वाहिमवत्पार्श्वंतपोवनमकल्पयत् ।।

तत्रशिष्यैः परिवृतोमुनिवेषधरः खलः ।।५।। गच्छतोमार्गमासाद्यवायुसूनोर्महात्मनः ।। ततोगत्वाददर्शाथ- हनूमानाश्रमं शुभम् ।।६।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! कालनेमि का अमृतसमान वचन सुनकर रावण ऐसा जल भुन गया कि जैसे अग्नि से तपाया हुआ घृत पानी छिड़कने से भभकता है और उसने क्रोध के मारे लाल आंख कर ली और बोला कि।।१।। तू बड़ा भारी दुष्ट है कि मेरी आज्ञा को टालता है, इसलिये मैं तुझे अभी मारता हूं। तूने शत्रुओं से कुछ ले लिया है कि जिसने राम को नौकर बन मुझसे ऐसी ऐसी बातें करता है।।२।। यह सुन कालनेमि रावण से बोला कि हे राजा! इसमें क्रोध करने की क्या बात है जो मेरा कहा आपको अच्छा नहीं लगता तो मुझे क्या, मैं अभी जाकर विघ्न डाल देता हूं।।३।। यह कहकर महाअसुर कालनेमि रावण के कहने से हनूमान के कार्य में विघ्न करने के लिये शीघ्र विदा हुआ।।४।। उसने जाकर हिमालय के पास एक तपोवन रचा और वह दुष्ट मुनि का वेष धरकर शिष्योंसहित महात्मा हनुमानजी के जाने के मार्ग में आकर बैठ गया। फिर हनुमानजी ने जाकर उस सुन्दर आश्रम को देखा।।५।।६।।

चिन्तयामासमनसा श्रीमान्पवनतनन्दनः ।। पुरानदृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम् ।।७।। मार्गोविभ्रंशितोवामे- भ्रमोवा चित्तसम्भवः ।। यद्वाविश्याश्रमपदं दृष्ट्वामुनिमशेषतः ।।८।। पीत्वाजलंतोयामिद्रोणाचलमनुत्तमम् ।। इत्युक्त्वाप्रविवेशाथसर्वतो योजनायतम् ।।९।। आश्रमंकदलीशालखर्जूरपनसादिभिः ।। समावृत्तंपक्वफलै- र्नम्रशाखैश्चपादपैः ।।१०।। वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मल लक्षणम् ।। तस्मिन्महाश्रमेरम्ये कालनेमिः सराक्षसः ।।११।। इन्द्रयोगंसमास्थायचकारशिवपूजनम् ।। हनूमानभिवाद्याहगौरवेण महासुरम् ।।१२।। भगवन्रामदूतोऽहंहनूमान्नामनामतः ।। रामकार्येणमहताक्षराब्धिंगन्तुमुद्यतः ।।१३।। तृषामांबाधते ब्रह्मन्नुदकं कुत्रविद्यते ।। यथेच्छंपातुमिच्छामिकथ्यतांमे मुनीश्वर ।।१४।। तच्छ्रुत्वामारुतेर्वाक्यंकालनेमि- स्तमब्रवीत् ।। कमण्डलुगतंतोयंममत्वं पातुमर्हसि ।।१५।। भुङ्क्ष्वचेमानि पक्वानिफलानि तदनन्तरम् ।। निवसस्वसुखेनात्र निद्रामेहित्वरास्तुमा ।।१६।। भूतंभव्यंभविष्यं च जानामितपसास्वयम् ।। उत्थितोलक्ष्मणः सर्वेवानरारामवीक्षिताः ।।१७।।

श्रीमान् वायुनन्दन मन में विचारने लगे कि पहिले जब मैं आया था तब तो मैंने यह सुन्दर मुनियों का तपोवन नहीं देखा था।।७।। सो क्या मैं मार्ग भूल गया अथवा मेरे चित्त में भ्रम हो गया। अच्छा जो हो सही इस आश्रम में जाकर और सब मुनियों का दर्शन करके।।८।। और जल पीकर मैं द्रोणाचल को जाऊंगा। यह कहकर हनुमानजी आश्रम में घुसे तो क्या देखते हैं उस आश्रम का चारों ओर से एक योजन विस्तार है। वहां केले, साल, खजूर और पनस आदि घने वृक्ष लगे हुए हैं। पेड़ों पर पके पके फल लटक रहे हैं कि जिससे वृक्षों की शाखा नीचे को लटक रही हैं।।९।।१०।। वैरभाव छोड़ सब जीव विचरते हैं और वह आश्रम बड़ा शुद्ध और निर्मल हो रहा है। उस ऐसे रमणीक आश्रम में वह कालनेमि राक्षस कपटयोग साधकर शिव का पूजन करने लगा। हनूमानजी ने उस महासुर को बड़े सन्मान से प्रणाम करके कहा कि।।११।।१२।। हे भगवन्! मैं रामजी का दूत हूं और हनुमान् मेरा नाम है और रामजी के एक बड़े कार्य के लिये क्षीरसमुद्र को जा रहा हूं।।१३।। हे ब्रह्मन्! मुझे प्यास लग रही है, मैं पेट भर पानी पिया चाहता हूं सो हे मुनीश्वरजी! मुझे बताइये पानी कहां है।।१४।। हनुमान के इस वाक्य को सुनकर कालनेमि उनसे बोला कि मेरे कमंडलु में जल भर रहा है उसे तुम पी लो।।१५।। और इन पके फलों को खाकर यहां सुखपूर्वक रहो और लेट लगाओ, जाने की जल्दी मत करो।।१६।। मैं अपने तप के प्रभाव से भूत भविष्य और वर्तमान सब जानता हूं। रामजी को देखने से ही सब वानर और लक्ष्मणजी उठ खड़े हुए हैं।।१७।।

तच्छ्रुत्वाहनुमानाहकमण्डलुजलेनमे ।। नशाम्यत्यधिका तृष्णाततोदर्शयमेजलम् ।।१८।। तथेत्याज्ञापयामास बटुंमायाविकल्पितम् ।। बटोदर्शयविस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ।।१९।। निमील्यचाक्षिणीं तोयंपीत्वा-गच्छममान्तिकम् ।। उपदेक्ष्यामितेमन्त्रंयेनद्रक्ष्यसिचौषधीः ।।२०।। तथेतिदर्शितं शीघ्रंबटुनासलिलाशयम् ।। प्रविश्यहनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः ।।२१।।ततश्चागत्यमकरीमहामायामहाकपिम्।। अग्रसत्तंमहावेगान्मा-रुतिंघोररूपिणी।।२२।। ततोददर्शहनुमान्ग्रसन्तींमकरींरुषा दारयामास हस्ताभ्यांवदनं साममारह ।।२३।। ततोऽन्तरिक्षेददृशेदिव्यरूपधराङ्गना ।। धान्य मालीतिविख्याता हनूमन्तमथाब्रवीत् ।।२४।। त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्तास्मिकपीश्वर ।। शप्ताहंमुनिनापूर्वसप्सराकारणान्तरे ।।२५।।आश्रमेयस्तुतेदृष्टः कालनेमिर्महा-

सुरः ।। रावणप्रहितोमार्गे विघ्नंकर्तुंतवानघ ।।२६।। मुनिवेषधरोनासौमुनिर्विप्रविहिंसकः ।। जहिदुष्टंगच्छ शीघ्रद्रोणाचलमनुत्तमम् ।।२७।। गच्छाम्यहंब्रह्मलोकेत्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा ।। इत्युक्त्वासाययौस्वर्गं- हनूमानप्यथाश्रमम् ।।२८।। आगतंतंसमालोक्य कालनेमिरभाषत ।। किंविलम्बेन महतातववानरसत्तम

यह सुनकर हनुमानजी बोले कि मुझे ऐसी प्यास लग रही है वह कमंडलुके जलसे नहीं बुझेगी इसलिये मुझे बहुत सा जल बताओ।।१८।। यह सुनकर कालनेमि ने कहा 'बहुत अच्छा' और उस माया के बने शिष्य से कहा कि हे बटु! हनुमान को बहुत लंबा चौड़ा सरोवर दिखा दो।।१९।। और हे हनुमान! तुम दोनों आंखें मींचकर और पानी पीकर मेरे पास आना, मैं तुम्हें एक मंत्र का उपदेश करूंगा जिसके प्रभाव से तुम औषधियों को देख लोगे।।२०।। यह सुनकर हनुमानजी ने कहा अच्छा ऐसा ही करूंगा। इतने में शिष्य ने जाकर शीघ्र हनुमान् को सरोवर दिखा दिया और वायुपुत्र ने दोनों आंख मींचकर जलपान किया।।२१।। इतने ही में क्या हुआ कि एक मायाविनी मकरी बड़ा भयंकर रूप धरकर महापराक्रमी हनुमानजी को बड़े वेग से निगलने को आई।।२२।। फिर पवनपूत ने क्रोध से उस ग्रसती हुई मकरी को देखा और दोनों हाथों से उसका मुँह चीरकर उसे मार डाला।।२३।। फिर वह आकाश में अप्सरा का दिव्य रूप धारण किये दीख पड़ी और वह वायुपुत्र से कहने लगी कि मेरा नाम धान्यमाली है।।२४।। और हे कपीश्वर! मैं तुम्हारी कृपा से शाप से छूट गई। पूर्वजन्म में मैं अप्सरा थी। किसी कारण एक मुनि के शाप से मैं मकरी हो गई थी।।२५।। तुमने जो इस आश्रम में मुनि को देखा है, वह बड़ा भारी असुर कालनेमि है और हे पुण्यात्मा! रावण ने उसे तुम्हारे मार्ग में विघ्न करने के लिये भेजा है।।२६।। यह यथार्थ में मुनिं नहीं है यह तो मुनि का वेश धरे ब्राह्मणों को मारनेवाला राक्षस है। तुम इस दुष्ट को मारो और शीघ्र अति उत्तम द्रोणाचल को जाओ।।२७।।

गच्छाम्यहब्रह्मलोकेत्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा।। इत्युक्त्वासाययौस्वर्गं हनूमानप्यथाश्रमम् ।।२८।। आगतंतं- समालोक्यकालनेमिरभाषत ।। किंविलम्बेनमहतातववानरसत्तम ।।२९।। गृहाणमत्तो मन्त्रांस्त्वं देहिमेगुरुदक्षिणाम्।।इत्युक्तोहनुमान्मुष्टिंदृबद्ध्वाहराक्षसम्।।३०।। गृहाणदक्षिणामेतामित्युक्त्वानिजघानतम् ।। विसृज्यमुनिवेषंसकालनेमिर्महासुरः ।।३१।। युयधेवायुपुत्रेणनानामायाविधानतः ।। महामायिकदूतोऽसौ-

हनूमान्मायिनांरिपुः ॥३२॥ जघानमुष्टिनाशीर्षिर्णे भग्नमूर्धाममारसः ॥ ततः क्षीरनिधिंगत्वाहृष्ट्वाद्रोणं महागिरिम् ॥३३॥ अदृष्ट्वाचौषधीस्तत्रगिरिमुत्पाटचसत्वरः ॥ गृहीत्वावायुवेगेन गत्वारामस्य सन्निधिम् ॥३४॥ उवाचहनुमान् राममनीतोऽयंमहागिरिः ॥ यद्युक्तंकुरुदेवेश विलम्बोनात्रयुज्यते ॥३५॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरामः संतुष्टमानसः ॥ गृहीत्वाचौषधीः शीघ्रंसुषेणेनमहामतिः ॥३६॥

मैं तो तुम्हारे स्पर्श से पापरहित होकर ब्रह्मलोक को जाती हूं। यह कहकर वह तो स्वर्गलोक को चली गई और हनुमानजी लौटकर आश्रम में आये॥२८॥ उनको आया हुआ देखकर कालनेमि बोला कि हे हनुमान! तुम्हें वहां इतनी देर क्यों लगी॥२९॥ अब तुम मुझसे मंत्र ग्रहण करो और मुझे गुरुदक्षिणा दो। जब राक्षस ने यह कहा तब हनुमानजी ने राक्षस से कहा कि यह ले दक्षिणा और खूब जोर से उसके एक घूंसा तानकर मारा। मारते ही वह महाराक्षस कालनेमि मुनि का वेश छोड़॥३०॥३१॥ हनुमानजी से युद्ध करने लगा और उसने भांति भांति की माया फैलाई परंतु हनुमानजी भी तो मायावियों के शत्रु और रामजी के दूत हैं कि महामाया जिनके आधीन रहती है॥३२॥ उन्होंने उसके शिर में एक ऐसा घूंसा जमाया कि उसका सिर चकनाचूर हो गया और वह यमलोक को चल दिया। फिर क्षीरसमुद्र पर जाकर द्रोणनाम महान् पर्वत को देखा।३३॥ और औषधी बिना देखे ही तुरंत पर्वत के पर्वत को उखाड़कर और उसे हाथ पर रख वायु के वेग के समान चलकर रामजी के पास आ गये॥३४॥ और हनुमानजी रामजी से बोले कि हे महाराज! मैं तो इस पहाड़को उठा लाया हूं अब जो आप उचित समझें सो करें परंतु देर नहीं करनी चाहिए॥३५॥ हनुमानजीका वचन सुनकर चतुर रघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए और पर्वत पर से औषधि को शीघ्र उखाड़कर सुषेण वैद्य से महात्मा लक्ष्मणजी की औषधि कराई॥३६॥

चिकित्सांकारयामास लक्ष्मणायमहात्मने ॥ ततः सुप्तोत्थितइवबुद्धा प्रोवाचलक्ष्मणः ॥३७॥ तिष्ठ तिष्ठ क्वगन्तासिहन्मीदानींदशानन ॥ इतिब्रुवन्तमालोक्यमूर्ध्न्यवघ्रायराघवः ॥३८॥ मारुतिंप्राहवत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे ॥ निरामयंप्रपश्यामिलक्ष्मणंभ्रातरंमम ॥३९॥ इत्युक्त्वावानरैः सार्धंसुग्रीवेणसमन्वितः

।। विभीषणमतेनैवयुद्धाय समवस्थितः ।।४०।। पाषाणैः पादपैश्चैवपर्वताग्रैश्चवानराः ।। युद्धायाभिमुखा-भूत्वाययुः सर्वेयुयुत्सवः ।।४१।। रावणोविव्यथेरामबाणैर्विद्धोमहासुरः ।। मातङ्गइवसिंहेनगरुडेनेवपन्नगः ।।४२।। अभिभूतोऽगमद्राजाराघवेणमहात्मना ।। सिंहासनेसमाविश्यराक्षसनिदमब्रवीत् ।। मानुषेणैवमे मृत्युमाहपूर्वं पितामहः ।। मानुषोहिनमांहन्तुशक्तोऽस्तिभुविकश्चन् ।।४४।। ततोनारायणः साक्षान्मानुषोऽ-भून्नसंशयः ।। रामोदाशरथिर्भूत्वामांहन्तुसमुपस्थितः ।।४५।। अनरण्येनयत्पूर्वंशप्तोऽहंराक्षसेश्वराः ।। उत्पत्स्यतेचमद्वंशे परमात्मासनातनः ।।४६।।

फिर लक्ष्मणजी ऐसे उठ बैठे मानो सोते से उठे हों और सचेत हो कहने लगे कि।।३७।। हे रावण! ठहर जा, ठहर जा, कहां भागा जाता है। मैं अभी तुझे मारूंगा। इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणजी को देखकर रामजी ने उनका शिर सूंघा।।३८।। और पवनपूत्र से बोले कि हे प्यारे हनुमान! तुम्हारी कृपा से आज मैं अपने भाई लक्ष्मणजी को नीरोग देख पाया हूं।।३९।। यह कहकर सुग्रीव और सब वानरों को साथ लेकर विभीषण की सलाह से युद्ध करने के लिये लंका में गये।।४०।। और सब वानर युद्ध की उमंग करते हुए पाषाण वृक्ष और पर्वत ले लेकर रणभूमि में संग्राम करने के लिये आ पहुँचे।।४१।। रामजी ने महा असुर रावण को बाणों से घायल कर उसका ऐसा नाक में दम कर दिया कि जैसा सिंह हाथी का और गरुड़ सर्प का करता है।।४२।। जब महात्मा रामचन्द्रजी ने राजा रावण के इस प्रकार दांत खट्टे करे तब वह वहां से चला गया और सिंहासन पर बैठकर राक्षसों से यह बोला कि।।४३।। हे राक्षसो! पूर्वकाल में वर देते समय ब्रह्माजी ने मेरी मृत्यु मनुष्य के द्वारा बतलाई थी परंतु दुनिया में किसी मनुष्य का बूता नहीं है कि मुझे मार सके।।४४।। इसलिये निस्संदेह साक्षात् नारायण ने मनुष्यरूप से अवतार लिया है और दशरथ के पुत्र होकर वह राम मुझे मारने के लिये आये हैं।।४५।। और बड़े बड़े राक्षसों! पहिले एक अयोध्या के राजा अनरण्य ने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंश में सनातन परमात्मा उत्पन्न होगा।।४६।।

तेनत्वंपुत्रपौत्रैश्चबान्धवैश्चसमन्वितः ।।हनिष्यसे न सन्देहइत्युक्त्वामांदिवंगतः ।।४७।। सएवरामः सञ्जातोमदर्थे मांहनिष्यति ।। कुम्भकर्णस्तुमूढात्मासदानिद्रावशंगतः।।४८।।तंविबोध्यमहासत्त्वमानयन्तुम-

मान्तिकम् ॥ इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्णं गत्वातुयत्नतः ॥४९॥ विबोध्यकुम्भश्रवणं निन्यूरावण-सन्निधिम् ॥ नमस्कृत्यसराजानमासनोपरिसंस्थितः ॥५०॥ तमाहरावणो राजाभ्रातरंदीनयागिरा ॥ कुम्भकर्णनिबोधत्वंमहत्कष्टमुपस्थिम् ॥५१॥ रामेणनिहताः शूराः पुत्राः पौत्राश्चबान्धवाः ॥ किंकर्तव्य-मिदानींमेमृत्युकालउपस्थिते ॥५२॥ एषदाशरथीरामः सुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंसबलस्तीर्त्वामूलंनः परिकृन्तति ॥५३॥ ये राक्षसामुख्यतमास्तेहतावानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकदाचन ॥५४॥ नाशयस्वमहाबाहोयदर्थंपरिबोधितः ॥ भ्रातुरर्थे महासत्त्वकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥५५॥ श्रुत्वातद्रावणेन्द्रस्यवच-नंपरिदेवितम् ॥ कुम्भकर्णोजहासोच्चैर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥५६॥ पुरा मन्त्रविचारेतेगदितंयन्मयानृप ॥ तदद्यत्वामुपगंफलंपापस्यकर्मणः ॥५७॥

और वह तुझे पौत्र और बांधवों सहित मारेगा इसमें संदेह नहीं और यह कहकर वह स्वर्ग को चला गया॥४७॥ यह वही राम हैं कि जो मेरे मारने के लिये प्रकट हुआ है सो मुझे मारे बिना नहीं छोड़ेगा और करूं क्या? कुंभकर्ण ऐसा मूर्ख है कि सदा सोया ही करता है॥४८॥ उस महापराक्रमी को जगाकर मेरे पास तो लाओ। जब रावण ने उनसे यह कहा तब बड़े बड़े शरीरधारी जल्दी गये और ज्यों त्यों कर कुंभकर्ण को जगाकर रावण के पास ले गये और वह राजा रावण को प्रणाम करके गलीचे पर बैठ गया॥४९॥५०॥ राजा रावण ने उस भाई कुंभकर्ण से गिड़गिड़ाकर कहा कि हे कुंभकर्ण! समझ देखो कि मेरे ऊपर बड़ा भारी कष्ट आ पड़ा है॥५१॥ रामचन्द्रजी ने मेरे बेटे नाती और बड़े बड़े शूर बांधवों को यमपुरी पहुँचा दिया सो अब मुझे क्या करना चाहिये। मेरा तो मृत्युकाल आ पहुँचा॥५२॥ यह दशरथनन्दन बली रामचन्द्र सुग्रीव और वानरी सेनासहित समुद्र पार करके आया है और हम राक्षसों की जड़ काटने पर पिला है॥५३॥ जो हमारे बड़े बड़े मुख्य राक्षस थे उन्हें संग्राम में बन्दरों ने तो मार डाला परंतु मैंने युद्ध में बंदरों का क्षय कभी नहीं देखा॥५४॥ इसलिये हे वीर! तुम राम और राम की सेना का नाश करो कि जिसके लिये तुम्हें जगाया है और तुम तो महाशूर हो, भाई के लिये ऐसा कर्म करो, आज तक किसी ने न किया हो॥५५॥ कुंभकर्ण रावण के विलापयुक्त वचन को

सुनकर जोर से खिलखिला कर हँसा और यह बात कहने लगा कि॥५६॥ हे राजा! पहिले जब तुमने मुझसे इस विषय में सलाह की थी और मैंने जो तुमसे कहा था सो आज उसका पाप कर्म का फल तुम्हारे आगे आ गया॥५७॥

पूर्वमेवमयाप्रोक्तोरामोनारायणः परः ॥ सीताचयोगमायेतिबोधितोऽपिनबुध्यसे ॥५८॥ एकदाहंवनेसानौ-विशालायांस्थितोनिशि ॥ दृष्टोमयामुनिः साक्षान्नारदोदिव्यदर्शनः ॥५९॥ तमब्रुवं महाभागकुतोगन्तासि-मेवद ॥ इत्युक्तोनारदः प्राहदेवानांमन्त्रणेस्थितः ॥६०॥ तत्रोत्पन्नमुदन्तंतेवक्ष्यामि शृणुतत्त्वतः ॥ युवाभ्यां पीडितादेवाः सर्वेविष्णुमुपागताः ॥६१॥ ऊचुस्तेदेवदेवेशंस्तुत्वाभक्त्यासमाहिताः ॥ जहिरावणमक्षोभ्यं देवत्रैलोक्यकण्टकम् ॥६२॥ मानुषेणमृतिस्तस्यकल्पिताब्रह्मणापुरा ॥ अतस्त्वंमानुषोभूत्वाजहिरावण-कण्टकम् ॥६३॥ तथेत्याहमहाविष्णुः सत्यसङ्कल्पईश्वरः ॥ जातोरघुकुलेदेवोराम इत्यभिविश्रुतः ॥६४॥ सहनिष्यतिवः सर्वानित्युक्त्वाप्रययौमुनिः ॥ अतोजानीहिरामंत्वंपरंब्रह्मसनातनम् ॥६५॥

मैंने तुमसे पहिले ही कह दिया था कि रामचन्द्रजी साक्षात् परमात्मा नारायण हैं और जानकीजी योगमाया हैं इतना समझाने पर भी तो न समझे और न अब समझते हो॥५८॥ एक समय मैं वन में रात्रि के समय पर्वत के शिखर पर एक बड़ी शिला पर बैठा था कि इतने में मैंने दिव्यदर्शन साक्षात् नारदजी को देखा और उनसे पूछा कि हे महाराज! तुम कहां जाते हो? सो मुझे बताइये। जब मैंने यह पूछा तब नारदजी ने कहा कि मैं देवताओं की गुप्त सभा में बैठकर आया हूं॥५९॥६०॥ वहां जो वृत्तान्त निश्चय हुआ है वह मैं तुझसे यथार्थ कहता हूं कि जब तुम दोनों भाइयों ने देवताओं का नाकों दम कर दिया तब वे सब विष्णु भगवान् के पास गये॥६१॥ और उन्होंने देवों के देव भगवान् की भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त से स्तुति कर करके कहा कि हे महाराज! रावण त्रिलोकी को महाकष्ट दे रहा है और कोई उसका बाल बांका नहीं कर सकता, उसे आप मारिये॥६२॥ क्योंकि पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ रच दी है इसलिये तुम मनुष्य का अवतार लेकर उस रावण कंटक का नाश करो॥६३॥ सत्यसंकल्प ईश्वर विष्णु भगवान् ने कहा कि अच्छा मैं ऐसा ही करूंगा सो वही भगवान् रघुकुल में राम के नाम से प्रकट हुए हैं॥६४॥ वह तुम्हारा सबका

नाश करेंगे, यह कहकर मुनि विदा हुए। इसलिये तुम रामजी को सनातन परब्रह्म जानो।।६५।।

त्यजवैरंभजस्वाद्यमायामानुषविग्रहम् ।। भजतोभक्तिभावेनप्रसीददतिरघूत्तमः ।।६६।। भक्तिर्जनित्रीज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ।। भक्तिहीनेनयत्किंचित्कृतं सर्वमसत्समम् ।।६७।। अवताराः सुबहवोविष्णोर्लीलानुकारिणः ।। तेषांहस्रसदृशोरामोज्ञानमयः शिवः ।।६८।। रामंभजन्ति निपुणामनसावचसाऽनिशम् ।। अनायासेनसंसारं तीर्त्वायान्तिहरेः पदम् ।।६९।। येराममेवसततं भुविशुद्धसत्त्वाध्यायन्ति तस्यचरितानि-पठन्तिसन्तः ।। मुक्तास्तएव भवभोगमहाहिपाशैःसीतापतेः पदमनन्तसुखंप्रयान्ति ।।७०।। इतिश्रीमदध्यात्म-रामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ।।७।।

अब भी बैर को छोड़कर माया से मनुष्यरूप धारण करे उन भगवान् का भजन करो। जो कोई भक्तिभाव से उनका भजन करता है, रामचन्द्रजी उस पर प्रसन्न होते हैं।।६६।। भक्ति ही ज्ञान की उत्पन्न करनेवाली हैं और भक्ति ही मोक्ष देनेवाली है। भक्तिहीन मनुष्य ने जो कुछ किया धरा है वह सब न करने के समान है।।६७।। विष्णु की लीला के समान लीला करनेवाले विष्णु का अवतार तो कितने ही हैं परंतु उनमें से ज्ञानी और शांतस्वरूप यह रामावतार हजारों से बढ़कर हैं।।६८।। जो पुरुष वेदांत में निपुण हैं वे मन और वाणी से रामजी का निरंतर भजन करते हैं और बिना परिश्रम के संसारसागर को तरकर विष्णुपद को पाते हैं।।६९।। जो सत्पुरुष पृथ्वी पर शुद्ध मन से निरंतर रामजी का ही भजन और ध्यान करते हैं और रामजी के ही चरित्रों को पढ़ते हैं वे पुरुष संसाररूपी बड़े भारी सर्पों के बन्धनों से छूटकर अनंत सुखरूप रामपद को पाते हैं।।७०।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का सप्तमसर्ग समाप्त हुआ।।७।।

श्रीमहादेव उवाच ।। कुम्भकर्णवचः श्रुत्वाभ्रुकुटीविकटाननः ।। दशग्रीवोजगादेदमासना दुत्पतन्निव ।।१।। त्वमानीतोनमेज्ञानबोधनायसुबुद्धिमान् ।। मयाकृतंसमीकृत्ययुध्यस्वयदिरोचते ।।२।। नोचेद्गच्छसुषुप्त्यर्थं-निद्रात्वांबाधतेऽधुना ।। रावणस्यवचः श्रुत्वाकुम्भकर्णो महाबलः ।।३।।रुष्टोयमितिविज्ञायतूर्णंयुद्धायनिर्ययौ ।। सलंघयित्वांप्राकारंमहापर्वतसन्निभः ।।४।। निर्ययौनगरात्तूर्णंभीषयन्हरिसैनिकान ।। सननादमहानाद

समुद्रमभिनादयन् ॥५॥ वानरान्कालयामासबाहुभ्यां भक्षयन्रुषा ॥ कुम्भकर्णंतदादृष्ट्वासपक्षमिवपर्वतम् ॥६॥ दुद्रुवुर्वानराः सर्वेकालांतकमिवाखिलाः ॥ भ्रमंतंहरिवाहिन्यांमुद्गरेण महाबलम् ॥७॥ कालयंतंहरीन्वेगाद्भक्षयंतंसमंततः ॥ चूर्णयंतंमुद्गरेणपाणिपादैरनेकधा ॥८॥ कुम्भकर्णंतदादृष्ट्वागदापाणि-र्विभीषणः ॥ ननामचरणौतस्यभ्रातुर्ज्येष्ठस्यबुद्धिमान् ॥९॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं–हे पार्वती! कुंभकर्ण का वचन सुनकर और अपने मुख पर भौहों को चढ़ाकर तथा अपने आसन से फड़ककर रावण यह बोला कि॥१॥ हे कुंभकर्ण! तुम बड़े भारी बुद्धिमान् हो परंतु मैंने तुम्हें ज्ञान सिखाने के लिये नहीं बुलवाया है, मैंने जो कुछ किया है उसे अपना ही काम समझकर जो रुचे तो युद्ध करो॥२॥ नहीं तो जाओ और दुपट्टा तानकर सोओ क्योंकि इस समय तुम्हारी आंखों में निद्रा भर रही है। रावण का वचन सुनकर महापराक्रमी कुंभकर्ण॥३॥ यह जानकर कि रावण का जी मुझसे खट्टा हो गया, तुरंत संग्राम करने के लिये बाहर निकला॥४॥ और लंकाकी छहर दीवारी फांदकर बड़े भारी पर्वत के समान शरीरवाला वह कुंभकर्ण तुरंत नगर से बाहर आया और बंदरों की सेनाओं को डराने लगा और उसने ऐसे जोर से महाभयंकर शब्द किया कि जिससे समुद्र भी बड़ा शब्दायमान हो खलबलाने लगा॥५॥ फिर जब कुंभकर्ण दोनों भुजाओं से वानरों को उठा उठा कर भक्षण कर उनकी नाक में दम करने लगा तब पंखों सहित पर्वत के समान उस कुंभकर्ण को देखकर सब वानर ऐसे भागे कि जैसे साक्षात यमराज के समान मृत्यु को देखकर सारी प्रजा भागती हो। उस समय बन्दरों की सेना में मुद्गर लेकर घूमते हुए और चारों ओर से बड़े वेग से वानरों को पकड़ पकड़ कर भक्षण करते हुए और उन्हें पीड़ा देते हुए मुद्गर से मारते हुए और भांति भांति से हाथ पैरों से मसलते हुए उस महाबली कुंभकर्ण को देखकर बुद्धिमान् विभीषण हाथ में गदा लेकर आया और उसने अपने जेठे भाई के चरणों में प्रणाम किया॥६–९॥

विभीषणोहंभ्रातुर्मेदयांकुरुमहामते ॥ रावणस्तु मयाभ्रातर्बहुधापरिबोधतः॥१०॥ सीतांदेहीतिरामायरामः साक्षाज्जनार्दनः ॥ नश्रृणोतिचमांहंतुखड्गमुद्यम्यचोक्तवान् ॥११॥धिक्त्वांगच्छेति मांहत्वापदापापि-भिरावृतः ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिः सार्धंरामशरणमागतः ॥१२॥ तत्श्रुत्वाकुंभकर्णोऽपिज्ञात्वाभ्रातरमागतम् ॥

समालिग्यंचवत्सत्वंजीवरामपदाश्रयः ॥१३॥ कुलसंरक्षणार्थायराक्षसानांहितायच ॥ महाभागवतोसित्वं पुरामेनारदाच्छ्रुतम् ॥१४॥ गच्छतातममेदानीं दृश्यतेनचकिंचन ॥ मदीयोवापरोवापिमदमत्तविलोचनः ॥१५॥इत्युक्तोश्रुमुखोभ्रातुश्चरणावभिवंद्यसः ॥रामपार्श्वमपागत्यचिंतापरउपस्थितः॥१६॥कुम्भकर्णोऽपिह- स्ताभ्यांपादाभ्यांपेषयन्हरीन् ॥ चचारवानरींसेनांकालयन्गंधहस्तिवत् ॥१७॥ दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धोवायव्यंशस्त्रमादरात् ॥ चिक्षेपकुंभकर्णायतेनचिच्छेदरक्षसः ॥१८॥ समुद्गरंदक्षहस्तंतेनघोरंननादसः सहस्तः पतितोभूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥१९॥ पर्यंतमाश्रिताः सर्वेवानराभयवेपिताः ॥ रामराक्षसयोर्युद्धं- पश्यंतः पर्यवस्थिताः ॥२०॥

और कहा कि मैं विभीषण हूं, तुम बड़े समझदार हो, मुझ अपने भाई के ऊपर दया करो। हे भाई! मैंने रावण को बहुतेरा समझाया बुझाया कि॥१०॥ जानकीजी को रामचन्द्रजी के अर्पण कर दो क्योंकि वे साक्षात् नारायण हैं सो मेरा कहा तो नहीं माना वरन् उलटा तलवार लेकर मारने को दौड़ा और मुझे लात मारकर बोला कि तुझे धिक्कार है तू यहां से काला मुँह कर जा और उसके पास बैठने वाले भी सब पापी हैं इसलिये मैं चार मंत्रियों को साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी की शरण आ गया हूं॥११॥१२॥ कुंभकर्ण यह सुनकर और भाई को आया जानकर उसे छाती से लगाया और कहा कि हे प्यारे! तुम रामजी के चरणों के आश्रय अपना जीवन बिताओ॥१३॥ और तुम कुल की रक्षा और राक्षसोंके हितके लिये भगवान् के बड़े भारी भक्त हुए हो, यह मैंने पहिले ही नारदजी से सुन रखा है॥१४॥ और हे प्यारे! अब तुम जाओ क्योंकि इस समय मुझे अपना पराया कुछ नहीं सूझता है और वीरमद से मेरे नेत्र मतवाले हो रहे हैं॥१५॥ जब कुंभकर्ण ने यह कहा तब वह विभीषण रोता सा मुख किये भाई के चरणों को प्रणाम कर रामजी के पास आकर चिंता में मग्न हो बैठ गया॥१६॥ इधर कुंभकर्ण भी हाथ पैरों से वानरों को पीसता हुआ मतवाले हाथी की तरह वानरी सेना को दु:ख देता हुआ घूमने लगा॥१७॥ रामजी उसे देखकर बड़े क्रोधित हुए और आदरपूर्वक उन्होंने वायव्य अस्त्र को कुंभकर्ण के ऊपर छोड़ा और उससे राक्षस की मुद्गरसहित दाहिनी भुजा काट अलग की कि जिससे वह बड़ा भयंकर शब्द करने लगा और वह भुजा अनेक वानरों का चूरा करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी॥१८॥१९॥ और सब

वानर भय के मारे कांपते हुए चारों ओर हट गये और दूर खड़े होकर राम और कुंभकर्ण के युद्ध को देखने लगे॥२०॥

कुम्भकर्णश्छिन्नहस्तः शालमुद्यम्यवेगतः ॥ समरेराघवंहंतुदुद्रावतमथेच्छिनत् ॥२१॥ शालेनसहितं वामहस्तमैन्द्रेणराघवः ॥ छिन्नबाहुमथायांतंनर्दंतंवीक्ष्यराघवः ॥२२॥ द्वावर्धचंद्रौनिशितावादायास्यपद-द्वयम् ॥ चिच्छेद पतितौ पादौलङ्काद्वारिमहास्वनौ ॥२३॥ निकृत्तपाणिपादोपि कुम्भकर्णोतिभीषणः ॥ बडवामुखवद्वक्त्रं व्यादायरघुनन्दनम् ॥२४॥ अभिदुद्रावनिनदन्राहुश्चंद्रमसंयथा ॥ अपूरयत्सितागैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः ॥२५॥ शरपूरितवक्त्रोसौचुक्रोशातिभयंकरः ॥ अथसूर्यप्रतीकाशमैंद्रंशरमनुत्तमम् ॥२६॥ वज्राशनिसमंरामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ॥ सतत्पर्वतसंकाशं स्फुरत्कुंडलदंष्ट्रकम् ॥२७॥ चकर्तरक्षोधिपतेः शिरोवृत्रमिवाशनिः ॥ तच्छिरः पतिंलंकाद्वारिकायोमहोदधौ ॥२८॥ शिरोस्यरोधयद्द्वारंकायोनक्राद्य चूर्णयत् ॥ ततोदेवाः सऋष्ययोगन्धर्वाः पन्नगाः खगाः ॥२९॥ सिद्धायक्षागुह्यकाश्चअप्सरोभिश्चराघवम् ॥ ईडिरेकुसुमासारैर्वर्षंतश्चाभिनंदिताः ॥३०॥ आजगामतदारामं द्रष्टुंदेवमुनीश्वराः ॥ नारदोगगनात्तूर्णं स्वभासाभासयन्दिशः ॥३१॥

एक भुजा कट जाने से जब कुंभकर्ण दूसरे हाथ में शालवृक्ष को लेकर उस समर में रामजी के मारने को वेग से दौड़ा तब रामजी ने ऐन्द्र अस्त्र से शालवृक्षसहित उसकी बाईं भुजा भी काट अलग करी और जब रघुनाथजी ने देखा कि दोनों भुजा कटने पर भी कुंभकर्ण गर्जता हुआ सामने आ रहा है तब बड़े पैने दो अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उनसे उसके दोनों पैर भी काट डाले और वे शब्द करते हुए लंका के द्वार पर जा गिरे॥२१-२३॥ हाथ पैर कट जाने से कुंभकर्ण बड़ा भयंकर हो गया और बडवानल के सौ योजन चौड़े रहने के स्थान के समान मुख फाड़कर गर्जता हुआ रामजी के सामने ऐसा दौड़ा जैसा राहु चंद्रमा के ग्रसने के लिये दौड़ता है। यह देख रामजी ने उसके मुख को अपने पैने पैने बाणों से छा दिया॥२४॥२५॥ जब बाणों से उसका मुख भर गया तब वह महाभयंकर बड़े शब्द से चिल्लाया फिर तो रामचन्द्रजी ने सूर्य के तुल्य प्रकाशमान और ऐन्द्र अस्त्र से अभिमंत्रित ऐसे वज्र के तुल्य बाण को उस राक्षस के मार डालने के लिये छोड़ा उसने पर्वत के समान और जिसमें कुंडल और दांत देदीप्यमान हो रहे हैं, ऐसे राक्षस के शिर को इस प्रकार काट

उड़ा दिया जैसे इन्द्र का शर वृत्रासुर के शिर को काटता हो और वह शिर तो लंका के द्वार पर और धड़ समुद्र में जा गिरा॥२६-२८॥ उसके शिर ने तो लंका के द्वार को रोक दिया और धड़ ने समुद्र के नाके आदिकों चूरा चूरा कर दिया। फिर तो देवता ऋषि गंधर्व पन्नग पक्षी सिद्ध यक्ष गुह्यक और अप्सरा ये सब रामजी की स्तुति करने और बड़े आनन्द से फूल वर्षाने लगे॥२९॥३०॥ उस समय देवता मुनीश्वर आये और अपनी कांति से दशों दिशाओं को प्रकाशमान करते हुए नारदजी भी शीघ्र आकाश से उतरे॥३१॥

राममिंदीवरश्याममुदारांगंधनुर्धरम् ॥ ईषताम्रविशालाक्षमैंद्रास्त्रांचितबाहुकम् ॥३२॥ दयार्द्रदृष्ट्यापश्यंतं वानरान्शरपीडितान् ॥ दृष्ट्वागद्गदयावाचाभक्त्यास्तोतुंप्रचक्रमे ॥३३॥ नारद उवाच ॥ देवदेवजगन्नाथपरमात्मन्सनातन ॥ नारायणाखिलाधारविश्वासाक्षिन्नमोस्तुते ॥३४॥ विशुद्धज्ञानरूपोपित्वं लोकानतिवंचयन् ॥ माययामनुजाकारः सुखदुखादिमानिव ॥३५॥ त्वंमाययागूह्यमानः सर्वेषांहृदिसंस्थितः ॥ स्वयंज्योतिः स्वभावस्त्वंव्यक्तएवामलात्मनाम् ॥३६॥ उन्मीलयन्सृजस्येतन्नेत्रेरामजगत्त्रयम् ॥ उपसंह्रियतेसर्वंत्वयाचक्षुर्निमीलनात् ॥३७॥ यस्मिन्सर्वमिदंभातियतश्चैतच्चराचरम् ॥ यस्मान्नकिंचिल्लोकेस्मिंस्तस्मैतेब्रह्मणेनमः॥३८॥ प्रकृतिंपुरुषंकालंव्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम्॥ यंजानंतिमुनिश्रेष्ठास्तस्मैरामायतेनमः॥३९॥ विकाररहितंशुद्धंज्ञानरूपंश्रुतिर्जगौ ॥ त्वांसर्वजगदाकारमूर्तिंचाप्याहसाश्रुतिः ॥४०॥ विराधो दृश्यतेदेववैदिकोवेदवादिनाम् ॥ निश्चयंनाधिगच्छन्तित्वत्प्रसादंविनाबुधाः ॥४१॥माययाक्रीडतोदेवनविरोधोमनागपि । रश्मिजालंरवेर्यद्वद्दृश्यतेजलवद्भ्रमात् ॥४२॥ भ्रान्तिज्ञानात्तथारामत्वयिसर्वंप्रकल्प्यते ॥ मनसोऽविषयोदेवरूपंतेनिर्गुणंपरम् ॥४३॥

और नील कमल के समान सुन्दर श्यामवर्ण धनुष को धारण किये थोड़ी ललाई को लिये विशाल नेत्रवाले और ऐन्द्र अस्त्र से भुजा को शोभित किये॥३२॥ और बाणों से घायल बन्दरों को अपनी दयादृष्टि से देखते हुए ऐसे रामजी के दर्शन करके गद्गदवाणी से भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे॥३३॥ नारदजी बोले-हे देवों के देव! हे जगन्नाथ! हे परमात्मा! हे सनातन! हे नारायण! हे अखिलाधार! हे विश्व के देनेवाले! आपको नमस्कार है॥३४॥ यद्यपि तुम

विशुद्ध ज्ञान हो तो भी अपनी माया से मनुष्यरूप धारण कर संसार के साधारण मनुष्य की भांति सुख दु:ख आदि के भोगनेवाले प्रतीत होते हो।।३५।। तुम सबके हृदय में स्थित और प्रकाशमान हो तो भी जब माया से आच्छादित होते हो तब सबको प्रतीयमान न होकर केवल निर्मलअंत:करणवालोंको प्रतीत होते हो।।३६।।हे राम! जब तुम नेत्र खोलते हो तब तीनों जगत् रचते हो और जब नेत्र मूंदते हो तो सब लोकों का संहार करते हो।।३७।। जिसमें यह सब जगत् प्रतीयमान हो रहा है और जिससे चराचर उत्पन्न होता है और जिससे बढ़कर इस लोक में कुछ नहीं है ऐसे आप ब्रह्म को नमस्कार है।।३८।। बड़े बड़े मुनि जिसको प्रकृतिरूप पुरुषरूप और निमेष घटिका आदि प्रकट और क्षणरूप अप्रकट काल जानते हैं उन रामचन्द्र को नमस्कार है।।३९।। हे राम! वेद तुम्हें विकाररहित शुद्ध और ज्ञानस्वरूप प्रतिपादन करता है और वही वेद यह भी कहता है कि तुम सब जगत् की मूर्ति हो।।४०।। इसलिये हे देव! वेदवादियों को वेद में विरोध दिखाई पड़ता है परन्तु तुम्हारी कृपा बिना बड़े बड़े पंडित तुम्हारे स्वरूप को निश्चय नहीं जान सकते।।४१।। हे देव! तुम तो माया से लीला करते हो इसलिये तुममें कुछ भी विरोध नहीं है और यह जो तुम्हारा जगदाकाररूप है सो माया के कारण है। और जैसे निर्जलदेश में सूर्य की किरणें भ्रम से जल के समान जान पड़ती हैं वैसे ही तुम भी भ्रम से जगदाकार प्रतीत होते हो।।४२।। हे राम! भ्रमात्मक ज्ञान से जैसे सीपी में रजत की कल्पना होती है वैसे ही आपमें सारा जगत् कल्पना किया जाता है और हे देव! आपका निर्गुण रूप तो शुद्ध मन से ही जाना जाता है।।४३।।

कथंदृश्यंभवेदृश्याभावेभजेत्कथम् ।। अतस्तवावतारेषुरूपाणिनिपुणाभुवि ।।४४।। भजन्तिबुद्धिसंपन्नास्तरन्त्येवभवार्णवम् ।। कामक्रोधादयस्तत्रबहवः परिपन्थिनः ।।४५।। भीषयन्तिसदाचेतोमार्जारामूषकंयथा ।। त्वन्नामस्मरतांनित्यंत्वद्रूपमपिमानसे ।।४६।। त्वत्पूजानिरतानांतेकथामृतपरात्मनाम् ।। त्वद्भक्तसङ्गिनांरामसंसारोगोष्पदायते ।।४७।। अतस्तेसगुणंरूपंध्यात्वाहंसर्वदाहृदि ।। मुक्तश्चरामिलोकेषुपूज्योऽहंसर्वदैवतैः ।।४८।। रामत्वयामहत्कार्यंकृतंदेवहितेच्छया ।। कुम्भकर्णवधेनाद्यभूभारोऽयंगतः प्रभो ।।४९।। श्वोहनिष्यतिसौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे ।। हनिष्यसेथरामत्वंपरश्वोदशकन्धरम् ।।५०।। पश्यामिसर्वंदेवेशसिद्धैः सहनभोगतः ।। अनुगृह्णीष्वमांदेवगमिष्यामिसुरालयम् ।।५१।।

(अब यदि शंका करो कि सगुणरूप का ध्यान क्या मायिक होने से निष्फल है उसका समाधान नारदजी करते हैं कि) यह तुम्हारा निर्गुण रूप नेत्रों से कैसे दीख सकता है और विना देखे भक्ति कैसे हो सकती है इसलिये चतुर बुद्धिमान् भक्त इस दुनियां में तुम्हारे अवतारों की मूर्तियों का भजन करते हैं और भवसागर पार हो जाते हैं परन्तु उस भजन में काम क्रोध आदि बहुत से डाकू चोर सदा भक्त के चित्त को ऐसे डराया करते हैं कि जैसे बिलाव चूहे पर दौड़ते हैं परन्तु जो पुरुष अपने चित्त में तुम्हारे नाम और रूप का नित्य मरण स्मरण करते हैं। और आपकी पूजा में लगे रहते हैं और आपकी कथारूपी अमृत पान करने में मन लगाये रहते हैं और तुम्हारे भक्तों का सत्संग करते हैं हे राम! उनको यह संसाररूपी समुद्र गौ के खुर के समान हो जाता है।।४४-४७।। इसलिये हे राम! मैं अपने हृदय में सदा तुम्हारे सगुण का रूप का ध्यान करके संसारबंधन से मुक्त हो सब देवताओं का पूज्य बन तीनों लोकों में फिरता हूं।।४८।। हे राम! देवताओं के हित की इच्छा से आपने बड़ा भारी काम किया है जो आज कुंभकर्ण को मार भूमिका भार उतारा।।४९।। और कल लक्ष्मणजी संग्राम में मेघनाद को मारेंगे और हे राम! परसों तुम रावण को मारोगे।।५०।। और हे देवेश! मैं सिद्धोंसहित आकाश में स्थित होकर यह सब देखूंगा और हे देव! अब मुझे कृपा कर स्वर्ग जाने की आज्ञा दीजिये।।५१।।

इत्युक्त्वाराममामन्त्र्यनारदोभगवानृषिः ।। ययौदेवैः पूज्यमानोब्रह्मलोकमकल्मषम् ।।५२।। भ्रातरंनिहतंश्रुत्वाकुम्भकर्णमहाबलम् ।। रावणः शोकसन्तप्तोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ।।५३।। मूर्च्छितः पतितोभूमावुत्थायविललापह ।। पितृव्यंनिहितंश्रुत्वापितरंचातिविह्वलम् ।।५४।। इन्द्रजित्प्राहशोकार्तंत्यजशोकंमहामते ।। मयिजीवतिराजेन्द्रमेघनादेमहाबले ।।५५।। दुःखस्यावसरः कुत्रदेवान्तकमहामते ।। व्येतुतेदुःखमखिलंस्वस्थोभवमहीपते ।।५६।। सर्वंसमीकरिष्यामिनिष्यामिहचवैरिपून्गत्वानिकुम्भिलांसद्यस्तपायत्वाहुताशनम् ।।५७।। लब्ध्वारथादिकंतस्मादजेयोऽहंभवाम्यरेः ।। इत्युक्त्वात्वरितंगत्वानिर्दिष्टंहवनस्थलम् ।।५८।। रक्तमाल्याम्बरधरोरक्तगन्धानुलेपनः ।। निकुम्भिलास्थलेमौनीहवनायोपचक्रमेः।।५९।। विभीषणोऽथ-तच्छ्रुत्वामेघनादस्यचेष्टितम् ।। प्राहरामायसकलंहोमारम्भंदुरात्मनः ।।६०।। समाप्यतेचेद्धोमोयंमेघनाद

स्यदुर्मतेः ।। तदाऽजेयोभवेद्राममेघनादः सुरासुरैः ।।६१।।

इस प्रकार रामजी से कहकर देवताओं से पूजित भगवान् नारदजी पवित्र ब्रह्मलोक को गये।।५२।। इधर रावण अपने भाई महाबली कुंभकर्ण को राम के हाथ से सहज में मरा हुआ सुनकर शोक से व्याकुल तथा मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर उठकर विलाप करने लगा। चाचा को मरा हुआ सुनकर और पिता को व्याकुल और शोक से घबराया हुआ देखकर इन्द्रजीत बोला कि आप ज्ञानवान् हो शोक को छोड़ो। हे राजेन्द्र! मुझ बली मेघनाद के जीते जी तुम्हें दुःख करने का कहां मौका है तुम स्वयं देवताओं के नाशक और बुद्धिमान् हो और हे राजन्! अपने सब दुःख को दूर कर किसी बात की चिंता मत करो।।५३-५६।। मैं सब ठीकठाक कर दूंगा और तुम्हारे शत्रुओं को भी यमलोक भेज दूंगा।। मैं शीघ्र निकुंभिलानाम गुफा में जाकर और अग्नि को तृप्त करके।।५७।। उससे रथादिक प्राप्त कर लूं फिर मैं शत्रु के हाथ से मारा नहीं मरूंगा। यह कहकर और बताई हुई हवन की जगह निकुंभिला गुफा में शीघ्र चला गया और वहां रक्तपुष्पों की माला पहिर देह में रक्त चन्दन का लेपन करके और लाल वस्त्र धारण कर मौनी हो हवन करने लगा।।५८।।५९।। इसके उपरान्त विभीषण मेघनाद के इस कौतुक को सुनकर रामजी के पास आया और उनको उस दुष्ट के हवन का सब समाचार सुनाया।।६०।। और कहा कि हे रामजी! जो कदाचित् इस दुष्ट मेघनाद का यह होम समाप्त हो जायगा तो देवता क्या और दैत्य क्या कोई भी इस मेघनाद का बाल बांका न कर सकेगा।।६१।।

अतःशीघ्रंलक्ष्मणेनघातयिष्यामिरावणिम् ।। आज्ञापयमयासार्धंलक्ष्मणंबलिनांवरम् ।। हनिष्यतिनसन्देहोमेघनादंतवानुजः ।।६२।। श्रीरामचन्द्र उवाच ।। अहमेवागमिष्यामिहन्तुमिन्द्रजितंरिपुम् ।। आग्नेयेनमहास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना।।६३।। विभीषणोऽपितंप्राहनासावन्यैर्निहन्यते ।। यस्तुद्वादशववर्षाणिनिद्राहारविवर्जितः ।।६४।। तेनैवमृत्युर्निर्दिष्टोब्रह्मणास्यदुरात्मनः ।। लक्ष्मणस्तुअयोध्यायानिर्गम्या यात्त्वयासह ।।६५।। तदादिनिद्राहारादीन्नजानातिरघूत्तम ।। सेवार्थंतवराजेन्द्रज्ञातंसर्वमिदंमया ।।६६।। तदाज्ञापयदेवेशलक्ष्मणंत्वरयामया ।। हनिष्यतिनसंदेहः शेषः साक्षाद्धराधरः ।।६७।। त्वमेवसाक्षाज्जगतामधीशोनारायणोलक्ष्मण-

एवशेषः ॥ युवांधराभारनिवारणार्थंजातौजगन्नाटकसूत्रधारौ ॥६८॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥८॥

इसलिये मैं शीघ्र जाकर लक्ष्मणजी के हाथ से उस मेघनाद को मरवा दूंगा सो आप महाबली लक्ष्मणजी को मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिये आपके भाई लक्ष्मणजी इस मेघनाद को मारे बिना नहीं छोड़ेंगे इसमें कुछ संदेह नहीं है॥६२॥ श्रीरामजी बोले-हे विभीषण! मैं ही सब राक्षसों का नाश करनेवाले अपने आग्नेय महास्त्र लेकर शत्रु इन्द्रजीत के मारने के लिये चलता हूं॥६३॥ यह सुन विभीषण ने रामजी से कहा कि हे प्रभो! यह लक्ष्मणजी को छोड़ और किसी से मारा न मरेगा। क्योंकि जो बारह वर्ष तक निद्रा और आहार त्याग देगा उसके हाथ से इस दुष्ट की मृत्यु होगी ऐसा ब्रह्माजी ने पहले से ही कह रखा है सो हे रामजी! जब से लक्ष्मणजी अयोध्या से निकलकर तुम्हारे साथ आये तब से सिवाय तुम्हारी सेवामें वे निद्रा और आहार आदि को जानते भी नहीं हैं। हे राजाधिराज! यह सब बात मैं अच्छी तरह जानता हूं॥६४-६६॥ इसलिये हे देवेश! लक्ष्मणजी को मेरे साथ जाने की शीघ्र आज्ञा करिये वह इसे निस्संदेह मारेंगे क्योंकि यह पृथ्वीकाभारधारणकरनेवालेसाक्षात् शेषजी का अवतार हैं॥६७॥ और हे रामजी! तुम साक्षात् जगत् के स्वामी नारायण हो और लक्ष्मणजी शेष हैं तुम दोनों पृथ्वी का भार दूर करने के लिये जगत्रूप नाटक के सूत्रधार अर्थात् मुख्य कारण हो॥६८॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का अष्टम सर्ग समाप्त हुआ॥८॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ विभीषणवचः श्रुत्वारामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ जानामितस्यरौद्रस्यमाया कृत्स्नांबिभीषण ॥१॥ सहिब्रह्मास्त्रविच्छूरोमायावी च महाबलः ॥ जानामिलक्ष्मणस्याऽपिस्वरूपंममसेवनम् ॥२॥ ज्ञात्वैवासमहंतूष्णींभविष्यत्कार्यगौरवात् ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंप्राहरामोज्ञानवतांवरः ॥३॥ गच्छलक्ष्मणसैन्येनमहताजहिरावणिम् ॥ हनूमत्प्रमुखैः सर्वैर्यूथपैः सहलक्ष्मण ॥४॥ जाम्बवानृक्षराजोयंसहसैन्येनसंवृतः ॥ बिभीषणश्चसचिवैः सहत्वामभियास्यति ॥५॥ अभिज्ञस्तस्यदेशस्यजानातिविवराणिसः ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वालक्ष्मणः सबिभीषणः ॥६॥ जग्राहकार्मुकंश्रेष्ठमन्यद्धीमपराक्रमः ॥ रामपादाम्बुजंस्पृश्यहृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥७॥ अद्यमत्कार्मुकान्मुक्ताः शरानिर्भिद्यरावणिम् ॥ गमिष्यन्तिहिपातालंस्नातुंभोगावती

जले॥८॥ एवमुक्त्वाससौमित्रिः परिक्रम्यप्रणम्यतम् ॥ इन्द्रजिन्निधनाकांक्षीययौत्वरितविक्रमः ॥९॥ वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ बिभीषणश्चसहितोमंत्रिभिस्त्वरितंययौ ॥१०॥ जाम्बवत्प्रमुखा-ऋक्षाः सौमित्रिंत्वरयान्वगुः ॥ गत्वानिकुम्भिलादेशं लक्ष्मणोवानरैः सहः ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! रघुनाथजी विभीषणका वचन सुनकर यह कहने लगे कि हे विभीषण! उस तमोगुणी इन्द्रजीत की माया को मैं सब जानता हूं वह इन्द्रजीत ब्रह्मास्त्र को जानता है और बड़ा क्रूर बली तथा मायावी है यह भी जानता हूं और लक्ष्मण के स्वरूप को भी मैं जानता हूं कि जैसे जैसे उसने मेरी सेवा के लिये निद्रा और भोजन को छोड़ रखा है॥१॥२॥ यह जानकर ही और होनेवाले कार्य को बड़ा समझ मैं चुपका बैठा था। यह कहकर परम ज्ञानवान् श्रीरामजी लक्ष्मणजी से बोले कि ॥३॥ हे लक्ष्मण! जाओ और उस रावण के पुत्र मेघनाद का संहार कर। और हे लक्ष्मण! बड़ी भारी वानर सेना और हनुमान आदि सब वानरयूथपतियों को तथा सेनासहित ऋक्षराज जाम्बवान् को साथ लेते जाओ। और विभीषण भी मंत्रियों सहित तुम्हारे साथ जायगा॥४॥५॥ क्योंकि यह कुंभिला स्थान की गुफा आदि के मार्ग जानता है। रामजी के वचन सुनकर महापराक्रमी लक्ष्मणजी ने विभीषण को साथ लिया और अपने दूसरे श्रेष्ठ धनुष को लेकर रामजी के चरणारविंदो को स्पर्श करके प्रसन्न हो लक्ष्मणजी से बोले कि ॥६॥७॥ आज मेरे धनुष से छूटे रावण के पुत्र को विदारण करके भोगावती नाम पातालगंगा में स्नान करने के लिये पाताल को जायँगे॥८॥ ऐसा कहकर वह लक्ष्मणजी रामकी परिक्रमा और उनको प्रणाम करके इन्द्रजीत के मारने की इच्छा से तुरंत विदा हुए॥९॥ और हनुमानजी अनेक हजार वानरों को साथ लेकर उनके पीछे गये और विभीषण भी अपने मंत्रियों सहित शीघ्र गया॥१०॥ और जाम्बवान् आदि रीछ भी लक्ष्मणजी के पीछे शीघ्र गये लक्ष्मणजी ने वानरों के साथ निकुंभिलादेश में जाकर॥११॥

अपश्यद्बलसंघातंदूराद्राक्षससंकुलम् ॥ धनुरायम्यसौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रमः ॥१२॥ अङ्गदेनचवीरेणजा-म्बवान्राक्षसाधिपः ॥ तदाबिभीषणः प्राहसौमित्रिंपश्यराक्षसान् ॥१३॥ यदेतद्राक्षसानीकंमेघश्यामंविलो-क्यते ॥ अस्यानीकस्य महतोभेदनेयत्नवान् भव ॥१४॥ राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यस्मिन्भिन्नेदृश्योभविष्यति ॥

अभिद्रवाशुयावद्वै नैतत्कर्मसमाप्यते ॥१५॥ जहिवीरदुरात्मानंहिंसापरमधार्मिकम् ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वालक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ १६॥ ववर्षशरवर्षाणिराक्षसेन्द्रसुतंप्रति ॥ पाषाणैः पर्वताग्रैश्चवृक्षैश्चहरियूथपाः ॥१७॥ निजघ्नुः सर्वतोदैत्यांस्तेऽपिवानरयूथपान् ॥ परश्वधैः शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥१८॥ निजघ्नुर्वा नरानीकंतदाशब्दोमहानभूत् ॥ ससंप्रहारस्तुमलः संजज्ञेहरिरक्षसाम् ॥१९॥ इंद्रजित्स्वबलंसर्वमर्द्यमानंविलोक्यसः॥ निकुम्भिलांचहोमंचत्यक्त्वाशीघ्रंविनिर्गतः ॥२०॥ रथमारुह्यसधनुः क्रोधेनमहतागमत् ॥ समाह्वयित्वासौमित्रिंयुद्धायरणमूर्धनि ॥२१॥

दूर से ही राक्षसों की सेनाओं का झुंड देखा और महापराक्रमी लक्ष्मणजी धनुष लेकर तैयार हो गये॥१२॥ और इधर वीर अंगदसहित जाम्बवान् भी तैयार हुआ। फिर राक्षसराज विभीषण लक्ष्मणजी से बोला कि तुम राक्षसों को देखो॥१३॥ यह तो राक्षसों की बड़ी सेना मेघ के समान श्यामवर्ण दिखाई देती है इस सेना के नाश करने का उपाय करिये॥१४॥ और जब तुम इस सेना को मारकर भगा दोगे तब रावणपुत्र मेघनाद यहां दिखाई देगा इसलिये जब तक इसका होम समाप्त न होय तब तक शीघ्र जाकर युद्ध का आरंभ कर दीजिये॥१५॥ और हे वीर! यह महादुष्ट है और इसने हिंसा को ही परम धर्म समझ रखा है सो इसका संहार करो। विभीषण का वचन सुनकर सुन्दर लक्षण लक्ष्मणजी ॥१६॥ इन्द्रजीत के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे और वानर तथा वानरों के सेनापति पाषाण पर्वतों के शिखर और वृक्षों से राक्षसों की सेना का चारों ओर से विध्वंस करने लगे और उधर वे राक्षस भी वानरी सेना का और उनके सेनापतियों का फरसे, पैने बाण, तलवार, लाठी और तोमर इनसे मार मार कर सफाई करने लगे फिर तो बड़ा भारी कोलाहल होने लगा और जब वानर और राक्षसों का महाभयंकर घमासान युद्ध हुआ॥१७-१९॥ तब मेघनाद अपनी सब सेना को पीड़ित देखकर होम से छोड़ निकुंभिला गुफा से शीघ्र बाहर निकल आया॥२०॥ और रथ पर सवार हो हाथ में धनुष ले क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और रणभूमि में लक्ष्मणजी को युद्ध के लिये ललकार कर कहने लगा कि ॥२१॥

सौमित्रेमेघनादोऽहंमयाजीवन्नमोक्ष्यसे ॥ तत्रदृष्ट्वापितृव्यंसप्राहनिष्ठुरभाषिणम् ॥२२॥ इहैवजातः संवृद्धः

साक्षाद्भ्रातापितुर्मम ॥ यस्त्वंस्वजनमुत्सृज्यपरभृत्यत्वमागतः ॥२३॥ कथंद्रुह्यसिपुत्रायपापीयानसिदुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंदृष्ट्वाहनूमत्पृष्ठतः स्थितम् ॥२४॥ उद्यदायुधनिस्त्रिंशेरथेमहतिसंस्थितः ॥ महाप्रमाणमुद्यम्यघोरंविस्फारयन्धनुः ॥२५॥ अद्यवोमामकाबाणाः प्राणान्पास्यन्तिवानराः ॥ ततः शरंदाशरथिः सन्ध्यायामित्रकर्शनः ॥२६॥ ससर्जराक्षसेन्द्रायक्रुद्धः सर्पइवश्वसन् ॥ इन्द्रजिद्रक्तनयनोलक्ष्मणं समुदैक्षत ॥२७॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढः पुनः प्रत्याहृतेंद्रियः ॥२८॥ ददर्शावस्थितंवीरंवीरोदशरथात्मजम् ॥ सोऽभिचक्रामसौमित्रिंक्रोधसंरक्तलोचनः ॥२९॥ शरान्धनुषिसंधायलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ यदि ते प्रथमेयुद्धेनदृष्टोमेपराक्रमः ॥३०॥ अद्यत्वांदर्शयिष्यामितिष्ठेदानींव्यवस्थितः ॥ इत्युक्त्वासप्तभिर्बाणैरभिविव्याधलक्ष्मणम् ॥३१॥

हे लक्ष्मण! मैं मेघनाद हूं तू मुझसे जीता हुआ नहीं बचेगा वहां ही चाचा विभीषण को देखकर वह उससे बड़े कठोर वचन कहने लगा॥२२॥ हे विभीषण! तू राक्षसकुल में ही तो उत्पन्न हुआ और यहां ही इतना बड़ा हुआ और तू मेरे पिता का सगा भाई होकर भी अपने संगों को छोड़कर शत्रु का सेवक बना मुझ पुत्र पर क्यों क्रोध करता है। तू बड़ा पापी और दुष्टबुद्धि है। यह कहकर और हनुमानजी की पीठ पर लक्ष्मणजी को देखकर॥२३॥२४॥ अस्त्र शस्त्र और खड्गों से प्रकाशमान अपने बड़े भारी रथ में बैठा हुआ अपने बड़े भारी धनुष को चढ़ाकर और उसकी प्रत्यंचा को खैंचकर भयंकर शब्द करने लगा॥२५॥ और कहने लगा कि हे वानरो! आज मेरे बाण तुम्हारा लोहू पियेंगे। इसके पीछे क्रोधित सर्प के समान श्वास लेते हुए शत्रुनाशक दशरथनन्दन लक्ष्मणजी ने धनुष पर बाण संधान कर मेघनाद के ऊपर छोड़ा। मेघनाद ने लाल लाल आंखे करके लक्ष्मणजी की ओर देखा॥२६॥२७॥ और इन्द्र के वज्र के समान घात करनेवाले लक्ष्मणजी के बाणों से व्याकुल होकर दो घड़ी तक अचेत पड़ा रहा फिर जब होश में आया तब ॥२८॥ उस वीर मेघनाद ने वीर लक्ष्मणजी को खड़ा देखा और क्रोध से लाल लाल नेत्र करके लक्ष्मणजी के सामने आया॥२९॥ और धनुष पर बाणों को चढ़ाकर लक्ष्मणजी से यह बोला कि जो तैंने पहिले युद्ध में मेरा पराक्रम नहीं देखा है तो मैं तुझे अब दिखलाऊंगा अब तू जरा खड़ा रह। यह कहकर उसने लक्ष्मक्षजी के ऊपर सात बाण छोड़े॥३०॥३१॥

दशभिश्चहनूमन्तंतीक्ष्णधारैःशरोत्तमैः।। ततः शरशतेनैवसंप्रयुक्तेनवीर्यवान् ।।३२।। क्रोधाद्विगुणसंरब्धोनिबिभेदबिभीषणम् ।। लक्ष्मणोऽपितथाशत्रुंशरवर्षैरवाकिरत् ।।३३।। तस्यबाणैः सुसंविद्धंकवचंकाञ्चनप्रभम् ।। व्यशीर्यतरथोपस्थेतिलशः पतितंभुवि ।।३४।। ततः शरसहस्रेणसंक्रुद्धोरावणात्मजः ।। बिभेदसमरेवीरंलक्ष्मणंभीमविक्रम् ।।३५।। व्यशीर्यतापतद्दिव्यंकवचंलक्ष्मणस्यच ।। कृतप्रतिकृतान्योन्यंबभूवतुरभिद्रुतौ ।।३६।। अभीक्ष्णंनिः श्वसन्तौतौयुद्धचेतांतुमुलंपुनः ।। शरसंवृतसर्वांगौसर्वतोरुधिरोक्षितौ ।।३७।। सुदीर्घकालंतौवीरावन्योन्यंनिशितैः शरैः ।। अयुध्येतांमहासत्त्वौजयाजयविवर्जितौ ।।३८।। एतस्मिन्नन्तरेवीरोलक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ।। रावणेः सारथिंसाश्वरंथंचसमचूर्णयत् ।।३९।। चिच्छेदकार्मुकंतस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ।। सोऽन्यत्तुकार्मुकंभद्रंसज्यंचक्रेत्वरान्वितः।।४०।।तच्चापमपिचिच्छेदलक्ष्मणस्त्रिभिराशुगैः ।। तमेवछिन्नधन्वानंविव्याधानेकसायकैः ।।४१।।

और फिर उस पराक्रमी मेघनाद के पैनी धारवाले बढ़िया दश बाण हनुमानजी पर फेंके और दुगने क्रोध में भरकर सौ बाण चढ़ाकर विभीषण के ऊपर छोड़े फिर तो लक्ष्मणजी ने भी बाणों की वर्षा से शत्रु मेघनाद को ढक दिया। और उनके बाणों से कटा हुआ मेघनाद का सुवर्ण का बखतर टुकड़े टुकड़े होकर रथ पर और पृथ्वी पर गिर पड़ा।।३२-३४।। फिर मेघनाद ने बड़ा गुस्सा कर समरखेत में महापराक्रमी वीर लक्ष्मणजी को हजार बाणों से वेधा कि जिससे लक्ष्मणजी का दिव्य कवच खंड खंड होकर पृथ्वी पर जा गिरा। इस प्रकार दोनों का आपस में दौड़ दौड़ कर बराबर का युद्ध होने लगा।।३५।।३६।। और वे दोनों बारम्बार श्वास लेते हुए आपस में घमासान युद्ध करने लगे और उन दोनों के सब अंग बाणों के मारे ढक गये और ऊपर से नीचे तक लोहू से भीग गये।।३७।। वे दोनों वीर बहुत देर तक तीखे बाणों से युद्ध करते रहे परन्तु उन दोनों पराक्रमियों की हार जीत कुछ न हुई।।३८।। इस अवसर में वीर लक्ष्मणजी ने पांच बाणों से मेघनाद के रथ सारथी और घोडों का चूरा चूरा कर दिया।।३९।। और अपने हाथ की ऐसी सफाई दिखाई कि उसके धनुष की सफाई कर दी इतने में उसने क्या किया कि झड़ाके से दूसरा उत्तम धनुष लाकर उस पर रोदा चढाया ।।४०।। परन्तु लक्ष्मणजी ने उसे भी शीघ्र जानेवाले तीन बाणों से काट अलग किया और धनुष काटकर असंख्य बाणों से उस मेघनाद के खूब दांत खट्टे किये।।४१।।

इन्द्रजिल्लक्ष्मणंबाणैः शितैरादित्यसन्निभैः ॥४२॥ बिभेदवानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिशः॥ततऐन्द्रंसमादाय लक्ष्मणारावणिंप्रति ॥४३॥ सन्धायाकृष्यकर्णान्तंकार्मुकंदृढनिष्ठुरम् ॥ उवाचलक्ष्मणोवीरः स्मरन्रामपदाम्बुजम् ॥४४॥ धर्मात्मासत्यसन्धश्चरामोदाशरथिर्यदि ॥ त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनंजहिरावणिम् ॥४५॥ इत्युक्त्वाबाणमाकर्णाकृष्यतमजिह्मगम् ॥ लक्ष्मणः ससरेवीरः ससर्जेन्द्रजितंप्रति ॥४६॥ सशरः सशिरस्त्राणंनीमज्ज्वलितकुण्डलम् । प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥४७॥ ततः प्रमुदितादेवाः कीर्तयन्तो रघूत्तमम् ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षाणिस्तुवन्तश्चमुहुर्मुहुः ॥४८॥ जहर्षशक्रोभगवान्सहदेवैर्महर्षिभिः ॥ आकाशेऽपिचदेवानांशुश्रुवेदुन्दुभिस्वनः ॥४९॥ विमलंगगनंचासीत्स्थिराभूद्विश्वधारिणी ॥ निहतंरावणिं-दृष्ट्वाजयजल्पसन्वितः ॥५०॥ गतश्रमः ससौमित्रिः शंखमापूरयद्रणे ॥सिंहनादंततः कृत्वाज्याशब्दमकरोद्विभुः ॥५१॥ तेननादेनसंहृष्टावानराश्चगतश्रमाः ॥ वानरेन्द्रैश्चसहितः स्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥५२॥

फिर वह महापराक्रमी मेघनाद तीसरा धनुष ले आया और सूर्य के समान चमकते हुए पैने बाणों से पहिले तो उसने लक्ष्मणजी को घायल किया और फिर सब दिशाओं को बाणों से छाकर सब वानरों को घायल कर दिया। तदनन्तर लक्ष्मणजी ने मेघनाद के संहार के लिये धनुष पर ऐंद्र अस्त्र से अभिमंत्रित करके बाण चढ़ाया और अपने दृढ और कठिन धनुष को कान तक खैंचकर और रामजी के चरण कमलों का स्मरण करके लक्ष्मणजी बोले कि जो दशरथनंदन रामचन्द्रजी त्रिलोक में धर्मात्मा सत्य प्रतिज्ञ और अनुपम योद्धा हों तो हे बाण! तू इस मेघनाद का नाश कर॥४२-४५॥ यह कहकर और बाण को कान तक खैंचकर वीर लक्ष्मणजी ने समर में उस बाण को मेघनाद के ऊपर छोड़ा॥४६॥ उस बाण ने चमकते हुए कुंडलों से युक्त और मुकुटसहित मेघनाद के शिर को धड़ से काट पृथ्वी पर गिरा दिया॥४७॥ फिर तो देवता बड़े प्रसन्न हुए और रामजी का यश गाने लगे और आकाश से लक्ष्मणजी के ऊपर पुष्पों की वर्षा कर बारम्बार स्तुति करने लगे॥४८॥ देवता और महर्षियोंसहित इन्द्र भगवान् बड़े आनंदित हुए। और आकाश में देवताओं के नगाड़ों का शब्द सुनाई देने लगा॥४९॥ उस समय आकाश निर्मल हो गया और पृथ्वी जो राक्षसों के भार से कंपायमान हो रही थी सो स्थिर हुई और मेघनाद को मरा देखकर और देवताओं को बलिहारी २ ऐसा जय जय

शब्द करता जान उन लक्ष्मणजी के जी में आया फिर लक्ष्मणजी ने रण में शंखध्वनि करी और सिंह के समान गर्जनाकर धनुष की टंकार करी॥५०॥५१॥ उस शब्द को सुनकर बन्दर बड़े प्रसन्न हुए और उनका सब श्रम दूर हुआ। फिर लक्ष्मणजी ने प्रसन्न मन से स्तुति करते हुए ऐसे वानर और यूथपतियोंसहित चित्तमें प्रसन्न होते हुए रामजी के पास आकर उनका दर्शन किया और हनुमान और विभीषणसहित विनयपूर्वक अपने जेठे भाई सर्वव्यापक साक्षात् नारायण रघुनाथजी को प्रणाम किया और वे बोले कि रघुवंशमणि! आपकी कृपा से संग्राम में मेघनाद को मार आये॥५२-५४॥

लक्ष्मणः परितुष्टात्माददर्शाऽभ्येत्यराघवम् ॥ हनूमद्राक्षसाभ्यांचसहितोविनयान्वितः ॥५३॥ ववन्देभ्रातरं रामंज्येष्ठंनारायणंविभुम् ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठहतोरावणिराहवे ॥५४॥ श्रुत्वातल्लक्ष्मणाद्भक्त्यातमालिंग्यरघूत्तमः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्रायमुदितः सस्नेहमिदमब्रवीत्॥५५॥ साधुलक्ष्मणतुष्टोऽस्मिकर्मतेदुष्करंकृतम् ॥ मेघनादस्यनिधनेजितंसर्वमरिन्दम ॥५६॥ अहोरात्रैभिस्त्रिर्वीरः कथंचिद्विनिपातितः ॥ निःसपत्नः कृतोऽस्म्यद्यनिर्यास्यतिहिरावणः ॥५७॥ पुत्रशोकान्मयायोद्धुंतंहनिष्यामिरावणम् ॥ मेघनादंहतंश्रुत्वा-लक्ष्मणेन महाबलम् ॥५८॥ रावणः पतितोभूमौमूर्च्छितः पुनरुत्थितः ॥ विललापातिदीनात्मापुत्रशोकेन-रावणः ॥५९॥ पुत्रस्यगुणकर्माणिसंस्मरन्पर्यदेवयत् ॥ अद्यदेवगणाः सर्वेलोकपालामहर्षयः ॥६०॥ हतमिन्द्रजितंज्ञात्वासुखं स्वप्स्यन्तिनिर्भयाः ॥ इत्यादिबहुशः पुत्रलालसोविललापह ॥६१॥ ततः परमसंक्रुद्धोरावणोराक्षसाधिपः ॥उवाचराक्षसान्सर्वान्विनाशयिषुराहवे ॥६२॥ सपुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशंगतः ॥संवीक्ष्यरावणोबुद्ध्वाहन्तुंसीतां प्रदुद्रुवे ॥६३॥

लक्ष्मणजी से यह बात सुनकर रामजी ने उन्हें प्रीतिपूर्वक छाती से लगाया और उनका मस्तक सूंघकर और बड़े प्रसन्न होकर वे प्रेम से यह बोले कि ॥५५॥ हे लक्ष्मण! तुम्हारी क्या प्रंशसा करूं मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हुआ तुमने ऐसा कठिन कर्म किया है कि दूसरे से हो नहीं सकता था हे शत्रुनाशक! मेघनाद को मारकर मानो तुमने सबको जीत लिया॥५६॥ और उस वीर को तुमने तीन दिन और तीन रात में बड़ी कठिनता से मारा है। और हे लक्ष्मण! तुमने मुझे

आज शत्रुहीन कर दिया। अब पुत्र शोक के कारण मुझसे युद्ध करने के लिये रावण आवेगा सो मैं उसे मारे बिना नहीं छोड़ूंगा। इधर लक्ष्मणजी के हाथ से महाबली मेघनाद का मरण सुनकर॥५७॥४८॥ रावण पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर उठकर पुत्रशोक से दीन हो विलाप करने लगा। वह रावण पुत्र के गुण और कर्मों का स्मरण करता हुआ बड़ा शौक करने लगा कि 'आज देवगण और सब लोकपाल और महर्षिजन इन्द्रजीत को मरा हुआ जानकर निर्भय होकर सुख की नींद सोवेंगे' इत्यादि पुत्र की लालसा से उसने बहुत भांति विलाप किया॥५९-६१॥ फिर राक्षसराज रावण ने बड़ा भारी क्रोध कर सब राक्षसों से शत्रुओं को संग्राम में मारने की इच्छा प्रकट की। फिर वह शूर रावण पुत्र के मारे जाने से दुःखी क्रोध के वश हो बुद्धि से कुछ विचार सीताजी को मारने के लिये दौड़ा॥६२॥६३॥

खड्गपाणिमथायान्तं क्रुद्धंदृष्ट्वादशाननम् ॥ राक्षसीमध्यगासीताभयशोकाकुलाभवत् ॥६४॥ एतस्मिन्नन्तरेतस्यसचिवोबुद्धिमान् शुचिः ॥ सुपार्श्वोनाममेधावीररावणंवाक्यमब्रवीत् ॥६५॥ ननुनामदशग्रीवसाक्षाद्वैश्रवणानुजः ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥६६॥ अनेकगुणसम्पन्नः कथंस्त्रीवधमिच्छसि ॥ अस्माभिः सहितोयुद्धेहत्वारामंचलक्ष्मणम् ॥ प्राप्स्यसेजानकीं शीघ्रमित्युक्तः सन्यवर्तत ॥६७॥ ततोदुरात्मासुहृदानिवेदितंवचः सुधर्म्यंप्रतिगृह्यरावणः ॥ गृहंजगामाशुशुचाविमूढधीः पुनः संभांचप्रययौसुहृद्वृतः ॥६८॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे नवमः सर्गः ॥९॥

हाथ में तलवार लिये क्रोधित रावण को आता हुआ देखकर राक्षसियों के बीच में बैठी हुई सीताजी भय और शोक से व्याकुल हो गई॥६४॥ इस बीच में उसकार परम बुद्धिमान् धर्मात्मा सुपार्श्वनाम मंत्री रावण से यह बात बोला कि॥६५॥ हे रावण! तुम साक्षात् कुबेर के छोटे भाई और वेदविद्या में निपुण और यज्ञांत में स्नान करनेवाले और अपने धर्म में सावधान और अनेक गुणों से भूषित होकर अबला पर हाथ चलाने का कैसे साहस करते हो? हमारी सहायता से युद्ध में रामलक्ष्मण को मार शीघ्र ही जानकी को पाओगे। यह कहकर उसे मारने से निवारण कर दिया॥६६॥६७॥ फिर वह दुष्ट और बुद्धिहीन हितकारी मंत्री का धर्मयुक्त वचन मानकर शोक करता हुआ शीघ्र अपने स्थान को चला गया और फिर सब मंत्रियों को साथ लेकर सभा में आया॥६८॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का नवम सर्ग समाप्त हुआ॥९॥

श्रीमहादेव उवाच ।। सविचार्यसभामध्येराक्षसैः सहमन्त्रिभिः ।। निर्ययौयेऽवशिष्टास्तैराक्षसैः सहराघवम् ।।१।। शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्ज्वलन्तमिवानलम् ।। ततोरामेणनिहताः सर्वेते राक्षसायुधि ।।२।। स्वयंरामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेनवक्षसि ।। व्यथितस्त्वरितं लङ्काप्रविवेशदशाननः ।।३।। दृष्ट्वारामस्यबहुशः पौरुषं चाप्यमानुषम् ।। रावणोमारुतेश्चैव शीघ्रंशुक्रान्तिकंययौ ।।४।। नमस्कृत्यदशग्रीवः शुक्रंप्राञ्जलिरब्रवीत् भगवन्राघवेणैवंलङ्काराक्षसयूथपैः ।।५।। विनाशितामहादैत्यानिहताःपुत्रबान्धवाः ।। कथंमेदुःखसन्दोहस्त्वय तिष्ठतिसद्गुरौ ।।६।। इतिविज्ञापितोदैत्यगुरुः प्राहदशाननम् ।।होमंकुरुप्रयत्नेनरहसित्वंदशानन ।।७।। यदिविघ्नोनचेद्धोमेतर्हिहोमानलोत्थितः ।।८।। महान्रथश्चवाहाश्चचापतूणीरसायकाः ।। सम्भविष्यन्तितैर्भ र्युक्तस्त्वमजेयोभविष्यसि ।।९।। गृहाणमन्त्रान्मद्दत्तान्गच्छहोमंकुरुद्रुतम् ।। इत्युक्तस्त्वरितं गत्वारावणो राक्षसाधिपः ।।१०।। गुहांपातालसदृशींमन्दिरेस्वेचकारह ।। लङ्काद्वारकपाटादिबद्ध्वा सर्वत्रयत्नतः ।।११।। होमद्रव्याणिसम्पाद्ययान्युक्तान्याभिचारिके ।। गुहांप्रविश्यचैकान्तेमौनीहोमंप्रचक्रमे ।।१२।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! उस रावण ने सभा में पहिले तो राक्षस मंत्रियों के साथ सलाह कर फिर बचे खुचे राक्षसों को साथ लेकर रामजी के साथ युद्ध करने के लिए ऐसा निकलकर गया कि जैसे पतंगा और पतंगो को साथ लेकर भभकती हुई अग्नि में गिरने जाता है। जाने की देर थी कि रामचन्द्रजी ने युद्ध में सब राक्षसों को काल के गाल में पहुँचा दिया।।१।। और फिर राम ने स्वयं रावण की छाती में एक ऐसा पैना बाण मारा कि हाय २ करते तुरंत लंका में जा घुसा।।२।।३।। और राम का और हनुमान का बड़ा भारी अमानुष पौरुष देखकर रावण जल्दी से शुक्राचार्य के पास गया।।४।। और रावण शुक्राचार्य को प्रणाम कर हाथ जोड़ बोला कि भगवन्! राम ने राक्षस और यूथपतियोंसहित लंका का ऐसा सत्यानाश किया है कि बड़े बड़े राक्षस और मेरे पुत्र बांधव सब मार डाले सो आप सरीखे मेरे गुरु होते हुए मुझे ऐसे दुःख कैसे हो रहे हैं।।५।।६।। जब यह कहा तब शुक्राचार्य रावण से बोला कि हे रावण! तू एकांत में जाकर बड़े सावधान होकर हवन कर।।७।। जो होम में विघ्न न होगा तो होम की अग्नि में से बड़ा भारी रथ निकलेगा और घोड़े धनुष तरकस और बाण उत्पन्न होंगे। इनको पाकर तू अजेय हो जाएगा, फिर कोई तेरा बाल बांका न कर सकेगा।।८।।९।। मैं जो बातें तुझसे कहीं हैं, उन्हें गांठ बांध और शीघ्र जाकर हवन कर। जब गुरु ने यह कहा तब राक्षस

रावण ने जाकर अपने मंदिर में एक बड़ी गहरी गुफा बनाई और अच्छी तरह से लंका के चारों ओर के द्वारा और किवाड़ों को बंद कराकर और मारणकर्म में जो भी होम की सामग्रिया कही हैं उनको इकट्ठी कर आप उस एकांत गुहा में चला गया और मौन होकर होम करने लगा॥१०॥११॥१२॥

उत्थितंधूममालोक्यमहान्तंरावणानुजः ॥ रामायदर्शयामास होमधूमंभयाकुलः ॥१३॥ पश्यरामदशग्रीवोहोमंकर्तुसमारभत् ॥ यदिहोमः समाप्तः स्यात्तदाऽजेयोभविष्यति ॥१४॥ अतोविघ्नाय होमस्यप्रेषयाशुहरीश्वरान् ॥ तथेतिरामः सुग्रीवसम्मतेनाङ्गदंकपिम् ॥१५॥ हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेशमहाबलान् ॥ प्राकारंलंघयि त्वातेगत्वारावणमन्दिरम् ॥१६॥ दशकोटयः प्लवङ्गानांगत्वामन्दिररक्षकान् ॥ चूर्णयामासुरश्वांश्चगजांश्चन्यहनन्क्षणात् ॥१७॥ ततश्चसरमानामप्रभातेहस्तसंज्ञया ॥ विभीषणस्यभार्यासा होमस्थानमसूचयत् ॥१८॥ गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनैः ॥ चूर्ण यित्वामहासत्त्वः प्रविवेशमहागुहाम् ॥१९॥ दृष्ट्वादशाननंतत्रमीलिताक्षंदृढासनम् ॥ ततोऽङ्गदाज्ञयासर्वेवानराविविशुर्द्रुतम् ॥२०॥ तत्रकोलाहलंचक्रुस्ताडयन्तश्चसेवकान् ॥ सम्भाराश्चिक्षिपुस्तत्रहोमकुण्डेसमन्ततः ॥ २१॥ स्रुवमाच्छिद्यहस्ताच्चरावणस्यबलाद्रुषा ॥ तेनैवसञ्जघानाशुहनूमान्प्लवगाग्रणीः ॥२२॥ घ्नन्तिदन्तैश्चकाष्ठैश्चवानरास्तमितस्ततः ॥ नजहौरावणोध्यानंहतोऽपिविजिगीषया ॥२३॥ प्रविश्यान्तः पुरेवेश्मन्यंगदोवेगत्तरः ॥ समानयत्केशबन्धेधृत्वामन्दोदरींशुभाम् ॥२४॥ रावणस्यैवपुरतोविलपन्ती मनाथवत् ॥ विददारांगदस्तस्याः कञ्चुकींरत्नभूषिताम् ॥२५॥

फिर विभीषण ने होम के बड़े भारी धुएँ को उठा हुआ देख भय से घबराकर उस होम के धुएँ को रामजी को दिखाया॥१३॥ और कहा कि हे रामजी! देखिये रावण ने होम करना आरंभ किया है जो हवन समाप्त हो जायगा तो फिर कोई उसका बाल बांका न कर सकेगा॥१४॥ इसलिये होम में विघ्न करने के लिये आप बड़े बड़ वानरों को शीघ्र भेजिये यह सुन रामजी ने कहा अच्छा और सुग्रीव की सलाह से कपि अंगद और हनुमान आदि बड़े बड़े पराक्रमी सूर वीर वानरों को जाने की आज्ञा दी। वे लंका की छाल दीवारी लांघकर रावण के मंदिर में पहँचे। और दश करोड

वानरों ने जाकर पहिले तो मंदिर के रखवाले राक्षसों का नाश किया फिर उन्होंने हाथी घोड़े आदि का भी क्षण भर में चूरा चूरा कर डाला यह तो सब रात का कौतुक हुआ। अब सबेरा हुआ तो विभीषण की स्त्री सरमाने हाथ के इशारे से होम का स्थान दिखा दिया।।१५-१८।। इधर अंगद ने क्या किया कि गुहा के ऊपर जो पत्थर एक रखा था उसे पैरों से कुचलकर चूरा चूरा कर दिया फिर वह महाबली बड़ी लंबी गुफा में घुस गया और फिर अंगद की आज्ञा से सब वानर उसमें शीघ्र घुस गये।।१९।। वहां क्या देखते हैं कि रावण आंखे मूंदे दृढ़ आसन मारे बैठा है।।२०।। सो वानरों ने बड़ा कोलाहल मचाया और नौकरों को मारने पीटने लगे। और चारों ओर से होम की सामग्रियों को उठाकर होमकुंड में फेंक दिया।।२१।। और मुख्य वानर हनुमान क्रोध कर तुरंत रावण के हाथ से बलपूर्वक स्रुवा छीन उसीसे उसे मारने लगे।।२२।। और वानर उसे काटने लगे और होम की लकड़ियों को उठाकर चारों ओर से उसे मारने लगे परन्तु जीतने की लालसा से रावण ने पिटने पर भी ध्यान नहीं छोड़ा।।२३।। इतने में अंगद बड़े वेग से रनवास में घुसकर और सुन्दर मंदोदरी को चोटी पकड़कर घसीट लाया।।२४।। और वह रावण के सामने अनाथ की तरह विलाप करने लगी। फिर अंगद के उसकी रत्नजड़ित जरीक काम की चोली को फाड़ डाला।।२५।।

मुक्ताविमुक्ताः पतिताः समन्ताद्रत्नसंचयैः ।। श्रोणिसूत्रंनिपतितं त्रुटितंरत्नचित्रितम् ।।२६।। कटिप्रदेशाद्विस्रस्तानीवीतस्यैवपश्यतः ।। भूषणानिचसर्वाणिपतितानिसमन्ततः ।।२७।। देवगन्धर्व-कन्याश्चनीताहृष्टैः प्लवङ्गमैः ।। मन्दोदरीरुदोदाथरावणस्याग्रतोभृशम् ।।२८।। क्रोशन्तीकरुणंदीनाजगादद-शकन्धरम् ।। निर्लज्जोऽसि परैरेवंकेशपाशोविकृष्यते ।।२९।। भार्यातवैवपुरतः किंजुहोषिनलज्जसे ।। हन्यतेपश्यतोयस्यभार्यापापैश्चशत्रुभिः ।।३०।। मर्तव्यं तेनतत्रैवजीवितान्मरणंवरम् ।। हामेघनादतेमाताक्लि-श्यतेबतवानरैः ।।३१।। त्वयिजीवतिमेदुःखमीदृशंचकथंभवेत् ।। भार्यालज्जाच सन्त्यक्ताभर्त्रामिजीवितांशया ।।३२।। श्रुत्वातद्देवितंराजामन्दोदर्यादशाननः ।। उत्तस्थौखड्गमादायत्यजदेवीमितिब्रुवम् ।।३३।। जघानाङ्ग-दमव्यग्रः कटिदेशेदशाननः ततोत्सृज्ययथुः सर्वेविध्वंस्यहवनंमहत् ।।३४।। रामपार्श्वमुपागम्यतस्थुः सर्वेप्रहर्षिताः ।। रावणस्तुततोभार्यामुवाचपरिसान्त्वयन् ।।३५।।

सो उसके मोती और रत्न सब घुटकर चारों ओर बिखर गये। और भांति भांति के रत्नों से जड़ी हुई कमर की तागड़ी टूटकर गिर पड़ी।।२६।। और उस रावण के देखते देखते ऐचाखची में लहँगे की गांठ खुल गई सो वह भी कमर पर से खिसक गया और इधर मंदोदरी के सब आभूषण भी चारों ओर टूट टूट कर बिखर गये।।२७।। फिर बड़े बड़े हृष्ट पुष्ट देवता और गंधर्वों की कन्याओं को पकड़ लाये और रावण के सामने उनकी भी बड़ी दुर्दशा करने लगे यह देख मंदोदरी बहुत रोने पीटने लगी।।२८।। और दीन हो करुणास्वर से विलाप करती हुई रावण से बोली कि अरे तू बड़ा बेशर्म है तेरे सामने तेरीं स्त्री की चोटी को शत्रु इस प्रकार खैंचे और तू होम करता रहे और तुझे लाज न आवे। अरे जिसके सामने पापी शत्रु उसकी स्त्री को मारें पीटें उसे तो चुल्लूभर पानी में वहां ही डूब मरना चाहिये क्योंकि ऐसे जीने से तो मरना ही भला फिर बोली। हा मेघनाद! बड़े खेद की बात है कि वानर तेरी माता की दुर्दशा कर रहे हैं।।२९-३१।। तू जीता होता तो मुझे ऐसा दुःख क्यों होता मेरे भर्ता तो अपने जीने की आशा से अपनी स्त्री और लाज दोनों को तिलांजली दे चुका।।३२।। राजा रावण मंदोदरी के इस विलाप को सुनकर तलवार लेकर उठा और अंगद से बोला कि मेरी रानी को छोड़ दे।।३३।। और रावण ने सावधान होकर अंगद के एक तलवार मारी इतनें में सब वानर बड़े भारी होम का विध्वंस करके छोड़ छोड़ कर भाग गये।।३४।। और रामजी के पास आकर सब प्रसन्न होकर खड़े हो गये। फिर रावण मंदोदरी को समझाता हुआ बोला कि ।।३५।।

दैवाधीनमिदंभद्रेजीवताकिंनदृश्यते ।। त्यजशोकंविशालाक्षिज्ञानमालम्ब्यनिश्चितम् ।।३६।। अज्ञानप्रभवः शोकः शोकोज्ञानविनाशकृत् ।। अज्ञानप्रभवाहंधीः शरीरादिष्वनात्मसु ।।३७।। तन्मूलः पुत्रदारादिसंबन्धः संसृतिस्ततः ।। हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।।३८।। अज्ञानप्रभवाह्येतेजन्ममृत्युजरादयः ।। आत्मातुकेवलः शुद्धोव्यतिरिक्तोह्यलेपकः।।३९।।आनन्दरूपोज्ञानात्मासर्वभावविवर्जितः ।। नसंयोगोवियोगो वाविद्यतेकेनचित्सतः ।।४०।। एवंज्ञात्वास्वमात्मानंत्यजशोकमनिन्दिते ।। इदानीमेवगच्छामिहत्वारामंस-लक्ष्मणम् ।।४१।। आगमिष्यामिनोचेन्मादारयिष्यतिसायकैः ।। श्रीरामोवज्रकल्पैश्चततोगच्छामितत्पदम् ।।४२।। तदात्वयामेकर्तव्याक्रियामच्छासनात्प्रिये ।। सीतांहत्वामयासार्धंत्वंप्रवेक्ष्यसिपावकम् ।।४३।।

एवंश्रुत्वावचस्तस्यरावणस्यातिदुःखिता ।। उवाचनाथमेवाक्यंश्रृणुसत्यंतथाकुरु ।।४४।। शक्योनराघवोजेतुं त्वयाचान्यैः कदाचन् ।। रामोदेववरः साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ।।४५।। मत्स्योभूत्वापुराकल्पेमनुंवैवस्वतंप्रभुः ।। ररक्षसकलापद्भ्योराघवोभक्तवत्सलः ।।४६।।

हे प्यारी! यह बात दैवाधीन है जीते जी पुरुष को क्या क्या नहीं देखना पड़ता। यह निश्चित है इसलिये हे विशालनेत्रवाली ज्ञान के सहारे शोक को छोड़ दे।।३६।। यह शोक अज्ञान से उत्पन्न होता है और यही शोक ज्ञान को नष्ट करता है और शरीर आदि झूठे पदार्थों में अहंबुद्धि भी अज्ञान से होती है।।३७।। और अहंकार से ही स्त्री पुत्रादि का संबन्ध होता है उससे फिर संसार की कारणभूत काम की उत्पत्ति होती है और हर्ष शोक भय क्रोध लोभ मोह इच्छा जन्म मरण और वृद्धावस्था इन सबकी उत्पत्ति भी अज्ञान से है । केवल आत्मा शुद्ध मुक्त निर्लेप आनन्द स्वरूप ज्ञानस्वरूप और सुखदुःख आदि भावों से रहित है और इस सत्स्वरूप आत्मा का किसी से संयोग है और न वियोग है।।३८-४०।। इस प्रकार अपनी आत्मा को जानकर हे आनन्दी! शोक को छोड़। मैं लक्ष्मणसहित राम को मारने अब ही जाता हूं।।४१।। और हाल तो मैं उनको मारकर आऊंगा ही और नहीं तो जो वह रामचन्द्रजी अपने वज्र के समान बाणों से मुझे विदारण करेंगे तो भी मैं उनके परम पद को पाऊंगा उस समय हे प्यारी! मेरी आज्ञा से तू मेरी पारलौकिक क्रिया करके और सीता को मार कर तू मेरे साथ अग्नि में सती हो जाना।।४२।।४३।। उस रावण का यह वचन सुनकर मन्दोदरी बड़ी दुःखी हुई और बोली कि हे नाथ! मेरे सत्य वाक्यों को सुनो और वैसा ही करो।।४४।। न तुम्हारा और न दूसरों का रामजी के जीतने का किसी का बूता नहीं है। रामजी साक्षात् देव श्रेष्ठ प्रधानपुरुष और ईश्वर हैं। देखो इन्हीं प्रभु भक्तवत्सल रामजी ने पहिले कल्प में मत्स्यरूप धारण कर वैवस्वतमनु की सब आपत्तियों से रक्षा करी थी।।४५।।४६।।

रामः कूर्मोऽभवत्पूर्वंलक्षयोजनविस्तृतः ।। समुद्रमथनेपृष्ठेधारकनकाचलम् ।।४७।। हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तोहतोऽनेनमहात्मना ।। क्रोडरूपेणवपुषाक्षोणीमुद्धरताक्वचित् ।।४८।। त्रिलोककण्टकंदैत्यंहिरण्यकशिपुंपुरा ।। हतवान्नारसिंहेनवपुषारघुनन्दनः ।।४९।। विक्रमैस्त्रिभिरेवासौबलिंबद्ध्वाजगत्त्रयम् ।। आक्रम्यादात्सुरेन्द्रा-

यभृत्यायरघुसत्तमः ॥५०॥ राक्षसाः क्षत्रियाकाराजाताभूमेर्मरावहाः ॥ तान्हत्वाबहुशोरामोभुवंजित्वाह्यदात्मुनेः ॥५१॥ सएवसांप्रतंजातोरघुवंशेपरात्परः ॥ भवदर्थं रघुश्रेष्ठोमानुषत्वमुपागतः ॥५२॥ तस्यभार्याकिमर्थंवाहृतासीतावनाद्बलात् ॥ ममपुत्रविनाशार्थंस्वस्याऽपिनिधनायच ॥५३॥ इतः परंवावैदेहीं प्रेषयस्वरघूत्तमे ॥ बिभीषणायराज्यंतुदत्त्वागच्छामहेवनम् ॥५४॥ मन्दोदरीवचः श्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ कथंभद्रेरणेपुत्रान्भ्रातृन्राक्षसमण्डलम् ॥५५॥ घातयित्वाराघवेणजीवामिवनगोचरः ॥ रामेणसहयोत्स्यामिरामबाणैः सुशीघ्रगैः ॥५६॥ विदार्यमाणोयास्यामितद्विष्णोः परमंपदम् ॥ जानामिराघवंविष्णुंलक्ष्मींजानामि जानकीम् ॥ ज्ञात्वैवजानकीसीतामयानीता वनाद्बलात् ॥५७॥

इन्हीं रामजी ने पहिले समुद्र मथने के समय सौ योजन चौड़ा कच्छरूप अवतार लेकर अपनी पीठ पर मन्दराचल को धारण किया था॥४७॥ फिर इनही महात्मा रामचन्द्र से एक समय पृथ्वी का उद्धार करने के लिये वाराह का अवतार लिया और बड़े दुराचारी हिरण्याक्ष का वध किया॥४८॥ और इनही रामजी ने पूर्वकाल में नृसिंहरूप धारण कर त्रिलोकी के कंटक हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा॥४९॥ और इनही रघुकुलशिरोमणि राम ने अवतार लेकर और तीन चरणों से त्रिलोकी को नापकर तथा राजा बलि को बांधकर उस त्रिलोकी को अपने भक्त इन्द्र को दे दी थी॥५०॥ और जब पृथ्वी पर क्षत्रियों के रूप में बहुत से राक्षस उत्पन्न हो गये तब इनही रघुनाथजी ने उन्हें इक्कीस बार मारकर और पृथ्वी को जीतकर उसे कश्यपमुनि को दे दी थी॥५१॥ अब उनही परमात्मा रामचन्द्र ने तुम्हारे मारने के लिये रघुकुल में मनुष्यावतार लिया है॥५२॥ सो उनकी धर्मपत्नी सीताजी को तुम मेरे पुत्र के और अपने भी नाश के लिये भला वन से बलपूर्वक क्यों चुरा लाये॥५३॥ और अब तक जो हुआ सो हुआ अब तुम जानकीजी को तो रघुनाथजी के पास भेज दो और विभीषण को राज्य देकर चलो वन को चले चल।५४॥ मन्दोदरी का वचन सुनकर रावण उससे बोला कि हे कल्याणी! संग्राम में भाई बेटे और राक्षसगण को राम से मरवाकर वन में कैसे जीवन बिताऊं? इसलिये मैं तो राम के साथ युद्ध ही करूंगा और सुन्दर शीघ्र जानेवाले राम के बाणों से विदीर्ण होकर उन विष्णु भगवान् के परम पद को जाऊंगा। मैं जानता हूं कि राम साक्षात् विष्णु हैं और यह भी जानता हूं कि जानकीजी लक्ष्मी हैं और यही जानकर मैं

मैं जनकनन्दिनी सीता को वन से बलपूर्वक ले आया था।।५५-५७।।

रामेणनिधनंप्राप्ययास्यामीतिपरंपदम्।। विमुच्यत्वांतुसंसाराद्गमिष्यामि सह प्रिये।।५८।। परानन्दमयी-शुद्धासेव्यतेयामुमुक्षुभिः ।। तांगतिंतुगमिष्यामिहतोरामेणसंयुगे ।।५९।। प्रक्षाल्यकल्मषाणीहमुक्तिंयास्यामिदुर्लभाम् ।।६०।। क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुगंभ्रमाढचंदारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम्।। और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं संसारसागरमतीत्यहरिंव्रजामि ।।६१।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वर-संवादे युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ।।१०।।

हे प्यारी! राम के हाथ से मृत्यु पाकर और तुम्हें और संसार को छोड़कर अपने बन्धुओं समेत परम पद को पाऊंगा।।५८।। और जिस परमानन्दमयी बैकुण्डरूप शुद्ध गति को मोक्ष की इच्छा करनेवाले चाहा करते हैं उस गति को मैं राम के हाथ से संग्राम में मरकर पाऊंगा।।५९।। और हे प्यारी! इस राक्षसी शरीर से जो पाप किये हैं उन्हें धोकर दुर्लभ मुक्ति को पाऊंगा।।६०।। और हे मन्दोदरी! अपने सत्य स्वरूप को भूलना और झूठे देहादि में आत्मबुद्धि करना और रागद्वेष होना और मरण का भय ये पांच हैं जिसमें तरंगे और संसार झूठा है वा सच्चा यह संशयरूप जिसमें भ्रमर हैं और स्त्री पुत्र मित्र धन और कुटुंबी मत्स्य आदि जिसमें हैं और क्रोध जिसमें वडवानल हैं और कामदेव जिसमें जाल है ऐसे इस संसाररूपी समुद्र को तरकर मैं रामजी को पाऊंगा।।६१।। इति पण्डित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का दशम सर्ग समाप्त हुआ।।१०।।

श्रीमहादेव उवाच ।। इत्युक्त्वावचनंप्रेम्णाराज्ञीमन्दोदरीतदा ।। रावणः प्रययौयोद्धुंरामेणसहसंयुगे ।।१।। दृढंस्यन्दनमास्थायवृतोघोरैर्निशाचरैः ।। चक्रैः षोडशभिर्युक्तंसवरूथंसकूबरम् ।।२।। पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तंभयावहम् ।। सर्वास्त्रशस्त्रसहितंसर्वोपस्करसंयुतम् ।।३।। निश्चक्रामाथसहसारावणोभीषणाकृतिः ।। आयान्तंरावणंदृष्ट्वाभीषणंरणकर्कशम् ।।४।। सन्त्रस्ताभूत्तदासेनावानरीरामपालिता ।।५।। हनूमानथचोत्प्लुत्यरावणंयोद्धुमाययौ ।। आगत्यहनुमान्रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ।।६।। मुष्टिबन्धंदृढंबद्ध्वाताडयामासवेगतः ।। तेनमुष्टिप्रहारेणजानुभ्यामपतद्रथे ।।७।। मूर्च्छितोऽथमुहूर्तेनरावणः पुनरुत्थितः ।। उवाचचहनूमन्तंशू-

रोऽसिममसम्मतः ॥८॥ हनूमानाहतंधिङ्मांयस्त्वंजीवसिरावण ॥ त्वंतावन्मुष्टिनावक्षोममताडयरावण ॥९॥ पश्चान्मयाहतः प्राणान्मोक्ष्यसेनात्रसंशयः ॥ तथेतिमुष्टिना वक्षोरावणेनाऽपिताडितः ॥१०॥ विघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ ॥ संज्ञामवाप्यकपिराट्रावणंहन्तुमुद्यतः ॥११॥ ततोऽन्यत्रगतो भीत्यारावणोराक्षसाधिपः ॥ हनूमानङ्गदश्चैवनलोनीलस्तथैव च ॥१२॥ चत्वारः समवेताग्रेदृष्ट्वाराक्षसपुंगवान् ॥ अग्निवर्णंतथासर्परोमाणं खड्गरोमकम् ॥१३॥ तथावृश्चिकरोमाणंनिर्जघ्नुः क्रमशोऽसुरान् ॥ चत्वारश्चतुरोहत्वाराक्षसान्भीमविक्रमान् ॥१४॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! रावण उस समय प्रेमपूर्वक रानी मन्दोदरी से यह वचन कहकर रामजी के साथ संग्राम में युद्ध करने के लिये महल से बाहर आया॥१॥ और सोलह पहिये और सुन्दर छत्री डंडे जिसमें लग रहे हैं और पिशाचों के से मुखवाले भयंकर गधे जिसमें जुत रहे हैं कि जिसे देख डर लगे, और सब अस्त्र शस्त्र जिसमें धरे हुए हैं और युद्ध की सब सामग्री से भरे ऐसे मजबूत रथ में बैठकर और साथ में डरावने राक्षसों को लेकर वह भयंकर स्वरूप रावण एक साथ निकल रणभूमि में पहुँचा। रण में जूझनेवाले उस भयावने रावण को आया देखकर॥२-४॥ रामजी की वानरी सेना बड़ी घबराई॥५॥ इतने में हनुमानजी उछलकर रावण से युद्ध करने के लिये आ पहुँचे॥ अतुल पराक्रम हनुमानजी ने आते ही रावण की छाती में एक बड़े जोर से तुरन्त घूंसा जमाया। उस घूंसे की चोट से वह घोटुओं के बल रथ पर गिर पड़ा॥६॥७॥ और रावण दो घड़ी तक अचेत होकर फिर उठा और हनुमानजी से बोला कि मैंने जान लिया है कि तू शूर है॥८॥ हनुमानजी ने उससे कहा कि हे रावण! मुझ सरीखे शूर को धिक्कार है कि तू अभी तक जी रहा है। हे रावण! पहिले तू मेरी छाती में एक घूंसा मार॥९॥ फिर मैं तेरे एक ऐसा घूंसा जमाऊंगा कि जिससे तेरे प्राण निकल जायेंगे इसमें सन्देह नहीं है। रावण ने कहा अच्छा और उसने एक घूंसा हनुमानजी की छाती में मारा कि ॥१०॥ जिससे उनके नेत्रों में घुमेरी और थोड़ी सी मूर्च्छा आ गई। फिर हनुमानजी सचेत होकर रावण को मारने के लिये तैयार हो गये॥११॥ फिर राक्षसराज रावण डर के मारे दूसरी और लड़ने चला गया इधर हनुमान अंगद नल और नील ये चारों इकट्ठे हुए और अपने सामने अग्निवर्ण, सर्परोमाण, खड्गरोमक और वृश्चिकरोमाण इन चार बड़े बड़े

राक्षसों को देखकर उन राक्षसों को मारने लगे और क्रम क्रम से एक एक ने एक एक राक्षस को मारा। और उन चारों ने महापराक्रमी चार राक्षसों को मारकर॥१२-१४॥

सिंहनादं पृथक्कृत्वारामपार्श्वमुपागताः ॥ ततः कुद्धोदशग्रीवः संदश्यदशनच्छदम् ॥१५॥ विवृत्यनयनेक्रूरोराममेवान्वधावत॥दशग्रीवोरथस्थस्तु रामंवज्रोपमैः शरैः॥१६॥ आजघानमहाघोरैर्धाराभिरिवतोयदः ॥ रामस्यपुरतः सर्वान्बारानपिविव्यथे ॥१७॥ ततः पावकसंकाशैः शरैः काञ्च नभूषणैः ॥ अभ्यवर्षद्रणेरामोदशग्रीवंसमाहितः ॥१८॥ रथस्थंरावणंदृष्ट्वाभूमिष्ठंरघुनन्दनम् ॥ आहूयमातलिंशक्रोवचनंचेदमब्रवीत् ॥१९॥ रथेनममभूमिष्ठंशीघ्रंयाहिरघूत्तमम् ॥ त्वरितंभूतलंगत्वाकुरुकार्यममानघ ॥२०॥ एवमुक्तोऽथतंनत्वामातलिर्देवसारथिः ॥ ततोहयश्चसंयोज्यहरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥२१॥ स्वर्गाज्जयार्थंरामस्यह्युपचक्राममातलिः ॥ अब्रवीच्चततोराममप्रतर्क्यरथेस्थितः ॥ प्राञ्जलिर्देवराजेनप्रेषितोऽस्मिरघूत्तम ॥२२॥ रथोऽयंदेवराजस्यविजयायतवप्रभो ॥ प्रेषितश्चमहाराजधनुरैन्द्रंचभूषितम् ॥२३॥ अभेद्यंकवचंखड्गं दिव्यतूणीयुगंतथा ॥ आरुह्यचरथंरामरावणंजहिराक्षसम् ॥२४॥

और फिर अलग अलग सिंह के समान गर्जकर रामजी के पास आ गये। यह देख क्रूर रावण बड़ा गुस्सा हुआ और अपने होठों को चबाकर और आँखें फाड़कर रामजी के पीछे दौड़ा और रथ पर बैठे रावण ने राम के ऊपर वज्र के समान महाभयंकर बाणों की ऐसी वर्षा करी कि जैसे मेघ मूसलधारा जल बरसाता हो। और रामजी ने आगे जो सब वानर खड़े थे उनको भी मार मार कर पीड़ित कर दिया॥१५-१७॥ फिर रामचन्द्रजी ने सावधान होकर रण में अग्नि के समान जाज्वल्यमान और सुवर्ण से भूषित बाणों को रावण के ऊपर बरसाया॥१८॥ रावण को रथ पर और रामजी को भूमि पर खड़ा देखकर इन्द्रराज ने अपने सारथी मातलि को बुलाकर यह कहा कि ॥१९॥ हे मातलि! देखो रामजी पृथ्वी पर खड़े खड़े रावण से लड़ रहे हैं सो तुम मेरा रथ लेकर शीघ्र जाओ और पृथ्वीतल पर जाकर रथ पर उन्हें बैठाओ इस मेरे कामको तुरंत करो॥२०॥जब इन्द्रने यह कहा तब देवसारथी मातलिने उसको प्रणाम किया और उत्तम रथमें हरे घोड़े जोतकर॥२१॥ मातलि राम की जय के लिये स्वर्ग से भूमि पर आया और दूसरों को न दीख सके ऐसे रथ में

बैठा हुआ रामजी से हाथ जोड़कर बोला कि हे रघुवंशशिरोमणि! मुझे इन्द्रराज ने भेजा है।।२२।। और यह इन्द्रराज का रथ है आपके विजय के लिये भेजा है और हे महाराज! इसमें इन्द्र का धनुष भी धरा है।।२३।। और किसी से भिद न सके ऐसा कवच (वखतर) खड्ग और दिव्य तरकसों का जोड़ा कि जिसमें कभी बाण नहीं घटें ये सब सामग्री भेजी है सो हे रामजी! इस रथ पर सवार होकर रावण राक्षस का संहार करिये।।२४।।

मयासारथिनादेववृत्रंदेवपतिर्यथा ।। इत्युक्तस्तंपरिक्रम्य नमस्कृत्यरथोत्तमम् ।।२५।। आरुरोहरथंरामोलोकान्लक्ष्म्यानियोजयन् ।। ततोऽभवन्महायुद्धंभैरवंरोमहर्षणम् ।।२६।। महात्मनो राघवस्यरावणस्यचधीमतः ।। आग्नेयेनच आग्नेयंदैवंदैवेनराघवः ।।२७।। अस्त्रंराक्षसराजस्यजघानपरमास्त्रवित् ।। ततस्तुससृजेघोरंराक्षसश्चास्त्रमस्त्रवित् ।।२८।। क्रोधेनमहताविष्टोरामस्योपरिरावणः ।। रावणस्यधनुर्मुक्ताः सर्पाभूत्वामहाविषाः ।। शराः काञ्चनपुंखाभाराघवंपरितोऽपतन् ।।२९।। तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलंमुखैः ।। दिशश्चविदिशश्चैवव्याप्तास्तत्रतदाऽभवन्।।३०।। रामः सर्पांस्ततोदृष्ट्वासमन्तात्परिपूरितान् ।। सौपर्णमस्त्रं तद्घोरंपुरःप्रावर्तयद्रणे।।३१।।रामेणमुक्तास्तेबाणाभूत्वागरुडरूपिणः।चिच्छिदुःसर्पबाणास्तान्समन्तात्सर्पशत्रवः ।।३२।। अस्त्रेप्रतिहतेयुद्धेरामेणदशकन्धरः ।। अभ्यवर्षत्ततोरामंघोराभिः शरवृष्टिभिः ।।३३।। ततः पुनः शरानीकैराममक्लिष्टकारिणम् ।। अर्दयित्वातुघोरेणमातलिंप्रत्यविध्यत ।।३४।।

हे महाराज! मुझ सारथी की सहायता से जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था ऐसे ही आप रावण को मार अलग करो। जब उसने यह कहा तब राम ने उस उत्तम रथ की परिक्रमा कर उसको प्रणाम किया और सब लोकों को अपनी शोभा से आनंदित करते हुए उस रथ पर चढे। फिर तो महात्मा रामचन्द्रजी का और बुद्धिमान् रावण का महाभयंकर घमसान युद्ध हुआ कि जिसे देख रोंगटे खड़े हो जायं और अस्त्रविद्या में निपुण रामजी ने रावण के आग्नेय अस्त्र को आग्नेय अस्त्र से काट दिया और फिर रावण जिस देवता के मन्त्र से अभिमंत्रित करके बाण छोड़ता गया रामजी उसी देवता के मन्त्र से अपने बाण को अभिमंत्रित करके उससे रावण के बाणों को काटते चले गये फिर अस्त्र विद्या के ज्ञाता रावण ने बडे भारी क्रोध में भरकर एक बड़ा भारी अस्त्र रामजी के ऊपर छोड़ा। रावण के धनुष से छूटे हुए सुवर्ण के पंखों से

शोभायमान बाण खड़े खड़े विषधर सर्परूप होकर रामजी के चारों ओर आकर गिरने लगे॥२५-२९॥ फिर सर्प के समान मुखवाले और मुखों से अग्नि को उगलते हुए ऐसे रावण के सर्पाकार बाणों से रण में सब दिशा और विदिशा भर गई॥३०॥ फिर रामजी ने रण में उन सर्पों को सब जगह भरा देखकर रावण के सामने खड़े भयंकर गारुड़ी अस्त्र को छोड़ा॥३१॥ और रामजी के धनुष से छूटे हुए वे बाण गरुड़रूप होकर उन सर्परूप बाणों को काटने लगे क्योंकि वे सर्पों के शत्रुरूप हैं॥३२॥ जब युद्ध में रामजी ने रावण का वह भयंकर अस्त्र नाश कर दिया तब तो रावण ने रामजी के ऊपर बड़े भयंकर बाणों की वर्षा करी॥३३॥ फिर रावण ने बहुत से बाणों से सहज में कार्य कर लेनेवाले रामजी का नाक में दम करके एक बड़ा भयंकर बाण मातलि सारथी के मारा॥३४॥

पातयित्वारथोपस्थेरथकेतुंचकाञ्चनम् ॥ ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥३५॥ विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ॥ आर्ताकारंहरिंदृष्ट्वाव्यथिताश्चमहर्षयः ॥३६॥ व्यथितावानरेन्द्राश्चबभूवुः सबिभीषणाः ॥ दशास्योविंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥३७॥ ददृशेरावणस्तत्रमैनाकइवपर्वतः ॥ रामस्तुभ्रुकुटिंबद्ध्वाक्रोधसंरक्तलोचनः ॥३८॥ कोपंचकारसदृशंनिर्दहन्निवराक्षसम् ॥ धनुरादायदेवेन्द्रधनुरा-कारमद्भुतम् ॥३९॥ गृहीत्वापाणिनाबाणंकालानल समप्रभम् ॥ निर्दहन्निवचक्षुर्भ्यांददृशोरिपुमन्तिके ॥४०॥ पराक्रमंदर्शयितुंतेजसाप्रज्वलन्निव ॥ प्रचक्रमेकालरूपीसर्वलोकस्य पश्यतः ॥४१॥विकृष्यचापंराम-स्तुरावणंप्रतिविध्य च ॥ हर्षयन्वानरानीकंकालान्तकइवाबभौ ॥४२॥ क्रुद्धंरामस्यवदनंदृष्ट्वाशत्रुंप्रधावतः ॥ तत्रसुः सर्वभूतानिचचालवसुन्धरा ॥४३॥ रामंदृष्ट्वामहारौद्रमुत्पातांश्चसुदारुणाम् ॥ त्रस्तानिसर्व-भूतानिरावणंचाविशद्भयम् ॥४४॥

और सुवर्ण की बनी हुई रथ की ध्वजा को एक बाण से काटकर रथ के भीतर डाल दिया और क्रोध में मूर्च्छित होकर रावण ने बाणों से इन्द्र के घोड़ों को भी वेधा॥३५॥ उस समय रावण के पराक्रम से रामजी को घबराया हुआ देखकर देवता गन्धर्व चारण पितर और महर्षि इनको बड़ा दुःख हुआ॥३६॥ और विभीषणसहित सब वानरों के यूथपति भी बड़े व्याकुल हुए। उस समय वहां दशमुख बीस भुजावाला रावण हाथ में धनुष लिये मैनाकपर्वत के समान दिखाई पड़ता

था।।३७।। उसे देख रामजी भी भौंह चढ़ाकर और क्रोध से लाल लाल नेत्र कर।।३८।। ऐसे कुपित हुए मानो राक्षसराज को भस्म ही कर देंगे और वर्षाकाल के इन्द्रधनुष के आकार के समान आकारवाले अद्भुत धनुष को धारण करके और दूसरे प्रलयकाल की अग्नि के समान भकभकाते हुए बाण को लेकर मानों शत्रु को भस्म ही करते हुए पास खड़े हुए रावण को दीखने लगे।।३९।।४०।। और अपना पराक्रम दिखाने के लिये अपने तेज से अग्नि की तरह जाज्वल्यमान होते हुए सब लोक के देखते देखते उन्होंने काल का सा रूप धारण कर लिया।।४१।। और रामजी धनुष को खींचकर और बाणों से रावण को वेधकर वानरी सेना को प्रसन्न करते हुए काल और मृत्यु के समान शोभायमान हुए।।४२।। शत्रु के सन्मुख दौड़ते हुए रामजी का क्रोधयुक्त मुख देखकर सब प्राणियों को भय होने लगा और पृथ्वी हिलने लगी।।४३।। रामजी के महाभयंकर रूप को और बड़े बड़े भयंकर उत्पातों को देखकर सब प्राणी भयभीत हो गये और रावण को भी भय हुआ।।४४।।

विमानस्थाः सुरगणाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।। ददृशुः सुमहायुद्धलोकसंवर्तकोपमम्।। ऐन्द्रमस्त्रंसमादायरावणस्यशिरोऽच्छिनत् ।।४५।। मूर्धानोरावणस्याथबहवोरुधिरोक्षिताः ।। गगनात्प्रपतन्तिस्मतालादिवफलानिहि ।।४६।। नदिनंनचवैरात्रिर्नसन्ध्यानदिशोऽपिवा ।। प्रकाशन्तनतेद्रूपंदृश्यते तत्र सङ्गरे: ।।४७।। ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानसः ।। शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसाचैकवर्चसाम ।।४८।। न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात् ।। ततः सर्वास्त्रविद्धरिः कौसल्यानन्दवर्धनः ।।४९।। अस्त्रैश्चबहुर्भियुक्तश्चिन्तयामासराघवः ।। यैर्यैर्बाणैर्हतादैत्यामहासत्त्वपराक्रमाः ।।५०।। तएतेनिष्फलंयातारावणस्यनिपातने ।। इतिचिन्ताकुलेरामेसमीपस्थोविभीषणः ।।५१।। उवाचराघवंवाक्यं ब्रह्मदत्तवरोह्यसौ ।। विच्छिन्नाबाहवौऽप्यस्य विच्छिन्नानिशिरांसिच ।।५२।। उत्पत्स्यन्तिपुनः शीघ्रमित्याहभगवानजः ।। नाभिदेशेमृतंतस्यकुण्डलाकारसंस्थितम् ।।५३।। तच्छोषयानलास्त्रेणतस्यमृत्युस्ततोभवेत् ।। विभीषणवचः श्रुत्वारामः शीघ्रपराक्रमः ।।५४।। पावकास्त्रेणसंयोज्यनाभिंविव्याधरक्षसः ।। अनन्तरंचचिच्छेदशिरांसिचमहाबलः ।।५५।।

देवता, सिद्ध, गंधर्व और किन्नर ये विमानों पर बैठ कर संसार के प्रलयकाल के समान उस बड़े घमासान युद्ध को

देखने लगे। इतने में ही श्रीरघुनाथजी ने ऐद्र अस्त्र लेकर रावण के शिर को भुट्टा सा उड़ा दिया।।४५।। उस समय रावण के बहुत से लोहूलुलहान शिर आकाश से ऐसे गिरने लगे कि जैसे मानो तालवृक्ष से फल गिरते हों।।४६।। उस समय संग्राम में न तो दिन और न रात्रि न दिशा न विदिशा और न रावण का धड़ कुछ नहीं दीखने लगा। संग्राम में केवल रावण के शिर ही शिर दिखांई देते थे।।४७।। फिर तो रघुनाथजी मन में चकराये कि मैंने इस रावण के एक से तेजवाले शिरों को एक सौ एक बार काटा।।४८।। परंतु यह रावण अभी तक नहीं मरता। फिर संपूर्ण अस्त्रविद्या के जाननेवाले बहुत से अस्त्रों को पास धर बड़े धीर कौसल्यानन्दन रामजी विचारने लगे कि जिन जिन बाणों से मैंने बड़े बड़े शूरवीर और पराक्रमी राक्षसों को मारा।।४९।।५०।। वे ही बाण रावण के मारने में निष्फल हो गये। जब रामजी इस चिंता से व्याकुल हुए तब पास खड़े हुए विभीषण ने।।५१।। रामजी ने यह बात कही कि हे प्रभो! अजन्मा भगवान् ब्रह्माजी ने इसे यह वर दिया है कि इसके भुजा और शिर जो संग्राम में कट जायंगे वे फिर शीघ्र उत्पन्न हो जायंगे परंतु इसके नाभि के ठिकाने पर एक अमृत का कुंड है।।५२।।५३।। सो हे राम! उसे पहिले आग्नेय अस्त्र से सुखा दीजिये। विभीषण का वचन सुनकर शीघ्र पराक्रम दिखानेवाले महाबली रामजी ने बाण को आग्नेय अस्त्र से अभिमंत्रित करके पहिले रावण की नाभि को वेधा और उसके पीछे उसके शिरों को काट अलग किया।।५४।।५५।।

बाहूनपिचसंरब्धो रावणस्यरघूत्तमः ।। ततोघोरंमहाशक्तिमादायदशकन्धरः।।५६।। विभीषणवधार्थायचिक्षे-पक्रोधविह्वलः ।। चिच्छेदराघवोबाणैस्तांशितैर्हेमभूषितैः ।।५७।। दशग्रीवशिरश्छेदात्तदातेजोविनिर्गतम् ।। म्लानरूपोबभूवाथछिन्नैः शीर्षैर्भयङ्करैः ।।५८।। एकेनमुख्यशिरसाबाहुभ्यां रावणोबभौ ।। रावणस्तुपुनः क्रुद्धोनानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ।।५९।। ववर्षरामंतं रामस्तथाबाणैर्ववर्षच।।ततोयुद्धमभूद्घोरंतुमुलंलोमहर्षणम् ।।६०।। अथसंस्मारयामासमातलीराघवं तदा ।। विसृजास्त्रंवधायास्यब्राह्मंशीघ्रंरघूत्तम ।।६१।। विनाशकालः प्रथितोयः सुरैः सोऽद्यवर्तते ।। उत्तमाङ्गंनचैतस्यछेत्तव्यं राघवत्वया ।।६२।। नैवशीर्ष्णिप्रभोवध्योवध्यएवहिमर्मणि ।। ततः संस्मारितो रामस्तेनवाक्येनमातलेः ।।६३।। जग्राहसशरंदीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ।। यस्यपार्श्वेतुपवनः फलेभास्करपावकौ ।।६४।। शरीरमाकाशमयंगौरवेमेरुमन्दरौ ।।

पर्वस्वपिचविन्यस्तालोकपालामहौजसः ।।६५।। जाज्वल्यमांनवपुषाभांतंभास्करवर्चसा।।तमुग्रमस्त्रंलोकानां भयनाशनमद्भुतम् ।।६६।।

फिर रामजी ने क्रोध कर रावण की भुजाओं को भी काट डाला। फिर रावण ने क्रोध में अचेत होकर एक महाभयंकर शक्ति उठाई और विभीषण को मारने को लिये फेंकी परंतु रामजी ने उसे सुवर्ण से भूषित ऐसे पैने पैने बाणों से बीच में काट अलग करी।।५६।।५७।। इधर रावण के शिर कट जाने से रावण का तेज निकल गया और भयंकर शिर कट जाने से रावण कांतिहीन हो गया।।५८।। अब रावण के केवल एक मुख्य शिर और दो भुजा रह गई। फिर तो रावण क्रुद्ध होकर उन रामजी के ऊपर नाना भांति के अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने लगा और इधर रामजी ने भी बाणों की झड़ी लगा दी फिर तो आपस में बड़ा घमासान युद्ध हुआ कि जिससे रोंगटे खड़े हो गये।।५९।।६०।। इसके अनंतर मातलि सारथी ने रामजी को याद दिलाई कि हे रघुकुल शिरोमणि! आप इस रावण को संहार करने के लिये शीघ्र ब्रह्मास्त्र छोड़िये।।६१।। क्योंकि देवताओं ने जो रावण का मरण समय कहा है वह इस समय आ पहुँचा है इसलिये हे राघव! इसके शिर को आप न काटिये।।६२।। क्योंकि हे प्रभो! यह शिर काटने से नहीं मरेगा। इसकी मृत्यु हृदय में बाण मारने से होगी। जब मातलि के कहने से रामजी को यह स्मरण हुआ।।६३।। तब उन्होंने सर्प के समान श्वास लेते हुए प्रज्वलित बाण को लेकर कि जिस बाण के दोनों ओर पवन और जिसके फल के ऊपर सूर्य और अग्नि का वास है।।६४।। जिसका शरीर आकाश के समान व्यापक अर्थात् हिरण्यगर्भरूप है और जो भारीपन में मेरु और मंदराचल के समान है और जिसकी ग्रंथियों में महातेजस्वी लोकपाल वास करते हैं।।६५।। और जो अपने शरीर से सूर्य के समान प्रकाशमान है, ऐसे संपूर्ण लोकों के भय को नाश करनेवाले उस बड़े उग्र और अनोखे अस्त्र को।।६६।।

अभिमन्त्र्यततोरामस्तं महेषुंमहाभुजः ।। वेदप्रोक्तेनविधिना सन्दधेकार्मुकेबली ।।६७।। तस्मिन्सन्धीयमानेतु-राघवेणशरोत्तमे ।। सर्वभूतानिवित्रेसुश्चचालचवसुन्धरा ।।६८।। सरावणायसंक्रुद्धोभृशमानम्यकार्मुकम् ।। चिक्षेपपरमायत्तस्तमस्त्रंमर्मघातिनम् ।।६९।। सवज्रइवदुर्धर्षोवज्रपाणिविसर्जितः।। कृतान्तइवघोरास्योन्यप तद्रावणोरसि ।।७०।। सनिमग्नोमहाघोरः शरीरान्तकरः परः ।। बिभेदहृदयंतूर्णंरावणस्यमहात्मनः ।।७१।।

रावणस्याहरत्प्राणान्विवेशधरणीतले ॥ सशरोरावणंहत्वारामतूणीरमाविशत् ॥७२॥ तस्यहस्तात्पपाता- शुसशरंकार्मुकंमहत् ॥ गतासुर्भ्रमिवेगेनराक्षसेन्द्रोऽपतद् भुवि ॥७३॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौहतशेषाश्चराक्षसाः ॥ हतनाथा भयत्रस्ताद्रुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥७४॥ दशग्रीवस्यनिधनंविजयंराघवस्यच ॥ ततोविनेदुः संहृष्ट्वावानराजितकाशिनः ॥७५॥

महा बाहुबली रामजी ने बड़े बाण को वेद में कही हुई विधि से अभिमंत्रित करके धनुष पर चढ़ाया॥६७॥ जब रघुनाथजी ने उस उत्तम बाण को चढ़ाया तब सब प्राणी भयभीत हो गये और पृथ्वी डिगमिगाने लगी॥६८॥ फिर रामजी ने बड़े क्रोध में आकर रावण की मृत्यु के लिये मर्मघाती बाण को धनुष पर चढ़ाकर और धनुष की प्रत्यंचा को खींचकर छोड़ा॥६९॥ और इन्द्र से छोड़े हुए दुर्धर्ष वज्र के समान और यमराज के समान भयंकरमुखी वह बाण जाकर रावण की छाती में लगा॥७०॥ और फिर वह महा भयंकर बाण भीतर घुसकर और महात्मा रावण के हृदय को तत्काल वेधकर शरीर के पार हो गया॥७१॥ और रावण के प्राणों को हरकर पृथ्वीतल में घुस गया और इस प्रकार वह बाण रावण को मारकर रामजी के तरकस में आ घुसा॥७२॥ फिर रावण के हाथ से बाणसहित बड़ा धनुष तुरंत गिर गया और राक्षसराज रावण घुमेर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये॥७३॥ उसको भूमि पर पड़ा देखकर मरने से बचे हुए राक्षस अपने स्वामी के मरने से भयभीत हो चारों दिशाओं में भाग गये॥७४॥ अब तो रावण का वध और रामजी की विजय देख संग्राम को जीतने वाले वानर बड़े प्रसन्न होकर गर्जने लगे॥७५॥

वदन्तोरामविजयंरावणस्यचतद्वधम् ॥ अथान्तरिक्षेव्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ॥७६॥ पपातपुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि ॥ तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धाश्चारणाश्चदिवौकसः ॥७७॥ अथान्तरिक्षेननृतुः सर्वतोऽप्सरसोमुदा ॥ रावणस्यचदेहोत्थंज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥७८॥ प्रविवेशरघुश्रेष्ठंदेवानांपश्यतांसताम् ॥ देवाऊचुरहो- भाग्यं रावणस्यमहात्मनः ॥७९॥ वयंतुसात्विकादेवाविष्णोः कारुण्यभाजनाः ॥ भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारेपरिवर्तिनः ॥८०॥ अयंतु राक्षसः क्रूरोब्रह्महातीवतामसः ॥ परदाररतोविष्णुद्वेषीतापसहिंसकः

।।८१।। पश्यत्सुसर्वभूतेषुराममेवप्रविष्टवान् ।। एवंब्रुवत्सुदेवेषुनारदः प्राहसुस्मितः ।।८२।। श्रृणुतात्रसुरायू-यंधर्मतत्त्वविचक्षणाः ।। रावणोराघवद्वेषादनिशहृदिभावयन् ।।८३।।

और रामजी की विजय और रावण के वध को सब जगह कहने लगे। इसके अनन्तर आकाश में देवताओं के मंगलसूचक नगाड़े बजने लगे।।७६।। और चारों ओर से रामजी के ऊपर पुष्पों की वृष्टि होने लगी। और मुनि, सिद्ध, चारण और देवता रामजी की स्तुति करने लगे।।७७।। और स्वर्ग में सब जगह प्रसन्न होकर अप्सरा नाचने लगीं और रावण की देह में से सूर्य के समान प्रकाशमान ज्योति निकलकर देवताओं के देखते देखते रामजी के शरीर में घुस गई। इसे देख देवता कहने लगे कि महात्मा रावण का बड़ा भाग्य है।।७८।।७९।। हम सब देवता सत्वगुण से उत्पन्न और विष्णुभगवान् के कृपापात्र हैं तो भी भय दुःख आदि से लिप्त होकर संसार में ही भ्रमा करते हैं।।८०।। और यह क्रूर राक्षस तामसी और ब्रह्मघाती विरानी स्त्रियों में आसक्त भगवान् से द्वेष करनेवाला और तपस्वियों का नाशक।।८१।। सो सब प्राणियों के देखते देखते रामजी के शरीर में लीन हो गया। जब देवताओं ने यों कहा तब नारदजी ने हँसकर कहा कि।।८२।। हे देवताओ! तुम तो सब धर्म के तत्त्व को जानते हो इस विषय में जो कुछ मैं कहता हूं उसे सुनो कि रावण द्वेषबुद्धि से नित्य अपने हृदय में रामजी का ध्यान करता था।।८३।।

भृत्यैः सहसदा रामचरित्रंद्वेषसंयुतः ।। श्रुत्वा रामात्स्वनिधनंभयात्सर्वत्रराघवम् ।।८४।। पश्यन्ननुदिनंस्वप्ने राममेवानुपश्यति।।क्रोधोऽपिरावणस्याशुगुरुबोधाधिकोऽभवत् ।।८५।।रामेणनिहतश्चान्तेनिर्धूताशेषकल्मषः ।। रामसायुज्यमेवापरावणोमुक्तबन्धनः ।।८६।। पापिष्ठोवादुरात्मा परधनपरदारेषु सक्तोयदिस्यान्नित्यं स्नेहाद्भयाद्वार रघुकुलतिलकं भावयन्संपरेतः ।। भूत्वाशुद्धान्तरङ्गो भवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तः सद्योरामस्यविष्णोः सुरवरविनुतंयाति वैकुण्ठमाद्यम् ।।८७।। हत्वायुद्धेदशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन-

---

* दृष्टांत–एक पण्डितजी थे सो वे कथा बांचने परदेश को गये। वहां जाकर एक बुढ़िया के यहां ठहर गये। रात्रि को उसने खाट बिछा दी, उस पर खा पीकर सोये परंतु उस खाट में खटमल इतने थे कि विचारेको रात भर नींद नहीं आई, जहां देखें तहां खटमल दीखें। आखिर कोरी आंख सवेरा होगया। सवेरे कथा की ठहरी। उस समय कई मनुष्यों ने प्रश्न किया कि महाराज यह तो बताओं कि शिवजी राख में क्यों लोटते हैं और भगवान् शेष पर क्यों सोते हैं और सूर्य आकाश में क्यों भ्रमते हैं। पण्डितजीको तो खटमलोंने सताया था सो उन्होंने कह दिया कि खटमलोंके डर से। सो जिसको जिसका भय होता है उसे वही दीखता है।

अ०रा०
४१०

चापंभूमौविष्टभ्यतिष्ठन्नितरकरधृतं भ्रामयन्बाणमेकम् ।। आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुःसूर्यकोटिप्रकाशो वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातुमांवीररामः ।।८८।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ।।११।।

और द्वेष युक्त होकर ही अपने शुक आदि सेवकों से सदा रामचरित्र और अपना मरण सुनकर और भय से राम को ही सर्वत्र देखता हुआ नित्य स्वप्न में भी राम को ही देखता था। इसलिये रावण का क्रोध भी शीघ्र गुरु के सिखाये ज्ञान से अधिक हो गया।।८४।।८५।। और अंत में रामजी के हाथ से मरकर और सब पापों से छूटकर संसार बन्धन से मुक्त हों रावण ने रामजी के सायुज्य पद को पाया।।८६।। इसी प्रकार जो कोई पुरुष पापी हो, दुष्टात्मा हो, परधन हो और परस्त्री में आसक्त हो परन्तु वह नित्य स्नेह से अथवा भय से रघुकुलतिलक रामजी का ध्यान करता हुआ मरण को प्राप्त हो तो वह शुद्ध अंतःकरण होकर और सैंकड़ों जन्मों के पापों से छूटकर शीघ्र ही विष्णुभगवान् रामजी के उस आदि वैकुंठ को पाता है जिसको बड़े बड़े देवता नमस्कार करते हैं।।८७।। तीनों लोकों को दुःख देनेवाले रावण को युद्ध में मारकर बायें हाथ से धनुष को भूमि पर टेककर खड़े हुए और दूसरे हाथ से बाण को घुमाते हुए कुछ कुछ लाल नेत्रों के कोए जिनके और रावण के बाणों से विदीर्ण हो रहा है शरीर जिनका और करोड़ों सूर्यों के समान जिनका प्रकाश है और जैसा चाहिये वैसा ऊंचा नीचा है शरीर जिनका और इन्द्रराज जिनकी स्तुति कर रहे हैं, ऐसे वीरलक्ष्मी को धारण करनेवाले रामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें।।८८।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकाण्ड का एकादश सर्ग समाप्त हुआ।।११।।

लं०का०
सर्ग
११

श्रीमहादेव उवाच ।। रामोबिभीषणंदृष्ट्वाहनूमन्तंतथाङ्गदम् ।। लक्ष्मणंकपिराजं च जाम्बवन्तं तथापरान् ।।१।। परितुष्टेनमनसासवनिवाब्रवीद्वचः ।। भवतांबाहुवीर्येणनिहतोरावणोमया ।।२।। कीर्तिः स्थास्यतिवः पुण्यायावच्चन्द्र दिवाकरौ ।। कीर्तयिष्यन्ति भवतांकथां त्रैलोक्यपावनीम् ।।३।। ययोपेतांकलिहरांयास्यन्ति परमांगतिम् ।। एतस्मिन्नन्तरेदृष्ट्वारावणंपतितंभुवि: ।।४।। मन्दोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियोरावणपालिताः ।।

पतिताराावणस्याग्रेशोचन्त्यः पर्यदेवयन् ।।५।। बिभीषणः शुशोचार्तः शोकेनमहतावृतः ।। पतितोरावणस्याग्रे बहुधापर्यदेवयत् ।।६।। रामस्तुलक्ष्मणं प्राहबोधयस्वबिभीषणम् ।। करोतुभ्रातृसंस्कारं किंविलम्बेनमानद ।।७।। स्त्रियोमन्दोदरीमुख्याः पतिताविलपन्ति च ।। निवारयतुताः सर्वाराक्षसी रावणप्रियाः ।।८।। एवमुक्तोऽथरामेणलक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् ।। उवाचमृतकोपान्तेपतितंमृतकोपमम् ।।९।। शोकेनमहताविष्टं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।। यंशोचसित्वंदुःखेनकोऽयंतवबिभीषणः ।।१०।। त्वंवास्यकतमः सृष्टेः पुरेदानीमतः परम् ।। यद्वत्तोयौघपतिताः सिकतायान्तितद्वशाः ।।११।। संयुज्यन्तेवियुज्यन्तेतथाकालेनदेहिनः ।। यथाधानासुवैधानाभवन्तिनभवन्तिच ।।१२।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! इसके अनंतर श्रीरामजी ने हनुमान्, विभीषण, अंगद, लक्ष्मण, सुग्रीव और जांबवन्त आदि सबसे मन में प्रसन्न होकर यह कहा कि मैंने तुम्हारे सबके बाहुबल से रावण को मारा है।।१।।२।। जब तक सूर्य चन्द्रमा हैं, तुम्हारी पवित्र कीर्ति बनी रहेगी और तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली तुम्हारी कथा को कविलोग गान करेंगे और कलियुग के पापों को दूर करनेवाली तुम्हारी कथा का जो सेवन करेंगे वे परम गति को पावेंगे। रामजी ऐसा कह रहे थे कि उसी समय रावण को पृथ्वी पर गिरा देखकर मंदोदरी आदि रावण की रानियां रावण के आगे पड़कर छातियां पीट पीट कर शोक और विलाप करने लगीं।।३–५।। बिभीषण भी बड़े भारी शोक से व्याकुल हो शोक करने लगा और रावण के आगे गिरकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगा।।६।। यह देख रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि हे मानद! इस बिभीषण को समझाओ कि जिसमें यह अपने भाई की प्रेतक्रिया करे, अब देर करना वृथा है।।७।। और मंदोदरी आदि रानियां और वे रावण की प्यारी सब राक्षसियां जो पड़ी हुई विलाप कर रही हैं उन्हें मना कर दो।।८।। जब रामजी ने यह कहा तब लक्ष्मणजी बिभीषण के पास गये और उन्होंने मृतक रावण के पास बड़े भारी शोक से व्याकुल और मरे के समान पड़े हुए उस विभीषण से यह कहा कि हे बिभीषण! तुम दुःख से जिसका शोक कर रहे हो, यह तुम्हारा कौन है।।९।।१०।। और तुम इसके कौन हो और सृष्टि के पहिले भी तुम्हारा इसका कुछ बन्धन नहीं था। अभिमान से झूंठा मान लिया गया था जैसे जल के प्रवाह में गिरा हुआ रेणु का समूह प्रवाह के वश बहता हुआ चला

जाता है और कभी वह आपसे में मिल जाता है। कभी दूर बहकर चला जाता है वैसे ही प्राणी काल के वश कभी मिल जाते हैं, कभी बिछुड़ जाते हैं और जैसे धान भाड़ में भुनते समय कोई पास पास रहते हैं कोई कोई उचटकर ऊपर नीचे जा पड़ते हैं।।११।।१२।।

एवंभूतेषुभूतानिप्रेरितानीशमायया ।। त्वंचेमवयमन्ये चतुल्याः कालवशोद्भवाः ।।१३।। जन्ममृत्यूयदाय-स्मात्तदा तस्माद्भविष्यतः ।। ईश्वरः सर्वभूतानिभूतैः सृजतिहन्त्यजः ।।१४।। आत्मदृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि-बालवत् ।। देहेनदेहिनोजीवादेहाद्देहोऽभिजायते ।।१५।। बीजादेवयथाबीजंदेहान्यइवशाश्वतः ।। देहिदेहविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ।।१६।। नानात्वंजन्मनाशश्चक्षयोवृद्धिः क्रियाफलम् ।। द्रष्टुराभान्त्य-तद्धर्मायथाग्रेर्दारुविक्रियाः ।।१७।।

ऐसे ही ईश्वर की माया की प्रेरणा से प्राणी कभी मिलते हैं कभी अलग होते हैं और तुम हम और अन्य जो कोई हैं उन सबका काल के वश हो, सयोग वियोग होता है क्योंकि काल को सब बराबर हैं।।१३।। जब और जिसके द्वारा प्राणी की जन्म मृत्यु ईश्वर ने लिखी है उस समय उसी के द्वारा होती है। और जैसे बालक अपने सुखादि की इच्छा न कर आप ही मिट्टी के खिलौने बनाकर उनको पुत्रादि मान उनका विवाह आदि करता है और खेलकर फिर उन्हें बिगाड़ हर्ष शोक नहीं करता है, ऐसे ही ईश्वर भी अपनी माया से सब प्राणियों को प्राणियों के द्वारा रचता है और उन्हीं के द्वारा मरवा देता है। (अब जो कहा कि माता पिता को ही जगत् का कर्ता मान लो। ईश्वर की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है तहां कहते हैं कि प्राणी तो तृणमात्र भी कुछ नहीं कर सकता। फिर उत्पत्ति आदि का क्या कहना है! और माता पिता की देहमात्र ही उत्पन्न होता है और उस देह से जीव देहधारी कहाता है। कुछ आत्मा उत्पन्न नहीं होता।।१४।।१५।। जैसे बीज वृक्ष होता है और फिर उस वृक्ष से बीज होता है और फिर उससे वृक्ष होता है, ऐसे ही संसार भी अनादि काल से चला आता है। इसकी यह रीति है कि अविद्या कर्मरूप बीज से देह होता है और आत्मा उस देह में अविद्या के वश हो अहंबुद्धि (मैं हूं, मेरा है इत्यादि) करता है, उससे फिर कर्म द्वारा देह उत्पन्न होता है। इस प्रकार जब तक अविद्यारूपी बीज नष्ट नहीं होता तब तक संसार से पीछा नहीं छूटता। और जीव तो देह से भिन्न और

नित्य है। देह के सम्बन्ध से जीवात्मा देही कहाता है और देहसम्बन्ध अविद्या कल्पित होने से झूठा है। जब झूठा है तो भाई आदि में जो ममत्वबुद्धि है उसका कहना ही क्या है अर्थात् भाई आदि को अपने से जुदा मानना अथवा उनका नाश मानना सब मिथ्या है।।१६।। क्योंकि भेद जन्म, नाश, क्षय, वृद्धि और सुख दुःख आदि ये भी देहादिकों के धर्म देखे जाते हैं। आत्मा के धर्म नहीं है, जैसे जलते हुए काठ में टेढ़ापन और सीधापन काठ का धर्म है अग्नि का नहीं है।।१७।।

तइमेदेहसंयोगादात्मनाभान्त्यसद्ग्रहात् ।। यथायथातथाचान्यद्ध्यायतोसत्सदाग्रहात् ।।१८।।प्रसुप्तस्यानहं-भावात्तदाभातिनसंसृतिः ।। जावतोऽपितथातद्वद्विमुक्तस्यानहंकृतेः ।।१९।। तस्मान्मायामनोधर्मं जह्यहंममता भ्रमम् ।। रामभद्रेभगवति मनोधेह्यात्मनीश्वरे ।।२०।। सर्वभूतात्मनिपरेमायामानुषरूपिणि ।। बाह्येन्द्रियार्थ सम्बंधात्त्याजयित्वामनः शनैः ।।२१।। तत्रदोषान्दर्शयित्वारामानन्देनियोजय ।। देहबुद्ध्याभवेद्भ्राता पितामातासुहृत्प्रियः ।।२२।। विलक्षणं यदादेहाज्जानात्यात्मानमात्मना ।। तदाकः कस्यवाबन्धुर्भ्रातामाता-पितासुहृत् ।।२३।। मिथ्या ज्ञानवशाज्जातादारागारादयः सदा ।। शब्दादयश्चविषयाविविधाश्चैवसंपदः ।।२४।। बलंकोशोभृत्यवर्गोराज्यंभूमिः सुतादयः ।। अज्ञानजत्वात्सर्वेतेक्षणसङ्गमभंगुराः ।।२५।।

हे विभीषण! ये जो भेद और जन्मनाश आदि धर्म हैं वे अंतःकरण के संयोग से अहमता की बुद्धि से आत्मा में ऐसे प्रतीयमान होने लगते हैं जैसे कीड़ा भृंगी कीड़े का ध्यान करते करते वैसा ही प्रतीत होता है, असल में वह भृंगी नहीं है।।१८।। और उसे सुषुप्ति अवस्था में अहंकार के न होने से संसार नहीं प्रतीत होता है, तैसे ही तत्त्वज्ञान से जीवन्मुक्त हुए पुरुष को जीते जी अहंकार के अभाव से दुःख शोकादिरूप संसार से निवृत्ति रहती है।।१९।। इसलिये हे विभीषण! माया का विकार जो मन है और उसका धर्म जो अहंममतारूप भ्रम है उसको त्याग दो और बाहरी इन्द्रियों के शब्दादि विषयों से दोषदृष्टि करके मन को धीरे धीरे हटाकर सर्व शक्तिमान् परमात्मा ईश्वर सब प्राणियों के आत्मा माया से परे आनन्दस्वरूप और माया से मनुष्यरूप धारण करनेवाले रामचन्द्रजी में लगाओ। (जो कहो कि परमेश्वर में

मन लगाने से भी कैसे संसार छूट सकता है, तहां कहते हैं कि) देह की बुद्धि से भाई, माता, पिता, मित्र और प्यारा इन संबन्धों की प्रतीति होती है और जब परमेश्वर में मन लगाने से अंतःकरण शुद्ध हो जात है और जब उससे प्राणी आत्मा को देह से भिन्न जानता है तब कौन* किसका बन्धु, भाई, माता, पिता और मित्र है॥२०-२३॥ क्योंकि झूठे ही ज्ञानवश से स्त्री और घर आदि तथा शब्द आदि विषय और अनेक प्रकार की संपत्तियां, सेना, खजाना, सेवकों का समूह, राज्य भूमि और सुतादिक ये सब सदा अज्ञान से उत्पन्न होने के कारण क्षणभर में मिलते और क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं॥२४॥२५॥

अथोत्तिष्ठहृदारामंभावयन्भक्तिभावितम् ॥ अनुवर्तस्वराज्यादिभुञ्जन्प्रारब्धमन्वहम् ॥२६॥ भूतंभविष्यद भजन्वर्तमानमथाचरन् ॥ विहरस्वयथान्यायं भवदौषेर्नलिप्यसे ॥२७॥ आज्ञापयतिरामस्त्वांद्भ्रातुः साम्परायिकम् ॥ तत्कुरुष्वयथाशास्त्रंरुदतीश्चापियोषितः ॥२८॥ निवारयमहाबुद्धे लङ्कांगच्छंतुमाचिरम् ॥ श्रुत्वायथावद्वचनंलक्ष्मणस्यबिभीषणः ॥२९॥ त्यक्त्वाशोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपामत् ॥

---

* दृष्टांत-एक बावाजी थे, उनके पास एक बनियां आया करता था। एक दिन बावाजी ने कहा कि तू मेरा चेला हो जा। बनिये ने कहा महाराजा मैं कैसे चेला हो जाऊं, मेरे तो मां बाप और स्त्री मौजूद है और मुझसे बड़ा प्यार करते हैं। बावा ने कहा बच्चा! कोई किसी का नहीं है, उसने कहा कि कैसे मालूम पड़े? बावा बोले कि सब मालूम पड़ जाएगा, मैं तुझे योग सिखाये देता हूं सो तू घर जाकर झूठा योग साध ले, उस समय तू मरे के समान हो जायगा तब सबको परख लीजो। एक दिन बनिये ने योग साधा, इधर मय्या खाने को बुलाने गई, देखे तो कोठरी में मरा पड़ा है सो हाय हाय कर रोने लगी, बाप आया सो भी रोने लगा। लुगाई भी सिर पीटने और रोने लगी। सब अडौसी पडौसी जुड़ आये और फिर सबने कहा कि यह बावाजी के यहां जाया करे ता सो उनको बुलाओ। बावा आये वे भी सबकी तरह रोने लगे फिर कहा कि यह तो मर गया परंतु कहो तो इसके जिवा देने का उपाय करूं। तब तो माता पिता स्त्री सब पैरों में गिर गये कि महाराज! तुम्हें बड़ी सामर्थ्य है। बावा ने कहा-कच्चा दूध मंगाकर उसे एक कटोरे में भरकर उस पर मंत्र पढ़ा और कहा कि तुममें से जो कोई इस पी लेगा वह तो मर जायगा और यह जी उठेगा। यह सुन पिता बोला कि मैं नहीं पीता, मैं जिंदा रहूंगा तो बहुत लड़के हो जायंगे। मय्या बोली मेरे अभी चार छोरा और हैं, यह एक मर जायगा तो क्या होगा पर मैं भी दूध नहीं पीऊंगी। फिर स्त्री से कहा कि तू पी ले, उसने कहा कि मैं क्यों पियूं, रांड हो जाऊंगी तो भले ही हो जाऊं, सासू ससुरे रखेंगे तो यहां रहूंगी नहीं तो अपने पीहर में पीस कूट के जन्म बिताऊंगी। फिर बावा ने कहा कि तुम कोई नहीं पियो, मैं पी लूं, मैं मंत्र के जोर से मरूंगा तो हूं नहीं, सबने कहा बाबाजी तुमने यह भली कही और हाथ जोड़ पैरों पड़कर कहा कि तुम ही पी लो। तब बावा ने दूध का कटोरा पीकर जो उस पर हाथ फेरा सो वह खड़ा हो गया सुन तो वह रहा ही था। यह देख माता पिता स्त्री सब प्रसन्न हो गये फिर बावा ने बनियें से पूछा कि बच्चा बोल अब यहां रहगे कि मेरे साथ चलेगा। उसने कहा कि आपने सत्य कहा था, कोई किसी का नहीं है, मैं तुम्हारे संग चलूंगा और तुम्हारा चेला हो जाऊंगा।

विमृश्यबुद्ध्याधर्मज्ञोधर्मार्थसहितंवचः ॥३०॥ रामस्यैवानुवृत्यत्त्यर्थमुत्तरंपर्यभाषत॥नृशंसमनृतंक्रूरत्यक्तधर्म व्रतंप्रभो ॥३१॥ नार्होस्मिदेवसंस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ॥ श्रुत्वातद्वचनं प्रीतोरामोवचनमब्रवीत् ॥३२॥ मरणान्तानिवैराणिनिवृत्तंनः प्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्यसंस्कारो ममाप्येषतथातव ॥३३॥ राजाज्ञांशिरसा-धृत्वाशीघ्रमेवबिभीषणः ॥ सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिंराज्ञीमन्दोदरींतदा ॥३४॥ सान्त्वयामासधर्मात्माधर्मबुद्धि र्बिभीषणः ॥ त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थस्वबान्धवान् ॥३५॥ चित्यांनिवेश्यविधिवत्पितृमेधविधानतः ॥ आहिताग्नेर्यथाकार्यंरावणस्यविभीषणः ॥३६॥ तथैवसर्वमकरोद्बन्धुभिः सहमन्त्रिभिः ॥ ददौचपावकंतस्य-विधियुक्तंबिभीषणः ॥३७॥ स्नात्वाचैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भाभिमिश्रितान् ॥ उदकेनचसंमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥३८॥

इसलिये हे विभीषण! उठो और भक्तिभाव से हृदय में रामजी का स्मरण कर प्रारब्ध कर्म को भोगते हुए राज्य का पालन करो क्योंकि बिना भोगे प्रारब्ध कर्म का क्षय नहीं होता॥२६॥ और हे विभीषण! क्या हो गया और क्या होनेवाला है इस विचार को छोड़कर अब हाल में जो कुछ सुख दुःख है उसे शास्त्र के अनुसार अर्थात् अहंबुद्धि को छोड़कर निर्वाह करो तो तुम संसार के दोषों से लिप्त नहीं होंगे॥२७॥ अब रामजी तुम्हें यह आज्ञा देते हैं कि भाई का जो कुछ परलोक का कर्म है उसे शास्त्ररीति से करो और ये जो मंदोदरी आदि स्त्रियां रो रही हैं उन्हें हे परम चतुर! तुम समझाकर रोने से रोक दो कि जिसमें वे लंका को शीघ्र लौट जायं। लक्ष्मणजी के समयानुसार वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषण शोक और मोह को त्यागकर रामजी के पास आया और लक्ष्मणजी के कहे हुए उन धर्म और अर्थयुक्त वचनों को बुद्धि से विचार कर॥२८-३०॥ रामजी के सेवा के लिये यों कहा कि हे प्रभो! यह रावण निर्दयी, मिथ्यावादी, क्रूर, धर्म और व्रतो को छोड़नेवाला और बिरानी स्त्रियों में आसक्त था। ऐसे रावण की क्रियाकर्म मैं नहीं कर सकता। उसका वचन सुनकर रामजी बड़े प्रसन्न हुए और यह बोले कि॥३१॥३२॥ मरण तक वैर हुआ करते हैं सो रावण के मरने से हमारा प्रयोजन सिद्ध हो गया। और अब तो यह जैसा तेरा भाई है, ऐसा मेरा भी है इसलिये मरणसंस्कार करो॥३३॥ रामजी की आज्ञा को शिर पर धर कर विभीषण ने शीघ्र जाकर शांति के वचनों से

महाबुद्धिमती रानी मंदोदरी को समझाया बुझाया और फिर उस परम धर्मात्मा धर्मबुद्धि विभीषण ने रावण का देहाभिसंस्कार करने के लिये अपने बचे खुचे बान्धवों को शीघ्रता से बुलाया और धर्मज्ञ विभीषण ने रावण को पितृमेध की रीति से चिता में रखकर अग्निहोत्री को जैसा करना चाहिये उसी भांति विभीषण ने रावण का सब कर्म कर बांधव और मंत्रियोंसहित उसका विधिपूर्वक अग्निदाह किया।।३४–३७।। फिर विभीषण ने स्नान कर विधिपूर्वक गीले वस्त्र पहिने ही अंजली में जल भर कर और उसमें कुश तिल डालकर रावण को जल दिया।।३८।।

प्रदायचोदकंतस्मैमूर्ध्नाचैनंप्रणम्यच । ताः स्त्रियोऽनुनयामाससान्त्वमुक्त्वापुनः पुनः ।।३९।। गम्यतामितिताः सर्वाविविशुर्नगरंतदा ।। प्रविष्टासुचसर्वासुरक्षसीषुबिभीषणः ।।४०।। रामपार्श्वमुपागत्यतदातिष्ठद्विनीतवत् ।। रामोऽपिसहसैन्येनससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।।४१।। हर्षंलेभेरिपून्हत्वायथावृत्रंशतक्रतुः मातलिश्चतदारामंपरिक्रम्याभिवन्द्यच ।।४२।। अनुज्ञातश्चरामेणययौस्वर्गंविहायसा ।। ततोहृष्टमनारामोलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ।।४३।। विभीषणायमेलङ्कराज्यंदत्तंपुरैवहि ।। इदानीमपिगत्वात्वंलङ्कामध्येबिभीषणम् ।।४४।। अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद्विधिपूर्वकम् ।। इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः ।।४५।। लङ्कासुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः अभिषेकंशुभंचक्रेराक्षसेन्द्रस्यधीमतः ।।४६।। ततः पौरजनैः सार्धंनानोपायेनपाणिभिः ।। विभीषणः ससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः ।।४७।। दण्डप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः।।रामोविभीषणंदृष्ट्वाप्राप्तराज्यंमुदान्वितः ।।४८।। कृतकृत्यमिवात्मानममन्यतसहानुजः।।सुग्रीवंचसमालिंग्यरामोवाक्यमथाब्रवीत्।।४९।। सहायेनत्वयावीरजितोमेरावणोमहान् ।। विभीषणोऽपिलङ्कायामभिषिक्तोमयानघ।।५०।।

और रावण के अर्थ जल देकर और शिर से उसे प्रणाम करके और बारम्बार शांति के वचन कह कह कर उन मंदोदरी आदि स्त्रियों को धीरज बंधाया।।३९।। फिर विभीषण ने उन सबसे कहा कि तुम अब जाओ और वे उसकी आज्ञा से नगर में चली गई। फिर उन सब राक्षसियों के नगर में चले जाने पर विभीषण रामजी के पास आकर नम्रता से बैठ गया। इस समय रामजी सेना सुग्रीव और लक्ष्मणसहित शत्रुओं को मारकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे इन्द्र वृत्रासुर को मारकर हुआ था।।४०।।४१।। फिर मातलि रामजी की परिक्रमा और उनको प्रणाम कर रामचन्द्रजी की आज्ञा ले आकाशमार्ग

से स्वर्ग को गया। फिर रघुनाथजी मन में प्रसन्न होकर लक्ष्मणजी से कहा कि ।।४२।।४३।। मैं विभीषण को लंका का राज्य तो पहिले ही दे चुका हूं तो भी अब तुम लंका में जाकर और ब्राह्मणों से मंत्रपाठ कराकर विधिपूर्वक विभीषण का राजतिलक कर आओ। जब यह कहा तो लक्ष्मणजी वानरों को साथ लेकर शीघ्र बिदा हुए।।४४।।४५।। और समुद्र के जल से भरे हुए कलशों से लंकापुरी उस बुद्धिमान् विभीषण का सुन्दर राजतिलक किया।।४६।। फिर विभीषण हाथों में भेंट लिये पुरवासियों को तथा लक्ष्मणजी को साथ लेकर और आपभी भेंट लेकर रामजी के पास आया।।४७।। और अनायास कार्य सिद्ध करनेवाले रामजी को दंडवत् प्रणाम किया और भेंट आगे धरी। रामजी विभीषण को राजा हुआ देख बड़े प्रसन्न हुए।।४८।। और लक्ष्मणजी सहित उन्होंने अपने को कृत्यकृत्य माना और फिर सुग्रीव को छाती से लगाकर रघुनाथजी ने यह कहा कि ।।४९।। हे वीर! तेरी सहायता से मैंने बड़े भारी रावण को जीता और हे पुण्यात्मा! लंका के राज्य पर विभीषण का राजतिलक भी कर चुका।।५०।।

ततः प्राहहनूमन्तंपार्श्वस्थंविनयान्वितम् ।। विभीषणस्यानुमतेगच्छत्वंरावणालयम्।।५१।। जानक्यैसर्वमाख्याहिरावणस्यवधादिकम्।। जानक्याः प्रतिवाक्यंमेशीघ्रमेवनिवेदय।।५२।। एवमाज्ञापितोधीमान्रामेणपवनात्मजः।।प्रविवेशपुरीलङ्कांपूज्यमानोनिशाचरैः।।५३।। प्रविश्यरावणगृहंशिंशपामूलमाश्रितम् ।। ददर्शजानकींतत्रकृशांदानामनिन्दिताम् ।।५४।। राक्षसीभिः परिवृतांध्यायन्तींराममेवहि ।। विनयावनतोभूत्वाप्रणम्यपवनात्मजः ।।५५।। कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रह्वोभक्त्याग्रतः स्थितः ।। तंदृष्ट्वाजानकीतूष्णींस्थित्वापूर्वस्मृतिंययौ।।५६।।ज्ञात्वातंरामदूतंसाहर्षात्सौम्यमुखीभवत् ।। सतांसौम्यमुखींदृष्ट्वातस्यैपवननन्दनः।।रामस्यभाषितंसर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ।।५७।। देविरामः ससुग्रीवोबिभीषणसहायवान् ।। कुशलीवानराणांचसैन्यैश्चसहलक्ष्मणः ।।५८।। रावणंससुतंहत्वासबलंसहमन्त्रिभिः त्वामाहकुशलंरामोराज्येकृत्वाबिभीषणम् ।।५९।। श्रुत्वाभर्तुः प्रियंवाक्यंहर्षगद्गदयागिरा ।। किंतेप्रियंकरोम्यद्यनपश्यामिजगत्त्रये ।।६०।। समंतेप्रियवाक्यस्यरत्नान्याभरणानिच ।। एवमुक्तस्तुवैदेह्याप्रत्युवाचप्लवङ्गमः ।।६१।।

फिर उन्होंने विनयपूर्वक पास खड़े हुए हनुमानजी से कहा कि विभीषण की सलाह से तुम रावण के महल में

जाओ।।५१।। और वहां जाकर रावण के वध आदि का सब समाचार जानकी से कहो और फिर सीताजी जो कुछ उत्तर दें सो आकर मुझसे शीघ्र कहो।।५२।। इस प्रकार जब रामजी ने चतुर पवनपुत्र को आज्ञा दी तब वह लंकापुरी को गये उस समय राक्षसों ने उनका बड़ा सत्कार किया।।५३।। फिर हनुमानजी ने रावण के महल में घुसकर शिंशपावृक्ष के नीचे बैठी हुई दुर्बल और दु:खित पतिव्रता सीताजी का दर्शन किया।।५४।। सीताजी राक्षसियों के बीच रामजी का ही ध्यान करे बैठी थीं हनुमानजी ने उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम किया।।५५।। और हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक सामने खड़े हो गये उनको देखकर जानकीजी पहिले तो चुपकी हो गई फिर उनको पहिले की याद आई।।५६।। और उन वायुपुत्र को जानकर उनका हर्ष से प्रसन्न मुख हो गया। वह हनुमान उनका प्रसन्न मुख देखकर उनसे रामजी का सब संदेशा कहने लगे कि।।५७।। हे रानी! रघुनाथजी सुग्रीव सहायक विभीषण लक्ष्मणजी और सब वानरी सेनासहित कुशलपूर्वक हैं।।५८।। और पुत्र सेना और मंत्रियों सहित रावण को मारकर और विभीषण को लंका की राजगद्दी देकर उन्होंने मुझे तुमसे कुशल कहने के लिये भेजा है।।५९।। हनुमानजी के द्वारा प्यारे भर्ता रामजी का संदेशा सुनकर सीताजी बड़ी प्रसन्न हुई और गद्गदवाणी से बोली कि हे वायुपुत्र! तुमने जो इस समय मुझे प्रिय समाचार सुनाया है उसके बदले में मैं तुम्हारा क्या हित करूं तीनों लोकों में रत्न और आभूषण कोई वस्तु तुम्हारे प्यारे वाक्य के समान नहीं देखती कि जिसे देकर तुम्हारे ऋण से उरिण होऊं जब सीताजी ने यह कहा तब हनुमानजी बोले कि ।।६०।।६१।।

रत्नौघाद्विविधाद्वापिदेवराज्याद्विशिष्यते ।। हतशत्रुंविजयिनंरामंपश्यामिसुस्थिरम्।।६२।। तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मैथिलीप्राहमारुतिम् ।। सर्वेसौम्यागुणाः सौम्यत्वय्येवपरिनिष्ठिताः ।।६३।। रामंद्रक्ष्यामिशीघ्रंमामाज्ञापयतु राघवः ।। तथेतितांनमस्कृत्यययौद्रष्टुंरघूत्तमम् ।।६४।। जानक्याभाषितंसर्वंरामस्याग्रेन्यवेदयत् ।। यन्निमित्तोऽयमारम्भःकर्मणांचफलोदयः।।६५।। तांदेवींशोकसंतप्तांद्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ।। एवमुक्तोहनुमता रामोज्ञानवतांवरः ।।६६।। मायासीतांपरित्यक्तुंजानकीमनलेस्थिताम् ।। आदातुंमनसाध्यात्वारामः प्राहबिभीषणम्।।६७।।गच्छराजन्जनकजामानयाशुममान्तिकम् ।। स्नातांविरजवस्त्राढ्यांसर्वाभरण-भूषिताम् ।।६८।। विभीषणोऽपितच्छ्रुत्वाजगामसहमारुतिः ।। राक्षसीभिः सुवृद्धाभिःस्नापयित्वातु-

अ०रा०
_४१९

मैथिलीम् ॥ ६९॥

हे माता! शत्रुनाशक विजयशाली और सदा एकरस ऐसे रामजी के दर्शन करता हूं यह मुझे अनेक प्रकार के रत्नसमूहों से इन्द्र के राज्य से भी बढ़कर है (क्योंकि सब आनन्द ब्रह्मानन्द के भीतर है जब सब आनन्दों के समूह परब्रह्म रामजी को पाया फिर झूठे राज्य और रत्नों से क्या सुख हो सकता है)॥६२॥ उनका यह वचन सुनकर सीताजी ने पवनपुत्र से कहा कि हे प्रियदर्शन! जितने अच्छे अच्छे गुण हैं वे सब तुममें है॥६३॥ अब तुम जाकर रामजी से कहो कि यदि वे आज्ञा करें तो मैं शीघ्र उनका दर्शन करना चाहती हूं। "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर और उनको प्रणाम करके हनुमानजी श्रीरामजी के दर्शनों के लिये गये॥६४॥ और जानकीजी ने जो कुछ भी कहा था सो सब उन्होंने रामजी के सामने निवेदन कर दिया कि जिस सीताजी के कारण आपनो युद्ध आदि कार्यों का आरंभ किया था उनके फल की सिद्धिरूप शोक से व्याकुल उन सीतारानी को अब आप देखिये। जब हनुमानजी ने ज्ञानियों में श्रेष्ठ रामजी से यह कहा तब॥६५॥६६॥ रामजी ने माया की सीता को त्यागने के लिये और अनल में स्थित सत्य जानकीजी को ग्रहण करने के लिये मन में ध्यान कर विभीषण से कहा कि ॥६७॥ हे राक्षसराज! तुम जाओ और सीताजी को स्नान कराकर और सुन्दर नवीन वस्त्र और सब आभूषणों से सजाकर मेरे पास शीघ्र ले आओ॥६८॥ विभीषण यह सुनते ही हनुमानजी को साथ लेकर गया और बड़ी बूढ़ी राक्षसियों से सीताजी को स्नान करवाकर॥६९॥

सर्वाभरणसंपन्नामारोप्यशिबिकोत्तमे॥याष्टिकैर्बहुभिर्गुप्तांकञ्चुकोष्णीषिभिःशुभाम्॥७०॥ तांद्रष्टुमागताः सर्ववानराजनकात्मजाम् ॥ तान्वारयन्तोबहवः सर्वतोवेत्रपाणयः ॥७१॥ कोलाहलंप्रकुर्वन्तोरामपार्श्वमुपाययुः ॥ दृष्ट्वातांशिबिकारूढांदूरादथरघूत्तमः ॥७२॥ विभीषणकिमर्थंतेवानरान्वारयरन्ति हि ॥ पश्यन्तुवानराः सर्वेमैथिलींमातरंयथा ॥७३॥ पादचारेणसायातुजानकीममसन्निधिम् ॥ श्रुत्वातद्रामवचनंशिबिकादवरुह्यसा ॥७४॥ पादचारेणशनकैरागतारामसन्निधिम् ॥ रामोऽपिदृष्ट्वातांमायासीतांकार्यार्थिनिर्मिताम् ॥७५॥ अवाच्यवादान्बहुशः प्राहतांरघुनन्दनः ॥ अमृष्यमाणासासीवचनंराघवोदितम् ॥७६॥ लक्ष्मणंप्राहमेशीघ्रंप्रज्वालयहुताशनम् ॥ विश्वासार्थं हिरामस्यलोकानांप्रत्ययायाथच ॥७७॥ राघवस्यमतंज्ञा

लं०का०
सर्ग
१२

त्वालक्ष्मणोऽपितदैवहि ।। महाकाष्ठचयंकृत्वाज्वालयित्वाहुताशनम् ।।७८।।

और उनको संपूर्ण वस्त्राभरण पहिराकर एक बड़ी सुन्दर पालकी में बैठाया फिर जामा पगड़ी पहिरे हुए और सुन्दर आसा बल्लम छड़ीदार नोकरों से उनकी रक्षा कराते हुए चले।।७०।। इतने में उन जानकीजी को देखने के लिये सब वानर दौड़े परन्तु बहुत से आसेबल्लमवाले जो पालकी के चारों ओर आ रहे थे उन्होंने उन सबको रोक दिया।।७१।। फिर तो वे कोलाहल मचाते हुए रामजी के पास आए और रामचन्द्रजी ने दूर से पालकी में बैठी हुई उन जानकीजी को देखकर कहा कि ।।७२।। हे विभीषण! ये तुम्हारे नौकर वानरों को क्यों हटाते हैं सब वानर माता के समान सीताजी के भले ही दर्शन करें।।७३।। और इसलिये वह जानकीजी मेरे पास तक पालकी से उतर कर पैरों पैरों आवें।। रामजी का यह वचन सुनकर सीताजी पालकी से उतर पड़ीं और धीरे धीरे पैदल रामजी के पास आई रामजी ने कार्य के निमित्त रची हुई उन माया की सीताजी को देखकर।।७४।।७५।। उनसे बहुत से दुर्वचन कहे। फिर रामजी के वचनों को न सहकर वह सीताजी ।।७६।। लक्ष्मणजी से बोलीं कि रामजी के और सब लोकों के विश्वास के लिये तुम शीघ्र अग्नि को प्रज्वलित करो।।७७।। फिर लक्ष्मणजी ने रामजी के मन का अभिप्राय जानकर उसी समय बहुत सी लकड़ियों का ढेर लगाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित कर दी फिर शत्रुनाशक लक्ष्मणजी रघुनाथजी के पास आकर चुपके बैठ गये। फिर सीताजी ने भक्ति से रामजी की परिक्रमा कर।।७८।।

रामपार्श्वमुपागम्यतस्थौतूष्णीमरिन्दमः ।। ततः सीतापरिक्रम्यराघवंभक्तिसंयुता ।।७९।।पश्यतांसर्वलोकानां देवराक्षसयोषिताम् ।। प्रणम्यदेवताभ्यश्चब्राह्मणेभ्यश्चमैथिली ८०।। बद्धाञ्जलिपुटाचेदमुवाचाग्निसमीपगा ।। यथामेहृदयंनित्यंनापसर्पतिराघवात् ।।८१।। तथालोकस्यसाक्षीमांसर्वतः पातुपावकः ।। एवमुक्त्वातदासीतापरिक्रम्यहुताशनम् ।।८२।। विवेशज्वलंदीप्तंनिर्भयेनहृदासती ।।८३।। दृष्ट्वाततोभूतगणाः ससिद्धाः सीतांमहावह्निगतांभृशार्ताः ।। परस्परंप्राहुरहोससीतांरामः श्रियंस्वांकथमत्यजज्ज्ञः ।।८४।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेद्वादशः सर्गः ।।१२।।

और सब लोक और देवता राक्षस और इनकी स्त्रियों के देखते देखते देवता और ब्राह्मणों को प्रणाम किया। हाथ

जोड़कर और अग्नि के पास जाकर उन सीताजी ने यह कहा कि जो मेरा मन सदा रामजी को छोड़ और कहीं न जाता हो तो लोक की साक्षी यह अग्नि मेरी सब ओर से रक्षा करे। इस प्रकार कहकर सीताजी ने अग्नि की परिक्रमा करी और हृदय से निर्भय होकर वे उस प्रज्वलित अग्नि में जा बैठीं।।७९-८३।। उस समय सिद्धों सहित सब प्राणी सीताजी को अत्यन्त भभकती हुई अग्नि में प्रवेश हुई देखकर बड़े दुःखी हुए और आपस में कहने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि राम ने सर्वज्ञ होकर भी अपनी लक्ष्मी सीता को अग्नि में जलने को कैसे आज्ञा दे दी।।८४।। इति पंडित रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का बारहवां सर्ग समाप्त हुआ।।१२।।

श्रीमहादेव उवाच।।ततःशक्रः सहस्राक्षोयमश्चवरुणस्तथा।।कुबेरश्चमहातेजाः पिनाकीवृषवाहनः।।१।। ब्रह्माब्रह्मविदांश्रेष्ठोमुनिभिः सिद्धचारणैः ।। पितरोऋषयः साध्यागन्धर्वाप्सरसोरगाः ।।२।। एतेचान्येविमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्रराघवः।। अब्रुवन्परमात्मानंरामंप्राञ्जलयश्चते।।३।।कर्तात्वंसर्वलोकानांसाक्षीविज्ञानविग्रहः ।। वसूनामष्टमोऽसित्वंरुद्राणांशंकरोभवान् ।।४।। आदिकर्तासिलोकानांब्रह्मात्वंचतुराननः ।। अश्विनौघ्राणभूतौतेचक्षुषीचन्द्रभास्करौ ।।५।। लोकानामादिरन्तोऽसिनित्यएकः सदोदितः ।। सदाशुद्धः सदाबुद्धः सदामुक्तोऽगुणोऽद्वयः ।।६।। त्वन्मायासंवृतानांत्वंभासिमानुषविग्रहः।।त्वन्नामस्मरतांरामसदा भासिचिदात्मकः ।।७।। रावणेनहृतंस्थानमस्माकंतेजसासह ।। त्वयाद्यनिहतोदुष्टः पुनः प्राप्तंपदंस्वकम् ।।८।। एवंस्तुवत्सुदेवेषुब्रह्मासाक्षात्पितामहः ।। अब्रवीत्प्रणतोभूत्वारामंसत्यपथेस्थितम् ।।९।। ब्रह्मोवाच ।। वन्देदेवंविष्णुमशेषस्थितिहेतुंत्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदिभाव्यम्।।हेयाहेयद्वन्द्वविहीनंपरमेकंसत्तामात्रंसर्वहृदिस्थंदृशिरूपम् ।।१०।। प्राणापानौनिश्चयबुद्ध्याहृदिरुद्ध्वाछित्त्वासर्वंसंशयबन्धंविषयौघान्।।पश्यन्तीशंयंगतमोहायतयस्तंबन्देरामंरत्नकिरीटंरविभासम् ।।११।। मायातीतंमाधवमाद्यंजगदादिंमानातीतंमोहविनाशंमुनिवन्द्यम् ।। योगिध्येयंयोगविधानंपरिपूर्णंवन्देरामंरञ्जितलोकंरमणीयम् ।।१२।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके उपरान्त हजार नेत्रवाले इन्द्र और यम, वरुण, तेजस्वी कुबेर तथा नांदिये पर सवार महादेव, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी नारद आदि मुनि सिद्ध, चारण, पितर, ऋषि, साध्य, गंधर्व, अप्सरा और

नाग ॥१॥२॥ ये सब और इनके सिवाय और भी सुन्दर सुन्दर विमानों में बैठकर वहां आये कि जहां रामजी विराजमान थे और वे हाथ जोड़ परमात्मा रामचन्द्रजी की इस प्रकार स्तुति करने लगे कि॥३॥ आप सब लोकों के रचनेवाले अन्तर्यामी रूप से देखनेवाले विज्ञानस्वरूप हो। और वसुओं में अष्टम वसु तुम ही हो और ग्यारह रुद्रों में शंकर भी तुम ही हो॥४॥ और सब लोकों के आदि कर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी भी तुम ही हो अश्विनीकुमार तुम्हारी घ्राणेन्द्री है और सूर्य चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं॥५॥ सब लोकों के उत्पत्तिकर्ता और नाशकर्त्ता तुम ही हो तुम नित्यस्वरूप सदा उदय को प्राप्त अर्थात् रात्रिदिन के व्यवहार रहित एकरस सदा शुद्ध अर्थात् माया से भिन्न सदा ज्ञानस्वरूप, सदामुक्त, गुणरहित और अद्वितीय हो॥६॥ जो पुरुष तुम्हारी माया से मोहित हो रहे हैं उनको तुम मनुष्यरूप दीखते हो और हे राम! जो कोई तुम्हारे नाम का सदा स्मरण करते हैं उनको शुद्ध ज्ञानस्वरूप विदित होते हो॥७॥ हे राम! रावण ने अपने तेज से हमारा स्थान हर लिया था सो आज तुमने उस दुष्ट को मारा और हमने अपना अपना पद फिर पाया॥८॥ जब देवता इस प्रकार स्तुति कर चुके तब लोक के पितामह साक्षात् ब्रह्माजी नम्र होकर सत्यमार्ग में स्थित रामजी से बोले॥९॥ ब्रह्माजी ने कहा-हे राम! सबके पालन में कारणभूत आत्मज्ञानियों से हृदय में ध्यान के द्वारा जानने योग्य त्याग और ग्रहण करने योग्य सुख दुःख पाप पुण्यादि रूप द्वंद्वं से रहित सबसे परे, अद्वितीय, कूटस्थ होने से सत्तामात्र सबके हृदय में स्थित और ज्ञानस्वरूप ऐसे विष्णुभगवान् आपको प्रणाम करता हूं॥१०॥ प्राण और अपानवायु को हठयोग के द्वारा हृदय में एक कर और है अथवा नहीं अथवा निर्गुणी है कि सगुण है ऐसे ईश्वर विषयक सब संदेह को श्रवण मनन आदि से नष्ट करके मोहरहित हो सन्यासी लोग जिस ईश्वर का दर्शन करते हैं उन रत्न जटित मुकुट धारण किये और सूर्य के समान प्रकाशमान रामजी को मैं प्रणाम करता हूं॥११॥ जो राम माया के गुणों से अलग आदि जगत् के कारण देशकालादिमान रहित मोह के नाशक मुनियों से वंदनीय योगियों के ध्यान करने योग्य योग मार्ग के प्रवर्त्तक सर्वव्यापी सब लोक को प्रसन्न करनेवाले ऐसे परम सुन्दर रामजी को मैं प्रणाम करता हूं॥१२॥

भावाभावप्रत्ययहीनंभवमुख्यैर्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ॥ नित्यंशुद्धंबुद्धमनन्तंप्रणवाख्यंवन्देरामंवीर

मशेषासुरदावम् ।।१३।। त्वंमेनाथोनाथितकार्याखिलकारीमानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।। भक्त्यागम्यो भावितरूपोभवहारीयोगाभ्यासैर्भावितचेतः सचहारी।।१४।। त्वामाद्यन्तंलोकततीनांपरमीशं लोकानांनोलौकिकमानैरधिगम्यम् ।। भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयंवन्देरामंसुन्दरमिन्दीवरनीलम् ।।१५।। कोवाज्ञातुं त्वामतिमानंगतमानंमानासक्तोमाधवशक्तोमुनिमान्यम् ।। वृन्दारण्येवन्दितवृन्दारकवृन्दंवन्देरामंभवमुखवन्द्यंसुखकन्दम् ।।१६।। नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यंनित्यानन्दंनिर्विषयज्ञानमनादिम् ।। मत्सेवार्थमानुषभावंप्रतिपन्नंवन्देरामंमरकतवर्णमथुरेशम् ।।१७।।

दृश्य और अदृश्य भोगों को त्यागनेवाले शिवजी आदि जिनके चरणकमलों को पूजते हैं ऐसे नित्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप अनंत ओंकार नामक संपूर्ण असुरों के नाशक वीर रामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं।।१३।। हे राम! तुम मेरे नाथ हो क्योंकि पृथ्वीका भार दूर करने की जो मैंने प्रार्थना करी उस सबको तुमने कर दिया तुम देशकालादि मानरहित लक्ष्मी के पति और सब जगत् के धारण करनेवाले अनन्य भक्त से होने योग्य ध्यान करने से संसारी दुःख के हरनेवाले और योगाभ्यास से शुद्ध अंतःकरण में दर्शन देनेवाले हो।।१४।। तुम लोगों की परंपरा के सृष्टि और संहार करनेवाले हो लोकों के पालनकर्त्ता लौकिक प्रमाणों से न जानने योग्य और शक्ति, श्रद्धा भाव से युक्त पुरुषों से जानने योग्य ऐसे नीलकमल के समान श्याम सुन्दर रामजी को मैं प्रणाम करता हूं।।१५।। हे लक्ष्मीपते! सर्वव्यापक देशकालपरिच्छेदरहित आपको इन्द्रियों के द्वारा कौन जान सकता है। तुम मुनियों के माननीय कृष्णावतार के समय वृन्दावन में देवताओं के समूह को प्रणाम करनेवाले शिवादिक से स्तुति करने योग्य सुखदायक ऐसे आप राम को मैं प्रणाम करता हूं।।१६।। अनेकशास्त्र और वेदों से प्रतिपादन करने योग्य नित्य आनन्दस्वरूप निर्विकल्प ज्ञान के विषय उत्पत्तिरहित और मेरी सेवा के लिये नररूप धारण करनेवाले मरकतमणि के समान श्याम वर्ण और मथुरा के पति ऐसे रामजी को मैं प्रणाम करता हूं।।१७।।

श्रद्धायुक्तोयः पठतीमंस्तवमाद्यंब्राह्मंब्रह्मज्ञानविधानंभुविमर्त्यः ।। रामंश्याममंकामितकामप्रदमीशंध्यात्वाध्यातापातकजालैर्विगतः स्यात् ।।१८।। श्रुत्वास्तुतिंलोकगुरोर्विभावसुः ।। स्वाङ्केसमादायविदेहपुत्रिकाम् ।।

विभ्राजमानांविमलारुणद्युतिंरक्ताम्बरांदिव्यविभूषणान्विताम् ।।१९।। प्रोवाचसाक्षीजगतांरघूत्तमंप्रपन्नसर्वार्तिहरंहुताशनः ।। गृहाणदेवींरघुनाथजानकींपुरात्वयामय्यवरोपितांवने ।।२०।। विधाय मायाजनकात्मजांहरेदशाननप्राणविनाशनायच ।। हतो दशास्यः सहपुत्रबान्धवैर्निराकृतोऽनेनभरोभुवः प्रभो ।।२१।। तिरोहितासा प्रतिबिम्बरूपिणीकृतायदर्थंकृतकृत्यतांगता ।। ततोऽतिहृष्टांपरिगृह्यजानकींरामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्यपावकम्।।२२।।स्वाङ्केसमावेश्यसदा नपायिनींश्रियंत्रिलोकीजननींश्रियःपतिः।दृष्ट्वाथरामंजनकात्मजायुतंश्रियास्फुरन्तंसुरनायकोमुदा ।।२३।। भक्त्यागिरागद्गदयासमेत्यकृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे ।। इन्द्रउवाच ।। भजेऽहंसदाराममिन्दीवराभंभवारण्यदावानलाभाभिधानम् ।। भवानीहृदाभावितानन्दरूपंभवाभावहेतुंभवादिप्रपन्नम् ।।२४।

पृथ्वीतल पर जो मनुष्य श्रद्धा से जो कोई सब कामनाओं के देनेवाले श्यामसुन्दर रामजी का ध्यान करके इस ब्रह्मज्ञान के देनेवाले ब्रह्माजी से कहे हुए दिव्य स्तोत्र का पाठ करेगा वह ध्यान करनेवाला पातकों के जालों से मुक्त हो जायगा।।१८।। इस प्रकार ब्रह्माजी की स्तुति सुनकर अग्नि ने स्वरूप धारण किया अरुण के समान कांतिमान् रक्तवस्त्रों को धारण किये दिव्य आभूषण पहिरे ऐसी जनकनन्दिनी सीताजी को गोद में लेकर जगत् की साक्षी अग्निदेव ने भक्तों के सब दुःखों के हरनेवाले रामचन्द्रजी से कहा कि हे रघुनाथजी! पहिले वन में तुमने जो रानी जानकी को मुझे सौंपा था उसे अब ग्रहण करो।।१९।।२०।। हे प्रभो! रावण के संहार के लिये तुमने माया जाल की रची थी सो हे भगवन्! तुम पुत्र बांधवोंसहित रावण को मार चुके और इससे आपने पृथ्वी का भार उतार दिया।।२१।। और जिस प्रयोजन के लिये तुमने छायारूपिणी सीता रची थी सो अपना कार्य करके अंतर्धान हो गई यह सुन रामजी बड़े प्रसन्न हुए और अग्नि का पूजन किया फिर लक्ष्मीपति भगवान् के सदा साथ रहनेवाली माता साक्षात् लक्ष्मी सदा पवित्र ऐसी प्रसन्नमुखी जानकीजी को ग्रहण करके और अपनी गोद में बैठाया। फिर तो जानकीसहित रामजी को शोभा से प्रकाशमान् देख इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए।।२२।।२३।। और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे। इन्द्र बोले-नीलकमल के समान प्रकाशमान और संसाररूपी वन को भस्म करने के लिये जिनका नाम अग्नि के समान है और पार्वतीजी अपने हृदय में

जिनके आनन्दस्वरूप का ध्यान करती है ऐसे संसारबन्धन के नाशक और शिव आदि देवताओं से सेवित रामजी का मैं भजन करता हूं।।२४।।

सुरानीकदुःखौघनाशः कहेतुंनराकारदेहं निराकारमीड्यम् ।। परेशंपरानन्दरूपंवरेण्यंहरि राममीशंभजेभार-नाशम् ।।२५।। प्रपन्नाखिलानन्ददोऽहंप्रपन्नंप्रपन्नार्तिनिः शेषनाशाभिधानम् ।। तपोयोगयोगयोगीशभावाभि भाव्यं कपीशादिमित्रं भजेराममित्रम् ।।२६।। सदाभोगभाजां सुदूरेविभान्तं सदायोगभाजादूरे विभान्तम् ।। चिदानन्दकन्दंसदाराघवेशंविदेहात्मजानन्दरूपंप्रपद्ये ।।२७।। महायोगमाया विशेषानुयुक्तो विभासीशलीला नराकारवृत्तिः ।। त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपाभवन्तीहलोके ।।२८।। अहंमानपानाभि मत्तप्रमत्तोनवेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ।। इदानींभवत्पाद पद्मप्रसादात्त्रिलोकाधिपत्याभिमानो-विनष्टः ।।२९।।

देवताओं के दुःखसमूह को नाश करनेवाले नररूप धारण किये, निराकाररूप, स्तुति के योग्य, माया से परे, आनन्दस्वरूप सर्वश्रेष्ठ पृथ्वी का भार दूर करनेवाले और ब्रह्मादिकों के भी स्वामी ऐसे विष्णु भगवान् रामजी का मैं भजन करता हूं।।२५।। शरणागतों को संपूर्ण आनंद देनेवाले भक्तों से सेवित और जिनका नाम भक्तों के सब दुःखों का नाशक है और तप और योगबल से बड़े बड़े योगी जिनके सद्रूप का ध्यान करते हैं, ऐसे सुग्रीव आदि के मित्र सूर्यरूप रामजी का मैं भजन करता हूं।।२६।। संसारी भोग भोगनेवाले पुरुषों से सदा अत्यन्त दूर रहनेवाले और योगीश्वरों को सदा अपने पास से दर्शन देनेवाले चैतन्यस्वरूप का आनन्दकन्द और जानकीजी को आनन्द देनेवाले रघुनाथजी की मैं सदा शरण हूं।।२७।। हे ईश! तुम अपनी बड़ी भारी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से युक्त होकर लीला करने के लिये नररूप धारण कर प्रकाशमान हो रहे हो। और तुम्हारी आनन्ददायक लीलाओं की कथाओं को जो पुरुष कानों से सुनते हैं वे इस लोक में सदा आनन्दरूप हो जाते हैं।।२८।। हे ईश! मैं अहंकाररूपी मद्यपान से मतवाला हो तुम्हें भूल गया और मुझे ऐसे अभिमान था कि जैसा चक्रवर्ती राजाओं का अपने ऐश्वर्य का अभिमान होता है परंतु अब तुम्हारे चरणकमलों के प्रसाद से तीनों लोकों के स्वामीपने का सब अभिमान जाता रहा।।२९।।

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामंधराभारभूतासुरानीकदावम् ॥ शरच्चन्द्रवक्त्रंलसत्पद्मनेत्रंदुरावारपारं भजे-राघवेशम् ॥३०॥ सुराधीश नीलाभ्रनीलाङ्ग कान्तिंविराधादिरक्षोवधाल्लोक शान्तिम् ॥ किरीटादिशोभं-पुरारातिलाभं भजेरामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥३१॥ लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादि पीठेसमासीनमङ्के समाधायसीताम् ॥ स्फुरद्धेमवर्णातडित्पुञ्जभासांभजेरामचन्द्रनिवृत्ताततितन्द्रम् ॥३२॥ ततः प्रोवाच भगवान्भवान्यासहितो भवः ॥ रामंकमलपत्राक्षं विमानस्थोनभःस्थले ॥३३॥ आगमिष्याम्य योध्यायांद्रष्टुंत्वांराज्यसत्कृतम् ॥ इदानीं पश्यपित रमस्य देहस्य राघव ॥३४॥ ततोऽपश्यद्विमानस्थं रामोदशरथंपुरः ॥ नमामिशिरसापादौ मुदाभक्त्यासहानुजः ॥३५॥ आलिङ्ग्यचमूर्ध्न्यवघ्राय रामंदशरथोऽब्रवीत् ॥ तारितोस्मित्वयावत्स संसारद्दुःखसागरात् ॥३६॥ इत्युक्त्वापुनरालिङ्ग्य ययौरारामेणपूजितः ॥ रामोऽपिदेवराजं तंदृष्ट्वाप्राहकृताञ्जलिम् ॥३७॥ मत्कृते निहतान्संख्ये वानरान्पतितान् भुवि ॥ जीवयाशु सुधावृष्टचासहजितः ॥ रामोऽपिदेवराजं तंदृष्ट्वाप्राहकृताञ्जलिम् ॥३७॥ मत्कृते निहन्तान्संख्येवानरा-न्पतितान् भुवि ॥ जीवयाशुसुधावृष्टचासहस्राक्षममाज्ञया ॥३८॥

चमकते हुए रत्नजटित बाजूबन्द और हारों से शोभायमान पृथ्वी के भाररूप दैत्यकुलरूपी वन को दावाग्नि के समान भस्म करनेवाले शरद् को चन्द्रसमान जिनका मुख है, कमल से नेत्र हैं और बड़ी कठिनता से प्राप्त होने योग्य ऐसे रामजी को मैं भजता हूं॥३०॥ देवताओं के स्वामी नीलमेघ और इन्द्रनीलमणि के समान जिनके अंग की शोभा है। विराध आदि राक्षसों को मारकर लोक को शांति देनेवाले मुकुट से शोभायमान महादेवजी के परम लाभ ऐसे रघुवंश शिरोमणि रामजी का मैं भजन करता हूं॥३१॥ करोड़ों चन्द्रमाओं के समान प्रकाशमान सिंहासन के ऊपर देदीप्यमान सुवर्ण के शरीरवाली और बिजली के समूह से भी कांतिवाली सीताजी को गोद में लिये बैठे हुए और दुःख और आलस्य से रहित ऐसे रामचन्द्रजी का मैं भजन करता हूं॥३२॥ इसके उपरांत पार्वतीजीसहित आकाश में विमान पर बैठे हुए महादेवजी कमलनयन रामजीसे बोले कि॥३३॥ मैं तुम्हारी राजगद्दी उत्सव देखने के लिये अयोध्या में आऊंगा। इस समय हे राघव! इस अपने देह के पिता का दर्शन करो॥३४॥ फिर रामजी ने सामने विमान पर बैठे हुए दशरथजी के

दर्शन किये और प्रसन्न हो भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजी सहित उनके चरणों में शिर से प्रणाम किया॥३५॥ दशरथजी ने रामजी को छाती से लगाकर और उनका मस्तक सूंघकर कहा कि हे पुत्र! तुमने मुझे संसाररूपी दुःख के समुद्र से तार दिया॥३६॥ यह कहकर और रामजी को फिर छाती से लगाया और रामजी ने उनका पूजन सत्कार किया और वे चले गये। फिर रामजी ने हाथ जोड़े आगे खड़े हुए इन्द्र को देखकर उनसे बोले कि॥३७॥ हे इन्द्र! मेरे लिये संग्राम में बहुत से वानर मरकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं सो तुम मेरी आज्ञा से उन पर अमृत की वृष्टि करके शीघ्र जिला दो॥३८॥

तथेत्यमृतवृष्ट्याताञ्जीवयामासवानरान् ॥ येयेमृतामृधेपूर्वंतेतेसुप्तोत्थिताइव ॥ पर्ववद्बलिनोहृष्टारामपार्श्वमाययुः ॥३९॥ नोत्थितारांक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि ॥ बिभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥४०॥ देवमामनुगृह्णीष्वमयिभक्तिर्यदातव ॥ मङ्गलस्नानमद्यत्वं कुरुसीतासमन्वितः ॥४१॥ अलंकृत्यसहभ्रात्राश्वोगमिष्यामहेवयम् । विभीषणवचः श्रुत्वा प्रत्युवाचरघूत्तमः ॥४२॥ सुकुमारोऽति भक्तोमेभरतोमामवेक्षते ॥ जटावल्कलधारीसशब्दब्रह्मसमाहितः ॥४३॥ कथंतेनविनास्नानमलङ्कारादिकंमम ॥ अतः सुग्रीवमुख्यांस्त्वंपूजयाशुविशेषतः ॥४४॥ पूजितेषुकपीन्द्रेषुपूजितोऽहंनसंशयः ॥ इत्युक्तोराघवेणाशु स्वर्णरत्नाम्बराणिच ॥४५॥ ववर्षराक्षसश्रेष्ठोयथाकामंयथारुचि ॥ ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वारामोरत्नैश्च यूथपान् ॥४६॥ अभिनन्द्ययथान्यायंविससर्जहरीश्वरान् ॥ बिभीषणसमानीतं पुष्पकंसूर्यवर्चसम् ॥४७॥ आरुरोहततोरामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ अङ्केनिधायवैदेहींलज्जामानांयशस्विनीम् ॥४८॥

'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर इन्द्र ने अमृतवृष्टि से उन वानरों को जिला दिया और जो जो वानर संग्राम में पहिले मरे थे वे इस प्रकार उठ बैठे जैसे सोते से उठे हों और पहिले के समान बली और प्रसन्न होकर रामजी के पास आ गये॥३९॥ परंतु वहां पड़े हुए राक्षस अमृत की वर्षा से भी नहीं जिये (कारण अमृत का क्या बूता था कि रामजी की बिना इच्छा के राक्षसों को जिला सके) फिर बिभीषण ने रामजी को साष्टांग प्रणाम करक उनसे कहा कि॥४०॥ हे देवा! यदि आपकी मुझ पर प्रीति है तो मेरे ऊपर इतना अनुग्रह करिये कि आज आप सीताजीसहित यहां मंगल स्नान

करिये।।४१।। और भाई लक्ष्मणसहित वस्त्रालंकार भूषित हो कल हम सब जनें चलेंगे। विभीषण का वचन सुनकर रघुनाथजी ने उत्तर दिया कि।।४२।। हे बिभीषण! मेरे भाई भरत बड़े सुकुमार और मेरे भक्त हैं, वे मेरी राह देखते होंगे और मेरे समान जटावल्कल पहिने ओंकार के ध्यान में मगन बैठे होंगे।।४३।। उनके बिना मुझे स्नान और अलंकारादिक कैसा? इसलिये तुम सुग्रीव आदि वानरों का विशेष सत्कार कर दो परंतु शीघ्र करो, देर का काम नहीं है।।४४।। जो तुमने इन बड़े बड़े वानरों को सत्कार कर दिया तो मानो मेरा ही पूजन सत्कार हुआ, इसमें सन्देह नहीं है। जब रामजी ने यह कहा कि विभीषण ने तुरंत सुवर्ण के आभूषण रत्न और सुंदर वस्त्रों की वर्षा की सो अपनी अपनी रुचि के अनुसार जो जिसे अच्छा लगा उसने वह ले लिया। फिर उन सेनापति वानरों को रत्नों से पूजित देखकर।।४५।।४६।। और उनकी यथायोग्य बड़ाई करके इन श्रेष्ठ वानरों को हटा दिया। फिर विभीषण के लाये हुई सूर्य के समान कांतिमान अत्युत्तम पुष्पक विमान पर भगवान् बड़े पराक्रमी और धनुषधारी भाई लक्ष्मणजी के सहित चढ़े और लज्जायुक्त यशस्विनी जानकीजी को भी चढ़ाकर अपनी गोद में बिठा लिया और विमान पर बैठकर रामजी ने सब वानरों से और वानरराज सुग्रीव अंगद और बिभीषण से बोले कि तुम सब वानरों ने मिलकर मित्र का जो कुछ काम था सब कर दिया।।४७–५०।।

लक्ष्मणेनसहभ्रात्राविक्रान्तेनधनुष्मता: ।अब्रवीच्चविमानस्थ:श्रीराम: सर्ववानरान् ।।४९।। सुग्रीवं हरिराजं च अङ्गदंचबिभीषणम् ।। मित्रकार्यंकृतंसर्वंभवद्भि: सहवानरै: ।।५०।। अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगन्तुमर्हथ ।। सुग्रीवंप्रतियाह्याशु किष्किन्धांसर्वसैनिकै: ।।५१।। स्वराज्येवसङ्कायां ममभक्तोबिभीषण ।। नत्वांधर्षयितुं शक्तासेन्द्रा अपिदिवौकस: ।।५२।। अयोध्यां गन्तुमिच्छामिराजधानींपितर्मम ।। एवमुक्तास्तुरामेण वानरास्तेमहाबला: ।।५३।। ऊचु: प्राञ्जलय: सर्वेराक्षसश्चबिभीषण:।।अयोध्यां गन्तुमिच्छामस्त्वयासहरघू-त्तम: ।।५४।। दृष्ट्वात्वामभिषिक्तं कौसल्यामभिवाद्यच ।। पश्चाद् वृणीमहेराज्यमनुज्ञांदेहिन: प्रभो ।।५५।। रामस्तथेतिसुग्रीववानरै: सबिभीषण: ।। पुष्पकंसहनूमांश्चशीघ्रमारोहसांप्रतम् ।।५६।।ततस्तुपुष्पकंदिव्यं-सुग्रीव: सहसेनया ।। बिभीषणश्चसामात्ये: सर्वेचारुरुहुद्रुतम् ।।५७।।

अब मेरी आज्ञानुसार बस अपने अपने घर जाओ। और हे सुग्रीव! तुम अपनी सब सेनासहित शीघ्र किष्किन्धाकाण्ड को बिदा हो जाओ।।५१।। और हे विभीषण! तुम मेरी भक्तियुक्त होकर अपने राज्य लंका में निवास करो। इन्द्र आदि देवता भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं कर सकेंगे।।५२।। अब मैं अपने पिता की राजधानी अयोध्या को जाया चाहता हूं। जब रामजी ने बड़े बड़े बली वानरों से यह कहा तब सब वानर और राक्षस विभीषण हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे रघुनाथजी! हमारी तो यह इच्छा है कि हम आपके साथ अयोध्या को चलें।।५३।।५४।। आपके राजतिलक के आनन्द को देखकर और रानी कौसल्याजी को प्रणाम करके फिर इस अपने राज्य को करेंगे इसलिये हे प्रभो! हमें अपने साथ ले चलने की आज्ञा दीजिये।।५५।। रामजी ने कहा 'बहुत अच्छी बात है' और हे सुग्रीव! तुम वानरोंसहित विभीषण और हनुमानजी को साथ लेकर अब शीघ्र पुष्पक विमान पर चढ़ो।।५६।। फिर तो सेनासहित सुग्रीव मंत्रियोंसहित विभीषण सब शीघ्रता से दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़े।।५७।।

तेष्वारूढेषुसर्वेषुकौबेरंपरमासनम् ।। राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपातविहायसा।।५८।।बभौतेनविमानेनहंसयुक्तेन भास्वता ।। प्रहृष्टश्चतदारामश्चतुर्मुख इवापरः ।।५९।। ततोबभौभास्करबिम्बतुल्यं कुबेरयानंतपसानुलब्धम् ।। रामेणशोभांनितरांप्रपेदेसीतासमेतेसहानुजेन ।।६०।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ।।१३।। श्रीमहादेव उवाच ।। पातयित्वाततश्चक्षुः सर्वतोरघुनन्दनः ।। अब्रवीन्मैथिलीं सीतांरामः शशिनिभाननाम् ।।१।। त्रिकूटशिखराग्रस्थांपश्यलङ्कां महाप्रभाम् ।। एतांरणभुवंपश्यमांसकर्दमपङ्किलाम् ।।२।। असुराणांप्लवङ्गनामत्रवैशसनंमहत् ।। अत्रमेनिहतः शेतेरावणो राक्षसेश्वरः ।।३।। कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्याः सर्वेचात्रनिपातिताः ।। एषसेतुर्मयाबद्धः सागरेसलिलाशये ।।४।। एतच्चदृश्यतेतीर्थं सागरस्यमहात्मनः ।। सेतुबन्धमितिख्यातंत्रैलोक्येन च पूजितम् ।।५।। एतत्पवित्रं परमंदर्शनात्पातकापहम् ।। अत्ररामेश्वरोदेवोमयाशम्भुः प्रतिष्ठितः ।।६।।

और जब सब लोग बैठ गये तब कुबेर का पुष्पक विमान रघुनाथजी की आज्ञा से आकाशमार्ग से उड़कर चला।।५८।। हंसयुक्त और प्रकाशमान उस विमान पर चढ़ाकर जाते हुए प्रसन्नचित्त रामजी ऐसे शोभायमान लगे कि मानो हंस पर

चढ़े ब्रह्माजी जाते हों।।५९।। बड़े तप से प्राप्त हुआ वह कुबेर का विमान एक तो सूर्यमंडल के समान आप ही प्रकाशमान था परंतु जब लक्ष्मण जानकीसहित रामजी उस पर बैठे तब तो वह और भी शोभायमान लगने लगा।।६०।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का त्रयोदश सर्ग समाप्त हुआ।।१३।। श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जब विमान आकाशमार्ग से अयोध्या को चला तब रघुकुलनन्दन रामचन्द्रजी ने चारों ओर दृष्टि करके चन्द्रमुखी जनकनन्दिनी सीताजी से कहा कि।।१।। त्रिकूटाचल के शिखर पर वसती हुई इस अत्यत प्रकाशमान लंका को देखो और इस रणभूमि को देखो कि यहां रक्तमांस की कैसी कीचड़ हो रही है।।२।। इसी रणभूमि में राक्षसों की और वानरों की घमासानमारामारीहुई है और यहां ही राक्षसराज रावण मेरे हाथ से मरकर लोटा था।।३।। और कुंभकर्ण मेघनाद आदि सब राक्षस भी यहां ही मरकर गिरे थे और उस जल के भरे इस सागर पर मैंने पुल बंधवाया है।।४।। यह बड़े भारी समुद्र के तीर पर जो तीर्थ दीख रहा है। यह सेतुबंध के नाम से प्रसिद्ध है और यह तीनों लोक का पूजनीय है।।५।। और यह परम पवित्र और दर्शन करनेसे पातकों का नाश करनेवाला है। मैंने यहां रामेश्वर महादेवजी की स्थापना की है।।६।।

अत्रमांशरणंप्राप्तोमन्त्रिभिश्चबिभीषणः ।। एषासुग्रीवनगरीकिष्किन्धाचित्रकानना ।।७।। तत्ररामाज्ञयाताराप्रमुखाहरियोषितः ।। आनयामाससुग्रीवः सीतायाः प्रियकाम्यया ।।८।। ताभिः सहोत्थितं शीघ्रंविमानंप्रेक्ष्यराघवः ।। प्राहचाद्रिमृष्यमूकंपश्यवाल्यत्रमेहतः ।।९।। एषापञ्चवटीनामराक्षसायत्रमेहताः ।। अगस्त्यस्यसुतीक्ष्णस्य पश्याश्रमपदेशुभे ।।१०।। एतेतेतापसाः सर्वेदृश्यंतेवरवर्णिनि ।। असौ शैलवरोदेविचित्रकूटः प्रकाशते ।।११।। अत्रमांकैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ।। भरद्वाजाश्रमं पश्यदृश्यते यमुनातटे ।।१२।। एषाभागीरथीगङ्गादृश्यतेलोकपावनी ।। एषासादृश्यतेसीतेसरयूर्यूपमालिनी ।।१३।। एषासादृश्यतेऽयोध्याप्रणामंकुरुभामिनि ।। एवंक्रमेण सम्प्राप्तोभरद्वाजाश्रमंहरिः ।।१४।। पूर्णेचतुर्दशेवर्षे-पञ्चम्यांरघुनन्दनः।। भरद्वाजंमुनिंदृष्ट्वावन्देसानुजः प्रभुः ।।१५।।

यहां ही मंत्रियों सहित विभीषण मेरी शरण आया था और जिसको चारों ओर चित्र विचित्र वन लग रहा है। यह

सुग्रीव की नगरी किष्किंधा है।।७।। इस प्रकार रामजी सीताजी को मार्ग के स्थान दिखा ही रहे थे कि इतने में विमान किष्किंधा के पास आ गया सो ही रामजी की आज्ञा सुग्रीव सीताजी को प्रसन्न करने के लिये तारा आदि अपनी स्त्रियों को लिवा लाया।।८।। फिर उन स्त्रियों के सहित विमान को शीघ्र चला हुआ देखकर रामजी फिर सीताजी से कहने लगे कि देखो यह ऋष्यमूकपर्वत है, मैंने यहां बाली को मारा था।।९।। यह देखो पंचवटी है, यहां मैंने चौदह हजार राक्षसों को मारा था और वह देखो अगस्त्य और सुतीक्ष्ण ऋषियों के सुन्दर दोनों आश्रम दिखाई दे रहे हैं।।१०।। हे सुन्दरी! ये सब दंडकवन के तपस्वी जन दिखाई पड़ते हैं और हे देवी! देखो वह पर्वत में श्रेष्ठ चित्रकूटपर्वत चमक रहा है।।११।। यहां मुझे प्रसन्न करने के लिये कैकेई के पुत्र भरत आये थे। वह देखो यमुना के किनारे भरद्वाजजी का आश्रम दीख रहा है।।१२।। और वे देखो लोकों को पवित्र करनेवाली भागीरथी गंगाजी दिखाई पड़ती हैं और हे जानकी! यह जो सरयू के किनारे दिखाई दे रही है यह रघुवंशियों के यज्ञों की खंभों की कतार है।।१३।। और हे सीता! यह देखो अयोध्या दीखी, इसे प्रणाम करो। इस प्रकार सीताजी को मार्गस्थान दिखाते हुए भगवान् भरद्वाजजीके आश्रममें पहुँचे।।१४।। जिस दिन चौदहवां वर्ष पूरा हुआ उसी दिन पंचमी तिथि को लक्ष्मणजी सहित भगवान् ने भरद्वाजमुनि के दर्शन कर उनको प्रणाम किया।।१५।।

पप्रच्छमुनिमासीनंविनयेनरघूत्तमः।।शृणोषिकच्चिद्भरतः कुशल्यास्तेसहानुजः ।।१६।। सुभिक्षावर्ततेऽयोध्या-जीवन्तिचहिमातरः ।। श्रुत्वारामस्य वचनंभरद्वाजः प्रहृष्टधीः ।।१७।। प्राहसर्वेकुशलिनोभरतस्तुमहामनाः ।। फलमूलकृताहारोजटावल्कलधारकः ।।१८।। पादुके सकलं न्यस्यराज्यंत्वां सुप्रतीक्षते ।। यद्यत्कृतंत्वयाकर्मदण्डकेरघुनन्दनः ।।१९।। राक्षसानांविनाशंचसीताहरणपूर्वकम् ।। सर्वंज्ञातं मयाराम तपसातेप्रसादतः ।।२०।। त्वंब्रह्मपरमंसाक्षादादिमध्यान्तवर्जितः ।। त्वमग्रेसलिलंसृष्ट्वातत्रसुप्तोऽसिभूतकृत ।।२१।। नारायणोऽसिविश्वात्मन्नराणामन्तरात्मकः ।। त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ।।२२।। अतस्त्वंजगतामीशः सर्वलोकनमस्कृतः ।। त्वंविष्णुर्जानकीलक्ष्मीः शेषोऽयंलक्ष्मणाभिधः ।।२३।। आत्मनासृजसीदं त्वमात्मन्येवात्ममायया ।। नसज्जसेनभोवत्त्वंचिच्छक्त्यासर्वसाक्षिकः ।।२४।। बहिरन्तश्च

भूतानां त्वमेव रघुनन्दन ।। पूर्णोऽपिमूढदृष्टीनांविच्छिन्नइवलक्ष्यसे ।।२५।। जगत्त्वंजगदाधारस्त्वमेव-परिपालकः ।। त्वमेवसर्वभूतानांभोक्ताभोग्यंजगत्पते ।।२६।।

फिर रामजी ने आश्रम में बैठे हुए भरद्वाज मुनि से नम्रतापूर्वक पूछा कि आपने कुछ सुना भी है कि शत्रुघ्न सहित भरतजी कुशल से तो हैं और अयोध्या धनधान्ययुक्त तो है, मेरी माता जीती हैं। रामजी के वचन सुनकर भरद्वाजमुनि प्रसन्न होकर बोले कि हे राघव! सब कुशलपूर्वक हैं। और महात्मा भरत फल मूल का आहार करते हैं। जटा और छाल के वस्त्र धारण किये हैं।।१६–१८।। और सब राज्य तुम्हारी चरण पादुकाओं को समर्पण कर वह तुम्हारे आने की राह देख रहे हैं। और हे रघुनन्दन! दंडकारण्यवन में जो तुमने राक्षसों का नाश आदि कर्म किया है और हे राम! जैसे जैसे सीताहरण हुआ था यह सब मैंने तुम्हारी कृपा से तप के बल से जान लिया था।।१९।।२०।। तुम आदि मध्य और अंत रहित साक्षात् परब्रह्म हो और तुमने पहिले जल को रचकर उस पर शयन किया था इसलिये तुम नारायण* हो। तुमने ही संसार को रचा है, तुम ही विश्वरूप और सब जीवों के अंतर्यामी हो और जलशायी तुम्हारी मूर्ति के नाभिकमल से लोकों के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं।।२१।।२२।। इसलिये तुम जगत् के स्वामी हो और सब लोक तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम साक्षात् विष्णु भगवान् हो, जानकीजी लक्ष्मी हैं और लक्ष्मणजी शेषजी का अवतार हैं।।२३।। तुम अधिष्ठानरूप से इस जगत् को अपनी माया से अपनी ही आत्मा में रचते हो और अपनी चित् शक्ति से आकाश के समान कहीं लिप्त नहीं होते किन्तु सबके साक्षीरूप होकर रहते हो।।२४।। हे रघुनन्दन! सब प्राणियों के बाहर भीतर तुम ही व्याप्त हो रहे हो परंतु जिनकी दृष्टि अज्ञान से ढ़क रही है उनको तुम मनुष्य से जान पड़ते हो।।२५।। और हे जगत्पते! तुम ही जगत् हो, तुम ही जगत् के आधार हो, तुम ही जगत् के पालनकर्ता हो। तुम ही सब प्राणियों के भोक्ता और तुम ही अन्नरूप हो।।२६।।

दृश्येंश्रूयतेयद्यत्स्मर्यतेवारघूत्तम ।। त्वमेवसर्वमखिलंत्वद्विनान्यन्नकिञ्चन ।।२७।। मायासृजतिलोकांश्च

---

* नीर नाम है जल का, उस पर जो शयन करें उसे नारायण कहते हैं।

स्वगुणै रहमादिभिः ।। त्वच्छक्तिप्रेरितारामतस्मात्त्वय्युपचर्यते ।।२८।। यथाचुम्बकसान्निध्याच्चलन्त्येवाय आदयः जडास्तथात्वया दृष्टामायासृजतिवैजगत् ।।२९।। देहद्वयमदेहस्यतवविश्वंरिरक्षिषोः ।। विराट्स्थूलं-शरीरंतेसूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम् ।।३०।। विराजः सम्भवन्त्येते अवताराः सहस्रशः ।। कार्यान्तेप्रविशन्त्येवविराजं रघुनन्दन ।।३१।। अवतारकथांलोकेयेगायन्तिगृणन्ति च ।। अनन्यमनसोमुक्तिस्तेषामेवरघूत्तम ।। त्वंब्रह्मणापुराभूमेर्भारहारायराघव ।।३२।। प्रार्थितस्तपसातुष्टस्त्वंजातोऽसिरघोः कुले ।।३३।। देवकार्यम-शेषेणकृतंतेरामदुष्करम् ।। बहुवर्षसहस्राणिमानुषंदेहमाश्रितः ।।३४।। कुर्वन्दुष्करकर्माणिलोकद्वयहितायच ।। पापहारीणि भुवनंयशसापूरयिष्यसि ।।३५।।

हे रामजी! जो कुछ दीखता है, सुनाई देता है वा स्मरण होता है वह सब तुम ही हो। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो तुम्हारे बिना हो।।२७।। और हे राम! तुम्हारी प्रेरणा से तुम्हारी शक्ति माया अपने अहंकार आदि गुणों से लोकों को रचती है इसलिये तुममें जगत् का कर्तापन आदि ऐसे प्रतीत होता है जैसे सेवक के किये काम का कर्तृत्व आदि राजा में प्रतीत होता है परंतु यह प्रेरकत्व व्यवहार केवल पास होने के कारण से है, वास्तव में नहीं है जैसे चुंबक पत्थर से पास होने से लोह आदि आपसे आप चलते है, वैसे ही यह जड़माया तुम्हारी दृष्टि के इशारे से जगत् को रचती है। यह बात निश्चय है।।२८।।२९।। तुम संसार की रक्षा चाहनेवाले और अदेह हो, तिस पर भी तुम्हारे दो शरीर हैं। विराट् तो तुम्हारा स्थूल शरीर है और हिरण्यगर्भ सूक्ष्मी शरीर है।।३०।। तुम्हारे विराट्शरीर से हजारों अवतार होते हैं और हे रघुनन्दन! कार्य हो चुकने पर वे अवतार उसी विराट्रूप में लय हो जाते हैं।।३१।। और जो लोग संसार में तुम्हारे अवतारों की कथा को एकाग्र मन से गाते और कहते सुनते हैं हे राम! उनकी ही मुक्ति होती है, हे राम! पहिले तुमने ब्रह्माजी के तप से प्रसन्न होकर और उनकी प्रार्थना से भूमि का भार उतारने के लिये रघुकुल में अवतार लिया है।।३२।।३३।। और हे राम! तुमने देवताओं का अत्यन्त कठिन काम अच्छी भांति पूरा किया। अब अनेक हजार वर्ष तक मनुष्यदेह धारण किये हुए पापों के हरनेवाले और भी कठिन कठिन कार्यों को दोनों लोकों के हित के लिये करके त्रिलोकी भर में अपना यश फैलाओगे।।३४।।३५।।

प्रार्थयामिजगन्नाथपवित्रंकुरुमेगृहम् ।। स्थित्वाद्यभुक्त्वासबलः श्वोगमिष्यसिपत्तनम् ।।३६।। तथेति राघवोऽतिष्ठत्तस्मिन्नाश्रमउत्तमे ।। ससैन्यः पूजितस्तेनसीतयालक्ष्मणेनच ।।३७।। ततोरामश्चिन्तयित्वामुहूर्तं प्राहमारुतिम् ।। इतो गच्छहनूमंस्त्वमयोध्यांप्रतिसत्वरः ।।३८।। जानीहिकुशलीकश्चिज्जनोनृपतिमन्दिरे ।। शृङ्गबेरपुरंगत्वाब्रूहिमित्रगुहंमम ।।३९।। जानकीलक्ष्मणोपेतेमागतंमांनिवेदय ।। नन्दिग्रामंततोगत्वाभ्रातरं भरतंमम ।।४०।। दृष्ट्वाब्रूहिसभार्यस्यसभ्रातुः कुशलंमम ।। सीतापहरणादीनिरावणस्यवधादिकम् ।।४१।। ब्रूहिक्रमेणमेभ्रातुः सर्वंतत्रविचेष्टितम् ।। हत्वाशत्रुगणान्सर्वान्सभार्यः सहलक्ष्मणः ।।४२।। उपयातिसमृद्धार्थः सहर्क्षहरीश्वरैः ।। इत्युक्त्वातत्रवृत्तान्तं भरतस्य विचेष्टितम् ।।४३।। सर्वंज्ञात्वापुनः शीघ्रमागच्छ ममसन्निधिम् ।। तथेतिहनुमांस्तत्रमानुषंवपुरास्थितः ।।४४।। नन्दिग्रामंययौतूर्णं वायुवेगेनमारुतिः गरुत्मानिववेगेनजिघृक्षन्भुजगोत्तमम् ।।४५।।

हे जगन्नाथ! आपसे मेरी इतनी प्रार्थना है कि आज तो यहां निवास और भोजन करके मेरे आश्रम को पवित्र करिये और कल अयोध्या को चले जाना।।३६।। रामजी ने कहा बहुत अच्छा। और वह एक दिन के लिये उस उत्तम आश्रम में ठहर गये। और भरद्वाजजी ने सीता लक्ष्मण और सेनासहित रामजी का बड़ा आदर भाव किया।।३७।। इसके अनंतर रामजी दो घड़ी तक तो कुछ विचारते रहे फिर हनुमानसे बोले कि हे पवनपूत! तुम यहां से शीघ्र अयोध्या को चले जाओ।।३८।। और राजमंदिर में जाकर पहिले यह खबर तो लो कि सब लोग कुशल तो हैं फिर वहां से श्रृंगवेरपुर में जाकर मेरे मित्र गुह से कहना कि सीतालक्ष्मणसहित मैं भरद्वाजजी के आश्रम में आ गया हूं। फिर नन्दिग्राम में जाकर मेरे भाई भरत को देखकर लक्ष्मणजानकीसहित मेरी कुशल उन्हें सुनाना। और सीताहरण आदि और रावणवध आदि जो चरित्र मैंने किये हैं सो सब मेरे भाई को ब्यौरेवार सुनाना। और कहना कि सब शत्रुओं को मारकर और अपना मनोरथ पूर्ण करके रामजी सीता और लक्ष्मणसहित रीछ वानरों को साथ लिये आ रहे हैं। यह कहकर और भरतजी का चरित्र और उनका समाचार सब जानकर फिर शीघ्र मेरे पास आओ। हनुमानजी ने भगवान् की आज्ञा को स्वीकार करके वहां ही मनुष्यरूप धारण कर लिया।।३९–४४।। और पवनपुत्र तुरंत नंदिग्राम को वायु के समान वेग से ऐसे गये

जैसे गरुड़जी उत्तम सर्प को पकड़ने की इच्छा से जल्दी जाते हों॥४५॥

शृङ्गवेरपुरंप्राप्यगुहमासाद्यमारुतिः ॥ उवाचमधुरंवाक्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४६॥ रामोदाशरथिः श्रीमान्सखातेसहसीतया ॥ सलक्ष्मणस्त्वांधर्मात्माक्षेमीकुशलमब्रवीत् ॥४७॥ अनुज्ञातोऽद्यमुनिनाभरद्वाजेन-राघवः ॥ आगमिष्यतितंदेवंद्रक्ष्यसित्वंरघूत्तमम् ॥४८॥ एवमुक्त्वामहातेजाः संप्रहृष्टतनूरुहम् ॥ उत्पपातमहावेगोवायुवेगेनमारुतिः ॥४९॥ सोऽपश्यद्रामतीर्थं च सरयूं च महानदीम् ॥ तामतिक्रम्य हनुमान्नन्दिग्रामंययौमुदा ॥५०॥ क्रोशमात्रेत्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ ददर्शभरतंदीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥५१॥ मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलंवल्कलाम्बरम् ॥ फलमूलकृतादारंरामचिन्तापरा-यणम् ॥५२॥ पादकेतेपुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम्॥ मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥५३॥ वृतदेहंमूर्तिमन्तंसाक्षाद्धर्ममिवस्थितम् ॥ उवाचप्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः ॥५४॥ यंत्वंचिन्तयसे-रामंतापसंदण्डकेस्थितम् ॥ अनुशोचसिकाकुत्स्थः सत्वांकुशलमब्रवीत्॥५५॥

फिर हनुमानजी ने शृंगवेरपुर में गुह के पास जाकर मन में प्रसन्न हो उससे यह मधुर वचन कहा कि॥४६॥ श्रीमान् धर्मात्मा दशरथनन्दन और तुम्हारे सखा रामजी सीता और लक्ष्मणजी सहित कुशलपूर्वक हैं और तुमसे कुशल पूछी है॥४७॥ आज भरद्वाजमुनि ने ठहरा लिया है। उनकी आज्ञा से रामजी कल आवेंगे सो तुम उन रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्रजी महाराज के दर्शन करोगे॥४८॥ यह कहकर महातेजस्वी और बड़े वेग से जानेवाले हनुमानजी वायु के वेग के समान उड़ गये और इधर यह खबर सुन गुह ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसके शरीर के रोम खड़े हो गये॥४९॥ अब आगे बढ़कर हनुमानजी ने रामतीर्थ सरयू नाम महानदी के दर्शन करे फिर उससे पार होकर प्रसन्न होते हुए नन्दिग्राम में गये॥५०॥ अयोध्या से एक कोस पर चीर वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म को धारण किये अतिदुर्बल आश्रमवासियों के समान शरीर में धूल मिट्टी रमाये जटा बढ़ाये छालवस्त्र बिछाये, कंदमूल फल का आहार करते हुए रामजी की चिन्ता में मग्न रामजी के चरणों की दोनों पादुकाओं को अपने आगे स्थापन किये हुए गेरुए वस्त्र पहिने हुए मंत्री और पुरवासियों सहित साक्षात् मूर्तिमान् धर्म के समान शरीर धारण किये बैठे हुए और पृथ्वी का राज्य करते हुए भरतजी का दर्शन कर

पवनपुत्र हनुमानजी ने हाथ जोड़ यह वचन कहा कि।।५१–५४।। हे भरतजी! जिन दंडकारण्य में बैठे हुए तपस्वी रामजी का तुम चितवन और शोक कर रहे हो वह इक्ष्वाकुवंशी रामजी ने तुम्हारे पास अपनी कुशल कहा भेजी है।।५५।।

प्रियमाख्यामितेदेवशोकं त्यजसुदारुणम् ।। अस्मिन्मुहूर्ते भ्रातात्वंरामेण सहसङ्गतः ।।५६।। समरेरावणंहत्वा रामः सीतामवाप्यच ।। उपयातिसमृद्धार्थः ससीतःसहलक्ष्मणः ।।५७।। एवमुक्तोमहातेजाभरतोहर्षमूर्च्छितः ।। पपातभुविचास्वस्थः कैकेयीप्रियनन्दनः ।।५८।। आलिङ्ग्यभरतः शीघ्रंमारुतिं प्रियवादिनम् ।। आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेचभरतः कपिम् ।।५९।। देवोवामानुषोवात्वमनुक्रोशादिहागतः प्रियाख्यानस्यते-सौम्यददामिब्रुवतः प्रियम् ।।६०।। गवांशतसहस्रं च ग्रामाणा च शतवरम् ।। सर्वाभरणसम्पन्नामुग्धाः कन्यास्तुषोडश ।।६१।। एवमुक्त्वापुनः प्राहभरतोमारुतात्मजम् ।। बहूनीमानिवर्षाणिगतस्यसुमहद्वनम् ।।६२।। शृणोम्यहंप्रीतिकरं ममनाथस्यकीर्तनम ।। कल्याणीबतगाथेऽयंलौकिकीप्रतिभातिमे ।।६३।। एतिजीवन्तमानन्दोनरं वर्षशतादपि ।। राघवस्यहरीणां च कथमासीत्समागमः।।६४।।

हे देव! मैं तुम्हें यह प्यारा समाचार सुनाता हूं। तुब अब इस महाकठिन शोक को त्याग दो। इन्हीं दो घड़ी के भीतर भाई रामचन्द्रजीके साथ तुम्हारामिलाप होगा।।५६।। वह रामजी संग्राम में रावण को मारकर सीताजी को पाकर और सब कांम सिद्ध करके जानकीजी और लक्ष्मणजी को साथ लिये आ रहे हैं।।५७।। यह बात सुनते ही कैकेई के प्रियनन्दन महातेजस्वी भरतजी हर्ष के कारण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और उन्हें कुछ होश नहीं रहा।।५८।। फिर शीघ्र सचेत हो भरतजी ने प्यारे समाचार सुनानेवाले हनुमानजी को छाती से लगाया और उन्हें आनंद के आंसुओं से तर कर दिया और भरतजी ने हनुमानजी से कहा कि।।५९।। तुम देवता हो वा मनुष्य हो जो कृपा कर प्रिय समाचार कहने के लिये यहां आये हो, हे प्यारे! तुमने मुझे सुन्दर वृत्तान्त सुनाया है, इसके बदले में मैं तुम्हें सौ हजार गौ एक सौ सुन्दर गाँव और संपूर्ण आभूषणों से युक्त परम सुन्दरी सोलह कन्या देता हूं।।६०।।६१।। यह कहकर भरतजी ने फिर हनुमानजी से कहा कि मेरे स्वामी रामजी को दंडकारण्य में गये बहुत वर्ष हो गये।।६२।। तब से आज मैंने स्वामी का

आनंददायक समाचार सुना है और आज कल्याण की देनेवाली संसार कहावत मुझे सत्य प्रतीत होती है कि।।६३।। मनुष्य जीता रहे तो उसे सौ वर्ष तक भी आनन्द मिल सकता है। परंतु यह तो बताओ कि रामजी का और वानरों का कैसे समागम हुआ।।६४।।

तत्त्वमाख्याहिभद्रंतेविश्वसेयंवचस्तव ।। एवमुक्तोऽथहनुमान्भरतेनमहात्मना ६५।। आचचक्षेऽथरामस्यचरितंकृत्स्नशः क्रमात् ।। श्रुत्वातुपरमानन्दंभरतोमारुतात्मजात् ।।६६।। आज्ञापयच्छत्रुहणंमुदायुक्तंमुदान्वितः ।। दैवतानिचयावन्तिनगरेरघुनन्दन।।६७।।नानोपहारबलिभिः पूजयन्तुमहाधियः।। सूतावैतालिकाश्चैवबन्दिनः स्तुतिपाठकाः ।।६८।। वारमुख्याश्चाशतशोनिर्यान्त्वद्यैवसङ्घशः ।। राजदारास्तथामात्याः सेनाहस्त्यश्वपत्तयः ।।६९।।ब्राह्मणाश्चतथापौराराजानोयेसमागताः निर्यान्तुराघवस्याद्यद्रष्टुंशशिनिभाननम्।।७०।।भरतस्यवचः श्रुत्वाशत्रुघ्नपरिचोदिताः ।। अलंचक्रुश्चनगरींमुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः ।।७१।। तोरणैश्चपताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा ।। अलंकुर्वन्तिवेश्मानिनानाबलिविचक्षणाः ।।७२।। निर्यान्तिवृन्दशः सर्वेरामदर्शनलालसाः ।। हयानांशतसाहस्रंगजानामयुतं तथा ।।७३।। रथानांदशसाहस्रंस्वर्णसूत्रविभूषितम् ।। पारमेष्ठीन्युपादायद्रव्याण्युच्चावचानिच ।।७४।।

तुम्हारा भला होयं यह सब ठीक ठीक कहो जिससे मुझे तुम्हारी बात का विश्वास हो। जब महात्मा भरतजी ने हनुमानजी से यह कहा।।६५।। तब तो हनुमानजी ने क्रम से रामजी का सब चरित्र वर्णन किया। और भरतजी हनुमानजी से यह सुनकर बड़े भारी प्रसन्न हुए।।६६।। और अत्यन्त आनंदित होकर शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि हे शत्रुघ्न! इस नगर में देवताओं की जितनी प्रतिमा हैं।।६७।। पण्डित जन उनका नाना प्रकार की पूजन की सामग्रियों से पूजन करें। और सूत मागध वंदीजन और स्तुतिपाठक तथा सैंकड़ों वेश्या सब एकत्र होकर नगर के बाहर आवें। और राजमाता मंत्री और हाथी घोड़े आदि सेना।।६८।।६९।। ब्राह्मण पुरवासी और जहां तहां से आये हुए राजालोग आज रामजी के चन्द्रमा के समान मुख का दर्शन करने के लिये आवें।।७०।। भरतजी के वचन को सुनकर शत्रुघ्नजी की आज्ञा से भांति भांति की रचना में निपुण पुरवासियों के मोती और रत्नों की उज्ज्वल वंदनवारों और अनेक प्रकार की चित्र

विचित्र झंडियों से अपने अपने घरों को और सब अयोध्यापुरी को सजा दिया।।७१।।७२।। और रामजी के दर्शनों के लालसा से सब झुंड के झुंड नगर से बाहर आये और सबने छोटी मोटी वस्तुएं भगवान् के अर्पण के लिये ले लीं एक लाख घुड़सवार दश हजार हाथी और दश हजार रथ ये सुनेरी बागडौर झूल गद्दी आदि से सजे सजाये चले।।७३।।७४।।

ततस्तुशिबिकारूढानिर्ययूराजयोषितः ।। भरतः पादुकेन्यस्यशिरस्येवकृताञ्जलिः ।।७५।। शत्रुघ्नसहितोरामंपादचारेणनिर्ययौ ।। तदैवदृश्यतेदूराद्विमानंचन्द्रसन्निभम् ।।७६।। पुष्पकंसूर्यसंकाशंमनसाब्रह्मनिर्मितम् ।। एतस्मिन्भ्रातरौवीरौवैदेह्यारामलक्ष्मणौ।।७७।।सुग्रीवश्चकपिश्रेष्ठोमन्त्रिभिश्चबिभीषणः।दृश्यतेपश्यतजनाइत्याहपवनात्मजः ।।७८।। ततोहर्षसमुद्भूतोनिः स्वनोदिवमस्पृशत् ।। स्त्रीबालयुववृद्धानांरामोयमितिकीर्तनात् ।।७९।। रथकुञ्जरवाजिस्थाअवतीर्यमहींगताः ।। ददृशुस्तेविमानस्थंजनाः सोममिवाम्बरे ।।८०।। प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वाप्रहृष्टोराघवोन्मुखः ।। ततोविमानाग्रगतंभरतोराघवंमुदा ।।८१।। ववन्देप्रणतोराममेरुस्थमिवभास्करम् ।। ततोरामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद्भुवि।८२।। आरोपितोविमानंतंदूरतः सानुजस्तदा ।। राममासाद्यमुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ।।८३।। समुत्थाप्यचिराद्दृष्टंभरतंरघुनन्दनः ।। भ्रातरंस्वाङ्कमारोप्यमुदातंपरिषस्वजे ।।८४।।

फिर पालकियों में बैठकर राजा दशरथ की रानियां चलीं और उनके पीछे भरतजी रामजी की पादुकाओं को शिर पर धरे हाथ जोड़े शत्रुघ्नजी को साथ ले रघुनाथ से मिलने के लिये पैरों पैरों चले। इतने में ही दूर से चन्द्रमा के समान कांतिमान् और सूर्य के समान झलकता हुआ पुष्पक विमान दीखा कि जिसे मानो ब्रह्माजी ने ही बड़े मन से बनाया हो। इसी अवसर में हनुमानजी ने कहा कि अरे लोगो! देखो जो यह पुष्पकविमान दिखाई पड़ रहा है इसी में दोनों भाई वीर राम लक्ष्मणजी और वानर राज सुग्रीव और विभीषण मंत्रियों सहित बैठे हैं।।७५-७८।। तब तो स्त्री बालक युवा और बढ़े सब कहने लगे कि अरे वह रहे रामजी वह रहे रामजी! और हर्ष के कारण ऐसा शब्द हुआ कि जिससे आकाश गूंज उठा।।७९।। जो लोग हाथी घोड़ों पर बैठे थे सो उतरकर धरती पर खड़े हो गये और वे मनुष्य विमान में बैठे हुए

रामचन्द्रजी को ऐसे देखने लगे जैसे कि आकाश में दूज के चन्द्रमा को देखते हों।।८०।। फिर प्रसन्न चित्त भरतजी ने रामजी के सन्मुख हो हाथ जोड़कर विमान पर बैठे हुए रघुनाथजी को हर्षसहित ऐसे प्रणाम किया कि जैसे मेरुपर्वत पर उदय होते हुए सूर्यनारायण को प्रणाम करते हैं फिर रामजी की आज्ञा से विमान पृथ्वी पर उतरा।।८१।।८२।। और उन्होंने शत्रुघ्नसहित भरतजी को उसी विमान पर चढ़ा लिया फिर भरतजी रघुनाथजी से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और उनके चरणों में गिरे।।८३।। फिर रामजी ने बहुत दिन में देखे हुए भाई भरतजी को उठाकर और अपनी गोद में बैठाकर प्रसन्न हो उन्हें छाती से लगाया।।८४।।

ततोलक्ष्मणमासाद्यवैदेहींनामकीर्तयन् ।। अभ्यवादयतप्रीतोभरतः प्रेमविह्वलः ।।८५।। सुग्रीवंजाम्बवन्तंचयुवराजंतथाङ्गदम् ।। मैन्दद्विविदनीलांश्चऋषभंचैवसस्वजे ।।८६।। सुषेणंचनलंचैव गवाक्षंगन्धमादनम् ।। शरभंपनसंचैवभरतः परिषस्वजे ।।८७।। सर्वेतेमानुषंरूपंकृत्वाभारतमादृताः ।। पप्रच्छुःकुशलंसौम्याः प्रहृष्टाश्च प्लवङ्गमाः।।८८।।ततः सुग्रीवमालिङ्ग्यभरतः प्राहभक्तितः ।। त्वत्सहायेनरामस्यजयोऽभूद्रावणोहतः ।।८९।। त्वमस्माकंचतुर्णांतु भ्रातासुग्रीवपञ्चमः ।। शत्रुघ्नश्चतदाराममभिवाद्यसलक्ष्मणम् ।।९०।। सीतायाश्चरणौपश्चाद्वन्देविनयान्वितः ।। रामोमातरमासाद्यविवर्णांशोकविह्वलाम् ।।९१।। जग्राहप्रणतः पादौमनोमातुः प्रसादयन् ।। कैकेयींचसुमित्रांचनानामेतरमातरः ।।९२।। भरतः पादुकेतेतुराघवस्यसुपूजिते ।। योजयामासरामस्यपादयोर्भक्तिसंयुतः ।।९३।।

फिर भरतजी प्रसन्न होते हुए सीता और लक्ष्मणजी के पास गये और अपना नाम बताकर उन्हें प्रणाम किया और प्रेम में विह्वल हो गये।।८५।। और सुग्रीव, जाम्बवंत, युवराज अंगद, मैंद, द्विविद, नील, ऋषभ इनको हृदय से लगाकर फिर भरतजीने सुषेण, नल, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ, पनस इनको भी छाती से लगाया।।८६।।८७।। जब भरतजी उनका आदर कर चुके तब उन सब सुन्दर वानरों ने मनुष्य का सा रूप धरकर प्रसन्न हो भरतजी से कुशल पूछी।।८८।। फिर भरतजी ने बड़ी प्रीति से सुग्रीव को छाती से लगाकर कहा कि तुम्हारी ही सहायता से रामजी की जय हुई और रावण मारा गया।।८९।। हे सुग्रीव! जैसे हम चारों भाई हैं ऐसे तुम भी हमारे पांचवें भाई हो। फिर शत्रुघ्नजी ने लक्ष्मणसहित

नमस्कार किया। फिर रामजी ने
रामचन्द्रजी को प्रणाम किया॥९०॥ और पीछे नम्रतापूर्वक सीताजी के चरणों में नमस्कार किया। फिर रामजी ने
अपनी माता कौसल्या के पास गये और उसे कृश और शोक से पीड़ित देख वे उसके चरणों में गिरे और उन्होंने माता के
मन को प्रसन्न किया और कैकेई और सुमित्रा माताओं को भी प्रणाम किया॥९१॥९२॥ फिर भरतजी ने रामजी की
सुन्दर पूजन की हुई दोनों पादुकाओं को भक्तिपूर्वक रामजी के दोनों चरण में पहिराया॥९३॥

राज्यमेतन्न्यासभूतंमयानिर्यातितंतव ॥ अद्यमेसफलंजन्मफलितोमे मनोरथः ॥९४॥ यत्पश्यामिसमायातम
योध्यांत्वामहंप्रभो ॥ कोष्ठागारंबलंकोशकृतंदशगुणंमया ॥९५॥ त्वत्तेजसाजगन्नाथपालयस्वपुरंस्वकम् ॥
इतिब्रुवाणंभरतंदृष्ट्वासर्वेकपीश्वराः ॥९६॥ मुमुचुर्नेत्रजंतोयंप्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ततोरामः प्रहृष्टात्माभ

दृष्टांत-**नेकी नकराह बडी बदराह**-नेक और बद आपस में दोनों मित्र थे। एक दिन बद ने क्या किया कि जब नेक कहीं बाहर गया था तब वह नेक के घर
गया और उसका सब गहना कपड़ा समेट सिर पर धर कर चल दिया फिर इतने में नेक आया तो उसकी स्त्री ने कहा कि आज तुम्हारा मित्र बद सब गहना
कपड़ा अभी ले गया है मैंने तो कुछ कहा नहीं क्योंकि वह तुम्हारा यार है नेक ने कहा कुछ डर नहीं है यों कहकर नेक गया और बद को रास्ते में ही जा
पकड़ा-नेक ने कहा मित्र लावो मैं ले चलूं तुम्हें वोझ लगता होगा। बद ने कहा अच्छा तुम्ही ले चलो इस प्रकार बद माल को लिवाकर अपने घर पहुँचा। फिर बद
ने सोचा कि इसका माल मैं ले आया हूं और इसे खबर पड़ गई है सो कहीं यह राजा से कहकर मुझे पकड़वा न दे यह विचार कर उसने नेक से कहा कि मित्र
प्यास बहुत लग रही है चलो कुएँ पर पानी पियें। अच्छा चलो कुएँ पर दोनों गये और ज्यों ही नेक ने लोटा कुएँ में फांसा त्योंही बद ने धक्का देकर नेक को कुएँ
में गिरा दिया और आप लौट आया। जब नेक कुएँ में पहुँचा तो इसने देखा कि वहां एक वृक्ष है और उस पर दो भूत रहते हैं। उस समय दोनों भूत आपस में बातें
करने लगे। एक भूत ने कहा कि मैं राजा की बेटी पर सवार रहता हूं अगर कोई इस पेड़ की पत्ती घोटकर उसे पिला दे तो मैं उसे छोड़ दूं। दूसरे ने कहा कि
फलां जगह जो बड़ का पेड है उसके नीचे जो खजाना गड़ा हैं उसकी रखवाली करता हूं। ये बातें नेक ने सुनी और उसने तुरन्त उस वृक्ष की एक डाली तोड़ अपने
पास रखी। इतनें में कोई पानी भरने आया और उसने नेक को बाहर निकाला। नेक चला चला राजा के पास गया कि हम तुम्हारी लड़की पर से भूत उतार देंगे
राजा ने कहा तो हम तुम्हें आधा राज्य देंगे और लड़की का व्याह तुम्हारे साथ कर देंगे-नेक ने कहा अच्छा! और तुरन्त पत्ती घोटकर लड़की को पिलाई सो वह
अच्छी हो गई, अच्छे होते ही राजा ने शुभ मुहूर्त में नेक के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया और उसे राजा बना दिया। जब बद ने सुना कि नेक राजा हो
गया और राज कन्या से उसका व्याह हुआ है तब वह राजा के पास गया और उससे बोला कि तुमने किसको अपनी कन्या व्याह राज्य दे दिया है वो तो जात
का भड़भुजा है यह सुन राजा बड़ा गुस्सा हुआ और कहा इस नेक को फांसी दे दो। जब नेक को नौकर फांसी देने ले चले तब उसने राजा से कहा कि हे राजा!
फांसी तो मुझे दोगे ही परन्तु एक खजाना मैं तुम्हें और बतलाता हूं उसे तुम ले लो-राजा ने कहा कहां है? नेक के कहा वहां बड़ के पेड़ के नीचे है राजा वहां
गया और खुदवाया तो वहां बड़ा खजाना निकला। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और आकर उससे पूछा कि तुम सच कहो कौन हो तब उसने बद के संग मित्रता
का और जैसे उसने मार मार कर कुएँ में ढकेला था और दोनों भूतों की बातें यह सब कहा। इसको सुनकर राजा के कहा कि इसके वजाय इसको फांसी दो। बद
पकड़ा आया परन्तु नेक के कहा कि राजा इसे फांसी मत दो यह मेरा मित्र है-यह तो बदी से चूका ही नहीं मैं अपनी नेकी क्यों छोड़ूं?॥

रतंस्वाङ्कगंमुदा ।।९७।। ययौतेनविमानेनभरतस्याश्रमंतदा ।। अवरुह्यतदारामोविमानाग्र्यान्महीतलम् ।।९८।। अब्रवीत्पुष्पकंदेवो गच्छवैश्रवणंवह ।। अनुगच्छानुजानामिकुबेरंधनपालकम् ।।९९।। रामोवसिष्ठस्य गुरोः पदाम्बुजंनत्वायथादेवगुरोः शतक्रतुः ।। दत्त्वा महार्हासनमुत्तमंगुरोरुपाविवेशाथगुरोः समीपतः ।।१००।। इति श्रीम० रा० उमामहे० युद्धकाण्डेचतुर्दश सर्गः ।।१४।।

और बोले कि हे भय्या! यह आपका राज्य जो मेरे पास धरोहर की भांति था उसे मैंने आपको सौंप दिया। आज मेरा जन्म सफल हुआ और मेरा मनोरथ पूरा हुआ कि ।।९४।। जो आपको अयोध्या में आया देखता हूं। और हे प्रभो! आपके प्रताप से मैंने अन्न का भंडार सेना खजाना सब दशगुणा कर दिया है सो सँभाल लीजिये और हे त्रिलोकी के नाथ! अपने नगर का पालन करिये। भरतजी को ऐसा कहता हुआ देखकर सब मुख्य मुख्य वानरों के नेत्रों से आंसू गिरने लगे और वे प्रसन्न हो भरतजी की बड़ाई करने लगे। यह सुनकर रामजी बड़े प्रसन्न हुए और हर्षपूर्वक भरतजी को गोद में बैठाये हुए।।९५-९७।। उसी विमान से भरतजी के आश्रम में गये और वहां पुष्पकविमान से पृथ्वी पर उतर कर।।९८।। पुष्पक से बोले हे देव! तुम अब जाओ मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कुबेर को अपने ऊपर बैठाया करो और तुम धन के स्वामी कुबेर की आज्ञा में रहो।।९९।। फिर रामचन्द्रजी ने गुरु वसिष्ठजी के चरणकमलों में ऐसे प्रणाम किया कि मानो इन्द्र बृहस्पति को करते हों और गुरुजी को एक अत्यंत सुन्दर और बहुमूल्य दिव्य आसन बैठने को दिया आप भी उनके पास दूसरे आसन पर बैठ गये।।१००।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का चतुर्दश सर्ग समाप्त हुआ।।१४।।

श्रीमहादेव उवाच ।। ततस्तुकैकयीपुत्रोभरतोभक्तिसंयुतः ।। शिरस्यञ्जलिमाधायज्येष्ठंभ्रातरमब्रवीत् ।।१।। मातामेसत्कृतारामदत्तंराज्यं त्वयामम ।। ददामितत्तेचपुनर्यथात्वमददांमम ।।२।। इत्युक्त्वापादयोर्भक्त्यासाष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ।। बहुधाप्रार्थयामासकैकेय्यागुरुणा सह ।।३।। तथेतिप्रतिजग्राहभरताद्राज्यमीश्वरः ।। मायामाश्रित्यसकलांनरचेष्टामुपागतः ।।४।। स्वाराज्यानुभवोयस्यसुखज्ञानैक रूपिणः ।। निरस्तातिशयानन्दरूपिणः परमात्मनः ।।५।। मानुषेणतुराज्येनकिंतस्यजगदीशितुः ।। यस्यभ्रूभङ्गमात्रेणत्रिलोकीनश्यतिक्ष

णात् ॥६॥ यस्यानुग्रहमात्रेणभवन्त्याखण्डलश्रियः ॥ लीलासृष्टिमहासृष्टेः कियदेतद्रमापतेः ॥७॥ तथापिभजतांनित्यंकामपूरविधित्सया ॥ लीलामानुषदेहेनसर्वमप्यनुवर्तते ॥८॥ ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणः श्मश्रुकृन्तकः ॥ सम्भाराश्चाभिषेकार्थमानीताराघवस्य हि ॥९॥ पूर्वंतुभरतेस्नातेलक्ष्मणेचमहात्मनि ॥ सुग्रीवेवानरेन्द्रेचराक्षसेन्द्रेविभीषणे ॥१०॥ विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ॥ महार्हवसनोपेतस्त स्थौतत्रश्रियाज्वलन्॥११॥ प्रतिकर्मचरामस्यलक्ष्मणश्चमहामतिः॥ कारयामासभरतः सीतायाराजयोषितः ॥१२॥ महार्हवस्त्राभरणैरलंचक्रुः सुमध्यमाम् ॥ ततोवानरपत्नीनांसर्वासामेवशोभना ॥१३॥ अकारयतकौ सल्याप्रहृष्टापुत्रवत्सला ॥ ततः स्यन्दनमादायशत्रुघ्नवचनात्सुधीः॥१४॥ सुमन्त्रः सूर्यसंकाशंयोजयित्वाग्रतः स्थितः ॥ अरुरोहरथंरामः सत्यधर्मपरायणः ॥१५॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके अनंतर कैकेयीनन्दन भरतजी ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ शिर नवाय जेठे भाई रामचन्द्रजी से कहा॥१॥ हे राम! आपने मुझे चौदह वर्ष तक राज्य देकर मेरी माता का मान रखा अब मैं उस राज्य को जैसे आपने मुझे दिया था वैसे ही मैं आपको सौंपता हूं॥२॥ यह कहकर और भक्तिपूर्वक चरणों में प्रणाम कर बहुत भांति से राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना करी और गुरु वसिष्ठजी से और अपनी माता कैकेई से भी इसका अनुमोदन कराया॥३॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर माया से मनुष्यों के समान सब कार्य करनेवाले ईश्वर रामचन्द्रजी के भरतजी से राज्य ले लिया॥४॥ जिसको आत्मानंदरूपी अपने राज्य का अनुभव हो रहा है और जो सुख और ज्ञान का स्वरूप तथा अद्वितीय है और जो सब आनंदों को छोड़ आप साक्षात् परमानन्द स्वरूप है ऐसे परमात्मा जगदीश को मनुष्य के राज्य से क्या काम है। जिसके केवल भौं चलाने से क्षणभर में त्रिलोकी नष्ट हो जाय। और जिसके अनुग्रह मात्र से इन्द्र की संपदाएं मिल जाती है और जिसने अपनी लीला से अनेक ब्रह्मांडों की सृष्टि रच रखी है उस लक्ष्मीपति को यह अयोध्या का राज्य कितना है॥५-७॥ तो भी भक्तिजनों की अभिलाषा को सदा पूर्ण करने की इच्छा कर लीला से मनुष्यदेह धारण करके रामजी मनुष्यका सा व्यवहार करते हैं॥८॥ फिर शत्रुघ्नजी की आज्ञा से महाबुद्धिमान् नाई बुलाया गया और रामजी के राजतिलक के लिये सब सामग्रियां इकट्ठी की गईं॥९॥ पहिले भरतजी ने स्नान किया फिर क्रम क्रम से

महात्मा लक्ष्मणजी ने वानरराज सुग्रीव ने और राक्षसराज विभीषण ने स्नान किया॥१०॥ फिर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी और भरतजी ने रामचन्द्रजी की जटा को अलग कराकर उनको स्नान करवाया और भांति भांति के सुगन्धित पुष्पों की माला और जड़ाऊ हार पहिराकर उनके अंग में इत्र का लेपन किया और उनके बड़े बड़े अमूल्य वस्त्राभूषण पहिराये तब भगवान् लक्ष्मी से प्रकाशमान् होकर विराजमान हुए यह कर्म जब हो चुका तब कौसल्या आदि रानियों ने सीताजी का उबटन आदि कराके स्नान कराया और उनको बहुमूल्य वस्त्र और गहने पहिराये और फिर पुत्र से प्यार करने वाली सुन्दर कौसल्याने प्रसन्न होकर सब वानरपत्नियों का उबटना कराकर स्नान कराया। फिर चतुर सुमंत्र ने शत्रुघ्नजी की आज्ञा से सूर्य के समान प्रकाशमान रथ लाकर आगे खड़ा कर दिया उस पर सत्यप्रतिज्ञ और धर्मात्मा रामचन्द्रजी सवार हुए॥११-१५॥

सुग्रीवोयुवराजश्चहनुमांश्चविभीषणः ॥ स्नात्वादिव्याम्बरधरादिव्याभरणभूषिताः ॥१६॥ राममन्वीयुरग्रेच रथाश्वगजवाहनाः ॥ सुग्रीवपत्न्यः सीताचययुर्यानैः पुरंमहत् ॥१७॥ वज्रपाणिर्यथादेवैर्हरिताश्वरथेस्थितः ॥ प्रययौरथमास्थायतथारामोमहत्पुरम् ॥१८॥ सारथ्यंभरतश्चक्रेरत्नदण्डमहाद्युतिः ॥ श्वेतातपत्रंशत्रुघ्नोल-क्ष्मणोव्यजनंदधे ॥१९॥ चामरंचसमीपस्थोन्यवीजयरिंदमः ॥ शशिप्रकाशंत्वपरंजग्राहासुरनायकः ॥२०॥ दिविजःसिद्धसङ्घैश्चऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः ॥ स्तूयमानस्यरामस्यशुश्रुवेमधुरध्वनिः ॥२१॥ मानुषंरूपमास्थायवा-नरागजवाहनाः ॥ भेरीशंखनिनादैश्चमृदङ्गपणवानकैः ॥२२॥ प्रययौराघवश्रेष्ठस्तांपुरींसमलंकृताम् ॥ ददृशुस्तेसमायान्तंराघवंपुरवासिनः ॥२३॥ दूर्वादलश्यामतनुमहार्हकिरीटरत्नाभरणाचिताङ्गम् ॥ आरक्तकञ्जायतलोचनान्तदृष्ट्वाययुर्मोदमतविपुण्याः ॥२४॥ विचित्ररत्नाञ्चितसूत्रनद्धपीताम्बरंपीनभुजा-न्तरालम् ॥ अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारैर्विरोचमानंरघुनन्दनंप्रजा। ॥२५॥ सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशान्तैर्निषेव्य-माणंरवितुल्यभासम् ॥ कस्तूरिकाचन्दनलिप्तगात्रंनिवीतकल्पद्रुमपुष्पमालम् ॥२६॥

फिर सुग्रीव अंगद हनुमान और विभीषण ने स्नान करके सुन्दर सुन्दर वस्त्र और दिव्य आभूषण पहिरे॥१६॥ और रथ हाथी घोड़ों पर चढ़ चढ़ कर रामजी के आगे पीछे चले। सुग्रीव की स्त्रियां और सीताजी बड़ी सुन्दर सुन्दर पालकियों में

बैठकर चलीं।।१७।। जैसे इन्द्रराज देवताओं सहित हरित घोडों के रथ पर बैठंकर जाता है वैसे ही रथ पर बैठकर श्रीरघुनाथजी अयोध्यापुरी को चले।।१८।। उस समय महातेजस्वी भरतजी ने सारथी बनकर रथ हाका और शत्रुघ्नजी भगवान् के ऊपर रत्न की दंडी का श्वेत छत्र लगाया और लक्ष्मणजी ने पंखा धारण किया।।१९।। एक ओर पास बैठकर सुंग्रीव ने चन्द्रमा के समान चमर ढुलाया और दूसरी ओर विभीषण ने ढुलाया।।२०।। उधर दिव्यदर्शनीय देवता सिद्धों के समूह और ऋषि इनसे मधुर ध्वनि से की हुई स्तुति सुनाई पड़ने लगी।।२१।। वानर मनुष्य का रूप धर धर कर हाथियों पर सवार हुए। जिस समय श्रीरघुनाथजी ने उस सुन्दर अयोध्यापुरी को प्रस्थान किया उस समय मृदंग शंख सहनाई ढोल और नगाड़े बजते जा रहे हैं। जब उन पुरवासियों ने श्रीरामचन्द्रजी को दूर्वादल के समान श्यामशरीरवाले, बड़े अमूल्य किरीट आदि वस्त्र धारे अंग अंग में सुन्दर रत्नजटित आभूषण पहिरे थोड़े रक्त कमल के समान विशाल नेत्रवाले चित्र विचित्र रत्न और सुवर्ण के तारों के काम का पीतांबर धारण किये पुष्ट बाहु, और चौड़ी छातीवाले अमूल्य मोतियों के हार गले में पहिरे शांतचित्त, सुग्रीव आदि मुख्य २ वानरोंसे सेवित, सूर्य के समान प्रकाशमान और शरीर में कस्तूरी मिश्रित चंदन लगाये और यज्ञोपवीत की भांति कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला धारण किये ऐसे शोभायमान रघुनाथजी को आता हुआ देख सब पुण्यात्मा प्रजाजन अंग में फूले न समाये ।।२२-२६।।

श्रुत्वास्त्रियोरामपुपागतंमुदाप्रहर्षवेगोत्कलिताननश्रियः ।। अपास्यसर्वंगृहकार्यमाहितंहर्म्याणिचैवारुरुहुः स्वलंकृताः ।।२७।। दृष्ट्वाहरिंसर्वदृगुत्वसवाकृतिंपुष्पैः किरन्त्यः स्मितशोभिताननाः ।। दृग्भिः पुनर्नेत्रमनोरसायनंस्वानन्दमूर्तिमनसाभिरेभिरे ।।२८।। रामः स्मितस्निग्धदृशाः प्रजास्तथापश्यन्प्रजानाथइवापरः प्रभुः ।। शनैर्जगामाथपितुः स्वलंकृतंगृहंमहेन्द्रालयसन्निभंहरिः ।।२९।। प्रविश्यवेश्मान्तरसंस्थितो मुदारामोववन्देचरणौस्वमातुः ।। क्रमेणसर्वाः पितृयोषितः प्रभुर्ननामभक्त्यारघुवंशकेतुः ।।३०।। ततोभरतमाहेदंरामः सत्यपराक्रमः ।। सर्वसम्पत्समायुक्तंममममन्दिरमुत्तमम् ।।३१।। मित्रायवानरेन्द्रायसुग्रीवाप्रदीयताम् ।। सर्वेभ्यः सुखवासार्थंमन्दिराणिप्रकल्पय ।।३२।।

जब स्त्रियों ने सुना कि रामचन्द्रजी आ पहुँचे हैं तब बड़ी प्रसन्न हुई और बड़े भारी हर्ष के कारण उनके मुख की

शोभा चौगुणी हो गई और वे सब अपने अपने करने के घर के कामों को छोड़ छोड़ सुन्दर वस्त्राभूषण पहिर पहिर कर रामजीके दर्शन के लिये अपने अपने घरों के ऊपर चढ़ गईं।।२७।। सबों की दृष्टियों को आनंद देनेवाले ऐसे भगवान् रामजी के दर्शन करके और सुन्दर मुख से हँसती हुई और पुष्पों की वर्षा करती हुई स्त्रियों ने नेत्र और मन को आनन्द देनेवाला आनन्द की साक्षात् मूर्ति श्रीरघुनाथ को अपने नेत्रों द्वारा हृदय में प्रवेश करके मन से उनका आलिंगन किया।।२८।। भगवान् विष्णुरूप रामचन्द्रजी प्रसन्न और स्नेह दृष्टि से ब्रह्माजी की तरह अपनी प्रजा को देखते हुए इन्द्र के भवन के समान अपने पिता के राजमहल को धीरे धीरे गये।।२९।। फिर जब राजमहल में पहुँच गये तब रघुवंश के शिरोमणि प्रभु रामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर अपनी माता के चरणों को प्रणाम किया और फिर क्रम क्रम से भक्तिपूर्वक पिता की सब रानियों को प्रणाम किया।।३०।। फिर सत्य पराक्रमी रामजी ने भरतजी से यह कहा कि हे भरत! सब संपत्तियों से भरे पूरे मेरे उत्तम महल को मेरे मित्र वानरराज सुग्रीव को ठहरने के लिये दे दो और विभीषण आदि सब जनों को सुखपूर्वक ठहरने के लिये दूसरे महल बता दो।।३१।।३२।।

रामेणैवसमादिष्टोभरतश्चतथाकरोत् ।। उवाचचमहातेजाः सुग्रीवंराघवानुजः ।।३३।। राघवस्याभिषेकार्थंचतुः सिन्धुजलंशुभम् ।। आनेतुंप्रेषयस्वाशुदूतांस्त्वरितविक्रमान् ।।३४।। प्रेषयामाससुग्रीवोजाम्बवन्तंमरुत्सुतम् ।। अङ्गदंचसुषेणंचतेगत्वावायुवेगतः ।।३५।। जलपूर्णाञ्छातकुम्भकलशांश्चसमानयन् ।। आनीतंतीर्थसलिलंशत्रुघ्नोमन्त्रिभिः सह ।।३६।। राघवस्याभिषेकार्थंवसिष्ठायन्यवेदयत् ।। ततस्तुप्रयतोवृद्धो वसिष्ठोब्राह्मणैः सह ।।३७।।रामंरत्नमयेपीठेससीतंसन्यवेशयत् ।। वसिष्ठोवामदेवाश्चजाबालिर्गौतमस्तथा ।।३८।। वाल्मीकिश्चतथाचक्रुः सर्वेरामाभिषेचनम् ।। कुशाग्रतुलसीयुक्तंपुण्यगन्धजलैर्मुदा ।।३९।। अभ्यषिञ्चन्रघुश्रेष्ठंवासवंवसवोयथा ।। ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः श्रेष्ठैः कन्याभिः सहमन्त्रिभिः ।।४०।। सर्वौषधिरसैश्चैवदैवतैर्नभसिस्थितैः ।। चतुर्भिर्लोकपालैश्चस्तुवद्भिः सगणैस्तथा।।४१।। छत्रंचतस्यजग्राहशत्रुघ्नः पाण्डुरंशुभम् ।। सुग्रीवराक्षसेन्द्रौतौदधतुः श्वेतचामरे।।४२।।मालांचकाञ्चनींवायुर्ददौवासवचोदितः

॥ सर्वरत्नसमायुक्तंमणिकाञ्चनभूषितम् ॥४३॥ ददौहारंनरेन्द्रास्यंशक्रस्तुभक्तितः ॥प्रजगुर्देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥ देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिः पपातखात् ॥ नवदूर्वादलश्यामंपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४५॥

फिर रामजी के आज्ञानुसार भरतजी ने सबको ठहरा दिया। और महातेजस्वी भरतजी ने सुग्रीव से कहा हे सुग्रीव! रामचन्द्रजी के अभिषेक के लिये चारों समुद्र का मंगलकारी जल लाने के लिये बड़े शीघ्र चलनेवाले दूतों को तुरंत भेजो॥३४॥ यह सुनते ही सुग्रीव ने जाम्बवंत, हनुमान, अंगद और सुषेण को विदा किया और वे पवन के वेग के समान जाकर सुवर्ण के कलशों में जल भरकर ले आये। फिर मंत्रियों सहित शत्रुघ्नजी ने रामजीके राजतिलक के लिये लाये हुए तीर्थजल को वसिष्ठजी को सौंप दिया। इसके उपरान्त वृद्ध और जितेन्द्रिय वसिष्ठजी ने वामदेव आदि ऋषियों को साथ लेकर जानकीजी सहित रामचन्द्रजी को रत्नजटित सोने के सिंहासन पर बैठाया और वसिष्ठ वामदेव जाबालि गौतम और वाल्मीकि ऐसे ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियों ने कन्या और मंत्री आकाश में स्थित स्तुति करते हुए देवता और अपने पार्षदों को साथ लिये चारों लोकपाल इनके सहित कुश तथा तुलसीदल मिश्रित पवित्र सुगंधित तीर्थों के जल और सब औषधियों के रस से बड़े हर्ष के साथ श्रीरामचन्द्र का राजतिलक ऐसी धूमधाम से किया कि जैसा वसुदेवता ने इन्द्र का किया था॥३५-४१॥ शत्रुघ्नजी ने सुन्दर श्वेत छत्र लगाया और सुग्रीव तथा विभीषण ने दोनों ओर सुन्दर श्वेत चमर ढुलाये॥४२॥ इन्द्र की प्रेरणा से पवन ने सुवर्ण की माला दी। फिर इन्द्र ने आप सब रत्नों से जटित सुवर्ण और मणियों का हार भक्तिपूर्वक श्रीराजा रामचन्द्रजी को भेंट किया। देवता और गंधर्व गाने लगे और अप्सराएं नाचने लगी॥४३॥४४॥ देवताओं ने नगाड़े बजाये और स्वर्ग से पुष्पों की वृष्टि करी नवीन दूर्वादल के समान श्यामवर्ण कमलपत्र के समान विशाल नेत्रवाले॥४५॥

रविकोटिप्रभायुक्तकिरीटेनविराजितम् ॥ कोटि कन्दर्पलावण्यंपीताम्बरसमावृतम् ॥४६॥ दिव्याभरणसम्पन्नंदिव्यचन्दनलेपनम् ॥ अयुतादित्यसंकाशंद्विभुजंरघुनन्दनम् ॥४७॥ वामभागेसमासीनांसीतांकाञ्चनसन्निभाम् ॥ सर्वाभरणसम्पन्नांवामाङ्केसमुपस्थिताम् ॥४८॥ रक्तोत्पलकराम्भोजांवामेनालिङ्ग्यसंस्थितम् ॥

सर्वातिशयशोभाढ्यंदृष्ट्वाभक्तिसमन्वितः ।।४९।। उमयासहितोदेवः शङ्करोरघुनन्दनम् ।। सर्वदेवगणैर्युक्त स्तोतुंसमुपचक्रमे ।।५०।।

करोड़ों सूर्यों के तुल्य कांतिमान मुकुट से शोभायमान करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर पीताम्बर धारण किये।।४६।। दिव्य आभूषण पहिरे दिव्य चन्दन लगाये दश हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान दो भुजाओं को धारण किये वामभाग में सुवर्णों के समान कांतिवाली सब आभूषणों से भूषित बाईं गोद में बैठी हुई रक्त कमल को अपने कमलसमान हाथ में लिये ऐसी सीताजी के गले में अपनी बाईं भुजा डाले परम सुन्दर शोभायुक्त ऐसे रामचन्द्रजी के दर्शन कर पार्वती और सब देवताओं सहित महादेव शंकर भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।।४७-५०।।

श्रीमहादेव उवाच ।। नमोऽस्तुरामायसशक्तिकायनीलोत्पलश्यामलकोमलाय ।। किरीटहाराङ्गदभूषणायसिंहासनस्थायमहाप्रभाय ।।५१।। त्वमादिमध्यान्तविहीनएकः सृजस्यवस्यत्सिचलोकजातम् ।। स्वमाययातेननलिप्यसेत्वंयत्स्वेसुखेऽजस्नरतोऽनवद्यः ।।५२।। लीलांविधत्सेगुणसंवृतस्त्वंप्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ।। नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसेज्ञानिभिरेवनित्यम् ।।५३।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! अपनी शक्ति जानकीजीसहित नीलकमल के समान सुन्दर और कोमल श्यामवर्णवाले शिर पर मुकुट गले में जड़ाऊ हार भुजाओं में बाजूबंद गहने पहिरे बड़े तेजस्वी और सिंहासन पर विराजमान ऐसे रामचन्द्रजी को नमस्कार है।।५१।। हे राम! तुम आदि मध्य और अंतरहित तथा अद्वितीय हो अपनी माया से सब जगत् की उत्पत्ति पालन और नाश करनेवाले हो तो भी उसमें लिप्त नहीं होते आत्मसुख में सदा मगन रहते हो और दोषरहित हो।।५२।। तुम शरणागत भक्तों के भवबंधन से छुटाने के लिये अपनी माया के गुणों के वशीभूत होकर देवता मनुष्य आदि का अवतार धारणकर लीला करते हो और सदा ज्ञानीपुरुषों को ही ईश्वर प्रतीत होते हो।।५३।।

स्वांशेनलोक सकलंविधायतंबिभर्षिचत्वंतदधः फणीश्वरः ।। उपर्यधोभान्वनिलोडुपौषधीप्रवर्षरूपोऽवसिनैकधाजगत् ।।५४।। त्वमिहदेहभृतांशिखिरूपः पचसिभुक्तमशेषमजस्नम् ।। पवनपञ्चकरूपसहायोजगदखण्डमनेन

बभर्षि ।।५५।। चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतंयत्तेजईशचिदशेषतनूनाम् ।। प्राभवत्तनुभृतामिवधैर्यंशौर्यमायुराखिलं तवसत्त्वम् ।।५६।। त्वंविरिञ्चिशिवविष्णुविभेदात्कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ।। वादिनांपृथगिवेशविभासिब्रह्मनिश्चितमनन्यदिहैकम् ।।५७।। मत्स्यादिरूपेणयथात्वमेकः श्रुतौपुराणेषुचलोकसिद्धः ।। तथैवसर्वंसदसद्विभागस्त्वमेवनान्यद्भवतोविभाति ।।५८।। यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टावुत्पत्स्यतेयच्चभवच्चयच्च ।। नदृश्यते स्थावरजंगमादौत्वयाविनातः परतः परस्त्वम् ।।५९।। तत्त्वंनजानन्तिपरात्मनस्तेजनाः समस्तास्तवमाययातः ।। त्वद्भक्तसेवामलमानसानांविभातितत्त्वंपरमेकमैशम् ।।६०।।

तुम अपने अंश से सब लोकों को रचकर फिर शेषनागरूप हो नीचे से पृथ्वी को धारण करते हो और ऊपर से सूर्य पवन और चन्द्रमा औषधि और मेघ आदि के अनेक रूप धारण कर जगत् का पालन करते हो।।५४।। हे राम! तुमही इस लोक में देहधारियों के भोजन किये सब अन्न का प्राण अपान आदि पांच प्राणों के सहायक जठराग्नि रूप से सदा परिपाक कर सब जगत् का पालन करते हो।।५५।। हे ईश! सूर्य चन्द्रमा और अग्नि में जो तेज है और सब देहधारियों में जो चैतन्य शक्ति है और शरीरधारियों में जो धैर्य शूरता और आयुर्बल है सो सब तुम्हारी ही सत्ता है।।५६।। और हे राम! तुम ही ईश्वर को माननेवाले मनुष्यों को ब्रह्मा विष्णु महेश के और काल कर्म सूर्य चन्द्र के भेद से अलग अलग रूप से भासते हो परन्तु तुम एक अद्वितीय ब्रह्म इसमें संदेह नहीं है।।५७।। तुम एक हो परन्तु जैसे वेद और पुराणों में मत्स्य आदि रूप से अनेक प्रकार के लोक में प्रसिद्ध हो वैसे ही ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यंत जो कुछ सत् असत् है सब आप ही हो तुमसे भिन्न कुछ नहीं है।।५८।। इस अनन्त सृष्टि में जो कुछ उत्पन्न हुआ उत्पन्न होगा और जो हो रहा है उस स्थावर जंगम आदि में कोई तुम्हारे बिना नहीं दीखता इसलिये तुम पर जो हिरण्यगर्भ उससे भी परे हो।५९।। हे राम! जो मनुष्य आपकी माया से मोहित हो रहे हैं वे आपके परमात्मास्वरूप को नहीं जानते हैं परन्तु भक्तों की सेवा से जिनका अंतःकरण शुद्ध हो रहा है उनको तुम्हारा सबसे परे एक ईश्वररूप प्रतीत होता है।।६०।।

ब्रह्मादयस्तेनविदुः स्वरूपंचिदात्मतत्त्वंबहिरर्थभावाः ।। ततोबुधस्त्वामिदमेवरूपंभक्त्याभजन्मुक्तिमुपैत्यदुःख ।।६१।। अहंभवन्नामगृणन्कृतार्थोवसामिकाश्यामनिशंभवान्या ।। मुमूर्षमाणस्यविमुक्तयेऽहंदिशामिमन्त्रंतवरा

मनाम ।।६२।। इमंस्तवंनित्यम नन्यभक्त्याभृण्वन्तिगायन्तिलिखन्तियेवै ।। तेसर्वसौख्यंपरमंचलब्ध्वाभवत्पदं यान्तुभवत्प्रसादात् ।।६३।। इन्द्र उवाच ।। रक्षोधिपेना खिलदेवसौख्यंहृतंचमेब्रह्मवरेणदेव ।। पुनश्चसर्वंभवतः प्रसादात्प्राप्तंहतोराक्षसदुष्टशत्रुः ।।६४।। देवा ऊचुः ।। हृतायज्ञभागाधरादेवदत्ता-मुरारेखलेनाददैत्येनविष्णो ।। हतोऽद्यत्वयानोवितानेषु भागाः पुरावद्भविष्यन्तियुष्मत्प्रसादात् ।।६५।। पितर ऊचुः ।। हतोऽद्यत्वया दुष्टेदैत्योमहात्मन्गयादौनरैर्दत्तपिण्डादिकान्नः ।। बलादत्तिहत्वागृहीत्वासस्ता-निदानींपुनर्लब्धसत्वाभवामः ।।६६।।

बाहर के विषयों में जिनकी सत्यबुद्धि है ऐसे ब्रह्मादि आदि भी तुम्हारे चैतन्य आत्मस्वरूप को नहीं जान सकते औरों का कहना ही क्या है इसलिये विवेकी पुरुष तुम्हारे इस श्यामसुन्दर रूप का भक्तिपूर्वक पूजन करता हुआ सब दुःखों से छूट कर मुक्ति पाता है।।६१।। और हे राम! मैं तुम्हारे नाम को सदा उच्चारण करता हुआ कृतार्थ होकर पार्वतीसहित काशी में रहता हूं और काशी में जब कोई पुरुष मरने लगता है तब उसके मोक्ष के लिये उसे मैं तुम्हारे "राम" इस तारक मंत्र का उपदेश करता हूं।।६२।। हे राम! अब मेरी यह प्रार्थना है कि जो पुरुष इस मेरे किये हुए स्तोत्र को नित्य अनन्य भक्ति से सुनेंगे पढेंगे वा लिखकर बाटेंगे वे सब प्रकार के परम सुख को पाकर आपके प्रसाद से आपके ही पद को पावेंगे।।६३।। फिर इन्द्रदेवता बोले कि-हे देव! ब्रह्माजी के वरदान से इस राक्षसपति रावण ने मेरे देवराज्य का जो सुख हर लिया था सो आपके द्वारा उस राक्षस दुष्ट शत्रु के मारे जाने पर आपकी कृपा से मैंने उस अपने सब राज्य को पा लिया ।।६४।। देवता बोले-हे विष्णुभगवान्! हे मुरारी! इस दुष्ट रावण ने ब्राह्मणों के द्वारा दिये गये हमारे सब यज्ञभाग हर लिये थे सो उस दुष्ट रावण को आपने मार दिया इस लिये आपके प्रसाद से अब फिर हमें पहिले की भांति यज्ञों में भाग मिलने लगेंगे।।६५।। फिर पितर बोले-हे भगवन्! गया आदि तीर्थों में हमारे पुत्रादि जन जो पिंडादिक अन्न देते थे उसे बलपूर्वक छीनकर यह दुष्ट खा लेता था सो उस दुष्ट को आज आपने मार दिया इसलिये हम अब उन सब पिंडों को पाकर फिर बली हो जायेंगे।।६६।।

यक्षा ऊचुः ।। सदाविष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्तावहामोदशास्यंबलाद्दुःखयुक्ताः ।। दुरात्माहतोरावणोराघवेशत्वयातेवयंदुःखःजाताद्विमुक्ताः ।।६७।। गन्धर्वा ऊचुः ।। वयंसंगीतनिपुणागायन्तस्तेकथामृतम् ।। आनन्दामृतसन्दोहयुक्ताः पूर्णाः स्थिताः पुरा ।।६८।। पश्चाद्दुरात्मनारामरावणेनाभिविद्रुताः ।। तमेवगायमानाश्चतदाराधनतत्पराः ।।६९।। स्थितास्त्वयापरित्राताहतोऽयंदुष्टराक्षसः ।। एवंमहोरगाः सिद्धाः किन्नरामरुतस्तथा।।७०।।वसवोमुनयोगावोगुह्यकाश्चपतत्त्रिणः।।सप्रजापतयश्चैतेतथाचाप्सरसांगणाः ।।७१।। सर्वेरामंसमासाद्य दृष्ट्वानेत्रमहोत्सवम् ।। स्तुत्वापृथक्पृथक्सर्वेराघवेणाभिवन्दिताः ।।७२।। ययुः स्वंस्वंपदंसर्वेब्रह्मरुद्रादयस्तथा ।। प्रशंसन्तोमुदारामंगायन्तस्तस्य चेष्टितम् ।।७३।। ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्रसीतालक्ष्मणसंयुतम् ।। सिंहासनस्थंराजेन्द्रंययुः ।। सर्वेहृदिस्थितम् ।।७४।। खेवाद्येषुध्वनत्सु प्रमुदितहृदयैर्देववृन्दैः स्तुवद्भिर्वर्षद्भिः पुष्पवृष्टिंदिविमुनिनिकरैरीड्यमानंसमन्तात् ।। रामः श्यामः प्रसन्नस्मितरुचिरमुखः सूर्यकोटिप्रकाशः सीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहरिभिः सेव्यमानोविभाति ।।७५।। इति श्रीमदध्यात्म० उमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेपञ्चदशः सर्गः ।।१५।।

फिर यक्ष बोले-हे रघुनाथजी! यह रावण सदा हमें धींगाधींगी से बेगार के काम में लगाता था सो पालकी आदि सवारी में इस रावण को उठाते उठाते हमारा नाक में दम आ गया परन्तु अब इस दुष्ट रावण को आपने मार हमें दुःख जाल से छुटा दिया है।।६७।। फिर गंधर्व बोले-हे रामचन्द्रजी! गानविद्या में चतुर हम लोग पहिले अमृत के समान तुम्हारी कथा का गान कर आनन्दरूपी अमृत से परिपूर्ण रहते थे। परन्तु हे राम! पीछे से इस दुष्ट रावण ने आपके गान से हमें छुड़ाकर अपने गुण गाने में लगा लिया तब से हम उसीका गुण गाते और उसकी ही सेवा में लगे रहे।।६८।।६९।। सो आपने दुष्ट रावण को मार हमारी रक्षा करी और अब हमारे जी में जी आया। इसी प्रकार नाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, दक्ष आदि प्रजापति और अप्सराओं के समूह ये सब रामजी के पास आये और सबने नेत्रों को आनन्ददायक रामजी के स्वरूप का दर्शन करके रामजी की अलग अलग स्तुति करी और रामजी ने भी उनकी बड़ाई करी और फिर वे सब अपने अपने स्थान को चले गये। फिर ब्रह्मा, रुद्र आदि सबने आनन्द से रामजी की बड़ाई

कर उनके चरित्रों का गान किया और वे राजतिलक किये गये और सीता लक्ष्मणसहित सिंहासन पर बैठे हुए ऐसे महाराज रामजी का ध्यान करते हुए और उनको अपने हृदय में धारण कर सब विदा हुए।।७०-७४।। उस समय आकाश में अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे देवताओं के समूह प्रसन्न चित्त से स्तुति करके स्वर्ग से पुष्पों की वृष्टि करने लगे और चारों ओर मुनियों के वृंद स्तुति करने लगे। इस प्रकार करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान प्रसन्न और मुस्काराता हुआ जिनका सुन्दर मुख हो रहा है और सीता लक्ष्मण, हनुमान मुनिजन और सुग्रीव आदि वानर जिनकी सेवा कर रहे हैं ऐसे श्यामस्वरूप रामचन्द्रजी बड़े शोभायमान लगे।।७५।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित युद्धकांड का पंचदश सर्ग समाप्त हुआ।।१५।।

श्रीमहादेव उवाच ।। रामेऽभिषिक्तेराजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे ।। वसुधासस्यसम्पन्नाफलवन्तोमहीरुहाः ।।१।। गन्धहीनानि पुष्पाणिगन्धवन्तिचकाशिरे ।। सहस्रशतमश्वानांधेनूनांचगवांतथा ।।२।। ददौशतवृषान्पूर्वंद्विजेभ्योरघुनन्दनः ।। त्रिंशत्कोटिंसुवर्णस्य ब्राह्मणेभ्योददौपुनः ।।३।। वस्त्राभरणरत्नानिब्राह्मणेभ्योमुदातथा ।। सूर्यकान्तिसमंप्रख्यांसर्वरत्नमयींस्रजम् ।।४।। सुग्रीवायददौ प्रीत्याराघवोभक्तवत्सलः ।। अङ्गदायददौदिव्येह्यङ्गदेरघुनन्दनः ।।५।। चन्द्रकोटिप्रतीकाशंमणिरत्नविभूषितम् ।। सीतायै प्रददौहारं प्रीत्यारघुकुलोत्तमः ।।६।। अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारंजनकनन्दिनी ।। अवैक्षतहरीन्सर्वान्भर्तारंचमुहुर्मुहुः ।।७।। रामस्तामाहवैदेहीमिङ्गित ज्ञोविलोकयन् ।। वैदेहियस्यतुष्टासिदेहितस्मैवरानने ।।८।। हनूमतेददौहारंपश्यतोराघवस्यच ।। तेनहारेणशुशुभेमारुतिर्गौरवेणच ।।९।। रामोऽपिमारुतिंदृष्ट्वाकृताञ्जलिमुपस्थितम् ।। भक्त्यापरमयातुष्ट इदंवचनमब्रवीत् ।।१०।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! जब सब लोकों को सुख देनेवाले श्रीराजशिरोमणि रामचन्द्रजी का राजतिलक हो चुका तब पृथ्वी धन धान्य से भर गई और वृक्ष फलों से लद गये।।१।। गंधरहित पुष्प भी सुगंधित हो खिल गये। श्रीरामजी ने प्रथम एक लाख घोड़े एक लाख गौ और एक लाख हाल की ब्याई हुई गौएँ और सैंकड़ों बैल ब्राह्मणों को दिये। और फिर तीस करोड़ अशर्फियां ब्राह्मणों को भेंट करी।।२।।३।। फिर प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को वस्त्र आभूषण

और रत्न दिये फिर भक्तवत्सल भगवान् ने बड़ी प्रीति से सूर्य की कांति के समान झलकती हुई संपूर्ण रत्नों की एक माला सुग्रीव को दी। और रघुनाथजी ने अंगद को दो बाजूबंद दिये।।४।।५।। फिर रघुकुलशिरोमणि रामजी ने प्रीतिपूर्वक करोड़ों चन्द्रमाओं के समान प्रकाशमान एक अमूल्य मणिरत्नों का सुन्दर हार जानकीजी को दिया।।६।। जानकीजी ने पहिले तो हार को पहिर लिया फिर उसे अपने कंठ में से उतार कर वह सब वानरों की ओर और अपने पति रामजी की ओर बारम्बार देखने लगी।।७।। इस इशारे को जान रामजी ने जानकीजी की ओर देखकर उनसे कहा हे जनकनन्दिनी! हे सुन्दरमुखी जिस पर तुम प्रसन्न हो उसे इस हार को दे दो।।८।। यह सुन जानकीजी ने रामजी के देखते देखते वह हार हनुमानजी को दे दिया उस अमूल्य हार को धारण कर हनुमानजी बड़े शोभायमान हुए।।९।। फिर रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर अपने पास हाथ जोड़े खड़े हुए हनुमानजीको देखकर बड़ी प्रीतिसे उनसे यह वचन कहा कि ।।१०।।

हनूमंस्तेप्रसन्नोऽस्मिवरंवरयकांक्षितम् ।। दास्यामिदेवैरपियद्दुर्लभंभुवनत्रये ।।११।। हनुमानपितंप्राहनत्वारा-मंप्रहृष्टधीः ।। त्वन्नामस्मरतोरामनतृप्यति मनोमम् ।।१२।। अतस्त्वन्नामसततंस्मरन्स्थास्यामिभूतले ।। यावत्स्थास्यतितेनामलोकेतावत्कलेवरम् ।।१३।। मम तिष्ठतुराजेन्द्रवरोऽयंमेऽभिकांक्षितः ।। रामस्तथेतितं प्राहमुक्तस्तिष्ठयथासुखम् ।।१४।। कल्पान्तेममसायुज्यंप्राप्स्यसेनात्रसंशयः ।। तमाहजानकीप्रीतायत्रकुत्रापि मारुते ।।१५।। स्थितंत्वामनुयास्यन्तिभोगाः सर्वेः ममाज्ञया ।। इत्युक्तोमारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यांप्रहृष्टधीः ।।१६।। आनन्दाश्रुपरीताक्षोभूयोभूयः प्रणम्यतौ ।। कृच्छ्राद्ययौतपस्तप्तुंहिमवन्तंमहामतिः ।।१७।। ततोगुहंस-मासाद्यरामः प्राञ्जलिमब्रवीत् ।। सखेगच्छपुरंरम्यंभृङ्गबेरमनुत्तमम् ।।१८।।

हे हनुमान! मैं तुम पर बड़ा प्रसन्न हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो मैं तुम्हें वह वरदान दूंगा कि जो तीनों लोकों में देवताओं को भी दुर्लभ है।।११।। यह सुन हनुमानजी ने मन में प्रसन्न होकर और रामजी को प्रणाम करके उनसे यह कहा कि हे रामचन्द्रजी! आपका नाम स्मरण करते करते मेरा मन नहीं भरता है।।१२।। इसलिये तुम्हारे नाम को सदा स्मरण करता हुआ पृथ्वीतल पर रहूंगा। संसार में जब तक तुम्हारा नाम स्थिर रहे तब तक यह मेरा शरीर रहे। हे राजेन्द्र! यही मेरा मनोवांछित वर है सो इसे दीजिये। रामजी ने कहा कि ऐसा ही होगा और हनुमानजी से बोले कि हे

वायुपुत्र! तुम जीवन्मुक्त होकर सुखपूर्वक भूतल पर निंवास करो॥१३॥१४॥ कल्प के अंत में तुम मेरे सायुज्यपद को पाओगे इसमें संदेह नहीं है। फिर जानकीजी उनसे प्रसन्न होकर बोलीं कि हे पवनपुत्र! तुम जहां रहोगे तहां मेरी आज्ञा से संपूर्ण भोग तुम्हारे पास आकर रहेंगे। जब सीता रामजी ने उनसे इस प्रकार कहा तब तो हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए॥१५॥१६॥ और आनन्द के कारण उनके नेत्रों से आंसू टपकने लगे और परम चतुर हनुमानजी सीता रामजी को बारम्बार प्रणाम करके परम चतुर हनुमानजी बड़ी कठिनता से हिमालय पर्वत पर तप करने के लिये चले गये॥१७॥ फिर रामजी ने हाथ जोड़े खड़े हुए गुह को पास बुलाकर कहा कि हे मित्र! अब सबसे उत्तम और परम रमणीक शृंगवेर पुर को जाओ॥१८॥

मामेवचिन्तयन्नित्यंभुङ्क्ष्वभोगान्निजार्जितान् ॥ अन्तेममैवसारूप्यंप्राप्स्यसेत्वंनसंशयः ॥१९॥ इत्युक्त्वाप्रद-दौतस्मैदिव्यान्याभरणानिच ॥ राज्यंचविपुलंदत्त्वाविज्ञानंचददौविभुः ॥२०॥ रामेणालिङ्गितोहृष्टा ययौस्वभवनंगुहः ॥ येचान्येवानराः श्रेष्ठाअयोध्यांसमुपागताः ॥२१॥ अमूल्याभरणैर्वस्त्रैः पूजयामासराघवः ॥ सुग्रीवप्रमुखाः सर्वेवानराः सबिभीषणाः ॥२२॥ यथार्हंपूजितास्तेनरामेणपरमात्मना ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वेजग्मुरेवयथागतम् ॥२३॥ सुग्रीवप्रमुखाः सर्वेकिष्किन्धांप्रययुर्मुदा ॥ विभीषणस्तुसंप्राप्यराज्यंनिहतकण्ट-कम् ॥२४॥ रामेणपूजितः प्रीत्याययौलङ्कामनिन्दितः ॥ राघवोराज्यमखिलंशशासाखिलवत्सलः ॥२५॥ अनिच्छन्नपिरामेणयौवराज्येऽभिषेचितः ॥ लक्ष्मणः परयाभक्त्यारामसेवापरोऽभवत् ॥२६॥ रामस्तुपरमा-त्माऽपिकर्माध्यक्षोऽपिनिर्मलः ॥ कर्तृत्वादिविहीनोऽपिनिर्विकारोऽपिसर्वदा ॥२७॥ स्वनन्देनाऽपितुष्टः सन्लोकानामुपदेशकृत ॥ अश्वमेधादियज्ञैश्चसर्वैर्विपुलदक्षिणैः ॥२८॥ अयजत्परमानन्दोमानुषंवपुराश्रितः ॥ नपर्यदेवन्विधवानचव्यालकृतंभयम् ॥२९॥

नित्य मेरा ही ध्यान करते हुए अपने सुकर्मों से प्राप्त किये भोगों को भोगो। अंत में तुम मेरी ही सारूप्य मोक्ष को पाओगे इसमें संदेह नहीं है॥१९॥ यह कहकर भगवान् ने उस गुह को दिव्य दिव्य आभूषण दिये और बहुत सा राज्य देकर उसे ज्ञान का उपदेश किया॥२०॥ पीछे रामजी ने उसे हृदय से लगाया और गुह प्रसन्न होकर अपने घर गया। और अन्य जो

श्रेष्ठ वानर अयोध्या में आये थे भगवान् ने अमूल्य आभरण वस्त्रों से उनका भी सत्कार किया। इस प्रकार जब विभीषण समेत सुग्रीव आदि सब वानर उन परमात्मा रामचन्द्रजी से यथायोग्य सत्कार पा चुके तब सब प्रसन्न होकर जहां से आये थे वहां अपने अपने घर चले गये॥२१-२३॥ सुग्रीव आदि सब वानर तो प्रसन्न होते हुए किष्किन्धा में जा पहुँचे और विभीषण अकंटक राज्य को पाकर और रामजी से सत्कारित होकर लंका को विदा हुआ और सब प्रकार उनकी बात बन गई। और इधर प्रजावत्सल रामचन्द्रजी भी अपने संपूर्ण राज्य का पालन करने लगे॥२४॥२५॥ और लक्ष्मणजी के बहुत नाहीं करने पर भी रामजी ने उन्हें युवराज तिलक कर दिया और वह भी बड़ी भक्ति से रामजी की सेवा करने लगे॥२६॥ परमात्मा सब कर्मों के साक्षी निर्मल, कर्तापन के अभिमान से रहित, सदा निर्विकार आत्मानन्द में मगन रहनेवाले, लोगों को उपदेश करनेवाले परमानन्दस्वरूप होकर भी रामजी ने मनुष्य का शरीर धारण किया और अश्वमेध आदि यज्ञ किये और उसमें ब्राह्मणों को सब प्रकार की बहुत सी दक्षिणा बांटी। भगवान् के राज्य में विधवा स्त्रियां विलाप नहीं करती थीं, और किसी को सर्प का भय नहीं होता था॥२७-२९॥

नव्याधिजंभयंचासीद्रामे राज्यंप्रशासति ॥ लोकेदस्युभयंनासीदनर्थोनास्तिकश्चन ॥३०॥ वृद्धेषुसत्सुबालानां नासीन्मृत्युभयंतथा ॥ रामपूजापराः सर्वेसर्वेराघवचिन्तकाः ॥३१॥ ववर्षुर्जलदास्तोयंयथाकालंयथारुचि ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरतावर्णाश्रमगुणान्विताः॥३२॥औरसानिवरामोऽपि जुगोपपितृवत्प्रजाः॥ सर्वलक्ष्मणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः ॥३३॥ दशवर्षसहस्राणिरामोराज्यमुपास्तसः ॥३४॥ इदंरहस्यंधनधान्य ऋद्धिमद्दीर्घायुरारोग्यकरंसुपुण्यदम् ॥ पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितंपुरारामायणंभाषितमादिशंभुना॥३५॥शृणोतिभक्त्यामनुजः समाहितोभक्त्यापठेद्वापरितुष्टमानसः ॥ सर्वाः समाप्नोतिमनोगताशिषोविमुच्यतेपातककोटिभिः क्षणात् ॥३६॥ रामाभिषेकप्रयतः शृणोति योधनाभिलाषीलभतेमहद्धनम् ॥ पुत्राभिलाषीसुतमार्यसम्मतंप्राप्नोतिरामायणमादितः पठन् ॥३७॥

रामजी के राज्य के समय किसी को व्याधि का भय नहीं था और संसार में न तो चौर भय था और न किसी प्रकार का कोई अनर्थ था॥३०॥ वृद्धजन जब तक जीते थे उनके बालकों की मृत्यु का भय नहीं होता था। सब लोग रामजी की

पूजा सेवा और उनका स्मरण करते थे।।३१।। मेघ समय पर और जितना चाहिये था उतना ही जल बरसाते थे। प्रजा अपने अपने धर्म में प्रीति करनेवाली थी और वह ब्राह्मण आदि वर्ण के और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के गुणों से युक्त थी।।३२।। और रामजी भी प्रजा को अपने सगे पुत्रों के समान पालन करते थे। इस प्रकार संपूर्ण लक्षणों से युक्त और सब धर्मों में तत्पर उन रामचन्द्रजी ने दश हजार वर्ष तक राज्य किया।।३३।।३४।। गुप्त रखने योग्य धन धान्य का बढ़ानेवाला, दीर्घ आयु और आरोग्य करनेवाला पुण्यदायक और अत्यन्त पवित्र ऐसे इस अध्यात्मरामयण को पूर्वकाल में महादेवजी ने पार्वती से कहा है।।३५।। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एकाग्र इसे सुनता है वा प्रसन्न मन से भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है वह अपने मन की सब कामनाओं को पाता है और क्षण भर में करोड़ों पापों से छूट जाता है।।३६।। और जो धनाभिलाषी मनुष्य इस रामजी के अभिषेक चरित्र को एकाग्र चित्त से सुनता है वह बहुत सा धन पाता है और जो मनुष्य पुत्र की अभिलाषा से इस रामायण का आदि से पाठ करता है वह बड़े प्रतिष्ठित पुत्र को पाता है।।३७।।

शृणोतियोऽध्यात्मिकरामसंहितांप्राप्नोतिराजाभुवमृद्धसम्पदम् ।। शत्रून्विजित्यारिभिरप्रधर्षितोव्यपेतदुःखो विजयीभवेन्नृपः ।।३८।। स्त्रियोऽपिशृण्वन्त्यधिरामसंहितांभवन्तिताजीवसुताश्चपूजिताः ।। वन्ध्याऽपिपुत्रंल भतेसुरूपिणंकथामिमांभक्तियुक्ताशृणोतिया ।।३९।। श्रद्धान्वितोयः शृणुयात्प ठेन्नरोविजित्यकोपंचतथाविम त्सरः ।। दुर्गाणिसर्वाणिविजित्यनिर्भयोभवेत्सुखीराघवभक्तिसंयुतः ।।४०।। सुराः समस्ताअपियान्ति तुष्टतांविघ्नाः समस्ताअपयान्तिशृण्वताम् ।। अध्यात्मरामायणमादितोनृणांभवन्तिसर्वाअपिसम्पदः पराः ।।४१।। रजस्वलावायदिरामतत्पराशृणोतिरामायणमेतदादितः ।। पुत्रंप्रसूतेऋषभंचिरायुषंपतिव्रतालोकसु पूजिताभवेत् ।।४२।। पूजयित्वातुये भक्त्यानमस्कुर्वन्तिनित्यशः ।। सर्वैः पापैर्विनिर्मुक्ताविष्णोर्यान्तिपरंपदम् ।।४३।। अध्यात्मरामचरितंकृत्स्नंशृण्वन्ति भक्तितः ।। पठन्तिवास्वयंवक्त्रात्तेषांरामः प्रसीदति ।।४४।। राम एव परंब्रह्मतस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मनि ।। धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यदिच्छति तद्भवेत् ।।४५।।

जो राजा अध्यात्म रामायण को सुनता है वह धनधान्ययुक्त पृथ्वी को पाता है और शत्रुओं से उसका कभी तिरस्कार

नहीं होता और वह राजा शत्रुओं को जीतकर और दुःख से रहित हो विजय को पाता है।।३८।। जो स्त्रियां अध्यात्मरामायण को सुनती है उनके पुत्र जीते हैं और वे सबकी पूजित होती हैं। जो वन्ध्या स्त्री भी इस कथा को भक्तिपूर्वक सुने तो वह सुन्दर पुत्र पाती है।।३९।। जो पुरुष क्रोध को जीतकर मत्सरता रहित हो श्रद्धा से पढ़ता वा सुनता है वह सब क्लेशों से छूटकर निर्भय सुखी और रामजी की भक्ति से युक्त होता है।।४०।। जो मनुष्य अध्यात्मरामायण को आदि से सुनते हैं उन पर सब देवता प्रसन्न होते हैं और उनके सब विघ्न दूर हो जाते हैं तथा उनको सब संपत्तियां प्राप्त होती हैं।।४१।। और जो रजस्वला स्त्री कृतस्नान के बारहवें दिन तक राम का ध्यान करती हुई आदि से लेकर इस रामायण को सुनती है तो बली और गुणवान् पुत्र को जनती है और वह पतिव्रता लोक में पूजित होती है।।४२।। जो पुरुष अध्यात्मरामायण की पुस्तक का नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णु के परम धाम को जाते हैं।।४३।। जो मनुष्य संपूर्ण अध्यात्मरामायण के चरित्र को भक्ति से सुनते हैं वा अपने मुख से पाठ करते हैं तो उनके ऊपर रामजी प्रसन्न होते हैं।।४४।। रामजी परब्रह्म हैं इसलिये उन सर्वात्मा के प्रसन्न होने से धर्म अर्थ काम मोक्ष इनमें से मनुष्य जिसकी इच्छा करता है उसी को पाता है।।४५।।

श्रोतव्यंनियमेनैतद्रामायणमखण्डितम् ।।आयुष्यमारोग्यकरंकल्पकोटचघनाशनम् ।।४६।। देवाश्चसर्वे तुष्यंतु ग्रहाः सर्वेमहर्षयः ।। रामायणस्यश्रवणेतृप्यन्तिपितरस्तथा ।।४७।। अध्यात्मरामायणमेतदद्भुतं वैराग्यविज्ञानयुतंपुरातनम् ।। पठन्ति शृण्वन्तिलिखन्तियेनरास्तेषांभवेऽस्मिन्नपुनर्भवोभवेत् ।।४८।। आलोडचाखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकंब्रह्मतद्रामोविष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञायभूतेश्वरः ।। उद्धृत्याखिलसारसंग्रहमिदंसंक्षेपतः प्रस्फुटंश्रीरामस्यनिगूढतत्त्वमखिलंप्राहप्रियायैभवः ।।४९।। इत्यध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेषोडशः सर्गः ।।१६।। युद्धकाण्डेनृपमिताः सर्गाः प्रोक्ता महर्षिभिः ।। सार्धरुद्रशतश्लोकैर्मनुयुक्तैरलंकृताः ।।

इसलिये आयु और आरोग्य यश के करनेवाले और करोड़ों कल्पों के पापों के नाश करनेवाले इस सब रामायण की कथा नियम से सुननी चाहिये।।४६।। रामायण के सुनने से सब देवता सब ग्रह महर्षि और सब पितर प्रसन्न हो जाते हैं।।४७।।

जो पुरुष वैराग्य और विज्ञान से भरी हुई इस प्राचीन अद्भुत रामायण को पढ़ते हैं सुनते हैं और लिखते हैं उनका पूर्वजन्म इस संसार में नहीं होता।।४८।। भूतेश्वर शिवजी ने सब वेदों के समूह को वारम्बार मथकर यही निश्चय किया है कि तारक राम मंत्र विष्णुभगवान् की गुप्तमूर्ति है और उन्होंने ऐसा विचारकर सब वेदों का मुख्य जो तत्त्व उपनिषदें हैं उनके गुप्त तत्त्व को निकालकर यह रघुनाथजी का चरित्र संक्षेप रीति से अपनी प्यारी पार्वतीजी को सुनाया है।।४९।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अध्यात्मरामायण का युद्धकाण्ड का सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।१६।।

भजन-रामचन्द्र रघुनायक तुमसों हौं विनती केहि भांति करों। अघ अपने अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरों ।।१।। परदुख दुखी सुखी पर सुखतें संत शील नहिं हृदय धरों। देखि आनिकी विपत्ति परम सुख सुनि संपत्ति विन आग जरौं ।। राम० ।।२।। भक्तिविराग ज्ञान साधन कहि बहु विधि डंहकत लोग फिरों। शिव सरवस सुख धाम नाम तब बेंचि नरकप्रद उदर भरों ।।राम० ३।। जानत हूं निज पाप जलधि जिय जलसीकर सम सुनत लरों। रजसम पर अवगुण सुमेरु करि गुण गिरिसम रजतें निदरों ।।राम०४।। नानावेष बनाइ दिवसि निशिपर वित जेहि तेहि जुगति हरों। एकहुँ पल न कबहुँ अलोल चित्त हित दै पदसरोज सुमिरों ।।राम० ५।। जो आचरण विजारहु मेरो कल्प कोटि लगि और मरों। तुलसिदास प्रभु कृपाविलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरों ।।रामचन्द्र रघु० ।।६।।

इति हिन्दीटीकासहितम् युद्धकाण्डं समाप्तम्

इति अध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते

लंकाकाण्ड: समाप्त:



अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते

उत्तरकाण्ड

प्रारम्भः

जयतिरघुवंशतिलकः कौसल्याहृदयनन्दनोरामः ।। दशवदननिधनकारीदाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ।।१।। पार्वत्युवाच ।। अथ रामः किमकरोत्कौसल्यानन्दवर्धनः ।। हत्वामृधेरावणादीन्राक्षसान्भीमविक्रमः ।।१।। अभिषिक्तस्त्वयोध्यायांसीतयासहराघवः ।।मायामानुषतांप्राप्यकतिवर्षाणिभूतले।।२।।स्थितवान्लीलयादेवः परमात्मासनातनः ।। अत्यजन्मानुषंलोकंकथमन्तेरघूद्वहः ।।३।। एतदाख्याहिभगवञ्छ्रद्दधत्याममप्रभो ।। कथापीयूषमांस्वाद्यतृष्णामेऽतीववर्धते ।। रामचन्द्रस्यभगवन्ब्रूहिविस्तरशः कथाम् ।।४।। श्रीमहादेव उवाच ।। राक्षसानांवधंकृत्वाराज्यंरामउपस्थिते ।। आययुर्मुनयः सर्वेश्रीरामभिवन्दितुम् ।।५।। विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासाभृगुरङ्गिराः ।। कश्यपोवामदेवोऽत्रिस्तथासप्तर्षयोऽमलाः।।६।।अगस्त्यः सहशिष्यैश्वमुनिभिः सहितोऽभ्यगात् ।। द्वारमासाद्यरामस्यद्वारपालमथाब्रवीत् ।।७।। ब्रूहिरामायमुनयः समागत्यबहिः स्थिताः ।। अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे आशीर्भिरभिनन्दितुम् ।।८।।

उत्तरकांड ।। रघुवंश के शिरोमणि, कौसल्या के हृदयको आनंद देनेवाले, रावण के नाशक, कमलनयन दशरथनन्दन रामजी की जय हो।।१।। श्रीपार्वतीजी महादेवजी से पूछने लगी कि कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले महापराक्रमी रामजी ने संग्राम में रावण आदि राक्षसों को मारकर फिर क्या किया।।१।। और अयोध्या में राज्याभिषेक होने के पीछे जानकीसहित रामचन्द्रजी माया से मनुष्यरूप धारण करके कितने वर्ष तक पृथ्वी पर लीला करते रहे और उन परमात्मा सनातन भगवान् रामचन्द्रजी ने अंत में वह मनुष्यलोक किस प्रकार छोड़ा।।२।।३।। हे भगवन्! यह सब मुझसे कहिये क्योंकि हे प्रभो! मुझे इसके सुनने में बड़ी श्रद्धा है और मैं इस कथारूपी अमृत का जितना पान करती हूं उतनी ही तृष्णा मेरी बढ़ती जाती है इसलिये हे भगवन्! आप रामचन्द्रजी की कथा को विस्तारपूर्वक कहिये।।४।। श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! राक्षसों का वध करके जब रामजी राजगद्दी पर बैठे तब सब मुनिलोग प्रणाम करने के लिये आये।।५।। विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि तथा तेजस्वी सप्तर्षि और शिष्य तथा मुनियोंसहित अगस्त्यजी आये और रामजी के द्वार पर आकर द्वारपाल से कहने लगे कि।।६।।७।। हे द्वारपाल! रामजी से जाकर कह दो कि अगस्त्य आदि सब मुनि आपको आशीर्वाद देने के लिये आये हैं और बाहर खड़े हुए हैं।।८।।

प्रतीहारस्ततोराममगस्त्यवचनाद्द्रुतम् ।। नमस्कृत्वाब्रवीद्वाक्यंविनयावनतः प्रभुम् ।।९।। कृताञ्जलिरुवाचेद-मगस्त्योमुनिभिः सह ।। देवत्वद्दर्शनार्थाय प्राप्तोबहिरुपस्थितः ।।१०।। तमुवाचद्वारपालं प्रवेशययथासुखम् ।। पूजिताविविशुर्वेश्मनानारत्नविभूषितम् ।।११।। दृष्ट्वारामोमुनीन् शीघ्रं प्रत्युत्थायकृताञ्जलिः ।। पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्यगानिवेद्ययथाविधि ।।१२।। नत्वातेभ्योददौदिव्यान्यासनानि यथार्हतः ।। उपविष्टाः प्रहृष्टाश्चमुनयोरामपूजिताः ।।१३।। संपृष्टकुशलाः सर्वेरामंकुशलमब्रुवन् कुशलंतेमहाबाहोसर्वत्ररघुनन्दन ।।१४।। दिष्टयेदानींप्रपश्यामोहतशत्रुमरिन्दम ।। नहिभारसतेरामरावणोराक्षसेश्वरः ।१५।। सधनुस्त्वंहिलोकांस्त्रीन् विजेतुंशक्त एवहि ।। दिष्टयात्वयाहताः सर्वेराक्षसारावणादयः ।।१६।। सह्यमेतन्महाबाहोरावण-स्यनिबर्हणम् ।। असह्यमेतत्संप्राप्तंरावणेर्यन्निषूदनम् ।।१७।। अन्तकप्रतिमाः सर्वेकुम्भकर्णादयोमृधे ।। अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्तेरघुसत्तम ।।१८।। दत्ताचेयंत्वायास्माकंपुराह्यभयदक्षिणा ।। हत्वारक्षोगणान्संख्ये कृतकृत्योऽद्यजीवसि ।।१९।।

इस प्रकार अगस्त्यजी के कहने से द्वारपाल शीघ्र रामजी के पास गया और भगवान् को प्रणाम करके विनयपूर्वक हाथ जोड़ यह कहने लगा कि हे देव! अगस्त्यजी मुनियों के साथ आपके दर्शन के लिये आये हैं और बाहर खड़े हैं।।९।।१०।। रामजी ने द्वारपाल से कहा कि बेरोक टोक उन सब पूज्य मुनियों को यहां लिवा लाओ और वे सब द्वारपाल के साथ रामजी के नानाप्रकार के रत्नजटित महल में पहुँचे।।११।। रामजी मुनियों को आया हुआ देखकर तुरंत खड़े हो गये और हाथ जोड़कर अर्घ्य पाद्य आदि से उनका पूजन किया और शास्त्रविधि से उनको मधुपर्क के लिये गौएं भेंट करी।।१२।। और फिर उनको प्रणाम करके यथायोग्य दिव्य आसन दिये और वे सब रामजी से सत्कार पाकर प्रसन्न हो आसनों पर विराजमान हो गये।।१३।। रामजी ने उनसे कुशल पूछी और उन सबने रामजी से कुशल प्रश्न किया कि हे दीर्घबाहु रघुनंदन! तुम्हारे यहां सब राज्य में कुशल तो है।।१४।। हे शत्रुनाशक राम! आपने शत्रु रावण का नाश कर दिया, यह बड़े आनन्द की बात है, इसके लिये हम आपका दर्शन करने आये हैं और हे राम! उस राक्षसराज रावण को मारना आपको कुछ कठिन नहीं था।।१५।। क्योंकि धनुष धारण कर आप अकेले ही तीनों लोकों

को जीतने में समर्थ हो सो रावण आदि सब राक्षसों को आपने मारा, यह हमारे बड़े भाग्य की बात है।।१६।। हे दीर्घबाहु रामचन्द्र! रावण का नाश करना तो सहज था परंतु मेघनाद का मारना बड़ा कठिन था।।१७।। और हे राम! तुमने संग्राम में काल के समान कुंभकर्ण आदि सब राक्षसों का काल के समान ही नाश कर दिया।।१८।। आपने जो पहिले हमें अभय दान का वचन दिया था सो पूर्ण हुआ। आपने भी संग्राम में राक्षसगणों को मारकर जी में जी आया और इस काम से निश्चिन्त हो गये।।१९।।

श्रुत्वातुभाषितंतेषांमुनिनांभावितात्मनाम् ।। विस्मयंपरमंगत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।।२०।। रावणादीनतिक्रम्य कुम्भकर्णादिराक्षसान् ।। त्रिलोकजयिनोहित्वाकिंप्रशंसथरावणिम् ।।२१।। ततस्तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यमहात्मनः ।। कुम्भयोनिर्महातेजारामंप्रीत्यावचोऽब्रवीत् ।।२२।। शृणुरामयथावृत्तं रावणेरावणस्य च ।। जन्म कर्मवरादानं संक्षेपाद्वदतो मम ।।२३।। पुराकृतयुगेरामपुलस्त्योब्रह्मणः सुतः ।। तपस्तप्तुंगतोविद्वान्मेरोः पार्श्वेमहामतिः ।।२४।। तृणबिन्दो राश्रमेऽसौन्यवसन्मुनिपुङ्गवः।।तपस्तेपेमहातेजाः स्वाध्यायनिरतः सदा ।।२५।। तत्राश्रमेमहारम्ये देवगन्धर्वकन्यकाः ।। गायन्त्योननृतुस्तत्र हसन्त्योवादयन्ति च ।।२६।। पुलस्त्यस्यतपोविघ्नंचक्रुः सर्वाअनिन्दिताः ।। ततः क्रुद्धोमहातेजाव्याजहारवचोमहत् ।।२७।। यामेदृष्टिपथं गच्छेत्सागर्भंधायिष्यति ।। ताः सर्वाः शापसंविग्नानतंदेशंप्रचक्रमुः ।।२८।। तृणबिन्दोस्तुराजर्षेः कन्यातन्नाश्रृणोद्वचः ।। विचचारमुनेरग्रेनिर्भयातंप्रपश्यतिः ।।२९।।

उन शुद्ध अंतःकरणवाले मुनियों का वचन सुनकर रामजी को बड़ा परेखा हुआ और वे हाथ जोड़कर उनसे बोले कि।।२०।। हे मुनिराज! त्रिलोकी के जीतनेवाले रावण कुंभकर्ण आदि राक्षसों को छोड़कर तुम मेघनाद की बड़ाई क्यों करते हो।।२१।। महात्मा रामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर महातेजस्वी अगस्त्यजी प्रीतिपूर्वक रामजी से कहने लगे कि।।२२।। हे राम! जिस प्रकार रावण और मेघनाद का जन्म हुआ और जो जो इन्होंने काम किये और जैसे जैसे इनको वरदान मिला सो सब वृत्तान्त मुझसे सुनो, मैं संक्षेप से कहता हूं।।२३।। हे राम! पहिले सतयुग में ब्रह्मा के पुत्र बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् पुलस्त्यऋषि तप करने के लिये मेरुपर्वत के ऊपर गये।।२४।। और वहां यह महातेजस्वी श्रेष्ठ

मुनि तृणबिन्दु के आश्रम में रहने लगे और सदा स्वाध्याय में लगे रहकर तप करने लगे।।२५।। उस परम रमणीक आश्रम में देवता और गंधर्वों की कन्यायें गाती नाचती हँसती और बाजे बजाया करती थीं।।२६।। सो ये सब रूपवती पुलस्त्यजी के तप में विघ्न करने लगीं। फिर तो महातेजस्वी पुलस्त्यऋषि ने उन्हें बड़ा उग्र शाप दिया कि।।२७।। जो मेरी दृष्टि के सामने आ जायगी उसके गर्भ रह जायगा। यह सुन उन सबने शाप के भय से वहां जाना छोड़ दिया।।२८।। परंतु उस तृणबिंदुराजर्षि की कन्या ने यह शाप नहीं सुना था सो वह निर्भय होकर उनके सामने उनकी ओर देखती भालती फिरती।।२९।।

बभूवपाण्डुरतनुर्व्यञ्जितान्तः शरीरजा ।। दृष्ट्वासादेहवैवर्ण्यंभीतापितरमन्वगात् ।।३०।। तृणबिन्दुश्चतांदृष्ट्वाराजर्षिमितद्युतिः ।। ध्यात्वामुनिकृतंसर्वमवैद्विज्ञानचक्षुषा ।।३१।। तांकन्यांमुनिवर्यायपुलस्त्यायददौपिता ।। तां प्रगृह्या ब्रवीत्कन्यांबाढमित्येवसद्विजः ।।३२।। शुश्रूषणपरांदृष्ट्वामुनिः प्रीतोऽब्रवीद्वचः ।। दास्यामिपुत्रमेकंतेउभयोर्वंशवर्धनम् ।३३।। ततः प्रासूतसापुत्रंपुलस्त्याल्लोकविश्रुतम् ।। विश्रवाइतिविख्यातः पौलस्त्योब्रह्मविन्मुनिः ।।३४।। तस्यशीलादिकंदृष्ट्वाभरद्वाजोमहामुनिः ।। भार्यार्थंस्वांदुहितरंददौविश्रवसेमुदा ।।३५।। तस्यांतुपुत्रः संजज्ञेपौलस्त्याल्लोकसम्मतः ।। पितृतुल्योवैश्रवणोब्रह्मणाचानुमोदितः ।।३६।। ददौतत्तपसातुष्टो ब्रह्मातस्मैवरंशुभम् ।। मनोऽभिलषितंतस्यधनेशत्वमखण्डितम् ।।३७।। ततो लब्धवरः सोपिपितरंद्रष्टुमागतः ।। पुष्पकेणधनाध्यक्षोब्रह्मदत्तेनभास्वता ।।३८।। नमस्कृत्वाथपितरंनिवेद्यातपसः फलम् ।। प्राहमेभगवान् ब्रह्मादत्त्वावरमनिन्दितम्।।३९।।

थोड़े दिन में उसका शरीर पीला पड़ गया और उसके शरीर में गर्भ के चिह्न दीखने लगे सो वह शरीर के वर्ण को बदला हुआ देखकर डरती हुई अपने पिता के पास गई।।३०।। महातेजस्वी राजर्षि तृणबिंदु ने उसको देखकर ध्यान किया और ज्ञानदृष्टि से सब जान लिया कि यह सब पुलस्त्य ऋषि का कर्म है।।३१।। और फिर पिता ने उस कन्या को मुनिश्रेष्ठ उन पुलस्त्य मुनि को ही दान कर दी और उन ऋषि ने भी उस कन्या को भार्यारूप से अंगीकार कर ली।।३२।। फिर उसको अपनी शुश्रूषा में लगा हुआ देखकर मुनि प्रसन्न होकर उससे बोले कि मैं तुझे दोनों वंशों को बढ़ानेवाला एक पुत्र

दूंगा।।३३।। इसके पीछे उसके पुलस्त्यमुनि से एक जगद्विख्यात् पुत्र जन्मा और वह पुत्र वेद का ज्ञाता विश्रवा और पौलस्त्य मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।।३४।। उसका शील गुण देखकर महामुनि भारद्वाज ने प्रसन्न होकर उस विश्रवा के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।।३५।। उस वैश्रवस वा पौलस्त्य से उसमें एक पुत्र उत्पन्न हुआ वह जगत् का माननीय पिता के समान गुणवान् हुआ और उसने ब्रह्माजी से वर पाया।।३६।। उसके तप से संतुष्ट होकर ब्रह्माजी ने उसे मनचाहा सुन्दर वर दिया किजिससे वह देवताओंके पूर्ण धन का स्वामी हुआ।।३७।। वह वैश्रवण वर पाकर एक समय ब्रह्माजी के दिये हुए प्रकाशमान पुष्पक विमान में बैठकर पिता का दर्शन करने आया।।३८।। और उसने पिता को प्रणाम करके तप के फल को निवेदन किया और कहा कि भगवान् परमेश्वर ब्रह्माजी ने मुझे सुन्दर वर देकर धन का स्वामी तो कर दिया परंतु मेरे रहने के लिये कोई स्थान नहीं दिया सो आप मुझे ऐसा स्थान बताइये कि जहां किसी की बाधा न होय और मेरे रहने से कोई दुःख न पावे।।३९।।४०।।

निवासायनमेस्थानंदत्तवान्परमेश्वरः ।। ब्रूहिमेनियतंस्थानंहिंसायत्रनकस्यचित्।।४०।। विश्रवाअपितंप्राहलङ्कानामपुरीशुभा ।। राक्षसानांनिवासायनिर्मिताविश्वकर्मणा ।।४१।।त्यक्त्वाविष्णुभयाद्दैत्याविविशुस्तेरसातलम् ।। सापुरीदुष्प्रधर्षान्यैर्मध्ये सागरमास्थिता ।।४२।। तत्रवासायगच्छत्वंनान्यैः साऽधिष्ठितापुरा ।। पित्रादिष्टस्त्वसौगत्वातांपुरींधनदोऽविशत् ।।४३।। सतत्रसुचिरंकालमुवासपितृसम्मतः।।कस्यचित्त्वथकालस्यसुमालीनामराक्षसः।।४४।। रसातलान्मर्त्यलोकंचचारपिशिताशनः।। गृहीत्वा तनयांकन्यांसाक्षाद्देवीमिवश्रियम् ।।४५।। अपश्यद्धनदंदेवचरन्तं पुष्पकेणसः ।।हितायचिन्तयामास राक्षसानांमहामनाः ।।४६।। उवाच तनयांतत्रकैकसींनामनामतः ।। वत्सेविवाहकालस्तेयौवनंचातिवर्तते।।४७।। प्रत्याख्यानाच्चभीतैस्त्वंनवरैर्गृह्यसेशुभे ।। सात्वंवरयभद्रंतेमुनिंब्रह्मकुलोद्भवम् ।।४८।।

विश्रवानाम ऋषि ने कुबेर से कहा कि विश्वकर्मा ने राक्षसों के रहने के लिए लंकानाम सुन्दर पुरी रची थी।।४१।। परंतु भगवान् के डर से सब दैत्य उसे छोड़कर पाताल को चले गये। वह पुरी समुद्र के बीचोबीच खड़ी है और वहां शत्रुओं के जाने की गति नहीं है।।४२।। और पहिले से उसमें कोई वसा भी नहीं है सो तुम वहां जाकर निवास करो। इस

प्रकार पिता की आज्ञा से कुबेर लंकापुरी को चला गया।।४३।। और पिता की सलाह से वह वहां बहुत काल तक रहता रहा फिर एक समय मांसभक्षी सुमाली नाम राक्षस साक्षात् लक्ष्मीदेवी के समान अपनी कन्या को लेकर पाताललोक में आकर मनुष्यलोक में विचरने लगा।।४४।।४५।। और विचरते विचरते उसने कुबेर देवता को पुष्पक विमान पर बैठकर फिरते देखा और सब राक्षसों के भले के लिये इस बड़े बुद्धिमान् सुमाली ने एक विचार किया।।४६।। और अपनी कैकसी नाम कन्या से कहा कि हे पुत्री! तेरे विवाह का समय आ पहुँचा और तेरी युवावस्था व्यतीत हुई जाती है।।४७।। और हे सुन्दरी! तेरे मना करने के भय से तुझे कोई वरता नहीं है इसलिये तू आप ही जाकर ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न हुए विश्रवामुनि के साथ विवाह कर ले, इससे तेरा भला होगा।।४८।।

स्वयमेवततः पुत्राभविष्यन्तिमहाबलाः ।। ईदृशाः सर्वशोभाढ्याधनदेनसमाः शुभे ।।४९।। तथेतिसाश्रमंगत्वामुनेरग्रेव्यवस्थिता ।। लिखन्तीभुवमग्रेणपादेनाधोमुखीस्थिता ।।५०।। तामपृच्छन्मुनिः कात्वंकन्यासिवरवर्णिनि ।। साब्रवीत्प्राञ्जलिर्ब्रह्मन्ध्यानेनज्ञातुमर्हसि ।।५१।। ततोध्यात्वामुनिः सर्वंज्ञात्वा तांप्रत्यभाषत ।। ज्ञातंतवाभिलषितंमत्तः पुत्रानभीप्स्यसि ।।५२।। दारुणायांतुवेलायामागतासिसुमध्यमे ।। अतस्तेदारुणौपुत्रौराक्षसौसंभविष्यतः ।।५३।। साब्रवीन्मुनिशार्दूलत्वत्तोऽप्येवं विधौसुतौ।। तामाहपश्चिमोयस्तेभविष्यतिमहामतिः ।।५४।। महाभागवतः श्रीमान्रामभक्त्यैकतत्परः ।। इत्युक्त्वासातथाकाले सुषुवेदशकन्धरम् ।।५५।। रावणंविंशतिभुर्जंदशशीर्षसुदारुणम् ।। तद्रक्षोजातमात्रेणचचालचवसुन्धराः ।।५६।। बभूवुर्नाशहतूनिनिमित्तान्यखिलान्यपि ।। कुम्भकर्णस्ततोजातोमहापर्वतसन्निभः ।।५७।। ततः शूर्पणखानामजातारावणसोदरी ।। ततोविभीषणोजातः शान्तात्मासौम्यदर्शनः।।५८।। स्वाध्यायीनियताहारोनित्यकर्मपरायणः ।। कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्माद्विजान् सन्तुष्टचेतसः ।।५९।। भक्षयन्नृषिसंघांश्चविचचाराति दारुणः ।। रावणोऽपिमहासत्त्वोलोकानांभयदायकः ।। ववृधेलोकनाशायह्यामयोदेहिनामिव ।।६०।।

और हे कल्याणि! तेरे कुबेर के समान बड़े बली और बड़े सुन्दर पुत्र होंगे ।।४९।। यह सुन कैकसी ने पिता का कहा मान लिया और वह आश्रम में जाकर मुनि के सामने खड़ी हो गई और चरण के अंगूठे से पृथ्वी को कुरेदती हुई नीचा मुख

किये खड़ी रही॥५०॥ उन मुनि ने उस कन्या से पूछा कि हे सुन्दरी! तू कौन और किसकी कन्या है, वह हाथ जोड़कर बोली कि ब्रह्मन्! तुम ध्यान से सब जानने में समर्थ हो॥५१॥ फिर मुनि ने ध्यान कर और सब जानकर उससे कहा कि मैंने तेरी अभिलाषा को जान लिया कि तू मुझसे पुत्र होना चाहती है॥५२॥ परन्तु हे सुन्दरी! तू भयंकर सन्ध्या के समय आई है इसलिये तेरे बड़े घोर राक्षस दो पुत्र होंगे॥५३॥ वह बोली कि हे मुनिराज! आपसे भी क्या ऐसे पुत्रों का होना संभव है यह सुन मुनि बोले कि तेरा पिछला तीसरा पुत्र बड़ा बुद्धिमान् बड़ा वैष्णव लक्ष्मीवान् और रामभक्तिपरायण होगा। मुनि को तो जो कहना था वह कह दिया, परन्तु इधर जब पुत्रोत्पत्ति का समय आया तब कैकसी ने रावण को जना॥५४॥५५॥ उस रावण के दश शिर थे और बीस भुजा थी और वह बड़ा भयंकर था। उस राक्षस के उत्पन्न होते ही पृथ्वी डिगमिगाने लगी॥५६॥ और उस समय सब सत्यानाशी शकुन हुए फिर बड़े भारी पर्वत के समान शरीरवाला कुंभकर्ण उत्पन्न हुआ॥५७॥ फिर रावण की बहिन सूर्पनखा हुई फिर शांतस्वरूप, सुंदर दर्शनीय, विभीषण उत्पन्न हुआ यह वेदपाठी थोड़ा भोजन करनेवाला और नित्य कर्म में सावधान था। परन्तु कर्म में सावधान था। परन्तु कुंभकर्ण ऐसा दुष्ट और निर्दय हुआ कि संतोषी ब्राह्मणों को और ऋषियों के समूहों को भक्षण करता हुआ विचरने लगा। और महाबली सब लोकों को भयदायक रावण लोकों को नाश करने के लिये ऐसा बढ़ा कि जैसे प्राणियों के देह में रोंगटे बढ़ते हैं॥५८-६०॥

रामत्वंसकलान्तरस्थमभितोजानासिविज्ञानदृक्साक्षीसर्वहृदिस्थितोहिपरमोनित्योदितोनिर्मलः ॥ त्वंलीला मनुजाकृतिः स्वमहिमन्मायागुणैर्नाज्यसेलीलार्थंमतिचोदितोऽद्यभवतोवक्ष्यामिरक्षोद्भवम्॥६१॥जानामिके-वलमनन्तमचिन्त्यशक्तिंचिन्मात्रमक्षरमजंविदितात्मतत्त्वम् ॥त्वांरामगूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो मूढोऽप्यहंभवद-नुग्रहतश्चरामि ॥६२॥ एतंवदन्तमिनवंशपवित्रकीर्तिः कुम्भोद्भवंरघुपतिः प्रहसन्बभाषे॥ मायाश्रितंसकल-मेतदनन्यकत्वान्मत्कीर्तनंजगतिपापहरंनिबोध ॥६३॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तर-काण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

अब अगस्त्यजी कहते हैं कि हे रामजी! तुम तो आपही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामी रूप करके स्थित ज्ञानदृष्टि

से संसार के सब चरित्रों को जाननेवाले परमात्मा, नित्य सदा प्रकाशमान और अपनी महिमा से माया के गुणों से लिप्त नहीं होनेवाले हो और तुमने लीला से मनुष्यरूप धारण किया है परन्तु आप मुझसे लीला की तरह पूछते हो इसलिये मैं आपसे राक्षसों का चरित्र कहता हूं (नहीं तो मेरी क्या सामर्थ्य है कि आपके सामने कुछ कहूं) ।।६१।। हे रामचन्द्रजी! मैं मूढ हूं परन्तु तुम्हारे अनुग्रह से आपके स्वरूप को अद्वितीय अनंत अचिंत्य शक्तिमान् चैतन्यस्वरूप, अविनाशी, अजन्मा, आत्मतत्त्व को जाननेवाला और गुप्त ऐसा जानता हूं तो भी आपके श्यामसुन्दर रूप का ध्यान करता हुआ प्रवृत्त मार्ग में विचरता हूं।।६२।। जब अगस्त्यजी ने यह कहा तब रघुवंश में पवित्र कीर्तिवाले रघुनाथजी हँसकर कहने लगे कि हे मुनिराज! जो तुमने वर्णन किया है सो सब माया से रचित है क्योंकि मैं तो सब धर्मों से रहित हूं परन्तु मेरा कीर्तन संसार में सब पापों का हरनेवाला है ऐसा जानो।।६३।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अध्यात्मरामायण के उत्तरकांड का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।।१।।

श्रीमहादेव उवाच ।। श्रीरामवचनंश्रुत्वापरमानन्दनिर्भरः ।। मुनिः प्रोवाचसदसिसर्वेषांतत्रशृण्वताम् ।।१।। अथवित्तेश्वरोदेवस्तत्रकालेनकेनचित् ।। आययौपुष्पकारूढः पितरंद्रष्टुमञ्जसा ।।२।। दृष्ट्वातंकैकसी तत्रभ्राजमानंमहौजसम् ।। राक्षसी पुत्रसामीप्यंगत्वारावणमब्रवीत् ।।३।। पुत्र पश्य धनाध्यक्षं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।। त्वमप्येवंयथाभूयास्तथायत्नंकुरुप्रभो ।।४।। तच्छ्रुत्वारावणोरोषात्प्रतिज्ञामकरोद्द्रुतम् ।। धनदेनसमोवापिह्यधिकोवाचिरेणतु ।।५।। भविष्याम्बमांपश्यसन्तापं त्यजसुव्रते ।। इत्युक्त्वादुष्करंकर्तुंतपः सदशकन्धरः ।।६।। अगमत्फलसिद्ध्यर्थगोकर्णंतुसहानुजः ।। स्वंस्वंनियममास्थायभ्रातरस्तेतपोमहत् ।।७।। आस्थितादुष्करंघोरंसर्वलोकैकतापनम् ।। दशवर्षसहस्राणिकुम्भकर्णोऽकरोत्तपः ।।८।। विभीषणोऽपिधर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः ।। पञ्चवर्षसहस्राणिपादेनैकेनतस्थिवान् ।।९।। दिव्यवर्षसहस्रंतुनिराहारोदशाननः ।। पूर्णेवर्षसहस्रेतुशीर्षमग्नौजुहावसः।। एवंवर्षसहस्राणिनवतस्यातिचक्रमुः।।१०।। अथवर्षसहस्रेतुदशमेदशमंशिरः ।। छेत्तुकामस्यधर्मात्माप्राप्तश्चाप्रजापतिः ।। वत्सवत्सदशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ।।११।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! श्रीरामजी के वचन सुनकर मुनि परमानन्द में मगन हो गये और उस सभा में सबको

सुनाते हुए ये यह वचन बोले।।१।। हे राम! इसके अनंतर कुछ काल बीतने पर कुबेर पुष्पकविमान पर बैठकर पिता के दर्शन करने के लिये उस आश्रम में आया।।२।। वहां महाबली और सुन्दर कुबेर को देखकर कैकसी नाम राक्षसी अपने पुत्र रावण के पास जाकर कहने लगी।।३।। हे पुत्र! अपने तेज से प्रकाशमान् इस धनपति कुबेर को देख और तू भी जिससे ऐसा ही हो जाय वह उपाय कर।।४।। यह सुनकर रावण बड़ा क्रोधित हुआ और उसी समय प्रतिज्ञा करी कि हे माता! तू देखियो मैं शीघ्र ही कुबेर के समान वा इससे भी अधिक हो जाऊंगा किसी बातकी चिंता मतकर यहकहकर रावण घोर तप करने और उसकी फल सिद्धि के लिये अपने भाइयों समेत गोकर्णक्षेत्र में गया और वहां ये सब भाई अपने अपने नियम के अनुसार बड़ा कठिन तप करने लगे और सब लोकों को कठिन संताप देनेवाले इस घोर तप को करते करते कुभंकर्ण को दश हजार वर्ष बीत गये।।५-८।। और सत्यधर्म में लगा हुआ धर्मात्मा विभीषण भी पांच हजार वर्ष तक एक पैर से खड़ा खड़ा तप करता रहा।।९।। और रावण देवताओं के हजार वर्ष तक तो निराहार होकर तप करता रहा और जब हजार वर्ष बीत गये तब अपना शिर काट काट कर अग्नि में होमता रहा इस प्रकार नौ हजार वर्ष और बीत गये।।१०।। फिर दश हजार वर्ष बीतने पर जब इसने अपना दशवां सिर काटने की इच्छा करी सोई धर्मात्मा ब्रह्माजी आकर उपस्थित हो गये और कहने लगे कि हे पुत्र! मैं तेरे तप से प्रसन्न हुआ ।।११।।

वरंवरयदास्यामियत्तेमनसिकांक्षितम् ।। दशग्रीवोऽपितच्छ्रुत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।१२।। अमरत्वं वृणोमीशवरदोयदिमेभवान् ।। सुपर्णनागयक्षाणांदेवतानांतथासुरैः ।। अवध्यत्वंतुमेदेहितृणभूताहिमानुषः ।।१३।। तथास्त्वितिप्रजाध्यक्षः पुनराहदशाननम् ।। अग्नोहुतानिशीर्षाणियानितेसुरपुङ्गवः ।।१४।। भविष्यन्तियथापूर्वमक्षयाणिचसत्तम ।।१५।। एवमुक्त्वाततोरामदशग्रीवंप्रजापतिः ।। विभीषणमुवाचेदंप्रणतं भक्तवत्सलः ।।१६।। विभीषणत्वयावत्सकृतंधर्मार्थमुत्तमम् ।। तपस्ततो वरंवत्सवृणीष्वाभिमतंहितम् ।।१७।। विभीषणोऽपितंनत्वाप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।। देवमेसर्वदाबुद्धिर्धर्मेतिष्ठतुशाश्वती ।। मारोचयत्वधर्मेमेबुद्धिः सर्वत्रसर्वदा ।।१८।। ततः प्रजापतिः प्रीतोविभीषणमथाब्रवीत् ।। वत्सत्वंधर्मशीलोऽसितथैवचभविष्यसि ।।१९।। अयाचितोऽपितेदास्येह्यमरत्वंविभीषण ।।कुम्भकर्णमथोवाचवरंवरयसुव्रत २०।। वाण्याव्याप्तोऽथतं

प्राहकुम्भकर्णः पितामहम् ।। स्वप्स्यामिदेवषण्मासान्दिनमेकंतुभोजनम् ।।२१।। एवमस्त्वितितंप्राहब्रह्मादृष्ट् वादिवौकसः ।। सरस्वतीचतद्वक्त्रान्निर्गताप्रययौदिवम् ।।२२।।

तू वर मांग मैं तुझे मनचाहा वर दूंगा।। यह सुनकर रावण मन में बड़ा प्रसन्न हुआ।।१२।। हे स्वामी! यदि आपको वर देना है तो मुझे अमर कर दीजिये कि जिससे गरुड, नाग, यक्ष, देवता और असुर इनसे मारा न मरूं और मनुष्य तो तृण के समान हैं उनका तो कहना ही क्या है।।१३।। ब्रह्माजी ने कहा तथास्तु अर्थात् ऐसा ही हो। और फिर रावण से बोले कि हे राक्षसराज! जिन शिरों को तैंने अग्नि में होमा है वे वैसे ही अक्षय हो जायंगे अर्थात् उनका नाश न होगा कटने पर भी फिर हो जायेंगे।।१४।।१५।। अगस्त्यजी बोले हे राम! भक्तवत्सल ब्रह्माजी रावण को यह वरदान देकर हाथ जोड़ खड़े हुए विभीषण से बोले कि ।।१६।। हे पुत्र विभीषण! तैंने धर्म के लिये उत्तम तप किया है सो तू भी जो तुझे अच्छा लगे वर मांग ले ।।१७।। विभीषण ने ब्रह्माजी को प्रणाम करके और हाथ जोड़कर उनसे यह कहा कि हे देव! जहां कहीं मैं उत्पन्न होऊं मेरी बुद्धि सदा धर्म में लगी रहे अधर्म की ओर न जाय ।।१८।। फिर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर विभीषण से कहा कि हे पुत्र! तू धर्मशील है इसलिये सदा धर्मशील बना रहेगा।।१९।। और हे विभीषण! बिना मांगे भी मैं तुझे अमर कर देता हूं। फिर वे कुंभकर्ण से बोले कि हे सुन्दरव्रती! तू भी वर मांग उस काल देवताओं की प्रार्थना से सरस्वती ने उसकी बुद्धि ऐसी फेर दी कि कुम्भकर्ण ने ब्रह्माजी से यह वरदान मांगा कि हे देव! छः महीने तक मैं सोया करूं और एक दिन भोजन किया करूं।।२०।। ब्रह्माजी ने देवताओं की ओरं देखकर कुंभकर्ण से कहा कि तथास्तु अर्थात् ऐसां ही हो इतने में सरस्वती कुंभकर्ण के मुख से न्किलकर स्वर्ग को चली गई।।२१।।२२।।

कुम्भकर्णस्तुदुष्टात्माचिन्तयामासदुःखितः अनभिप्रेतमेवास्यात्किंनिर्गतमहोविधिः ।।२३।। सुमालीवरलब्धांस्तान्ज्ञात्वा पौत्रान्निशाचरान् ।। पातालान्निर्भयः प्रायात् प्रहस्तादिभिरन्विताः।।२४।।दशग्रीवंपरिष्वज्यवचनंचेदमब्रवीत् ।। दिष्टयातेपुत्रसंवृत्तो वाञ्छितोमेमनोरथः ।।२५।। यद्भयाच्चवयंलंकांत्यक्त्वायातारसातलम् ।। तद्गतंनोमहाबाहोमहद्विष्णुकृतंभयम् ।।२६।। अस्माभिः पूर्वमुषितालङ्कयधनदेनते ।। भ्रात्राक्रान्तामिदानीत्वंप्रत्यानेतुमिहार्हसि ।।२७।। साम्नावाथबलेनापिराज्ञांबन्धुः कुतः सुहृत् इत्युक्तोरावणः

प्राहनार्हस्येवंप्रभाषितुम् ।।२८।। वित्तेशोगुरुरस्माकमेवंश्रुत्वातमब्रवीत् ।। प्रहस्तः प्रश्रितंवाक्यंरावणंदश-कन्धरम् ।।२९।। श्रृणुरावणयत्नेननैवंत्वंवक्तुमर्हसि ।। नाधीताराजधर्मास्तेनीतिशास्त्रंतथैवच ।।३०।। शूराणांनहिसौभ्रात्रंश्रृणुमेवदतः प्रभो ।। कश्यपस्य सुतादेवाराक्षसाश्चमहाबलाः ।।३१।।

फिर तो दुष्टात्मा कुंभकर्ण मन में दुःखी होकर चिंता करने लगा कि मेरे मुख से कैसी बुरी बात निकल गई आह! प्रारब्ध बड़ा बलवान् है।।२३।। इतने में सुमाली नाम राक्षस यह सुनकर कि मेरी कन्या के उन पुत्र राक्षसों को ब्रह्माजी से वर मिला है निर्भय होकर और प्रहस्त आदि को साथ लेकर पाताल से निकला।।२४।। और रावण को छाती से लगाकर यह बात बोला कि हे पुत्र! बड़े आनन्द की बात है कि जो मनोरथ मैंने विचारा था सो सिद्ध हुआ।।२५।। और जिसके भय से हम लोग लंका को छोड़कर पाताल को चले गये थे हे महाबाहु! वह विष्णु का बड़ा भारी भय अब दूर हुआ।।२६।। इस लंका को पहिले हमने ही बसाया था सो अब तुम्हारे भाई कुबेर ने इसे ले ली है उससे उसको लौटा लेनी चाहिये।।७।। राजी से दे राजी से ले लो नहीं तो धींगाधींगी से लो क्योंकि क्या राजाओं का भाई भी मित्र हुआ है। जब सुमाली ने यह कहा तब रावण बोला कि तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है।।२८।। क्योंकि कुबेर मेरा बड़ा भाई पिता के समान है। यह सुनकर प्रहस्त राक्षस नम्रतापूर्वक दशमुख रावण से बोला कि ।।२९।। हे रावण! तुम सावधान होकर सुनो तुम्हें यों कहना उचित नहीं है क्योंकि तुमने राजधर्म नहीं पढ़े हैं और नीतिशास्त्र भी तुम नहीं जानते।।३०।। और हे स्वामी! शूरों की प्रीति कभी भाइयों के साथ नहीं होती है। मैं कहता हूं उसे सुनिये। कश्यपजी के पुत्र देवता और राक्षस दोनों बड़े बली हुए।।३१।।

परस्परमयुध्यन्तत्यक्त्वासौहृदमायुधैः ।। नैवेदानीन्तनंराजन्वैरंदेवैरनुष्ठितम् ।।३२।। प्रहस्तस्यवचः श्रुत्वादशग्रीवोदुरात्मनः।तथेतिक्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात्।३३।दूतंप्रहस्तं संप्रेष्यनिष्कास्यधनदेश्वरम् ।। लङ्कामाक्रम्यसचिवैराक्षसैः सुखमास्थितः ।।३४।। धनदः पितृवाक्येनत्यकालङ्कांमहायशाः ।। गत्वा कैलासशिखरंतपसातोषयच्छिवम् ।।३५।। तेनसख्यमनुप्राप्यतेनैवपरिपालितः ।। अलकांनगरींतत्रनिर्ममेविश्व-कर्मणा ।।३६।। दिक्पालत्वंचकारात्रशिवेनपरिपालितः ।। रावणोराक्षसैः सार्धमभिषिक्तः सहानुजैः ।।३७।।

राज्यंचकारासुराणांत्रिलोकींबाधयन्खलः ।। भगिनींकालखञ्जायददौविकटरूपिणीम् ।।३८।। विद्युज्जिह्वाय नाम्नासौमहामायीनिशाचरः ।। ततोमयोविश्वकर्माराक्षसनांदितेः सुतः ।।३९।। सुतांमन्दोदरींनाम्नाददौलोकैकसुन्दरीम् ।। रावणायपुनः शक्तिममोघांप्रीतमानसः ।।४०।। वैरोचनस्यदौहित्रींवृत्रज्वालेतिविश्रुताम् ।। स्वयंदत्तामुदवहत्कुम्भकर्णायरावण ।।४१।।

उन्होंने भी प्रीति त्यागकर आयुधों से आपस में युद्ध किया सो हे राजन्! देवताओं का किया हुआ हमसे वैर आज का नहीं है पहिले से चला आता है।।३२।। प्रहस्त का वचन सुनकर दुष्ट रावण ने कहा बहुत अच्छा और क्रोध से लाल लाल नेत्र किये त्रिकूटाचल पर गया।।३३।। और वहां जाकर पहिले तो प्रहस्त को दूत बनाकर भेजा परन्तु फिर लंका को घेरकर और कुबेर को निकालकर राक्षसमंत्रियों सहित वहां सुखपूर्वक रहने लगा।।३४।। इधर परम यशस्वी कुबेर भी पिता की आज्ञा से लंका को छोड़कर कैलास के शिखर पर चला गया और उसने तप करके महादेवजी को प्रसन्न किया।।३५।। और कुबेर की महादेवजी से मित्रता हो गई और उनकी ही सहायता से विश्वकर्मा ने कैलास पर उसके लिये अलकापुरी बना दी।।३६।। और इस प्रकार महादेवजी से रक्षित होकर वह अपनी दिशा की रक्षा करने लगा। और यहां लंका में भाइयोंसहित राक्षसों ने रावण का राजतिलक कर दिया।।३७।। और वह दुष्ट रावण त्रिलोकी को दुःख देता हुआ राक्षसों के राज्य का पालने करने लगा। फिर मायावी राक्षस रावण ने भयंकर रूपवाली अपनी बहन कालखंज के वंश में उत्पन्न हुए विद्युज्जिह्व राक्षस को व्याह दी। फिर राक्षसों के विश्वकर्मा दितिपुत्र मयदानव ने त्रिलोकी में सुन्दर ऐसी अपनी मंदोदरी बेटी रावण को दे दी और फिर मन में प्रसन्न होकर उसे एक अमोघ शक्ति दी।।३८-४०।। इसके पीछेउसनेराजा बलि की धेवती जो वृत्रज्वाला नाम से प्रसिद्ध थी उसे भी राणव को अपने आप दे दी और रावणं ने उसका व्याह कुंभकर्ण से कर दिया।।४१।।

गन्धर्वराज्यस्तसुतांशैलूषस्यमहात्मनः ।। विभीषणस्यभार्यार्थेधर्मज्ञांसमुदावहत् ।।४२।। सरमांनामसुभगांसर्वलक्षणसंयुताम् ।। ततो मन्दोदरीपुत्रंमेघनादमजीजनत् ।।४३।। जातमात्रस्तुयोनादंमेघवत्प्रमुमोचह ।। ततः सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमितिचासकृत् ।।४४।। कुम्भकर्णस्ततः प्राहनिद्रामांबाधतेप्रभो ।। ततश्चकारयामा

सगुहांदीर्घांसुविस्तराम् ॥४५॥ तत्रसुष्वापमूढात्माकुम्भकर्णोविघूर्णितः ॥ निद्रितेकुम्भकर्णेतुरावणोलोक-रावणः ॥४६॥ ब्राह्मणान्ऋषिमुख्यांश्चदेवदानवकिन्नरान् ॥ देवश्रियोमनुष्यांश्चनिजघ्नेसमहोरगान् ॥४७॥ धनदोऽपिततः श्रुत्वारावणस्याक्रमंप्रभुः ॥ अधर्ममाकुरुष्वेतिदूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥४८॥ ततः क्रुद्धोदशग्रीवो जगामधनदालयम् ॥ विनिर्जित्यधनाध्यक्षंजहारोत्तमपुष्पकम् ॥४९॥ ततोयमंचवरुणंनिर्जित्यसमरेऽसुरः ॥ स्वर्गलोकमगात्तूर्णंदेवराजजिघांसया॥५०॥ ततोऽभवन्महद्युद्धमिन्द्रेणसहदैवतैः॥ ततोरावणमभ्येत्यबबन्ध-त्रिदशेश्वरः॥५१॥तच्छ्रुत्वासहसागत्यमेघनादःप्रतापवान्॥कृत्वाघोरंमहद्युद्धंजित्वात्रिदशपुङ्गवान् ।५२॥

और महात्मा गंधर्वराज शैलूष की कन्या जो बड़े धर्म को जाननेवाली और सौभाग्यवती और सर्वलक्षणसंपन्न थी और सरसा जिसका नाम था उसके साथ रावण ने विभीषण का व्याह कर दिया इसके पीछे मंदोदरी ने पहिले मेघनाद को जना॥४२॥४३॥ उसने उत्पन्न होते ही मेघ के समान नाद किया इसलिये सब राक्षस उसे मेघनाद के नाम से पुकारने लगे॥४४॥ फिर कुंभकर्ण रावण से कहने लगा कि हे स्वामी! मुझे निद्रा बड़ी सताती है यह सुन रावण ने एक बड़ी लंबी चौड़ी गुहा बनवाई॥४५॥ वहां वह मूढबुद्धि कुंभकर्ण सोकर घुर्राटे लेने लगा। और जब कुंभकर्ण सो गया तब लोकों को रोदन करानेवाला रावण ॥४६॥ ब्राह्मणों को, मुख्य मुख्य ऋषियों को, देवता दानव और किन्नरों को मनुष्य और बड़े बड़े नागों को मारने लगा और उसने देवताओं की सब संपत्तियां छीन ली॥४७॥ धनपति कुबेर ने रावण के ऐसे अन्याय को सुनकर दूतों के द्वारा मैंने कहला भेजी कि तू ऐसा दुराचार मत करे॥४८॥ यह सुन रावण बड़ा क्रोधित हुआ और उसने अलकापुरी पर धावा किया और वहां कुबेर को जीतकर उसका उत्तम पुष्पकविमान छिना लाया॥४९॥ फिर रावण संग्राम में यम और वरुण को जीतकर इन्द्र के जीतने की लालसा से शीघ्र ही स्वर्गलोक को गया॥५०॥ फिर वहां स्वर्ग में देवताओं सहित इन्द्र के साथ रावण का बड़ा घोर युद्ध हुआ और इन्द्र ने रावण को पकड़कर बांध लिया॥५१॥ यह सुनकर महाप्रतापी मेघनाद तुरन्त स्वर्ग में गया और उसने महाभयंकर युद्ध कर बड़े बड़े देवताओं को जीत लिया॥५२॥

इन्द्रंगृहीत्वाबद्ध्वासौमेघनादोमहाबलः। मोचयित्वातुपितरंगृहीत्वेन्द्रंययौ पुरम् ॥५३॥ ब्रह्मातुमोचयामास देवेन्द्रंमेघनादतः॥ दत्त्वावरान्बहूंस्तस्मैब्रह्मास्वभवनंययौ॥५४॥ रावणोविजयीलोकान्सर्वान् जित्वाक्रमेणतु ॥ कैलासंतोलयामासबाहुभिः परिघोपमैः ।५५॥ तत्रनन्दीश्वरेणैवंशप्तोऽयंराक्षसेश्वरः ॥ वानरैर्मानुषैश्चैवना-शंगच्छेतिकोपिना ॥५६॥ शप्तोऽप्यगणयन्वाक्यंययौहैहयपत्तनम्॥। तेनबद्धोदशग्रीवः पुलस्त्येनविमोचितः ॥५७॥ ततोऽतिबलमासाद्यजिघांसुर्हरिपुङ्गवम् ॥ धृतस्तेनैवकक्षेणवालिनादशकन्धरः ॥५८॥ भ्रामयित्वातु चतुरः समुद्रान्रावणंहरिः॥विसर्जयामासततस्तेनसख्यंचकारसः॥५९॥रावणः परमप्रीतएवंलोकान्महाबलः ॥ चकारस्ववशेरामबुभुजेस्वयमेवतान् ॥६०॥ एवंप्रभावोराजेन्द्रदशग्रीवः सहेन्द्रजित् ॥ त्वयाविनिहतः संख्येरावणोलोकरावणः ॥६१॥ मेघनादश्चनिहतोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ कुम्भकर्णश्चनिहतस्त्वयापर्वत-सन्निभः ॥६२॥

और महाबली मेघनाद ने पहिले तो इन्द्र को पकड़ के बांध लिया और फिर पिता को छुटाकर और इन्द्र की मुसकें कसकर वह उसे लंकापुरी को ले आया॥५३॥ फिर ब्रह्माजी ने मेघनाद से इन्द्र को छुड़ाया और उसे बहुत से वरदान देकर ब्रह्माजी स्वर्ग को बिदा हुए॥५४॥ विजयी रावण ने क्रम क्रम से सब लोकों को जीत लिया फिर परिघ शस्त्र के समान अपनी भुजाओं से कैलासपर्वत को अजमाया॥५५॥ यह देख शिवजी के पार्षद नंदीगण ने क्रोध कर रावण को यह शाप दिया कि तू वानरों और मनुष्यों के हाथ से मारा जायगा॥५६॥ परन्तुं रावण ने इस शाप को कुछ नहीं गिना और कार्तवीर्य के नगर पर चढ धाया वहां उस राजा ने इसे बांध लिया फिर पुलस्त्य ऋषि ने छुड़ाया ॥५७॥ इसके पीछे रावण अपने बल के घमंड से बाली को मारने की इच्छा से किष्किंधा को गया परन्तु वहां वाली ने रावण को अपनी कोख में दबा लिया॥५८॥ फिर बाली ने रावण को चारों ओर घुमाकर छोड़ दिया तब तो रावण ने वाली से मित्रता कर ली॥५९॥ अगस्त्यजी कहते हैं हे राम! इस प्रकार महाबली रावण ने सब लोकों को वश में कर लिया और बड़ा प्रसन्न होता हुआ उनका अपने आप भोग करने लगा॥६०॥ सो हे राजेन्द्र! इन्द्रजीत सहित ऐसे प्रभावशाली लोकों को पीड़ा देनेवाले दशमुख रावण को तुमने संग्राम में मारा॥६१॥ और माहात्मा लक्ष्मणजी ने मेघनाद को मार और तुमने

पर्वत के समान शरीरवाले कुंभकर्ण का भी संहार किया॥६२॥

भवान्नारायणः साक्षाज्जगतामादिकृद्विभुः ॥ त्वत्स्वरूपमिदंसर्वंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥६३॥त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ॥ अग्निस्तेमुखतोजातोवाचासहरघूत्तम ॥६४॥ बाहुभ्यांलोकपालौघाश्चक्षुर्भ्यांचन्द्रभास्करौ ॥ दिशश्चविदिशश्चैवकर्णाभ्यांतेसमुत्थिताः ॥६५॥ घ्राणात्प्राणः समुत्पन्नश्चाश्विनौदेवसत्तमौ ॥ जंघाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥६६॥ कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वारः सागराहरे ॥स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौवालखिल्याश्चरेतसः ॥६७॥ मेण्ढ्राद्यमो गुदान्मृत्युर्मन्योरुद्रस्त्रिलोचनः ॥ अस्थिभ्यः पर्वताजाताः केशेभ्योमेघसंहतिः॥६८॥औषध्यस्तवरोमभ्योनखेभ्यश्चखरादयः ॥ त्वं विश्वरूपं पुरुषोमायाशक्तिसमन्वितः ॥६९॥ नानारूपइवाभासिगुणव्यतिकरेसति ॥ त्वामाश्रित्यैवविबुधाः पिबन्त्यमृतमध्वरे ॥७०॥ त्वयासृष्टमिदंसर्वंविश्वंस्थावरजंगमम् ॥ त्वामाश्रित्यैवजीवन्तिसर्वेस्थावरजङ्गमाः ॥७१॥

हे राम! तुम जगत् के रचनेवाले साक्षात् सर्वव्यापक नारायण हो यह स्थावर जंगम संसार सब आपका ही स्वरूप है॥६३॥ लोक के पितामह ब्रह्माजी आपके ही नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं और हे रघुकुलशिरोमणि! आपके ही मुख से वाणीसहित अग्निदेव उत्पन्न हुए हैं॥६४॥ और इन्द्र आदि सब लोकपाल तुम्हारी भुजाओं से सूर्य चन्द्रमा तुम्हारे दोनों नेत्रों से तथा दिशा और विदिशा (ईशान आदि कोण) तुम्हारे दोनों कानों से उत्पन्न हुए हैं॥६५॥ तुम्हारे नाक से प्राणवायु और देवताओं में श्रेष्ठ दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए हैं और तुम्हारी जंघा, जानु तथा पिंडली से भुवर्लोक आदि उत्पन्न हुए हैं॥६६॥ और हे भगवन्! तुम्हारी कोख से चारों समुद्र, स्तनों से इन्द्र और वरुण और वीर्य से वालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए हैं॥६७॥ तुम्हारे लिंग से यमराज, गुदा से मृत्यु, क्रोध से त्रिनेत्र महादेव, अस्थियों से पर्वत और केशों से मेघसमूह उत्पन्न हुए हैं॥६८॥ तुम्हारे रोमों से औषधियां उत्पन्न हुई हैं और नखों से लोह आदि कठोर पदार्थ उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार अपनी मायाशक्ति से संयुक्त तुम विराट रूप से बहुत प्रकार के दीखते हो॥६९॥ और अपनी माया के सत्त्वादि गुणों के न्यूनाधिक भाव से आपस में मिलने के कारण ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिरूप से तुम ही प्रकाशित हो रहे हो और तुम्हारे अग्निरूप के द्वारा सब देवता यज्ञ में हविरूपी अमृत का पान करते हैं और हे राम!

स्थावर जंगम भेद से सब जगत् को तुमने ही रचा है और तुम्हारे ही आश्रय से स्थावर जंगम सब प्राणी जीते हैं।।७०।।७१।।

त्वद्युक्तमखिलंवस्तुव्यवहारेऽपिराघव।।क्षीरमध्यगतंसर्पिर्यथाव्याप्याखिलंपयः।।७२।। त्वद्भासाभासतेऽर्कादिन्त्वंतेनावभाससे ।। सर्वगंनित्यमेकंत्वांज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ।।७३।। नाज्ञानचक्षुस्त्वांपश्येदन्धदृग्भास्करंयथा ।। योगिनस्त्वांविचिन्वंतिस्वदेहेपरमेश्वरम् ।।७४।। अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् ।। त्वत्पादभक्तिलेशेन गृहीतायदियोगिनः ।।७५।। विचिन्वन्तोहिपश्यन्तिचिन्मात्रंत्वांनचान्यथा ।। मयाप्रलपितंकिञ्चित्सर्वज्ञस्यतवाग्रतः ।। क्षन्तुमर्हसिदेवेशतवानुग्रहभागहम् ।।७६।। दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेकंचिन्मात्रमक्षरमजंचलनादिहीनम् ।। सर्वज्ञ मीश्वरमनन्तगुणव्युदस्तमायंभजेरघुपतिंभजतामभिन्नम् ।।७७।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकाण्डेद्वितीयः सर्गः ।।२।।

और हे रघुनाथजी! व्यवहार में जो कुछ वस्तु दीखती है सबमें तुम्हारी ही सत्ता है जैसे दूध में जो घृत होता है वह सब दूध में व्याप्त रहता है।।७२।। और हे राम! सूर्य आदि सब तुम्हारे प्रकाश से ही प्रकाश करते हैं तुम उनसे प्रकाशित नहीं होते। जिस पुरुष को ज्ञानदृष्टि है वही तुम सर्वव्यापक नित्य और अद्वितीय को देख सकता है।।७३।। जैसे अंधापुरुष सूर्य को नहीं देख सकता ऐसे ही ज्ञानदृष्टि रहित पुरुष आपको नहीं देख सकता। योगीजन अपने देह में ही परमेश्वरस्वरूप आपको ढूंढते हैं।।७४।। परन्तु योगीजन भी जब आपके चरणो की भक्ति का लेशमात्र करें और जड़ पदार्थ को त्यागकर उपनिषद में कहे हुए प्रसिद्ध उपायों से रात दिन तुम्हें ढूंढा करें तब कहीं तुम्हारे चिद्रूपमात्रस्वरूप को देखते हैं अन्यथा नहीं। और हे राम! मैंने तुम सर्वत्र के सामने जो कुछ कहा है हे देवेश! उसे क्षमा करिये क्योकि आपही के अनुग्रह से मेरी इस विषय में प्रवृत्ति हुई है।।७५।।७६।। जो देशकाल से रहित सजातीय आदि भेदशून्य, एक चैतन्यमात्र, नाशरहित, जन्मरहित गमन आदि धर्मरहित, सर्वज्ञ, ईश्वर, और जिसके अनंत गुण हैं और जिसने अपनी चित्शक्ति से माया के दोष दूर किये हैं और भक्तलोग जिसे अपने से अभिन्न देखते हैं ऐसे रामचन्द्र का मैं भजन करता हूं।।७७।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित उत्तरकांड का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।।२।।

श्रीराम उवाच ।। वालिसुग्रीवयोर्जन्मश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ।। रवीन्द्रौवानराकारौजज्ञातइतिनः श्रुतः ।।१।। अगस्त्यउवाच ।। मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यश्रृंगेमणिप्रभे ।। तस्मिन्सभाऽस्तेविस्तीर्णाब्रह्मणः शतयोजना ।।२।। तस्यांचतुर्मुखः साक्षात्कदाचिद्योगमास्थितः ।। नेत्राभ्यांपतितंदिव्यमानन्दसलिलंबहु ।।३।। तद्‌गृहीत्वाकरेब्रह्माध्यात्वाकिञ्चित्तदत्यजत् ।। भूमौपतितमात्रेणतस्माज्जातोमहाकपिः ।।४।। तमाहद्रुहिणो वत्सकिञ्चित्कालंवसात्रमे ।। समीपेसर्वशोभाढचेततः श्रेयोभविष्यति ।५।इत्युक्तोन्यवसत्तत्रब्रह्मणावानरोत्तमः ।। एवं बहुतिथेकालेगतेऋक्षाधिपः सुधीः ।।६।। कदाचित्पर्यटन्नद्रौफलमूलार्थमुद्यतः ।। अपश्यद्दिव्यसलिलांवा-पींमणिशिलान्विताम्।।७।।पानीयंपातुमागच्छत्तत्रछायामयंकपिम् ।। दृष्ट्वाप्रतिकपिंमत्वानिपपातजलान्तरे ।।८।। तत्रदृष्ट्वाहरिंशीघ्रंपुनरुत्प्लुत्यवानरः ।। अपश्यत्सुन्दरींरामामात्मानंविस्मयंगतः ।।९।। ततः सुरेशोदेवेशंपूजयित्वाचतुर्मुखम् ।। गच्छन्मध्याह्नसमयेदृष्ट्वानारीं मनोरमाम् ।।१०।। कन्दर्पशरविद्धांग-स्त्यक्तवान्वीर्यमुत्तमम् ।। तामप्राप्यैवतद्बीजंवालदेशेऽपतद्‌भुवि ।।११।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! फिर रामजी पूछने लगे कि हे अगस्त्यजी! मैं अब वालि और सुग्रीव के जन्म की पूरी पूरी कथा सुनना चाहता हूं। हमने सुना है कि सूर्य और इन्द्र वानररूप से उत्पन्न हुए हैं।।१।। अगस्त्यजी बोले मणियों की कांति जहां फैल रही है ऐसे सुवर्ण के मेरुपर्वत के शिखर पर जो सौ योजन चौड़ा ब्रह्माजी का सभास्थान है।।२।। एक समय साक्षात् ब्रह्माजी उस सभा में योगसमाधि लगाये बैठे थे इतने में उनके नेत्रों से बहुत सा आनन्द का दिव्य जल टपकने लगा।।३।। ब्रह्माजी थोड़ी देर तक जो उस जल को हाथ में लिये कुछ ध्यान करते रहे फिर उस जल को पृथ्वी पर डाल दिया। गेरने की देर थी कि उससे एक बंदर उत्पन्न हो गया।।४।। उससे ब्रह्माजी ने कहा कि हे पुत्र! थोड़े काल तक तू यहां शोभा से युक्त इस सुमेरुपर्वत पर मेरे साथ रह उससे तेरा कल्याण होगा।।५।। जब ब्रह्माजी ने यह कहा तब वह सुन्दर वानर श्रेष्ठ वहां रहने लगा। इस प्रकार रहते रहते जब बहुत काल बीत गया तब एक दिन वह चतुर ऋक्षपति वानर फल मूल खाने के लिये पर्वत पर फिर रहा था कि इतने में उसने एक निर्मल जल की भरी बावड़ी देखी कि जिसमें मणिकी थीं।।६।।७।। वह वहां पानी पीने को आया और जल में अपनी परछाईं को देखकर और उसे दूसरा वानर

जानकर जल में कूद पड़ा।।८।। परन्तु वहां किसी दूसरे वानर को न देखकर तुरन्त वह वानर उछलकर बाहर आ गया और हे राम! बाहर आते ही वह अपने को एक सुन्दर स्त्री देखकर बड़े परखे में आया।।९।। इतनें में दो पहर को इन्द्र देवों के देव ब्रह्माजी को पूजकर जा रहे थे इस मनोहर स्त्री को देखकर उनका शरीर काम के बाणों को निशाना बना अर्थात् वह काम से अत्यन्त पीड़ित हुए और उनका उत्तम वीर्य स्खलित हो गया। और वह वीर्य स्त्री को बिना प्राप्त हुए ही उसके बालों को छूता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।।१०।।११।।

वालीसमभवत्तत्रशक्रतुल्यपराक्रमः ।। तस्य दत्त्वासुरेशानः स्वर्णमालांदिवंगतः।।१२।। भानुरप्यागतस्तत्रतदा नीमेवभामिनीम् ।। दृष्ट्वाकामवशोभूत्वाग्रीवादेशेऽसृजन्महत् ।।१३।। बीजंतस्यास्ततः सद्योमहाकायोऽ-भवद्धरिः ।। तस्यदत्त्वाहनूमन्तंसहायार्थंगतोरविः ।।१४।। पुत्रद्वयंसमादायगत्वासानिद्रिताक्वचित् ।। प्रभातेऽपश्यदात्मानंपूर्ववद्वानराकृतिम् ।।१५।। फलमूलादिभिः सार्धंपुत्राभ्यांसहितः कपिः ।। नत्वाचतुर्मुख-स्याग्रेऋक्षराजः स्थितः सुधीः ।।१६।। ततोब्रवीत्समाश्वास्यबहुशः कपिकुञ्जरम् ।। तत्रैकंदेवतादूतमाहूयाम रसन्निभम् ।।१७।। गच्छदूतमयादिष्टोगृहीत्वा वानरोत्तमम् ।। किष्किन्धांदिव्यनगरींनिर्मितांविश्वकर्मणा ।।१८।। सर्वसौभाग्यवलितांदेवैरपिदुरासदाम् ।। तस्यांसिंहासनेवीरंराजा नमभिषेचय ।।१९।। सप्तद्वीपगतायेयेवानराः सन्तिदुर्जयाः ।। सर्वेतेऋक्षराजस्यभविष्यन्तिवशेऽनुगाः ।।२०।। यदानारायणः साक्षाद्रामोभूत्वासनातनः ।। भूभारासुरनाशायसम्भविष्यतिभूतले ।।२१।।

उस वीर्य से इन्द्र के समान पराक्रमी वाली उत्पन्न हुआ। फिर इन्द्र तो उस वाली को एक सुवर्ण की माला देकर स्वर्ग को चले गये।।१२।। इतने में वहां सूर्य भी आ गये और उस स्त्री को देखकर काम के वशीभूत हो गये और उनका उग्र वीर्य उसकी ग्रीवा पर पड़ा कि जिससे तुरन्त एक बड़ा शरीरवाला सुग्रीव वानर उत्पन्न हो गया। फिर सूर्यदेव उसे उसकी सहायता के लिये हनुमानजी को देकर चले गये।।१३।।१४।। फिर वह सुन्दर स्त्री उन दोनों पुत्रों को कहीं ले जाकर सो रही और जब सबेरा हुआ तब उसने पहिले के समान फिर अपना वानर रूप देखा।।१५।। इसके अनंतर वह बड़ा चतुर ऋक्षराज वानर फल मूल और पुत्रों को साथ लेकर ब्रह्माजीके सामने गया और उनको प्रणाम करके खड़ा हो

गया॥१६॥ ब्रह्माजी ने उस वानरराज को बहुत भांति से समझाया कि स्त्रीरूप बन जाने की कुछ ग्लानि मत करो और फिर वहां देवता के समान प्रकाशमान एक देवदूत को बुलाकर उससे कहा कि हे दूत! तुम मेरी आज्ञा से इस उत्तम वानर को लेकर विश्वकर्मा की बनाई हुई दिव्य नगरी किष्किन्धा को जाओ॥१७॥१८॥ जो नगरी संपूर्ण भोग्य वस्तुओं से भरी है और जिसका मिलना देवताओं को भी कठिन है उसमें एक सिंहासन पर इस वीर वानर का राज्याभिषेक कर दो और सात द्वीपों में जो जो कठिनता से जीतने के योग्य वानर है वे सब ऋक्षराज के वश में आज्ञाकारी होकर रहेंगे॥१९॥२०॥ और जब साक्षात् नारायण सनातन पृथ्वी के भार रूप असुरों के नाश के लिये पृथ्वी पर रामावतार लेंगे॥२१॥

तदासर्वेसहायार्थेतस्यगच्छन्तुवानराः ॥ इत्युक्तोब्रह्मणादूतो देवानांसमहामतिः ॥२२॥ यथाज्ञप्तस्तथाचक्रे-ब्रह्मणातंहरीश्वरम् ॥ देवदूतस्ततोगत्वाब्रह्मणेतन्निवेदयत् ॥२३॥ तदादिवानराणां साकिष्किन्धाऽभून्नृ-पाश्रयः ॥ सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानींब्रह्मणाऽर्थितः ॥२४॥ भूमेर्भारोहृतः कृत्स्नस्त्वयालीलानृदेहिना ॥ सर्वभूतान्तरस्थस्यनित्यमुक्तचिदात्मनः॥२५॥ अखण्डानन्दरूपस्यकियानेषप्राक्रमः॥ तथाऽपिवर्ण्यतेस-द्भिर्लीलामानुषरूपिणः ॥२६॥ यशस्तेसर्वलोकानांपापहत्यैसुखाय च ॥ यइदंकीर्तयेन्मर्त्योवालिसुग्रीवयो-महत् ॥२७॥ जन्मत्वदाश्रयत्वात्समुच्यतेसर्वपातकैः ॥ अथान्यां सप्रवक्ष्यामिकथांरामत्वदाश्रयाम् ॥२८॥ सीताहृतायदर्थंसारावणेनदुरात्मना ॥ पुराकृतयुगेरामप्रजापतिसुतंविभुम् ॥२९॥ सनत्कुमारमेकान्तेसमा-सीनंदशाननः ॥ विनयावनतोभूत्वाह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥३०॥ कोन्वस्मिन्प्रवरोलोकेदेवानांबलवत्तरः ॥ देवाश्रयंसमाश्रित्ययुद्धेशत्रुंजयन्तिहि ॥३१॥ कंयजंन्तिद्विजानित्यंकंध्यायन्तिचयोगिनः॥एतन्मेशंसभगवन्-प्रश्नंप्रश्नविदांवर ॥३२॥

तब सब वानर उनकी सहायता के लिये जायेंगे जब ब्रह्माजी ने महाबुद्धिमान् उस देवताओं के दूत से यह कहा॥२२॥ तब वह वानरराज को लेकर किष्किंधा को चला गया और जिस प्रकार ब्रह्माजी ने आज्ञा दी थी वैसे ही सब कार्य करा और फिर उस दूत ने जाकर वह सब वृत्तांत ब्रह्माजी से निवेदन कर दिया॥२३॥ उस दिन से वह किष्किंधा नगरी

वानरों की राजधानी हो गई। और हे राम! सबके ईश्वर तो आप हो इस समय ब्रह्माजी की प्रार्थना से नररूप धारण कर तुमने अपनी लीला से ही पृथ्वी का सब भार दूर कर दिया।। आप सरीखे सब प्राणियों के अंतर्यामी नित्यमुक्त, चैतन्यस्वरूप और परिपूर्ण आनन्दस्वरूप को यह रावण आदि का मारना कितना पराक्रम है परन्तु तो भी लीला से मनुष्यरूप धरनेवाले ऐसे तुम्हारे यश का, सब लोकों के पाप दूर करने के लिये और सुख के लिये अच्छे अच्छे पुरुष वर्णन करते हैं। और जो पुरुष तुम्हारे उपकार के लिये होनेवाले वालि सुग्रीव के श्रेष्ठजन्म का कीर्तन करेगा वह सब पातकों से छूट जायगा। और हे राम! अब मैं आपकी एक और कथा कहता हूं कि जिस लिये रावण ने सीताजी को हरा था। हे राम! पहिले सतयुग में एक समय ब्रह्माजी के पुत्र बड़े तेजस्वी सनत्कुमार एकांत में आसन लगाये बैठे हुए थे उनके पास रावण गया और नम्र हो प्रणाम कर यों पूछने लगा कि ।।२४-३०।। हे भगवन्! इस लोक में सब देवों में श्रेष्ठ और अधिक बलवान् कौनसा देवता है जिसका बल पाकर देवता शत्रु को जीतते हैं और ब्राह्मण आदि किसका यजन नित्य करते हैं और योगी जन नित्य किसका ध्यान करते हैं? आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिये क्योंकि आप प्रश्न का उत्तर देनेवालों में श्रेष्ठ हैं।।३१।।३२।।

ज्ञत्वातस्यहृदिस्थंयत्तदशेषेणयोगदृक् ।। दशाननमुवाचेदंशृणुवक्ष्यामिपुत्रक ।।३३।। भर्तायोजगतांनित्यं-यस्यजन्मादिकंनहि ।। सुरासुरैर्नुतोनित्यंहरिर्नारायणोऽव्ययः ।।३४।। यन्नाभिपङ्कजाज्जातोब्रह्माविश्वसृ-जांपतिः ।। सृष्टयेनैवसकलंजगत्स्थावरजंगमम् ।।३५।। तंसमाश्रित्यविबुधाजयन्तिसमरेरिपून् ।। योगिनोध्यानयोगेनतमेवानुजपन्तिहि ।।३६।। महर्षेर्वचनंश्रुत्वाप्रत्युवाचदशाननः ।। दैत्यदानवरक्षांसि-विष्णुनानिहतानिच ।।३७।। कांवागतिंप्रपद्यन्तेप्रेत्यतेमुनिपुङ्गव ।। तमुवाचमुनिश्रेष्ठोरावणंराक्षसाधिपम् ।।३८।। दैवतैर्निहतानित्यंगत्वास्वर्गमनुत्तमम् ।। भोगक्षयेपुनस्तस्माद्भ्रष्टाभूमौभवन्तिते ।।३९।। पूर्वार्जितैः पुण्यपापैर्म्रियन्तेचोद्भवन्तिच ।। विष्णुनायेहतास्तेतुप्राप्नुवन्तिहरेर्गतिम्।।४०।।श्रुत्वामुनिमुखात्सर्वंरावणो-हृष्टमानसः ।। योत्स्येऽहंहरिणासार्धमितिचिन्ता परोऽभवत् ।।४१।।

यह सुनकर सनत्कुमार ने रावण के हृदय के सब भाव को योगदृष्टि से जानकर रावण से कहा कि हे पुत्र! तू सुन मैं सब

कहता हूं।३३।जो सदा सब जगत्का भरण पोषण करनेवाला जन्ममरणरहित सुरासुर जिनकी नित्य स्तुति करते हैं ऐसा अविनाशी नारायण हैं।।३४।। और जिसकी नाभिकमल से दक्षप्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने सब स्थावर जंगम जगत् को रचा है।।३५।। उसका बल पाकर देवता संग्राम में शत्रुओं को जीतते हैं और योगीजन ध्यान योगके द्वारा उसीका ध्यान करते हैं।।३६।। सनत्कुमार का वचन सुनकर रावण ने फिर उनसे पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ! विष्णु से मारे हुए दैत्यदानव और राक्षस। किस गति को पाते हैं? यह सुन मुनिराज उस राक्षसराज रावण से बोले कि ।।३७।।३८।। हे रावण! मरकर देवताओं से मारे हुए दैत्य आदि सदा उत्तम स्वर्ग को पाते हैं परन्तु फिर जब पुण्यभोग क्षीण हो जाता है तो वे स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं।।३९।। और पूर्वजन्म के पुण्य और पापोंसे बार बार मरते और जन्म लिया करते हैं और विष्णुभगवान् के हाथ से जिनकी मृत्यु होती है वे विष्णुधाम को पाते हैं।।४०।। रावण सनत्कुमारजी के मुख से यह सब सुनकर मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और विचार करने लगा कि मैं भगवान् के साथ युद्ध करूंगा।।४१।।

मनः स्थितंपरिज्ञात्वारावणस्यमहामुनिः ।। उवाचवत्सतेऽभीष्टंभविष्यतिनसंशयः ।।४२।। कञ्चित्कालंप्रतीक्षस्वसुखीभवदशानन ।। एकमुक्त्वामहाबाहोमुनिः पुनरुवाचतम् ।।४३।। तस्यस्वरूपंवक्ष्यामिह्यरूपस्यापिमायिनः ।। स्थावरेषुच सर्वेषुनदेषुचनदीषुच ।।४४।। ओङ्कारश्चैवसत्यंचसावित्रीपृथिवीचसः ।। समस्तजगदाधारः शेषरूपधरोहिसः ।।४५।। सर्वेदेवाः समुद्राश्चकालः सूर्यश्चचन्द्रमाः ।। सूर्योदयोदिवारात्रीयमश्चैवतथाऽनिलः ।।४६।। अग्निरिन्द्रस्तथामृत्युः पर्जन्योवसवस्तथा ।। ब्रह्मरुद्रादयश्चैवयेचान्येदेवदानवाः ।।४७।। विद्योततिज्वलत्येषापातिचात्तीतिविश्वकृत् ।। क्रीडांकरोत्यव्ययात्मासोऽयंविष्णुः सनातनः ।।४८।। तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।। नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः ।।४९।। शुद्धजाम्बूनदप्रख्यांश्रियंवामाङ्कसंस्थिताम्।। सदानपायिनीपश्यन्नालिंग्यतिष्ठति ।।५०।। द्रष्टुंनशक्यतेकैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ।। यस्यप्रसादंकुरुतेसचैवंद्रष्टुमर्हति ।।५१।।

महामुनिने रावणके मनकी बात जानकर कहा कि हे पुत्र! तेरा मनोरथ सिद्ध होगा इसमें संदेह नहीं।।४२।। परतुं थोड़े

काल तक राह देख और सुखपूर्वक रह। इस प्रकार कहकर मुनि ने फिर उस रावण से कहा हे दीर्घबाहु! ।।४३।। मैं उन भगवान् का स्वरूप कहता हूं कि वे हैं तो रूपरहित परन्तु माया के बल से उनके अनेक रूप दीखते हैं सो सुनो सब वृक्ष पाषाणादिकों में नद और नदियों में उन्ही का स्वरूप व्याप्त हो रहे है।।४४।। वह शब्दों में ओंकार, शब्द में सत्य, मंत्रों में गायत्री हैं और वह शेषरूप से सब जगत् का आधार है।।४५।। और सब देवता, सब समुद्र, सब काल, सूर्य और चन्द्रमा, सूर्योदय, दिन, रात्रि, यमराज, पवन ।।४६।। अग्नि, इन्द्र चन्द्र, मृत्यु, मेघ, वसु, ब्रह्मा और रुद्र आदि अन्य जितने देव दानव हैं सब उनही का रूप है।।४७।। वही सूर्यादि में प्रकाश और अग्निआदि में ज्वलन करते हैं और वही जगत् को उत्पन्न पालन और नाश करते हैं और वही अविनाशी सनातन विष्णु भगवान् हैं।।४८।। उन्ही से सब चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है। वह नील कमल दल के समान श्यामवर्ण बिजली के समान पीतांबर धारण किये, और शुद्ध सुवर्ण के तुल्य कांतिवाली वाम भाग में स्थित और सदा साथ रहनेवाली लक्ष्मीदेवी की ओर निहारते हुए और आलिंगन करते हुए, रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान हैं।।४९।।५०।। किसी देव दानव और पन्नग की सामर्थ्य नहीं जो उनकी ओर देख सके परन्तु जिसके ऊपर वह प्रसन्न हों वही उनका दर्शन कर सकता है।।५१।।

नचयज्ञतपोभिर्वानदानाध्ययनादिभिः ।। शक्यतेभगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ।।५२।। तद्गतैस्तद् गतप्राणैस्त-च्चित्तैर्धूतकल्मषैः ।। शक्यतेभगवान्विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभिः ।।५३।। अथवाद्रष्टुमिच्छातेभृणुत्वं परमेश्वरम् ।। त्रेतायुगेसदेवेशोभवितानृपविग्रहः ।।५४।। हितार्थंदेवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणांकुलेहरिः ।। रामोदाशरथिर्भूत्वामहासत्त्वपराक्रमः ।।५५।। पितुर्नियोगात्सभ्रात्राभार्ययादण्डकेवने ।विचरिष्यतिधर्मात्मा जगन्मात्रास्वमायया।।५६।।एवंतेसर्वमाख्यातंमया रावणविस्तरात्।। भजस्वभक्तिभावेनसदारामंश्रियायुतम् ।।५७।। एवंश्रुत्वाऽसुराध्यक्षोध्यात्वाकिञ्चिद्विचार्यच ।। त्वयासहविरोधेप्सुर्मुमुदेरावणोमहान् ।।५८।। युद्धार्थीसर्वतोलोकान्पर्यटन्समवस्थितः ।। एतदर्थंमहाराजरावणोऽतीवबुद्धिमान् ।। हृतवान् जानकींदेवीं-त्वयात्मवधकांक्षया ।।५९।। इमांकथां यःभृणुयात्पठेद्वासंश्रावयेद्वाश्रवणार्थिनांसदा ।। आयुष्यमारोग्यम-

नन्तसौख्यं प्राप्नोतिलाभंधनमक्षयंच ॥६०॥ इति श्रीमदध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

उन भगवान् का दर्शन यज्ञ, तप, दान, अध्ययन आदि उपायों से और वा दूसरे उपायों से नहीं होता॥५२॥ परंतु जो उनमें चित्त और प्राण लगाते हैं ऐसे पापरहित भक्त वेदांत शास्त्र के ज्ञान द्वारा निर्मल दृष्टि से उन विष्णु भगवान् को देख सकते हैं॥५३॥ अथवा हे रावण! जो तुझे परमेश्वर के दर्शन की इच्छा हो सुन। वह देवों के देव त्रेतायुग में राजा का शरीर धारण करें॥५४॥ और वे भगवान् देवता और मनुष्य के हित के लिये इक्ष्वाकुराजा के वंश में राजा दशरथ के पुत्र बड़े बली होंगे और पराक्रमी होंगे और राम उनका नाम होगा॥५५॥ वह धर्मात्मा पिता की आज्ञा से भाई लक्ष्मण और जगत् की माता अपनी शक्तिरूप जानकी भार्या सहित दंडक वन में विचरेंगे॥५६॥ हे रावण! इस प्रकार मैंने यह संपूर्ण वृत्तांत तेरे सामने विस्तार पूर्वक कहा है सो अब तू भक्तिभाव से लक्ष्मीरूप जानकी की सहित उन रामजी का भजन कर॥५७॥ अगस्त्यजी रामजी से कहते हैं कि रावण इस प्रकार सनत्कुमार मुनि के वचन सुनकर कुछ काल तक तो ध्यान करता रहा और विचार करता रहा और फिर आपके साथ विरोध करने की इच्छा कर मन में बड़ा प्रसन्न हुआ॥५८॥ और युद्ध की इच्छा से सब लोकों में विचरने लगा और हे महाराज! इसीलिये अत्यन्त बुद्धिमान् रावण तुम्हारे हाथ से अपनी मृत्यु चाहकर सीतादेवीजी को हर ले गया था॥५९॥ जो मनुष्य सदा इस कथा को पढ़ेगा और सुननेवालों को सुनावेगा वह आयु आरोग्यता अनंत सुख और अक्षय धन पावेगा॥६०॥ इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित उत्तरकांड का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ एकदाब्रह्मणोलोकदायान्तंनारदंमुनिम् ॥ पर्यटन्रावणोलोकान्दृष्ट्वानत्वाब्रवीद्वचः ॥१॥ भगवन्ब्रूहिमेयोद्धुंकुत्रसन्तिमहाबलाः ॥ योद्धुमिच्छामिबलिभिस्त्वंज्ञातासिजगत्त्रयम् ॥२॥ मुनिर्ध्यात्वाहसुचिरंश्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ महाबलामहाकायास्तत्रयाहि महामते ॥३॥ विष्णुपूजारतायेवै-विष्णुनानिहताश्चये ॥ तएवतत्रसञ्जाताअजेयाश्च सुरासुरैः ॥४॥ श्रुत्वातद्रावणोवेगान्मन्त्रिभिः पुष्पकेणतान् ॥ योद्धुकामः समागत्यश्वेतद्वीपसमीपतः ॥५॥ तत्प्रभाहततेजस्कंपुष्पकंनाचलत्ततः ॥

त्यक्त्वाविमानंप्रययौमन्त्रिणश्चदशाननः ।।६।। प्रविशन्नेवतद्द्वीपंधृतोहस्तेनयोषिता ।। पृष्टश्चत्वंकुतः कोऽसिप्रेषितः केनवावद ।।७।। इत्युक्तोलीलयास्त्रीभिर्हसन्तीभिः पुनःपुनः।। कृच्छ्राद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां-स्त्रीणांदशाननः ।।८।। आश्चर्यमतुलं लब्ध्वाचिन्तयामासदुर्मतिः ।। विष्णुनानिहतोयामिवैकुण्ठमितिनिश्चितः ।।९।। मयिविष्णुर्यथाकुप्येत्तथाकार्यंकरोम्यहम् ।। इतिनिश्चित्यवैदेहीं जहारविपिनेऽसुरः ।।१०।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! एक समय लोकों में फिरते हुए रावण ने ब्रह्मलोक से आते हुए नारदमुनि को देखकर और प्रणाम कर पूछा कि।।१।। हे भगवन्! मुझे यह तो बताइये कि युद्ध करनेवाले बड़े बड़े बली कहां रहते हैं? मैं बलियों के साथ युद्ध करना चाहता हूं और तुम तीनों लोकों का सब हाल जानते हो।।२।। मुनि ने बहुत देर तक ध्यान करके कहा कि हे रावण! श्वेतद्वीप के निवासी बड़े बली और बड़े बड़े शरीरधारी हैं सो तुम वहां जाओ।।३।। जो मनुष्य विष्णुभगवान् की पूजा करते थे और जो विष्णु के हाथ मारे गये हैं वे ही उस श्वेतद्वीप में उत्पन्न हुए हैं और उनको देव दानव कोई नहीं जीत सकता।।४।। रावण यह सुनकर तुरंत मंत्रियों के साथ पुष्पक विमान में बैठकर युद्ध करने की इच्छा से श्वेतद्वीप के पास आया।।५।। वहां आते ही उसके पुष्पकविमान का तेज नष्ट हो गया और वह वहां से आगे न चला तब तो रावण अपने विमान और मंत्रियों को छोड़कर वहां से अकेला गया।।६।। उसके उस द्वीप में घुसते ही उसे एक स्त्री ने एक हाथ से पकड़ लिया और पूछा कि तू यह बतला कि कहां से आया है? कौन है अथवा किसने तुझे भेजा है।।७।। इस प्रकार स्त्रियां लीला से हँस हँस कर बारंबार उससे पूछती और ठठोलियां करती रहीं। अतं में वह रावण बड़ी कठिनता से उन स्त्रियों के हाथ से छूटा।।८।। यह देख उस दुष्ट को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने विचार कर यह निश्चय कर लिया कि मैं विष्णु के हाथ से मरकर किसी तरह वैकुण्ठ में जाऊं।।९।। और मैं अब वह काम करूं कि जिससे विष्णु भगवान मेरे ऊपर कुपित हों सो यह निश्चय करके वह राक्षस वन में जानकीजी को हर ले गया।।१०।।

जानन्नेवपरात्मानंसजहारावनीसुताम्।।मातृवत्पालयामासत्वत्तःकांक्षन्वधंस्वकम्।।११।।रामत्वंपरमेश्वरोऽसि सकलंजानासि विज्ञानदृक्भूतंभव्यमिदं त्रिकालनासाक्षीविकल्पोज्झितः ।। भक्तानामनुवर्तनायसकलां

कुर्वन्क्रियासंहतिंत्वा शृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचोभासीशलोकार्चितः ॥१२॥ स्तुत्वैवंराघवं तेनपूजितः कुम्भसम्भवः ॥ स्वाश्रमंमुनिभिः सार्धंप्रययौहृष्टमानसः ॥१३॥ रामस्तुसीतयासार्धंभ्रातृभिः सहमन्त्रिभिः ॥ संसारीवरमानाथोरममाणोऽवसद्गृहम्॥१४॥ अनासक्तोऽपिविषयान्बुभुजेप्रिययासह ॥ हनुमत्प्रमुखैः सद्भिर्वानरैः परिवेष्टितः ॥१५॥ पुष्पकं चागमद्राममेकदापूर्ववत्प्रभुम् ॥ प्राहदेवकुबेरेणप्रेषितंत्वामहंततः ॥१६॥ जितंत्वंरावणेनादौपश्चाद्रामेणनिर्जितम् ॥ अतस्त्वंराघवं नित्यंवहयावद्वसेद्भुवि ॥१७॥

उसने जानबूझकर कि आप परमात्मा है सीताजी को हर लिया और तुम्हारे हाथ से मरने की इच्छा कर उनका माता के समान पालन करने लगा॥११॥ हे राम! तुम परमेश्वर हो और अपनी विज्ञान दृष्टि से भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों काल के पदार्थों को जानते हो और भेंदरहित सबके साक्षी हो और भक्तों के यह अनुग्रह करने के लिये मुनियों की आज्ञा से यज्ञ आदि क्रिया करते हो तुम सब लोकों में पूजित और सबके अंतर्यामी रूप होकर प्रकाशित हो रहे हो॥१२॥ इस प्रकार रामजी की स्तुति करके और उनसे आप सत्कार पाकर अगस्त्यमुनि मन में प्रसन्न होते हुए मुनियों को साथ लेकर अपने आश्रम को विदा हुए॥१३॥ और रामजी भाई, जानकी और मंत्रियों सहित संसारी पुरुष के समान रमण करते हुए अपने महल में रहने लगे॥१४॥ रामचन्द्रजी जानकीजी सहित बिना आसक्त हुए विषयों को भोगने लगे और हनुमान् आदि बड़े बड़े वानर उनके चारों ओर खड़े हो सेवा करने लगे॥१५॥ एक समय पहिले के समान रामजी के पास पुष्पक विमान आया और उनसे बोला कि हे महाराज! मुझे तुम्हारे पास कुबेर ने भेजा है॥१६॥ और मुझसे कह दिया है कि पहिले तुझे रावण ने जीत लिया था फिर उससे तुझे रामजी ने जीता इसलिये जब तक पृथ्वी पर निवास करें तब तक तू उनकी ही सवारी में नित्य रहा कर॥१७॥

यदागच्छेद्रघुश्रेष्ठोवैकुण्ठंयाहिमांतदा ॥ तच्छ्रुत्वाराघवः प्राहपुष्पकंसूर्यसन्निभम् ॥१८॥ यदास्मरामिभद्रं-तेतदागच्छममान्तिकम् ॥ तिष्ठान्तर्धायसर्वत्रगच्छेदानींममाज्ञया ॥१९॥ इत्युक्त्वारामचन्द्रोऽपिपौरकार्या-णिसर्वशः ॥ भ्रातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धंयथान्यायंचकारसः ॥२०॥ राघवेशासतिभुवंलोकनाथेरमापतौ ॥ वसुधासस्यसंपन्नाफलवन्तश्चभूरुहाः ॥२१॥ जनाधर्मपराः सर्वेपतिभक्तिपराः स्त्रियः ॥ नापश्यत्पुत्रमरणं-

कश्चिद्राजनिराघवे॥२२॥समारुह्यविमानाग्र्यंराघवः सीतयासह ॥ वानरैर्भ्रातृभिः सार्धंसञ्चचारावनिंप्रभुः ॥२३॥ अमानुषाणिकार्याणिचकारबहुशोभुवि ॥ ब्राह्मणस्यसुतंदृष्ट्वाबालंमृतमकालतः ॥२४॥ शोचन्तंब्राह्मणंचापिज्ञात्वारामोमहामतिः ॥ तपस्यन्तंवनेशूद्रंहत्वाब्राह्मणबालकम् ॥२५॥ जीवयामासशूद्रस्यददौस्वर्गमनुत्तमम् लोकानामुपदेशार्थंपरमात्मारघूत्तमः ॥२६॥ कोटिशः स्थापयामासशिवलिङ्गानि सर्वशः ॥ सीताचरमयामाससर्वभोगैरमानुषैः ॥२७॥

जब रघुनाथजी बैकुण्ठको चले जायं तब तू मेरे पास आना यह सुनकर रामजी ने सूर्यके समान झकझकाते हुए पुष्पक विमान से कहा कि ॥१८॥ जब मैं तेरा स्मरण करूं तब तू मेरे पास आना और जब मेरी आज्ञा से अंतर्धान होकर सब जगह रहो जा तेरा कल्याण होय॥१९॥ यों कहकर रामजी भाई और मंत्रियों सहित न्याय पूर्वक पुर के सब कार्यों को करने लगे॥२०॥ जिस समय त्रिलोकी के नाथ लक्ष्मीपति रघुनाथजी पृथ्वी का राज्य करने लगे उस समय पृथ्वी धन धान्य से परिपूर्ण हो गई और वृक्षों में फल लद गए॥२१॥ वहां सब मनुष्य धर्मात्मा थे और स्त्रियां भक्ति से पति की सेवा करती थीं और रामराज्य के समय कोई पुरुष अपने पुत्र का मरण नहीं देखता था॥२२॥ और भगवान् रामचन्द्रजी, सीता, भाई वानरों सहित विमान पर बैठकर पृथ्वी पर घूमा करते थे॥२३॥ और उन्होंने पृथ्वी पर ऐसे बहुत से चरित्र किये कि जो मनुष्यों से नहीं हो सकते। एक बार एक ब्राह्मण के पुत्र की अकाल मृत्यु हो गई उसे देखकर और ब्राह्मण को शोकित जानकर परम बुद्धिमान् रघुनाथजी ने वन में तप करते हुए एक शूद्र को मारकर ब्राह्मण के बालक को जीवदान दिया और उस शूद्र को उत्तम स्वर्गलोक में भेज दिया और परमात्मा रामजी ने जगत् के उपदेश के लिये सब जगह करोड़ों शिवलिंगों की स्थापना करी और सब अमानुषी दिव्य भोगों से सीताजी का चित्त प्रसन्न करते रहे॥२४-२७॥

शशासरामोधर्मेणराज्यंपरमधर्मवित् ॥ कथांसंस्थापयामाससर्वलोकमलापहाम् ॥२८॥ दशवर्षसहस्राणि मायामानुषविग्रहः ॥ चकारराज्यं विधिवल्लोकवन्द्यपदाम्बुजः ॥२९॥ एकापत्नीव्रतोरामोराजर्षिः सर्वदाशुचिः ॥ गृहमेधीयमखिलमाचरन्शिक्षयन्जनान् ॥३०॥ सीताप्रेम्णाऽनुवृत्त्याचप्रश्रयेणदमेनच ॥

भर्तुर्मनोहरासाध्वीभावज्ञासाह्रियाभिया ।३१।। एकदाक्रीडविपिने सर्वभोगसमन्विते ।। एकान्तेदिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम् ।।३२।। नीलमणिक्यंसंकाशांदिव्याभरणभूषितम् ।। प्रसन्नवदनंशान्तंविद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ।।३३।। सीताकमलपत्राक्षीसर्वाभरणभूषिता ।। राममाहकराभ्यां सालालयन्तीपदाम्बुजे ।।३४।। देवदेवजगन्नाथपरमात्मन्सनातन ।। चिदानन्दादिमध्यान्तरहिताशेषकारण ।।३५।। देवदेवाः समासाद्यमामे कान्तेऽब्रुवन्वचः बहुशोऽर्थयमानास्तेवैकुण्ठागमनं प्रति ।।३६।। त्वयासमेतश्चिच्छक्त्यारामस्तिष्ठति भूतले ।। विसृज्यास्मान्स्वकंधामवैकुण्ठंचसनातनम् ।।३७।। आस्तेत्वयाजगद्धात्रिरामः कमललोचनः ।। अग्रतोयाहिवैकुण्ठंत्वंतथाचेद्रघूत्तमः ।।३८।। आगमिष्यतिवैकुण्ठंसनाथान्नः करिष्यति ।। इतिविज्ञापिताहं तैर्मयाविज्ञापितोभवान् ।।३९।। यद्युक्तंतत्कुरुष्वाद्यनाहमाज्ञापयेप्रभो ।। सीतायास्तद्वचः श्रुत्वारामोध्यात्वाऽब्रवीत्क्षणम् ।।४०।।

और परम ध्यान जो जाननेवाले श्रीरामजी धर्म से राज्य करते रहे और सब लोकों के पापों को नष्ट करनेवाली अपने कथा को स्थिर कर दी।।२८।। और दश हजार वर्ष तक माया से मनुष्यरूप धारण कर विधिपूर्वक राज्य करते रहे और सब लोक उनके चरणकमलों को प्रणाम करते रहे।।२९।। रामचन्द्रजी राजर्षि बड़े पवित्र और सदा एक पत्नी से भोग करनेवाले थे और उन्होंने सब मनुष्यों को शिक्षा देने के लिये गृहस्थ के सब धर्मों का पालन किया।।३०।। और पतिव्रता सीताजी प्रेम अनुकूल आचरण नम्रता इन्द्रियों का दमन, लज्जा, और भय इन अपने गुणों से भगवान् का भाव जानकर उनके मन को प्रसन्न करती थीं।।३१।। एक समय रामजी पुष्पवाटिका में सब भोग वस्तुओं से भरे हुए दिव्य मंदिर में एकांत जगह बैठे थे उनके शरीर की कांति नीलमणि के समान थी और वे बड़े बड़े सुन्दर दिव्य आभूषण धारण किये थे। उनका प्रसन्न मुख था और वे बिजली के पुंज के समान पीतांबर धारण किये थे, ऐसे शांतस्वरूप रामजी से कमलदल के समान नेत्रवाली संपूर्ण आभूषणों से भूषित और दोनों हाथों से उनके चरणकमल दबाती हुई सीताजी बोली कि।।३२—३४।। हे देवों के देव! तुम जगत् के स्वामी, परमात्मा, चैतन्य और आनन्द रूप आदि मध्य और अंत रहित और सबके कारण हो।।३५।। हे देव! इन्द्र आदि सब देवताओं ने आकर आपके वैकुंठ जाने के लिये मुझसे एकान्त में

बहुत सी विनती कर यह बात कही है कि।।३६।। हे जगत् की माता! तुम भगवान् की चैतन्यशक्ति हो। तुम सहित कमलनयन रामजी हमें और अपने सनातन वैकुंठधाम को छोड़कर पृथ्वीतल पर निवास करते हैं सो तुम पहिले वैकुंठ को चली जाओ तो फिर रामचंद्र भी वैकुंठ में आ जायंगे और हम सबों को सनाथ करेंगे। देवताओं ने मुझसे यह प्रार्थना की थी सो मैंने आपसे निवेदन कर दी।।३७–३९।। अब आपको जैसा उचित समझें सो करें। हे महाराज! मैं तुमसे आज्ञा नहीं करती हूं। सीताजी का वचन सुनकर रामजी क्षणमात्र ध्यान करके कहने लगे कि।।४०।।

देविजानामिसकलंतत्रोपायंवदामिते ।। कल्पयित्वामिषंदेविलोकवादं त्वदाश्रयम् ।।४१।। त्यजामित्वांवने-लोकवादाद्भीतइवापरः ।। भविष्यतः कुमारौद्वौवाल्मीकेराश्रमांतिके ।।४२।। इदानींदृश्यतेगर्भः पुनरागत्यमेऽन्तिकम् ।लोकानांप्रत्ययार्थंत्वंकृत्वाशपथमादरात् ।।४३।। भूमेर्विवरमात्रेणवैकुण्ठंयास्यसिद्रुतम् ।। पश्चादहंगमिष्यामिएषएवसुनिश्चयः ।।४४।। इत्युक्त्वातांविसृज्याथरामोज्ञानैकलक्षणः ।। मन्त्रिभिर्मन्त्र-तत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्चसंवृत्तः ।।४५।। तत्रोपविष्टंश्रीरामंसुहृदः पर्युपासत ।। हास्यप्रौढकथासुज्ञाहासयन्तः स्थिताहरिम् ।।४६।। कथाप्रसङ्गात्पप्रच्छरामोविजयनामकम् ।। पौराजानपदामेकिंवदन्तीहशुभाशुभम् ।।४७।। सीतांवामातरंवामे भ्रातृन्वाकैकयीमथ ।। नभेतव्यंत्वयाब्रूहिशापितोऽसिममोपरि ।।४८।। इत्युक्तः प्राहविजयोदेवसर्वेवदन्तिते ।। कृतंसुदुष्करंसर्वंरामेण विदितात्मना ।।४९।।

हे देवि! मैं यह सब जानता हूं और मैं तुझे एक उपाय बतलाता हूं, हे जानकी! मैं तेरे लोकापवाद का एक बहाना रचकर और साधारण मनुष्य की तरह लोकापवाद से डरकर तुझे वन में त्याग दूंगा। और वहां वाल्मीकिजी के आश्रम में तेरे दो पुत्र होंगे।।४१।।४२।। क्योंकि इस समय तुम्हारे गर्भ दीखता है और फिर तू मेरे पास आकर और लोकों को विश्वास दिलाने के लिये आदर से सौगन्ध खाकर।।४३।। पृथ्वी के छेद में गिरकर तुरंत वैकुंठ को चली जायगी और पीछे मैं भी आ जाऊंगा, यह बात निश्चय है।।४४।। यह कहकर ज्ञानस्वरूप रामजी सीताजी को बिदा कर आप सलाह के मर्म को जाननेवाले मंत्री और सेनापतियों सहित सभा में आये और वहां राज्यसिंहासन पर विराजमान हो गये, इतने में हँसने हंसाने में चतुर और अनेक कथा कहानियों के जाननेवाले उनके मित्रगण भी भगवान् को हँसाते हुए उनके पास

आकर बैठ गये।।४५।।४६।। फिर कथावार्ता के प्रसंग से रामजी के विजयनाम मित्र से पूछा कि हे विजय! पुरवासी और देशवासी मेर क्या बुराई भलाई करते हैं।।४७।। सीता, हमारी माता, भाई और कैकेई के विषय में लोग क्या कहते हैं तुझे मेरी सौगन्ध है तू निडर होकर कह।।४८।। जब रामजी ने यह कहा तब विजय बोला कि हे महाराज! आपके विषय में तो सब लोग कहते हैं कि आत्मज्ञानी रामचन्द्रजी ने रावण का संहाररूपी वह कठिन कार्य किया है जो किसी से नहीं हो सकता।।४९।।

किन्तुहत्वादशग्रीवंसीतामाहृत्यराघवः ।। अमर्षपृष्ठतः कृत्वास्वंवेश्मप्रत्यपादयत् ।।५०।। कीदृशंहृदयेतस्य सीतासम्भोगजंसुखम् ।। याहृताविजनेऽरण्येरावणेनदुरात्मना ।।५१।। अस्माकमपिदुष्कर्मयोषितांमर्षणंभवेत् ।। यादृक्भवतिवैराजा तादृश्योनियतंप्रजाः ।।५२।। श्रुत्वातद्वचनंरामः स्वजनान्पर्यपृच्छत ।। तेऽपिनत्वाऽब्रुवन्राममेवमेतन्नसंशयः ।।५३।। ततोविसृज्य सचिवान्विजयंसुहृदस्तथा ।। आहूयलक्ष्मणंरामो वचनंचेदमब्रवीत् ।।५४।। लोकापवादस्तुमहान्सीतामाश्रित्यमेऽभवत् ।। सीतांप्रातः सामानीयवाल्मीकेरा-श्रमान्तिके ।।५५।। त्यक्त्वाशीघ्रंरथेनत्वंपुनरायाहिलक्ष्मण ।। वक्ष्यसेयदिवाकिञ्चित्तदामांहतवानसि ।।५६।। इत्युक्तोलक्ष्मणोभीत्याप्रातरुत्थायजानकीम् ।। सुमन्त्रेणरथेकृत्वाजगामसहसावनम् ।।५७।। वाल्मीकेराश्रम स्यान्तेत्यक्त्वासीतामुवाचसः ।। लोकापवादभीत्यात्वांत्यक्तवान्राघवोवने ।।५८।।

परंतु एक काम अच्छा नहीं किया कि रामजी रावण को मारकर सीताजी को ले आये और अपने घर में रख लिया और सीताजी पर कुछ भी क्रोध न किया।।५०।। रामजी के हृदय में उन सीताजी के संभोग का सुख कैसा होता होगा कि जिन सीता को दुष्ट रावण निर्जन वन में हर ले गया था (यह तो उनके योग्य कार्य नहीं है)।।५१।। हम लोगों को भी अपनी स्त्रियों का इस प्रकार का बुरा कर्म सहना पड़ेगा क्योंकि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है यह बात निश्चय है।।५२।। उसका वचन सुनकर रामजी ने अपने मंत्री आदिकों से इस विषय में पूछा तो उन्होंने भी रामजी के सामने शिर नवाकर कहा कि महाराज! बात तो यह यों ही है इसमें संदेह नहीं।।५३।। फिर रामजी ने मंत्रियों को विजय को और मित्रों को तो बिदा कर दिया और लक्ष्मणजी को बुलाकर उनसे यह कहा कि।।५४।। हे लक्ष्मण

सीताजी के कारण संसार में मेरी बड़ी भारी निन्दा हो रही है, इसलिये तुम प्रातःकाल सीताजी को रथ में बैठा कर ले जाओ और वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास छोड़कर तुरंत मेरे पास लौटकर आ जाओ और जो इस विषय में कुछ तर्क वितर्क करोगे तो मेरे मारने के पाप के भागी होगे।।५५।।५६।। इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणजी सबेरे डरते डरते उठे और सुमंत्र सारथी से रथ मँगवाकर और उसमें जानकीजीको बैठाकर शीघ्र ही वन को विदा हुए।।५७।। और वाल्मीकिजी के आश्रम के पास सीताजी को छोड़कर उनसे बोले कि रामजी ने तुम्हें लोक निन्दा के डर से वन में त्याग दिया है।।५८।।

दोषोनकश्चिन्मेमातर्गच्छाश्रमपदंमुनेः ।। इत्युक्त्वालक्ष्मणः शीघ्रंगतवान् रामसन्निधिम् ।।५९।। सीताऽपिदुःखसंतप्ताविललापातिमुग्धवत् ।। शिष्यैः श्रुत्वाचमावल्मीकिः सीतांज्ञात्वासदिव्यदृक् ।।६०।। अर्घ्यादिभिः पूजयित्वासमाश्वास्यचजानकीम् ।। ज्ञात्वाभविष्यंसकलमर्पयन्मुनियोषिताम् ।।६१।। तास्तांसंपूजयन्तिस्मसीतांभक्त्या दिनेदिने ।। ज्ञात्वापरात्मनोलक्ष्मींमुनिवाक्येयोषितः ।। सेवांचक्रुः सदातस्यविनयादिभिरादरात् ।।६२।। रामोऽपिसीतारहितः परात्माविज्ञानदृक्केवलआदिदेवः ।। सन्त्यज्य-भोगानखिलान्विरक्तोमुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः।।६३।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे चतुर्थ सर्गः ।।४।।

हे माता! इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है अब तुम वाल्मीकि मुनि के आश्रम को चली जाओ, यह कहकर लक्ष्मणजी तुरंत रामजी के पास लौट गये।।५९।। और इधर सीताजी भी अंजान पुरुष की तरह दुःख से दुःखी हो विलाप करने लगीं। फिर वाल्मीकिजी अपने शिष्यों के द्वारा सुनकर और अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर कि यह सीताजी रो रही हैं।।६०।। वहां आये और अर्घ्य आदि से उनका पूजन करके जानकीजी को धैर्य दिया और आगे जो जो होनेवाला है उन सबको जानकर उन्होंने उन सीता को मुनियों की स्त्रियों को सौंप दिया।।६१।। और वे स्त्रियां मुनि के कहने से यह जानकर कि यह जानकीजी परमात्मा रामजी की लक्ष्मी हैं, नित्यप्रति भक्ति से सीताजी का पूजन सत्कार करने लगीं। और बड़े विनय और आदर से वे सदा उनकी सेवा में लगी रहीं।।६२।। यहां सीताजी के विरह से आदिदेव

ज्ञानदृष्टिवाले परमात्मा रामजी की सब भोगों को त्यागकर विरक्त हो गये और यद्यपि मुनिजन उनके चरणों की सेवा करते हैं तथापि लोकशिक्षा के लिये रामजी ने मुनियों का व्रत धारण कर लिया।।६२।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित उत्तरकांड का चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।।४।।

महादेव उवाच ।। ततोजघन्मङ्गलमङ्गलात्मनाविधायरामायणकीर्तिमुत्तमाम्।।चचारपूर्वाचरितंरघूत्तमोराजर्षिवर्यैरभिसेवितंयथा ।।१।। सौमित्रिणापृष्टउदारबुद्धिनारामः कथाः प्राहपुरातनीः शुभाः ।। राज्ञः प्रमत्तस्यनृगस्यशापतोद्विजस्यतिर्यक्त्वमथाहराघवः ।।२।। कदाचिदेकान्तउपस्थितं प्रभुंरामंरमालालितपादपङ्कजम् ।। सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः प्रणम्य भक्त्याविनयान्वितोऽब्रवीत् ।।३।। त्वंशुद्धबोधोऽसिहिसर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽसिनिराकृतिः स्वयम् ।। प्रतीयसेज्ञानदृशांमहामतेपादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम् ।।४।। अहंप्रपन्नोऽस्मिपदाम्बुजं प्रभोभवापवर्गंतवयोगिभावितम् ।। यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधिंसुखं तरिष्यामितथानुशाधिमाम् ।।५।। श्रुत्वाऽथसौमित्रिवचोऽखिलंतदाप्राहप्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।। विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तयेश्रुतिप्रपन्नंक्षितिपालभूषणः ।।६।। आदौस्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः कृत्वासमासादितशुद्धमानसः ।। समाप्यतत्पूर्वमुपात्तसाधनः समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ।।७।।

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! इसके उपरांत जगत् के मंगलों का भी मंगल करनेवाले अपने लीला स्वरूप से वाल्मीकि आदि से रचित उत्तर रामायणों की कीर्ति को लोकों में फैलाकार श्रीरामचन्द्रजी अपने वंश के इक्ष्वाकु आदि राजर्षियों में जैसे प्रजापालन आदि सदाचरण किया था वैसे ही आप भी करने लगे।।१।। एक समय परम बुद्धिमान् लक्ष्मणजी ने रामजी से पुरानी कथाओं को पूछा तो उन्होंने सुन्दर सुन्दर प्राचीन कथाओं का कहना आरंभ किया और पहिले ही भगवान् ने असावधान राजा नृग* की कथा कही कि जैसे वह ब्राह्मण के शाप से गिरगिट की योनि में उत्पन्न हुआ था।।२।। फिर एक समय भगवान् रामचंद्रजी एकांत में विराजमान थे, जानकीजी उनके चरणकमल दबा रही थीं उस समय शुद्ध अंतःकरण वाले लक्ष्मणजी ने प्रणाम करके भक्तिपूर्वक अतिनम्र हो यह प्रश्न किया कि।।३।। हे रामजी!

तुम निर्मल ज्ञानस्वरूप सब प्राणियों के आत्मा अंतर्यामी रूप से सबके प्रेरक और स्वयं देहरहित हो (परंतु माया के वश से शरीर धारण करते हो) सो ऐसे आप जिनकी दिव्य दृष्टि है और जिन्होंने आपके चरणकमलों में अपने मन को भ्रमर बना रखा है और जो उत्तम साधुओं का सत्संग करनेवाले हैं, ऐसे लोगों को प्रतीत होते हो तो अर्थात् ज्ञानी पुरुष ही तुम्हारा सत्य स्वरूप जान सकते हैं।।४।। हे भगवन्! योगी जिनका ध्यान करते हैं और जो संसारबंधन से छुड़ानेवाले हैं ऐसे आपके चरणकमलों की शरण में आया हूं सो आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये कि मैं अज्ञान के अपार समुद्र से शीघ्र सुखपूर्वक पार हो जाऊं।।५।। फिर लक्ष्मणजी का वचन सुनकर राजाओं के भूषण और भक्तों के दुःख को हरनेवाले रामजी मन में बड़े प्रसन्न हुए और अज्ञानरूपी अंधेरे को दूर करने के लिये वेद** में कथित संपूर्ण आत्मज्ञान का वर्णन करने लगे।।६।। (अब यहां पहिले आत्मज्ञान के लिये श्रीरामजी बहिरंग और अंतरंग साधनों को कहते हैं) हे लक्ष्मण! मोक्षार्थी पुरुष को चाहिये कि पहिले अपने वर्ण और आश्रम में वर्णन किये यज्ञ दान आदि निष्काम सत्कर्मों को कर फिर इनके करने से जब अंतःकरण शुद्ध हो जाय तब शम दम आदि साधन प्राप्त करे और पूर्वोक्त सब कर्मों को त्यागकर आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये ब्रह्मज्ञान में तत्पर और वेद का अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ गुरु के पास जाय।।७।।

क्रियाशरीरोद्भवहेतुरादृताप्रियाप्रियौतौभवतः सुरागिणः ।। धर्मेतरौतत्रपुनः शरीरकं पुनः क्रियाचक्रवदीर्यते भवः ।।८।। अज्ञानमेवास्यहिमूलकारणंतद्धानमेवात्रविधौविधीयते ।। विद्यैवतन्नाशविधौपटीयसीनकर्मतज्जं सविरोधमीरितिम् ।।९।। नाज्ञानहानिर्नचरासंक्षयोभवेत्ततः कर्मसदोषमुद्भवे ।। ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधोज्ञानविचारवान्भवेत् ।।१०।। ननुक्रियावेदमुखेनचोदितायथैवविद्यापुरुषार्थसाधनम् ।। कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिताविद्यासहायत्वमुपैतिसापुनः ।।११।। कर्माकृतौ दोषमपिश्रुतिर्जगौतस्मात्सदाकार्यमिदं-मुमुक्षुणा ।। ननुस्वतन्त्राध्रुवकार्यकारिणीविद्यानकिञ्चिन्मनसाऽप्यपेक्षते ।।१२।। नसत्यकार्योऽपिहियद्ध-

* राजा नृग ने एक गाय पुण्य करके धोखे से दूसरी बार फिर वही गाय पुण्य कर दी थी इसलिये उसे गिरगिट योनि मिली, फिर भगवान् ने उसका उद्धार किया। इसकी पूरी कथा भागवत में है। ** "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेनाय" अर्थात् उस परमात्मा को ही जानकर पुरुष संसाररूपी मृत्यु के पार होता है सिवाय ज्ञान के और कोई मार्ग मुक्ति पाने का नहीं है।

दध्वरःप्रकाङ्क्षतेऽन्यानपिकारकादिकान् ॥ तथैवविद्याविधितः प्रकाशितैशिष्यतेकर्मभिरेवमुक्तये॥१३॥

(अब संसार को चक्रवत् वर्णन करते हैं) रामजी कहते हैं हे लक्ष्मण! पूर्वजन्म में प्रीतिपूर्वक किया हुआ कर्म ही शरीर के जन्म का कारण है फिर उस जन्म में विषय चाहनेवाले पुरुष को शास्त्र में कहे हुए धर्म और अधर्म सुख दुःख देते हैं फिर उस जन्म में भी कर्मों के द्वारा पुरुष शरीर धारण करता है और शरीर को धारण कर जीव फिर कर्म करता है इसी प्रकार प्राणी संसारचक्र में घूमता रहता है और यह संसार गाड़ी के पहिये के समान है। और जैसे इसका नीचे का भाग आता जाता रहता है ऐसे ही जीव कभी पुण्य के कर्म से परलोक में जाता है और कभी पापकर्मसे नीचलोक में आता है॥८॥ और हे लक्ष्मण! संसारका मूल कारण अज्ञान ही है इसलिये संसारसे छूटनेका साधन अज्ञानका नाश ही विधान किया गया है। और उस अज्ञान के नाश करने में ज्ञान ही समर्थ नहीं है क्योंकि कर्म और अज्ञान का आपस में विरोध नहीं है जिसका जिसमें विरोध होता है वह उसे नष्ट कर सकता है इसलिये ज्ञान ही अज्ञान को नाश कर सकता है॥९॥ और हे लक्ष्मण! कर्म और अज्ञान का आपस में विरोध नहीं है इसलिये कर्म करने से न तो अज्ञान का नाश होता है और न विषय राग का नाश होता है वरन् कर्म करने से उलटा दोषयुक्त कर्म ही उत्पन्न होता है फिर कर्म से बराबर जन्ममरणरूप संसार होता जाता है फिर मोक्ष की क्या आशा है इसलिये विवेकी पुरुष को चाहिये कि ज्ञान के विचार में लगा रहे॥१०॥ (अब जो आचार्य यों कहते हैं कि ज्ञान और कर्म दोनों के मिलने से मुक्ति होती है निरे ज्ञान से नहीं होती उन समुच्चयवादियों के मत का खंडन करने के निमित्त पहिले तीन लोकों में उनका मत कहा जाता है। और यहां यह शंका होती है कि जैसे) विद्या अर्थात् ज्ञान ("ब्रह्मविदाप्नोति परम्' ब्रह्मका जाननेवालाब्रह्म ही को प्राप्त होता है इत्यादि) वेदमुख से मोक्षरूप पुरुषार्थ का साधन कहा गया है तैसे ही जीवों को कर्म भी ("यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" अर्थात् तब तक अग्निहोत्र कर्म करे इत्यादि) करना कहा गया है यह स्पष्ट होता है कि कर्म ज्ञान का सहायक होता है बिना कर्म के ज्ञान से मुक्ति नहीं हो सकती (समुच्चयवादी इसमें प्रमाण होते हैं कि "उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतमिति" अर्थात् जैसे पक्षी दोनों पंखों से आकाश में उड़ते हैं ऐसे ही ज्ञान और कर्म दोनों से ही सत्य ब्रह्म अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है॥११॥ और वेद ने कर्म के नहीं करने में दोष

अ०रा० ४९३

भी कहा है (यथा "वीरहा वा एष देवानां योग्निमुद्वासयत इति" अर्थात् जो पुरुष अग्निहोत्र के कुंड की अग्नि को बुझाता है वह देवताओं के वीर का नाशक होता है) इसलिये मोक्षार्थी पुरुष को सदा यज्ञादि कर्म करना चाहिये (अब सिद्धांती पूर्वपक्षी बनकर शंका करता है कि) मोक्षरूप स्थिर कार्य को करनेवाली विद्या (ज्ञान) अपने कार्य करने में स्वतंत्र है अर्थात् बिना किसी के सहायता के कर सकती है और वह विद्या मोक्ष देने में किसी की मन से भी अपेक्षा ऐसे नहीं करती जैसे सूर्य बिना किसी की सहायता के अंधकार को नाश कर देता है।।१२।।अब फिर समुच्चयवादी कहता है कि तुम्हारा इस प्रकार कहना ठीक नहीं है क्योंकि ("अक्षय्यं हि चातुरर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति" अर्थात् चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालों को अक्षय पुण्य होता है इस प्रकार श्रुतियों के प्रमाण से) यद्यपि यज्ञकर्म स्थिर है तथापि जैसे वह अन्य प्रयाज अनुयाज आदि कार्यांगों की और देश काल आदि की अपेक्षा करता है वैसे ही ("अधीतवेदो जपकृत पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् ।। शक्तया च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा" अर्थात् वेद पढ़ चुकनेवाला और गायत्री जप करनेवाला पुत्रवान् अन्नदाता और यथाशक्ति यज्ञ करनेवाला ही मोक्ष में मन लगावे दूसरा पुरुष नहीं इत्यदि वेद के विधिवाक्यों से प्रतिपादित अग्निहोत्र आदि कर्मों की सहायता से विद्या मोक्ष दे सकती है स्वतंत्र होकर नहीं दे सकती।।१३।।

केचिद्वदन्तीतिवितर्कवादिनस्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात्।। देहाभिमानादभिवर्धतेक्रियाविद्यागताहंकृतितः प्रसिद्ध्यति ।।१४।। विशुद्धविज्ञानविरोचनांञ्चि ताविद्याऽऽत्मवृत्तिश्चरमेतिभण्यते ।। उदेतिकर्माखिलकारकादिभिर्निहन्तिविद्याऽखिलकारकादिकम् ।।१५।। तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः ।। सुधीर्विद्याविरोधान्नसमुच्चयोभवेत् ।। आत्मानुसंधानपरायणः सदानिवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ।।१६।। यावच्छरीरादिषुमाययाऽऽत्मधीस्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम्।।नेतीति वाक्यैरखिलंनिषिद्ध्यतज्ज्ञात्वापरात्मानमथत्यजेक्रियाः ।।१७।।

उ०का० सर्ग ५

(यहां तक सिद्धांती समुच्चयवादिका मत दिखाकर उसका खंडन करता है कि) इस प्रकार जो कितने ही वितर्कवादि कहते हैं सो मिथ्या है (जैसे केवल कर्म से मोक्ष नहीं हो सकता ऐसे ही ज्ञान सहित कर्म भी मोक्ष का साधक नहीं है) क्योंकि ऐसा विरोध देखने में आता है कि देहाऽभिमान से क्रिया बढ़ती है अर्थात् कर्म की सिद्धि होती है और

ज्ञान देहाऽभिमान के नष्ट होने से सिद्ध होता है इत्यादिकारणों से समुच्चय वादियों का मत झूंठा है॥१४॥ (अब समुच्चयवादि ने जो पहिले १२ वें श्लोक में अनुमान क्रिया था कि जैसे प्रयाज आदि अंगों से मुख्य यज्ञ फलदायक होता है वैसे ही ज्ञान भी कर्म द्वारा मोक्षफल दायक होगा उसका खंडन करते हुए रामजी विद्या का स्वरूप वर्णन करते हैं कि) हे लक्ष्मण! निर्मल ज्ञान के देनेवाले ऐसे वेदान्त शास्त्र के वाक्यों का विचार करने से प्राप्त होनेवाली अंतःकरण की अंतिम ब्रह्माकार वृत्ति विद्या कहाती है और यज्ञादि कर्म तो कर्तृकर्मादि से उत्पन्न होता है और विद्या सब कर्तृकर्मादिकों का नाश करती है॥१५॥ और हे लक्ष्मण! विद्या और कर्म का आपस में विरोध होने से इनका समुच्चय नहीं बन सकता इसलिये ज्ञानी को चाहिये कि सब यज्ञादि कर्म को त्याग दे और सब इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर सदा सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के ध्यान में लगें॥१६॥ और हे लक्ष्मण! जब तक माया से शरीर आदिकों में आत्मबुद्धि रहे अर्थात् पुरुष अपने को कर्ता जाने तब तक वेद में कहे हुए कर्मों को अंतःकरण की शुद्धि के लिये करे और फिर नेति नेति वाक्यों से सब जगत् को स्वप्नवत् मिथ्या जान उसको त्यागकर और उस परमात्मा स्वरूप को जानकर सब कर्मों को त्याग देवे॥१७॥

यदापरात्मात्मविभेदभेदकंविज्ञानमात्मन्यवभातिभास्वरम् ॥ तदैवमायाप्रविलीयतेऽञ्जसासकारकाकारण-मात्मसंसृतेः ॥१८॥ श्रुतिप्रमाणांभिविनाशिता चसाकथंभविष्यत्यपिकार्यकारिणी ॥ विज्ञानमात्रादमला-द्वितीयतस्तस्मादविद्यानपुनर्भविष्यति१९॥ यदिस्मनष्टानपुनः प्रसूयते कर्ताऽहमस्येतिमतिः कथंभवेत् ॥ तस्मात्स्वतन्त्रानकिमप्यपेक्षतेविद्याविमोक्षायविभातिकेवला ॥२०॥ सातैत्तिरीयश्रुतिराहसादरंन्यासंप्रश-स्ताखिलकर्मणांस्फुटम् ॥ एतावदित्याहचवाजिनांश्रुतिर्ज्ञानंविमोक्षायनकर्मसाधनम् ॥२१॥ विद्यासमत्वेन-तुदर्शितस्त्वयाक्रतुर्नदृष्टान्तउदाहृतः समः ॥ फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः संसाध्यतेज्ञानमतो-विपर्ययम् ॥२२॥

(अब आत्मज्ञान के हुए पीछे अविद्या अवश्य निवृत्ति होती है उसका प्रतिपादन करते हैं) हे लक्ष्मण! जिस समय शुद्ध अंतःकरण में जीवात्मा परमात्मा के भेद को नाश करनेवाला, प्रकाशमान ब्रह्ममान उदय होता है उसी समय संसार

की कारण् रूप माया अथात् जीव की अविद्या अनेक जन्मों के देनेवाले कर्मों सहित तुरंत नष्ट हो जाती है।।१८।। और हे लक्ष्मण! श्रुतियों के तत्त्वमसि आदि) वाक्यों के ज्ञान से नष्ट हुई अविद्या बंधनरूप कार्य के करनेवाली फिर कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। क्योंकि वह तो शुद्ध, अद्वितीय आत्मज्ञान से नष्ट हो जाती है और वह फिर उदय नहीं हो सकती।।९।। और हे लक्ष्मण! जो नष्ट हुई अविद्या फिर से उत्पन्न नहीं होती तो कारण के अभाव से "मैं कर्ता हूँ" ऐसी अहंकारी बुद्धि कैसे हो सकती है ऐसी दशा में विद्या स्वतंत्र है और उसे किसी की अपेक्षा नहीं है वह अकेली मोक्षफल दे सकती है।।२०।। और हे लक्ष्मण! यह तैत्तिरीय* शाखा की प्रसिद्ध श्रुति आदरपूर्वक सब शुभ कर्मों को त्यागने के लिये स्पष्ट कहती है और वाजसनेयिशाखा** वालों की श्रुति यह कहती है कि केवल ज्ञान ही मोक्ष का साधन है कर्म नहीं है अब समुच्चयवादी से और कहते हैं कि तुमने विद्या के समान यज्ञ को तो दिखाया परन्तु उसकी समानता का कोई दृष्टांत नहीं कहा यह ठीक नहीं है क्योंकि यज्ञ तो फलों के भेद से और बहुत से कर्मकर्तृकर्मादि कारकों से और बाहरी देशकाल आदि के नियमों से सिद्ध किया जाता है इसलिये ज्ञान से विपरीत है फिर साम्य कैसे बन सकता है और बिना समता के समुच्चय कहां ।।२१।।२२।।

सप्रत्यवायोह्यहमित्यनात्मधीरज्ञप्रसिद्धानतुतत्त्वदर्शिनः तस्माद्बुधैस्त्याज्यमपिक्रियात्मभिर्विधानतः कर्मविधिप्रकाशितम् ।।२३।। श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतोगुरोः प्रसादादपिशुद्धमानसः ।। विज्ञायचैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखीभवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ।।२४।। आदौपदार्थावगतिर्हिकारणंवाक्यर्थविज्ञानविधौविधानतः ।। तत्त्वंपदार्थौपरमात्मजीवकावसीतिचैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ।।२५।। प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनोर्विहायसंगृह्यतयोश्चिदात्मताम् ।। संशोधितांलक्षणयाचलक्षितांज्ञात्वास्वमात्मानमथाद्वयोभवेत् ।।२६।। एकात्मकत्वाज्जहतीनसम्भवेत्तथाऽजहल्लक्षणताविरोधतः ।। सोऽयंपदार्थाविवभागलक्षणायुज्येत-

* "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः परेण नाक निहितं गुहायां विभ्राजदेत्तद्यतयो विशन्ति ।।" तै० आ० प्र० १० अ० १० अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म करने से संतान से, अथवा धन से मोक्ष नहीं मिल सकता किन्तु सब लौकिक वैदिक कर्मों के त्याग से कोई अंतर्मुख पुरुष अमृतत्व (मोक्ष) पाता है इस अमृतत्व में जितेन्द्रिय संन्यासी प्रवेश करते हैं और वह स्वर्ग से भी बढ़कर है और जो अपनी एकाग्रबुद्धिरूपी गुहा में स्थित है और प्रकाशमान् है" ** "एतावदरे खल्वमृतत्वम्"

तत्त्वंपदयोरदोषतः ।।२७।।

और इस कर्म के त्यागने से मैं अवश्य प्रायश्चित्त का भागी होऊंगा ऐसी अनात्मधर्म संबन्धिनी बुद्धि आज्ञानी को ही होती है तत्त्वदर्शी को नहीं होती इसलिये आत्मज्ञानी विद्वानों को शास्त्र में विधान किये हुए कर्म को भी त्याग देना चाहिये (जिनको स्वर्गफल पाने की इच्छा हो वह यज्ञादि कर्म करे मोक्षार्थी को करना उचित नहीं है।।२३। (अब विरक्त पुरुष को क्या करना चाहिये सो कहते हैं) हे लक्ष्मण! निष्काम कर्म करने से जिसका अंतःकरण शुद्ध हो गया है और जिसकी गुरु और शास्त्र में श्रद्धा है ऐसा मुमुक्ष गुरु के प्रसाद से "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों के द्वारा जीव और परमात्मा की एकता को जानकर और सुमेरुपर्वत के समान निश्चल चित्त होकर सुखी होवे।।२४।। हे लक्ष्मण! भ्रम और प्रमादरहित महावाक्यके अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होने में पहिले प्रत्येक पद के अर्थ का ज्ञान होना ही कारण है और उस महावाक्य में "तत्त्वमसि" तीन पद हैं। १ तत्, २ त्वं, और ३ असि। तहां तत् पद का अर्थ सर्वज्ञत्व आदि गुणयुक्त परमात्मा है, त्वं पद का अर्थ अल्पज्ञत्व आदि विशिष्ट जीवात्मा का है और असिपद का अर्थ तत् तथा त्वं इन दोनों पदों का अभेद बोधक है।।२५।। (अब यदि यह शंका की जाय कि ईश्वर सर्वज्ञ और जीव अल्पज्ञ है इन दोनों की एकता कैसे होती है तहाँ कहते हैं कि) हे लक्ष्मण! अहंबुद्धि से जाना जाय जो प्रत्यक्त्व अर्थात् अनेक पदार्थों को अपना मानना जीव का धर्म है, और परोक्षत्व अर्थात् इन्द्रियों से प्रत्यक्ष न होना ईश्वर का धर्म है इन दोनों धर्मों को लेकर अन्य भी धर्मों से किया गया जो जीव परमात्मा का विरोध उसको त्यागकर, तत् और त्वं इन दोनों पदों की भले प्रकार से विचार की गई और भागत्यागलक्षणा से ज्ञात हुई, चिद्रूपता को संग्रह करके अर्थात् त्वं पद से यह उपस्थित है ऐसे निश्चय से अपने स्वरूप को जानकर द्वैतभाव से रहित हो जाय। (इसका भाव है कि तत् और त्वं पदों के दो दो अर्थ हैं एक तो वाच्य और दूसरा लक्ष्य। उसमें तत् पद का वाच्य अर्थ तो मायोपाधिक सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य है और लक्ष्य उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य है। ऐसे ही त्वंपद का वाच्य अर्थ तो मायाकार्य अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य है और लक्ष्य अर्थ उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य है। तहां वाच्य अर्थोंका तो विरुद्ध अर्थ होने से एकता नहीं हो सकती क्योंकि जो सर्वज्ञ हैं सो अल्पज्ञ नहीं हो सकता और अल्पज्ञ है सो सर्वज्ञ नहीं हो सकता और शुद्ध चैतन्य जो दोनों का लक्ष्य अर्थ है तिनकी

एकता में कुछ बाधा नहीं है इसलिये लक्ष्य अर्थोंकी ही एकता होती है।।२६।। (अब आगे रामजी लक्षणाओं का स्वरूप वर्णन करते हैं) हे लक्ष्मण! लक्षणा तीन प्रकार की होती हैं एक तो जहल्लक्षणा दूसरी अजहल्लक्षणा तीसरी जहदजहल्लक्षणा । तहां जहल्लक्षणा वह है जहां संपूर्ण वाच्य अर्थ का त्याग हो और दूसरा संभव अर्थ स्वीकार करें जैसे 'गंगायां घोष:' गंगा में अहीर रहता है। जहां जलप्रवाह गंगाशब्द के मुख्य अर्थ में अहीर का रहना असंभव है क्योंकि गंगा के बीच में पानी पर अहीर नहीं रह सकता इसलिये यहां प्रवाहरूप मुख्य अर्थ को छोड़कर गंगापद की तट में लक्षणा कर ली अर्थात् गंगाजी के तट पर अहीर रहता है ऐसा माना तो यहां गंगापद का संपूर्ण वाच्यार्थ छूट गया इसलिये इसे जहल्लक्षणा कहते हैं। और "तत्त्वमसि" इस महावाक्य में तत् पद और त्वंपद दोनों का चेतनरूप एक अर्थ है सो अर्थ का त्याग न होने से जहल्लक्षणा नहीं हो सकती। अब अजहल्लक्षणा का वर्णन करते हैं कि जैसे "अरुणो धावति" अर्थात् अरुण (लाल रंग) दौड़ता है यहां लालरंग में दौड़ना असंभव है इसलिये अरुण (लाल) पद की लक्षणा घोड़े में है। यहां अरुणपद की अपने लाल अर्थ को न त्यागकर घोड़ेरूप दूसरे पदार्थ में लक्षणा हुई इसलिये वह अजहल्लक्षणा हुई। यह लक्षणा भी "तत्त्वमसि" महावाक्य में नहीं हो सकती क्योंकि उसमें संपूर्ण वाच्य अर्थ का ग्रहण नहीं है। अब जहदजल्लक्षणा को कहते हैं कि जहां घोड़े से अर्थ का, त्याग और थोड़े अर्थ का ग्रहण हो उसे जहदजहल्लक्षणा कहते हैं और यही लक्षणा "तत्त्वमसि" महावाक्य में इस प्रकार घटती है जैसे "सोऽयं देवदत्त:" यह वही देवदत्त है। इस वाक्य में देशकाल और पुष्य कृश आदि विशेषणों का त्याग है और पिंडमात्र देवदत्त का ग्रहण होता है। इसलिये जहदजहल्लक्षणा होती है। और ऐसे ही 'तत्त्वमसि' महावाक्यों में भी समष्टि (सब मिला हुआ) और व्यष्टि (जुदा जुदा) स्थूल सूक्ष्म आदि विरुद्ध अंश को त्याग देने से व्यापक अखंड चैतन्यमात्र का बोध होता है। और इसी लक्षणा को भागत्यालक्षणा भी कहते हैं।।२७।।

---

*पृथ्वी आदि महाभूतोंमें एक महाभूतो दो दो भाग किये तिससे भी एक एक भाग के चार चार भाग किये फिर वह सबों का आठवां २ भाग सबों के आधे आधे भाग में मिला दिया तो सब पृथिवी आदिकों में आधा आधा भाग तो अपना हुआ और आठवां २ भाग उन चारों का आके मिला तो एक एक में पांचों महाभूतों के इकट्ठे होने को पंचकिरण कहते हैं।

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवंभोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ।। शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजंमायामयंस्थूलमुपाधिमात्मनः ।।२८।। सूक्ष्मंमनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युतंप्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।। भोक्तुः सुखादेरनुसाधनंभवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनोबुधाः ।।२९।। अनाद्यनिर्वाच्यमपीहकारणंमायाप्रधानंतुपरंशरीरकम् ।। उपाधिभेदात्तुयतः पृथक्स्थितंस्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ।।३०।। कोशेष्वयंतेषुतु तत्तदाकृतिर्विभातिसङ्गात्स्फटिकोपलोयथा ।। असंगरूपोऽयमजोयतोद्वयोविज्ञायतेऽस्मिन्परितोविचारिते ।।३१।। वृत्तिरपीहदृश्यतेस्वप्नादिभेदेनगुणत्रयात्मनः ।। अन्योन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतोमृषानित्येपरेब्रह्मणिकेवलेशिवे ।।३२।।

और हे लक्ष्मण! पंचीकृत पृथ्वी आदि महाभूतों से जो उत्पन्न हो सुख दुःख आदि के कारणभूत पुण्य पाप कर्मों का भोगनेवाला, जन्ममरणयुक्त, पूर्वजन्म के कर्मों से उत्पन्न होनेवाला और सदा से माया का विकाररूप यह शरीर आत्मा का स्थूल उपाधि है।।२८।। और हे लक्ष्मण! जो सूक्ष्म शरीर है वह मन बुद्धि दश इन्द्रिय और पांच प्राण इनसे युक्त और अपंचीकृत पंच महाभूतों से उत्पन्न हुआ और भोक्ता जीव को सुख दुःख आदि के अनुभव करने का साधन ऐसा स्थूल शरीर से भिन्न सूक्ष्म शरीर को पण्डित जन आत्मा को लिंगोपाधि कहते हैं।।२९।। (इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म रूप से जीव को दो उपाधि कहकर अब ईश्वर की उपाधि कहते हैं) हे लक्ष्मण! अनादि अर्थात् उत्पत्तिरहित सत् असत् रूप से जिसका वर्णन नहीं हो सकता, और सब जगत् को उत्पन्न करनेवाली माया ब्रह्म का प्रधान शरीर है और वह एक ही चैतन्य उपाधि से अर्थात् जीव ईश्वर भेद में अलग अलग हो रहा है इसलिये उपाधि का त्याग करके श्रणव मनन आदि के क्रम से अपने आत्मा में ही आत्मा का निश्चय करे अर्थात् उसे जाने।।३०।। और हे लक्ष्मण! जैसे निर्मल स्फटिक मणि जपा के पुष्प आदि के संग से रक्त आदि प्रतीत होता है ऐसे ही आत्मा भी अन्नमयादि कोशों के संग से वैसा ही वैसा प्रतीत होने लगता है परन्तु महावाक्य के अर्थ का भले प्रकार से विचार करने पर तो यह आत्मा कोशों से भिन्न अजन्मा, अव्यय, द्वैतभावरहित और प्रकाशमान जान पड़ता है।।३१।। और हे लक्ष्मण! इस आत्मा में जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति भेद से तीन प्रकार की वृत्ति दिखलाई देती है सो भी सत्त्व रज तम नाम गुणयुक्तरूप बुद्धि का धर्म है और तीनों अवस्थाओं के आपस में व्यभिचार होने से अर्थात् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत् सुषुप्ति अभाव से और जाग्रत् अवस्था

में स्वप्नसुषुप्ति के अभाव से और सुषुप्ति में जाग्रत् स्वप्न के अभाव से आत्मा में तीनों अवस्थाओं का भान होना झूठा है और जन्ममरणरहित, माया से परे, एक और आनंदस्वरूप ब्रह्म में परस्पर व्यभिचारी धर्म कैसे हो सकते हैं॥३२॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनांसंघादजस्रंपरिवर्ततेधियः ॥ वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणायावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥३३॥ नेतिप्रमाणेननिराकृताखिलोहृदासमास्वादितचिद्धनामृतः ॥ त्यजेदशेषंजगदात्तसद्रसं- पीत्वायथाऽम्भः प्रजहातितत्फलम् ॥३४॥ कदाचिदात्मानमृतोन जायतेनक्षीयतेनापिविवर्धतेऽनवः ॥ निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयंप्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः॥३५॥एवंविधेज्ञानमयेसुखात्मके कथंभवोदुःखमयः प्रतीयते ॥ अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशतेज्ञानेविलीयेतविरोधतः क्षणात् ॥३६॥ यदन्यदन्यत्रविभाव्यते- भ्रमाद ध्यासमित्याहुरमुंविपश्चितः ॥ असर्पभूतेऽहिविभावनंपथारज्ज्वादिकेतद्वदपीश्वरेजगत् ॥३७॥

(अब संसार की मूलभूत प्रवृत्ति का त्याग कहते हैं) हे लक्ष्मण! जब तक देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और चैतनस्वरूप इनके समूह से अज्ञता को उत्पन्न करनेवाली और रजोगुणतमोगुणप्रधानयुक्त बुद्धि की वृत्ति हुआ करती है तब तक ही इस जन्ममरणरूप संसार की उत्पत्ति निरंतर होती है इसलिये इसे त्याग देना चाहिये॥३३॥ (अब महावाक्य का विचार कर चुकनेवाले ज्ञानी को क्या करना चाहिये सो कहते हैं) हे लक्ष्मण! नेतिनेति इस वेद के प्रमाण से जिसने सब जगत् को झूठा जान लिया है और फिर सत्त्वप्रधान मन से जिसने संसारी दुःखों से रहित चैतन्यघनरूपी अमृत का आस्वादन किया है ऐसे ज्ञानी को सब जगत् ऐसे त्याग देना चाहिये कि जैसे प्यासा मनुष्य नारियल शंतरे आदि फल का रस निचोड़कर उनके छिलकों को फेंक देता है॥३४॥ हे लक्ष्मण! यह आत्मा न मरता है, न उत्पन्न होता है, न घटता है, न बढ़ता है और न यह नवीन है क्योंकि नवीन होगा तो फिर वृद्ध होगा और फिर ऐसा होने से इसमें विकार आ जायगा इसलिये यह आत्मा तो देह और इन्द्रियादिक के महत्त्व को दूर करनेवाला, आनंदस्वरूप, स्वयंप्रकाश सर्वव्यापक और अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप है॥३५॥ (अब यदि शंका की जाय कि आत्मा तो ज्ञानमय, सुखरूप है इसमें दुःखमय संसार की प्रतीति कैसे होती है तहां कहते हैं कि) अज्ञान की जड़ तो अध्यास है अर्थात् देह और अंतःकरण में

"यह मैं हूं" और "यह मेरा है" ऐसे भ्रमयुक्त जो बुद्धि है उससे संसारकी प्रतीति होती है और जब ज्ञान का प्रकाश होता है तब वह तत्काल नष्ट हो जाती है क्योंकि ज्ञान और अज्ञान का आपस में विरोध है॥३६॥ और हे लक्ष्मण! भ्रम से एक वस्तु में दूसरी वस्तु के प्रतीत होने को पण्डितजन अध्यास कहते हैं जैसे अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी में सर्प न होने पर भी सर्प की प्रतीति होने लगती है ऐसे ईश्वर में भी जगत् अज्ञान से उत्पन्न भ्रम से प्रतीत हो रहा है॥३७॥

विकल्पमायारहितेचिदात्मकेऽहंकारएष प्रथमः प्रकल्पितः ॥ अध्यासएवात्मनिसर्वकारणेनिरामयेब्रह्मणि-केवले परे॥३८॥ इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः सदाधियः संसृतिहे तवः परे ॥ यस्मात्प्रसुप्तौतदभावतः परः सुखस्वरूपेणविभाव्यतेहिनः ॥३९॥ अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितोजीवः प्रकाशोऽयमितीयंते चितः ॥ आत्माधियः साक्षितयापृथक्स्थितोबुद्ध्यापरिच्छिन्न परः सएवहि ॥४०॥ चिद्बिम्बसाक्षात्मधियांप्रसङ्गत स्त्वेकत्रवासादनलाक्तलोहवत् ॥ अन्योऽन्यमध्यासवशात्प्रतीयतेजडाजडत्वंचचिदात्मचेतसोः ॥४१॥

और संपूर्ण विकल्पों की कारण ऐसी माया से रहित, चैतन्य स्वरूप का सबका कारण, दुःखरहित, आनन्दस्वरूप सब विकारशून्य सब व्यापक प्रकृति से परे ऐसे आत्मा में जो पहिले अहंकार कल्पना किया गया है वही अध्यास है अर्थात् अहंबुद्धिरूप अहंकार ही संसार का कारण है॥३८॥ और हे लक्ष्मण! सबके साथी आत्मा में इच्छा और उपेक्षा, रागद्वेष और सुख दुःख आदि द्वंद्वधर्मवाली बुद्धि की वृत्तियां ही सदा संसार का कारण है क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि की वृत्तियों के न होने से आत्मा हमको सुखी प्रतीत होता है॥३९॥ (अब रामजी फिर तत् और त्वं पदार्थ वर्णन करते हैं कि) अनादि अविद्या से उत्पन्न हुए अंतःकरण में जो चैतन्य के प्रकाश का प्रतिबिंब पड़ता हैं वह जीव कहता है और बुद्धि के साक्षीरूप से अलग स्थित है और बुद्धि के परिच्छेद से रहित है उसे परमात्मा कहते हैं॥४०॥ चैतन्यरूप आत्मा और बुद्धि का परस्पर अध्यास होने से (अर्थात् चैतन्यरूप आत्मा को बुद्धि, और बुद्धि का चैतन्यरूप आत्मा मानने से) चैतन्यरूप आत्मा में जड़ता और (जड़) बुद्धि में चिद्रूप ज्ञान की प्रतीति होने लगती है। इसका कारण चिदाभास तथा इन्द्रियोंसहित मन और अंतःकरण का बहुत पास पास रहना है, जैसे अग्नि में तपाये हुए लोह के गोले में दहकता और

प्रकाश अग्नि के गुण प्रतीत होने लगते हैं, और लोहे के गोले का गुण अर्थात् (गोल आकार) अग्नि में प्रतीत होने लगता है (अर्थात् बुद्धि स्वयं तो जड़ है पर चैतन्य आत्मा के पास रहने से उसमें चैतन्य आत्मा का (चेतनता) गुण प्रतीत होता है और चैतन्य आत्मा में बुद्धि का (जड़ता) गुण मालूम होता है।।४१।।

गुरोः सकाशादपिवेदवाक्यतः सञ्जातविद्यानुभवी निरीक्षितम् ।। स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितंत्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ।।४२।। प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृतिभातोऽहमतीवनिर्मलः ।। विशुद्धविज्ञानघनोनिरामयः सम्पूर्णआनन्दमयोऽहमक्रियः ।।४३।। सदैवमुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।। अनन्तपारोऽहमहर्निशंबुधैविभावितोऽहंहृदिवेदवादिभिः।।४४।। एवं सदात्मानमखण्डितात्मनाविचारमाणस्य विशुद्धभावना ।। हन्यादविद्यामचिरेणकारकै रसायनं यद्वदुपासितंरुजः ।।४५।।

इसलिये गुरु के पास से वेदांतवाक्यों के द्वारा जिसको मननपूर्वक विद्या का ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव हो गया हो ऐसा पुरुष अपने आत्मा में स्थित उपाधिरहित अपनी आत्मा को साक्षात्कार करके आत्मा में भ्रांति से उत्पन्न होनेवाले सब देह इन्द्रिय आदि जड़ वर्ग को त्याग* दे।।४२।। (अब दो श्लोकों से उपाधिरहित आत्मस्वरूप का वर्णन करते हैं) हे लक्ष्मण! वेदांती ज्ञान पुरुष अपने हृदय में सदा ऐसे भावना करें कि मैं प्रकाशरूप, जन्मादि विकाररहित, और असकृद्विभात कहिये सूर्यादि से प्रकाशि** नहीं होनेवाला, अत्यंत निर्मल, विशुद्ध चैतन्य स्वरूप एकरस निरामय अर्थात्

---

*एक पण्डितजी कहीं से कथा बांचकर चढा चढाया माल लिये आ रहे थे राह में एक उच्च का बनियां मिला कहा महाराज! मेर घर भी कथा बांचने चलो पंडितजी ने कहा चलो यह कह साथ हो लिये। बनियां उसको घर ले गया और वहां जाकर उन्हें ताले में बन्द कर दिया, बड़ी देर हो गई बिचारे पण्डितजी भूख के मारे मरने लगे बनिये ने कहा मुझे सब माल देने कहो तो मैं खोलूं पण्डितजी ने कहा तेरे कोई है कि नहीं उसने कहा मेरे भाई के माँ बाप सब है पं० जी ने कहा हम कोठरी में बन्द है भाग तो सकते नहीं खैर माल भी हम दे देंगे परन्तु तू अपने कुटुम्बियों से यह तो पूछ आ कि मैं जो चोरी और लूट मारकर माल लाता हूं तुव उसके खाने के संगी ही हो या जो पाप पड़ता है उसके भी साथी हो बनियें ने सबसे पूछा सबने कहा कि हम को खाने के ही साथी है पाप के साथी नहीं। उसने आकर सब हाल पंडितजी से कहा। पण्डितजी बोले–तेरी अकेली जान है उसके लिए तू ब्राह्मणों को सतावे है तेरी नरक में क्या गति होगी। यह लूटमार छोड़ दे तो क्या भगवान् तुझे खाने को न दें। इस उपदेश से उसके चित्त में ऐसा ज्ञान हुआ कि सबको त्याग वैराग ग्रहण कर भगवान् का भजन करने लगा और उसे भोजन की कुछ कमी नहीं रही।

**'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्' परमात्मा मे सूर्य, चन्द्र और तारागण प्रकाश नहीं कर सकते।

कर्तृत्व आदि अहकाररहित संपूर्ण कहिये देशकालादि परिच्छेद रहित आनन्दमय और क्रियारहित*** रहित हूं।।४३।। मैं सदा मुक्त हूं, अचिंत्यशक्तिवान्**** इन्द्रियों से रहित ज्ञानरूप, अविक्रिय अर्थात् विकाररहित, अनंत और अपार हूं।।४४।। और हे लक्ष्मण! इस प्रकार सदा एकाग्रचित्त से आत्मा का ध्यान करते हुए पुरुष के अंतःकरण में ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होती है और वह अनेक जन्मों को देनेवाले कर्मो सहित अविद्या को शीघ्र ऐसे नाश कर देती है कि जैसे सेवन की हुई औषधि रोगों को नाश कर देती है।।४५।।

विविक्त आसीन उपातेन्द्रियोविनिर्जितात्माविमलान्तराशयः ।। विभावयेदेकमनन्यसाधनो विज्ञानदृक्केवलआत्मसंस्थितः ।।४६।। विश्वंयदेतत्परमात्मदर्शनं विलापयेदात्मनिसर्वकारणे ।। पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठतेन वेदबाह्यंनचकिञ्चिदान्तरम् ।।४७।। पूर्वंसमाधेरखिलंविचिन्तयेदोंकारमात्रंसचराचरंजगत् ।। तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचको विभाव्यतेज्ञानवशान्नबोधतः ।।४८।। अकारसंज्ञः पुरुषोहिविश्वकोह्युकारकस्तैजसईर्यतेक्रमात् ।। प्राज्ञोमकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधि पूर्वंनतुतत्त्वतोभवेत् ।।४९।। विश्वंत्वकारं-पुरुषंविलापयेदुकारमध्येबहुधाव्यवस्थितम् ।। ततोमकारप्रविलाप्यतैजसेद्वितीयवर्णप्रणवस्य चान्तिमे ।।५०।। मकारमप्यात्मनिचिद्घनेपरेविलापयेत्प्राज्ञमपीहकारणम् ।। सोऽहंपरंब्रह्मसदाविमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्तउपाधितोऽमलः ।।५१।।

निर्जन स्थान में यथोचित आसन लगाकर शम दम आदि से युक्त, अंतःकरण को वश में करके और विशुद्ध चित्त विज्ञान की भावना करके अन्य सब साधनों को त्याग दे और संगरहित पुरुष केवल आत्मा में ही स्थित होकर अर्थात् और विषयों से चित्त को हटाकर ध्यान करे।।४६।। परमात्मा जिसका प्रकाशन है, ऐसे विश्व को जब वह सबके कारण आत्मा में लय कर दे अर्थात् कारण से भिन्न कार्य को न देखे तब वह पूर्ण चिदानन्दरूप होकर स्थित होता है और उसे

***'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' यह आत्मा नित्य अजन्मा शाश्वत और पुरातन है और शरीर के नष्ट होने पर इसका नाश नहीं होता।

****'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' मन से ध्यान और वाणी से जिसका वर्णन न हो सके।

बाहर भीतर की कुछ प्रतीति नहीं होती, सर्वत्र ब्रह्म ही दीखता है।।४७।। समाधि से पहिले सब चराचर जगत् को ओंकारमात्र चिंतन करे। सब जगत् वाच्य है और ओंकार वाचक है। यह भावना अज्ञान से होती है ज्ञान से नहीं।।४८।। अ-उ-म ये तीन अक्षण मिलकर ओं बना है इनमें अकार जिसका नाम है वह जागृत् (अवस्था का साक्षी) पुरुष विश्व अर्थात् विराट् है और क्रम से उकार (स्वप्न अवस्था का साक्षी) हिरण्यगर्म है। तथा मकार (सुषुप्ति अवस्था का साक्षी) प्राज्ञ मायोपाधिक ईश्वर है यह वेदों में कहा है। परंतु वह भिन्न भिन्न भावना समाधि के पहिले ही होती है, वास्तव में नही।।४९।। अनेक प्रकार से स्थित अकारवाच्य, विश्वपुरुष का उकार में लय करे अर्थात् उसे उकाररूप जाने, फिर उकार के वाच्य, हिरण्यगर्भ का ओंकार के अंतिम अक्षक्ष मकार में लय करे अर्थात् उसे मकार का रूप जाने, फिर मकार के वाच्य, ईश्वररूप प्राज्ञ का चैतन्यघन परमात्मा में लय करे अर्थात् उसे ब्रह्मरूप देखे, फिर उपाधिरहित, निर्मल, विज्ञानरूप, नित्यमुक्त परब्रह्म मैं हूं, ऐसी भावना करे।।५०।। इस भांति परमात्मा की पूर्ण भावना प्राप्त करके अपने आनन्द से संतुष्ट (पुत्र कलत्रादि) सबको भूलकर वह साक्षात् आत्मसुख का प्रकाशक जीवन्मुक्त हो समुद्र के समान अचल हो जाता है।।५१।।५२।।

एवंसदाजातपरात्मभावनः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः ।। आस्तेसनित्यात्मसुखप्रकाशकः साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ।।५२।। एवंसदाऽभ्यस्तसमाधियोगिनोनिवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्यहि ।। विनिर्जिताशेषरिपोरहंसदादृश्योभवेयंजितषड्गुणात्मनः ।।५३।। ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशंमुनिस्तिष्ठेत्सदामुक्तसमस्तबन्धनः ।। प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितोमय्येवसाक्षात्प्रविलीयते ततः ।।५४।। आदौचमध्ये चतथैवचान्ततोभवंविदित्वाभयशोककारणम् ।। हत्वासमस्तंविधिवादचोदितंभजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ।।५५।। आत्मन्यभेदेनविभावयन्निदं भवत्यभेदेनमयात्मनातदा ।। यथाजलंवारिनिधौयथापयःक्षीरेवियद्व्योम्न्यनिलेयथानिलः ।।५६।। इत्थंयदीक्षेतहिलोकसंस्थितोजगन्मृषैवेतिविभावयन्मुनिः ।। निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतोयथेन्दुभेदोदिशिदिग्भ्रमादयः ।।५७।। यावन्नपश्येदखिलंमदात्मकंतावन्मदाराधनतत्परोभवेत् ।। श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणोयस्तस्यदृश्योऽहमहर्निशंहृदि ।।५८।।

इस प्रकार जो सदा समाधि का अभ्यास करता है सब इंद्रियों के विषयों को त्याग देता है और (कामादिक) शत्रुओं को जीत लेता है तथा (१) सर्वज्ञ होना (२) नित्य तृप्त रहना (३) ज्ञानस्वरूप होना (४) स्वतंत्र होना (५) सब काल में रहना (६) और अनंतरूप होना, ये छः गुण जिसमें होंय, ऐसे योगी को मैं सदा दर्शन देता हूं।।५३।। इस भांति दिन रात आत्मा का ध्यान करके सब कर्मबन्धनों से मुक्त हुआ मुनि, अभिमानरहित होकर और प्रारब्धकर्मों को भोग चुकने के अनंतर साक्षात् मुझमें ही लय हो जाता है।।५४।। संसार को आदि मध्य और अंत में भय तथा शोक का कारण जानकर और वेद में कही हुई विधि के यमादि कर्मों को छोड़कर सब जीवों के स्वरूप परमात्मा का भजन करे।।५५।। सबका आत्मा मैं हूं, सो मेरे साथ आपका स्वरूप अर्थात् जीव की अभेद भाव से भावना करने पर वह मुझसे ऐसे अभिन्न हो जाता है (अर्थात् मेरा ही रूप हो जाता है) जैसे समुद्र में जल, दूध में पानी, आकाश में (घट आदि फूटने से) आकाश और पवन में पवन हो जाते हैं।।५६।। इस प्रकार लोकव्यवहार करता हुआ भी मुनि वेद तथा युक्ति के प्रमाणों के द्वारा संसार को आकाश में दो चन्द्रमाओं के तथा दिशाओं के घूमने के भ्रम के समान मिथ्या जानता है। तत्त्वज्ञान से संसार के कारण अज्ञान का नाश हो जाने से संसार का भ्रम दूर हो जाता है।।५७।। जब तक मुनि संसार को मेरा ही स्वरूप न देखे तब तक मेरी आराधना करे। जो श्रद्धालु है और जो मेरी अगाध भक्ति करता है, ऐसे भक्त को उसके हृदय में होकर मैं सदा दर्शन देता हूं।।५८।।

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहंमयाविनिश्चित्यतवोदितंप्रिय ।। यस्त्वेतदालोचयतीहबुद्धिमान्समुच्यतेपातकराशिभिः क्षणात् ।।५९।। भ्रातर्यदीदंपरिदृश्यतेजगन्मायैवसर्वंपरिहृत्यचेतसा ।। मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखीभवानन्दमयो निरामयः ।।६०।। यः सेवतेमामगुणं गुणात्परंहृदाकदावायदिवागुणात्मकम् ।। सोऽहंस्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृश्यन् पुनातिलोकत्रितयंतथारविः ।।६१।। विज्ञानमेतदखिलंश्रुतिसारमेकंवेदान्तवेद्यचरणेनमयैवगीतम् ।। यः श्रद्धायापरिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो मद्रूपमेतियदिमद्वचनेषुभक्तिः ।।६२।। इति श्रीमध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे श्रीरामगीतायां पञ्चमः सर्गः ।।५।।

हे प्रिय! यह मैंने सब वेदों के सार का एकत्र किया हुआ रहस्य तुमसे कहा है यह निश्चय जानना। जो बुद्धिमान्

इसका विचार करेगा वह क्षण भर में पापों स छूट जायगा।।५९।। हे भाई! यह जो सब जगत् दीखता है सो सब माया है, यह जान चित्त से सबको त्याग दो और मेरे ध्यान से अंतःकरण को शुद्ध करके और सब दुःखों से निवृत्त होकर आनन्दमय तथा सुखी हो जो पुरुष कभी अंतःकरण से मुझे निर्गुण गुणों से परे अथवा सगुण समझकर मेरी सेवा करता है वह मेरा ही स्वरूप हो जाता है और अपने चरणों में लगी हुई धूलि से स्पर्श कर, सूर्य के समान तीनों लोकों को पवित्र करता है।।६०।।६१।। जिसके कर्म वेदान्त से जानने योग्य है, ऐसे मैंने यह वेदों का सार अद्वितीय विज्ञान कहा है। जो कोई गुरु की भक्ति करके श्रद्धापूर्वक इसे पढ़ेगा और मेरे वचनों में विश्वास करेगा वह मेरे स्वरूप को पावेगा।।६२।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अध्यात्मरामायण के उत्तरकांड का पांचवां सर्ग समाप्त हुआ।।५।।

श्रीमहादेव उवाच ।। एकदामुनयः सर्वेयमुनातीरवासिनः ।। आजग्मूराघवंद्रष्टुंभयाल्लवणरक्षसः ।।१।। कृत्वाग्रेतुमुनिश्रेष्ठंभार्गवंच्यवनंद्विजाः ।। असंख्याताः समायातारामादभयकांक्षिणः ।।२।। तान्पूजयित्वापरं-याभक्त्यारघुकुलोत्तमः ।। उवाच मधुरंवाक्यं हर्षयन्मुनिमण्डलम् ।।३।। करवाणिमुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् ।। धन्योऽस्मियदियूयंमांप्रीत्याद्रष्टुमिहागतः ।।४।। दुष्करंचापियत्कार्यंभवतां तत्करो-म्यहम् ।। आज्ञापयन्तुमांभृत्यंब्राह्मणादैवतंहिमे ।।५।। तच्छ्रुत्वासहसाहृष्टश्च्यवनोवाक्यमब्रवीत् ।। मधुनाममहादैत्यः पुराकृतयुगेप्रभो ।।६।। आसीदतीवधर्मात्मादेवब्राह्मणपूजकः ।। तस्यतुष्टोमहादेवोददौ-शूलमनुत्तमम् ।।७।। प्राहचानेनयंहंसिसतुभस्मीभविष्यति ।। रावणस्यानुजाभार्यातस्यकुम्भीनसीश्रुता ।।८।। तस्यांतुलवणोनामराक्षसोभीमविक्रमः ।। आसीद्दुरात्मादुर्धर्षोदेवब्राह्मण हिंसकः ।।९।। पीडितास्तेनराजेन्द्रव-यंत्वांशरणंगताः ।। तच्छ्रुत्वाराघवोऽप्याहमाभीर्वोमुनिपुङ्गवाः ।।१०।। लवणंनाशयिष्यामि गच्छन्तुविगत-ज्वराः ।। इत्युक्त्वाप्राहरामोऽपिभ्रातॄन्कोवाहनिष्यति।।११।। लवणंराक्षसंदद्याद्ब्राह्मणेभ्योऽभयंहमत् ।। तच्छ्रुत्वा प्राञ्जलिः प्राहभरतोराघवायवै ।।१२।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! एक समय यमुनातट के निवासी सब मुनि लोग लवणासुर के भय से श्रीरामजी के दर्शन करने आये।।१।।। वे बहुत से मुनीश्वर रामजी से अभय पाने की इच्छा से भृगुजी के पुत्र मुनिश्रेष्ठ च्यवन ऋषि को

आगे करके भगवान् के पास आये॥२॥ रामजी बड़ी भक्ति से उनका पूजन सत्कार करके उन सब मुनियों को प्रसन्न करते हुए यह मधुर वचन बोले॥३॥ हे मुनिश्रेष्ठो! तुम्हारे आने का क्या कारण है? मैं आपका क्या कार्य करूं? मेरा धन्य भाग है जो तुम प्रीतिपूर्वक मेरे देखने के लिये यहां आये हो॥४॥ तुम्हारा कठिन से कठिन भी कार्य मैं करने को तैयार हूं, मुझ सेवक को आज्ञा दीजिये क्योंकि ब्राह्मण मेरे इष्टदेव हैं, इसमें सन्देह नहीं॥५॥ यह सुनकर च्यवनऋषि प्रसन्न हो तुरंत यह बात बोले कि हे प्रभो! पहिले सतयुग में मधुनाम एक बड़ा बली दैत्य था॥६॥ वह बड़ा धर्मात्मा और देवता तथा ब्राह्मणों का पूजक था, उसको शिवजी ने प्रसन्न होकर एक बड़ा दिव्य त्रिशूल दिया॥७॥ और उससे कह दिया कि इस त्रिशूल से तू जिस पर प्रहार करेगा वह भस्म हो जायगा। और रावण की छोटी बहिन कुंभीनसी नाम से प्रसिद्ध उसकी भार्या थी॥८॥ उस भार्या के एक बड़ा पराक्रमी दुष्ट किसी से मारा न मरे और देवता तथा ब्राह्मणों को मारनेवाला ऐसा लवणनामक राक्षस उत्पन्न हुआ॥९॥ हे राजेन्द्र! उस राक्षस से पीड़ित होकर हम सब आपकी शरण आये हैं। यह सुनकर रामजी ने कहा कि हे श्रेष्ठ मुनियो! अब तुम्हें भय नहीं रहेगा॥१०॥ तुम बेखटके होकर अपने आश्रम को पधारो, मैं लवणासुर का नाश करूंगा। यह कहकर रामजी ने अपने भैय्याओं से कहा कि तुममे से लवणासुर राक्षस को कौन मारेगा और ब्राह्मणों को बड़ा अभयदान देगा। यह सुनकर भरतजी ने हाथ जोड़कर रामजी से कहा कि॥११॥१२॥

अहमेवहनिष्यामिदेवज्ञापयमांप्रभो ॥ ततोरामंनमस्कृत्यशत्रुघ्नोवाक्यमब्रवीत् ॥१३॥ लक्ष्मणेनमहत्कार्यंकृतं राघवसंयुगे ॥ नंदिग्रामेमहाबुद्धिर्भरतोदुःखमन्वभूत् ॥१४॥ अहमेवगमिष्यामिलवणस्यवधायच ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठहन्यांतंराक्षसंयुधि ॥१५॥ तच्छ्रुत्वास्वांकमारोप्यशत्रुघ्नंशत्रुसूदनः ॥ प्राहाद्यैवाभि-षेक्ष्यामिमथुराराज्यकारणात् ॥१६॥ आनाय्यचसुसम्भाराँल्लक्ष्मणेनाभिषेचने ॥ अनिच्छन्तमपिस्नेहाद-भिषेकमकारयत् ॥१७॥ दत्त्वातस्मैशरंदिव्यंरामः शत्रुघ्नमब्रवीत् ॥ अनेनजहिबाणेनलवणंलोककण्टकम् ॥१८॥ सतुसम्पूज्यतच्छूलंगेहेगच्छतिकाननम् ॥ भक्षणार्थंतुजन्तूनांनानाप्राणिवधायच ॥१९॥ सतुनाया-

तिसदनंयावद्वनचरोभवेत् ॥ तावदेवपुरद्वारितिष्टत्वंधृतकार्मुकः ॥२०॥ योत्स्यतेसत्वयाक्रुद्धस्तदावध्योभविष्यति ॥ तंहत्वालवणंक्रूरंतद्वनंमधुसंज्ञितम् ॥२१॥ निवेश्यनगरंतत्रतिष्ठत्वंमेऽनुशासनात् ॥ अश्वानांपंचसाहस्त्रंरथानांचतदर्धकम् ॥२२॥ गजानांषट्शतानीहपत्तीनामयुतत्रयम् ॥ आगमिष्यतिपश्चात्त्वमग्रेसाधयराक्षसम् ॥२३॥ इत्युक्त्वामूर्ध्न्यवघ्रायप्रेषयामासराघवः ॥ शत्रुघ्नंमुनिभिः सार्धमाशीर्भिरभिनन्द्यच ॥२४॥

हे प्रभो! मैं ही इस राक्षस को मारूंगा, हे महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये। फिर शत्रुघ्नजी ने रामजी को प्रणाम करके कहा कि हे रामजी! लक्ष्मणजी ने तो आपके साथ रहकर संग्राम में बड़ा भारी काम किया है और महाबुद्धिमान् भरतजी ने भी नंदिग्राम में रहकर बड़ा दुःख सहा है॥१३॥१४॥ इसलिये लवणासुर के मारने के लिये मैं ही जाऊंगा। और हे रघुश्रेष्ठ! तुम्हारी कृपा से मैं उस राक्षस को युद्ध में मारे बिना नहीं छोडूंगा॥१५॥ यह सुनकर शत्रुनाशक रामजी ने शत्रुघ्नजी को अपनी गोद में बैठाकर कहा कि हे शत्रुघ्न! मथुरा का राज्य करने के लिये मैं अभी तुम्हारा राजतिलक करता हूं॥१६॥ यद्यपि शत्रुघ्नजी को राज्याभिषेक की इच्छा न थी तो भी भगवान् ने लक्ष्मणजी से राजतिलक की सामग्रियों को मँगवाकर स्नेहपूर्वक शत्रुघ्न का राजतिलक कर दिया॥१७॥ और रामजी ने एक दिव्य वाण देकर शत्रुघ्न से कहा कि तुम इस वाण से संसार के दुःखदाई लवणासुर को मारना॥१८॥ वह लवणासुर घर में उस त्रिशूल का पूजन करके जन्तु और अनेक प्राणियों को मारने के लिये वन में जाया करता है॥१९॥ वह जब तक वन में रहे और घर पर लौटकर न आवे तब तक तुम पुर के द्वार पर धनुष्य धारण करके बैठे रहना॥२०॥ वह क्रोध करके जब तुमसे युद्ध करेगा तब वह तुमसे मारा जायगा। सो तुम उस निष्ठुर लवणासुर को मारकर और उस वन को मधुपुरी नाम नगरी बसाकर मेरी आज्ञा से वहां निवास करो। और वहां पांच हजार घोड़े ढाई हजार रथ॥२१॥२२॥ छः सो हाथी और तीस हजार पैदल इतनी सेना तुम्हारे पीछे आवेगी, तुम आगे जाकर पहिले उस राक्षस को मारो॥२३॥ यह सुनकर रामजी ने उनका शिर सूंघा और आशीर्वाद सहित उत्साह बढ़ाकर उनको मुनियों के साथ बिदा किया॥२४॥

अ०रा०
५०८

शत्रुघ्नोपितथाचक्रेयथारामेणचोदितः ।। हत्वामधुसुतंयुद्धेमथुरामकरोत्पुरीम् ।।२५।। स्फीतांजनपदांचक्रे-मथुरांदानमानतः।। सीतापिसुषुवेपुत्रौद्वौवाल्मीकरथोश्रमे ।।२६।। मुनिस्तयोर्नामचक्रे कुशोज्येष्ठोऽनुजोलवः ।। क्रमेणविद्यांसम्पन्नौसीतापुत्रौबभूवतुः ।।२७।। उपनीतौचमुनिनावेदाध्ययनतत्परो ।। कृत्स्नंरामायणंप्राह काव्यंबालकयोर्मुनिः ।।२८।। शंकरेणपुरप्रोक्तंपार्वत्यैपुरहारिणाः ।। वेदोपबृंहणार्थायतावग्राहयतप्रभुः ।।२९।। कुमारौस्वरसम्पन्नोसुन्दरावश्विनाविव ।। तन्त्रीतालसमायुक्तौ गायन्तौचेरतुर्वने ।।३०।। तत्रतत्रमुनीनांतौसमाजेसुररूपिणौ ।। गायन्तावभितोदृष्ट्वाविस्मितामुनयोऽब्रुवन् ।।३१।। गन्धर्वेविष्व-किन्नरेषुभुविवादेवेषुदेवालयेपातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहेलोकेषुसर्वेषुच ।। अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरंदृष्ट्-वादिशः सर्वतोनाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमानादर्शिनाश्राविच ।।३२।। एवंस्तुर्द्धिरखिलैर्मुनिभिः प्रविवासरम् ।। आसातेसुखमेकान्तेवाल्मीकेराश्रमेचिरम् ।।३३।। अथरामोऽश्वमेधादींश्चकारबहुदक्षिणान् ।। यज्ञान्स्वर्ण-मयींसीतांविधायविपुलद्युतिः ।।३४।। तस्मिन्वितानेऋषयः सर्वेराजर्षयस्तथा ।। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः समाजग्मुर्दिदृक्षवः ।।३५।।

इधर शत्रुघ्नजी ने भी रामजी की आज्ञानुसार सब कार्य किया और युद्ध में लवणासुर को मारकर मथुरापुरी बसाई।।२५।। और दान मान से वहां लोगों को बसाकर उस मथुरापुरी को खूब चढ़ाया। उधर वाल्मीकिजी के आश्रम में सीताजी ने भी दो पुत्र जने।।२६।। मुनि ने उन दोनों पुत्रोंमें से बड़ेका नाम कुश और छोटे का नाम लव रखा। फिर सीताजी के पुत्र क्रम क्रम से सब विद्या पढ़कर पण्डित हो गये।।२७।।मुनिने उनका यज्ञोपवीत कर दिया और वे वेद पढ़ने लगे फिर मुनि ने उन दोनों बालकों को संपूर्ण रामायण की कथा पढ़ाई।।२८।। यह वही रामायण थी कि जिसे पूर्वकाल में महादेवजी ने पार्वतीजी को सुनाई थी। इसी को मुनि ने वेदों का अर्थ जानने के लिये कुश लव को सिखाई।।२९।। अश्विनी कुमार के समान सुन्दर वे दोनों कुमार वीणा की ताल से मिलाकर मधुर मधुर स्वर से उस रामायण को गाते हुए वन में विचरने लगे।।३०। देवताओं के समान रूपवान वे दोनों जहां तहां मुनियों के समाज में गाने लगे और चारों ओर से मुनिजन उनको देखकर बड़े अचंभे में आये और कहने लगे कि।।३१।। हमारी इतनी बड़ी

उमर हुई और हम बहुत काल तक सब दिशाएं देख मारी परंतु हमने न गंधर्वों में, न किन्नरों में, न पृथ्वीतल पर, न स्वर्ग में देवताओं में, न पाताललोक में और तो क्या सब लोकों में भी हमने ऐसा बढ़िया गाना बजाना न तो देखा न सुना।।३२।। इस प्रकार सब मुनि नित्य बड़ाई करने लगे और वे दोनों वाल्मीकिजी के एकान्त आश्रम में सुखपूर्वक रहा करें।।३३।। इसके उपरांत परमकान्तिमान् रामचंद्रजी ने सुवर्ण की सीताजी बनाकर अश्वमेध आदि यज्ञों का करना आरंभ किया और उनमें बहुत सी पुष्कल दक्षिणा बांटने की इच्छा की।।३४।। उस यज्ञ में ऋषि और राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब देखने की इच्छा से वहां देखने को आये।।३५।।

वाल्मीकिरपिसंगृह्यगायन्तौतौकुशीलवौ ।। जगामऋषिवांटस्यसमीपंमुनिपुङ्गवः ।।३६।। तत्रैकान्तेस्थितं-शान्तंरामाधिविरमेमुनिम् ।। कुशः पप्रच्छवाल्मीकिंज्ञानशास्त्रंकथान्तरे ।।३७।।भगवन्श्रोतुमिच्छामिसंक्षेपा-द्भवतोऽखिलम् ।। देहिनः संसृतिर्बंधः कथमुत्पद्यते दृढः ।।३८।। कथंविमुच्यतेदेहीदृढबंधाद्भवाभिधात् ।। वक्तुमर्हसिसर्वज्ञमह्यंशिष्यायतेमुने ।।३९।। वाल्मीकिरुवाच ।। शृणुवक्ष्यामितेसर्वंसंक्षेपाद्बंधमोक्षयोः ।। स्वरूपंसाधनंचापिमत्तः श्रुत्वा यथोदितम् ।।४०।। तथैवाचरभद्रंतेजीवन्मुक्तोभविष्यसि ।। देहएवमहागेहमदे-हस्यचिदात्मनः ।।४१।। तस्याहंकारएवास्मिन्मंत्रीतेनैवकल्पितः ।। देहगेहाभिमानंस्वंसमारोप्यचिदात्मनि ।।४२।। तेनतादात्म्यमापन्नः स्वचेष्टितमशेषतः ।। विदधातिचिदानंदेतद्वासि तवपुःस्वयम् ।।४३।।

मुनिराज वाल्मीकिजी भी रामायण के गानेवाले उन कुश और लव को साथ लेकर यज्ञ में जहां ऋषि लोग बैठे थे वहां पहुँचे ।।३६।। फिर वहां शास्त्र की चर्चा होने लगी सो कुश ने एकान्त में समाधि के अनंतर बैठे हुए शांत स्वरूप वाल्मीकि मुनि से एक ज्ञान के विषय की बात छेड़ दी कि हे भगवन्! मैं आपसे संपूर्ण ज्ञान शास्त्र संक्षेप से सुनना चाहता हूं कि प्राणी को संसाररूपी दृढ बन्धन किस प्रकार मिलता है।।३७।।३८।। और प्राणी किस प्रकार उस संसाररूपी दृढ़ बंधन से छूटता है। हे मुनिराज! आप सर्वज्ञ हो मैं तुम्हारा शिष्य हूं सो मुझसे वर्णन करिये।।३९।। वाल्मीकिजी बोले-हे कुश! मैं तेरे सामने बंधन और मोक्ष का स्वरूप और साधन सब संक्षेप से कहता हूं उसे मुझसे सुनो और सुनकर और जैसे मैं कहूं उसी रीति से चलो इससे तुम्हारा कल्याण होगा और तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे। देखो यों

समझो कि देहरहित चिद्रूप आत्मा का यह देह एक बड़ा घर है।।४०।।४१।। उस देह रूपी घर में आत्मा से कल्पित किया गया अहंकाररूपी मंत्री रहता है और वह देहरूपी घर 'मेरा' है, ऐसा अभिमान उस चैतन्यरूप आत्मा में आरोपण करके उस आत्मा के साथ अभेद रूप से मिल रहा है इसलिये अपना सब व्यापार चिद्रूप आत्मा में विधान करता है। (जो कहो कि अहंकार तो जड़ है वह चेष्टा कैसे करता है तहां कहते हैं कि) उस चिद्रूप आत्मा के संग से ही उसमें आप चेष्टा करने की सामर्थ्य हुई है।।४३।।

तेनसंकल्पितोदेही संकल्पनिगडावृतः ।। पुत्रदारगृहादीनिसङ्कल्पयतिचानिशम् ।।४४।। सङ्कल्पयन्स्वयंदेही-परिशोचतिसर्वदा।।त्रयस्तस्याहमोदेहा अधमोत्तममध्यमाः।।४५।।तमःसत्त्वरजः संज्ञा जगतः कारणंस्थितेः ।। तमोरूपाद्धिसंकल्पान्नित्यंतामसचेष्टया ।।४६।। अत्यन्तंतामसोभूत्वाकृमिकीटत्वमाप्नुयात् ।। सत्त्वरूपोहि-सङ्कल्पोधर्मज्ञानपरायणः ।।४७।। अदूरमोक्षसाम्राज्यः सुखरूपपोहितिष्ठति ।। रजोरूपोहिसङ्कल्पोलोकेस-व्यवहारवान् ।।४८।। परितिष्ठतिसंसारेपुत्रदारानुरञ्जितः ।। त्रिविधंतुपरित्यज्यरूपमेतन्महामते ।।४९।। सङ्कल्पः परमाप्नोतिपदमात्मपरिक्षये ।। दृष्टीः सर्वाः परित्यज्यनियम्यमनसामनः ।।५०।।सबाह्याभ्यन्तरार्थ-स्यसङ्कल्पस्यक्षयंकुरु ।। यदिवर्षसहस्राणितपश्चरसिदारुणम् ।।५१।। पातालस्थस्यभूस्थस्यस्वर्गस्थष्याऽ-पितेऽनघ ।। नान्यः कश्चिदुपायोऽस्तिसङ्कल्पोपशमादृते ।।५२।। अनाबाधेऽविकारेस्वेसुखेपरमपावने ।। सङ्कल्पोपशमेयत्नंपौरुषेणपरंकुरु ।।५३।। सङ्कल्पतन्तौ निखीलाभावाः प्रोक्ताः किलानघ ।। छिन्नेतन्तौन-जानीमः क्वयान्तिविभवाः पराः ।।५४।। निःसङ्कल्पोयथाप्राप्तव्यवहारपरोभव ।। क्षये सङ्कल्पजालस्य-जीवोब्रह्मत्वमाप्नुयात् ।।५५।। अधिगतपरमार्थतामुपेत्यप्रसभमपास्यविकल्पजालमुच्चैः ।। अधिगमयपदंतद द्वितीयंविततसुखाय सुषुप्तचित्तवृत्तिः ।।५६।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ।।६।।

फिर वह देह का अभिमान करनेवाला आत्मा संकल्परूपी बेड़ियों से बँधकर रात्रिदिन पुत्र, स्त्री घर आदि का संकल्प करता रहता है कि ये मेरे होयँ।।४४।। फिर वह देहाभिमानी आत्मा जिस पदार्थ को पाने को संकल्प करता है और वह

नहीं मिलता अथवा मिलकर नष्ट हो जाता है तो वह सदा शोक करता है और उस अहंकार के तीन देह हैं, अधम उत्तम और मध्यम।।४५।। उन तीनों का नाम तम सत्त्व और रजोगुण हैं और वे जगत् की स्थिति के कारण हैं। तिन में तमोगुण की प्रधानता से किये हुए संकल्प से पुरुष नित्य तामस चेष्टा से अर्थात् अज्ञान के बढ़ने से पशुओं के समान आचरण करके अत्यंत तामस हो कृमिकीट आदि योनियों को पाता है। और जब पुरुष सत्वगुणप्रधान संकल्प करता है तो धर्म और ज्ञान में लगा रहता है।।४६।।४७।। और समीप ही मोक्षरूपी चक्रवर्ती राज्य का सुख पाकर आनन्द से बैठता है। और जब रजोगुणप्रधान संकल्प करता है तब पुरुष लोकव्यवहार में बड़ा चतुर होता है।।४८।। और स्त्री पुत्रों के आनन्द में मग्न हो संसार में सुखी रहता है। और हे महामते! वह संकल्प करनेवाला अहंकार के इस तीन प्रकार के शरीर को त्यागकर संकल्परूप अपने स्वरूप का क्षय होने पर परम पद को पाता है इसलिये हे कुश! तुम सब इंद्रियों के विषय को छोड़कर अपने शुद्ध मन से विषयासक्त मन को जीतकर बाहर भीतर के पदार्थों के संकल्प का नाश करो और हे कुश! भले ही हजारों वर्ष तक कठिन तप करो, चाहे पाताल में जाकर रहो, चाहे भूमितल पर रहो, चाहे स्वर्ग में जाकर रहो परंतु संकल्प के नष्ट करने के सिवाय कोई दूसरा उपाय मोक्ष के लिये नहीं है।।४९–५२।। इसलिये दुःखरहित निर्विकार, परम पवित्र आत्मसुख पाने के लिये संकल्प के दूर करने में पुरुषार्थ से जहां तक हो यत्न करो।।५३।। और हे निष्पाप! ऐसा कहा है कि संसारी सब पदार्थ संकल्परूपी धागे में पूए हुए हैं और धागे के टूट जाने पर वे सब पदार्थ कहां जाते हैं अर्थात् सब नाश हो जाते हैं।।५४।। इसलिए संकल्परहित होकर देव इच्छा से जो व्यवहार मिले उसे करते रहो क्योंकि संकल्पजाल के क्षय होने पर जीव ब्रह्मभाव को पाता है।।५५।। और जीवब्रह्म की एकता को पाकर बड़े भारी संकल्पजाल को बल से त्याग दो और अपनी चित्त की वृत्ति को सुषुप्ति अवस्था के समान करके अर्थात् सब विषयों से हटाकर ब्रह्माकार में लगाकर निरंतर सुख पाने के लिए अद्वितीय पद को प्राप्त हो।।५६।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित उत्तरकांड का छठा सर्ग समाप्त हुआ।।६।।

श्रीमहादेव उवाच ।। वाल्मीकिनाबोधितोऽसौकुशः सद्योगतभ्रमः ।। अन्तर्मुक्तोबहिः सर्वमनुकुर्वंश्चचारसः ।।१।। वाल्मीकिरपितौप्राहसीतापुत्रौमहाधियौ ।। तत्रतत्रचगायन्तौपुरेवीथिषुसर्वतः ।।२।।रामस्याग्रेप्रगाये-

तांशुश्रूषुर्यदिराघवः ।। नग्राह्यंवैयुवाभ्यांतद्यदिकिंचित्प्रदास्यति ।।३।। इतितौचोदितौतत्रगायमानैविचेरतुः ।। यथोक्तंऋषिणापूर्वंतत्रतत्राभ्यगायताम् ।।४।।तांसशुश्रावककाकुत्स्थः पूर्वचर्यांततस्ततः ।। अपूर्वपाठजातिंच-गेयेनसमभिप्लुताम्।।५।। बालयोराघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् ।। अथकर्मान्तरेराजासमाहूयमहामुनीन् ।।६।। राज्ञश्चैवनरव्याघ्रः पण्डितांश्चैवनैगमान् ।। पौराणिकान्शब्दविदोयेचवृद्धाद्विजातयः ।।७।। एतान्सर्वान्समाहूयगायकौसंप्रवेशयत ।। तेसर्वेहृष्टमनसोराजानोब्राह्मणादयः ।।८।। रामंतौदारकौदृष्ट्वावि-स्मिताह्यनिमेषणाः ।। अवोचन्सर्वएवैतेपरस्परमथागताः ।।९।। इमौरामस्यसदृशौबिम्बाद्बिम्बमिवोदितौ ।। जटिलौयदिनस्यातांनचवल्कलधारिणौ ।।१०।। विशेषंनाधिगच्छामोराघवस्यानयोस्तदा ।। एवं संवदतां-तेषांविस्मितानांपरस्परम् ।।११।। उपचक्रमतुर्गातुंतावुभौमुनिदारकौ ।। ततः प्रवृत्तंमधुरंगान्धर्वमति-मानुषम् ।।१२।।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वती! जब वाल्मीकिजी ने कुश को इस प्रकार ज्ञानोपदेश दिया तब तो उसका सब भ्रम जाता रहा और वह भीतर तो मुक्त हो गया परंतु बाहर से वह संसारी मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगा।।१।। जानकीजी के महाबुद्धिमान् वे दोनों पुत्र पुर और गलियों में सब जगह गाते फिरते थे उससे वाल्मीकिजी ने कहा कि।।२।। जो श्रीरामजी की भी सुनने की इच्छा हो तो उनके सामने भी रामायण का गान करना, परंतु जो वे तुम दोनों को कुछ दें तो लेना मत।।३।। इस प्रकार जब मुनिराज ने कह दिया तो वे रामायण गाते हुए फिरने लगे और ऋषि ने जहां जहां पहिले बता दिया था तहां तहा उन्होंने अपना गाना सुनाया।।४।। इधर रामचन्द्रजी ने भी पुरवासियों से इधर उधर यह चर्चा सुनी कि दो बालकों को रामायण के गाने की अपूर्व रीति आती है।।५।। उन बालकों की बड़ाई सुनकर रामजी को बड़ा अचंभा हुआ और यज्ञकर्म के विश्राम के समय राजा रामचन्द्रजी ने बड़े बड़े मुनीश्वरों, राजाओं को बड़े बड़े लोगों को वेदशास्त्र के जाननेवाले पण्डितों को पुराण बांचनेवालों को और व्याकरण के ज्ञाताओं को और जो जो वृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य थे उन सबको बुलाकर फिर उन रामायण गानेवाले बालकों को बुलाकर सभा में बैठाया। उस समय राजा क्या और ब्राह्मण आदि क्या वे सबके सब जो आये थे, मन में बड़े प्रसन्न हुए और रामजी को और उन दोनों

बालकों को आश्चर्य से टिकटिकी बांधकर देख सब आपस में कहने लगे कि।।६–९।। इन दोनों बालकों की रामजी से ऐसी अनुहार मिलती है कि जैसे मानों सूर्य के बिम्ब से दूसरे बिम्ब उदय हुए हों और जो ये जटा बढ़ाये और छाल के वस्त्र पहिरे न होते तो।।१०।। रामजी में और इन दोनों में पहिचानना भारी पड़ जाता। इस प्रकार अंचभे में आकर आपस में कह सुन रहे थे कि इतने में दोनों मुनि कुमारों ने गाना आरंभ कर दिया और ऐसा मधुर गाना हुआ कि गंधर्व और मनुष्य सब मात हो गये। पहिले न किसी ने ऐसा गाया और न सुना।।११-१२।।

श्रुत्वातन्मधुरंगीतमपराह्णेरघूत्तमः ।। उवाच भरतंचाभ्यांदीयतामयुतंवसु ।।१३।। दीयमानंसुवर्णंतुनतज्जगृहतुस्तदा ।। किमनेनसुवर्णेनराजन्नौवन्यभोजनौ ।।१४।। इतिसन्त्यज्यसन्दत्तंजन्मतुर्मुनिसन्निधिम् ।। एवंश्रुत्वातुचरितंरामः स्वस्यैवविस्मितः ।।१५।। ज्ञात्वासीताकुमारौतौशत्रुघ्नंचेदमब्रवीत् ।। हनूमन्तंसुषेणंचबिभीषणमथाङ्गदम् ।।१६।। भगवन्तंमहात्मानं वाल्मीकिंमुनिसत्तमम्।। आनयध्वंमुनिवरंससीतंदेवसंमितम् ।।१७।। अस्यास्तुपार्षदोमध्येप्रत्ययंजनकात्मजा ।। करोतुशपथंसर्वेजानन्तुगतकल्मषाम् ।।१८।। सीतांतद्वचनं श्रुत्वागताःसर्वेऽतिविस्मिताः ।। ऊचुर्यथोक्तंरामेणवाल्मीकिंरामपार्षदाः ।।१९।। रामस्यहृद्गतंसर्वंज्ञात्वावाल्मीकिरब्रवीत् ।। श्वःकरिष्यतिवैसीताशपथंजनसंसदि ।।२०।। योषितांपरमंदैवंपतिरेवनसंशयः ।। तच्छ्रुत्वासहसागत्वासर्वेप्रोचुर्मुनेर्वचः ।।२१।। राघवस्यापि रामोऽपिश्रुत्वामुनिवचस्तथा।। राजानोमुनयः सर्वेश्रृणुध्वमितिचाब्रवीत् ।।२२।। सीतायाः शपथंलोकाविजानन्तु शुभाशुभम् ।। इत्युक्ताराघवेणाथलोकाः सर्वेदिदृक्षवः ।।२३।। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चैवमहर्षयः ।। वानराश्चसमाजग्मुः कौतूहलसमन्विताः ।।२४।।

रामजी ने उस मधुर गान को सुनकर तीसरे पहर भरतजी से कहा कि इन दोनों ऋषिकुमारों को दस हजार अशर्फियां दे दो।।१३।। जब भरतजी उन्हें अशर्फियां देने लगे तब उन्होंने नहीं ली और कहा कि हे राजन्! हम इन अशर्फियों को लेकर क्या करेंगे? हम तो वन के वासी कंदमूल के खानेवाले हैं।।१४।। और उस दिये हुए धन को त्यागकर दोनों मुनिजी के पास चले गये। इस प्रकार रामजी अपना चरित्र सुनकर बड़े अचरज में आये।।१५।। और उन दोनों को

सीताजी के पुत्र पहिचानकर शत्रुघ्न, हनुमान्, सुषेण, विभीषण और अंगद से बोले कि तुम भगवान्, महात्मा, मुनिश्रेष्ठ, देवताओं के समान मुनिराज वाल्मीकिजी को सीताजी सहित बुला लाओ।।१६।।१७।। जानकी इस सभा में आकर जो शपथ खाकर अपनी निर्दोषता का विश्वास दिलावेगी तो सब जान जायंगे कि सीता निष्पाप है। यह बात सुनकर सब लोगों को अत्यंत आश्चर्य हुआ। इधर रामजी के हनुमान् आदि पार्षदों ने रामजी का संदेशा वाल्मीकिजी को सुनाया।।१८।।१९।। रामजी के हृदय का सब आशय जानकर वाल्मीकिजी ने कहा कि जाओ रामजी से कह दो कि कल के दिन सीता लोगों की सभा में आकर सौगन्ध खाएगी।।२०।। पति ही स्त्रियों के इष्टदेव हैं, इसमें संदेह नहीं है। यह सुनकर सब तुरंत चले गये और जो कुछ मुनिराज ने कहा था सो रामजी को कह सुनाया।।२१।। रामजी ने शत्रुघ्न के द्वारा मुनि का यह वचन सुनकर यह कहा कि हे राजाओ! और हे मुनिजनो! और हे सब जनो! तुम लोग सुन लो।।२२।। कल सीता सौगन्ध खाएगी, उससे लोगों का चाहिये कि वे धर्म अधर्म का निर्णय कर लें। जब रामजी ने यह कहा तब तो सब लोग ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, बड़े बड़े ऋषि और वानर बड़े आश्चर्य से इस कौतुक को देखने की इच्छा से वहां आये।।२३।।२४।।

ततोमुनिवरस्तूर्णंससीतः समुपागमत् ।। अग्रतस्तमृषिंकृत्वायान्तीकिंचिदवाङ्मुखी ।।२५।। कृताञ्जलि-बाष्पकण्ठासीतायज्ञंविवेशतम् ।। दृष्ट्वालक्ष्मीमिवायान्तींब्रह्माणमनुयायिनीम् ।।२६।। वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतांसाधुवादोमहानभूत् ।। तदामध्येजनौघस्यप्रविश्यमुनिपुंगवः ।।२७।। सीतासहायोवाल्मीकि-रितिप्राहचराघवम् ।। इयंदाशरथेसीतासुव्रताधर्मचारिणी ।।२८।। अपापातेपुरात्यक्ताममाश्रमसमीपतः ।। लोकापवादभीतेनत्वयाराममहावने ।।२९।। प्रत्ययंदास्यतेसीतातदनुज्ञातुमर्हसि ।।इमौतुसीतातनयोविमौ-यमलजातकौ ।।३०।। सुतौतुतवदुर्धर्षौतथ्यमेतद्ब्रवीमिते ।। प्रचेतसोऽहंदशमः पुत्रोरघुकुलोद्वह ।।३१।। अनृतंनस्मराम्युक्तंयथेमौतवपुत्रकौ ।। बहून्वर्षगणान् सम्यक्तपश्चर्यामयाकृता ।।३२। नोपाश्नीयांफलंतस्या-दुष्टेयंयदिमैथिली ।।वाल्मीकिनैवमुक्तस्तुराघवः प्रत्यभाषत ।।३३।। एवमेतन्महाप्राज्ञयथावदसिसुव्रत ।। प्रत्ययोजनितोमह्यंतववाक्यैरकिल्विषैः ।।३४।। लङ्कायामपिदत्तोमेवैदेह्याप्रत्ययोमहान् ।। देवानांपुरतस्तेन

मन्दिरेसम्प्रवेशिता ॥३५॥

इतने में मुनिराज भी सीता को साथ लिये वहां आ पहुँचे। आगे आगे वाल्मीकिजी और पीछे पीछे नीचा मुख किये हाथ जोड़े, गद्गदकंठ हो सीताजी यज्ञशाला में आईं ब्रह्मा के पीछे पीछे आती हुई लक्ष्मी के समान उन सीताजी को वाल्मीकिजी के पीछे पीछे देखकर बड़ा भारी धन्य धन्य शब्द हुआ। उस समय सीतासहित मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने लोगों की भीड़ में घुसकर रामजी से यह कहा कि हे दशरथनन्दन! यह तुम्हारी सीता, पतिव्रता, धर्मचारिणी और निर्दोष है हे राम! तुमने पहिले इसे लोकापवाद के भय से महावन में मेरे आश्रम के पास छोड़ दी थी॥२५-२९॥ अब आप आज्ञा दीजिये यह सीता इस सभा में अपनी निर्दोषता का विश्वास दिलावेगी और ये दोनों एक साथ उत्पन्न हुए सीता के दोनों पुत्र हैं॥३०॥ और ये दोनों ऐसे महापराक्रमी है कि किसी से जीते न जायँ तुम्हारे ही पुत्र हैं यह मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूं क्योंकि हे रघुनाथजी! मैं प्रचेता का दशवां पुत्र हूं और कभी मिथ्या का स्मरण भी नहीं करता बोलना तो दूर रहा और मैंने जो कहा है कि ये तुम्हारे पुत्र हैं सो ठीक है। और मैंने अनेक वर्षों तक भूख प्यास त्यागकर तपस्या की है जो जानकी में कुछ भी दोष हो तो मुझे उस तपस्या का फल न मिले। जब वाल्मीकिजी ने यह कहा तब रामजी ने उत्तर दिया कि॥३१-३३॥ हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनिराज! जो कुछ तुम कहते हो सब सत्य है और तुम्हारी निर्दोष बातों से मुझे विश्वास हो गया॥३४॥ लंका में भी देवताओं के सामने इन्द्र आदि लोकपालों ने और अग्नि में मुझे सीता की निर्दोषता का विश्वास दिलाया था मैंने उसे महल में लाकर रखी थी॥३५॥

सेयंलोकभयाद्ब्रह्मन्नपापापिसतीपुरा ॥ सीतामयापरित्यक्ताभवांस्तत्क्षन्तुमर्हति ॥३६॥ ममैवजातौ जानामिपुत्रावेतौकुशीलवौ ॥ शुद्धायाजगतीमध्येसीतायाः प्रीतिरस्तुमे ॥३७॥ देवाः सर्वेपरिज्ञायरामाभि-प्रायमुत्सुकाः ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वासमाजग्मुः सहस्रशः ॥३८॥ प्रजाः समागमन्हृष्टाः सीताकौशेयवासिनी ॥ उदङ्मुखीह्यधोदृष्टिः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥३९॥ रामादन्यंयथाहंवैमनसापिनचिन्तये ॥ तथामेधरणीदेवीविवरंदातुमर्हति ॥४०॥ तथाशपन्त्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम् ॥ भूतलाद्दिव्य-मत्यर्थंसिंहासनमनुत्तमम् ॥४१॥ नागेन्द्रैर्ध्रियमाणंचदिव्यदेहैरविप्रभम् ॥ भूदेवीजानकींदोर्भ्यांगृहीत्वास्नेह-

संयुता ।।४२।। स्वागतंतामुवाचैनामासनेसंन्यवेशत् ।। सिंहासनस्थांवैदेहींप्रविशन्तींरसातलम् ।।४३।। निरन्तरापुष्पवृष्टिर्दिव्यासीतामवाकिरत् ।। साधुवादश्चसुमहान्देवानांपरमाद्भुतः ।।४४।।

और हे मुनिराज! यह सीता तो पहिले ही निर्दोष और पतिव्रता थी परन्तु क्या करूं लोगों के भय से मैंने उसे त्याग दी थी सो आप क्षमा करें।।३६।। और मैं यह भी जानता हूं कि ये दोनों कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं परन्तु इस लोक में शुद्ध सीता से मेरी प्रीति हो इसीलिये मैंने फिर से शपथ खाने के लिये कहा है।।३७।। इसके उपरान्त सब देवता रामजी का अभिप्राय जानकर ब्रह्माजी को आगे करके बड़ी उत्कंठा से वहां आये। और हजारों प्रजाजन भी प्रसन्न होते हुए आये और सीताजी रेशमी वस्त्र धारण किये, उत्तरदिशा की ओर मुख किये नीची दृष्टि कर भूमि को देखती हुई आईं और हाथ जोड़कर यह बात कहने लगीं कि ।।३८।।३९।। जो मैं रामजी को छोड़ किसी दूसरे को मन से चिंतन न करती होऊं तो पृथ्वी देवी फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं।।४०।। जब सीताजी ने यह सौंगध खाई तब अत्यंत आश्चर्यदायक और बड़ा दिव्य रत्नजटित सिंहासन पृथ्वी फटकर प्रकट हुआ।।४१।। और उस सूर्य के समान प्रकाशमान् सिंहासन को दिव्य शरीरधारी बड़े बड़े नाग अपने शिर पर धारण किये हुए थे। उस सिंहासन पर पृथ्वीदेवी विराजमान थीं उन्होंने बड़ी प्रीतिपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर उनका स्वागत किया और अपने सिंहासन पर बैठा लिया। और सीताजी को लेकर रसातल को चली गईं।।४२।।४३।। सीताजी के ऊपर आकाश से लगातार पुष्पों की बड़ी वर्षा हुई और देवताओं ने बड़े अचंभे में आकर बड़ा भारी धन्य धन्य कहकर साधुवाद किया।।४४।।

ऊचुश्चबहुधावाचोअन्तरिक्षगताः सुराः ।। अन्तरिक्षेचभूमौचसर्वेस्थावरजंगमाः ।।४५।। वानराश्चमहाकायाः सीताशपथकारणात् ।। केचिच्चिन्तापरास्तस्थुः केचिद्ध्यानपरायणाः ।।४६।। केचिद्रामंनिरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसः ।। मुहूर्तमात्रंतत्सर्वंतूष्णीम्भूतमचेतनम् ।।४७।। सीताप्रवेशनंदृष्ट्वासर्वंसंमोहितंजगत् ।। रामस्तुसर्वंज्ञात्वैवभविष्यत्कार्यगौरवम् ।।४८।। अजानन्निवदुःखेनशुशोचजनकात्मजाम् ।। ब्रह्मणाऋषिभिः सार्धंबोधितोरघुनन्दनः ।।४९।। प्रतिबुद्धइवस्वप्नाच्चकारानन्तराः क्रियाः ।। विससर्जऋषीन्सर्वानृत्विजोयेस-मागताः ।।५०।। तान्सर्वान्धनरत्नाद्यैस्तोषयामासभूरिशः ।। उपादायकुमारौतावयोध्यामगमत्प्रभुः ।।५१।।

अ०रा०
५१७

तदादिनिस्पृहोरामः सर्वभोगेषुसर्वदा ।। आत्मचिंतापरोनित्यमेकान्तेसमुपस्थितः।।५२।।एकान्तेध्याननिरते-एकदाराघवे सति ।। ज्ञात्वातारायणंसाक्षात्कौसल्याप्रियवादिनी ।।५३।। भक्त्यागत्यप्रसन्नंतंप्रणताप्राह-हृष्टधीः ।। रामत्वंजगतामादिरादिमध्यान्तवर्जितः ।।५४।। परमात्मापरानंदः पूर्णः पुरुषईश्वरः ।। जातोऽसिमेगर्भगृहेममपुण्यातिरेकतः ।।५५।।

आकाश में देवता और आकाश तथा पृथ्वी पर के सब स्थावर जंगम और बड़े बड़े शरीरधारी वानर सीताजी के सौंगध खाने से आपस में भांति भांति की बातें करने लगे (कि रामजी ने यह क्या किया कि सीताजी को हाथ से खो बैठे। वे तो पहिले ही शुद्ध हो चुकीं थी अब फिर सौंगध खिलाने से क्या काम था इत्यादि) और कितने ही उनकी चिन्ता में मगन हो गये और कितने ही उनके ध्यान में लौ लीन हो गये।।४५।।४६।। कितने ही रामजी की ओर देखने लगे कितने ही सीता को न देख बेहोश हो गये इस प्रकार दो घड़ी तक वहां सब जगत् जड़ के समान हो गया और चारों ओर सन्नाटा छा गया।।४७।। सीताजी का पृथ्वी में प्रवेश सब जगत् मोहित हो गया और रामजी होनेवाले कार्य की सब गुरुता को जानबूझकर भी ।।४८।। जानकीजी के दुःख से इस प्रकार शोक करने लगे जैसे कोई अनजान पुरुष करता हो फिर ऋषियों सहित ब्रह्माजीने रामजी को बहुत समझाया बुझाया।।४९।। तब रामजी ऐसे हो गये जैसे कोई सो कर जगा हो और यज्ञ का शेष कर्म समाप्त किया। फिर सब ऋषियों को और सब यज्ञ करानेवालों को जो आये थे उनको बहुत बहुत से धन रत्न आदि दक्षिणा में देकर और परम संतुष्ट कर बिदा किया, और अपने दोनों पुत्रों को लेकर भगवान् अयोध्या में आये।।५०।।५१।। उन दिन से सदा के लिये सब प्रकार के भोगों से अपने मन को खींच बैठे और नित्य एकांत में बैठकर अध्यात्म विचार में लग गये।।५२।। एक समय रघुनाथजी एकांत में जब अपने ध्यान में मग्न थे तब प्रिय बोलनेवाली कौसल्या उनको साक्षात् नारायण जानकर आई और भगवान् को प्रसन्न देख भक्ति से उनको प्रणाम किया और मन में प्रसन्न हो बोली कि हे राम! तुम सब जगत् के आदि कारण और आदि मध्य अंत्य रहित हो।।५३।।५४।। तुम सबके अंतर्यामी परमानंदस्वरूप, पूर्ण पुरुष और ईश्वर हो और मेरे बड़े पुण्यप्रताप से मेरी कोख से उत्पन्न हुए हो।।५५।।

उ०का०
सर्ग
७

अवसानेममाप्यद्यसमयोऽभूद्रघूत्तम ।। नाद्याप्यबोधजः कृत्स्नोभवबन्धोनिवर्तते ।।५६।इदानीमपिमेज्ञानंभव-बन्धनिवर्तकम् ।। यथासंक्षेपतोभूयात्तथाबोधयमां विभो। ।।५७।। निर्वेदवादिनीमेवंमातरंमातृवत्सलः ।। दयालुः प्राहधर्मात्माजराजर्जरितांशुभाम् ।।५८।। मार्गास्त्रोमयाप्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधकः ।। कर्मयोगोज्ञानयोगोभक्तियोगश्चः शाश्वतः ।।५९।। भक्तिर्विभिद्यतेमातस्त्रिविधागुणभेदतः ।। स्वभावोयस्य-यस्तेन तस्यभक्तिर्विभिद्यते ।।६०।। यस्तुहिंसांसमुद्दिश्यदम्भंमात्सर्यमेववा ।। भेददृष्टिश्च संरम्भीभक्तोमे-तामसःस्मृतः।।६१।।फलाभिसंधिर्भोगार्थीधनकामोयशस्तथा।। अर्चादौभेदबुद्ध्यामांपूजयेत्सतुराजसः।६२।

और हे राम! इस वृद्धावस्था में आज मुझे तुमसे कुछ प्रश्न करने का समय मिला है और अभी तक अज्ञान से उत्पन्न हुआ मेरा संसार बंधन दूर नहीं हुआ।।५६।। हे प्रभो! अब भी तुम मुझे संक्षेप रीति से ऐसा ज्ञानोपदेश दो जिससे मेरा संसार बंधन छूट जाय।।५७।। परम कृपालु मातृभक्त धर्मात्मा रामजी अपना दुःख कहती हुई निष्पाप अपनी वृद्धा माता से यह बोले कि ।।५८।। हे माता! मैंने पहिले कर्मयोग ज्ञानयोग और निरंतर भक्तियोग ये तीन मार्ग मोक्ष प्राप्ति के साधन वर्णन किये हैं।।५९।। और हे माता! भक्ति के अलग २ तीन गुण होने से वह तीन प्रकार की है सो जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी वैसी ही भक्ति होती है।।६०।। जो पुरुष हिंसा, दम्भ (कहिये धनादि प्राप्ति लोकसत्कार) मात्सर्य (कहिये अन्य पुरुष की बढ़ती न सहना) और भेद (कहिये शत्रुमित्रादि दृष्टि) और संरम्भ (कहिये क्रोधवश, वा आग्रहवश होना) इन बातों के विचार से जो मेरी भक्ति करता है वह मेरा तामसभक्त कहा गया है और उसकी भक्ति भी तामसी हुई।।६१।। जो कोई स्वर्ग राज्यादि फल की इच्छा से वा इस लोक में इंद्रियभोग की इच्छा से वा धन तथा यश की कामना से, मेरी प्रतिमा के पूजन आदि में भेदबुद्धि से अर्थात् उपास्य उपासक भाव से मेरा पूजन करता है वह राजसभक्त कहाता है और उसकी राजसी भक्ति है।।६२।।

परस्मिन्नर्पितंयस्तुकर्मनिर्हरणायवा ।। कर्तव्यमितिवाकुर्याद्भेदबुद्ध्यासससात्विकः ।।६३।।मद्‌गुणाश्रयणादेव-मय्यनन्तगुणालये ।। अविच्छिन्नामनोवृत्तिर्यथागङ्गाम्बुनोऽम्बुधौ ।। तदेव भक्तियोगस्यलक्षणंनिर्गुणस्यहि ।।६४।। अहैतुक्यव्यवहितायाभक्तिर्मयिजायते ।। सामेसालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेववा ।।६५।।

ददात्यपिनगृह्णन्तिभक्तामत्सेवनंविना ।। सएवात्यन्तिकोयोगोभक्तिमार्गस्यभामिनी ।।६६।।मद्भवंप्राप्नुयात्ते-नअतिक्रम्यगुणत्रयम् ।। महताकामहीनेनस्वधर्माचरणेनच ।।६७।। कर्मयोगेनशस्तेनवर्जितेनविहिंसनम् ।। मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः ।।६८।। भूतेषुमद्भावनयासङ्गेनासत्यवर्जनैः।। बहुमानेनमहतांदुखिः-नामनुकम्पया ।।६९।। स्वसमानेषुमैत्र्याचयमादीनांनिषेवया ।। वेदान्तवाक्यश्रवणान्ममनामानुकीर्तनात् ।।७०।। सत्सङ्गेनार्जवेणैवह्यहमः परिवर्जनात् ।। कांक्षयाममधर्मस्यपरिशुद्धान्तरोजनः ।।७१।। मद्गुणश्रवणादेवयातिमामञ्जसाजनः ।। यथावायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद् घ्राणमाविशेत् ।।७२।।

और पुरुष जो कर्म करे सब परमात्मा के अर्थ अर्पण करके करे और संसारबन्धन से छूटने के लिये भगवान् का भजन हमको करना चाहिये ऐसा मन में विचारकर जो दास स्वामीभाव से मेरा पूजन करता है वह सात्त्विक भक्त है और उसकी सात्त्विक भक्ति है।।६३।। और हे माता! मेरे गुणों के सुनते ही मुझे अनंत गुणों के स्थान में मन की वृत्ति निरंतर ऐसे लग जाती है कि जैसे गंगा का जल प्रवाह समुद्र से मिलता है वह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है।।६४।। और हे माता! किसी प्रकार के फल की लालसा न करके जो मुझमें लगातार भक्ति की जाती है वह भक्ति सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य इन चार प्रकार की मुक्ति देनेवाली है।।६५।। इसी भक्ति के योग से प्राणी तीनों गुणों का उल्लंघन करके मेरे भाव को पाता है (अब भक्तियों के साधन कहते हैं) बड़े भारी फलप्राप्ति के मनोरथ का त्यागना और अपने धर्म का आचरण करना यही हुआ हिंसारहित और उत्तम कर्मयोग इससे और मेरी सगुणमूर्ति के दर्शन से स्तुति और षोडशोपचार पूजन से मेरे स्मरण और प्रणाम से और सब प्राणियों में मेरी भावना से और भक्तों के संग से और असत्य के त्याग से और महात्मा पुरुषों का सन्मान करने से और दुःखी पुरुषों पर दया करने से ।।६६-६९।। और अपने समानवालों के साथ मित्रता करने से यम नियम का सेवन करने से वेदांत वाक्यों के सुनने से और मेरे नाम का कीर्तन करने से।।७०।। संतों के सत्संग से, कोमल स्वभाव से, अहंकार के त्याग से और मेरे भगवद्धर्ममें इच्छा करने से, शुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष मेरे गुणों को सुनकर तत्काल मुझे इस प्रकार पाता है जैसे वायु के वेग से कमल आदि की सुगंध उड़कर अपने आप नाक में जाती है।।७१।।७२।।

योगाभ्यासरतंचित्तमेवमात्मानमाविशेत्।। सर्वेषुप्राणिजातेषुह्यहमात्माव्यवस्थितः।।७३।। तमज्ञात्वाविमूढा-
त्माकुरुतेकेवलंबहिः ।। क्रियोत्पन्नेर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मेनाम्बतोषणम् ।।७४।। भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहंन
पूजितः ।।७५।। तावन्मामर्चयेद्देवंप्रतिमादौस्वकर्मभिः ।। यावत्सर्वेषुभूतेषुस्थितंचात्मनि नस्मरेत् ।।७६।।
यस्तुभेदंप्रकुरुतेस्वात्मनश्चपरस्यच ।। भिन्नदृष्टेर्भयंमृत्युस्तस्यकुर्यान्नसंशयः ।।७७।। मामतः सर्वभूतेषुपरि-
च्छिन्नेषु संस्थितम् । एकंज्ञानेनमानेन मैत्र्याचार्चेदभिन्नधीः ।।७८।। चेतसैवानिशंसर्वभूतानिप्रणमेत्सुधीः ।।
ज्ञात्वामांचेतनंशुद्धंजीवरूपेण संस्थितम् ।।७९।। तस्मात्कदाचिन्नेक्षेतभेदमीश्वरजीवयोः।। भक्तियोगोज्ञानयो-
गोमयामातरुदीरितः ।।८०।। आलम्ब्यैकतरंवापि पुरुषः शममृच्छति ।। ततोमांभक्तियोगेनमातः
सर्वहृदिस्थितम् ।।८१।। पुत्ररूपेणवानित्यंस्मृत्वाशान्तिवाप्स्यसि ।। श्रुत्वारामस्य वचनंकौसल्यानन्दसंयुता
।।८२।। रामंसदाहृदिध्यात्वाछित्त्वासंसारबन्धनम् ।। अतिक्रम्यगतीस्तिस्रोऽप्यवापपरमांगतिम् ।।८३।।

इसी प्रकार योगाभ्यास में लगा हुआ चित्त भी आत्मा में जा लगता है और हे माता! सब प्राणियों में मैं ही आत्मरूप से स्थित हूं।।७३।। और जो पुरुष विमूढात्मा कहिये देहबुद्धि से प्राणियों में द्वेष करनेवाला मेरे आत्मस्वरूप को न जानकर केवल बाहर के लिये अनेक तरह के गंधपुष्पादि द्रव्यों से मेरा भक्तिरहित हो मेरी मूर्ति में पूजन करता है हे माता! मैं उससे संतुष्ट नहीं होता हूं।।७४।। और जो पुरुष प्राणियों का अपमान करके मेरा पूजन करता है वह नहीं पूजने के समान है।।७५।। इसलिये जब तक सब प्राणियों में और अपने में मुझे स्थित जाने तब तक अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्रतिमा आदि में मुझ देवता का पूजन करे।।७६।। और जो अपने पराये में भेद मानता हूं ऐसे भेद दृष्टिवाले पुरुष को मैं मृत्यरूप होकर भय देता हूं इसमें सन्देह नहीं है।।७७।। और हे माता! इसलिये सब अलग अलग प्राणियों में मैं ही एक परमात्मारूप से स्थित हूं ऐसा जानकर सब प्राणियों का सन्मान और मित्रता से अभेदबुद्धि होकर मेरा पूजन करे।।७८।। और शुद्ध चैतन्यस्वरूप मैं ही जीवरूप से सब प्राणियों में स्थित हूं ऐसा अपने चित्त से जानकर सदा सब प्राणियों को प्रणाम करते रहे।।७९।। और जीव और ईश्वर में कदापि भेददृष्टि न करे। और हे माता! मैंने जो भक्तियोग और ज्ञानयोग कहा है।।८०।। इन दोनों में पुरुष एक के सहारे भी चले तो उसका कल्याण होता है। हे माता!

इस कारण भक्तियोग द्वारा सबके अंतःकरण में स्थित मुझे ईश्वर से अथवा पुत्ररूप से नित्य स्मरण करके तुझे शांति मिलेगी अर्थात् तू सब संसारी दुःखों से निवृत्त हो जायगी। रामजी का वचन सुनकर कौशल्या बड़ी प्रसन्न हुई॥८१॥८२॥ और राम का सदा ध्यान करने से वह कौशल्या संसारबंधन को काटकर और सात्त्विकी राजसी और तामसी तीन गतियों को लांघकर मोक्ष को प्राप्त हो गई॥८३॥

कैकेयीचापियोगंरघुपतिगदितंपूर्वमेवाधिगम्यश्रद्धाभक्तिप्रशान्ताहृदिरघुतिलकंभावयन्तीगतासुः॥ गत्वास्वर्गंस्फुरन्तीदशरथसहितामोदमानावतस्थेमाताश्रीलक्ष्मणस्याप्यतिविमलमतिः प्रापभर्तुः समीपम् ॥८४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकाण्डे मातॄणांस्वर्गप्रस्थानंनामसप्तमः सर्गः ॥७॥

और कैकेई ने भी पहिले जो रामजी के चित्रकूट पर उससे योग कहा था उसके अनुसार श्रद्धा और भक्ति से शांत होकर हृदय में रामजी का ध्यान करते करते अपने प्राण छोड़ दिये। और वह प्रकाश करती हुई स्वर्ग में जाकर प्रसन्न होती हुई राजा दशरथ के साथ रहने लगी और अत्यन्त निर्मल बुद्धि लक्ष्मणजी की माता भी अपने भर्त्ता के पास पहुँच गई॥८४॥

इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित उत्तरकांड का सातवां सर्ग समाप्त हुआ॥७॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ अथकालेगतेकस्मिन्भरतोभीमविक्रमः ॥ युधाजितामातुलेनह्याहूतोऽगात्ससैनिकः ॥१॥ रामाज्ञयागतास्तत्रहत्वागन्धर्वनायकान् ॥ तिस्रः कोटीः पुरेद्वेतुनिवेश्यरघुनन्दनः ॥२॥ पुष्करंपुष्करात्वत्यांतक्षंतक्षशिलाह्वये ॥ अभिषिच्यसुतौतत्रधनधान्यसुहृद्वृतौ॥३॥ पुनरागत्यभरतोरामसेवापरोऽभवत् ॥ ततः प्रीतोरघुश्रेष्ठोलक्ष्मणंप्राहसादरम् ॥४॥ उभौकुमारौसौमित्रेगृहीत्वापश्चिमांदिशम् ॥ तत्रभिल्लान्विनिर्जित्यदुष्टान्सर्वापकारिणः ॥५॥ अङ्गदश्चित्रकेतुश्च महासत्वपराक्रमौ॥ द्वयोर्द्वेनगरेकृत्वागजाश्वधनरत्नकैः ॥६॥ अभिषिच्यसुतौतत्रशीघ्रमागच्छमांपुनः रामस्याज्ञांपुरस्कृत्यगजाश्वबलवाहनः ॥७॥ गत्वाहत्वारिपुन्सर्वान्स्थापयित्वाकुमारकौ ॥ सौमित्रिः पुनरागत्यरामसेवापरोऽभवत् ॥८॥ ततस्तुकालेमहतिप्रयातेरामंसदाधर्मपथेस्थितंहरिम् ॥ द्रष्टुंसमागादृषिवेषधारीकालस्ततोलक्ष्मणमित्युवाच ॥९॥ निवेदयस्वातिबलस्यदूतंमांद्रष्टुकामंपुरुषोत्तमाय ॥ रामायविज्ञापनमस्तितस्यमहर्षिमुख्यचिराय-

धीमन् ॥१०॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासौमित्रिस्त्वरयान्वितः ॥ आचक्षेऽथरामायससंप्राप्तंतपोधनम् ॥११॥ एवंब्रुवन्तंप्रोवाचलक्ष्मणंराघवोवचः ॥ शीघ्रंप्रवेश्यतांतातमुनिः सत्कारपूर्वकम् ॥१२॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! इसके पीछे जब कुछ काल बीत गया तब महापराक्रमी भरतजी को उनके मामा युधाजित् ने बुलाया और वह सेनासहित वहां गये॥१॥ और वहां पहुँचकर रामजी की आज्ञा से तीन करोड़ गंधर्वों के नायकों को मारकर भरजी ने दो पुरी बसाईं॥२॥ एक पुष्करावती और दूसरी तक्षशिला। और पुष्करावती में पुष्कर का और तक्षशिला में तक्ष का राजतिलक करके उन दोनों पुत्रों को धन धान्य और मित्रों से परिपूर्ण कर दिया॥३॥ और भरतजी वहां से लौटकर फिर रामजी की सेवा में आ लगे। इसके अनंतर एक दिन रामजी ने प्रसन्न होकर लक्ष्मणजी से आदरपूर्वक कहा कि ॥४॥ हे लक्ष्मण! तुम अपने दोनों पुत्रों को पश्चिम दिशा को ले जाओ और सबको दुःख देनेवाले दुष्ट भीलों को जीतकर तहां दो नगर बसाओ और हाथी, घोड़े, धन, और रत्नों से अपने महाबली और पराक्रमी दोनों पुत्रों का वहां राजतिलक करके शीघ्र मेरे पास लौट आओ। लक्ष्मणजी रामजी की आज्ञा को शिर धरके हाथी घोड़े आदि सेना को साथ लेकर वहां गये और सब शत्रुओं को मारकर और दोनों पुत्रों को राजगद्दी पर बैठाकर लौट आये और रामजी की सेवा करने लगे॥५-८॥ इसके अनंतर जब बहुत काल बीत गया तब सदा अपने धर्म पर आरूढ ऐसे भगवान् रामजी के दर्शन के लिये ऋषि का वेश धारण करके काल आया और लक्ष्मणजी से यह बोला कि ॥९॥ हे बुद्धिमान् लक्ष्मण! तुम रामजी के पास जाकर मेरी खबर कर दो अतिबल ऋषि का दूत आप पुरुषोत्तम का दर्शन करने आया है। मुझे रामजी से उन मुख्य महर्षि का संदेसा देर तक कहना है॥१०॥ उस काल का यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने शीघ्र रामचन्द्रजी से कहा कि प्रभो आपका दर्शन करने के लिये एक तपस्वी आये हैं ऐसा कहने पर रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि हे प्यारे! मुनि को सत्कारपूर्वक शीघ्र भीतर लिवा लाओ॥११॥१२॥

लक्ष्मणस्तुतथेत्युक्त्वाप्रावेशयततापसम् ॥ स्वतेजसाज्वलन्तंतंघृतसिक्तंयथानलम् ॥१३॥ सोऽभिगम्यरघुश्रेष्ठं दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ मुनिर्मधुरवाक्येनवर्धस्वेत्याहराघवम् ॥१४॥ तस्मैसमुनयेरामः पूजांकृत्वायथाविधि

।। पृष्ट्वानामयव्यग्रोरामः पृष्टोऽथतेनसः ।।१५।। दिव्यासनेसमासीनोरामः प्रोवाचतापसम् ।।
यदर्थमागतोऽसित्वमिहतत्प्रापयस्वमे ।।१६।। वाक्येनचोदितस्तेनरामेणाहमुनिर्वचः द्वन्द्वमेवप्रयोक्तव्यमना-
लक्ष्यंतुतद्वचः ।।१७।। नान्येनचैतच्छ्रोतव्यंनाख्यातव्यंचकस्यचित्।।शृणुयाद्वानिरीक्षेद्वायःसवध्यस्त्वयाप्रभो
।।१८।। तथेतिचप्रतिज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ।। तिष्ठत्वंद्वारिसौमित्रेनायात्वत्रजनोरहः।।१९।।यद्यागच्छति
कोवापिसवध्योमेनसंशयः ।। ततः प्राहमुनिंरामोयेनवात्वंविसर्जितः ।।२०।। यत्तेमनीषितंवाक्यंतद्वदस्वममा
ग्रतः ।। ततः प्राहमुनिर्वाक्यंशृणुरामयथातथम् ।।२१।। ब्रह्मणाप्रेषितोऽस्मीशकार्यार्थेतेऽन्तिकंप्रभो ।।
अहंहिपूर्वजोदेवतवपुत्रः परन्तप ।।२२।। मायासङ्गमजोवीरकालः सर्वहरः स्मृतः ।। ब्रह्मात्वमाहभगवन्सर्वदे-
वर्षिपूजितः ।।२३।।

अपने तेज से दीप्यमान उस ऋषि ने रघुश्रेष्ठ रामजी को प्रणाम करके मधुर वाक्य से यह कहा कि आपका ऐश्वर्य बढ़े।।१४।। रामजी ने उन ऋषि की विधिपूर्वक पूजा करके उनकी कुशल पूछी और मुनि ने भी सावधान हो रामजी से कुशल क्षेम पूछी।।१५।। फिर परम सुन्दर आसन पर विराजमान होकर रामजी ने उन तपस्वी से पूछा कि तुम जिस कारण यहां आये सो कहो।।१६।। जब रामजी ने यह कहा तब वह मुनि बोला कि हे राम! आप और मैं दो ही जने हों तब मैं बात करूं क्योंकि यह बात तीसरे से सुनने योग्य नहीं है।।१७।। मेरी बात को न तो कोई सुने और न आप ही किसी से कहें हमारी बात को जो कोई सुनेगा अथवा छुपकर देखेगा, आपको उसको मारना पड़ेगा।।१८।। रामजी ने कहा–'बहुत अच्छा' और ऐसी प्रतिज्ञा करके लक्ष्मणजी से कहा कि हे लक्ष्मण! तुम द्वार पर बैठे रहो जिसमें कोई मनुष्य मेरे पास यहां एकांत में न आ पावे।।१९।। और जो कोई आवेगा वह मुझसे मार डाला जाएगा, इसमें सन्देह नहीं है फिर रामजी ने मुनि से कहा कि जिसने तुम्हें भेजा हो।।२०।। और जो तुम्हारे पास कहने के लिये संदेशा हो तो उसे मेरे सामने कहो। फिर मुनि ने कहा कि हे राम! मैं आपके सामने सत्य सत्य कहता हूं उसे सुनिये।।२१।। हे प्रभो! ब्रह्माजी ने मुझे आपके पास किसी कार्य के लिये भेजा है और हे देव! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूं और हे वीर! माया से आपका संगम हुआ था तब मैं उत्पन्न हुआ था, काल मेरा नाम है और हे परंतप! मैं सबका संहार करनेवाला हूं।।२२।।

और हे भगवन्! सब देवता और ऋषियों के पूज्य ब्रह्माजी ने मुझे आपके पास यह कहने के लिए भेजा है कि॥२३॥

रक्षितुंस्वर्गलोकस्यसमयस्तेमहामते ॥ पुरात्वेमेकएवासील्लोकान्संहृत्यमायया ॥२४॥ भार्ययासहितस्त्वंमा- मादौपुत्रमजीजनः ॥ तथाभोगवतंनागमनन्तमुदकेशयम् ॥२५॥ माययाजनयित्वात्वंद्वौससत्वौमहाबलौ ॥ मधुकैटभकौदैत्यौहत्वामेदोऽस्थिसञ्चयम् ॥२६॥ इमांपर्वतसम्बद्धांमेदिनींपुरुषर्षभ ॥ पद्मेदिव्यार्कसङ्काशेना- भ्यामुत्पाद्यमामपि ॥२७॥ मांविधायप्रजाध्यक्षंमयिसर्वंन्यवेदयत् ॥ सोऽहंसंयुक्तसम्भारस्त्वामवोचंजगत्पते ॥२८॥ रक्षांविधत्स्वभूतेभ्योयेमेवीर्यापहारिणः ॥ ततस्त्वंकश्यपाज्जातोविष्णुर्वामनरूपधृक् ॥२९॥ हृतवानसिभूभारंवधाद्रक्षोगणस्यच ॥ सर्वासूत्सार्यमाणासुप्रजासुधरणीधर ॥३०॥ रावणस्यवधाकांक्षीम र्त्यलोकमुपागतः ॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥३१॥ कृत्वावासस्यसमयंत्रिदशेष्वात्मनः पुरा ॥ सतेमनोरथः पूर्णः पूर्णेचायुषितेनृषु ॥३२॥

हे महामते! आपका यह समय स्वर्गलोक की रक्षा करनेवाला है और पहिले माया के द्वारा सब लोकों को संहार करके आप अकेले रहे थे॥२४॥ सृष्टि के आदि में फिर मायारूपी भार्या के संयोग से तुमने अपना पुत्ररूप मुझे उत्पन्न किया था। फिर बहुत से करुणावाला और जल में शयन करनेवाला अनन्तनाम नाग उत्पन्न किया॥२५॥ और माया से महाबली और महापराक्रमी हम दोनों को रचकर और मधुकैटभ दोनों दैत्यों का संहार करके हे पुरुषश्रेष्ठ! उन दोनों की चरबी और हड्डियों से आपने पर्वतोंसहित पृथ्वी को रचा। और सूर्य के समान प्रकाशमान दिव्य कमल को अपनी नाभि से उत्पन्न करके उसके ऊपर फिर मुझे उत्पन्न किया॥२६॥२७॥ और मुझे प्रजा का स्वामी बनाकर प्रजा का सब भार भी मुझे सौंप दिया। फिर जगत्पते! जब मैंने प्रजा का सब भार अंगीकार कर लिया तब मैंने आपसे प्रार्थना करी कि॥२८॥ जो प्राणी मेरी प्रजा के नाशक हैं उनसे मेरी रक्षा कर विधान कीजिये। फिर आप कश्यपजी से अदिति वामनरूप धारण कर उत्पन्न हुए॥२९॥ और राक्षसगण का संहार करके पृथ्वी का भार दूर किया। और हे रणधीर! जब सब प्रजा दुःख से पीड़ित हुई तब रावण के मारने की इच्छा से आपके मृत्युलोक में रामअवतार लिया और ग्यारह

हजार वर्ष तक पृथ्वी पर रहने का अपना समय पहिले आपने देवताओं से जता दिया था। सो आपके मनोरथ भी पूरा हो चुका अर्थात् रावण को मार चुके और आपकी आयु भी मनुष्यलोक में पूरी होने को आई।।३०–३२।।

कालस्तापसरूपेणत्वत्समीपमुपागमत्।। ततोभूयश्चतेबुद्धिर्यदिराज्यमुपासितम् ।।३३।। तत्तथाभवभद्रंतेएवमाहपितामहः ।। यदितेगमनेबुद्धिर्देवलोकंजितेन्द्रिय ।।३४।। सनाथाविष्णुनादेवाभवन्तु विगतज्वराः ।। चतुर्मुखस्यतद्वाक्यंश्रुत्वाकालेनभाषितम् ।।३५।। हसन्रामस्तदावाक्यंकृत्स्नस्यान्तकमब्रवीत् श्रुतंतववचोमेऽद्यममापीष्टतरंतुतत् ।।३६।। सन्तोषः परमोज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ।। त्रयाणामपिलोकानांकार्यार्थंमम-सम्भवः ।।३७।। भद्रंतेस्त्वागमिष्यामियतएवाहमागतः ।। मनोरथस्तुसम्प्राप्तोनमेऽत्रास्तिविचारणा ।।३८।। मत्सेवकानांदेवानांसर्वकार्येषुवैमया ।। स्थातव्यमाययापुत्रयथाचाहंप्रजापतिः ।।३९।। एवंतयोः कथयतोर्दुर्वासामुनिरभ्यगात् ।। राजद्वारंराघवस्यदर्शनापेक्षयाद्भुतम् ।।४०।। मुनिर्लक्ष्मणमासाद्यदुर्वासावाक्यमब्रवीत् ।। शीघ्रंदर्शयरामंमेकार्यंमेऽत्यन्तमाहितम् ।।४१।। तच्छ्रुत्वाप्राहसौमित्रिर्मुनिंज्वलनतेजसम् ।। रामेणकार्यंकिं-तेऽद्यकिंतेऽभीष्टंकरोम्यहम् ।।४२।। राजाकार्यान्तरेव्यग्रोमुहूर्तंसम्प्रतीक्ष्यताम्।।तच्छ्रुत्वाक्रोधसन्तप्तोमुनिःसौमित्रिमब्रवीत् ।।४३।।

सो मैं काल तपस्वी के रूप में आपके पास आया हूं। जो आपके मन में पृथ्वी पर और अधिक राज्य करने की हो तो तैसा करिये, आपका कल्याण होय और ब्रह्माजी ने और भी कह दिया है कि हे जितेन्द्रिय! जो तुम्हारी इच्छा स्वर्गलोक जाने की हो तो आप विष्णुभगवान् से सब देवता सनाथ हो जायंगे और उनको किसी बात का खटका नहीं रहेगा। काल के द्वारा कहे हुए ब्रह्माजी के संदेसे को सुनकर रामजी हँसे और सबके संहार करनेवाले काल से यह बोले कि हे काल! मैंने तुम्हारा कहा सुन लिया और मेरा भी अब यही अभीष्ट है।।३३–३६।। और हे काल! तुम्हारे आने से मुझे बड़ा भारी संतोष हो गया। तीनों लोकों के कार्य के लिये मेरा अवतार होता है।।३७।। तुम्हारा कल्याण हो, मैं जहां से आया हूं वहां ही जाऊंगा क्योंकि मेरा मनोरथ पूरा हो गया है मुझे अब कोई विचार बाकी नहीं रहा।।३८।। और हे पुत्र! देवता मेरे सेवक हैं, मैं मायासहित उनके सब कार्यों में उपस्थित रहूंगा और जैसे ब्रह्माजी ने कहा है,

करूंगा।।३९।। इस प्रकार रामजी और काल दोनों बात कर रहे थे कि इतने में दुर्वासा मुनि आ गये और रामजी के दर्शन की इच्छा से शीघ्र द्वार पर पहुँचे ।।४०।। और दुर्वासा मुनि ने लक्ष्मणजी के पास जाकर यह कहा कि मुझे तुरंत रामजीं का दर्शन कराओ, मुझे कुछ आवश्यक कार्य है।।४१।। यह सुनकर लक्ष्मणजी ने अग्नि के समान तेजस्वी दुर्वासा ऋषि से कहा कि इस समय रामजी से आपको क्या काम है और आपका क्या मनोरथ है, उसे मैं ही पूरा करने को तैयार हूं।।४२।। और हे महाराज! रामजी तो किसी कार्य में जुट रहे हैं। यदि उनसे ही काम है तो दो घड़ी तक उनकी राह देखिये। यह सुनकर ऋषि तो क्रोध के मारे लाल तत्ते हो गये और लक्ष्मणजी से बोले ।।४३।।

अस्मिन्क्षणेतुसौमित्रेनदर्शयसिचेद्विभुम् ।। रामंसविषयंवंशंभस्मीकुर्यांनसंशयः ।।४४।। श्रुत्वातद्वचनंघोरमृषे-र्दुर्वाससोभृशम् ।। स्वरूपंतस्यवाक्यस्यचिन्तयित्वासलक्ष्मणः ।।४५।। सर्वनाशाद्वरंमेऽद्यनाशोकस्यकारणात् ।। निश्चित्यैवंततोगत्वा रामायप्राहलक्ष्मणः ।।४६।। सौमित्रेर्वचनंश्रुत्वारामः कालंव्यसर्जयत् ।। शीघ्रंनिर्गम्यरामोऽपिददर्शात्रेः सुतंमुनिम् ।।४७।। रामोऽभिवाद्यसंप्रीतोमुनिंपप्रच्छसादरम् ।। किंकार्यंतेकरोमीति मुनिमाहरघूत्तमः ।।४८।। तच्छ्रुत्वारामवचनंदुर्वासारामब्रवीत् ।। अद्यवर्ष सहस्राणामुपवाससमापनम् ।।४९।। अतोभोजनमिच्छामिसिद्धंयत्तेरघूत्तम ।। रामोमुनिवचः श्रुत्वासन्तोषेणसमन्वितः ।।५०।। ससिद्धमन्नंमुनयेयथावत्समुपाहरत् ।। मुनिर्भुक्त्वान्नममृतंसन्तुष्टः पुनरभ्यगात् ।।५१।। स्वमाश्रमंगतेतस्मिन् रामः सस्मारभाषितम् ।। कालेनशोकदुःखार्तोविमानाश्चतिविह्वलः ।।५२।। अवाङ्मुखोदीनमनानशशाकाभिभाषितुम् ।। मनसालक्ष्मणंज्ञात्वाहतप्रायंरघूद्वहः ।।५३।। अवाङ्मुखोबभूवाथतूष्णीमेवाखिलेश्वरः ।। ततोरामंविलोक्याहसौमित्रिर्दुःखसंप्लुतम् ।।५४।। तूष्णीम्भूतंचिन्तयन्तंगर्हन्तंस्नेहबन्धनम् ।। मत्कृतेत्यज-सन्तापंजहिमारघुनन्दन ।।५५।।

हे लक्ष्मण! जो तुम इसी क्षण रामजी का दर्शन नहीं कराओगे तो देश और कुटुंबसहित राम को भस्म कर दूंगा इसमें सन्देह मत समझना।।४४।। दुर्वासा मुनि का ऐसा अत्यंत भयंकर वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने मुनि के वाक्य का आदि अंत विचारा कि सबके नाश से आज मेरे अकेले का नाश होना श्रेष्ठ है ऐसा निश्चय करके और फिर रामजी के

पास जाकर लक्ष्मणजी ने सब वृत्तांत कहा।।४५।।४६।। लक्ष्मणजी का वचन सुनकर काल को तो विदा किया और शीघ्र महल से निकलकर राम ने अत्रि के पुत्र दुर्वासा मुनि का दर्शन किया।।४७।। और रघुश्रेष्ठ रामजी ने प्रणाम करके अत्यंत प्रीति और आदरपूर्वक मुनि से पूछा कि हे मुनिराज! आपका क्या कार्य है उसे मैं करूं।।४८।। रामजी का यह वचन सुनकर दुर्वासाजी ने राम से कहा कि आज मेरा हजार वर्ष का उपवास समाप्त हुआ।।४९।। इसलिये हे रघुनन्दन! भोजन करने की इच्छा है तुम्हारे यहां जो कुछ भोजन तैयार हो मुझे दो! रामजी मुनि का वचन सुनकर संतुष्ट हुए।।५०।। और वह जो कुछ अन्न तैयार था मुनि के भोजन के लिये ले आये और मुनि उस अमृत तुल्य अन्न को भोजन कर संतुष्ट हो लौट गये।।५१।। अब जब मुनि अपने आश्रम को लौट गये तब रामजी ने काल के वचन का स्मरण किया और वे शोक और दुःख से दुःखी उदास और बड़े व्याकुल हुए।।५२।। और मन में व्याकुल हो नीचा मुख करके बैठ गये परन्तु लक्ष्मणजी से कुछ कहने की उनकी हिम्मत न हुई और मन से लक्ष्मणजी को मृतक समान जानकर सब जगत् के ईश्वर रामचन्द्रजी नीचा मुख लिये चुपके हो गये। फिर लक्ष्मणजी रामजी को दुःख में मगन चुपके सोच में डुबे हुए और स्नेहबंधन की निंदा करते हुए देखकर बोले कि हे रघुनन्दन! मेरे लिये कुछ संताप मत करिये और मुझे प्राणदंड दीजिये।।५३-५५।।

गतिः कालस्यकलितापूर्वमेवेदृशीप्रभो ।। त्वयिहीनप्रतिज्ञेतुनरकोमेध्रुवंभवेत् ।।५६।।मयिप्रीतिर्यदिभवेद्यद्य-नुग्राह्यतातव।। त्यक्त्वाशङ्कांजहिप्राज्ञमामाधर्मंत्यजप्रभो।।५७।। सौमित्रिणोक्तंतच्छ्रुत्वारामश्चलितमानसः ।।आहूयमन्त्रिणः सर्वान्वसिष्ठंचेदमब्रवीत् ।।५८।। मुनेरागमनंयत्तुकालस्यापिहिभाषितम् ।।प्रतिज्ञामात्मन-श्चैवसर्वमावेदयत्प्रभुः ।।५९।।श्रुत्वारामस्यवचनंमन्त्रिणः सपुरोहिताः ।। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वेराममक्लिष्ट-कारिणम् ।।६०।। पूर्वमेवहिनिर्दिष्टंतवभूभारहारिणः ।। लक्ष्मणेनवियोगस्तेज्ञातोविज्ञानचक्षुषा ।।६१।। त्यजाशुलक्ष्मणंराममाप्रतिज्ञांत्यजप्रभो ।। प्रतिज्ञातेपरित्यक्तेधर्मोभवतिनिष्फलः ।।६२।। धर्मेनष्टेऽखिले-रामत्रैलोक्यंनश्यतिध्रुवम् ।। त्वंतुसर्वस्यलोकस्यपालकोऽसिरघूत्तम।।६३।।त्यक्त्वालक्ष्मणमेवैकंत्रैलोक्यंत्रातु-मर्हसि ।। रामोधमार्थसहितंवाक्यंतेषामनिन्दितम् ।।६४।। सभामध्येसमाश्रुत्यप्राहसौमित्रिमञ्जसा ।।

यथेष्ठंगच्छसौमित्रेमाभूद्धर्मस्यसंशयः ॥६५॥

हे प्रभो! काल की ऐसी ही गति है यह मैंने पहिले से ही विचार रखी है और जो आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करोगे तो मुझे भी अवश्य नरक होगा॥५६॥ और हे प्रभो! यदि आपकी प्रीति और अनुग्रह मेरे ऊपर हो तो हे प्राज्ञ! शंका को छोड़कर मुझे मारिये और धर्म को न छोड़िये॥५७॥ लक्ष्मणजी ने कहा उसे सुनकर रामजी का मन डांवाडोल हो गया अर्थात् उन्होंने भाई का स्नेह त्याग दिया और सब मंत्री और वसिष्ठजी को बुलाकर मुनि का आगमन कहा और काल से जो बातचीत हुई थी और प्रभु ने आप जो प्रतिज्ञा करी थी सो सब उनको सुनाई॥५८॥५९॥ रामजी का वचन सुनकर वसिष्ठजी सहित सब मंत्री हाथ जोड़कर सहज में सब कार्य करनेवाले रामजी से बोले कि ॥६०॥ पृथ्वी का भार दूर करनेवाले आपसे पहिले लक्ष्मणजी का वियोग होनहार है यह हमने पहिले ही ज्ञानदृष्टि से जान लिया था॥६१॥ हे राम! तुम शीघ्र लक्ष्मणजी को त्याग दो और हे प्रभो! अपनी प्रतिज्ञा को मत छोड़ो क्योंकि जो तुम प्रतिज्ञा छोड़ दोगे तो फिर धर्म निष्फल हो जायगा॥६२॥ और हे राम! संपूर्ण धर्म के नष्ट हो जाने से निश्चय करके तीनों लोक नष्ट हो जायेंगे और हे रघुनन्दन! तुमही सब लोक के पालक हो॥६३॥ इसलिये अकेले लक्ष्मण को त्याग त्रिलोकी की रक्षा करिये। रामजी ने सभा में धर्म अर्थ सहित और पक्षपात रहित वचन को सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजी से कहा कि लक्ष्मण! जहां तुम्हारी इच्छा हो तहां चलें जाओ धर्म का लोप न होना चाहिये॥६४॥६५॥

परित्यागोवधोवापिसतामेवोभयंसमम् ॥ एवमुक्तेरघुश्रेष्ठेदुःखव्याकुलितेक्षणः ॥६६॥ रामंप्रणम्यसौमित्रिः शीघ्रंगृहमगात्स्वकम् ॥ ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्यसकृताञ्जलिः ॥६७॥ नवद्वाराणिसँय्यम्यमूर्धिनप्राणमधारयत् ॥ यदक्षरंपरंब्रह्मवासुदेवाख्यमव्ययम् ॥६८॥ पदंतत्परमंधामचेतसासोऽभ्यचिन्तयत् ॥ वायुरोधेनसंयुक्तंसर्वेदेवामहर्षयः ॥६९॥ साग्नयोलक्ष्मणंपुष्पैस्तुष्टुवुश्चसमाकिरन् ॥ अदृश्यंविबुधैः कैश्चित्सशरीरंसवासवः ॥७०॥ गृहीत्वालक्ष्मणंशक्रः स्वर्गलोकमथागमत् ॥ ततोविष्णोश्चतुर्भागंतंदेवंसुरसत्तमः ॥ सर्वेदे वर्षयोदृष्ट्वालक्ष्मणंसमपूजयन् ॥७१॥ लक्ष्मणेहिदिवमागतेहरौसिद्धलोकगतयोगिनस्तदा ॥ ब्रह्मणासहसमागमन्मुदाद्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम् ॥७२॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादे

सत्पुरुषों को त्याग और वध दोनों समान हैं जब रामजी ने यह कहा तब वियोग के दुःख से लक्ष्मणजी की सब इन्द्रियां शिथिल हो गईं।।६६।। और लक्ष्मणजी रामजी को प्रणाम करके शीघ्र अपने महल में गये और फिर वहां से सरयू तीर पर जाकर आचमन किया और हाथ जोड़कर पवन के नव द्वारों को रोककर प्राणों को ब्रह्माण्ड में चढा लिया और अक्षर अविनाशी ऐसे वासुदेव परब्रह्म सबका आधार परमपद का शुद्ध चित्त से ध्यान करने लगे इस प्रकार प्राणों का निरोध करते हुए लक्ष्मणजी को देखकर अग्निसहित सब देवता और महर्षियों नें उन पर पुष्पों की वर्षा कर उनकी स्तुति करी। इतने में देवराज इन्द्रदेव शरीर सहित लक्ष्मणजी को लेकर स्वर्ग लोक में चले गये और इस दृश्य को कोई देवता नहीं देखने पाये और फिर विष्णु के चार अंशरूप लक्ष्मण देव को देखकर सब देवता और ऋषियों ने उनका पूजन किया।।६७-७१।। जब भगवान् लक्ष्मणजी को स्वर्ग को चले गये तब सिद्ध लोक में रहनेवाले योगीजन ब्रह्माजी को साथ लेकर बड़े प्रसन्न होते हुए अपने पहिले बड़े भारी शेषरूप को धारण करनेवाले लक्ष्मणजी का दर्शन करने के लिये आये।।७२।। इति पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित उत्तरकांड का आठवां सर्ग समाप्त हुआ।।८।।

श्रीमहादेव उवाच ।। लक्ष्मणंतुपरित्यज्यरामोदुःखसमन्वितः ।। मन्त्रिणोनैगमांश्चैववसिष्ठंचेदमब्रवीत् ।।१।। अभिषेक्ष्यामिभरतमधिराज्येमहामतिम् ।। अद्यचाहंगमिष्यामिलक्ष्मणस्यपदानुगः ।।२।। एवमुक्तेरघुश्रेष्ठेपौ-रजानपदास्तदा।। द्रुमाइवच्छिन्नमूलादुःखार्तापतिताभुवि।।३।। मूर्च्छितोभरतो वापिश्रुत्वारामाभिभाष षितम् ।। गर्हयामासराज्यंसप्राहेदंरामसन्निधौ ।।४।। सत्येनचशपेनाहंत्वांविनादिविवाभुवि ।। कांक्षेराज्यंरघु श्रेष्ठ शपेत्वत्पादयोः प्रभो ।।५।। इमौकुशलवौराजन्नभिषिञ्चस्वराघव ।। कोशलेषुकुशंवीरमुत्तरेषुलवंतथा ।।६।। गच्छन्तुदूतास्त्वरितं शत्रुघ्नानयनायहि ।। अस्माकमेतद्गमनंस्ववर्वासायशृणोतुसः ।भरतेनोदितंश्रुत्वाप-तितास्ताः समीक्ष्यतम् ।। प्रजाश्चभयसंविग्ना रामविश्लेषकातराः ।।८।। वसिष्ठोभगवान्राममुवाचसदयंवचः ।। पश्यतातांदरात्सर्वाः पतिताभूतलेप्रजाः ।।९।। तासांभावानुगं रामप्रसादंकर्तुमर्हसि ।। श्रुत्वावसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ।।१०।। सस्नेहहोरघुनाथस्ताः किंकरोमीतिचाब्रवीत् ।। ततः प्राञ्जलयः प्रोचुः

प्रजाभक्त्यारघूद्वहम् ।।११।।

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती! लक्ष्मणजी को त्यागकर रामजी बड़े दुःखी हुए और मंत्री नगर के महाजन और वसिष्ठजी से यह कहने लगे कि ।।१।। आज ही मैं बुद्धिमान् भरत को राजतिलक करूंगा और जहां लक्ष्मणजी गये हैं वहां ही जाऊंगा।।२।। जब रघुनाथजी ने यह कहा तब पुरवासी और देशवासी दुःखी होकर जड़कटे वृक्ष के समान पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े।।३।। और रामजी का वचन सुनकर भरतजी भी मूर्च्छित हो गये और वे राज्य की निंदा करके रामजी से यह बोले कि ।।४।। हे प्रभो! मैं सत्य की और आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि हे रघुनन्दन! तुम्हारे बिना मैं स्वर्ग में क्या और पृथ्वी पर क्या कहीं राज्य करना नहीं चाहता हूं।।५।। हे राजा रामचन्द्रजी! ये कुश और लव हैं इनका राजतिलक करिये कौशल देशों में कुश का और उत्तर के देशों में वीर लव का।।६।। और दूतों को आज्ञा कर दीजिये वे शीघ्र शत्रुघ्नजी को लिवा लाने के लिये जायं जिसमें वह भी हमारा स्वर्ग में जाना सुन लें।।७।। भरतजी का वचन सुनकर प्रजा के लोक राम के वियोग से कातर और भयभीत हो पृथ्वी पर गिर पड़े उस प्रजागण को पड़ा हुआ देख भगवान् वसिष्ठजी दया विचारकर रामजी से यह बात कही हे प्यारे! यह तुम्हारी प्रजा पृथ्वी पर पड़ी है इसे स्नेह दृष्टि से देखो।।८।।९।। और हे राम! इनकी भक्तिभाव के अनुसार इन पर कृपा करो। वसिष्ठजी का वचन सुनकर रघुनाथजी ने प्रजाजन को उठाया और उनका सत्कार किया और फिर रघुनाथजी ने स्नेहपूर्वक उनसे कहा कि तुम्हारे लिये क्या करूं? फिर तो प्रजा ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर रामजी से कहा कि ।।१०।।११।।

गन्तुमिच्छसियत्रत्वमनुगच्छामहेवयम् ।। अस्माकमेषापरमाप्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः।।१२।। तवानुगमनेरामहृद्-गतानोदृढामतिः ।। पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्यसर्वथा ।।१३।। तपोवनंवास्वर्गंवापुरंवारघुनन्दन ।। ज्ञात्वातेषांमनोदार्ढ्यंकालस्यवचनंतथा ।।१४।। भक्तंपौरजनंचैवबाढमित्याहराघवः ।।कृत्वैवनिश्चयंरामस्त-स्मिन्नेवाहनिप्रभुः ।।१५।। प्रस्थापयामासचतौरामभद्रः कुशीलवौ ।। अष्टौरथसहस्राणिसहस्रंचैवदन्तिनाम् ।।१६।। षष्टिंचाश्वसहस्राणामेकैकस्मैददौबलम् ।।बहुरत्नौबहुधनौहृष्टपुष्टजनावृतौ ।।१७।। अभिवाद्यमतौ

रामंकृच्छ्रेणतुकुशीलवौ ॥ शत्रुघ्नानयनेदूतान्प्रेषयामासराघवः ॥ तेदूतास्त्वरितंगत्वाशत्रुघ्नायन्यवेदयन् ॥१८॥ कालस्यागमनंपश्चादत्रिपुत्रस्यचेष्टितम् ॥ लक्ष्मणस्यचनिर्याणंप्रतिज्ञांराघवस्यच ॥१९॥ पुत्राभिषेचनंचैवसर्वंरामचिकीर्षितम् ॥ श्रुत्वातद्दूतवचनंशत्रुघ्नःकुलनाशनम्॥२०॥ व्यथितोपिधृतिंलब्ध्वा पुत्रावाहूयसत्वरः ॥ अभिषिच्यसुबाहुंवैमथुरायांमहाबलः ॥२१॥

हम तो जहां तुम जाओ वहां आपके पीछे पीछे जाना चाहते हैं यही हमारी प्रीति और यही हमारा अक्षय धर्म है॥१२॥ और हे राम तुम्हारी पीछे पीछे जानेकी हमारे मन में पक्की सलाह है सो हम जो आज चाहे तो कुछ हो स्त्री पुत्रादिकों को साथ लेकर हे रघुनन्दन! आप वन में स्वर्ग में या पुर में कहीं जायं हम आपके पीछे पीछे जायेंगे फिर उन लोगों के मन की दृढ़ता और काल का वचन समझकर रामजी ने अपने भक्त प्रजाजन से यह कह दिया कि अच्छा हम तुम्हें साथ ले चलेंगे फिर प्रभु रामजी ने उसी दिन जाने का निश्चय करके॥१३॥१४॥१५॥ कुश और लव दोनों पुत्रो को विदा किया और उनको आठ आठ हजार रथ हजार हजार हाथी और साठ साठ हजार घोड़े इतनी इतनी सेना दी और बहुत से रत्न और अतुल धन देकर उनके साथ में बड़े मोटे ताजे आदमी कर दिये॥१६॥१७॥ वे कुश और लव बड़ी कठिनता से रामजी को प्रणाम करके विदा हुए। इधर रामजी शत्रुघ्नजी के लिवाने के लिये भी दूत भेज दिया और उन दूतों ने तुरंत जाकर शत्रुघ्नजी से भगवान् का संदेसा निवेदन कर दिया॥१८॥ और काल का आगमन अत्रिपुत्र दुर्वासाका कर्म लक्ष्मणजी का स्वर्गगमन और रामजी का परम धाम जाने की प्रतिज्ञा पुत्रों का राजतिलक और रामजी ने जो जो करना विचारा था सो सब सुनाया। कुलका नाशक ऐसा दूतों का वह वचन सुनकर महाबली शत्रुघ्नजी दुःखी तो बहुत हुए किन्तु धीरज धरकर उन्होंने शीघ्र पुत्रों को बुलाया और मथुरा के राज्य पर तो सबाहु का राजतिलक कर दिया॥१९-२१॥

यूपकेतुंचविदिशानगरेशत्रुसूदनः ॥ अयोध्यांत्वरितंप्रागात्स्वयंरामंदिदृक्षया ॥२२॥ददर्शचमहात्मानंतेजसाज्वलनप्रभम् ॥ दुकूलयुगसंवीतंऋषिभिश्चाक्षयैर्वृतम् ॥२३॥ अभिवाद्यरमानाथंशत्रुघ्नोरघुपुंगवम् ॥ प्राञ्जलिर्धर्मसहितंवाक्यंप्राहमहामतिः ॥२४॥ अभिषिच्यसुतौतत्रराज्येराजीवलोचन ॥ तवानुगमनेराज-

न्विद्धिमांकृतनिश्चयम् ॥२५॥ त्यक्तुंनार्हसिमावीरभक्तंतवविशेषतः ॥ शत्रुघ्नस्यदृढांबुद्धिंविज्ञायरघुनन्दनः ॥२६॥ सज्जीवभवतुमध्याह्नेभवानित्यब्रवीद्वचः ॥ अथ क्षणात्समुत्पेतुर्वानराः कामरूपिणः ॥२७॥ ऋक्षाश्चराक्षसाश्चैवगोपुच्छाश्चसहस्रशः ॥ ऋषीणांदेवतानांचपुत्रारामस्यनिर्गमम् ॥२८॥ श्रुत्वोप्रोचूरघु-श्रेष्ठंसर्वेवानरराक्षसाः ॥ तवानुगमनेविद्धिनिश्चितार्थान्हिनः प्रभो ॥२९॥ एतस्मिन्नन्तरे रामंसुग्रीवोऽपि-महाबलः ॥ यथावदभिद्याहराघवंभक्तवत्सलम् ॥३०॥ अभिषिच्याङ्गदंराज्येआगतोऽस्मिमहाबलम् ॥ तवानुगमनेरामविद्धिमांकृतनिश्चयम् ॥३१॥

और यूपकेतु को विदिशा नगर का राज्य देकर शत्रुसूदन आप तुरंत रामजी के दर्शनों की इच्छा से अयोध्या को विदा हुए।।२२।। और वहां तेज से अग्नि के समान जाज्वल्यमान दो वस्त्रों को धारण किये महात्मा रामजी को चिरंजीवी ऋषियों के बीच में विराजमान देखा।।२३।। महाबुद्धिमान्! शत्रुघ्न से रघुश्रेष्ठ लक्ष्मी के पति रामजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर धर्मानुकूल वचन कहा कि ।।२४।। हे कमलनयन रामजी! राज्य पर दोनों पुत्रों का राजतिलक करके हे राजन्! मैंने आपके पीछे पीछे जाने का निश्चय कर लिया है ऐसा जान लीजिये।।२५।। हे वीर! आपको मुझे छोड़ना उचित नहीं है क्योंकि मैं विशेषकर आपका भक्त हूं। रामजी ने शत्रुघ्नजी की दृढ़ बुद्धि जानकर उनसे कहा कि तुम दो पहर तक तैयार हो जाना। इतने में क्या हुआ कि इच्छानुसार रूपधारण करनेवाले वानर भी आ कूदे। और हजारों रीछ, राक्षस और गोपुच्छ जाति के वानर, तथा देवता और ऋषियों के पुत्र रामजी का स्वर्गगमन सुनकर आये। और सब वानर और राक्षस रघुनाथजी से कहने लगे कि हे नाथ! हम सब आपके साथ जाने के निश्चय करके आये हैं यह जान लीजिये।।२६-२९।। इस अवसर पर महाबली सुग्रीव भी आ पहुँचा और भक्तवत्सल रामजी को प्रणाम करके बोला कि ।।३०।। हे रामजी! मैं राज्य पर महाबली अंगद का राजतिलक करके और आपके साथ साथ जाने का निश्चय करके आया हूं सो जानिये।।३१।।

श्रुत्वातेषांदृढंवाक्यंऋक्षवानररक्षसाम् ॥ बिभीषणमुवाचेदंवचनंमृदुसादरम् ॥३२॥ धरिष्यतिधरायावत्प्र-जास्तावत्प्रशाधिमे ॥ वचनाद्राक्षसंराज्यंशापितोऽसिममोपरि ॥३३॥ नकिञ्चिदुत्तरंवाच्यंत्वयामत्कृत-

कारणात् ॥ एवंबिभीषणंतूक्त्वाहनूमन्तमथाब्रवीत् ॥३४॥ मारुतेत्वंचिरंजीवममाज्ञांमामृषाकृथाः ॥ जाम्बवन्तमथप्राहतिष्ठंद्वापरान्तरे ॥३५॥ मया सार्धंभवेद्युद्धंयत्किञ्चित्कारणान्तरे। ततस्तान्राघवः प्राह ऋक्षराक्षसवानरान् ॥ सर्वानेवमयासार्धंप्रयातेतिदयान्वितः ॥३६॥ ततः प्रभातेरघुवंशनाथो विशालवक्षाः सितकञ्जनेत्रः ॥ पुरोधसंप्राहवसिष्ठमार्यंमान्त्वग्निहोत्राणिपुरोगुरोमे ॥३७॥ ततोवसिष्ठोऽपिचकारसर्वं-प्रस्थानिकंकर्ममहद्विधानात् ॥ क्षौमाम्बरोदर्भपवित्रपाणिर्महाप्रयाणायगृहीतबुद्धिः ॥३८॥ निष्क्रम्यरामो-नगरात्सिताभ्राच्छशीवयातः शशिकोटिकान्तिः ॥ रामस्यसव्येसितपद्महस्तापद्मागतापद्मविशालनेत्रा ॥३९॥ पार्श्वेऽथदक्षेऽरुणकञ्जहस्ताश्यामाययौभूरपिदीप्यमाना ॥ शस्त्राणि शास्त्राणिधनुश्चबाणाजग्मुः पुरस्ताद्धृतविग्रहास्ते ॥४०॥

रीछ, वानर और राक्षसों का ऐसा दृढ वचन सुनकर रामजी आदरपूर्वक बिभीषण से यह कोमल वचन बोले कि॥३२॥ हे बिभीषण! जब तक पृथ्वी प्रजा को धारण करे तब तक तुम मेरी आज्ञा से राक्षस राज्य का पालन करो, तुम्हें मेरी सौगन्ध है॥३३॥ तुम्हें इससे कुछ उत्तर मत देना जो राज्य करने की इच्छा न हो तो भी मेरी प्रीति से राज्य करो, इस प्रकार बिभीषण से कहकर फिर रामजी ने हनुमानजी से कहा कि॥३४॥ हे हनुमन्! तुम चिरंजीव होकर रहो और मेरी आज्ञा को झूठी मत करो। फिर भगवान् जांबवंत से बोले कि तुम भी ठहरो, द्वापर के अंत में किसी थोड़े से कारण मेरे साथ तुम्हारा युद्ध होगा और तुम मेरे लोक को जाओगे। फिर रामजी दया करके उन सब रीछ वानर और राक्षसों से बोले कि तुम सब मेरे साथ चलो॥३५॥३६॥ इसके पीछे प्रातःकाल चौड़ी छातीवाले, कमलनयन ऐसे रघुनाथजी पूज्य पुरोहित वसिष्ठजी से बोले कि हे गुरुजी! मैं चाहता हूं कि मेरे आगे आगे अग्निहोत्र की अग्नि चलें॥३७॥ फिर वसिष्ठजी ने भी यात्रा समय का सब कृत्य बड़ी विधि से किया। और उस समय करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान रामचंद्रजी रेशमी वस्त्र धारण किये कुश की बनी पवित्री हाथ में लिये परम धाम की यात्रा में मन लगाये नगर के बाहर इस प्रकार निकले कि जैसे श्वेत मेघमंडल से चन्द्रमा निकलता हो और रामजी की बाईं ओर पद्म के समान विशाल नेत्रवाली और हाथ में श्वेत कमल लिये लक्ष्मीजी चलीं॥३८॥३९॥ फिर दाहिनी ओर लाल कमल

हाथ में लिये देदीप्यमान रूप धारे श्यामवर्ण पृथ्वी चली। और फिर शस्त्र, शास्त्र और धनुष बाण शरीर धारण कर करके भगवान् के आगे आगे चले।।४०।।

वेदाश्चसर्वेधृतविग्रहाश्चययुश्चसर्वे मुनयश्चदिव्याः ।। माताश्रुतीनांप्रणवेनसाध्वीययौहरिंव्याहृतिभिः समेता ।।४१।। गच्छन्तमेवानुगताजनास्तेसपुत्रदाराः सहबन्धुवर्गैः ।। अनावृतद्वारमिवापवर्गंराममंव्रजन्तंययुराप्त-कामाः ।।४२।। सान्तः पुरः सानुचरः सभार्यः शत्रुघ्नयुक्तोभरतोऽनुयायात ।। गच्छन्तमालोक्यरमासमेतं श्रीराघवंपौरजनाः समस्ताः ।।४३।। सबालवृद्धाश्चययुर्द्विजाग्र्याः सामात्यवर्गाश्चसमन्त्रिणोययुः ।। सर्वेगताः क्षत्रमुखाः प्रहृष्टावैश्याश्चशूद्राश्चतथापरेच ।।४४।। सुग्रीवमुख्याहरिपुङ्गवाश्चस्नाताविशुद्धाः शुभशब्दयुक्ताः ।। नकश्चिदासीद्भवदुःखयुक्तोदीनोऽथवाबाह्यसुखेषुसक्तः ।।४५।। आन्दरूपानुगताविरक्तायुश्चरामपशुभृत्य वर्गैः ।। भूतान्यदृश्यानिचयानितत्रयेप्राणिनः स्थावरजङ्गमाश्च ।।४६।। साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिं जग्मुर्विरक्ताः परमेकमीशम् ।। नासीदयोध्यानगरेतुजन्तुः कश्चित्तदाराममनानयातः ।।४७।। शून्यंबभूवा-खिलमेवतत्रपुरंगतेराजनिरामचन्द्रे ।। ततोऽतिदूरंनगरात्सगत्वाददृष्ट्वानदींतांहरिनेत्रजाताम् ।।४८।।

और शरीर धारण करके सब वेद तथा तेजस्वी मुनिजन चले और ओंकार तथा व्याहृतियों समेत वेदों की माता गायत्री ये भगवान् के साथ में चले।।४१।। और रामजी के चलते समय स्त्री पुत्र और बन्धुवर्गोंसहित अयोध्यावासी जाते हुए रामजी के पीछे पीछे ऐसे चले मानो अपना मनोरथ पा पाकर खुले हुए मोक्ष के द्वार को जाते हों।।४२।। फिर रनवास, अनुचर, स्त्रियां और शत्रुघ्न इनको साथ लेकर भरतजी भी पीछे पीछे हो लिये और श्रीरामजी को लक्ष्मीजी सहित जाता हुआ देखकर बालक वृद्ध सब अयोध्यावासी चले और अमात्य वर्ग मंत्रीवर्गसहित ब्राह्मण चले और फिर क्षत्री, वैश्य, शूद्र तथा और रहे सहे अन्त्यज ये सब प्रसन्न होते हुए भगवान् के संग चले।।४३।।४४।। फिर सुग्रीव आदि बड़े बड़े वानर स्नान करके अपने अपने शरीर को शुद्ध करके और 'श्रीरामचन्द्रजी की जय' ऐसे मंगल सूचक शब्दों को बोलते हुए रामजी के पीछे पीछे चले और इन साथ चलनेवालों में से कोई संसार के दुःखसे युक्त दुःखी और बाहरी विषयों में आसक्त नहीं था।।४५।। और परमानन्द स्वरूप रामजी के पीछे पीछे जानेवाले पुरुष संसार से विरक्त होकर अपने पशु

और नौकर चाकरों समेत रघुनाथजी के पीछे पीछे गये और जो प्राणी देखने में नहीं आते थे सो और क्या स्थावर और क्या जंगम ये सब॥४६॥ विरक्त हो होकर साक्षात् परमात्मा अनंतशक्ति माया से परे ईश्वर रामचन्द्रजी के पीछे चले। और अयोध्या नगरी में एक चिड़िया भी देखने को न रही क्योंकि ऐसा कोई भी जीव न था कि जिसका रामजी में मन न लगा हो और वह उनके साथ न गया हो॥४७॥

॥४८॥ ननन्दरामः स्मृतपावनोऽतोददर्शचाशेषमिदंहृदिस्थम् ॥ अथागतस्तत्रपितामहोमहान्देवाश्चसर्वे-ऋषयश्चसिद्धाः ॥४९॥ विमनकोटीभिरपारपारंसमावृतंखंसुरसेविताभिः ॥ रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्वं ज्योतिर्मयंतत्रनभोबभूव ॥५०॥ स्वयंकाशैर्महतांमहद्भिः समावृतः पुण्यकृतांवरिष्ठैः ॥ ववुश्चवाताश्चसुगन्ध वन्तोववर्षवृष्टिः कुसुमावलीनाम ॥५१॥उपस्थितेंदेवमृदङ्गनादेगायत्सुविद्याधरकिन्नरेषु॥ रामस्तुपद्भ्यां-सरयूजलंसकृत्सपृष्ट्वापरिक्रामदनन्तशक्तिः ॥५२॥ब्रह्मातदाप्राहकृताञ्जलिस्तंरामंपरात्मन्परमेश्वरस्त्वम् ॥ विष्णुः सदानन्दमयोऽसिपूर्णोजानासितत्त्वंनिजमैशमेकम् ॥५३॥

राजा रामचन्द्रजी के परमधाम को चले जाने पर सब नगर सूना हो गया फिर रामजी ने नगर से अति दूर जाकर विष्णुभगवान् के नेत्र से उत्पन्न हुई उस सरयूनदी को देखा॥४८॥ उस समय रामजी ने प्रसन्न होकर अपने पवित्र विराट् स्वरूप का ध्यान किया और सब जगत् को अपने हृदय में स्थित देखा कि इतने में ही ब्रह्माजी महाराज देवता सब ऋषि और सिद्ध भी आ गये॥४९॥ और देवता जिनमें विराजमान हैं और सूर्य के प्रकाश के समान चारों ओर प्रकाश करते हुए ऐसे करोड़ों विमानों से जिसका पारावार नहीं, ऐसा आकाश खचाखच भर गया और प्रकाशमान तथा ज्योतिमय हो उठा॥५०॥ और बड़े बड़े पुण्यात्माजन जो इस लोक से परलोक को गये हैं उनके बहुत से दिव्य स्वयं प्रकाशों से भी आकाश भर गया। उस समय सुगंधित ४९ भांति की पवनें चलने लगीं और पुष्पों की लगातार वर्षा हुई॥५१॥ देवता मृदंग नगाड़े बजाने लगे और विद्याधर और किन्नर गाने लगे, इतने में अनंतशक्ति रामजी एक बार सरयू के जल को स्पर्श करके अपने दोनों चरणों से उस जल पर ऐसे चलने लगे कि जैसे कोई पृथ्वी पर चलता हो॥५२॥ उस समय

ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर रामजी की स्तुति कर कहा कि हे परमात्मा! यद्यपि तुम साक्षात् परमेश्वर सदा आनन्दमय सर्वत्र परिपूर्ण और विष्णु हो और तुम ही अपने अद्वितीय ईश्वर रूप को ठीक ठीक रीति से जानते हो।।५३।।

तथापिदासस्यममाखिलेशकृतंवचोभक्तपरोऽसिविद्वन् ।। त्वंभ्रातृभिर्वैष्णवमेवमाद्यंप्रविश्यदेहंपरिपाहिदेवान् ।।५४।। यद्वापरोवायदिरोचतेतं प्रविश्यदेहंपरिपाहिनस्त्वम् ।। त्वमेवदेवाधिपतिश्चविष्णुर्जानन्तिनत्वांपुरुषा विनामाम् ।।५५।। सहस्रकृत्वस्तुनमोनमस्तेप्रसीददेवेशपुनर्नमस्ते ।। पितामहप्रार्थनयासरामः पश्यत्सुदेवेषु महाप्रकाशः ।।५६।। मुष्णंश्चचक्षूंषिदिवौकसांतदाबभूमचक्रादियुतश्चतुर्भुजः ।। शेषोबभूवेश्वरतल्पभूपतः सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी ।।५७।। बभूवतुश्चक्रदरौचदिव्यौकैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च ।। सीताचलक्ष्मीरभवत्पुरैवरामोहिविष्णुः पुरुषः पुराणः ।।५८।। सहानुजः पूर्वशरीरकेणबभूवतेजोमयदिव्यमूर्तिः विष्णुंसमासाद्यसुरेन्द्रमुख्यादेवाश्चसिद्धामुनयश्चयक्षाः ।।५९।। पितामहाद्याः परितः परेशंस्तवैर्गृणन्तः परिपूजयन्तः ।। आनन्दसंप्लावितपूर्णचित्ताबभूविरेप्राप्तमनोरथास्ते ।।६०।। तदाहविष्णुर्द्रुहिणंमहात्मा-एतेहिभक्तामयिचानुरक्ताः ।। यान्तंदिवंमामनुयान्तिसर्वेतिर्यक्शरीरा अपिपुण्ययुक्ताः ।।६१।।

तो भी हे जगदीश! तुमने मुझ दास की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया क्योंकि हे विद्वन्! तुम भक्तवत्सल हो। सो अब तुम सब भाइयों समेत अपने पहिले विष्णु के शरीर में प्रवेश करके देवताओं की रक्षा करो।।५४।। और जो और कोई शरीर आपको अच्छा लगता है तो उसमें ही प्रवेश करके तुम हमारी रक्षा करो क्योंकि तुम ही देवताओं के स्वामी विष्णु हो और मेरे बिना दूसरे पुरुष आपको नहीं जानते हैं।।५५।। हे देवेश! मैं तुम्हें हजार बार प्रणाम करता हूं। तुम मुझ पर प्रसन्न हो और फिर बार बार प्रणाम करता हूं। फिर परम प्रकाशरूप उन रामजी ने ब्रह्माजी की प्रार्थना से देवताओं के देखते देखते सब देवताओं के नेत्रों को चुराते हुए अर्थात् सबके अदृष्ट होकर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर चतुर्भुज हो गये और लक्ष्मणजी शेषनाग का अद्भुत शरीर धारण करके भगवान् की शय्यारूप बन गये।।५६।।५७।। और भरत शत्रुघ्न दोनों दिव्य शंख चक्र रूप हो गये और जानकीजी तो लक्ष्मी पहिले ही हो गई थीं और रामजी विष्णु

और पुराण पुरुष प्रसिद्ध ही हैं।।५८।। इस प्रकार रामजी भाइयों सहित पहिले शरीर से भी अधिक तेजस्वी और दिव्य मूर्ति हो गये और उनके विष्णुरूप होने पर उनके पास इन्द्र आदि लोकपाल सिद्ध मुनि यक्ष और ब्रह्मा आदि देवता चारों ओर खड़े हो भगवान् की स्तुति और पूजन करने लगे और अपना मनोरथ पूर्ण हो जाने से उन सबके चित्त आनन्द में मग्न हो गये।।५९।।६०।। उस समय महात्मा विष्णु भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा कि ये सब अयोध्यावासी आदि मेरे पूर्ण भक्त हैं और इनकी मुझसे बड़ी प्रीति हैं इसलिये मेरे परमधाम जाते समय ये मेरे पीछे पीछे चले आये हैं, इनमें जो ये सब वानर कुक्कुर आदि हैं ये भी बड़े पुण्यात्मा है।।६१।।

वैकुण्ठसाम्यं परमंप्रयान्तुसमाविशस्वाशुममाज्ञयात्वम् ।। श्रुत्वाहरेर्वाक्यमथाब्रवीत्कः सान्तनिकान्यान्तु-विचित्रभोगान् ।।६२।। लोकान्मदीयोपरि दीप्यमानास्त्वद्भावयुक्ताः कृतपुण्यपुञ्जाः ।। येचापितेरामपवित्र नामृगणमर्त्यालयकालएव ।।६३।। अज्ञानतोवापिभजन्तुलोकांस्तानेवयौगेरपिचाधिगम्यान् ।। ततोऽतिहृष्टा हरिराक्षसाद्याः स्पृष्ट्वाजलंत्यक्तकलेवरास्ते ।।६४।। प्रपेदिरेप्राक्तनमेवरूपंयदंशजातऋक्षहरीश्वरास्ते ।। प्रभाकरंप्रापहरिप्रवीरः सुग्रीवआदित्यवीर्यत्त्वात् ।।६५।। ततोविमग्नाः सरयूजलेषुनराः परित्यज्यमनुष्य-देहम् ।। आरुह्यदिव्याभरणाविमानंप्रापुश्चतेसान्तनिकाख्यलोकान् ।।६६।। तिर्यक्प्रजाता अपिरामदृष्टाजलं प्रविष्टादिवमेयाताः ।। दिदृक्षवोजानपदाश्चलोकारामंसमालोक्यविमुक्तसंगाः ।।६७।। स्मृत्वाहरिंलोकगुरुं-परेशंस्पृष्ट्वाजलंस्वर्गमवापुरञ्जः ।। एतावदेवोत्तरमाहशम्भुः श्रीराम चन्द्रस्यकथावशेषम् ।।६८।।

इसलिये तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र इन सब साथियों को वैकुंठ के समान परलोक को पहुँचा दो। भगवान् का वचन सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि जो ये आपके भक्त हैं और इन्होंने अनेक पुण्य किये हैं तो ये मेरे लोकों से भी ऊपर प्रकाशमान और विचित्र विचित्र भोगों से युक्त सान्तानिकलोक में जायंगे और हे राम! और भी पुरुष जो तुम्हारे पवित्र नाम लेंगे, वे भी अंतकाल में इन ही लोकों में जायंगे।।६२।।६३।। और जो पुरुष अनजाने भी आपका भजन करेंगे, वे भी उन लोकों को जायँगे कि जहां योगीजन जाते हैं। यह सुनकर वानर राक्षस आदि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सरयू के पवित्र जल का आचमन करके अपने अपने शरीर त्याग दिये।।६४।। और रीछ तथा बड़े बड़े वानर जिस जिस देवता के

अंश से उत्पन्न हुए थे, उसी उस देवता के पहिले रूप में मिल गये और वानरों में बड़ा पराक्रमी सुग्रीव सूर्य के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण सूर्य में लय हो गया॥६५॥ फिर सब अयोध्यावसी सरयू के जल में स्नान करते ही देह को छोड़कर दिव्य दिव्य आभूषणों को धारण किये विमान पर सवार होकर सान्तानिक नाम लोकों को चले गये॥६६॥ और तिर्यक् योनिवाले कूकर शूकर आदि भी रामजी की कृपा दृष्टि से सरयू के जल में घूसते ही शरीर त्याग स्वर्ग को चले गये और अन्य भी जो लोग देशदेशान्तरों से स्वर्ग जाते हुए रामजी के दर्शनों की इच्छा से आये थे वे भी इस कौतुक को देख गृह आदि की प्रीति को छोड़ और जगत् के नाथ परमात्मा विष्णु भगवान् का स्मरण करके सरयू के जल में गोता लगाते ही तुरंत स्वर्ग को चले गये। महादेवजी ने उत्तरकांड में रामजी की कथा का इतना ही शेष भाग पार्वतीजी को सुनाया॥६७॥६८॥

यः पादमप्यत्रपठेत्सपापाद्विमुच्यतेजन्मसहस्रजातात् ॥ दिनेदिनेपाचयंप्रकुर्वन्पठेन्नरः श्लोकमपीहभक्त्या ॥६९॥ विमुक्तसर्वाघचयः प्रयातिरामेतिसालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥ आख्यानमेतद्रघुनायकस्यकृतंरराराघव-चोदितेन ॥७०॥ महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थश्रुत्वातुरामः परितोषमेति ॥ रामायणंकाव्यमनन्तपुण्यं श्रीशङ्करेणाभिहितंभवान्यै ॥७१॥ भक्त्यापठेद्यः शृणुयात्सपापै र्विमुच्यतेजन्मशतोद्भवैश्च ॥ अध्यात्मरामं-पठतश्चनित्यंश्रोतुश्चभक्त्यालिखितुश्चरामः ॥७२॥ अतिप्रसन्नश्चसदासमीपेसीतासमेतः श्रियमातनोति ॥७३॥ रामायणंजनमनोहरमादिकाव्यंब्रह्मादिभिः सुरवरैरपिसंस्तुतंच ॥ श्रद्धान्वितः पठतियः शृणुयात्तुनित्यंविष्णोः प्रयातिसदनंसविशुद्धदेहः ॥७४॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥ समाप्तिदमुत्तकाण्डम् ॥

जो मनुष्य इस रामायण के चौथाई श्लोक को भी पढ़ता है वह हजारों जन्म में किये हुए पापों से भी छूट जाता है॥६९॥ और सब पापसमूहों से छूटकर जो दूसरों को न मिल सके, ऐसे रामजी के सालोक्य पद को पाता है। पूर्वकाल में रामजी के कहे से महादेवजी ने रामजी की अध्यात्मकथा को बनाया है, इसके पाठ से अपने आगे का हाल सुनकर भगवान् रामचन्द्र बड़े प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार श्रीमहादेवजी ने अनंत पुण्य को देनेवाली रामायण की कथा पार्वतीजी

को सुनाई।।७०।।७१।। जो कोई भक्ति से इसका पाठ करता है वा सुनता है, वह सैंकड़ों जन्मों के पापों से छूट जाता है और अध्यात्मरामायण के नित्य भक्ति से पढ़नेवाले, सुननेवाले और लिखनेवाले पर रामजी सदा बड़े प्रसन्न होकर सीताजी समेत उसके पास रहते हैं और उसे लक्ष्मी देते हैं।।७२।।७३।। यह रामायण मनुष्यों के मन को हरनेवाली आदि कथा है, ब्रह्मा को आदि लेकर बड़े बड़े देवताओं ने इसकी बहुत स्तुति करी है। जो कोई इस श्रद्धा से नित्य पढ़ता है या सुनता है वह शुद्ध देह होकर विष्णुधाम को जाता है।।७४।। इति आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत रसालाटीकासहित अध्यात्मरामायण का उत्तरकाण्ड समाप्त हुआ।

भजन—जिनके हरदे सिय राम वसें तिन और के नाम लियौ न लियौ। जिनके ढिग गंगप्रवाह वहै तिन कूपको नीर पियौ न पियौ ।। जिन मात पिता गुरु सेवा करी तिन तीरथ गमन कियो न कियो। तुलसीकर संगति साधुनकी जिन कपटी मित्र कियो न कियो।।१।।

भजन—रे मन सोच समझ विचार। भजन विन भगवान् दुर्लभ कहत निगम पुकार ।।१।। साधु संगत सार फांसे फेर रही ना सार। दाँव तेरौ परचौ पूरन जीत पिछली हार। रे मन० ।।२।। राख सत और सुन अठारह पांचकौं तू मार। दूरते तज तीन काने चतुर चौक निहार। रे मन० ।।३।। काम क्रोध मद मोह माया ठग्यौ ठगिनी नार। सूरहरि के भजन नि तू चल्यौ दोउ कर झार। रे मन० ।।४।।

भजन—मैं हरि पतिपावन सुने। मैं पतित तुम पतित पावन दोउ बानक बने ।।१।। व्याध गणिका गज अजामिल साखि निगमनि भने और अधम अनेक तारे जात कापै गन ।। मैं हरि० ।।२।। जानि नाम अजानि लीन्है नरक यमपुर मने। दास तुलसी शरण आयो राखिये अपने ।। मैं हरि० ।३।।

भजन–श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भवभयदारुणम् । नवकंजलोचन कंजमुख करकंज पदकंजारुणम् ॥१॥ कन्दर्प अगणित अमित छबि नव नीलनीरजसुन्दरम् । पट पीत मानहुँ तडित रुचि शुचि तौमि जनकसुतावरम् ॥ श्रीराम० ॥२॥ भज दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्यवंश-निकंदनम् । रघुनंद आनंदकंद कोशलचंद दशरथनंदनम् ॥ श्रीराम० ॥३॥ शिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंगविभूषणम् ॥ आजानुभुज शर चाप धर संग्राम जित खर दूषणम् । श्रीराम० ॥४॥ इंति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मनरंजनम् । मम हृदयकंज निवास करु कामादि खलदल गंजनम् ॥ श्रीराम० ॥५॥

इति हिन्दीटीकासहित उत्तरकाण्डः समाप्तः ॥

इति अध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते

उत्तरकाण्डः समाप्तः

इत्याध्यात्मरामायणं भाषाटीकासहितं

समाप्तम्

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-६८७१०२५,
फैक्स -०२०-६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-४२००७८.

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.